तुलनात्मक शासन एवं राजनीति

Comparative Government & Politics

बी.ए.- III

B.A.-III

Directorate of Distance Education
Maharshi Dayanand University, Rohtak

तुलनात्मक शासन एवं राजनीति
Comparative Government and Politics

बी.ए.–III
B.A.–III

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय
रोहतक–124 001

Copyright © 2003, Maharshi Dayanand University, ROHTAK
All Rights Reserved. No part of this publication may be reproduced or stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means; electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the written permission of the copyright holder.

Maharshi Dayanand University
ROHTAK – 124 001

विषय सूची

अध्याय 1.	तुलनात्मक शासन और राजनीति : अर्थ, प्रकृति, क्षेत्र, विकास एवं समस्याएं	5
अध्याय 2.	तुलनात्मक शासन व राजनीति के अध्ययन के दृष्टिकोण	10
अध्याय 3.	संविधान और संविधानवाद	37
अध्याय 4.	ऐतिहासिक विरासतें तथा राजनीतिक परम्पराएं	70
अध्याय 5.	विश्व के प्रमुख संविधानों की विशेषतायें : ब्रिटेन, अमेरिका, स्विस तथा चीन	83
अध्याय 6.	संविधानिक ढांचा - विधायिका	94
अध्याय 7.	संविधानिक ढांचा - कार्यपालिका	1 2
अध्याय 8.	संविधानिक ढांचा – न्यायपालिका	1 0
अध्याय 9.	राजनीतिक संस्कृति	2 5
अध्याय 10.	राजनीतिक दल और दल-प्रणालियां	2 7
अध्याय 11.	हित व दबाव समूह	269
अध्याय 12.	राज्य व स्थानीय सरकारें	28
अध्याय 13.	संविधान के सामाजिक-आर्थिक आधार	307
अध्याय 14.	महिलाएं एवं राजनीतिक प्रक्रिया	309
अध्याय 15.	वस्तुनिष्ठ प्रश्न/बहुवैकल्पिक प्रश्न	3 2

B.A. (POL. SCIENCE) 2004-05

COMPARATIVE GOVERNMENT AND POLITICS

(Government and Politics of UK, U.S.A., China, Switzerland)

M.Marks : 100
Time : 3 Hrs.

Note: Total 10 questions will be set: Four each from Part A and Part B and two from Part C. Candidates will have to attempt five question in all. selecting at least one question from each part.

PART A

Approaches to the Study of Comparative Politics.

Constitution and Constitutionalism.

Historical Lagacy and Political Traditions.

Constitutional Structures: Executive. Legislature and Judiciary.

Political Culture.

PART B

Political Parties and Party Systems.

Interest Groups and Pressure Groups

State and Local Governments.

Socio-economic bases of the Constitution.

Women and the Political Process.

PART C

Short answer questions, at least five. spread over the entire syllabus. Objective type (Multiple choice) questions spread over the whole syllabus.

अध्याय-1

तुलनात्मक शासन और राजनीति : अर्थ, प्रकृति, क्षेत्र, विकास एवं समस्याएं

(Comparative Govt. and Politics : Meaning, Nature, Scope, Evolution and Problems)

मनुष्य सामाजिक प्राणी होने के साथ-साथ एक राजनीतिक प्राणी भी है। प्रारम्भ से ही उसके प्रयास अच्छी राजनीतिक संस्थाओं के निर्माण के रहे हैं। इसलिए वह हमेशा से राजनीतिक संस्थाओं की श्रेष्ठता जांचने के लिए तुलनात्मक अध्ययन का सहारा लेता आया है। तुलना मानव स्वभाव का अंग होने के साथ-साथ उपयोगी अध्ययन का भी आधार मानी जाती है। राजनीतिक व्यवहार के विश्लेषण तथा उपयोगी सिद्धान्त निर्माण में तुलना का महत्व स्वतः ही सिद्ध होता है। अरस्तु को तुलनात्मक अध्ययन का प्रथम विद्वान माना जाता है। यद्यपि अरस्तु से पहले भी तुलनात्मक अध्ययन के अवशेष मिलते हैं, लेकिन वे अरस्तु जैसे विकसित व व्यवस्थित नहीं हैं। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद बदलते विश्व परिवेश में तुलनात्मक अध्ययन का महत्व काफी बढ़ गया है। आज तुलनात्मक अध्ययन संस्थागत सीमाएं लांघकर गैर-राजनीतिक व्यवहार के क्षेत्र में भी प्रवेश कर चुका है। इसी कारण आज तुलनात्मक राजनीतिक अध्ययन काफी लोकप्रिय हो चुका है।

तुलनात्मक शासन एवं राजनीति का अर्थ

(Meaning of Comparative Govt. and Politics)

यद्यपि कुछ विद्वान तुलनात्मक शासन व तुलनात्मक राजनीति को समान मानते हैं और एक दूसरे का अदल-बदल कर प्रयोग भी करते हैं। उनकी दृष्टि में तुलनात्मक शासन या सरकार तथा तुलनात्मक राजनीति समानार्थी है। इन विद्वानों की दृष्टि में तुलनात्मक शासन एवं राजनीति में संस्थागत व्यवहार का अध्ययन किया जाता है। इसके विपरीत कुछ ऐसे विद्वान भी हैं जो तुलनात्मक शासन तथा राजनीति में अन्तर करते हैं। उनकी दृष्टि में शासन के अंगों की तुलना तुलनात्मक शासन या सरकार तथा राजनीतिक प्रक्रियाओं की तुलना तुलनात्मक राजनीति का विषय है। तुलनात्मक सरकार को परिभाषित करते हुए जीन ब्लौंडेल ने कहा है-"तुलनात्मक सरकार या शासन विश्व की राष्ट्रीय सरकारों के प्रतिमानों का अध्ययन है।" इसके विपरीत तुलनात्मक राजनीति को परिभाषित करते हुए एम० कर्टिस ने लिखा है-"तुलनात्मक राजनीति, राजनीतिक संस्थाओं और राजनीतिक व्यवहार की कार्य-प्रणाली में महत्वपूर्ण नियमितताओं, समानताओं और असमानताओं में तुलनात्मक अध्ययन से सम्बन्ध रखती है।" तुलनात्मक शासन व तुलनात्मक राजनीति के अन्तर को स्पष्ट करते हुए जी०के० राबर्टस् ने लिखा है-"तुलनात्मक सरकार या शासन का प्रयोग राज्यों, उनकी संस्थाओं और उनके कार्यों से सम्बन्धित कुछ समूहों जैसे-राजनीतिक दल, दबाव समूह आदि के अध्ययन के लिए उपयुक्त है, लेकिन तुलनात्मक राजनीति का क्षेत्र व्यापक है, जिसमें तुलनात्मक शासन तथा गैर राजनीतिक संस्थाओं जैसे-कबीलों, निजि संस्थाओं आदि के राजनीतिक व्यवहार भी अध्ययन शामिल है।" इससे स्पष्ट है कि तुलनात्मक शासन तुलनात्मक राजनीति के विषय क्षेत्र का एक आवश्यक भाग है। लेकिन आज अधिकतर विद्वान शासन के अंगों तथा प्रक्रियाओं की अलग-अलग तुलना करने की बजाय एक साथ ही व्यापक तुलनाओं को महत्व देते हैं। इसलिए तुलनात्मक शासन तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन में स्वतः ही शामिल हो जाता है। आज राजनीतिक विज्ञान के साथ-साथ तुलनात्मक राजनीति की शाखा भी स्वतन्त्र रूप में विकसित हो रही है। यही तुलनात्मक राजनीति की अपनी विशेष पहचान है।

तुलनात्मक शासन एवं राजनीति का अध्ययन क्यों ?

(Why Study Comparative Govt. and Politics?)

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद तृतीय विश्व के अभ्युदय ने परम्परागत अध्ययन को चुनौती देने का कार्य किया। बदलते विश्व परिवेश में राजनीतिक व्यवहार को समझने में परम्परागत राजनीतिक सिद्धान्त की असफलता ने तुलनात्मक अध्ययन पर आधारित आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्तों की आवश्यकता को अनुभव करा दिया और इसके बाद राजनीति विज्ञान में तुलनात्मक अध्ययन का विकास तेजी से होने लगा। आज तुलनात्मक राजनीतिक अध्ययन इस सीमा तक अपनी प्रतिष्ठा कायम कर चुका है कि इसे स्वतन्त्र अनुशासन का दर्जा भी मिल गया है। अरस्तु से लेकर आज तक तुलनात्मक राजनीतिक अध्ययन का महत्व इस बात में रहा है कि इससे राजनीतिक व्यवहार को समझने, राजनीति में सामान्यीकरण के आधार पर सिद्धान्त निर्माण करने तथा प्रचलित राजनीतिक सिद्धान्तों की प्रामाणिकता जांचने में हमारी सहयता की है। इसके कारण ही राजनीति को वैज्ञानिक आधार प्राप्त हुआ है और राजनीतिक व्यवहार के स्थायी तत्वों का पता लगाया जा चुका है। आज तुलनात्मक शासन व राजनीति का अध्ययन विद्यार्थी, शिक्षक व नागरिकों के लिए एक महत्वपूर्ण मार्गदर्शक का कार्य कर रहा है। तुलनात्मक अध्ययन ने राजनीतिक व्यवहार की पेचिदगियों को समझने में राजनीति-विज्ञान की जो मदद की हे, वही उसकी उत्कृष्ट देन है। इसी कारण आज तुलनात्मक राजनीतिक अनुभवमूलक राजनीतक-सिद्धान्त का अभिन्न अंग बन गई है। अतः तुलनात्मक शासन एवं राजनीति का अध्ययन राजनीति-विज्ञान के लिए एक बहुत बड़ा वरदान है।

तुलनात्मक राजनीति की प्रकृति व क्षेत्र

(Nature and Scope of Comparative Politics)

आज तुलनात्मक राजनीति एक सम्मानजनक स्थान पर पहुंच चुकी है। प्राचीन समय में इसका सम्बन्ध विभिन्न शासन प्रणालियों या सरकारों की तुलना से ही माना जाता था। लेकिन द्वितीय विश्व युद्ध के बाद तुलनात्मक राजनीति में राजनीतिक संस्थाओं के ढांचे व कार्यों के साथ-साथ गैर-राजनीतिक समुदायों, संस्थाओं व उनके व्यवहार को भी अध्ययन की परिधि में लाया जा चुका है। इसी कारण आज तुलनात्मक शासन व राजनीति की प्रकृति और क्षेत्र काफी बदल चुका है। तुलनात्मक राजनीति की प्रकृति पर प्रकाश डालते हुए माईकल कर्टिस ने अपनी पुस्तक 'Comparative Government and Politics : An Introductory Essay in Political Science' मे लिखा है-"तुलनात्मक राजनीति का सरोकार ऐसे राजनीतिक व्यवहार, संस्थाओं, प्रक्रियाओं, विचारों और मूल्यों से है जो एक से अधिक देशों में पाए जाते हैं। इसके अन्तर्गत एक से अधिक राष्ट्र-राज्यों के बीच उन नियमितताओं और प्रतिमानों, उन समानताओं और असमानताओं का पता लगाते हैं जिनमें राज्यों की मूल प्रकृति; कार्यविधि और मान्यताओं को स्पष्ट करने में सहायता मिल सके। इस अध्ययन के अन्तर्गत समस्त राष्ट्र-राज्यों या राजनीतिक प्रजातियों की तुलना भी कर सकते हैं, या फिर किन्हीं विशेष प्रक्रियाओं या संस्थात्मक गतिविधि की तुलना भी कर सकते हैं।"

आज तुलनात्मक राजनीति की प्रकृति सम्बधी दो मत प्रचलित हैं-(i) तुलनात्मक राजनीति एक लम्बात्मक या अनुलम्बात्मक तुलनात्मक अध्ययन है, (ii) तुलनात्मक राजनीति एक अनुप्रस्थ या क्षैतिज तुलनात्मक अध्ययन है। प्रथम मत में विश्वास रखने वालों का मानना है कि तुलनात्मक राजनीति एक ही देश की विभिन्न सरकारों की अनुलम्ब तुलना है। लेकिन इस मत के विपरित कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय तथा क्षेत्रीय सरकारों के बीच में सम्प्रभु शक्ति, उत्पीडन शक्ति तथा आर्थिक शक्ति के दृष्टिकोण से अन्तर होता है। इसलिए अनुलम्बात्मक तुलनाएं औपचारिक दृष्टि से तो ठीक रह सकती हैं, लेकिन व्यवहारिक धरातल पर वे राजनीतिक व्यवहार के बारे में कोई सामान्य निष्कर्ष प्रस्तुत नहीं कर सकती। व्यवहार में राष्ट्रीय तथा प्रांतीय सरकारों में काफी असमानलाएं होने के कारण यह अध्ययन अनुपयोगी ही रहता है। इसके विपरीत दूसरे मत में विश्वास रखने वाले विद्वानों का कहना है कि तुलनात्मक राजनीति में क्षैतिज तुलनाएं ही उपयोगी अध्ययन का आधार हैं। ये तुलनाएं समय और भौगोलिक सीमाओं से परे हैं। ये तुलनाएं ऐतिहासिक भी हो सकती हैं और समसामयिक भी। ऐतिहासिक तुलनाओं में एक देश की राष्ट्रीय सरकार की उसी देश की भूतकालीन सरकारों के साथ तुलना की जाती है। यह तुलना समान सभ्यता व संस्कृति का तत्व होने के बाद ही प्रभावी हो सकती है। इसी कारण यह तुलना भी सीमित महत्व की है। अनुप्रस्थ या क्षैतिज तुलनात्मक अध्ययन में समसामयिक आधार पर की गई तुलनाएं ही राजनीतिक व्यवहार की वास्तविकता का चित्रण करती हैं। ब्लौंडेल ने समसामयिक अनुप्रस्थ तुलना को ही सबसे अधिक उपयोगी व प्रामाणिक माना है। इस तुलना का अर्थ है-राष्ट्रीय सरकारों का राष्ट्रीय सीमाओं के आर-पार अध्ययन करना। ये तुलनाएं ही सामान्यकरण के आधार पर राजनीतिक व्यवहार के सामान्य

सिद्धान्तों का निर्माण करती हैं। भारत की संसदीय शासन प्रणाली की तुलना यदि ब्रिटेन की संसदीय शासन प्रणाली से की जाए तो इससे समसामयिक तुलना के आधार पर संसदीय शासन प्रणाली के बारे में उपयोगी निष्कर्ष प्रस्तुत किए जा सकते हैं। आज सीमाओं के आर-पार तुलनाएं ही तुलनात्मक राजनीति को स्वतन्त्र अनुशासन के पद पर स्थापित करने में सफल हैं। तुलनात्मक राजनीति की वास्तविक प्रकृति यही है कि इसमें एक देश के भीतर व एक देश के बाहर राजनीतिक व गैर-राजनीतिक संस्थाओं व उनके व्यवहार का अध्ययन किया जाता है।

तुलनात्मक राजनीति के क्षेत्र के बारे में विचार करने से यह बात सामने आती है कि यह संक्रमणकालीन अवस्था में है। आज विद्वान इस अनिश्चय की स्थिति में हैं कि इसमें क्या शामिल किया जाए या क्या नहीं तथा शामिल करने या न करने का आधार क्या हो ? कानूनी या संस्थागत दृष्टिकोण के समर्थक तुलनात्मक राजनीति में केवल संविधान द्वारा निर्धारित राजनीतिक व्यवहार तथा सरकारी ढांचे व संरचनाओं के अध्ययन पर ही जोर देते हैं। उनका ध्येय औपचारिक अध्ययन तक ही सीमित है। लेकिन इस दृष्टिकोण के आलोचकों का कहना है कि यह अध्ययन राजनीतिक व्यवस्था के व्यवहार का वास्तविक ज्ञान नहीं करा सकता। कई देशों में संविधान तथा संविधानवाद में गहरा अन्तर होता है। चीन और रूस की राजनीतिक व्यवस्थाओं के राजनीतिक व्यवहार का अध्ययन करने से यह बात उभरने लगती है कि वहां पर संविधान के सिद्धान्त व व्यवहार में काफी अन्तर है। इसलिए राजनीतिक व्यवहार के अनौपचारिक अध्ययन की भी उपेक्षा नहीं की जानी चाहिये। व्यवहारवादी विचारक तुलनात्मक राजनीति में संस्थागत राजनीतिक व्यवहार के साथ-साथ गैर-राजनीतिक संस्थाओं के राजनीतिक व्यवहार को भी शामिल करने पर जोर देते हैं। उनका कहना है कि इस बात की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती कि राजनीतिक संस्थाओं के व्यवहार को ऐसा-वैसा बनाने वाले गैर-राजनीतिक तत्वों को भी तुलनात्मक अध्ययन में उचित स्थान मिलना चाहिए।

व्यवहारवादी विचारकों के प्रयासों के परिणामस्वरूप आज तुलनात्मक राजनीति इस अवस्था में पहुंच चुकी है कि यह पाश्चात्य सीमाओं की मोहताज नहीं है। आज इसका विस्तार गैर-पाश्चात्य देशों में भी है। द्वितीय विश्व-युद्ध के बाद तुलनात्मक राजनीति का विषय क्षेत्र काफी अधिक विकसित हुआ है। मुनरो, हरमन फाईनर, लास्की जैसे विद्वानों ने तुलनात्मक अध्ययन को नए आयाम दिए हैं। आज तुलनात्मक राजनीति में नई-नई अवधारणाएं विकसित हो चुकी हैं। इसमें राजनीतिक संस्थाओं व संरचनाओं के साथ-साथ गैर-राजनीतिक तत्वों को भी उचित स्थान मिल चुका है। आज तुलनात्मक राजनीतिक पाश्चात्य तथा गैर-पाश्चात्य दोनों क्षेत्रों में अपने पैर पसार चुकी है। आज तुलनात्मक राजनीति परम्परागत दृष्टिकोण की परिधि से निकलकर आधुनिक उपागमों के क्षेत्र में अपनी नई पहचान बना चुकी है। आज तुलनात्मक राजनीति में तुलना के नए-नए आयाम विकसित हो रहे हैं। आज तुलनात्मक राजनीति एक स्वतन्त्र व अनुशासनात्मक स्थान पर पहुंच चुकी है। आज यह अन्य सामाजिक शास्त्रों से काफी कुछ ग्रहण करने के कारण अपने अध्ययन क्षेत्र को विकसित कर चुकी है। आधुनिक राजनीतिक विद्वान तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन क्षेत्र में कानून-निर्माण, कानून प्रयोग, विभिन्न राजनीतिक व्यवस्थाओं के अंगों से सम्बन्धित निर्णयों, राजनीतिक दलों व दबाव समूहों के अध्ययन के साथ-साथ समस्त व्यक्तियों, संस्थाओं और समुदायों के सामाजिक व्यवहार को भी शामिल करते हैं। आज तुलनात्मक राजनीति में राज्यों की संविधानिक संस्थागत संरचनाओं, राजनीतिक दल व दबाव समूह, राजनीतिक संस्कृति, राजनीतिक समाजीकरण, राजनीतिक विकास, संविधानवाद, राजनीतिक विकास, राजनीतिक भ्रष्टाचार, राजनीतिक आधुनिकीकरण, प्रतियोगी राज्यों के बीच आपसी शक्ति सम्बन्ध, जनमत, तुलनात्मक विश्लेषण आदि का अध्ययन किया जाता है। इसी कारण कहा जा सकता है कि तुलनात्मक राजनीति का अध्ययन क्षेत्र व्यापक होने के साथ-साथ संक्रमणकालीन दौर में है। इसमें और अधिक विषयों के शामिल होने की आज भी हमें प्रबल सम्भावना नजर आ रही है। अतः तुलनात्मक राजनीति का क्षेत्र काफी व्यापक है।

तुलनात्मक राजनीति का ऐतिहासिक विकास

(Historical Evolution of Comparative Politics)

तुलनात्मक राजनीति का अपना गौरवपूर्ण इतिहास है। अरस्तु से लेकर आधुनिक समय तक यह अपने विकसित रूप के काफी निकट पहुंच चुकी है। सबसे पहले अरस्तु ने 158 देशों के संविधानों को तुलनात्मक आधार पर परखकर तुलनात्मक अध्ययन की जो शुरुआत की थी, वह आज परिपक्व अवस्था में हैं। अरस्तु ने अपनी पुस्तक 'Politics' में 158 देशों की शासन-प्रणालियों के के तुलनात्मक विश्लेषण द्वारा यह बताया कि कौन सी शासन-प्रणाली अच्छी है या कौनसी बुरी है। इस कार्य द्वारा अरस्तु ने तुलनात्मक पद्धति की शुरुआत की और राजनीति शास्त्र को अन्य शास्त्रों से अलग पहचान भी दी। उसके बाद मैकियावली

ने राजनीति शास्त्र में पद्धति सम्बन्धी प्रश्न उठाया। उसने अपनी पुस्तक 'The Prince' में कहा कि राजनीति का व्यवस्थित और तुलनात्मक अध्ययन क्यों आवश्यक है ? उसने अपनी इस पुस्तक में बताया कि एक सफल शासक में कौन-कौन से गुण हो चाहिएं। उसने भी अरस्तु की तरह अच्छे-बुरे में अन्तर किया। उसने अपनी रचना 'डिस्कोर्सेज़ ऑन लिवी' में बताया कि जिस देश के नागरिक सद्चरित्र वाले हों वहां गणतन्त्र तथा जहाँ लोग स्वार्थी व लालची हों, वहां राजतन्त्र ही सर्वोत्तम शासन प्रणाली है। उसके बाद मॉण्टेस्क्यू ने अपनी पुस्तक 'The Spirit of Laws' में संविधान निर्माण की कला को वैज्ञानिक आधार प्रदान करते हुए बताया कि सरकारों का संगठन कैसे किया जाए। उसके बाद इतिहासवाद के दर्शन के रूप में भी उत्पन्न परिस्थितियों ने तुलनात्मक राजनीति का विकास किया। इतिहासवाद के कारण उत्पन्न विरोधी प्रवृतियां ही आगे चलकर तुलनात्मक अध्ययन का आधार बनी। इतिहासवाद के विरुद्ध आगे चलकर जो प्रतिक्रियाएं हुईं, उनसे भी तुलनात्मक अध्ययन को उपयोगी सामग्री प्राप्त हुई। इतिहासवाद के विरोधी विचारकों ने कल्पना की बजाय तथ्यों पर आधारित राजनीतिक व्यवहार के अध्ययन पर बल दिया। उसके बाद राजनीतिक विकासवाद का दौर आया। इसमें प्राचीन दृष्टिकोणों का स्थान नवीन दृष्टिकोणों के प्रयोगों ने ले लिया। इस युग में राजनीति विद्वान राज्य की उत्पत्ति व विकास के तत्वों को खोजने में लग गए। इसके लिए उन्होंने कल्पना की अपेक्षा तथ्यों पर ही अधिक ध्यान दिया। इस युग में वुडरों विल्सन की रचना 'The State: Elements of Historical and Practical Politics' (1895) सर हेनरी मेन की Ancient Law (1861) तथा 'Early History of Institutions' (1874) एडवर्ड जैकस की 'A Short History of Politics' तथा 'The State and the Nation (1900-1919), सीले की 'Introduction to Political Science' (1896), जैम्स ब्राईस की 'Modern Democracies' (1921) आदि रचनाएं प्रकाशित हुई। इन विचारकों के प्रयासों ने तुलनात्मक राजनीति को नई दिशा दी। इनसे प्राप्त अध्ययन सामग्री आज भी हमारे लिये उपयोगी तुलनात्मक अध्ययन का आधार है।

द्वितीय विश्व युद्ध तक आते-आते तुलनात्मक राजनीति का क्षेत्र काफी विकसित हो चुका था, लेकिन वह उस अवस्था से दूर था जो आज है। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद ऑमण्ड, कोलमैन, बीयर, उल्म,हेकशर, मैक्रिडीस, कार्ल डॉयच, डेविड ईस्टन, आदि विचारकों ने तुलनात्मक अध्ययन में नई-नई अवधारणाओं का विकास किया। इन विद्वानों ने तुलनात्मक राजनीति की आनुभाविक सीमा का विस्तार किया तथा वैज्ञानिक अध्ययनों पर जोर दिया। इन्होंने राजनीतिक व्यवहार को प्रभावित करने वाले गैर-राजनीतिक तत्वों को भी तुलनात्मक अध्ययन में उचित स्थान दिया। इनके प्रयासों से तुलनात्मक राजनीति में नए-नए उपागमों का विकास हुआ। मार्क्सवादी-लेनिनवादी उपागम, राजनीतिक संस्कृति, उपागम, राजनीतिक विकास व राजनीतिक आधुनिकीकरण उपागम; संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम आदि नवीन उपागमों का जन्म द्वितीय विश्व-युद्ध के बाद ही हुआ है। विगत दो दशकों से तुलनात्मक राजनीति में राजनीतिक समाजीकरण, राजनीतिक संचार, अभिजन वर्ग, नीति-निर्माण, राजनीतिक संस्कृति, राजनीतिक आधुनिकीकरण, राजनीतिक विकास आदि की अवधारणाएं काफी लोकप्रियता प्राप्त कर रही हैं। आज तुलनात्मक राजनीति में पाश्चात्य देशों की शासन व्यवस्थाओं के साथ-साथ गैर पाश्चात्य देशों (तृतीय विश्व) की राजनीतिक व्यवस्थाओं का भी व्यापक अध्ययन किया जाता है। सत्य तो यह है कि आज तुलनात्मक राजनीति एक स्वतन्त्र अनुशासन का दर्जा प्राप्त कर चुकी है। आज तुलनात्मक राजनीति जिस अवस्था में है, वह अपनी पूर्णता के काफी निकट दिखाई देती है। यद्यपि आज राजनीतिक उतार-चढ़ावों के कारण तुलनात्मक राजनीति के सामने कुछ समस्याएं भी हैं। यदि राजनीति विज्ञान इन समस्याओं से निजात पाने में सफल रहते हैं तो इस बात में कोई शक नहीं है कि तुलनात्मक राजनीति का भविष्य काफी उज्ज्वल होगा।

तुलनात्मक राजनीतिक विश्लेषण की समस्याएं

(Problems of Comparative Political Analysis)

तुलनात्मक राजनीति का विषय क्षेत्र आज इतना विकसित व विस्तृत हो चुका है कि इसमें जटिलता का गुण पैदा हो गया है। आज राजनीतिक अस्थिरता व आर्थिक उतार-चढ़ावों के दौर में तुलनात्मक अध्ययन के सभी उपागम पूर्ण रूप में अपनी प्रासांगिकता का दावा करने में असफल व बेबस से प्रतीत होते हैं। आज विश्व की राजनीतिक संरचनाओं और प्रक्रियाओं में असंख्य विविधताएं हैं। विश्व में प्रचलित असंख्य राजनीतिक प्रणालियों के बारे में सामान्य निष्कर्ष प्रस्तुत करने का दावा कोई भी राजनीतिक विद्वान नहीं कर सकता है। अनेक विद्वानों ने तुलनात्मक राजनीतिक विश्लेषण के समाने निम्नलिखित समस्याओं पर अपनी सहमति जताई है :-

(1) तुलनात्मक राजनीतिक विश्लेषण के सामने प्रथम समस्या यह है कि प्रत्ययी की रचना एवं परिभाषा की समस्या। आज तक भी सभी राजनीतिक विद्वान इस समस्या से जूझ रहे हैं कि प्रत्ययी असमानता से कैसे निपटा जाये।

(2) दूसरी समस्या यह है कि तुलनात्मक राजनीतिक विश्लेषण को विश्वव्यापी रूप कैसे प्रदान किया जाए। आज तक भी सभी राजनीतिक विद्वान विश्लेषण के किसी सर्वमान्य दृष्टिकोण या विचार का निर्माण कर पाने में असमर्थ है।

(3) तीसरी समस्या यह है कि उपयुक्त अध्ययन के लिए सामग्री तथ्य व आंकड़ें कैसे संकलित किए जाएं। साम्यवादी देशों में आंकड़ों को वास्तविक रूप में एकत्रित करना एक जटिल कार्य है, क्योंकि वहां पर वास्तविक रूप में कुछ और ही होता है, जो हमें दिखाई नहीं देता है। वहां पर सिद्धान्त और व्यवहार में काफी अधिक अन्तर है। इसी तरह खुले समाजों में भी तथ्यों का सही संकलन कर पाना आसान काम नहीं है।

(4) चौथी समस्या यह है कि विभिन्न परिवृत्यों (Variables) में सह-सम्बन्ध कैसे स्थापित किया जाए। परिवृत्यों की असंख्यता, जटिलता व उनका बदलता स्वरूप इस काम में बाधा उत्पन्न करता है। इस समस्या के कारण राजनीतिक व्यवहार की वास्तविक जानकारी प्राप्त कर पाना असम्भव है। इस बात का उत्तर कोई नहीं दे सकता कि फ्रांस, चीन व इटली में साम्यवादी दल अधिक शक्तिशाली क्यों है ? इसके पीछे अनेक कारणों का होना चरों के सह-सम्बन्ध (Correlation between Variables) में बाधा उत्पन्न करता है।

(5) तुलनात्मक राजनीतिक विश्लेषण के सामने प्रमुख समस्या यह भी है कि तुलना एवं माप का आधार क्या हो। अध्ययन व तुलना की विधियां कौनसी हों।

अतः निष्कर्ष तौर पर कहा जा सकता है कि तुलनात्मक अध्ययन के लिए समस्त विश्व की राजनीतिक संस्थाओं के राजनीतिक व्यवहार की जानकारी एकत्रित कर पाना असम्भव है। इसलिए राजनीतिक विश्लेषण के सामने समस्याओं का होना एक स्वाभाविक सी बात है। इसलिए हमें तुलनात्मक राजनीतिक विश्लेषण के मार्ग में आने वाली समस्याओं को चुनौती समझकर उनका सामना करना चाहिए और इन समस्याओं से छुटकारा पाने के भरसक प्रयास करने चाहिए ताकि किसी सर्वमान्य राजनीतिक सिद्धान्त की ओर पहुंचा जा सके।

--- o - -

अध्याय-2

तुलनात्मक शासन व राजनीति के अध्ययन के दृष्टिकोण (Approaches to the Study of Comparative Govt. and Politics)

तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन की परम्परा बहुत पुरानी है। जैसे-जैसे राजनीतिक व्यवस्थाएं जटिल बनती गई, वैसे-वैसे तुलनात्मक रजानीति के अध्ययन के सामने नई चुनौतियां उभरने लगीं तथा समयानुसार अध्ययन के तरीकों व तुलना के उपकरणों में परिवर्तन आता गया। द्वितीय विश्व युद्ध तक तुलनात्मक राजनीति का अध्ययन परम्परागत तरीकों पर आधारित रहा और उसके बाद यह व्यवहारवादी क्रान्ति का आगमन के साथ ही आधुनिक बन गया। इसी आधार पर तुलनात्मक राजनीति में परम्परागत व आधुनिक उपागमों का आविष्कार हुआ। जहाँ परम्परागत उपागम हमें तुलनात्मक राजनीति के ऐतिहासिक, कानूनी और संस्थात्मक पक्षों को गहराई से समझने की मदद करता है, वही आधुनिक उपागम हमें आज की जटिल परिस्थितियों में राजनीति की सूक्ष्म प्रक्रियाओं को भिन्न-भिन्न स्तरों पर और भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से समझने में मदद करता है। परम्परागत उपागम ने जहां तुलनात्मक राजनीतिक-विज्ञान को स्वतन्त्र अनुशासन के रूप में उभरने से रोके रखा, वहीं आधुनिक उपागम ने तुलनात्मक राजनीति को एक स्वतन्त्र विषय के रूप में पेश किया। जहाँ परम्परागत उपागम पाश्चात्य जगत तक ही सिमटकर रह गया था, वहीं आधुनिक उपागम समस्त विश्व की राजनीतिक व्यवस्थाओं से सरोकार रखता है।

परम्परागत दृष्टिकोण या उपागम

(Traditional Approaches)

व्यवहारवादी क्रान्ति से पूर्व सरकार तथा राजनीति के तुलनात्मक अध्ययन को ही परम्परागत अध्ययन कहा जाता है। प्रायः अरस्तु को ही परम्परागत दृष्टिकोण का जनक मान लिया जाता है, लेकिन उससे पहले भी तुलनात्मक अध्ययन के अवशेष मिलते हैं। प्रथम व्यवस्थापक होने के नाते अरस्तु को ही ने 158 देशों के संविधानों का विश्लेषणात्मक अध्ययन करने के लिए राजनीतिक व्यवस्थाओं का वैज्ञानिक वर्गीकरण किया था। उसके बाद सिसरो, मैकियावेली, माण्टेस्क्यू, कार्ल मार्क्स, बार्कर, लास्की, मुनरो आदि राजनीतिक विद्वानों ने परम्परागत दृष्टिकोण का विकास किया। इन सभी विद्वानों का मुख्य जोर संविधानिक संस्थाओं के ढाचें पर ही रहा और इनकी शैली वर्णनात्मक ही रही। इस दृष्टिकोण का सम्बन्ध विदेशी सरकारों, उनके ढांचों तथा औपचारिक संगठनों के ऐतिहासिक, कानूनी तथा वर्णनात्मक अध्ययन तक ही सीमित रहा। इस दृष्टिकोण के समर्थक विद्वानों ने केवल पाश्चात्य जगत के लिखित संविधानों और राजनीतिक शक्ति के संस्थागत अध्ययन पर ही अपना ध्यान लगाया। मैक्रीडीज का कहना है कि "यह दृष्टिकोण विदेशी सरकारों के अध्ययन तथा विस्तृत रूप से पश्चिमी यूरोपीय प्रजातन्त्रों अथवा यूरोप के राज्यों और इंग्लैण्ड से सम्बन्धित था।" गैर-राजनीतिक तत्वों और राजनीतिक व्यवहार से दूर रहने की प्रवृत्ति ने परम्पागत उपागम को अव्यवहारिक बना दिया है।

परम्परागत उपागम की विशेषताएं

(Features of Traditional Approaches)

परम्परागत उपागम की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं :-

(1) मूलतः अतुलनात्मक (Essentially Non-Comparative) :- तुलनातम्क अध्ययन के परम्परागत दृष्टिकोण में अनेक देशों की संविधानिक व्यवस्थाओं की व्याख्या की गई है। ऑग ने अपनी पुस्तक 'Government of Europe' में केवल ग्रेट ब्रिटेन, जर्मनी, फ्रांस, इटली आदि देशों की शासन व्यवस्थाओं का ही अध्ययन किया है। इसी तरह मुनरो ने किया है। एक देश की राजनीतिक संस्था ओ आधार मानकर दूसरे देशों में अध्ययन करना किसी भी दृष्टिकोण से तुलनात्मक अध्ययन नहीं हो सकता। परम्परागत दृष्टिकोण के समर्थक किसी भी लेखक ने विभिन्न राजनीतिक प्रणालियों में चुनाव करने और उनमें सम्बन्ध स्थापित करने की चेष्टा नहीं की। इस दृष्टिकोण के द्वारा राज्य के ढांचे का विश्लेषण, प्रभुसत्ता निवास, चुनाव प्रणाली आदि का अतुलनात्मक अध्ययन ही किया जा सकता है। अतः परम्परागत दृष्टिकोण प्रमुखतः अतुलनात्मक ही है, तुलनात्मक नहीं।

(2) मूलतः वर्णनात्मक (Essentially Descriptive) :- परम्परागत दृष्टिकोण के लेखकों द्वारा लिखित रचनाएं केवल राजनीतिक संस्थाओं के वर्णन तथा व्याख्या तक ही सीमित हैं। एफ०एम० मार्क्स की रचना 'Foreign Government' तथा रेने और कार्टन की रचना 'Major Foreign Powers' इसी श्रेणी के अन्तर्गत शामिल हैं। इस दृष्टिकोण में लेखकों ने विभिन्न राज्यों के संविधानों की विस्तृत व्याख्या तो की है लेकिन उनमें समानताओं अथवा असमानताओं के लिए उत्तरदायी तत्वों व परिस्थितियों का अध्ययन नहीं किया। इन विद्वानों ने ऐतिहासिक और कानूनी पद्धति का प्रयोग करके राजनीतिक संस्थाओं की उत्पत्ति तथा विकास की परिस्थितियों का गहन अध्ययन नहीं करके केवल शासन के संगठन तथा कार्यों के वर्णन पर ही अधिक ध्यान दिया। इस दृष्टिकोण मे न तो वैज्ञानिकता का पुट है और न ही सामान्यीकरण के कोई प्रयास किए गए हैं। इसी कारण यह राजनीतिक संस्थाओं के व्यवहार को प्रभावित करने वाले गैर राजनीतिक तत्वों - दबाव व हित समूहों आदि का अध्ययन करने में नाकाम रहा है। अतः परम्परागत दृष्टिकोण मुख्यतः वर्णनात्मक या व्याख्यात्मक है, विश्लेषणात्मक नहीं।

(3) मूलतः सीमित या संकुचित दृष्टिकोण (Essentially Parochial Approach) :- इस उपागम से सम्बन्धित लेखकों ने विदेशी सरकारों का अध्ययन केवल यूरोप और अमेरिका तक ही सीमित रखा। इस दायरे से बाहर जाकर एशिया व अफ्रीका के देशों की राजनीतिक व्यवस्थाओं का अध्ययन करने की किसी ने भी कोशिश नहीं की। अधिकांश विद्वानों ने अपने मन में यह धारणा बनाए रखी कि प्रजातन्त्र तो केवल यूरोप में ही सम्भव है। इसी गलत धारणा के कारण ये विचारक कोई सामान्य सिद्धान्त विकसित नहीं कर पाए। अतः प्रजातन्त्र के प्रति पूर्वाग्रह की भावना के कारण इन विद्वानों ने अपश्चिमी, औपनिवेशिक, अविकसित तथा अप्रजातान्त्रिक व्यवस्थाओं की उपेक्षा की ओर परम्परागत दृष्टिकोण सीमित या संकुचित ही बना रहा।

(4) मूलतः प्रबन्धात्मक (Essentially Monographic) :- तुलनात्मक शासन व राजनीति पर लिखे गये अधिकतर रचनाएं परम्परागत उपागम के दौरान निबन्ध रूप में ही लिखी गई है। ये रचनाएं किसी राजनीतिक व्यवस्था की संरनाओं या संस्था विशेष तक ही सीमित रही। जॉन मेरियट, आर्थर कीथ, जेम्स ब्राइस, आड्रूवर जेनिंग्स, लास्की, डॉयसी, वुडरो विलसन की रचनाएं इसी श्रेणी की हैं। उदाहरण के लिए डायसी ने इंग्लैण्ड के कानून तथा विल्सन ने अमेरिका की कार्यपालिका पर ही व्यापक रूप से लिखी है। इसलिए प्रबन्धात्मक होने के कारण ये अध्ययन किसी राजनीतिक व्यवस्था के अराजनीतिक तत्वों को नहीं देख सके।

(5) मूलतः स्थिर या गतिहीन (Essentially Static) :- परम्परागत दृष्टिकोण में राजनीतिक संस्थाओं का कानूनी व ऐतिहासिक दृष्टि से ही अध्ययन करने के प्रयास हुए हैं। इसने राजनीतिक संस्थाओं की कार्यप्रणाली और राजनीतिक व्यवहार को प्रभावित करने वाले तत्वों-दबाव समूहों, चुनाव, जनमत आदि की उपेक्षा की है। वास्तव में राजनीतिक व्यवहार के गैर-राजनीतिक तत्व ही तुलनात्मक विश्लेषण का उपयोगी आधार होते हैं। इनके बिना किसी भी उपयोगी निष्कर्ष व सामान्यकरण तक पहुंचना कठिन कार्य है। गतिशील कारकों का अध्ययन किए बिना राजनीतिक सस्थाओं की उत्पत्ति और विकास को समझना असम्भव है। इससे स्पष्ट है कि परिवर्तनशील परिस्थितियों को समझे बिना सिद्धान्त निर्माण का कार्य कभी भी फलदायी नहीं हो सकता। अतः परम्परागत दृष्टिकोण मुख्यतः स्थिर व गतिहीन ही रहा।

(6) मुख्यतः औपचारिक-संस्थागत अध्ययन (Primarily Legalistic Institutional Study) :- परम्परागत दृष्टिकोण का सम्बन्ध मुख्य रूप से औपचारिक संस्थाओं तक ही रहा। इस दृष्टिकोण के अन्तर्गत यह जानने का किसी भी विद्वान ने प्रयास नहीं किया कि राजनीतिक संस्थाओं का वास्तविक व्यवहार कैसा है। मुनरो, जेनिंग्स, जेम्स ब्राईस आदि विद्वानों की रचनाएं संस्थावादी पद्धति पर ही आधारित रही। जेम्स ब्राईस ने अपनी पुस्तक 'Modern Democracies' में संस्थावादी पद्धति का ही निर्वहन किया है।

(7) मुख्यतः अवैज्ञानिक अध्ययन (Primarily Unscientific Study) :- परम्परागत सिद्धान्त व दृष्टिकोण के विचारकों ने

पद्धति विज्ञान की आवश्यकताओं तथा सत्यापनीयता को ध्यान में रखकर नहीं लिखा है। न उसमें तथ्य संग्रह तथा उनकी तकनीक ध्यान दिया गया है और न प्राक्कल्पनाओं के निर्माण एवं परीक्षण पर। अतः परम्परागत दृष्टिकोण अवैज्ञानिक है।

(8) मुख्यतः आदर्श या मानकीय अध्ययन (Primarily Normative Study) :- परम्परागत विश्लेषण के विद्वानों ने शासन के सर्वश्रेष्ठ प्रकार की स्थापना के प्रयास किए हैं। इन विद्वानों ने अपनी मान्यताओं व पूर्व धारणाओं के आधार पर ही राजनीतिक संस्थाओं का वर्णन किया है और इन्हीं मान्यताओं व पूर्वधारणाओं की कसौटी पर राजनीतिक व्यवस्थाओं को परखा है। उदाहरण के लिए परम्परागत दृष्टिकोण की विद्वानों की यह मान्यता रही है कि प्रजातन्त्र ही विश्व की सर्वोत्तम शासन प्रणाली है और यह वहीं सफल हो सकती है जहां दो राजनीतिक दलों का अस्तितत्व हो। इसी कारण परम्परावादी लेखकों ने बहुदलीय प्रणाली वाले गैर-यूरोपीय देशों की राजनीतिक व्यवस्थाओं व संस्थाओं का अध्ययन नहीं किया और अन्त तक परम्परागत अध्ययन आर्दशी ही बना रहा। एप्टर व एन्ड्रेन ने इस दृष्टिकोण को आदर्शात्मक एवं मानवीय कहा है।

(9) विशेष समस्या पर आधारित अध्ययन (Study based on Specific Problem) :- इस दृष्टिकोण के विचारकों व विद्वानों ने अपनी रचनाओं में देश-विशेष की विशेष समस्या या समस्याओं पर ही अपना ध्यान केन्द्रित किया है। इन विद्वानों ने प्रजातन्त्र और आर्थिक नियोजन, प्रतिनिधित्व, प्रशासकीय अभिकरणों का विकास, द्विसदनीय प्रणाली आदि समस्याओं को समसामयिक आधार पर हल करने का प्रयास किया है। उदाहरण के लिए डॉयसी ने ब्रिटेन के कानून की समस्या को ही अपने लेखन का आधार बनाया है। अतः परम्परागत दृष्टिकोण का सम्बन्ध विशिष्ट समस्या तक ही केन्द्रित रहा है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि परम्परागत दृष्टिकोण का लक्ष्य मुख्यतः राजनीतिक संस्थाओं के कानूनी व औपचारिक अध्ययन तक ही सीमित रहा। गैर-यूरोपीय देशों की राजनीतिक व्यवस्थाओं व गैर-राजनीतिक तत्वों की उपेक्षा करने के कारण यह अध्ययन दृष्टिकोण अत्यन्त ही अनुदार व संकुचित बना रहा और गतिहीनता का शिकार हो गया। मेक्रीडीज ने इस उपागम को अतुलनात्मक करार दिया है। यह दृष्टिकोण द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद बदली राजनीतिक परिस्थितियों में राजनीतिक संस्थाओं व राजनीतिक व्यवहार की व्याख्या करने में नाकाम हो गया और इसकी आलोचना की जाने लगी।

परम्परागत दृष्टिकोण की आलोचना (Criticisms of Traditional Approach) :- परम्परागत दृष्टिकोण की आलोचना के प्रमुख आधार निम्नलिखित हैं :-

(1) इस दृष्टिकोण का मुख्य जोर शासन की संस्थाओं तक ही रहा। इसने राजनीतिक संस्थाओं और उनके व्यवहार को प्रभावित करने वाले अनौपचारिक तत्वों की उपेक्षा की है। ऑमण्ड-पॉवेल ने लिखा है-"परम्परागत दृष्टिकोण का मुख्य जोर संस्थाओं, कानूनों, विधियों, राजनीतिक विचारों तथा विचारधारा पर ही रहा और उनके कार्य, अन्तःक्रिया, व्यवहार व उपलब्धियों की उपेक्षा की गई।" अतः राजनीतिक व्यवहार के गैर-राजनीतिक या अनौपचारिक तत्वों की तरफ ध्यान न देने के कारण यह संकुचित व गतिहीनता का शिकार हो गया।

(2) इस दृष्टिकोण का सम्बन्ध केवल लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं और यूरोप के देशों तक ही रहा। इसने गैर-पश्चिमी देशों या एशिया व अफ्रीका के अविकसित व विकासशील देशों की उपेक्षा कबरके संकुचित मानसिकता का ही परिचय दिया है।

(3) इस दृष्टिकोण से शासन की संस्थाओं का वर्णन किया गया और उनमें समानान्तर तत्वों की खोज भी की गई, लेकिन तुलना के आधार पर राजनीतिक शक्ति के संगठन व प्रयोग की उपेक्षा की गई है। इसी कारण मैक्रिडीज ने परम्परागत दृष्टिकोण को अतुलनात्मक कहा है।

(4) इस दृष्टिकोण द्वारा राजनीतिक व्यवस्थाओं व संस्थाओं का अध्ययन तो वर्णनात्मक आधार पर किया गया है, लेकिन किसी सामान्य निष्कर्ष पर पहुंचने की कोई चेष्टा नहीं की गई है। इसी कारण इसमें आनुभाविक क्षेत्र का विकास नहीं हुआ और द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद यह अप्रासंगिकता का शिकार हो गया।

(5) यह दृष्टिकोण अन्तर-अनुशासनात्मक प्रवृत्ति के प्रति उदासीन रहा है। इसने समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र और मनोविज्ञान के क्षेत्र में हो रही खोजों व नवीन पद्धतियों के प्रति आंख मूंदे रखी हैं। इसी कारण यह अवैज्ञानिकता का शिकार होने के कारण अन्तर-अनुशासनात्मक दृष्टिकोण विकसित नहीं कर सका है।

(6) इस दृष्टिकोण के अन्तर्गत राजनीतिक व्यवस्थाओं व संस्थाओं का सैद्धान्तिक अध्ययन ही किया गया है। इसने राजनीतिक संस्थाओं के राजनीतिक व्यवहार पर ध्यान नहीं दिया है। इसी कारण इसे एकपक्षीय या अधूरा दृष्टिकोण कहा जाने लगा है।

(7) इस दृष्टिकोण के अन्तर्गत विशिष्ट समस्या पर तो विचार हुआ है, लेकिन उस समस्या के समाधान पर ध्यान नहीं दिया गया है। अतः इसका मुख्य जोर नीति-निर्माण पर रहा है, समस्या समाधान पर नहीं।

निष्कर्ष तौर पर कहा जा सकता है कि आलोचकों ने परम्परागत उपागत या दृष्टिकोण पर आरोप लगाए हैं कि यह दृष्टिकोण अतुलनात्मक व वर्णनात्मक है। विश्लेषणात्मक दृष्टि के अभाव में यह राजनीतिक व्यवहार की नियमितताओं को खोजने व किसी सामान्य सिद्धान्त का निर्माण करने में असफल रहा है। इसी कारण द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान व्यवहारवाद का उदय होते ही यह उदय होते ही सर्वत्र निन्दा का पात्र बन गया। आधुनिक दृष्टिकोण के समर्थकों और व्यवहारवादियों ने इस दृष्टिकोण पर तरह-तरह के आपेक्ष लगाकर इसे द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद उत्पन्न परिस्थितियों के जटिल राजनीतिक व्यवहार की व्याख्या व विश्लेषण करने में अप्रसांगिक स्वीकार किया है।

परम्परागत दृष्टिकोण का महत्व

(Importance of Traditional Approaches)

यद्यपि परम्परागत उपागम की अनेक आलोचनाएं हुई हैं, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि इसकी तुलनात्मक अध्ययन में कोई उपयोगिता नहीं है। इस दृष्टिकोण ने लम्बे समय तक राजनीतिक संस्थाओं का कानूनी-औपचारिक अध्ययन करके राजनीति के अध्ययन को नई दिशा प्रदान की है। किसी भी विषय को समझने के लिए औपचारिक राजनीतिक संस्थाओं को समझना आवश्यक होता है। जब तुलनात्मक अध्ययन अपनी प्रारम्भिक अवस्था में था और उसका कानूनी और ऐतिहासिक पद्धति के अलावा अध्ययन करने का कोई अन्य विकल्प नहीं था तो इस दृष्टिकोण ने अपना उत्तरदायित्व बखूबी निभाया है। अरस्तु द्वारा 158 देशों के संविधानों का तुलनात्मक अध्ययन किसी भी दृष्टि से महत्वहीन नहीं हो सकता। आज तुलनात्मक अध्ययन जिस मुकाम पर पहुंचा है, उसमें परम्परागत दृष्टिकोण का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। आधुनिक दृष्टिकोण में जिन तथ्यों का प्रयोग होता है, वे परम्परागत दृष्टिकोण के रास्ते से होकर ही यहां तक पहुंचे हैं। राजनीतिक व्यवहार की जटिलताओं का प्रारम्भिक हल परम्परागत दृष्टिकोण के सैद्धान्तिक प्रयासों में ही ढूंढ़ा जा सकता है। परम्परागत तुलनात्मक राजनीतिक अध्ययनों में इतने महत्वपूर्ण राजनीतिक तथ्य संकलित किए गए कि उनसे बाद में उपयोगी विश्लेषण सम्भव हुए हैं। परम्परागत दृष्टिकोण ने राजनीति-विज्ञान के क्षेत्र में जिन प्रवृत्तियों का विकास किया था, आज वे ही तुलनात्मक अध्ययन का आधार बनी हुई हैं। अतः परम्परागत दृष्टिकोण को सर्वथा महत्वहीन मानना एक भारी भूल है। सत्य तो यह है कि परम्परागत दृष्टिकोण ने ही आधुनिक दृष्टिकोण को महत्वपूर्ण तथ्य सामग्री व सैद्धान्तिक आधार प्रदान किया है।

प्रमुख परम्परागत दृष्टिकोण या उपागम

(The Major Traditional Approaches)

तुलनात्मक राजनीति में अध्ययन के परम्परागत दृष्टिकोणों का विकास एक लम्बे इतिहास को समेटे हुए हैं। हेरी एक्सटाइन ने तुलनात्मक अध्ययन के परम्परागत उपागमों में ऐतिहासिक, कानूनी-औपचारिक, संरचात्मक को ही प्रमुख माना है। इनके अलावा दर्शनशास्त्रीय उपागम व अर्थशास्त्रीय उपागम को भी महत्व दिया जाता है। लेकिन अध्ययन की दृष्टि से प्रथम तीन उपागम ही अधिक महत्व रखते हैं। इनका संक्षिप्त ब्यौरा निम्न प्रकार से है :-

(I) ऐतिहासिक दृष्टिकोण

(Historical Approach)

राजनीति-विज्ञान में ऐतिहासिक उपागम एक अत्यन्त प्राचीन, मान्य व महत्वपूर्ण उपागम माना जाता है। इस उपागम के अन्तर्गत राज्यों की शासन प्रणालियों का ऐतिहासिक आधार पर तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। इस उपागम का प्रयोग अरस्तु, मैकियावेली, मान्टेस्क्यू, हीगल, मार्क्स, मैक्स वेबर, बालटर बेजहॉट तथा सर हेनरी जेन आदि राजनीतिक विचारकों व दार्शनिकों ने किया है। इन सभी विचारकों ने राजनीतिक संस्थाओं का तुलनात्मक अध्ययन ऐतिहासिक तथ्यों के आधारों पर किया है और वर्तमान तुलनात्मक अध्ययन को उपयोगी सामग्री प्रदान की है। यद्यपि व्यवहारवादी क्रान्ति और विज्ञानवाद के उदय ने इस उपागम को उपेक्षित किया है। लेकिन इस बात से कोई भी विद्वान इन्कार नहीं कर सकता कि किसी भी देश की रजानीतिक संस्कृति की जड़ें इतिहास के गर्भ में पोषित होती हैं। उसका वर्तमान स्वरूप ही उसके अतीत का सुन्दर इतिहास समेटे हुए

होता है। इसलिए इस तथ्य पर पहुंचना कोई मुश्किल काम नहीं है कि सभी राजनीतिक संरचनाओं और प्रक्रियाओं का वर्तमान स्वरूप सर्वथा नवीन नहीं है। उनके वर्तमान स्वरूप को समझने के लिए उनके अस्तित्व में आने तथा विकास सम्बन्धी कारणों, उनका दूसरों पर तथा उन पर दूसरों के पड़ने वाले प्रभाव को जानना अपरिहार्य है। उन्हीं के भूतकालीन स्वरूप से ही न्यूनाधिक रूप से आधुनिक राजनीति प्रभावित रहती है। इसी कारण इतिहास को राजनीति की जड़ और राजनीति को इतिहास का फल कहा जाता है। इस तरह राजनीति को इतिहास द्वारा अथवा अतीत के सन्दर्भ में समझना ही इतिहासवादी या ऐतिहासिक उपागम कहलाता है।

ऐतिहासिक उपागम के अन्तर्गत भूतकाल में घटित महत्वपूर्ण तथ्यों और घटनाओं का विश्लेषण किया जाता है। यह उपागम मूल्य निरपेक्ष रहकर विभिन्न संस्थाओं, ऐतिहासिक चरित्रों, समाजों, प्रक्रियाओं और मूल्यों का चित्रण करता है। समकालीन सन्दर्भ में अनुभवमूलक पद्धति का प्रयोग करके तुलनात्मक राजनीति के अन्तर्गत जो निष्कर्ष निकाले जाते हैं, उनकी पुष्टि के लिये यह उपागम काफी सहायक सिद्ध होता है। गिलक्राइस्ट ने कहा है-"इतिहास न केवल संस्थाओं की व्याख्या करता है, बल्कि यह भविष्य के पथ-प्रदर्शन हेतु निष्कर्ष प्राप्त करने में भी सहायक होता है। यह वह धुरी है, जिसके चारों ओर राजनीति-विज्ञान की आगमनात्मक और निगमनात्मक दोनों ही प्रक्रियाएं कार्य करती हैं।" यह उपागम वर्तमान को अतीत की दृष्टि से देखता है और तथ्यों तथा आंकड़ों को सम्पूर्णता की परिप्रेक्ष्य में कालक्रमानुसार प्रस्तुत करता है। आधुनिक समय में ऐतिहासिक उपागम 'कौन', 'क्या', 'कब', 'कहां' आदि तक ही सीमित नहीं है बल्कि यह 'कैसे' और 'क्यों' की खोज भी करता है। इसी कारण आधुनिक समय में तुलनात्मक अध्ययन के लिए इसको काफी महत्व दिया जाता है।

ऐतिहासिक उपागम की आलोचना

(Criticisms of Historical Approach)

यद्यपि ऐतिहासिक उपागम आधुनिक समय में तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से काफी महत्व रखता है, लेकिन वैज्ञानिक क्रान्ति के साथ ही इस उपागम को अधिक आलोचनाएं सहन करनी पड़ी हैं। डेविड ईस्टन ने कहा है कि सामान्य राजनीतिक सिद्धान्त के अभाव का मूल कारण राजनीतिक सिद्धान्त शास्त्रियों द्वारा ऐतिहासिक दृष्टिकोण को अपनाया जाना ही है। कब्बन ने भी इसी मत की पुष्टि की है। इन विद्वानों का मानना है कि इतिहासवादिता के साथ नाता रखने के कारण ही राजनीतिक सिद्धान्त युगानुकूल एवं भविष्यदर्शी मूल्यों के पुनर्निर्माण में असफल रहा और उसका पतन हो गया।

ऐतिहासिक उपागम पर यह आरोप भी लगाया जाता है कि यह उपागम मूल्य-निरपेक्ष होने की दुहाई देता है, लेकिन किसी न किसी रूप में इतिहासवेत्ता के व्यक्तिनिष्ठ परिप्रेक्ष्य से प्रभावित भी होता रहता है। इसलिए ऐतिहासिक उपागम का मूल्य-निरपेक्षता का दावा बिल्कुल गलत है।

लेकिन इन आलोचनाओं का यह अर्थ नहीं है कि इस उपागम का कोई महत्व नहीं है। यदि राजनीति-विज्ञान में इस उपागम को मूलाधार न बनाया जाए तो यह उपागम उपयोगी सिद्ध हो सकता है। प्रत्येक वर्तमान अतीत से नाता नहीं तोड़ सकता। इतिहासवादी उपागम ही वह अतीतकालीन अभिलेखाकार है जिसके द्वारा प्रस्तुत सन्दर्भ वर्तमान परिस्थितियों में अधयन की दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण हो सकते हैं। अतः ऐतिहासिक उपागम अधिक महत्वपूर्ण नहीं तो कम महत्वपूर्ण उपागम अवश्य हैं।

(II) कानूनी-औपचारिक उपागम

(Legal-Formal Approach)

इस उपागम के अन्तर्गत राजनीति के अध्ययन को किसी देश में प्रचलित संविधान के आधार पर वहां की शासन-प्रणालियों के संगठनात्मक ढांचे, शासन के अंगों की कानूनी शक्तियों और उनके परस्पर सम्बन्धों के आधार पर ही समझा जाता है। यह उपागम राजनीति-विज्ञान को संविधान, कानूनी संहिता व विधि के रूप में ही देखता है। इसके अन्तर्गत कानूनी आधार पर ही संस्थाओं का पृथक्करण किया जाता है। इस उपागम का प्रयोग करते समय राजनीतिक-वैज्ञानिकों को यह स्वतन्त्रता रहती है कि कानूनी व्यवस्था का विश्लेषण करने के साथ-साथ किसी घटना या राजनीतिक संस्था का भी कानूनी अध्ययन कर सकते हैं। इस उपागम के अन्तर्गत न्यायिक संस्थाओं के संगठन, अधिकारक्षेत्र और स्वतन्त्रा जैसे विषय आवश्यक तौर पर राजनीतिक सिद्धान्तशास्त्रियों की चिन्ता का विषय बन जाते हैं। प्राचीनकाल में सिसरो से लेकर आधुनिक युग में डायसी तक सभी ने राज्य को मूल रूप में एक न्यायिक सत्ता माना है। इसी तरह राज्य, सम्प्रभुता, अधिकार, प्राकृतिक विधि, अन्तर्राष्ट्रीय विधि की भी

व्याख्याएं कानूनी आधार पर विभिन्न विद्वानों द्वारा की गई है। जनता की इच्छा की औपचारिक अभिव्यक्ति ही राजनीति-विज्ञान का ध्येय है जो कानूनी-औपचारिक उपागम के रूप में अभिव्यक्त होता है। उसका औपचारिक स्वरूप ही न्यायपालिका, प्रशासन और कार्यपालिका के काम आता है। यह उपागम राजनीति-विज्ञान को कानूनी मानकों के रूप में रखकर ही अध्ययन की कसौटी पर कार्य करता है। यह उपागम संगठित समाज को एक सामाजिक व राजनीतिक परिघटना के रूप में नहीं बल्कि विशुद्ध रूप में एक कानूनी शासन, सार्वजनिक विधि, अधिकारों और आभारों की समष्टि के रूप में ही लेता है।

इस उपागम का विकास वुडरो विल्सन, डॉयसी, जेम्ब बाईस, के०सी० व्हीयर, हर्मन फाइनर, जेनिंग्स, अस्तिन, बैंथम, सर हेनरी मेन आदि राजनीतिक विद्वानों ने किया है। इस उपागम के संकेत प्रारम्भ में हॉब्स और ग्रोसियश की रचनाओं में भी मिलते हैं। हॉब्स की प्रणाली में राज्य का सर्वोच्च शासक सबसे उच्च कानून निर्माता है, उसका आदेश कानून है जिसका पालन किया जाना अनिवार्य है। बोदां का सम्प्रभुता का सिद्धान्त भी इसी दृष्टिकोण की पुष्टि करता है। इस उपागम को राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय दोनों क्षेत्रों में प्रयोग किया जा सकता है। यह दृष्टिकोण इस धारणा पर आधारित है कि कानून यह निर्धारित करता है कि किसी स्थिति में क्या कार्यवाही की जाती है और साथ ही कुछ स्थितियों में उसे करने के बारे मनाही भी करता है। यह इस तथ्य पर जोर देता है कि जहां नागरिक कानून का पालन करते हैं, वहां कानून की जानकारी लोगों के लिए बहुत महत्वपूर्ण आधार प्रदान करती है। जेलीनेक ने कहा है-"यह दृष्टिकोण राजनीतिक समाज को मात्र एक सामाजिक या राजनीतिक वस्तु नहीं बल्कि उसे सार्वजनिक कानून, अधिकारों और आभारों का एक समुच्चय समझता है। इसका यह निहितार्थ है कि उदय और विकास के संगठन के रूप में राज्य को उन शक्तियों और कारकों पर विचार किए बिना नहीं समझा जा सकता जो विधि और न्याय का अधिकार क्षेत्र है।"

कानूनी औपचारिक उपागम का महत्व

(Importance of Legal-Formal Approach)

इस उपगम के महत्व के रूप में प्रायः यह कहा जाता रहा है कि कानूनी दृष्टिकोण राजनीतिक चिन्तन के इतिहास में एक महत्वपूर्ण दृष्टिकोण रहा है। उसने राज्य, सरकार, सम्प्रभुसत्ता, न्याय, अधिवाद, प्राकृतिक विधि और अन्तर्राष्ट्रीय विधि आदि विषयों पर शताब्दियों से विचार किया है। तुलनात्मक राजनीति के क्षेत्र में इस उपागम को लेकर काफी अध्ययन हुए हैं। इनमें विश्लेषकों ने सार्वजनिक कानून की दृष्टि से संविधान, सरकार आदि संस्थाओं का औपचारिक अध्ययन किया है। विधि का शासन, न्यायपालिका की सर्वोच्चता आदि के अध्ययन के रूप में यह उपागम बराबर महत्व देता रहा है। यद्यपि कुछ विद्वान इस उपागम के विरुद्ध यह तर्क देते हैं कि शासन के बाहरी ढांचे या कानून से सम्बन्धित अंगों के अध्ययन से किसी देश की यथार्थ राजनीति को समझना कठिन है। लेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि किसी देश का संविधान ही वहां की राजनीति का औपचारिक ढांचा पेश करता है। इसलिए संविधानों के निर्माण, संशोधन और व्याख्या के क्षेत्र में यह उपागम बहुत महत्व रखता है। नवोदित देशों की राजनीति या तृतीय विश्व के देशों की राजनीति को नियमित करने के लिए तो यह और भी अधिक महत्व रखता है। किसी देश का संविधानिक कानून ही वहां की आंतरिक राजनीति के लिए आवश्यक मानदण्ड निर्धारित करता है और अन्तर्राष्ट्रीय कानून और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के सन्दर्भ में भी यही भूमिका अदा करता है। उदाहरण के लिए भारतीय राजनीति के अध्ययन में भारत के संविधान की जानकारी होना जरूरी है और संविधान की व्याख्या करते समय न्यायिक निर्णयों को कानूनी दृष्टिकोण के अन्तर्गत काफी महत्व दिया जाता है। सरकार के तीनों अंगों की शक्तियां, उनके पारस्परिक सम्बन्ध आदि सभी बातें कानून का ही विषय हैं। अतः सार रूप में कहा जा सकता है कि किसी देश की राजनीति का कानूनी तरीके से अध्ययन इसी दृष्टिकोण की मदद से ही सम्भव है क्योंकि संविधान ही किसी देश का सर्वोच्च कानून होता है और इसी बात को यह उपागम प्रमुखता देता है।

कानूनी-औपचारिक उपागम की आलोचना

(Criticisms of Legal-Formal Approach)

इस दृष्टिकोण के समीक्षक इस पर सर्वप्रथम यह आरोप लगाते हैं कि इसका परिप्रेक्ष्य अत्यन्त संकीर्ण है, क्योंकि यह दृष्टिकोण लोगों को जीवन के केवल कानूनी पहलू का ही अध्ययन करता है, राजनीतिक जीवन के समस्त व्यवहार का नहीं। यह दृष्टिकोण राजनीतिक व्यवस्था को कानूनी दृष्टि से ही देखकर एक पक्षीय विचार का घोषण करता है। इसलिए यह दृष्टिकोण भी हीगल के आदर्श राज्य की तरह अपूर्ण आधार लिए हुए है। सत्य तो यह है कि आधुनिक समय में तुलनात्मक अध्ययन केवल मात्र

किसी एक दृष्टिकोण का मोहताज नहीं है। यह उपागम तुलनात्मक अध्ययन के लिए आंशिक सामग्री ही प्रदान करता है। इसलिए यह अत्यन्त संकीर्ण दृष्टिकोण है।

(III) संस्थागत उपागम

(Institutional Approach)

तुलनात्मक राजनीति का संस्थात्मक उपागम कानूनी-औपचारिक उपागम के साथ इस तरह सम्बन्धित है कि कुछ विद्वान कानूनी-औपचारिक उपागम हो ही संस्थात्मक उपागम मानने की भूल कर देते हैं। आधुनिक उदारवादी प्रवृत्तियों ने संस्थात्मक और कानूनी उपागम के बीच की खाई को इस कद्र मिटा दिया है कि इन दोनों में अन्तर करना सरल नहीं है। जहां कानूनी-औपचारिक उपागम के अन्तर्गत केवल शासन के विभिन्न अंगों की कानूनी स्थिति और शक्तियों पर ही ध्यान केन्द्रित किया जाता है। मतदान व्यवहार, विधायकों के व्यवहार, न्यायधीशों के व्यवहार जैसे विषय इस उपागम के अन्तर्गत नहीं आते हैं। इसमें अनौपचारिक संस्थाओं की अनदेखी की जाती है। इस उपागम का मुख्य गुण यह है कि समान शासन प्रणाली वाले देशों के शासकीय अंगों की तुलना करके उपयोगी निष्कर्ष प्राप्त करने में यह उपागम काफी महत्वपूर्ण रहता है। उदाहरण के लिये भारत और ब्रिटेन की संसदीय शासन प्रणाली की तुलनात्मक जानकारी इस उपागम की सहायता से प्राप्त की जा सकती है। इसी तरह भारत व अमेरिका के संघात्मक ढांचे का अध्ययन भी किया जा सकता है। इस उपागम की मदद से वर्तमान संस्थाओं के मार्ग में आने वाली बाधाओं को दूर किया जा सकता है। यद्यपि इस उपागम के प्रयोग करने में कुछ जटिलताएं अवश्य आती हैं, लेकिन यदि उन समस्याओं पर ध्यान केन्द्रित कर दिया जाये तो यह उपागम राजनीतिक संस्थाओं के मार्ग में आने वाली बाधाओं को दूर कर सकता है। इस उपागम के बारे में प्रायः यह कहा जाता है कि यह उपागम मुक्त समाजों के अध्ययन के लिए ही उपयुक्त है, सर्वाधिकारवादी समाजों के लिए नहीं जहां नागरिकों के जीवन पर तरह तरह के प्रतिबन्ध हैं। जहां नागरिकों को स्वतन्त्र राजनीतिक सहभागिता के लिए स्वतन्त्र प्रतिस्पर्धा रहती है, वहीं यह उपागम काम कर सकता है, क्योंकि वहां की राजनीतिक संस्थाओं के सिद्धान्त और व्यवहार में ज्यादा अन्तर नहीं रह जाता।

संस्थागत उपागम की आलोचना

(Criticisms of Institutional Approach)

यद्यपि इस उपागम ने वर्तमान समय में राजनीतिक संस्थाओं के मार्ग में आने वाली बाधाओं को दूर करने के लिये एक उपयुक्त अर्न्तदृष्टि प्रदान की है। उदाहरण के लिए विकासशील देशों के समाने आई राजनीतिक अस्थिरता की समस्या के रूप में भारत के सन्दर्भ में इसने उपयुक्त शासन-प्रणाली कौनसी हो, इस प्रश्न का हल तलाशने में राजनीतिक विद्वानों की मदद की है। लेकिन फिर भी इसकी आलोचनाएं हुई हैं। आलोचकों का कहना है कि यह दृष्टिकोण किसी देश की राजनीतिक मनोदशा का सही चित्रण नहीं कर सकता। 1985 के बाद जब विकासशील देशों में राज्य के कठोर नियन्त्रण को कुछ ढीला किया गया तो वहां की राजनीतिक संस्थाओं का तत्कालीन ढांचा चरमारा गया और राजनीतिक संस्थाओं के सामने वैधता की समस्या खड़ी हो गई। सोवियत संघ के सन्दर्भ में देखा जाए तो 1990 के बाद उदारवाद के प्रभाव ने वहां का संस्थागत ढांचा ही बदल डाला। इससे यह बात तो स्पष्ट हो जाती है कि यह उपागम मुक्त समाजों के लिए तो ठीक हो सकता है, लेकिन कठोर राजनीतिक नियन्त्रण वाले समाजों में नहीं। जहां जनसहभागिता का सीमित दायरा दो और नागरिक स्वतन्त्रताओं और अधिकारों को कर्तव्यों के रूप में देखा जाता हो, वहां यह दृष्टिकोण काम नहीं कर सकता। राजनीतिक अस्थिरता वाले देशों की राजनीतिक संस्थाओं का अध्ययन भी इसकी मदद से कारगार सिद्ध नहीं हो सकता। अन्य उपागमों की तरह इस उपागम की भी यह आलोचना की जाती है कि यह बहुत संकीर्ण है। यह व्यक्तियों की अनदेखी कर देता है जो राजनीतिक व्यवस्था की औपचारिक और अनौपचारिक संस्थाओं व उप-संस्थाओं का निर्माण एवं उनका संचालन करते हैं। लेकिन आधुनिक समय में इस उपागम ने अनौपचारिक संस्थाओं को भी अपने अध्ययन की परिधि में लाकर अपने को उन दोनों से मुक्त करने का प्रयास किया है जो इस पर लगते आ रहे थे। आज इस उपागम में सरकार के तीनों अंगों व अन्य औपचारिक राजनीतिक संस्थाओं के साथ-साथ राजनीतिक दलों, दबाव व हित समूहों, सम्भ्रान्त वर्ग आदि का भी अध्ययन किया जाता है। अतः संस्थागत उपागम दिन-प्रतिदिन तुलनात्मक राजनीति व राजनीति-विज्ञान दोनों के लिए महत्वपूर्ण बनता जा रहा है लेकिन फिर भी इसे आधुनिक उपागम की संज्ञा नहीं दी जा सकती।

आधुनिक उपागम या दृष्टिकोण
(Modern Approaches)

यद्यपि आधुनिक उपागमों का जन्म द्वितीय विश्व युद्ध के बाद माना जाता है, लेकिन परम्परावादी उपागमों के साथ ही आलोचना के रूप में आधुनिक उपागमों के जन्म के संकेत मिलने लगे थे। 1908 में ही ग्राहम वालेस की रचना 'Human Nature in Politics' तथा आर्थर बेन्टले की रचना 'The Process of Government' में ही आधुनिक उपागमों के जन्म के संकेत मिल गए थे। वास्तव में आधुनिक उपगामों का जन्म और विकास अपने समृद्ध स्तर पर द्वितीय विश्व युद्ध के बाद ही हुआ था। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद उत्पन्न राजनीतिक व्यवहार की पेचिदीगियों को समझने में नाकाम परम्परागत उपागमों के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया के रूप में ही आधुनिक उपागमों का जन्म हुआ। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद नवोदित तृतीय विश्व के राष्ट्रों और गैर-राजनीतिक तत्वों के अध्ययन को तुलनात्मक राजनीति से दूर रखने का मतलब था-राजनीतिक संस्थाओं व व्यवहार का अपूर्ण अध्ययन। द्वितीय विश्व युद्ध के बदले विश्व-परिवेश में तुलनात्मक राजनीति का भी अपने विषयय-क्षेत्र और प्रकृति में परिवर्तन करना आवश्यक हो गया। इसके लिए उसे अध्ययन की नवीन पद्धतियों और दृष्टिकोणों की आवश्यकता अनुभव हुई। इस प्रकार द्वितीय विश्व युद्ध के बाद परम्परागत दृष्टिकोण के विरुद्ध प्रतिक्रिया के रूप में जिन नवीन पद्धतियों का जन्म हुआ, उन्हें ही आधुनिक उपागम कहा जाता है। इस दृष्टिकोण का उद्देश्य राजनीतिक वैज्ञानिकों के हाथ में एक ऐसा मानदण्ड सौंपना था जो सभी तरह की राजनीतिक व्यवस्थाओं की तुलना कर सके और उपयोगी निष्कर्ष निकाल सके। इस काम को अमली जामा पहनाने में फ्रेडरिक, ब्राइस, ऑमण्ड-पॉवेल, लुशियन पाई, सिडनी दर्बा, डेविड ऐप्टर, डेविड ईस्टन आदि राजनीतिक विद्वानों ने अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया और तुलनात्मक राजनीति में राजनीतिक संस्कृति, राजनीतिक विकास, राजनीतिक आधुनिकीकरण, संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक, मार्क्सवादी-लेनिनवादी व्यवस्था आदि नए उपागमों का आगमन हुआ।

आधुनिक दृष्टिकोण की आवश्यकता
(Need of Modern Approaches)

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद उत्पन्न जटिल राजनीतिक परिस्थितियों ने परम्परागत उपागमों की सार्थकता पर प्रश्नचिह्न लगा दिया और राजनीतिक व्यवहार के नए प्रतिमानों को जन्म दिया। ऑमण्ड व पावेल ने द्वितीय विश्व युद्ध के बाद उत्पन्न जटिल राजनीतिक व्यवहार के घटनाक्रम का विश्लेषण किया और परम्परागत उपागम के विरुद्ध आधुनिक उपागमों के आगमन व प्रचलन के कारणों की व्याख्या की। उसने बताया कि आधुनिक उपागमों को अपनाए जाने के पीछे तीन प्रमुख कारण हैं :- (i) एशिया, अफ्रीका तथा मध्यपूर्व में नए प्रभुसत्तासम्पन्न राष्ट्रों का उदय (ii) अटलांटिक समुदाय के राष्ट्रों का अन्त और अन्तर्राष्ट्रीय शक्ति व प्रभाव का उपनिवेशों व अर्द्ध-उपनिवेशी क्षेत्रों में प्रसार व विस्तार तथा (iii) साम्यवाद का राष्ट्रीय राजनीति व्यवस्था की संरचना व अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था को बदलने के संघर्ष में एक शक्तिशाली प्रतियोगी के रूप में उभरना। इन बदली हुई परिस्थितियों को समझने में परम्परागत दृष्टिकोण अधिक उपयोगी नहीं रहा और तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन को अधिक वास्तविक स्वरूप प्रदान करने के लिए नवीन उपागमों की आवश्यकता अनुभव हुई। विश्व में सैनिक शासनों, साम्यवादी व पूंजीवादी विचारधाराओं ने परम्परागत दृष्टिकोण को चुनौती देकर उसे अनावश्यक बना दिया। अब तुलनात्मक अध्ययन के लिए गैर-राजनीतिक तत्वों-हित व दबाव समूहों, मतदान व्यवहार, लोकमत आदि तथा गैर-लोकतन्त्रीय राजनीतिक व्यवस्थाओं और गैर-पाश्चात्य देशों की राज-व्यवस्थाओं को भी आवश्यक समझा जाने लगा। इसी प्रवृति के चलते आधुनिक उपागमों का विकास हुआ।

आधुनिक उपागम या दृष्टिकोण की विशेषताएं
(Features of Modern Approaches)

आधुनिक उपागम की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं :-

(1) विश्लेषणात्मक एवं व्याख्यात्मक (Analytical and Explanatory) :- आधुनिक दृष्टिकोण परम्परागत दृष्टिकोण की तरह वर्णनात्मक न होकर व्याख्यात्मक है। इस दृष्टिकोण के विचारकों ने विश्लेषणात्मक पद्धति का प्रयोग करके प्रशासनिक तथा राजनीतिक प्रक्रियाओं को समझने का प्रयास किया है। इन विचारकों ने औपचारिक संस्थाओं की बजाय राजनीतिक प्रक्रियाओं तथा मनुष्यों के राजनीतिक व्यवहार के विश्लेषण पर ही अधिक जोर दिया है। डेविड ईस्टन तथा मैक्स वेबर आदि

विद्वानों ने व्यववहारवादी दृष्टिकोण अपनाया है। इन विद्वानों ने जो अवधारणाएं प्रस्तुत की हैं उनके आधार पर ही कुछ परिकल्पनाओं का निर्माण करके उनको सत्य सिद्ध करने के लिए परीक्षण किए जाते हैं, आंकड़े एकत्रित किये जाते हैं और उनका विश्लेषण करके सामान्यीकरण किए जाते हैं। इस दृष्टिकोण के माध्यम से उन संरचनाओं का ज्ञान प्राप्त कर लिया जाता है जिनके द्वारा राजनीतिक व्यवस्था का संचालन होता है। इसके लिए तुलनात्मक राजनीति में विश्लेषण पद्धति का प्रयोग दिन-प्रतिदिन बढ़ रहा है।

(2) अनुभववादी (Empirical) :- आधुनिक उपागम के अन्तर्गत राजनीतिक विद्वानों ने कुछ ऐसी अवधारणाएं विकसित की हैं कि उनके आधार पर राजनीतिक व्यवहार का अनुभवात्मक विश्लेषण किया जा सकता है। परम्परागत राजनीतिक विचारकों का लक्ष्य केवल राजनीतिक संगठनों के आदर्श रूप की विवेचना करना था। इसके लिए वे राज्य व व्यक्ति के पारस्परिक सम्बन्धों के विषय में ऐसे सुझाव देते थे जिनसे व्यक्तिगत स्वतन्त्रता तथा राज्य के अधिकतम व्यवस्था का लक्ष्य प्राप्त हो। आधुनिक राजनीतिक विचार परम्परागत विचारकों के आदर्शी दृष्टिकोण को केवल मतवाद कहते हैं। उनका कहना है कि परम्परागत दृष्टिकोण का विज्ञान से कोई सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि इसमें अनुभवात्मक तथ्यों का अभाव है। आधुनिक दृष्टिकोण में विश्वास रखने वाले सभी विचारक अनुभववादी अध्ययन पर बल देते हैं। "प्रजातन्त्र का अभिजनवादी सिद्धान्त" अनुभवात्मक विश्लेषण पर ही आधारित है। इस सिद्धान्त के अनुसार लोकतन्त्र जनता का शासन न होकर जनता के नाम पर अभिजन वर्ग का शासन है, यही अनुभवात्मक सिद्धान्त की सच्चाई है।

(3) वैज्ञानिक व व्यवस्थित अध्ययन (Scientific and Systematic Study) :- आधुनिक उपागम के अन्तर्गत प्रत्येक राजनीतिक घटना के कारणों पर व्यापकता से विचार विमर्श किया जाता है। इसमें इस बात पर जोर दिया जाता है कि राजनीतिक व्यवहार ऐसा क्यों होता है। इसलिए इसमें कार्य-कारण और क्रिया-प्रक्रिया का सम्बन्ध स्थापित करने के प्रयास किए जाते हैं। इसमें सामान्यीकरण की तह तक पहुंचने के लिए परिकल्पनाओं का निर्माण करके, उनकी सत्यता जांचने के लिए तथ्यों व आंकड़ों का संग्रह किया जाता है और उनका विश्लेषण करके सामान्यीकरण के लिए तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। इसके लिए व्यवस्थित रूप में आधुनिक वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग किया जाता है।

(4) आधुनिक दृष्टिकोण का क्षेत्र व्यापक है (Scope of Modern Approach is Extensive) :- आधुनिक दृष्टिकोण के अन्तर्गत राज्य व सरकार के औपचारिक संगठनों के साथ-साथ उन सभी अनौपचारिक तत्वों व अनौपचारिक संगठनों का भी अध्ययन किया जाता है जो राजनीतिक संस्थाओं व उनके व्यवहार को प्रभावित करते हैं। इसके लिए राजनीतिक दलों, जनमत, मतदान व्यवहार, हित व दबाव समूहों आदि का अध्ययन किया जाता है। इसके अतिरिक्त आधुनिक दृष्टिकोण में गैर-प्रजातन्त्रीय तथा गैर-पाश्चात्य राजनीतिक व्यवस्थाओं का अध्ययन भी किया जाता है। आधुनिक दृष्टिकोण में प्रजातन्त्रीय, निरंकुश, पूंजीवादी, समाजवादी आदि सभी तरह की राज-व्यवस्थाओं का अध्ययन किया जाता है। इसी कारण इसकी प्रकृति व क्षेत्र परम्परागत उपागम से विस्तृत है।

(5) अन्तर्विषयक अध्ययन (Inter-Disciplinary Study) :- आधुनिक उपागम के अन्तर्गत इस बात को प्रमुखता दी जाती है कि राजनीतिक क्रियाओं पर सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक तत्वों व परिस्थितियों का प्रभाव अवश्य पड़ता है। इसी कारण आधुनिक उपागम के विद्वानों ने समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान आदि समाज विद्वानों से काफी कुछ ग्रहण किया है। आज सभी समाज विज्ञान एक दूसरे के इतने करीब आ चुके हैं कि उनमें प्रयुक्त अध्ययन पद्धतियों का पता लगाना कठिन है कि कौन सी पद्धति किस शास्त्र से सम्बन्ध रखती है। आज तुलनात्मक अध्ययन के लिए अन्य सामाजिक विज्ञानों की पद्धतियों का खुला प्रयोग हो रहा है। इसी कारण तुलनात्मक राजनीति अन्तर-अनुशासनात्मक अध्ययन पद्धति की तरफ अग्रसर है।

(6) मूल्य-मुक्त बनाम मूल्य सापेक्ष अध्ययन (Value-Free Vs Value Oriented Study) :- उत्तर-व्यवहारवाद के आगमन से पहले सभी राजनीतिक विद्वान तुलनात्मक राजनीति में मूल्य-निरपेक्ष अध्ययन पर जोर देते थे, लेकिन उत्तर-व्यवहारवाद के आगमन पर तुलनात्मक राजनीति में आधुनिक उपागमों का प्रयोग करते समय इस बात पर जोर दिया जाने लगा कि राजनीति-विज्ञान में वस्तुनिष्ठ अध्ययन की परम्परा ही राजनीतिक सिद्धान्त के पतन का कारण रही है। उनका कहना है कि व्यवहारवादी विद्वानों ने मूल्य-मुक्त अध्ययन करके तुलनात्मक राजनीति को वस्तुनिष्ठता से परिपूर्ण कर दिया है। व्यवहारवादी अध्ययन में 'चाहिए' की अपेक्षा 'है' पर अधिक जोर है। इसी कारण राजनीतिक व्यवहार के बारे में किसी सामन्य सिद्धान्त का निर्माण करने में सफलता हाथ नहीं लगी है। इस कमी को दूर करने के लिए उत्तर-व्यवहारवादी मूल्य-सापेक्ष अध्ययन पर जोर देते हैं। ईस्टन, डाहल आदि विद्वानों के अध्ययन मूल्य-सापेक्ष हैं।

(7) व्यवस्थामूलक अध्ययन (System-Oriented Study) :- आधुनिक दृष्टिकोण संविधानतन्त्र की अपेक्षा सम्पूर्ण राजनीतिक व्यवस्था को ही अपने अध्ययन का केन्द्र बनाता है। इसमें व्यवस्था को ही आधार मानकर राजनीतिक प्रक्रियाओं और सस्थाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। इस दृष्टिकोण के समर्थकों का मानना है कि राजनीतिक संस्थाओं के ढांचे तो कृत्रिम हो सकते हैं। यह जरूरी नहीं है कि जो सिद्धान्त में है, व्यवहार में भी वही हो। इसलिए राजनीतिक संस्थाओं का व्यवहार और प्रक्रियाओं का अध्ययन ही वास्तविक व समस्या-समाधानात्मक हो सकता है। इस दृष्टिकोण के विद्वान राजनीतिक व्यवस्था के मूल में राज्य सत्ता, शक्ति का एकाधिकार तथा शक्ति-तन्त्र को ही व्यवस्था की शक्ति मानते हैं। इन्हीं शक्तियों के आधार पर ही कोई भी राजनैतिक व्यवस्था अन्य व्यवस्थाओं से भिन्न होती है और इसी से राजनीतिक व्यवस्था की वैधता की परीक्षा होती है। इसी आधार पर ही राज-व्यवस्थाओं का वर्गीकरण किया जाता है जो राजनीतिक व्यवस्थाओं की समानताओं व असमानताओं को समझने में मदद करता है। इसी से तुलनात्मक अध्ययन को गति व दिशा मिलती है।

(8) संरचनात्मक-कार्यात्मक अध्ययन पर जोर (Emphasis on Structural Functional Study) :- आधुनिक दृष्टिकोण के अन्तर्गत किसी भी राजनीतिक व्यवस्था का अध्ययन उसकी संरचना व प्रकार्यों के सन्दर्भ में ही किया जाता है। इस दृष्टिकोण के विचारकों का मानना है कि किसी भी राजनीतिक व्यवस्था की संरचना और इसके द्वारा सम्पादित किए जाने वाले कार्यों में गहरा सम्बन्ध होता है। लोकतान्त्रिक व्यवस्थाएं निरंकुश व सर्वसत्ताधिकारवादी व्यवस्थाओं से संरचना में ही भिन्न होती हैं। इसी कारण उनके द्वारा सम्पादित किए जाने वाले कार्यों की प्रकृति में भी अन्तर आ जाता है। इसलिए आधुनिक दृष्टिकोण में राजनीतिक संस्थाओं व उनके व्यवहार की वास्तविक प्रकृति को जानने के लिए संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक अध्ययन पर जोर दिया जाता है।

(9) सामाजिक सन्दर्भी अनुष्ठित अध्ययन पर जोर (Emphasis on Social Context-Oriented Study) :- आधुनिक दृष्टिकोण राजनीतिक समस्याओं के साथ-साथ सामाजिक समस्याओं के प्रति भी संवेदनशील है। इसलिए यह राजनीतिक प्रक्रियाओं का अध्ययन सामाजिक शक्तियों की अन्तर्क्रिया के साथ मिलाकर ही करता है। यह परम्परागत दृष्टिकोण के विपरीत-गैर राजनीतिक तत्वों, जो राजनीतिक संस्थागत व्यवहार को प्रभावित करते हैं, का अध्ययन भी आधुनिक तरीकों से करने पर बल देता है। इस दृष्टिकोण की मान्यता है कि राजनीतिक व्यवहार सामाजिक क्रियाओं रीति-रिवाजों और परम्पराओं पर ही आधारित होता है। राजनीतिक संस्थाओं का कार्य संचालन भी सामाजिक शक्तियों से अवश्य प्रभावित होता है। इसी कारण आज तुलनात्मक राजनीति अन्तर-अनुशासनात्मक दिशा में आगे बढ़ रही है और सामाजिक सन्दर्भी अनुष्ठित अध्ययन को बल मिल रहा है।

आधुनिक दृष्टिकोण का आलोचनात्मक मूल्यांकन

(A Critical Evaluation of Modern Approaches)

आधुनिक दृष्टिकोण के आगमन से तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन में नई-नई अवधारणाओं व प्रविधियों का प्रचलन बढ़ा है और इसके विषय-क्षेत्र व प्रकृति में जटिलता आई है। आज तुलनात्मक राजनीति का विषय क्षेत्र इतना विस्तृत हो गया है कि यह निर्णय कर पाना कठिन है कि इसके अन्तर्गत कौनसे विषय शामिल किए जायें और कौन से छोड़े जायें। आज तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन में अनेक उपागमों का प्रचलन है। तुलनात्मक राजनीति का अध्ययन करते समय प्रयोग की जाने वाली नवीन अवधारणाएं इतनी अस्पष्ट व बोझिल लगती हैं कि आधुनिक उपागम को अपनी प्रासंगिकता पर ही सन्देह होने लगता है। आज राजनीतिक संस्कृति, राजनीतिक समाजीकरण, राजनीतिक विकास आदि अवधारणाओं पर ही राजनीतिक विद्वान मतैक्य नहीं रख पा रहे हैं। आज तुलनात्मक अध्ययन विकासशील देशों की राजनीतिक-व्यवस्थाओं पर ही अधिक ध्यान केन्द्रित करने के कारण एकपक्षीय व बोझिल सा लगने लगा है। विकासशील देशों की संक्रमणकालीन राजनीतिक व्यवस्थाओं व राजनीतिक अस्थिरता के वातावरण ने आधुनिक दृष्टिकोण के सामने नई चुनौतियां पेश कर दी हैं। आज राजनीतिक विद्वान यह निर्णय लेने में भी असहाय सा महसूस कर रहे हैं कि विकासशील देशों की राज-व्यवस्थाओं का अध्ययन करने के लिए कौनसा उपागम सही रहेगा। आज राजनीतिक व्यवहार इतना अधिक जटिल हो गया है कि सामान्यीकरण का मार्ग ही अवरुद्ध हो रहा है। आज तुलनात्मक राजनीति में मूल्य-;निरपेक्ष बनाम मूल्य-सापेक्षता का प्रश्न मुंह बाए खड़ा है। इसका समाधान करना ही एक प्राथमिकता है।

इस विवेचन से हमें यह अर्थ नहीं निकाल लेना चाहिए कि आधुनिक उपागम की तुलनात्मक राजनीति में कोई उपादेयता नही

है। आधुनिक उपागम ने तुलनात्मक अध्ययन को जो व्यवस्थित व वैज्ञानिक आधार प्रदान किया है, वह उसका महत्वपूर्ण योगदान है। इस उपागम ने राजनीतिक व्यवहार के निर्धारक गैर-राजनीतिक तत्वों को भी तुलनात्मक अध्ययन में शामिल करके सामान्य सिद्धान्त निर्माण की दिशा में उन्नति की है। इस उपागम ने तुलनात्मक अध्ययन को पाश्चात्य राजनीतिक व्यवस्थाओं के अध्ययन की परिधि से निकालकर तृतीय विश्व के देशों तथा गैर-पाश्चात्या देशों में लाकर रख दिया है। इस दृष्टिकोण द्वारा प्रयुक्त नवीन अध्ययन विधियों व अवधारणाओं ने तुलनात्मक राजनीति को व्यापक आधार प्रदान किया है। इस उपागम के आगमन से तुलनात्मक राजनीति को परम्परागत उपागम की कमियों से छुटकारा मिला है। यद्यपि इस उपागम में कुछ दोष अवश्य हैं, यदि उन्हें दूर कर लिया जाए तो यह तुलनात्मक राजनीति को एक स्वतन्त्र अनुशासन के रूप में विकसित होने में मदद देगा और आधुनिक उपागम के महत्व में भी वृद्धि होगी।

तुलनात्मक शासन व राजनीति के अध्ययन के प्रमुख आधुनिक उपागम या दृष्टिकोण

(The Major Modern Approaches to the Study of Comparative Govt. and Politics)

तुलनात्मक राजनीति के प्रमुख आधुनिक उपागम निम्नलिखित हैं :-

(i) व्यवस्था विश्लेषण दृष्टिकोण (System Analysis Approach)

(ii) संरचनात्मक-कार्यात्मक दृष्टिकोण (Structural-Functional Approach)

(iii) मार्क्सवादी-लेनिनवादी दृष्टिकोण (Marxist-Leninst Approach)

(I) व्यवस्था विश्लेषण दृष्टिकोण

(System Analysis Approach)

व्यवस्था विश्लेषण सिद्धान्त का आगमन द्वितीय विश्व युद्ध के बाद व्यवहारवादी विचारकों के प्रयासों के परिणामस्वरूप अन्य समाजशास्त्रों के रास्ते से राजनीति-शास्त्र में हुआ। राजनीति विज्ञान में इस सिद्धान्त का सर्वप्रथम प्रयोग डेविड ईस्टन ने किया। ईस्टन ने अपने इस सिद्धान्त को जिस पुस्तक में प्रतिपादित किया है उसका नाम 'The Political System' (1953) है। उसके बाद भी ईस्टन ने अपनी 1965 में प्रकाशित दो पुस्तकों 'A Framework for Political Analysis' तथा 'A Systems Analysis of Political Life" में इस सिद्धान्त का विस्तार से वर्णन किया। ईस्टन ने अपने इस सिद्धान्त को 'व्यवस्था' की अवधारणा पर आधारित किया और बाद में इसी आधार पर आगत-निर्गत उपागम का विकास किया। इस सिद्धान्त के आगमन से तुलनात्मक राजनीति को न केवल वैज्ञानिक बनाने में सहायता मिली बल्कि राजनीतिक व्यवहार के बारे में सर्वव्यापी नहीं तो कम से कम मध्य-स्तरीय सिद्धन्तों के निर्माण का मार्ग अवश्य प्रशस्त हुआ।

राजनीतिक व्यवस्था विश्लेषण राजनीतिक व्यवस्था की धारणा पर आधारित है। कुछ विद्वानों ने 'व्यवस्था' शब्द के स्थान पर पद्धति या प्रणाली शब्दों का भी प्रयोग किया है। इससे कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता। आज राजनीतिक विद्वान पद्धति या प्रणाली के स्थान पर व्यवस्था शब्द को ही प्राथमिकता देते हैं, क्योंकि राजनीति विज्ञान में प्राकृतिक विज्ञानों की शब्दावली ज्यों की त्यों प्रयुक्त नहीं हो सकती। इसी कारण ईस्टन ने व्यवस्था शब्द को ही प्रयोग किया। राजनीतिक व्यवस्था विश्लेषण के आगमन से पहले राजनीतिक व्यवस्था का सीमित अर्थों में ही प्रयोग होता था। इसके लिए राष्ट्र, सरकार या राज्य जैसे शब्दों का प्रचलन था। लेकिन इस सिद्धान्त के आगमन से अब शासन की संरचनाओं, राजनीतिक प्रक्रियाओं, गैर-राजनीतिक तत्वों-राजनीतिक दलों, लोकमत, दबाव व हित समूह आदि का अलग-अलग अध्ययन न करके सम्पूर्ण राजनीतिक व्यवस्था के सन्दर्भ में अध्ययन किया जाता है।

राजनीतिक व्यवस्था का अर्थ

(Meaning of Political System)

राजनीतिक व्यवस्था की अवधारणा सामान्य व्यवस्था सिद्धान्त की संकल्पना से सम्बन्धित है। सामान्य व्यवस्था सिद्धान्त विभिन्न व्यवस्थाओं में कुछ मौलिक समानताएं तलाश कर अपना आधार कायम करता है। यद्यपि कई बार सामान्य व्यवस्था सिद्धान्त और व्यवस्था विश्लेषण को एक ही मान लिया जाता है, लेकिन दोनों में परस्पर सम्बन्ध होते हुए भी अन्तर है। सामान्य व्यवस्था सिद्धान्त से निकालने के बाद भी यह सामाजिक विज्ञानों के लिए बहुत विस्तृत व महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। इसमें प्रयुक्त 'व्यवस्था'

शब्द विशिष्टता का बोध कराता है और एक राजनीतिक व्यवस्था को दूसरे से पृथक करता है। यहां 'व्यवस्था' उस अवस्था का बोध कराती है जिसमें अलग-अलग प्रकार की अन्तःक्रियाएं घटित होती हैं। राजनीतिक व्यवस्था को सर्वप्रथम डेविड ईस्टन ने ही परिभाषित करने का प्रयास किया है। 1953 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'The Political System' में ईस्टन ने लिखा है-"किसी समाज में पारस्परिक क्रियाओं की ऐसी व्यवस्था को, जिससे उस समाज में बाध्यकारी अथवा अधिकारपूर्ण नीति निर्धारित होती है, राजनीतिक व्यवस्था कहा जाता है।" लेकिन इस परिभाषा से राजनीतिक व्यवस्था के मूल लक्षणों का पता नहीं चलता है। अपनी इस त्रुटि को दूर करते हुए ईस्टन ने आगे चलकर राजनीतिक व्यवस्था स्वयं में परिपूर्ण सत्ता है जो इस वातावरण या परिवेश, जिसमें वह घिरी हुई होती है और जिसके अन्तर्गत वह परिचालित होती है, स्पष्ट तौर पर अलग रहती है। ऑमण्ड व पॉविल ने राजनीतिक व्यवस्था को परिभाषित करते हुए लिखा है-"राजनीतिक व्यवस्था से इसके अंगों की अन्तनिर्भरता और इसके पर्यावरण में किसी न किसी प्रकार की सीमा का बोध होता है।" यहां अन्तनिर्भरता से तात्पर्य यह है कि यदि व्यवस्था के किसी भी अंग या भाग में कोई बदलाव आता है तो उसका प्रभाव अन्य अंगों पर भी पड़ता है।

राजनीतिक व्यवस्था के बारे में दी गई परिभाषाओं से निष्कर्ष निकलता है कि राजनीतिक व्यवस्था का सम्बन्ध न्यायसंगत शारीरिक उत्पीड़न से है। ईस्टन की दृष्टि से यह मूल्यों का सत्तात्मक आवंटन करती है। ऑमण्ड व पावेल के अनुसार राजनीतिक व्यवस्था को केवल सरकार के तीनों अंगों का ही बोध नहीं कराती बल्कि इसमें समस्त प्रकार की संरचनाएं शामिल होती हैं। ऑमण्ड व पावेल की दृष्टि में न्यायसंगत शक्ति ही वह डोर है जो राजनीतिक व्यवस्था को सम्पूर्ण ताने बाने में बांधे रहती है। राजनीतिक व्यवस्था को एक ऐसी उपव्यवस्था माना जा सकता है जिसके सारे भाग आपस में एक माला की तरह गुंथे हुए हैं। यह पर्यावरण से प्रभावित भी होती है, लेकिन फिर भी उसकी दास नहीं होती। यह प्रत्येक स्वतन्त्र समाज के कार्यों की वह व्यवस्था है जो शक्ति के न्यायसंगत प्रयोग द्वारा समाज में कानून व्यवस्था बनाए रखने तथा समाज को बदलने की शक्ति रखती है। प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था के अपने कुछ अलग लक्षण होते हैं जो उसे दूसरी व्यवस्थाओं से अलग करते हैं। ये लक्षण निम्नलिखित हैं :-

(i) न्यायसंगत शारीरिक उत्पीडन (Legitimate Physical Coercion) :- राजनीतिक व्यवस्था में न्यायपूर्ण प्रतिबन्धों, दण्ड देने की शक्ति तथा लागू करने की शक्ति की व्यवस्था ही शारीरिक शक्ति से सम्बन्ध रखती है। शारीरिक शक्ति को न्यायपूर्ण बनाने के लिए प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था को कुछ राजनीतिक तथा गैर-राजनीतिक संरचनाऐं होती हैं। न्यायसंगतता का गुण आते ही राजनीतिक व्यवस्था द्वारा शक्ति का प्रयोग वैध मान लिया जाता है। ऐसा समाजिक कल्याण तथा राष्ट्रीय हित के उद्देश्यों के दृष्टिगत ही किया जाता है।

(ii) अंगों की पारस्परिक अन्तनिर्भरता (Inter-Dependence of Parts) :- प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था के अगों में सावयविक एकता पाई जाती है। राजनीतिक व्यवस्था रूपी शरीर विभिन्न अंगों से निर्मित होता है। इसमें कार्यपालिका, विधानपालिका तथा न्यायपालिका आपस में शरीर के अंगों की तरह गुंथी हुई होती है। यदि व्यवस्था के किसी एक भी भाग में कोई परिवर्तन आता है तो उसका प्रभाव दूसरे अंग पर भी पड़ता है। यह राजनीतिक व्यवस्था का विशिष्ट लक्षण होता है।

(iii) सीमा का विचार (Notion of Boundry) :- प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था की अपनी सीमा होती है जिसके आधार पर उसे सर्वसत्ताधिकारवादी, लोकतन्त्रीय, सैनिकवादी आदि नामों से पुकारा जाता है। इस सीमा निर्धारण में जनता की कार्यात्मक भूमिकाएं महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। जिस व्यवस्था में लोगों को राजनीतिक सहभागिता के भरपूर अवसर मिलते हैं, वह प्रजातन्त्रीय तथा कम अवसरों वाली व्यवस्था सर्वसत्तारधिकारवादी व्यवस्था कहलाती है। सीमा के आधार पर ही सभी राजनीतिक व्यवस्थाएं एक दूसरे से भिन्न होती हैं।

राजनीतिक व्यवस्था की विशेषताएं

(Features of Political Systems)

व्यवस्था विश्लेषण उपागम का विश्लेषण करने के बाद राजनीतिक विचारकों ने राजनीतिक व्यवस्था की कुछ विशेषतायें बताई हैं जो निम्न प्रकार से हैं :-

(1) राजनीतिक स्त्रोतों का असमान वितरण (Uneven Control of Political Resources) :- राजनीतिक स्त्रोत वह साधन है जिसके द्वारा एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करता है। धन, भोजन, शक्ति की धमकी, सामाजिक स्तर, विधि-निर्माण के अधिकार, मताधिकार आदि ऐसे ही स्त्रोत हैं। इन सभी स्त्रोतों का प्रत्येक राजनीतिक समाज में असमान वितरण

होता है। इसमें अन्तर का कारण कार्यों के विशेषीकरण भौगोलिक अन्तर, लोगों के लक्षणों व प्रेरकों में अन्तर तथा लोगों के कार्य को करने में पहल या प्राथमिकता में अन्तर के अन्तर्गत खोजा जा सकता है।

(2) राजनीतिक प्रभाव की खोज (The Quest for Political Influence) :- प्रत्येक व्यक्ति की सदैव यह इच्छा रहती है कि उसका समाज में रजानीतिक प्रभाव बढ़े। इसलिए वह अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए सरकारी नीतियों, नियमों और निर्णयों को प्रभावित करने के प्रयास करता रहता है। सभी राजनीतिक महत्कांक्षा रखने वाले व्यक्ति अपना राजनीतिक प्रभाव बढ़ाने के लिये हर सम्भव प्रयास करते हैं और राजनीतिक प्रभाव का निश्चित स्तर प्राप्त हो जाने पर वे अपने स्वार्थपूर्ण लक्ष्यों को आसानी से प्राप्त कर लेते हैं।

(3) राजनीतिक प्रभाव का असमान वितरण (Uneven Distribution of Political Influence) :- लोगों के पास राजनीतिक संसाधनों की मात्रा भिन्न होने के कारण राजनीतिक प्रभाव का वितरण भी असमान हो जाता है। जिस व्यक्ति की राजनीति के प्रति रुचि अधिक होती है और उसके पास पर्याप्त आर्थिक साधन होते हैं तो उसका राजनीतिक प्रभाव अवश्य ही अन्य से अधिक होता है। राजनीतिक प्रभाव के असमान वितरण का प्रमुख कारण राजनीतिक स्रोतों का असमान वितरण, व्यक्तियों की कुशलता में अन्तर तथा राजनीतिक लक्ष्यों के लिए प्रयोग किए जाने वाले साधनों में अन्तर के कारणों में तलाश किया जा सकता है।

(4) संघर्षपूर्ण उद्देश्यों का हल (Resolution of Conflicting Aims) :- प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था अपने लोगों के उद्देश्यों व हितों में संतुलन कायम रखने का प्रयास करती है ताकि वह स्वयं को संघर्ष तथा अराजकता की स्थिति से बचा सके। इसके लिये वह समाज की मांगों में अधिकाधिक संतुलन पैदा करने के लिए न्यायपूर्ण वितरण व्यवस्था कायम करती है और यदि आवश्यकता पड़े तो बाध्यकारी शक्ति का प्रयोग भी करती है।

(5) औचित्यपूर्णता की प्राप्ति (The Acquisition of Legitimacy) :- प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था अपनी नीतियों व निर्णयों को वैधता प्रदान करने के लिए परस्पर विरोधी हितों में सामंजस्य पैदा करती है और आवश्यकता पड़ने पर शक्ति का न्यायपूर्ण प्रयोग भी करती है। प्रजातन्त्र में जनता का विकास का विश्वास ही राजनीतिक व्यवस्था को इस लक्ष्य की प्राप्ति में मदद करता है। सर्वसत्ताधिकारवादी राजनीतिक व्यवस्था में दण्ड-शक्ति का भय या कर्तव्य पालन ही औचित्यपूर्णता का आधार होता है।

(6) विचारधारा का विकास (The Development of Ideology) :- प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था अपने कार्यों के प्रति जनता का विश्वास प्राप्त करने तथा जनता में विश्वास पैदा करने के लिये अपने विचारधारा रूपी शस्त्र का प्रयोग करते हैं। यह विचारधारा ही वह विचारधारा है जो राजनीतिक व्यवस्था को सम्पूर्ण रूप में बांधे रखता है। यही दलों के निर्माण का आधार है। सर्वसत्ताधिकारवादी व्यवस्थाओं में तो विचारधारा की भूमिका बहुत अधिक होती है। विचारधारा के आधार पर राजनीतिक व्यवस्थाओं की प्रकृति का भी निर्धारण होता है।

(7) अन्य राजनीतिक व्यवस्थाओं का प्रभाव (Influence of other Political Systems) :- आज समस्त विश्व एक वैश्विक गांव (Global Village) बन चुका है। कोई भी देश और कोई भी समाज आज एक दूसरे से अपरिचित और अप्रभावित नहीं है। आज अन्तर्राष्ट्रवाद की भावना का विकास होना एक आम बात है। कोई भी देश दूसरे की उपेक्षा करने का खतरा मोल लेना नहीं चाहता। आज राजनीतिक व्यवस्थाओं की अन्तनिर्भरता ने राष्ट्रवाद के सिद्धान्त का उल्लंघन किया है। इसमें स्वाभाविक ही यह बात महत्वपूर्ण बन जाती है कि प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था दूसरी व्यवस्थाओं से प्रभावित भी होती है और उन्हें प्रभावित भी करती है।

व्यवस्था विश्लेषण की डेविड ईस्टन तथा ऑमण्ड-पॉवेल द्वारा व्यवस्था

(Explanation of System Analysis by David Easton and Almond-Powell)

डेविड ईस्टन को ही व्यवस्था विश्लेषण दृष्टिकोण का प्रामाणिक व्याख्याकार माना जाता है। उसके बाद ऑमण्ड-पॉवेल ने भी इसकी व्याख्या प्रस्तुत की है। डेविड ईस्टन की व्याख्या उसकी पुस्तकों 'The Political System', 'A Framework for Political Analysis' तथा 'A System Analysis of Political Life' में उपलब्ध है। इन पुस्तकों के अतिरिक्त भी ईस्टन ने सैंकड़ों लेख व शोध पत्र प्रकाशित कराए हैं जिनमें व्यवस्था विश्लेषण का विकास किया गया है। ईस्टन ने राजनीतिक विद्वान होने के नाते अपना समस्त ध्यान एक सामान्य राजनीतिक-सिद्धान्त का निर्माण करने में ही लगाया है और अपना आगत-निर्गत (Input-Output) दृष्टिकोण विकसित किया है। यंग ने इसे एक बड़ा लोकप्रिय दृष्टिकोण माना है जो एक राजनीतिक विद्वान

की मौलिक दृष्टि का परिणाम है। यह दृष्टिकोण राजनीति के सजनात्मक पक्ष का ही पोषण करता है और विशिष्ट समस्याओं या व्यवस्थाओं का विश्लेषण प्रस्तुत नहीं करता। अपने आगत-निर्गत दृष्टिकोण के माध्यम से ईस्टन एक ऐसा अवधारणात्मक विचानबद्ध या रूपरेखा (Framework) प्रस्तुत करता है जो उसके अनुसार समस्त राजनीतिक जीवन के सामान्य सिद्धान्त के रूप में प्रकट होने की सम्भावनाएं रखता है।

ईस्टन ने राजनीतिक व्यवस्था की व्याख्या करते हुए लिखा है कि राजनीतिक व्यवस्था सामाजिक व्यवस्था की एक महत्वपूर्ण उप-व्यवस्था है। यह खुली एवं स्वयं को समंजित (Adjust) करने वाली व्यवस्था है जो एक वातावरण में काम करती है। यह वातावरण या पर्यावरण अन्तःसमाजीय और बाह्य समाजीय दो तरह का होता है। हर राजनीतिक व्यवस्था के दो विशेष अनुलक्षण होते हैं। प्रथम तो यह आदान-प्रदान की प्रक्रिया है जो पर्यावरण तथा उसके अन्दर ही चलती है। दूसरी, यह उत्पातों व दबावों से व्यवस्था पर्यावरण से आते हैं जो राजनीतिक प्रक्रिया के अनुकूल भी हो सकते हैं और विपरीत भी। इस तरह प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था कार्य-निष्पादन की एक ऐसी व्यवस्था है जो पर्यावरण तथा व्यवस्था के भीतर उत्पन्न दबावों या उत्पातों के वशीभूत रहकर ही कार्य करती है। राजनीतिक व्यवस्था के तीन संघटक (Components) - राजनीतिक व्यवस्था के निवेश, मांगों का रूपान्तरण तथा राजनीतिक व्यवस्था के निर्गत हैं।

(I) निवेश (*Input*) :- यह राजनीतिक व्यवस्था की ओर अन्दर आने वाली सामग्री है। ईस्टन का मानना है कि राजनीतिक व्यवस्था ऐसे वातावरण में कार्य करती है जहां इसके ऊपर सामाजिक, राजनीतिक, राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय प्रभाव पड़ते रहते हैं। इस पर समाज में रहने वाली विभिन्न जातियों का भी प्रभाव पड़ सकता है। यह प्रभाव ही निवेश है। दूसरे शब्दों में निवेश पर्यावरण-जनित सभी दबावों, प्रभावों, संकटों, मांगों, आन्दोलनों आदि को कहा जाता है जो व्यवस्था को किसी न किसी तरह प्रभावित-परिवर्तित या संशोधित करते रहते हैं। व्यवस्था अपनी क्षमतानुसार इनसे निपटने का प्रयास करती रहती है। निवेश दो प्रकार के होते हैं :- (i) मांगें (Demands), (ii) समर्थन (Support)। जब पर्यावरण या जनसमाज द्वारा राजनीतिक व्यवस्था से कुछ कार्य दायित्व, विधि-निर्माण सेवाएं, आशापूर्ति, प्रदर्शन आदि कराए जाते हैं तो इन्हें मांगें कहा जाता है। ये मांगें प्रायः सामूहिक एवं सार्वजनिक प्रकृति की होती हैं। इन मांगों पर मात्रा, विषय वस्तु, तीव्रता, स्त्रोत एवं प्रकार की दृष्टि से विचार किया जाता है क्योंकि व्यवस्था पर्यावरण से प्राप्त मांगों को यथावत स्वरूप में स्वीकार करके उन्हें निर्गत नहीं बनाती। मांगों को निर्गतों में बदलने के लिए एक विशेष प्रक्रिया अपनाई जाती है। इसके लिए राजनीतिक व्यवस्था नियामक तन्त्रों की स्थापना करती है। केवल वही मांगें निर्गतों का रूप ले पाती है जो जनकल्याण के लिए अधिक महत्व की है या शासक वर्ग की इच्छा की अभिव्यक्ति हैं। इस प्रक्रिया में राजनीतिक संचार की संरचनाएं महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं।

निवेशन का दूसरा पक्ष समर्थन है। यह राजनीतिक वस्तुओं की तरफ उन्मुख होता है। व्यवस्था और पर्यावरण के बीच मांगों को निकाल देने के बाद जो कुछ बचता है वही समर्थन निवेश है। यह सकारात्मक, नकारात्मक, अतिवृतात्मक या सक्रिय तथा खुला अर्थात् प्रकट एवं अप्रकट हो सकता है। राजनीतिक समुदाय के प्रति समर्थन का अर्थ उसके सामान्य स्वरूप एवं मूल्यों को स्वीकार करता है। यह उसमें प्रचलित राजनीतिक एवं अराजनीतिक के बीच श्रम-विभाजन को स्वीकार कराता है। शासन व्यवस्था के प्रति समर्थन का अर्थ उसके सामान्य स्वरूप एवं मूल्यों को स्वीकार करना है। राजनीतिक अधिकारियों के प्रति समर्थन में उनके प्रति निष्ठा एवं आदरभाव, आज्ञापालन आदि अनुक्रियाएं शामिल होती हैं। समर्थन का उद्देश्य सत्तारूढ़ अधिकारियों की मदद करना, राजनीतिक जीवन के नियमों व कानूनों में स्थायित्व लाना और उन्हें लागू करना तथा समाज के सदस्यों में एकता और संगठन कायम रखना होता है। सकारात्मक समर्थन राजनीतिक व्यवस्था का पोषक तथा नकारात्मक समर्थन राजनीतिक व्यवस्था का शोषक होता है।

(II) मांगों का रूपान्तरण स्तर (The Conversion Stage of Demands) :- प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था को अपने अन्दर व बाहर से मांगों व समर्थनों के रूप से आने वाले निवेशों को निर्गतों में बदलने का कार्य भी करना पड़ता है। प्रत्येक समाज में समय-समय पर राजनीतिक दलों, हित समूहों, समाचार'पत्रों आदि के रूप में उठने वाली मांगों के ऊपर राजनीतिक व्यवस्था द्वारा आवश्यक निर्णय लिए जाते हैं। कुछ मांगें तो सकारात्मक या नकारात्मक ढंग से पूरी कर दी जाती हैं तथा कुछ को सामान्य मांग में बदलकर सामान्य नियम बना दिये जाते हैं और सामान्य हित के रूप में उन्हें मान्यता दे दी जाती है। इस स्तर पर मांगों की संख्या सीमित करके उन्हें साधनों के अनुकूल बनाया जाता है तथा उचित व अनुचित का विचार करके मांगों का समूहीकरण कर दिया जाता है। मांगों के रूपान्तरण इस तरह किया जाता है कि उन्हें आवश्यक जनसमर्थन मिलने लगता ह और राजनीतिक व्यवस्था अनावश्यक उत्पातों के दबाव से बच जाती है।

(III) निर्गत (Output) :- मांग और समर्थन के आधार पर राजनीतिक सत्ताधारकों द्वारा जो निर्णय लिये जाते हैं, उन्हें निर्गत कहा जाता है। दूसरे शब्दों में व्यवस्था द्वारा रूपान्तरित निवेशों को ही निर्गत कहा जाता है। ईस्टन इन्हें 'मूल्यों का अधिकारिक आवंटन, 'बाध्यकारी निर्णय एवं क्रियाएं' अथवा 'व्यवस्था और पर्यावरण के बीच आदान-प्रदान' कहता है। निर्गत व्यवस्था के प्राधिकारियों का वह कार्यात्मक उत्पादन है जो उनकी तरफ से पर्यावरण या व्यवस्था में आता है। निर्गत व्यवस्था के मूल्यों के विनिधान से सम्बन्धित, व्यवस्था के नेताओं द्वारा लिए गए प्राधिकृत (Authorized) निर्णय व कार्य हैं। ये निर्गत सत्तात्मक तथा सह-निर्गत दो तरह के होते हैं। प्रथम प्रकार के निर्गत बन्धनकारी होते हैं जो सामान्य कानूनों से लेकर न्यायालयों के विशिष्ट निर्णयों के रूप में होते हैं। सह-निर्गत निर्देशात्मक होते हैं। ये बन्धन के पाश से मुक्त होते हैं। निर्गतों का सम्बन्ध विधायिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका से होता है और ये निर्णयों, नीतियों या नियमों के रूप में सरकारी अभिकरणों द्वारा लागू किए जाते हैं। ये निर्गत कई रूपों में हो सकते हैं, जैसे कर उगाहना, सार्वजनिक व्यवहार और आचरण का नियमन, सम्मान, वस्तुओं और सेवाओं का वितरण आदि।

प्रतिसम्भरण प्रक्रिया (Feedback Process) :- ईस्टन के व्यवस्था विश्लेषण दृष्टिकोण में प्रतिसम्भरण की अवधारणा भी निहित है। इस प्रक्रिया पर ही ईस्टन का आगत-निर्गत दृष्टिकोण टिका हुआ है। ईस्टन का कहना है कि कालान्तर में निर्गतों का प्रभाव पर्यावरण पर भी पड़ता है तथा फिर से नई मांगें उठ खड़ी होती हैं। पर्यावरण तथा निर्गतों के विषय में सूचनाओं को व्यवस्था तक सम्प्रेषित करने की प्रक्रिया ही प्रतिसम्भरण है। वैसे तो सूचनाएं निवेश बनकर आती रहती हैं, किन्तु जब रूपान्तरित निवेशों या निर्गतों के विषय में सूचनाएं आती हैं, तो सूचनाओं का पुनर्संचारण या निवेशों का पुनर्निवेशन हो जाता है। ऐसा करने से राजनीतिक व्यवस्था को अपने व्यवहार में अनुकूल परिवर्तन और सुधार करने का अवसर मिल जाता है। अन्यथा प्रतिसम्भरण नहीं होने पर वह अपने ही तरीके से काम करती जाएगी और जनसमर्थन खो देगी। इसलिए प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था को अपनी गतिशीलता और स्थायित्व दोनों को बनाए रखने के लिए प्रतिसम्भरण की व्यवस्था करना जरूरी है। प्रतिसम्भरण प्रक्रिया वह पाश है जो निवेश और निर्गत के बीच एक चक्राकार सम्बन्ध स्थापित करके राजनीतिक चक्र को पूर्णता प्रदान करता है।

ईस्टन की तरह ऑमण्ड-पॉवेल ने भी राजनीतिक व्यवस्था के अध्ययन के लिए अपना संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक मॉडल पेश किया है। ऑमण्ड-पॉवेल ने राजनीतिक व्यवस्था को परिभाषित करते हुए कहा है कि राजनीतिक व्यवस्था सभी स्वतन्त्र समाजों में अन्तक्रियाओं की एक ऐसी व्यवस्था है जो बहुत कुछ वैध भौतिक बाध्यता का प्रयोग करके अथवा प्रयोग की धमकी देकर एकीकरण और अनुकूलन के कार्यों का सम्पादन करती है। ऑमण्ड-पॉवेल ने राजनीतिक व्यवस्था की व्याख्या प्रस्तुत करते हुए इसके तीन संघटन-(i) राजनीतिक संरचनाएं (ii) राजनीतिक संस्कृति तथा (iii) राजनीतिक नेतृत्व बताए हैं। इन संघटकों द्वारा ही राजनीतिक व्यवस्था को गतिशील बनाया जाता है। इन संघटकों द्वारा ही राजनीतिक व्यवस्था को गतिशील बनाया जाता है। इन संघटकों द्वारा राजनीतिक व्यवस्था को गतिशील बनाने के लिए मांगों का चयन व संयुक्तीकरण, मांगों का रूपान्तरण या निर्गतन, व्यवस्था का अनुरक्षण तथा व्यवस्था का अनुकूलन किया जाता है। ऑमण्ड-पॉवेल ने ईस्टन के ही आगत-निर्गत को स्वीकार करते हुए उसे ही नए रूप में विकसित किया है। परन्तु ऑमण्ड-पॉवेल ने ईस्टन के मॉडल को स्वीकार करते हुए भी अपनी व्यापक दृष्टि का परिचय दिया है। उसने ईस्टन के निवेशों की ज्यों को त्यों स्वीकार किया है, लेकिन रूपान्तरण तथा निर्गतों के बारे में विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। उसने राजनीतिक व्यवस्था को आगत-निर्गत के रूप में समझने की बजाय संरचनात्मक-कार्यात्मक आधार पर समझने का प्रयास किया है। इसलिए उससे विश्व की समस्त राजनीतिक व्यवस्थाओं का अध्ययन आसानी से किया जा सकता है।

व्यवस्था विश्लेषण दृष्टिकोण की आलोचना

(Criticisms of System Analysis Approach)

यद्यपि व्यवस्था विश्लेषण दृष्टिकोण के आगमन से तुलनात्मक अध्ययन को उपयोगी आधार मिला है, लेकिन फिर भी आलोचकों ने इस दृष्टिकोण पर कई आरोप लगाए हैं। आलोचकों द्वारा व्यवस्था विश्लेषण दृष्टिकोण की आलोचना के प्रमुख आधार निम्नलिखित हैं।

(1) ईस्टन व ऑमण्ड ने इस उपागम में नवीन अवधारणाओं व संकल्पनाओं का समावेश करके इसे अधिक जटिल व उलझनमय बना दिया है। राजनीतिक विकास, रजानीतिक संस्कृति, राजनीतिक आधुनिकीकरण के बिना राजनीतिक

व्यवस्था की अवधारणा को समझना कठिन है।

(2) ईस्टन ने राजनीतिक व्यवस्था को अधिक स्वायत्तता देकार समाज की अन्य उप-व्यवस्थाओं - सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक व्यवस्थाओं की उपेक्षा की है। इसलिए यह दृष्टिकोण राजनीतिक समाज का एक पक्षीय ढांचा ही प्रस्तुत करता है। सत्य तो यह है कि समाज के ये चारों उप-व्यवस्थाएं आपस में इस तरह गुंथी हुई होती हैं कि इन्हें एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता।

(3) यह दृष्टिकोण निरन्तरता के सन्दर्भ में ही राजनीतिक व्यवस्थाओं को समझ सकता है। अकस्मात उत्पन्न होने वाले परिवर्तनों या उत्पात्तों की व्याख्या इस दृष्टिकोण से नहीं की जा सकती।

(4) यह दृष्टिकोण आगत-निर्गत व संरचनात्मक-कार्यात्मक विश्लेषण के आधार पर अभिजन-वर्ग या शासक वर्ग की राजनीतिक क्रियाओं पर ही अपना ध्यान केन्द्रित करता है। इसका बहुसंख्यक समाज के वर्गों से कोई सम्बन्ध नहीं है। अतः अभिजन वर्ग के हितों का पोषक होने के कारण यह यथास्थिति का भी पक्षधर है और क्रांतिकारी परिवर्तनों के प्रति यह उदासीन है।

(5) ईस्टन ने मूल व्यवस्था से राजनीतिक व्यवस्था को जोड़कर इस दृष्टिकोण को अव्यवहारिक बना दिया है। यदि सत्तात्मक रूपान्तरण को राजनीतिक व्यवस्था से अलग कर दिया जाए तो सामाजिक व्यवस्था की अन्य उप-व्यवस्थाओं से राजनीतिक व्यवस्था को अलग करना मुश्किल हो जाता है।

(6) यह दृष्टिकोण संकुचित है। व्यवहारवादियों का आरोप है कि यह दृष्टिकोण अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की संस्थाओं - जैसे संयुक्त राष्ट्र संघ आदि का अध्ययन करने में असमर्थ है।

(7) इस दृष्टिकोण के समर्थक किसी एक विशेष विचार से मनोग्रस्त प्रतीत होते हैं; क्योंकि वे सभी घटनाओं को एक प्रणाली के रूप में देखने के पक्षपाती हैं।

(8) यह दृष्टिकोण किसी सामान्य निष्कर्ष तक पहुंचने में नाकाम रहा है। इस दृष्टिकोण के आधार पर जिन परिकल्पनाओं का निर्माण किया जाता है, उनकी प्रकृति अमूर्त होती है और उनका आनुभाविक विश्लेषण सम्भव नहीं है। इसलिए अमूर्तीकरण के कारण यह उपागम औपचारिकता और बुद्धिवाद के खतरों से अभिभूत है।

इस प्रकार उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर कहा जा सकता है कि ईस्टर का मॉडल द्वितीय स्तर के परिवर्तनों का ही विश्लेषण कर पाता है। वह क्रान्तिकारी परिवर्तनों, वृद्धि, पतन आदि घटनाओं के बारे में चुप है। मानव-व्यवहार के मूर्त-प्रतिमानों पर विचार करने की बजाय वह उपागम अमूर्त एवं विश्लेषणात्मक व्यवस्थाओं पर विचार करने के कारण शक्ति और प्रभाव जैसे महत्वपूर्ण तथ्यों को उपेक्षित कर बैठा है। इसमें मतदान, नेतृत्व आदि से सम्बन्धित जन-राजनीति का कोई स्थान नहीं है। निवेश-निर्गत उपागम की वास्तविक स्थिति यह है कि इसे कभी व्यवहारिक उद्देश्यों के लिए प्रयोग नहीं किया गया है और यह राजनीति के सामान्य सिद्धान्त का निर्माण करने में असफल रहा है। यह दृष्टिकोण राजनीतिक व्यवस्था को, अराजनीतिक व्यवस्थाओं से, विश्लेषणात्मक आधार पर भी अलग करने में प्रायः नाकाम ही रहा है। इस दृष्टिकोण का विश्लेषण करने के बाद मीहान इस निष्कर्ष पर पहुंचा है-"व्यवस्था विश्लेषण उपागम तार्किक दृष्टि से सन्देहास्पद, अवधारणात्मक आधार पर धुंधला तथा आनुभाविक दृष्टि से अनुपयोगी है।"

व्यवस्था विश्लेषण दृष्टिकोण का महत्व

(Importance of System Analysis Approach)

यद्यपि व्यवस्था दृष्टिकोण की काफी आलोचनाएं हुई हैं, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि इसकी तुलनात्मक अध्ययन में कोई उपादेयता नहीं है। सत्य तो यह है कि इसकी तुलनात्मक अध्ययन को उपयोगी बनाने में व्यवस्था विश्लेषण दृष्टिकोण का काफी महत्व है। राबर्ट सी० बोन ने लिखा है-"राजनीतिक व्यवस्था उपागम के आधार पर तुलनाएं करना सरल और उपयोगी हो गया है क्योंकि यह तुलनात्मक विश्लेषण की श्रेष्ठतम विधि है जो राजनीतिक व्यवस्था के अवलोकन पर आधारित है।" इस दृष्टिकोण में समस्याओं के प्रति व्यवहारिक दृष्टिकोण अपनाया जाता है। यह दृष्टिकोण राजनीतिक व्यवस्था में होने वाले परिवर्तनों और गत्यात्यकताओं को समझने में महत्वपूर्ण कार्य कर रहा है। इस दृष्टिकोण द्वारा प्रस्थापित अवधारणाओं, प्रत्ययों और प्रविधियों ने सम्पूर्ण विश्व की राजनीतिक व्यवस्थाओं का तूलनात्मक अध्ययन सम्भव बना दिया है। यह सम्पूर्ण राजनीतिक

व्यवस्था पर अपना ध्यान केन्द्रित करके राजनीतिक व्यवस्था की सतत्तता द्वारा सामान्य सिद्धान्त के निर्माण का मार्ग प्रशस्त करने के लिए अग्रसर है। इस दृष्टिकोण का सम्बन्ध विश्व में अस्तित्ववान सभी तरह की राजनीतिक व्यवस्थाओं से होने के कारण वास्तविकता के पुट से यह परिपूर्ण है। राजनीतिक व्यवस्था को संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक आधार पर समझने का प्रयास करके इसने तुलनात्मक अध्ययन में रुचि रखने वाले अध्येत्ताओं की मदद की है। इसके द्वारा राजनीतिक व्यवस्था में स्थिरता लाने वाले तत्वों की जानकारी भी मिलती है। इस दृष्टिकोण ने तुलनात्मक राजनीति को परम्परागत सिद्धान्तों की दलदल से निकालकर आधुनिक बनाने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इसने राजनीतिक व्यवस्था की अवधारणा प्रस्तुत करके तुलनात्मक अध्ययन को समसामयिक और गतिशील बनाया है। इसने राजनीतिक व्यवहार को यथार्थवादी स्वरूप में समझने में तुलनात्मक राजनीति की सेवा की है। प्रो० पाल ने इस दृष्टिकोण के बढ़ते महत्व का प्रतिपादित करते हुए लिखा है- "हमें इस संभावना के प्रति जागरूक होना चाहिए कि राजनीतिक सिद्धान्त एक न एक दिन अवश्य ही संतोषजनक ढंग से राजनीतिक अन्वेषण में सक्षम होगा।" इससे स्पष्ट है कि चाहे यह दृष्टिकोण आज कम उपयोगी है लेकिन आने वाले समय में इसका महत्व बढ़ना स्वाभाविक ही है। अतः व्यवस्था विश्लेषण दृष्टिकोण तुलनात्मक अध्ययन को वैज्ञानिक आधार प्रदान करता है और इसका महत्व आज भी बरकरार है।

(II) संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण

(Structural-Functional Approach)

इस दृष्टिकोण का आगमन भी व्यवस्था विश्लेषण के साथ ही व्यवहारवादी क्रान्ति के बाद हुआ। व्यवस्था विश्लेषण की कमियों पर विचार करके आमण्ड ने अपना संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक मॉडल तैयार किया जो विकासशील देशों की राजनीति का अध्ययन करने मे भी मददगार हैं। वस्तुतः संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण व्यवस्था विश्लेषण का ही विकसित रूप है। तुलनात्मक राजनीतिक में इस उपागम के प्रयोग की प्रेरणा रैडकिलफ-ब्राऊन और बी० मैलीनोस्की जैसे मानव-वैज्ञानिकों से प्राप्त हुई है। इसे विकसित करने में पारसन्स, मर्टन तथा लेवी ने भी अपना योगदान दिया है। राजनीति विज्ञान में इसका सर्वप्रथम बार प्रयोग आमण्ड एवं कोलमैन ने विकासशील देशों की राजनीति का अध्ययन करने के लिए किया।

ऑमण्ड ने अपनी पुस्तक 'The Politics of the Developing Areas' में इंस्टन ने आगत-निर्गत उपागम की कमियों की व्याख्या की और राजनीतिक व्यवस्था को संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक आधार पर ही समझने पर जोर दिया। ऑमण्ड का यह उपागम असमान विशेषताओं वाली राजनीतिक व्यवस्थाओं की तुलना करने में भी सहायक है। इस उपागम में ऑमण्ड ने उन कृत्यों की पहचान की है जो समाज-व्यवस्था को कायम रखने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। ऑमण्ड ने न केवल कृत्यों की पहचान व वर्गीकरण ही किया बल्कि प्रत्येक कृत्य या कार्य के लिए उपयुक्त संरचना की भी पहचान की। इस दृष्टिकोण के आगमन से तुलनात्मक राजनीति में राजनीतिक व्यवस्था को अधिक स्पष्ट रूप से समझना आसान हो गया और राजनीतिक व्यवस्था की अन्तर्वस्तु ने उनके कार्यात्मक पक्ष को अलग करके देखा जाने लगा। इस उपागम ने समाज को सम्पूर्ण रूप में देखकर सामान्य सिद्धान्त का निर्माण करने की दिशा में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है और तुलनात्मक राजनीति की नई दिशा मिली है।

संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक का अर्थ

(Meaning of Structural-Functional)

संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण के अन्तर्गत दो प्रत्यय या संकल्पनाएं निहित है। इसमें एक संकल्पना संरचना की है और दूसरी प्रकार्य की। किसी भी राजनीतिक व्यवस्था में प्रकार्यों को सम्पादित करने वाली व्यवस्था ही संरचना कहलाती है। संरचना को प्रकार्यों के आधार पर ही परिभाषित किया जा सकता है। ऑमण्ड ने स्पष्ट किया है कि प्रत्येक संगठन संरचना नहीं हो सकता। जो संगठन नियमित रूप से प्रकार्यों को सम्पादित करता है, वही संरचना हो सकता है। ऑमण्ड के रूप से प्रकार्यों को सम्पादित करता है, वही संरचना हो सकता है। ऑमण्ड के इस दृष्टिकोण में दूसरी अवधारणा प्रकार्य की है। यद्यपि प्रकार्य का प्रत्यय काफी कठिन है। मर्टन ने इसे 'पर्यवेक्षित परिणाम' व रैड क्लिफ ने 'आवर्तक क्रियाओं' का नाम दिया है। प्रकार्य के प्रत्यय को परिभाषित करते हुए राबर्ट सी० बोन ने लिखा है-"एक प्रकार्य व्यवस्था को बनाए रखने और उसे विकसित करने के लिए किया जाने वाला ऐसा क्रिया-प्रतिमान है जो नियमित रूप से होता है।" कई बार प्रकार्य विकार्य और विकार्य प्रकार्य

भी बन जाता है। जब प्रकार्य विकार्य बन जाता है तो वह राजनीतिक व्यवस्था के लिए खतरे का सूचक होता है। किसी भी राजनीतिक व्यवस्था को बनाए रखने व उसे विकसित करने के लिए प्रकार्य का होना अनिवार्य है। तुलनात्मक राजनीति में प्रकार्य उसी क्रिया प्रतिमान को ही कहा जाता है जो राजनीतिक व्यवस्था का अनुरक्षक हो, उसे विकसित करने वाला हो तथा नियमितता का गुण भी रखता है।

संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण की व्याख्या

(Explanation of Structural-Functional Approach)

ऑमण्ड तथा कोलमैन ने विकासशील देशों के तुलनात्मक अध्ययन के लिए संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण का प्रयोग अपनी पुस्तक 'The Politics of the Developing Areas' (1960) में किया है। इन विद्वानों ने इस उपागम की विस्तृत व्याख्या करते समय सबसे पहले व्यवस्था की धारणा को स्पष्ट किया है। व्यवस्था से उनका अर्थ है-सीमाओं के साथ अन्योन्याश्रय (Interdependence) तथा व्यापकता के लक्षणों से युक्त अन्तर्क्रियाओं का विशेष सेट। ऑमण्ड तथा कोलमैन ने कहा है कि राजनीतिक व्यवस्था अनेक संरचनाओं से मिलकर बनती है और वह भिन्न-भिन्न कार्य करती है। राजनीतिक व्यवस्था न्यूनाधिक रूप से समाज के अन्तर्गत एक औचित्यपूर्ण, सुव्यवस्था सन्धारक या रूपान्तरकारी व्यवस्था होती है जो अपना कार्य औचित्यपूर्ण भौतिक दबावों के माध्यम से करती है। प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था में राजनीतिक गतिविधियों के संचालन के लिए एक अलग ढांचा होता है। यह ढांचा या संरचना एक गतिशील मशीन की तरह कार्य करता है। इस ढांचे के अनेक अंग-प्रत्यंग होते हैं जो अपने-अपने कार्यों का निष्पादन करके व्यवस्था रूपी मशीन को गतिशील बनाए रखते हैं। जिस तरह शरीर रूपी मशीन को संचालित करने में शरीर के अंग अपना योगदान देते हैं, उसी तरह सामूहिक अन्तर्निर्भरता के आधार पर भी कार्य करके संरचनात्मक ढांचे को गति प्रदान करते हैं। यह संगठनात्मक, मशीन की अपने अलग-अलग अंगों को आगत सम्बन्धी कार्य सौंपकर उन्हें निर्गतों के रूप में पूरा कराती है। इस तरह ऑमण्ड ने भी ईस्टन के आगत-निर्गत दृष्टिकाण को ही विकसित करके उसे संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक आधार पर प्रतिष्ठित किया है।

संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण की विशेषताएं

(Features of Structural Functional Approach)

ऑमण्ड ने अपने संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण की व्याख्या में राजनीतिक व्यवस्था के सामान्य लक्षणों पर भी प्रकाश डाला है। ऑमण्ड का कहना है कि राजनीतिक व्यवस्था के अंगों के बीच अन्तर्निर्भरता होती है, इसकी अपनी सीमा व पर्यावरण होता है तथा यह वैध बाह्यकारी शक्ति का प्रयोग करती है। इस व्याख्या के आधार पर यदि राजनीतिक व्यवस्था को संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक आधार पर समझा जाए तो इस उपागम की निम्नलिखित विशेषताएं दृष्टिगोचर होती हैं-

(1) विश्लेषण की इकाई के रूप में यह दृष्टिकोण सम्पूर्ण राजनीतिक व्यवस्था पर अपना ध्यान केन्द्रित करता है

(2) यह दृष्टिकोण राजनीतिक व्यवस्था के अनुरक्षण (Maintenance) के लिए व्यवस्था की संरचनाओं द्वारा कुछ कार्यों या विकार्यों का होना अनिवार्य मानता है।

(3) इस दृष्टिकोण के अनुसार सभी राजनीतिक व्यवस्थाओं की विभिन्न संरचनाओं के कार्यों में अन्तर्निर्भरता पाई जाती है। इसलिए यह संरचनाओं को प्रकार्यों के सन्दर्भ में ही परिभाषित करता है।

(4) इस दृष्टिकोण में संरचनात्मक स्थानापन्नता को स्वीकार किया जाता है। ऑमण्ड का मानना है कि प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था में सांस्कृतिक विभिन्नताएं पाई जाती हैं। इसलिए एक समान कार्यों के निष्पादन के लिए एक समान संरचनाओं का होना आवश्यक नहीं है।

(5) यह दृष्टिकोण विकार्य को भी प्रकार्यों के समान ही महत्व देता है। ऑमण्ड का कहना है कि विशेष परिस्थितियों में विकार्य प्रकार्य की जगह लेकर व्यवस्था का अनुरक्षण कर सकता है।

संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण पर ऑमण्ड के विचार

(Almond's views on Structural-Functional Approach)

ऑमण्ड तथा कोलमैन ने अपने विश्लेषण में राजनीतिक विकास तथा राजनीतिक व्यवस्थाओं के वर्गीकरण में ही अधिक रुचि

दिखाते हुए बताया है कि एक प्रकार की राजनीतिक व्यवस्था दूसरे प्रकार की व्यवस्था से अलग कैसे होती है। उन्होंने कहा है कि सभी परम्परागत व्यवस्थाएं राजनीतिक विकास क्रम में आधुनिकता की तरफ अग्रसर होती हैं। इस व्याख्या द्वारा ऑमण्ड ने तुलनात्मक अध्ययन को एक स्वतन्त्र विज्ञान के रूप में पेश करने का प्रयास किया है। उसने यह भी बताया है कि एक अच्छी कार्यक्षमता वाली व्यवस्था एक कम कार्यक्षमता वाली व्यवस्था से अच्छी होती है। उसने राजनीतिक विकास को ही आर्थिक विकास की तरह मानकर पाश्चात्य राजनीतिक व्यवस्थाओं में कुछ तत्वों को खोजकर, उनके आधार पर ही विकाशील देशों की राजनीतिक व्यवस्थाओं में समान तत्वों की पहचान करके तुलनात्मक विश्लेषण का विकास किया है।

ऑमण्ड ने राजनीतिक व्यवस्था को अन्तःक्रियाओं की एक ऐसी व्यवस्था कहा है जो सभी स्वतन्त्र समाजों में पाई जाती है और कम या अधिक रूप में न्यायसंगत भौतिक बाध्यता के प्रयोग या प्रयोग की धमकी द्वारा एकीकरण और अनुकूलन का प्रयास करती है। यह समाज में व्यवस्था या तारतम्य स्थापित करने वाली औचित्यपूर्ण शक्ति है जो आगतों व निर्गतों के रूप में प्रवाहित होती है और व्यवस्था को विशिष्टता का गुण प्रदान करती है। राजनीतिक व्यवस्था आंतरिक तथा बाहरी पर्यावरण से घिरी होने के कारण पर्यावरण से प्रभावित भी होती रहती है और उसे प्रभावित भी करने का प्रयास करती है। ऐसी राजनीतिक व्यवस्था में संरचना और कार्यों के आधार पर सम्पूर्णता, अन्तनिर्भरता, सीमा रेखाएं, खुली व्यवस्था, व्यक्तिगत प्रतिक्रियाओं के स्थान पर भूमिकाओं की प्रतिक्रियाएं आदि विशेषताएं पाई जाती हैं। एक राजनीतिक व्यवस्था में चार प्रकार की समानताएं- (i) एक राजनीतिक संस्कृति (ii) राजनीतिक ढांचों की बहुकार्यात्मकता (iii) कुछ निश्चित समान राजनीतिक कार्य तथा (iv) क्रिया-प्रतिक्रियाओं की वैधता होती हैं।

राजनीतिक व्यवस्था के कार्य

(Functions of Political System)

ऑमण्ड ने संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण के प्रयोग के लिए ईस्टन के आगत-निर्गत मॉडल को ही स्वीकार किया है। ऑमण्ड ने अपने संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण को तीन चरणों में बांटा है। उसने निर्गतों के प्रति जनता की प्रतिक्रिया जानने के लिए प्रतिसम्भरण की व्यवस्था भी की है। ऑमण्ड के दृष्टिकोण में आगत-निर्गत मॉडल निम्न प्रकार से लागू किया गया है :-

(I) राजनीतिक व्यवस्था के आगत या निवेश कार्य (Input Functions of Political System) :-

(1) **राजनीतिक समाजीकरण व भर्ती** (Political Socialization and Recruitment)

(2) **हित अभिव्यक्ति या स्पष्टीकरण** (Interest Articulation)

(3) **हित-समूहीकरण** (Interest Aggregation)

(4) **राजनीतिक सम्प्रेषण** (Political Communication)

ऑमण्ड ने राजनीतिक समाजीकरण तथा राजनीतिक भर्ती को निवेशकों का निर्णायक तत्व माना है। उसके अनुसार राजनीतिक समाजीकरण तथा भर्ती के आधार पर यह पता लगाया जा सकता है कि मांगें किस प्रकार की होंगी तथा उनके समर्थन में जनता कितनी सक्रिय होगी। किसी भी राजनीतिक व्यवस्था में राजनीतिक समाजीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा राजनीतिक संस्कृति के मूल्य, विश्वास तथा संवेग वर्तमान और आगामी पीढ़ियों को प्रदान किये जाते हैं। यह प्रक्रिया जीवनपर्यन्त परिवार, विद्यालय, चर्च, कार्यसमूहों, राजनीतिक दलों आदि के माध्यम से चलती रहती है। यह प्रक्रिया प्रत्येक व्यक्ति के मानव में राजनीति से ज्ञानात्मक मानचित्रों (Cognitive) का निर्माण करती है। इसी तरह राजनीतिक भर्ती की प्रक्रिया भी राजनीतिक दलों व अन्य गैर-राजनीतिक संवेदनों द्वारा गतिशील बनाई जाती है। इसके अन्तर्गत लोगों को राजनीति में दीक्षित किया जाता है। राजनीतिक भर्ती से तात्पर्य व्यक्ति की राजनीतिक समाजीकरण के आधर पर राजनीतिक सक्रियता से है।"

हित-अभिव्यक्ति या स्पष्टीकरण का कार्य राजनीतिक व्यवस्था की राजनीतिक सीमाओं को निर्धारित करता है। यह राजनीतिक संस्कृति व समाजीकरण पर ही आधारित होता है। दबाव व हित समूह हित-अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। हितों के स्पष्टीकरण के बाद उन्हें पुनः समूहीकृत करने की प्रक्रिया अपनाई जाती है। प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था विभिन्न हितों व मांगों का समूहीकरण करके ही नीति का निर्माण करती है। इसके बाद राजनीतिक संचार का स्थान आता है। राजनीतिक संचार राजनीतिक व्यवस्था के अन्य सभी निवेश व निर्गत कार्य करता है। संचार व्यवस्था की प्रतिसम्भरण का आधार होती है। यह

अप्रकट हितों को अभिव्यक्ति करके एक नए जागरूक नागरिक वर्ग को उत्पन्न करती है जो सार्वभौमिक आदर्शों व हितों में रुचि रखता है। संचार राजनीतिक व्यवस्था में नियामगों का नियामक (Regular of regulators) होता है और इसका प्रभाव सर्वव्यापी होता है। यह जनता व सत्ताधारकों के बीच कड़ी का काम करता है और राजनीतिक व्यवस्था को गतिशील बनाए रखता है।

(II) रूपान्तरण प्रक्रिया (Conversion Process) :- ईस्टन की तरह ऑमण्ड ने भी मांगों के रूपान्तरण की बात की है। यद्यपि कुछ विद्वान इस प्रक्रिया को आगत कार्यों के अन्तर्गत ही जोड़कर देखते हैं। लेकिन इस पर अलग से व्यापकता से विचार करना भी जरूरी बन जाता है। ऑमण्ड के अनुसार यह प्रक्रिया दोहरी होती है। एक ओर तो रूपान्तरण में उन क्रियाओं को शामिल किया जा सकता है जिनके द्वारा विभिन्न मांगों को सत्ता द्वारा विचार के योग्य बनाया जाता है। दूसरी ओर, उन क्रियाओं को इसमें शामिल किया जाता है। निके द्वारा इन मांगों पर वास्तव में विचार किया जाता है और निर्णय लिए जाते हैं। इस प्रकार का रूपान्तरण राजनीतिक और सरकारी दो स्तरों पर होता है। राजनीतिक स्तर पर रूपान्तरण प्रक्रिया में हित स्वरूपीकरण तथा हित-समूहीकरण किया जाता है। सरकारी स्तर पर रूपान्तरण प्रक्रिया के अन्तर्गत निर्गत कार्य किए जाते हैं। इसके अन्तर्गत नियम-निर्माण, नियम क्रियान्वयन तथा नियम अधिनिर्णय शामिल होते हैं। इस समस्त प्रक्रिया में राजनीतिक संचार की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है।

(III) निर्गत कार्य (Output Functions) :- राजनीतिक व्यवस्था रूपान्तरण की प्रक्रिया द्वारा आगतों को निर्गतों में बदल देती है। ये निर्गत तीन तरह के होते हैं :-

(i) **नियम-निर्माण** (Rule-Making)

(ii) **नियम-अनुप्रयोग** (Rule-Application)

(iii) **नियम-अधिनियम** (Rule-Adjudication)

ऑमण्ड का कहना है कि एक प्रकार्य अनेक संरचनाओं या अनेक प्रकार्य एक ही संरचना द्वारा किए जा सकते हैं। नियम-निर्माण, नियम-अनुप्रयोग तथा नियम-अधिनियम के प्रकार्य किसी एक संरचना से बंधे हुए नहीं हैं। इन्हें किसी भी औपचारिक या अनौपचारिक संरचना द्वारा किया जा सकता है। नियम निर्माण का कार्य विधायिका, कार्यपालिका या न्यायपालिका कोई भी संरचना कर सकती है। व्यवहार में ये संरचनाएं दबाव व हित समूहों तथा राजनीतिक दलों के निर्देशन में ही कार्य करती है। इसी तरी नियमय-अनुप्रयोग या लागू करना तथा विवाद उत्पन्न होने पर न्यायिक निर्णय देने का कार्य भी एक या एक से अधिक संरचनाओं द्वारा किया जाता है। आधुनिक समय में नियम-क्रियान्वयन के लिए सभी देशों में शक्तिशाली नौकरशाही तन्त्र होता है। किसी भी राजनीतिक व्यवस्था के उत्तरजीवित बनाए रखने के लिए यह देखना आवश्यक होता है कि जो नियम बनाए गए हैं और उनकी क्रियान्विति से जनता को कोई नुकसान तो नहीं हो रहा। यदि वे नियम व निर्णय जनइच्छा के प्रतिकूल जा रहे हों तो उन्हें रोकने वाली संरचनाएं भी होती हैं। भारत में यह कार्य प्रशासनिक अभिकरणों तथा न्यायपालिका द्वारा किया जाता है।

इसी आधार पर ऑमण्ड ने अपने संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम को व्यवहारिक रूप देने के लिए तथा तुलनात्मक अध्ययन के लिए समस्त विश्व की राज-व्यवस्थाओं को पांच भागों में बांटा है और उन्हें संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक आधार पर ही समझने का प्रयास किया है। ऑमण्ड ने संरचनाओं द्वारा निष्पादित किए जाने वाले कार्यों की व्याख्या करके अपने दृष्टिकोण को व्यापक आधार प्रदान किया है। ऑमण्ड ने आगत कार्यों को समाजीकरण व संचार से जोड़कर अपने दृष्टिकोण को मनोवैज्ञानिक आधार प्रदान किया है।

संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण की आलोचना

(Criticisms of Structural-Functional Approach)

यद्यपि ऑमण्ड ने अपने संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण को मनोवैज्ञानिक आधार पर प्रतिस्थापित किया है और तुलनात्मक राजनीतिक विश्लेषण के लिए उसका अधिकतर राजनीतिक विद्वानों ने प्रयोग भी किया है, लेकिन फिर भी यह दोषमुक्त नहीं है। ऑमण्ड ने राजनीतिक दलों को राजनीतिक समाजीकरण व भर्ती के लिए अनिवार्य मानकर उन राजनीतिक अध्ययन के प्रति पक्षपातपूर्ण रवैया अपनाया है, जिन देशों में या तो राजनीतिक दल हैं ही नहीं, यदि हैं तो नाममात्र के हैं। इसी तरह प्राकृतिक विज्ञान की शब्दावली को राजनीति-विज्ञान में प्रयुक्त करना भी गलत है। इसी कारण कार्डिनर ने इस उपागम को

'कार्यात्मक उद्देश्य का भ्रम' (Fallacy of Fuctional Telelogy) कहा है। इस उपागम की आलोचना के अन्य आधार निम्नलिखित हैं :-

(1) यह दृष्टिकोण व्यवस्था के अनुरक्षण पर तो ध्यान देता है, लेकिन यह बताने का प्रयास नहीं करता कि परिवर्तन का व्यवस्था अनुरक्षण पर क्या प्रभाव पड़ता है। इस दृष्टिकोण के पास व्यवस्था अनुरक्षण के बारे में सही जानकारी देने वाला कोई वस्तुनिष्ठ मापदण्ड नहीं है। इसमें इस बात का पता लगाना कठिन है कि व्यवस्था का अनुरक्षण हो रहा है या नहीं।

(2) यह दृष्टिकोण प्रकार्यों पर आधारित है, लेकिन यह जानने का प्रयास इस दृष्टिकोण ने कभी नहीं किया कि प्रकार्य की असली पहचान क्या है। यह दृष्टिकोण ने कभी नहीं किया कि प्रकार्य की असली पहचान क्या है। यह दृष्टिकोण यह जानने में असमर्थ है कि किस राजनीतिक संरचना के लिए कौनसा प्रकार्यों का सेट चुना जाए ओर यह किस आधार पर चुना जाए।

(3) मर्टन का मानना है कि यह दृष्टिकोण नियन्त्रण, शक्ति, नीति-निर्माण, प्रभाव आदि बलों के विश्लेषण में सक्षम नहीं है।

(4) हॉल्ट एवं रिचर्डसन का आपेक्ष है कि ऑमण्ड ने संरचनाओं की व्याख्या प्रकार्यात्मक आधार पर की है, जो अनुचित है, क्योंकि इस तरह कभी भी सम्भाव्यता-सिद्धान्त का निर्माण नहीं किया जा सकता। इसी तरह ऑमण्ड ने संरचनाओं और प्रकार्यों में कोई युक्तियुक्त सम्बन्ध भी स्थापित नहीं किया है।

(5) यह दृष्टिकोण रूढ़िवादी एवं सामाजिक परिवर्तन का विरोधी है। इसमें स्थायित्व और व्यवस्था अनुरक्षण पर ही अधिक ध्यान दिया गया है।

(6) यह दृष्टिकोण इस बात को स्पष्ट करता है कि संरचना में परिवर्तन से प्रकार्य के निष्पादन के तरीके में भी परिवर्तन आ जाता है। परन्तु यह दृष्टिकोण इस बात को स्पष्ट करने में नाकाम रहा है कि परिवर्तनों के कारण आने वाले परिवर्तनों और प्रभावों की प्रकृति, तीव्रता और मात्रा क्या है।

(7) इस दृष्टिकोण में प्रयुक्त प्रत्यय व अवधारणाएं परिभाषात्मक दृष्टि से परिभाषित नहीं की गई हैं। इससे यह बात स्पष्ट नहीं हो ती कि कौनसी संरचना कौनसे प्रकार्य निष्पादित करती है। इससे यह भी पता नहीं चलता कि कोई व्यवस्था अपने कार्यों को पूर्ण रूप से निष्पादित कर रही है या आंशिक रूप में।

(8) यह दृष्टिकोण वर्तमान परिप्रेक्ष्य में ही राजनीतिक व्यवस्थाओं को समझने में समर्थ है। इसमें ऐतिहासिक व भविष्य के प्रति कोई चिन्ता नहीं है।

(9) साम्यवादी देशों में भूमिका विभेदीकरण के अभाव के कारण यह दृष्टिकोण सभी साम्यवादी देशों की राजनीतिक व्यवस्थाओं को समझने में असमर्थ है।

(10) इस दृष्टिकोण के द्वारा तीसरी दुनिया के देशों की समस्याओं का समाधान करने में भी कोई सहायता नहीं मिल सकी है। विभिन्न देशों की सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितयां अलग-अलग होती हैं। इसलिए पश्चिमी देशों के विचारकों द्वारा तैयार किए गए मॉडल के आधार पर इन देशों की राजनीति का अनुभवसिद्ध विश्लेषण सम्भव नहीं है।

(11) यह दृष्टिकोण राजनीतिक व्यवस्था को सामाजिक व्यवस्था की अन्य उप-व्यवस्थाओं से अलग देखता है, जबकि वास्तविक रूप में राजनीतिक व्यवस्था अन्य सामाजिक उप-व्यवस्थाओं के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़ी होती हैं। अतः राजनीतिक व्यवस्था को सामाजिक व्यवस्था से स्वायत्त मान लेना अनुचित है।

(12) इस दृष्टिकोण में स्वाभाविक रूप से विकसित संरचनाओं पर ही अधिक जोर दिया गया है। इसमें आरोपित संरचनाओं के लिए कोई जगह नहीं है। इसलिए यह विकासशील देशों की आरोपित संरचनाओं का अध्ययन करने में असमर्थ सा प्रतीत होता है।

(13) यह दृष्टिकोण संघर्ष की अपेक्षा सहमति को ही राजनीतिक व्यवस्था का आधार मानता है लेकिन मार्क्सवादी दृष्टि संघर्ष को ही राजनीतिक विकास का अनिवार्य तत्व मानती है। इसलिए यह उपागम मार्क्सवादी सिद्धान्तों के सर्वथा प्रतिकूल है।

उपरोक्त विवेचन के बाद कहा जा सकता है कि संरचनात्मक प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण एक सीमित सा दृष्टिकोण प्रतीत होता है। इसमें राजनीतिक व्यवस्था को गतिशील बनाने वाले महत्वपूर्ण तथ्यों की अनदेखी की गई है। रिग्स ने कहा है कि यह

दृष्टिकोण समग्र व्यवस्था-विश्लेषण के लिए भले ही उपयोगी हो; लेकिन नीति-निर्धारण की दृष्टि से अत्यन्त सीमित महत्व का है। इसी तरह मीहान ने भी इसे अपूर्ण व अस्पष्ट मॉडल कहा है। सार रूप में कहा जा सकता है कि यह दृष्टिकोण यथास्थिति, स्थायित्व और सन्तुलन जैसी अनुदारवादी अवधारणाओं का पक्षधर है और इसकी तुलनात्मक राजनीति में उपयोगिता सीमित है।

संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण का महत्व

(Importance of Structural-Functional Approach)

संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण पर लगाए गए आपेक्षों का यह अर्थ नहीं है कि यह दृष्टिकोण महत्वशून्य है। सत्य तो यह है कि तुलनात्मक शासन और राजनीति के अध्ययन में यह दृष्टिकोण काफी उपयोगी सिद्ध हुआ है, क्योंकि इससे उन राजनीतिक व्यवस्थाओं की तुलना के लिए मानक आधार मिल जाते हैं जो एक दूसरे से बहुत भिन्न है। इस दृष्टिकोण ने एक ऐसा सैद्धान्तिक विचार प्रस्तुत किया है जो विश्लेषणात्मक व आनुभाविक रूप में तुलनात्मक राजनीति को महत्वपूर्ण सामग्री प्रदान करता है। इस दृष्टिकोण ने तुलनात्मक अध्ययन को परम्परागत दृष्टिकोण के पाश से मुक्त करके आधुनिक व वैज्ञानिक आधार प्रदान किया है। इससे तुलनात्मक राजनीति में एक सामान्य-सिद्धान्त के निर्माण का मार्ग प्रशस्त हुआ है। यह दृष्टिकोण राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्थाओं की अन्तर्निर्भरता के प्रति संवेदनशील रहा है। यह राजनीतिक व्यवस्था को सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत रखकर ही राजनीतिक घटनाओं को समझने का प्रयास करता है। इस दृष्टिकोण ने एक ऐसा संगत और विस्तीर्ण सिद्धान्त दिया है जिससे राजनीतिक व्यवस्था के विभिन्न पहलुओं के सम्बन्ध में स्पष्ट परिकल्पनाएं निकाली जा सकती हैं। इस दृष्टिकोण ने राजनीतिक व्यवस्था की परिकल्पनाएं निकाली जा सकती हैं। इस दृष्टिकोण ने राजनीतिक व्यवस्था की संरचनाओं और प्रकार्यों में जो कार्यात्मक सम्बन्ध स्थापित किया है उससे वास्तविक राजनीतिक व्यवहार का पता लगाना आसान हो गया है। इससे राजनीतिक व्यवस्थाओं के वास्तविक कार्य-संचालन को समझना आसान हुआ है और यथार्थवादी निष्कर्ष निकालने और राजनीतिक व्यवस्था की गत्यात्मक शक्तियों को समझने में मदद मिली है। अतः संरचनात्मक-कार्यात्मक दृष्टिकोण तुलनात्मक राजनीतिक दृष्टिकोण के लिए एक महत्वपूर्ण व उपयोगी दृष्टिकोण है।

(III) मार्क्सवादी-लेनिनवादी दृष्टिकोण

(Marxist-Leninist Approach)

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद विकासशील देशों की राजनीतिक व्यवस्थाओं के अध्ययन के लिए प्रयुक्त सभी उपागमों के असफल रहने पर मार्क्सवादी विचारकों ने मार्क्स व लेनिन की धारणाओं पर अपना स्थान केन्द्रित करते हुए एक नए उपागम को प्रस्तुत किया है जिसे मार्क्सवादी-लेनिवादी उपागम के नाम से जाना जाता है। इस उपागम के विचारकों ने अन्य विद्वानों द्वारा प्रस्तुत उपागमों पर यह आरोप लगाया कि पाश्चात्य जगत के विद्वानों ने वैज्ञानिक और सुव्यवस्थित अध्ययन के बावजूद भी कोई ऐसा सर्वमान्य सिद्धान्त या उपागम प्रस्तुत नहीं किया है जो समस्त प्रकार की राजनीतिक व्यवस्थाओं का तुलनात्मक अध्ययन कर सके। पाश्चात्य विचारकों द्वारा प्रस्तुत संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक मॉडल तथा व्यवस्था विश्लेषण दृष्टिकोण साम्यवादी राजनीतिक व्यवस्थाओं वाले देशों की राजनीति का तुलनात्मक अध्ययन नहीं कर सकते। विश्व में साम्यवाद के बढ़ते दौर से राजनीतिक विश्लेषकों के सामने सबसे प्रतुख समस्या यही रही है कि साम्यवादी व्यवस्थाओं के अध्ययन के लिए कौनसा उपागम अपनाया जाए क्योंकि इन देशों में राजनीतिक नेताओं, राजनीतिक दलों और समूहों द्वारा निभाई जाने वाली भूमिकाएं पाश्चात्य राजनीतिक व्यवस्थाओं से भिन्न है। इसी समस्या से निजात पाने के लिए राजनीतिक व्यवस्थाओं से भिन्न है। इसी समस्या से निजात पाने के लिए मार्क्सवादी-लेनिनवादी उपागम का जन्म हुआ। स्टीफेन तथा कलार्कसन ने मार्क्स व लेनिन के सिद्धान्तों को ही आधार बनाकर इस उपागम का विकास किया।

मार्क्सवादी-लेनिनवादी उपागम की आवश्यकता

(The Necessity of Marxist-Leninist Approach)

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद विकासशील देशों की राज-व्यवस्थाओं का राजनीतिक विकास, राजनीतिक आधुनिकीकरण, रजानीतिक संस्कृति आदि नई अवधारणाओं के आधार पर व्यवस्थित अध्ययन के लिए अनेक पद्धतियों व दृष्टिकोणों का सहारा लिया गया। तुलना के नए आयामों ने तुलनात्मक राजनीतिक अध्ययन को सिद्धान्त निर्माण के अन्तिम पड़ाव पर लाकर छोड़

दिया। काफी प्रयासों के बाद भी राजनीतिक सिद्धान्त कोई सामान्य सिद्धान्त पेश नहीं कर सके जो हर परिस्थिति में हर राज-व्यवस्था का सम्पूर्ण अध्ययन या विश्लेषण कर सके। साम्यवाद के बढ़ते प्रसार से भी राजनीतिक विद्वान चिन्तित हो गए। नए प्रकार की साम्यवादी राजनीतिक व्यवस्थाओं का अध्ययन करने के लिए भी उन्हें नए दृष्टिकोण की आवश्यकता थी। ऐसे में अमेरिकन राजनीति शास्त्रियों स्टीफेन तथा क्लार्कसन का ध्यान मार्क्सवादी-लेनिनवादी उपागम की तरफ गया। धीरे-धीरे इस दृष्टिकोण को प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था की चीर-फाड़ करके अध्ययन करने में उपयुक्त पाया गया। पिछले दो दशकों से यह दृष्टिकोण तुलनात्मक अध्ययन के लिए प्रमुख दृष्टिकोण है। इसके प्रचलन व उपयोगिता में वृद्धि होने के तीन कारण हैं :-

(I) तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन के अन्य उपागमों द्वारा सामान्य सिद्धान्त के निर्माण में असफल रहना :- द्वितीय विश्व युद्ध के बाद व्यवस्था विश्लेषण दृष्टिकोण व संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोणों के द्वारा तुलनात्मक अध्ययन के सामान्यीकरण के प्रयास किए गए। इन उपागमों में प्रयुक्त प्रत्ययों व अवधारणाओं को जटिलताओं ने राजनीतिक विश्लेषण के प्रति सन्देह उत्पन्न कर दिया। विकासशील देशों की राजनीतिक व्यवस्था में होने वाले तीव्र परिवर्तनों ने प्रचलित उपागमों को चुनौती दी। उदाहरण के लिए पाकिस्तान में तानाशाही शासन की स्थापना ने संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक अध्ययन को चुनौती पेश की। ऐसे वातावरण में कोई राजनीतिक दृष्टिकोण सामान्यीकरण द्वारा अपना कार्य नहीं कर सका।

(II) पाश्चात्य विकासवादी विश्लेषण की संकल्पनात्मक असफलता :- पाश्चात्य विद्वानों द्वारा विकसित दृष्टिकोणों में प्रयुक्त प्रत्ययों व अवधारणाओं के अर्थ में पाई जाने वाली भिन्नता ने प्रचलित उपागमों को अप्रासंगिक बना दिया। सभी राजनीतिक विद्वान इन अवधारणाओं को परिभाषित करने के चक्कर में पड़कर सामान्य सिद्धान्त निर्माण के मूल उद्देश्य से पीछे हट गए। राजनीतिक व्यवस्था को परिभाषित करने पर अनेक मत प्रचलित हो गए। इस संकल्पनात्मक अनुपयोगिता या पतन से प्रत्ययी समानता वाले उपागम की आवश्यकता अनुभव हुई।

(III) पाश्चात्य ढांचे द्वारा नवोदित राज्यों की राजनीति का संतोषजनक अध्ययन न किया जाना :- नवोदित विकासशील देशों में राजनीतिक अस्थिरता को जन्म देने वाले कारणों को जानने में पाश्चात्य उपागम असफल रहे। इसी कारण नए उपागम की आवश्यकता महसूस की जाने लगी।

(IV) साम्यवादी राजनीतिक व्यवस्थाओं का जन्म :- द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद रूस एक महान शक्ति के रूप में उभरा। धीरे धीरे पूर्व यूरोप और हिन्द चीन के क्षेत्र में भी साम्यवाद का प्रभाव बढ़ने लगा। इन साम्यवादी देशों की जटिल राजनीतिक व्यवस्थाओं का विश्लेषण करने के लिए पाश्चात्य राजनीति शास्त्रियों के पास कोई उपागम नहीं था। इस प्रकार साम्यवादी राजनीतिक व्यवस्थाओं के अध्ययन के लिए मार्क्सवादी लेनिनवादी दृष्टिकोण ही उचित प्रतीत हुआ।

इस प्रकार प्रचलित उपागमों को अपूर्ण मानकर राजनीतिक विद्वानों ने एक ऐसे दृष्टिकोण को विकसित करने का निश्चय किया जो सामान्य सिद्धान्त प्रस्तुत कर सके। जिसमें संकल्पनात्मक स्थायित्व हो व जो विकासशील देशों की राजनीतिक व्यवस्थाओं के विभिन्न पहलुओं की जानकारी दे सके और जिसके निष्कर्ष आम व्यक्ति की समझ में आ सके। इसलिए उन्होंने मार्क्सवादी-लेनिनवादी दृष्टिकोण का ही विकास किया, क्योंकि इस दृष्टिकोण में ही प्रत्ययी व संकल्पनात्मक समानता थी। यह दृष्टिकोण किसी भी देश की हर परिस्थिति में तुलनात्मक व्याख्या प्रस्तुत करने में समर्थ था।

मार्क्सवादी-लेनिनवादी धारणा का अर्थ (Meaning of the Concept of Marxist-Leninist) :- मार्क्सवादी-लेनिनवादी धारणा मार्क्स और लेनिन के विचारों पर आधारित है। दोनों के विचार द्वन्द्ववाद पर आधारित है। दोनों का मानना है कि समाज के विकास में द्वन्द्ववादी शक्तियों की प्रमुख भूमिका होती है। इनका मानना है कि समाज के विकास में द्वन्द्ववादी शक्तियों की प्रमुख भूमिका होती है। इनका मानना है कि प्रत्येक युग की व्यवस्था के निर्माण में उत्पादन शक्तियों का विशेष हाथ रहा है। वर्ग-संघर्ष का प्रत्यय एक स्थाई प्रत्यय है। इसके आधार पर किसी भी युग की कैसी भी व्यवस्था का विश्लेषण किया जा सकता है। मार्क्स का विचार था कि समस्त ऐतिहासिक घटनाओं पर आर्थिक घटनाओं का ही प्रभाव पड़ता है। समस्त सामाजिक ढांचा आर्थिक ढांचे के अनुसार ही बदलता रहता है। समस्त ऐतिहासिक घटनाएं भौतिकवादी परिस्थितियों के ही निष्कर्ष है। समाज में हर युग में दो विरोधी वर्ग रहे हैं। कभी ये वर्ग दास और स्वामी, कभी अमीर-गरीब, कभी शोषक-शोषित, कभी पूंजीपति और श्रमिक के रूप आर्थिक सम्बन्धों के नियामक रहे हैं। जिस वर्ग के पास आर्थिक शक्ति रही है, उसने सदैव दूसरे का शोषण किया है। इस व्यवस्था में राज्य भी एक वर्ग है जो पूंजीपतियों या साधन सम्पन्न व्यक्तियों कि हितों का पोषक है। राज्य कोई स्थायी संस्था नहीं है। मार्क्सवादी क्रान्ति के सफल हो जाने पर वर्ग विहीन समाज की स्थापना के बाद राज्य

समाप्त हो जाएगा। इसका अस्तित्व संक्रमणकालीन दौर में ही रहेगा। जब पूंजीवादी वर्ग का सर्वहारा वर्ग नाश कर देगा और उत्पादन के साधनों पर अपना वर्चस्व कायम कर लेगा तो राज्य अनावश्यक हो जाएगा। उस समय राज्य का स्थान ऐसे समुदाय ले लेंगे जो व्यक्तियों द्वारा स्वतन्त्रता और स्वेच्छा से बनाए जायेंगे। ऐसी व्यवस्था प्रत्येक पूंजीवादी देश में स्थापित हो जाएगी। लेनिन ने भी मार्क्स के विचारों से सहमति दिखाते हुए अपने साम्यवादी सिद्धान्तों के अन्त में वर्ग-संघर्ष द्वारा समाजवाद की स्थापना की बात स्वीकार की है। उसने कहा है कि राज्य का स्वरूप चाहे कैसा भी हो, वह वर्ग संघर्ष का अस्तित्व ही प्रकट करता है। लेनिन ने क्रान्ति की नई व्यवस्था के निर्माण के लिए मार्क्स से अधिक महत्व दिया है।

मार्क्सवादी-लेनिनवादी दृष्टिकोण की व्याख्या

(Explanation of Marxist-Leninist Approach)

यह दृष्टिकोण ऐतिहासिक गम्यात्मकता तथा सामाजिक प्रासंगिकता में विश्वास रखता है। इस दृष्टिकोण की मान्यता है कि औपचारिक संरचनाओं व संस्थाओं के द्वारा राजनीतिक प्रक्रियाओं को आधार मिलता है। इस दृष्टिकोण से समर्थकों का विश्वास है कि सामाजिक विज्ञानों का अन्तःशास्त्रीय दृष्टिकोण से अध्ययन करना चाहिए ताकि तुलनात्मक अध्ययन को उपयोगी बनाया जा सके। इस दृष्टिकोण के समर्थकों का दावा है कि राज्यशक्ति, वर्ग, उद्योगों आदि की धारणाएं आज भी वहीं हैं जो सैंकड़ों वर्ष पहले थी। इन धारणाओं का विकासशील देशों की धारणाओं से भी साम्य है। आज मार्क्सवादी-लेनिनवादी दृष्टिकोण में जो प्रत्यय व अवधारणाएं प्रयुक्त होती हैं, वे विकासशील देशों की राजनीतिक व्यवस्थाओं की व्याख्या करने में सक्षम हैं। इसलिए विकासशील देशों की राजनीतिक व्यवथाओं का अध्ययन करने के लिए किसी अन्य नए उपागम की कोई आवश्यकता नहीं है। प्रत्ययी स्थायित्व के कारण यह दृष्टिकोण प्रत्येक प्रकार की राजनीतिक व्यवस्था की व्याख्या करने में समर्थ है।

मार्क्सवादी विचारक राजनीति को कोई स्वतन्त्र गतिविधि न मानकर उसे आर्थिक गतिविधियों से जुड़ी हुई मानते हैं। इस दृष्टिकोण का मानना है कि समाज के सभी सदस्य अपने हित साधन के उद्देश्य से ही नागरिक समाज का गठन करते हैं। नागरिक समाज उनके स्वार्थों को पूरा कर सकता है। राजनीतिक जीवन उन्हें एकता के जाल में कभी नहीं बांध सकता। नागरिक समाज की उत्पादन शक्तियां ही राजनीतिक जीवन की नियामक होती हैं। इसी कारण सभी समाजों की राजनीति में मौलिक अन्तर आ जाता है और अलग-अलग संरचनाएं व उप-संरचनाएं जन्म लेने लगी हैं। इसलिए राज्य की औपचारिक संस्थाओं और संरचनाओं का अध्ययन ही उपयुक्त रहता है। इसलिए अलग-अलग प्रकार की राजनीतिक व्यवस्थाओं व संरचनाओं के राजनीतिक व्यवहार को समझने के लिए समग्रवादी दृष्टिकोण ही अपनाया जाना चाहिए। ऐसा दृष्टिकोण मार्क्सवादी-लेनिनवादी दृष्टिकोण ही है, क्योंकि इसकी अवधारणाएं, मान्यताएं, प्रविधियाएं व प्रत्यय स्थाई हैं। इस दृष्टिकोण द्वारा किसी भी युग की किसी भी प्रकार की व्यवस्था का सग्रमवादी अध्ययन किया जा सकता है। इस अध्ययन में शक्ति के आर्थिक पहलू को ही प्रमुख स्थान मिलना चाहिए क्योंकि यही राजनीतिक गतिविधियों के संचालन का आधार है।

मार्क्सवादी-लेनिनवादी दृष्टिकोण की विशेषताएं

(Characteristics of Marxist-Leninist Approach)

यह दृष्टिकोण तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन में बहुत महत्वपूर्ण है। इसकी प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं :-

(1) प्रत्ययी स्थायित्व (The Conceptional Stability) :- इस दृष्टिकोण द्वारा प्रयुक्त प्रत्यय व अवधारणाएं शाश्वत महत्व की हैं। इस दृष्टिकोण द्वारा प्रयुक्त राज्य, सरकार, वर्ग-संघर्ष आदि प्रत्ययों का आज भी वही अर्थ है जो सैंकड़ों वर्ष पहले था। इस प्रत्ययी स्थायित्व के कारण राजनीतिक व्यवस्थाओं की ऐतिहासिक व सामसामयिक दोनों आधारों पर तुलना करना आसान हो जाता है और प्रत्ययों को पुनः परिभाषित करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। इससे शोध के सामान्य व विशिष्ट लक्ष्यों को लक्ष्यों को प्राप्त करने में आसानी रहती है इससे अध्ययन में सरलता का गुण पैदा हो जाता है।

(2) संघटित या समग्रवादी पद्धति (Integrated or Wholistic Methodology) :- इस दृष्टिकोण में समग्रवादी पद्धति का प्रयोग किया जाता है। इसमें अलग-अलग तुलनाओं का कोई महत्व नहीं है। इसमें निष्कर्षों तक पहुंचने के लिए सभी परिवर्त्यों और तत्वों का ध्यान रखना व उनको शामिल करना आवश्यक है। विकासशील देशों को परिवर्तनशील राजनीतिक व्यवस्थाओं को समझने के लिए इस प्रकार की पद्धति अधिक उपयोगी है।

(3) ऐतिहासिक गत्यात्मकता पर आधारित (Based on Historical Dynamicism) :- यह दृष्टिकोण इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या द्वारा भावी विकास की गति को समझने में हमारी मदद करता है। इस दृष्टिकोण में ऐतिहासिक विकास की प्रेरक शक्तियों को विशेष महत्व दिया है। इस दृष्टिकोण में मार्क्स के ऐतिहासिक भौतिकवाद, वर्ग संघर्ष की अवधारणा द्वारा समाजों की गत्यात्मकता को समझने पर बल दिया है। अतः यह उपागम ऐतिहासिक दृष्टि से गत्यात्मकता पर आधारित है।

(4) सामाजिक दृष्टि से प्रासांगिक दृष्टिकोण (Socially relevant Approach) :- यह दृष्टिकोण आदर्शवादिता से दूर रहकर ठोस सामाजिक समस्याओं पर ही अपना ध्यान केन्द्रित करता है। इस दृष्टिकोण के समर्थकों का ध्येय केवल सिद्धान्त निर्माण करना ही नहीं था, बल्कि उन्होंने एक ऐसा दृष्टिकोण विकसित करने का प्रयास किया है जो सामाजिक उपयोगिता रखता हो। इस दृष्टिकोण का सामाजिक समस्याओं से गहरा सम्बन्ध है। समजा में विद्यमान आर्थिक असमानता पर दृष्टि डालना इसका प्रमुख लक्ष्य है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि मार्क्सवादी-लेनिनवादी दृष्टिकोण एक विहंगतम दृष्टिकोण है। यह अध्ययन के यथार्थवादी रूप पर जोर देता है। इसका प्रमुख जोर व्यवहारिक ज्ञान पर है और यह विकासशील दशों की राज-व्यवस्थाओं का अस्थायित्व के दौर में भी विश्लेषण करने में सक्षम है।

मार्क्सवादी-लेनिनवादी दृष्टिकोण का महत्व

(Importance of Marxist-Leninist Approach)

इस दृष्टिकोण का महत्व निम्न कारणों से है :-

(1) इस दृष्टिकोण द्वारा राजनीतिक व्यवस्था की गत्यात्मक शक्तियों को समझना आसान है। यह दृष्टिकोण उन परिवर्त्यों और तथ्यों की खोज करता है जिनसे कोई राजनीतिक व्यवस्था गतिशील बनती है।

(2) प्रत्ययी स्थापित्व के कारण यह दृष्टिकोण किसी भी प्रकार की राजनीतिक व्यवस्था को समझने में सक्षम है। प्रत्ययी स्थायित्व के कारण संकल्पनाओं की जटिलता व अर्थ-विभिन्नता की समस्या स्वतः ही दूर हो जाती है। इससे नीति-निर्धारकों और आम जनता में सम्पर्क बढ़ता है। शोध पूरा करने में भी शोधकर्ता को प्रत्ययों को पुनः परिभाषित नहीं करना पड़ता। यह प्रत्ययी स्थायित्व गत्यात्मकता का प्रतीक है, जड़ता का नहीं।

(3) यह दृष्टिकोण समग्रवादी अध्ययन पर जोर देता है। राजनीतिक व्यवस्था के सभी पहलुओं पर एक साथ दृष्टि रखने में यह दृष्टिकोण समर्थ है। राजनीति के समस्त पहलुओं पर एक साथ दृष्टि रखने से यह तुलनात्मक अध्ययन को अधिक सुगम व प्रभावी बनाता है। विकासशील देशों की परिवर्तनशील राजनीतिक व्यवस्थाओं का विश्लेषण करने में इस दृष्टिकोण की विहंगम दृष्टि बहुत लाभदायक है।

(4) यह दृष्टिकोण इतिहास की दृष्टि से एक गत्यात्मक दृष्टिकोण है। यह इतिहास की व्याख्या द्वारा अतीत के साथ साथ भावी विकास की अवस्था को समझने में भी सक्षम है। यह दृष्टिकोण समाज के विकास के प्रक्षकों व अवरोधों पर प्रकाश डालनते हुए व्यवस्थाओं को ऐतिहासिक विकास से सम्बन्धित करता है। यह विकासशील राज-व्यवस्थाओं के दिशाहीन परिवर्तनों को समझने में इतिहास का ही सहारा लेता है। इसके द्वारा सम्पूर्ण विश्व के इतिहास के आधार पर भी अध्ययन किया जा सकता है। इससे राजनीतिक व्यवहार को वास्तविक बनाने वाले गत्यात्मक तत्वों की ऐतिहासिक आधार पर भी जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

(5) अन्तःशास्त्रीय अध्ययनों पर बल देने के कारण यह दृष्टिकोण अध्ययन को यथार्थवादी और व्यावहारिक बनाने में मदद करता है।

(6) यह उपागम आदर्शी सिद्धान्तों के निर्माण की बजाय ठोस सामाजिक समस्याओं को समझने व स्पष्ट करने में मदद करता है। इसका सम्बन्ध उन ठोस सामाजिक समस्याओं से है जो राजनीतिक व्यवस्थाओं के विघटन का कारण बनती है और उन्हें पतन के गर्त में धकेलती हैं।

(7) यह उपागम विकासशील देशों में परिवर्तनशील राजनीतिक व्यवस्थाओं की प्रकृति को समझने व अध्ययन करने में अन्य दृष्टिकोणों की तुलना अधिक अच्छा है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि मार्क्सवादी-लेनिनवादी दृष्टिकोण तुलनात्मक अध्ययन के लिए एक उपयोगी दृष्टिकोण है। प्रत्ययी स्थायित्व के कारण यह शोध को क्रमबद्ध व व्यवस्थित बनाने में सक्षम है। विकासशील देशों में पाई जाने वाली राजनीतिक अस्थिरता के वातावरण में भी यह दृष्टिकोण अच्छा काम करता है। गतयात्मक शक्तियों की पहचान करने में सक्षम होने के कारण यह दृष्टिकोण विहंगम दृष्टि रखता है। इसके द्वारा किसी भी समय किसी भी प्रकार की राजनीतिक व्यवस्था का सम्पूर्ण अध्ययन किया जा सकता है। अतः मार्क्सवादी-लेनिनवादी दृष्टिकोण एक अति महत्वपूर्ण दृष्टिकोण है जो पिछले दो दशकों से तुलनात्मक अध्ययन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहा है।

मार्क्सवादी लेनिनवादी दृष्टिकोण की आलोचना

(Criticisms of Marxist Leninist Approach)

अनेक गुणों के बावजूद भी मार्क्सवादी-लेनिनवादी दृष्टिकोण आलोचना का शिकार हुआ है। इसकी आलोचना के प्रमुख आधार निम्नलिखित हैं :-

(1) विहंगम दृष्टि अपनाने के करण यह दृष्टिकोण छोटे-छाटे महत्वपूर्ण तथ्यों की अनदेखी कर देता है। यह सब राजनीतिक घटनाओं को समान समझने की भारी भूल करके तुलनात्मक अध्ययन को अनुपयोगी ही बनाता है। यह दृष्टिकोण सभी प्रकार की समस्याओं के लिए एक जैसी प्रविधियों के प्रयोग की अनुमति देता है। जबकि अलग समस्या के लिए अलग प्रविधि की ही आवश्यकता पड़ती है। इस तरह यह दृष्टिकोण सबको एक लाठी से हाँकना चाहता है।

(2) यह दृष्टिकोण राजनीतिक प्रक्रियाओं और सरंचनाओं को एक साथ मिलाकर अध्ययन पर जोर देता है। लेकिन वास्तव में राजनीतिक प्रक्रियाएं और सामाजिक संरचनाएं परस्पर इतनी उलझी हुई होती हैं कि समष्टि स्तर के अध्ययन सार्थक नहीं हो सकते। राजनीतिक व्यवहार को प्रभावित करने वाले परिवर्त्यों की संख्या इतनी अधिक होती है कि इनको एक साथ देखना असम्भव है। व्यष्टि स्तर के अध्ययन की उपेक्षा करने के कारण यह राजनीतिक समस्याओं की वास्तविकता को पूरी तरह समझने में असमर्थ है। विकासशील देशों की जटिल व अस्थिर राजनीतिक व्यवस्थाओं का अध्ययन इस दृष्टिकोण से करना निष्पक्ष नहीं हो सकता।

(3) यह दृष्टिकोण सिद्धान्त निर्माण की तो चिन्ता करता है, लेकिन उसकी परिशुद्धता का ध्यान नहीं रखता। इस दृष्टिकोण के समर्थक सिद्धान्त निर्माण तो करना चाहते हैं; लेकिन परिशुद्ध आंकड़े संकलित करने से कतराते है। इस दृष्टिकोण द्वारा प्राप्त तथ्यों को मापा नहीं जा सकता। बिना मापन के कोई भी निष्कर्ष परिशुद्धता की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता।

(4) इस दृष्टिकोण में प्रयुक्त वर्ग की अवधारणा को परिभाषित करना कठिन कार्य है। वर्ग की अवधारणा बहुत व्यापक है। इस दृष्टिकोण में वर्ग की अवधारणा का जितनी सरीता से प्रयोग किया गया है, व्यवहार में यह उतना ही मुश्किल है।

(5) यह दृष्टिकोण विकसित देशों की राजनीतिक व्यवस्थाओं की बजाय विकासशील देशों की राजनीतिक व्यवस्थाओं पर अधिक ध्यान केन्द्रित करता है जबकि विकासशील देशों की राजनीतिक व्यवस्थाएं विकसित देशों की राजनीतिक व्यवस्थाओं की तुलना में अधिक जटिल व उलझी हुई होती हैं। इनका अध्ययन करना एक कठिन कार्य है।

(6) यह दृष्टिकोण पद्धतियों की अपेक्षा उद्देश्यों को अधिक महत्व देता है। जबकि पद्धतियों का राजनीतिक विश्लेषण में सख्ती से पालन किए बिना संकलित तथ्यों की विश्वसनीयता की कोई गारन्टी नहीं हो सकती। राजनीतिक घटनाओं को समझने और उनका स्पष्टीकरण देने के चक्कर में इस दृष्टिकोण में अध्ययन पद्धति का बलिदान कर दिया गया है।

(7) शुम्पीटर और मैक्स वेबर ने मार्क्सवादी दृष्टि की इस आधार पर आलोचना की है कि अनेक मामलों में सामाजिक परिवर्तन आर्थिक की बजाय अन्य कारणों से होते हैं। मोस्का और पैरेटो ने भी इसे पक्षपातपूर्ण उपागम माना है।

(8) इस दृष्टिकोण में विरोधाभास के लक्षण हैं। एक तरफ तो यह वर्ग संघर्ष को शाश्वत् तत्व मानता है जबकि दूसरी तरफ वर्ग-विहीन समाज की स्थाना की बात भी करता है।

उपरोक्त विवेचन के बाद कहा जा सकता है कि मार्क्सवादी-लेनिनवादी उपागम एकपक्षीय व एकांगी है। विचारधारा विशेष से सम्बन्धित होने के कारण यह साम्यवादी राजनीतिक व्यवस्थाओं का ही पोषक है और इसमें विरोधाभासी तत्व भी विद्यमान हैं। लेकिन इसका अर्थ यह कदापि नहीं लेना चाहिए कि इस उपागम का कोई महत्व नहीं है। इस विश्लेषण के आगमन से अधिकतर समाजों व राज्यों में हो रहे सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक परिवर्तनों को समझना सरल हुआ है। राजनीतिक

व्यवस्था के सभी पहलुओं पर ध्यान देने के कारण इसमें अन्तःशास्त्रीय अध्ययन को बढ़ावा दिया है। इसने ऐतिहासिक दृष्टि रखते हुए समाज के भावी रूप के विकास पर भी ध्यान केन्द्रित किया है। इस दृष्टिकोण ने राजनीति शास्त्र को तुलनात्मक अध्ययन की दिशा में व्यवस्थित व वैज्ञानिक आधार प्रदान किया है। इस दृष्टिकोण ने हताश राजनीतिक विद्वानों को विकासशील राज-व्यवस्थाओं का तुलनात्मक अध्ययन करने की दिशा दिखाई है। इस उपागम ने अस्थिर राजनीतिक वातावरण में भी कार्य करके कोई अपनी उपादेयता सिद्ध की है। अतः मार्क्सवादी-लेनिनवादी दृष्टिकोण तुलनात्मक अध्ययन के लिए एक महत्वपूर्ण उपागम है।

--- o ---

अध्याय-3

संविधान और संविधानवाद

(Constitution and Constitutionalism)

मानव सभ्यता के विकास के साथ ही राजनीतिक शक्ति के प्रादुर्भाव का विचार भी जुड़ा है। यद्यपि यह तो आज तक भी एक रहस्यमयी पहेली बनी हुई है कि राजनीतिक शक्ति का जन्म कब और केसे हुआ ? इस बारे में एक बात तो अवश्य कल्पित की जा सकती है कि इसका जन्म राज्य या समाज जैसी संस्था के उदय के इतिहास से जुड़ा हुआ है। मानव ने विवेकशील प्राणी होने के नाते अपने ऊपर सभ्यता के विकास के साथ ही कुछ बाध्यकारी या उत्पीड़क तत्वों को प्रमुखता देनी शुरु की तो संविधान जैसी बाध्यकारी शक्ति का जन्म हुआ। आज यह एक सर्वमान्य धारणा या विचार बन चुका है कि समाज में कानून व व्यवस्था का होना अति आवश्यक है। इसी पर मानव सभ्यता का विकास निर्भर करता है और इसी पर राजनीतिक समाज का। मनुष्य की स्वतन्त्रता और राजनीतिक शक्ति के बीच सुस्थिर सम्बन्ध कायम करने के लिए आज सभी देश संविधान जैसी संस्था का महत्व स्वीकार करते हैं। आज राजनीतिक शक्ति के दुरुपयोग को रोकने तथा व्यक्ति की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए जिस कानूनी सुविधा का सहारा लिया जाता है, वह संविधान है।

संविधान की आवश्यकता

(Need of Constitution)

संविधान वह कानूनी दस्तावेज होता है जिसमें उन नियमों की व्याख्या होती है जो सरकार के गठन, कार्यों और उद्देश्यों को, सरकार के अंगों की शक्तियों को, नागरिकों के पारस्परिक सम्बन्धों तथा सरकार के साथ सम्बन्ध को निर्धारित करता है। इसमें नागरिक स्वतन्त्रताएं और मौलिक अधिकारों की व्यवस्था भी होती है जो व्यक्ति के व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यक शर्त होती है। इसी कारण आज सभी देशें में संविधान को विशेष महत्व दिया जाता है। जहां संविधान का अस्तित्व होता है, वहां राजनीतिक शक्ति के दुरुपयोग की संभावनाएं सीमित हो जाती हैं और शासक जनता पर मनमाना शासन नहीं काता। जिस देश में संविधान का अभाव होता है, वहां अराजकता की स्थिति होती है। वहां पर नागरिकों को न तो अपने अधिकारों का ज्ञान होता है और न ही कर्तव्यों का। यही स्थिति शासक वर्ग की होती है। इसलिए जैलीनेक ने कहा है कि संविधान के बिना राज्य नहीं रहेगा बल्कि अराजकता होगी। जिस देश में संविधान न हो वहां संविधानवाद की कल्पना करना बेकार है, संविधान के अभाव में न तो सरकार संविधानिक रह सकती है और न ही वहां संविधानवाद हो सकता है। यह आवश्यक नहीं है कि संविधान लिखित रूप में ही हो। यह परम्परागत नियमों का ऐसा अलिखित रूप भी हो सकता है जो दिमागी विचार बनकर शासक व शासितों के सम्बन्धों का नियमन करता है। ब्रिटेन में संविधान का अलिखित रूप ही है। फाईनर ने संविधान को शक्ति-सम्बन्धों की आत्म-कथा कहा है। जहां संविधान है, वहां समाज में एकता का तत्व स्वतः ही आ जाता है। लेकिन इसके लिए सिद्धान्त व व्यवहार में साम्य होना आवश्यक है। यह संविधान ही है जो शासक व शासितों के आपसी सम्बन्धों का निर्धारण करते हुए समाज में व्यवस्था बनाए रखता है। संविधान के अभाव में समाज में अराजकता की स्थिति पैदा हो जाती है और मानव समाज विकास की अपनी प्रारम्भिक अवस्था में पहुंच जाता है जहां से वह चला था। अतः संविधान राजनीतिक शक्ति का नियन्त्रक और मानव स्वतन्त्रता व अधिकारों का रक्षक व जन्मदाता है।

संविधान का अर्थ एवं परिभाषा

(Meaning and Definition of Constitution)

साधारण रूप में संविधान उन लिखित और अलिखित नियमों और कानूनों का समूह है जिसके आधार पर किसी भी देश की शासन-व्यवस्था संगठित की जाती है और शासन के विभिन्न अंगों के बीच शक्तियों का विभाजन किया जाता है तथा उन

सिद्धान्तों का निर्धारण होता है जिनके अनुसार वे शक्तियां प्रयोग में लाई जाती हैं। अर्थात् सामान्यतः यह उन नियमों का समूह होता है जो सरकार के विभिन्न कार्यों, उद्देश्यों सरकार के अंगों की शक्तियों, नागरिकों के पारस्परिक सम्बन्धों तथा सरकार के साथ सम्बन्धों का निर्धारण करते हैं। फ्रेडरिक ने संविधान को प्रभावशाली नियमित नियन्त्रण करने वाली शक्ति माना है जो सरकार पर नियन्त्रण रखती है और दूसरी ओर समाज का नियमन करने वाली शक्ति भी है। संविधान को कुछ विद्वानों ने निम्न प्रकार परिभाषित किया है :-

(1) आस्टिन के अनुसार "संविधान वह है जो सर्वोच्च सरकार के संगठन को निश्चित करता है।"

(2) डायसी के अनुसार-"वे सभी नियम, जिनके द्वारा प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में राजसत्ता का वितरण तथा प्रयोग किया जाता है, राज्य का संविधान कहलाते हैं।"

(3) लोवेन्स्टीन के अनुसार-"संविधान शक्ति प्रक्रिया पर नियन्त्रण के लिए आधारभूत साधन है और इसका प्रयोजन राजनीतिक शक्ति पर सीमा लगाने और नियन्त्रण करने के तरीकों का उच्चारण है।"

(4) वूस्टर के अनुसार-"संविधान वह आधारभूत कानून है जो सरकार की शक्तियों और कार्यों को परिभाषित करता है, यह व्यवस्था करता है कि उसमें 'संविधानिक परिवर्तन कैसे किए जाएं।' यह सरकार की निरंकुशता के विरुद्ध नागरिकों को कुछ रक्षाओं की गारन्टी भी देता है।"

(5) सी०एफ० स्ट्रांग के अनुसार-"संविधान उन सिद्धान्तों का समूह है जिनके अनुसार राज्य के अधिकारों, नागरिकों के अधिकारों और दोनों के सम्बन्धों में सामंजस्य स्थापित किया जाता है।"

(6) ब्राईस के अनुसार-"किसी राज्य या राष्ट्र के संविधान उन कानूनों या नियमों का ढांचे होते हैं जो शासन के आकार,उसके निर्माण और उसके प्रति नागरिकों के अधिकारों और कर्तव्यों की व्याख्या करते हैं।"

(7) गिलक्राइस्ट के अनुसार-"राज्य का संविधान उन लिखित या अलिखित नियमों का समूह है जो सरकार का संगठन, शक्तियों का विभिन्न अंगों में वितरण तथा इन शक्तियों के प्रयोग के सामान्य सिद्धान्तों को निश्चित करता है।"

इस प्रकार कहा जा सकता है कि संविधान उन लिखित-अलिखित नियमों व कानूनों का समूह होता है या कानूनी दस्तावेज होता है जिसके आधार पर शासक व शासितों के सम्बन्धों का निर्धारण होता है और शासन-व्यवस्था का संचालन किया जाता है। इसलिए किसी भी राजनीतिक व्यवस्था की सही प्रकृति जानने के लिए संविधान का सैद्धान्तिक और व्यवहारिक रूप समझना आवश्यक है, क्योंकि कई देशों में संविधान का लिखित रूप तो कुछ कहता है, जबकि व्यवहार में उसके विपरीत कार्य होता है।

संविधानों का वर्गीकरण
(Classification of Constitutions)

सभी देशों के संविधान एक समान नहीं होते हैं। प्रत्येक देश के संविधान पर यहां की राजनीतिक, सामाजिक व धार्मिक विचारधारा का प्रभाव भी अवश्य पड़ता है। संविधानों का वर्गीकरण कई आधारों पर किया जाता है। संशोधन विधि के आधार पर इसे कठोर और लचीला दो भागों में बांटा जाता है। शक्तियों के विभाजन के आधार पर इसे एकात्मक व संघात्मक में तथा शासन के अंगों के आपसी सम्बन्धों के आधार पर इसे संसदीय व अध्यक्षात्मक में बांटा जाता है। लेकिन कुछ विचारक संविधानों के अन्य रूपों पर भी अपने विचार प्रकट करते हैं। आज सामान्य तौर पर संविधानों के निम्नलिखित वर्गीकरणों को ही प्रमुखता दी जाती है :-

(I) लिखित तथा अलिखित संविधान (Written and Unwritten)

(II) लचीला तथा कठोर संविधान (Flexible and Rigid Constitution)

(III) विकसित तथा निर्मित संविधान (Evolved and Enacted Constitution)

(I) लिखित तथा अलिखित संविधान
(Written and Unwritten Constitution)

लिखित संविधान वह होता है जो पूर्ण रूप में लिखित हो। भारत, अमेरिका, चीन, सोवियत संघ, फ्रांस आदि देशों के संविधान

लिखित संविधान है। इसके विपरीत अलिखित संविधान वह होता है जिसके नियम अलिखित रूप में परम्पराओं व रीति-रिवाजों पर आधारित होता है। यह संविधान पूर्णरूप से अलिखित नहीं होता बल्कि इसका कुछ भाग कालान्तर में लिखित बनता जाता है। संसद द्वारा निर्मित कानून तथा न्यायिक निर्णय संविधान को लिखित रूप प्रदान करते हैं। इसलिए ब्रिटेन में अलिखित संविधान भी आज अलिखित नहीं है। अलिखित संविधान की यह प्रमुख विशेषता होती है कि यह संविधान सभा द्वारा निर्मित नहीं होता बल्कि विकास का परिणाम होता है। इसी कारण लिखित संविधान का भी कुछ भाग संसदीय कानूनों और न्यायिक निर्णयों के रूप में विकसित ही होता है। लेकिन आज इस बात का कोई महत्व नहीं रह गया है कि संविधान लिखित है या अलिखित। आज इंग्लैण्ड में मैग्ना कार्टा, बिल ऑफ राईटस आदि कानून संविधान का लिखित रूप ही हैं।

लिखित संविधान :- लिखित संविधान वह होता है जो संविधान सभा द्वारा निर्मित हो। इसमें सरकार के संगठन, कार्यों, उद्देश्यों सरकार के अंगों के अधिकार व शक्तियों का, सरकार का नागरिकों के साथ सरकार तथा नागरिकों के अधिकारों व कर्तव्यों का लिखित वर्णन होता है। लिखित संविधान देश का सर्वोच्च कानून होता है। जो भी साधारण कानून संविधान का उल्लंघन करता है, उसे असंविधानिक करार दे दिया जाता है। इस संविधान का प्रमुख अवगुण इसका अलचीलापन होता है। इसमें समय और परिस्थिति के अनुसार आसानी से परिवर्तन नहीं हो सकता। इसलिए इसमें क्रांन्ति की सम्भावना बनी रहती है, क्योंकि यह संकटकालीन परिस्थितियों का सामना आसानी से नहीं कर सकता। दूसरा अवगुण यह है कि इसमें निर्बाध विकास के अवसर नहीं होते क्योंकि यह समय के अनुसार गतिशील और परितर्वनशील नहीं होता। लेकिन इस संविधान में प्रमुख गुण यह है कि इसमें स्पष्टता व निश्चितता का गुण होता है। इसमें नागरिकों को सरकार की शक्तियों व अधिकारों का स्पष्ट ज्ञान होता है। इसी कारण इसमें सरकार के अंगों में विरोध व गतिरोध की सम्भावनाएं ना के बराबर रह जाती हैं। इसका दूसरा गुण यह है कि संविधान का लिखित रूप होने के कारण इसमें शासक वर्ग अत्याचारी नहीं बन सकता। इस तरह निश्चितता व स्पष्टता इसका प्रमुख गुण है तथा अलचीलापन इसका प्रमुख अवगुण है।

अलिखित संविधान :- अलिखित संविधान वह होता है जो संविधान सभा द्वारा निमिर्तत न होकर परम्पराओं, रीति-रिवाजों, संसदीय कानूनों और न्यायिक निर्णयों के रूप में विकसित होता है। ऐसा संविधान आवश्यकतानुसार बदलता रहता है। यह संविधान पूर्ण रूप से अलिखित नहीं होता। ऐसे संविधान में संशोधन करने के लिए विशेष विधि को नहीं अपनाना पड़ता। इसमें संसद साधारण बहुमत से संशोधन कर सकती है। इसलिए इसका प्रमुख गुण इसका लचीलापन ही है। इंग्लैण्ड का संविधान इसी कोटि का संविधान है। वहां पर परम्पराओं, न्यायिक निर्णयों, संसदीय कानूनों के रूप में संविधान का अलिखित रूप विकसित हुआ है जो लिखित संविधानों से भी बढ़कर है। लार्ड ब्राइस ने लिखा है-"ब्रिटिश संविधान महान संवैधानिक शिलालेखों, अधिनियमों, न्यायिक निर्णयों, कानून और परम्पराओं स मिलता है।" इसी तरह प्रो० मुनरो ने इसे बुद्धि और अवसर का परिणाम कहा है जो चार्टरों, विधियों, न्यायिक निर्णयों, प्रचलित नियमों व दृष्टांतों, आचरणों तथा रीति-रिवाजों से मिलकर बना है। अलिखित संविधान को समयानुसार परिवर्तन करना आसान होता है। इसमें क्रान्ति की संभावना भी नहीं रहती, क्योंकि यह संकटकाल में परिवर्तन का गुण रखता है। इसका दूसरा गुण यह है कि इसमें निर्बाध विकास के अवसर होते हैं और यह समयानुसार गतिशील व परिवर्तनशीलता की तरफ उन्मुख होता है। इसका प्रमुख दोष इसकी अनिश्चित व अस्पष्टता है, क्योंकि इसके अंश लिखित नहीं होते। इसमें सरकार के अंगों की शक्तियों का स्पष्ट विभाजन न होने के कारण क्षेत्राधिकार अतिक्रमण को लेकर अनिश्चिय की स्थिति ही बनी रहती है। इसमें नागरिकों को भी सरकार की शक्तियों व अपने अधिकारों का भी ज्ञान नहीं रहता। इसलिए इसमें विवाद की सम्भावनाएं बढ़ जाती हैं और शासक वर्ग के निरंकगुश बनने का खतरा भी कई गुणा अधिक होता है। इस तरह लचीलापन इसका प्रमुख गुण है जबकि अस्थायीपन व अस्पष्टता इसका प्रमुख दोष है।

लिखित व अलिखित संविधान में अन्तर

(Difference between Writen and Unwriten Constitution)

लिखित और अलिखित संविधान में प्रमुख अन्तर निम्मलिखित हो सकते हैं :-

(1) लिखित संविधान का अधिकांश भाग लिखित होता है, जबकि अलिखित संविधान का अधिकांश भाग अलिखित होता है।

(2) लिखित संविधान निश्चित समय पर निश्चित स्थल पर संविधान सभा द्वारा बनाया गया होता है, जबकि अलिखित संविधान का धीरे-धीरे विकास होता है अर्थात यह क्रमिक ऐतिहासिक विकास का प्रतिफल होता है।

(3) लिखित संविधान में संशोधन करने की विधि कठोर होती है, जबकि अलिखित संविधान में साधारण बहुमत से संसद

परिवर्तन या संशोधन कर सकती है।

(4) लिखित संविधान कम लचीला होता है, जबकि अलिखित संविधान में अधिक लचीलापन पाया जाता है।

(5) लिखित संविधान में साधारण कानून तथा संविधानिक कानून में अन्तर होता है। इसमें संविधान ही देश का सर्वोच्च कानून होता है। यदि साधारण कानून संविधान के विरुद्ध हो तो न्यायपालिका उस कानून को अवैध घोषित कर देती है। इसके विपरीत अलिखित संविधान में साधारण कानून तथा संवैधानिक कानून में अन्तर न होने के कारण विवाद की कोई सम्भावना नहीं रह जाती है।

(II) लचीला तथा कठोर

(Flexible and Rigid Constitution)

संविधानों में लिखित और अलिखित का भेद गुणात्मक न होकर मात्रात्मक ही होता है। इसलिए इस वर्गीकरण का कोई विशेष महत्व नहीं है। इसी कारण ब्राइस ने संविधानों को संसंशोध्य (लचीला) तथा दुस्संशोध्य (कठोर) में बांटा है। ब्राइस के इस वर्गीकरण का आधार संविधान में संशोधन की विधि है।

लचीला संविधान :- लचीला संविधान उसे कहते हैं जिसमें आसानी से परिवर्तन किया जा सके। इसमें संसद उसी तरह संशोधन कर सकती है जिस तरह वह साधारण कानूनों का निर्माण करती है। इसके लिए संसद को विशेष या किसी पेचीदा प्रक्रिया का प्रयोग करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। इस संविधान में साधारण कानून और संविधानिक कानून में केई अन्तर नहीं माना जाता। बार्कर ने लचीले संविधान को परिभाषित करते हुए कहा है-"जब संविधान में परिवर्तन लोगों या उनके प्रतिनिधियों की इच्छानुसार आसानी से किया जा सके तो उसे लचीला संविधान कहा जाता है।" लचीले संविधान में कानून बनाने की शक्ति तथा संविधान में संशोधन करने की शक्ति एक ही संसद के पास होती है। इसके अनतर्गत न्यायपालिका को संसद में बनाए गए कानूनों को अवैध घोषित करने का अधिकार प्राप्त नहीं होता है। इंग्लैण्ड का संविधान लचीले संविधान का सुन्दर उदाहरण है। इसमें संसद साधारण बहुमत से अपनी इच्छानुसार परिवर्तन ला सकती है और न्यायपालिका संसदीय कानूनों को रद्द नहीं कर सकती। आज विश्व के देशों में अधिकतर संविधान लिखित ही हैं। उनका लिखित होने का अर्थ यह कदापि नहीं लेना चाहिए कि लिखित संविधन कठोर होता है। संविधान का लचीलापन तो उसके संशोधन की विधि पर ही आधारित होता है। अमेरिका का संविधान लिखित होते हुए भी कम कठोर है। आधुनिक समय में सभी देशों में संविधन को लचीला बनाने की प्रवृत्ति जोर पकड़ रही है। इस संविधान का प्रमुख गुण यह है कि संकटकालीन परिस्थितियों में यदि किसी संविधानिक परिवर्तन की आवश्यकता हो तो वह आसानी से हो जाता है। इसका लचीनापन या परितर्वनशीलता ही इसका विशेष गुण है। लेकिन निरंकुश शासनों के हाथ में लचीला संविधान उनके स्वार्थ सिद्धि का यन्त्र मात्र बनकर रह जाता है। साम्यवादी देशों में जहां शासन की शक्तियां किसी एक व्यक्ति या समूह के पास होती हैं, वहां इसके लचीलेपन का फायदा शासक वर्ग खुद उठाता है। कई आलोचक तो यहां तक कह देते हैं कि साम्यवादी देशों में संविधान और संविधानवाद दोनों नहीं हैं और इनके अभाव में वहां संविधानिक सरकार भी नहीं हैं।

कठोर संविधान :- कठोर संविधान वह संविधान है जिसे आसानी से बदला जा सके और जिसमें संधोधन के लिए विशेष विधि को प्रयोग में लाया जाता हो। इस संविधान में साधारण कानून बनाने की विधि से संशोधन नहीं किया जा सकता। इस संविधान में साधारण कानून तथा संवैधानिक कानून में अन्तर किया जाता है। इसमें संविधान ही देश का सर्वोच्च कानून होता है। यदि संसद संविधान की धाराओं के विरुद्ध कोई कानून बनाती है तो न्यायपालिका इस कानून को अवैध घोषित कर सकती है। अमेरिका तथा भारत में संविधान इसी कोटि के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं। अमेरिका के संविधान में संशोधन तभी हो सकता है जब संशोधन का प्रस्ताव कांग्रेस के दोनों सदन दो-तिहाई बहुमत से पास करें और उसके बाद तीन-चौथाई राज्य विधानमण्डल उसे अनुमोदित करें। भारत में कुछ मामलों में तो कठोर संविधान है है तथा कुछ में लचीला। जिन मामलों में संदन के दोनों सदनों के कुल सदस्यों की संख्या के बहुमत तथा मतदान करने वाले सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत सें संशोधन करके उसे राष्ट्रपति के पास भेज दिया जाता है और राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त हो जाने पर वह संशोधन स्वीकार कर लिदया जाता है, उन्हें सामान्य संशोधन विधि के अन्तर्गत गिना जाता है। लेकिन कई मामलों में आये राज्य विधानमण्डलों की स्वीकृति भी आवश्यक होती है। यह प्रक्रिया कठोर संविधान का उदाहरण प्रस्तुत करती है। स्विट्रलैण्ड तथा जापान में भी कठोर संविधान हैं। इस संविधान का प्रमुख गुण इसकी निश्चितता व स्थायित्व है। लेकिन संकटकाल के दौरान संशोधन करने के मामलों में

यह देरी का ही परिचायक है।

आज इस बात का विशेष महत्व नहीं है कि संविधान कठोर है या लचीला। संशोधन विधि क्या कहती है, इस बात से भी संविधान की प्रकृति की जानकारी नहीं मिल सकती। यदि संविधान जनता की इच्छा की अभिव्यक्ति है तो संविधान में परिवर्तन की अधिक जरूरत नहीं पड़ती। आज आवश्यकता यह जानने की है क्या व्यवहार में वह हो पाता है, जो संविधान की संशोधन विधि में है। यदि कोई भी संशोधन जन-इच्छा के अनुकूल है और वह अल्पसंख्यकों या बहुमत की इच्छा का दमन नहीं करता है तो जनता उसे सहर्ष स्वीकार कर लेती है। यदि कोई भी संशोधन जनता के हितों पर कुठाराघात करने वाला है तो वहां जनक्रान्ति की संभावनाएं प्रकट हो सकती है।

(III) विकसित तथा निर्मित संविधान

(Evolved and Enacted Constitution) :-

कुछ विद्वानों ने संविधानों का वर्गीकरण इस आधार पर भी किया है कि कुछ संविधान तो लम्बे ऐतिहासिक विकास का प्रतिफल है, जबकि दूसरों का किसी विशेष समय पर संविधान सभा ने निर्माण किया है। विकसित संविधान वह संविधान होता है जो इतिहास की उपज होता है अर्थात वह ऐतिहासिक विकास की उपज है। इसका निर्माण किसी संविधान सभा नहीं किया जाता बल्कि यह तो परिस्थितियों और नागरिकों की राजनीतिक चेतना के आधार पर विकसित होता रहा है। इस संविधान की जडें इतिहास की परम्पराओं, रीति-रिवाजों, संसदीय कानूनों और न्यायिक निर्णय में होती है। इस संविधान का कुछ भाग लिखित तथा कुछ अलिखित होता है। हेनरीमेन ने विकसित संविधानों को ऐतिहासिक संविधान भी कहा है, क्योंकि वे अनुभव पर आधारित विकास के परिणाम होते हैं। इंग्लैण्ड का संविधान विकसित संविधान है। यह संविधान किसी संविधान सभा ने नहीं बनाया है और न ही किसी निश्चित तिथि को इसे लागू किया है। इसके निर्माण में वहां की परम्पराओं, रीति-रिवाजों व न्यायिक निर्णयों का महत्वपूर्ण हाथ है। इंग्लैण्ड में विकसित संविधान की परम्परा आज भी मौजूद है। इस संविधान का प्रमुख गुण यह है कि यह जन इच्छा की स्पष्ट अभिव्यक्ति होने के कारण क्रान्ति की संभावना से परे होता है। इसका स्थायित्व ही इसका विशिष्ट गुण है। स्वस्थ परम्पराओं के आधार पर विकसित होने के कारण आज तक इंग्लैण्ड के संविधान में विशेष संशोधनों की आवश्यकता नहीं पड़ी है।

निर्मित संविधान वह होता है जिसे किसी संविधान सभा ने विशेष समय पर बनाकर लागू किया हो। निर्मित संविधान प्रायः लिखित ही होते हैं। कालान्तर में विकसित संविधानों का कुछ अंश भी निर्मित संविधान की श्रेणी में ही आ जाता है। इसलिए वहां संविधान के विकसित व निमिर्तत दोनों रूप ही हैं। अमेरिका का संविधान 1787 में तथा भारत का संविधान 1949 में बनाया गया। इसी तरह अन्य देशों के संविधान भी निर्मित ही हैं। लिखित रूप होने के कारण निर्मित संविधान स्पष्ट रूप में राज्य व नागरिकों के सम्बन्धों को प्रतिबिम्बित करते हैं और इसमें संघर्ष की गुंजाइश कम होती है। ऐसे संविधानों में संशोधन भी सुविधापूर्वक किया जा सकता है। इसमें स्पष्टता व निश्चितता का गुण होता है। इसमें संविधान ही सर्वोच्च कानून होता है।

संविधान निर्माण के विभिन्न तरीके

(Various Methods of Constitution Making)

आधुनिक समय में संविधानों का निर्माण साधारण तौर पर निम्नलिखित तरह से किया जाता है :-

(1) राजा द्वारा प्रदत्त :- आधुनिक राज्यों का विकास मध्यकालीन राजतंत्रों से हुआ है। शासकों ने समय-समय पर प्रजा को शासन में भाग लेने के अधिकार दिए हैं और राजनीतिक शक्ति को सीमित करने वाले कुछ सिद्धान्तों को भी स्वीकार किया है। शासकों द्वारा ऐसा करना क्रान्ति की संभावना को टालने के लिए एक सोची समझी योजना थी। इससे सीमित राजतन्त्र और बाद में प्रजातन्त्र का विकास हुआ। ऐसे संविधान आक्ट्राइड संविधान कहलाते हैं, क्योंकि इनका स्वरूप एक समझौते जैसा था। नेपाल में भी कुछ समय तक ऐसे संविधान का प्रचलन था। जापान में भी ऐसा ही संविधान था। लेकिन आज प्रजातन्त्र के युग में इस प्रकार के संविधानों का कोई विशेष महत्व नहीं है।

(2) मननात्मक रचना :- इस विधि द्वारा ही आधुनिक समय में प्रचलित सभी देशों के संविधानों का निर्माण हुआ है। 1787 के फिलाडोल्फिया सम्मेलन में संयुक्त राज्य अमेरिका में संविधान का निर्माण इसी आधार पर हुआ। प्रथम विश्व युद्ध के बाद यूरोप के कई देशों और वर्तमान समय में अनेक नए स्वतन्त्र राज्यों के संविधान इसी तरह निर्मित हुए हैं। भारत

का संविधान भी संविधान सभा द्वारा काफी विचार-विमर्श करके ही 2 वर्ष, 11 महीने व 18 दिन में निर्मित हुआ था।

(3) क्रान्ति के परिणामस्वरूप :- फ्रांस, स्पेन, रूस, चीन आदि देशों के संविधान इसी विधि का परिणाम हैं। इन देशों में क्रान्ति के बाद सत्तारूढ़ अस्थायी सरकारों ने स्वयं संविधान बनाकर जनता का समर्थन प्राप्त किया है। कई बार शासकों ने संविधान सभा बुलाकर भी संविधानों का निर्माण किया है, लेकिन उसमें क्रान्ति के सूत्रधारों का ही विशेष हाथ रहा है।

(4) विकास द्वारा :- जिन देशों के संविधान ऐतिहासिक विकास का प्रतिफल हैं, उनमें इंग्लैण्ड ही प्रमुख है। लेकिन संविधानों का वर्तमान रूप सभी देशों में विकसित प्रकृति का है। आज भारत, अमेरिका, ब्रिटेन सहित सभी देशों में संविधानों का रूप निर्मित होने के साथ-साथ विकसित प्रकृति का भी है।

संविधान का विकास

(Evolution of Constitition)

परिवर्तन मानव समाज का शाश्वत नियम है। चाहे हम कितनी भी कोशिश करें संविधान को पूर्णतया असंशोधित और लेखबद्ध नहीं कर सकते। मानव समाज की अन्य संस्थाओं की तरह शासन विधि भी एक विकसित सत्ता है जिसका क्रमिक विकास होता रहता है। इस विकास में प्रथाओं एवं अभिसमयों का महत्वपूर्ण योगदान होता है और धीरे-धीरे संविधान विकसित होते रहते हैं। संविधान के विकास में निम्नलिखित तत्वों का योगदान होता है :-

(1) प्रथाएं व अभिसमय (Customs and Conventions) :- समय बीतने के साथ-साथ प्रत्येक देश में कुछ संविधानिक परम्पराएं विकसित होने लगती हैं जो अलिखित होते हुए भी लिखित नियमों को अनिर्धारित दिशा प्रदान करती हैं। जार्ज वाशिंगटन ने कहा है-"समय तथा आदत सरकार एवं मानवीय संस्थाओं का सही स्वरूप निश्चित करने का काम करते हैं।" ब्रिटैन का संविधान परम्पराओं द्वारा ही विकसित हुआ है। अमेरिका, भारत, स्विस तथा अन्य देशों के संविधानों पर भी परम्पराओं का प्रभाव पड़ा है। इसी तरह का प्रभाव अभिसमयों का प्रभाव पड़ता है। अमेरिका के संविधान पर अभिसमयों का विशेष प्रभाव है। परम्पराओं व अभिसमयों के प्रभाव को इंगित करते हुए बीयर्ड ने लिखा है-"अमेरिकी संविधान के अन्तर्गत क्रान्तिकारी परिवर्तन या संशोधन अधिनियमों से नहीं हुए हैं, बल्कि रीति-रिवाजों तथा प्रथाओं से हुए हैं।"

(2) संविधियों द्वारा विकास (Evolution by Legislative Elaboration) :- संविधान के विकास में विधायिका का भी महत्वपूर्ण हाथ रहा है। इसने संविधान की तरह से विकसित किया है-(i) संविधान की कुछ धाराओं में वर्णित आदेशों का क्रियान्वयन करके तथा (ii) संविधान द्वारा प्रदत व स्पष्ट शक्तियों का प्रयोग करके कानून बनाकर। प्रथम श्रेणी में सर्वोच्च न्यायालय में अलिखित संघीय न्यायालयों की स्थापना, प्रशासनिक विभागों व न्यायालयों की स्थापना, मुख्य कार्यपालक को उत्तराधिकारी की व्यवस्था करना आदि शामिल हैं। इसके अतिरिक्त विधायिका ने शिक्षा, उद्योग, कृषि, आदि के क्षेत्र में सामाजिक सुरक्षा कानून बनाए हैं जो संविधानों को विकसित करने वाले हैं। ये विधायिका द्वारा संविधान के विकास का दूसरा प्रयास है जो संविधान द्वारा उसे प्रदत्त शक्तियों का मामला है। अमेरिका और भारत में विधायिका ने मूल संविधान में काफी कुछ नया जोड़ा है। इन कानूनों का भी वही महत्व है जो संवैधानिक कानूनों का है, क्योंकि ये संवैधानिक कानून का अभिन्न अंग बन गए हैं।

(3) न्यायिक व्याख्याएं या निर्णय (Judicial Review) :- न्यायपालिका द्वारा समय-समय पर संविधान के कानून की व्याख्याएं की जाती रहती हैं। इससे भी संविधान का विकास होता है। अमेरिका में न्यायधीश मार्शल द्वारा प्रतिपादित व्याख्याओं ने संघात्मक शक्तियों में अभूतपूर्व वृद्धि की है और संविधानिक शब्दावली को आधुनिक बनाया है। भारत में भी सर्वोच्च न्यायालय द्वारा संविधानिक व्याख्याओं के कारण भारतीय संविधान का भी विकास हुआ है।

(4) कार्यपालिका की व्याख्याएं (Executive Interpretation) :- विधायिका और न्यायपालिका की तरह ही कार्यपालिका भी संविधान की व्याख्या करती रहती है। अमेरिका में कई बार राष्ट्रपति द्वारा इस प्रकार की व्याख्याएं की गई हैं और उन्हें मान्यता भी मिली है। राष्ट्रपति लिंकन ने भी इस बात पर जोर दिया था कि दक्षिणी राज्य संघ से बाहर न जाकर उसके अन्दर ही रहें, कई बार राष्ट्रपति या कार्यपालिका ने अमेरिकी नागरिकों की जान-माल की सुरक्षा के लिए कांग्रेस की अनुमति के बिना ही सशस्त्र सेनाएं भेजी हैं। राष्ट्रपति फ्रेंकलिन डी० रुजवेल्ट ने इस बात को मनवाने में सफलता

पाई है कि संविधान का अर्थ इतना व्यापक है कि उसके अन्तर्गत निहित आर्थिक कानूनों का प्रयोग, राज्य आर्थिक संकट को दूर करने के लिए किसी भी सीमा तक कर सकता है। इस प्रकार की कार्यपालक व्याख्याओं को प्रशासकीय निर्णयों का नाम दिया जाता है। ये प्रशासकीय निर्णय आज संविधान का ही अभिन्न अंग हैं। अमेरिका के संविधान पर राष्ट्रपति जैकसन, लिंकन तथा रुजवेल्ट का विशेष प्रभाव है।

(5) राजनीतिज्ञों तथा नागरिकों द्वारा व्याख्याएं (Interpretation by Politicians and Citizens) :- राजनीतिज्ञ आर नागरिक शासन के पदाधिकारी न होते हुए भी संविधान की व्याख्या में भाग लेते हैं। इसमें राजनीतिक दलों की भूमिका को लिया जा सकता है। बियर्ड ने इसका उदाहरण देते हुए कहा है कि अमेरिका के संविधान की धारा 2 में यह व्यवस्था की गई है कि राज्यों द्वारा नियुक्त निर्वाचक एकत्रित होकर राष्ट्रपति का चुनाव करेंगे। संविधान निर्माताओं की यह इच्छा थी कि दलबन्दी या निहित स्वार्थों से परे योग्यतम व्यक्ति ही राष्ट्रपति को चुनेंगे, लेकिन आज व्यवहार में निर्णायक राजनीतिक दलों तथा मतदाताओं की इच्छा को मूर्त रूप देने के लिए 'रबर स्टाम्प' का काम करते हैं। इस तरह लाखों अमेरिकी मतदाताओं ने राष्ट्रपति के निर्वाचन की पद्धति को एकदम बदल दिया है।"

(6) संविधानिक संशोधन (Constitutional Amendments) :- संविधान में समय-समय पर होने वाले संशोधनों ने भी संविधान के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। अमेरिका, भारत, स्विट्जरलैंड आदि देशों में होने वाले संविधानिक संशोधनों ने वहां के संविधान के मूल ढांचे को ही बदल डाला है। अमेरिका में मौलिक अधिकारों की घोषणा तथा भारत में सम्पत्ति के अधिकार को मौलिक अधिकारों की श्रेणी से बाहर निकालना, संविधानिक संशोधनों की ही देन है। सबसे कम संविधानिक संशोधन अमेरिका में हुए हैं जबकि सबसे अधिक भारत के संविधान में। आज तक भारत के संविधान में 100 संविधान संशोधन हो चुके हैं जो कि अपने आप में एक महत्वपूर्ण तथ्य है।

आदर्श संविधान की विशेषताएं

(Features of an Ideal Constitution)

आज लगभग सभी देशों में संविधान हैं। यह कहना तो कठिन है कि कौनसा संविधान अच्छा है या नहीं। वास्तव में संविधान की अच्छाई की कसौटी देश-विशेष की परिस्थितियों पर भी आधारित होती है। एक देश का संविधान एक देश के लिए उपयुक्त हो सकता है, परन्तु वही दूसरे देश के लिए अनुपयुक्त हो सकता है। समान शासन प्रणाली वाले देशों में भी संविधानों की भिन्नता एक स्वाभाविक सी बात है। भारत और ब्रिटेन में संसदीय शान प्रणाली होने के बावजूद भी दोनों के संविधानों में दिन-रात का अन्तर है। कुछ विद्वानों ने संविधान की ऐसी विशेषताओं पर सहमति जताई है जो एक आदर्श संविधान के अन्तर्गत मिलती है। ये विशेषताएं प्रत्येक देश के संविधान में उपलब्ध हों, यह आवश्यक नहीं है। ये विशेषताएं निम्नलिखित हैं :-

(1) स्पष्टता तथा निश्चितता (Clarity and Definiteness) :- एक आदर्श संविधान में स्पष्टता व निश्चितता का पाया जाना बहुत जरूरी है। यदि संविधान की भाषा अस्पष्ट होगी तो जनता संविधान की धाराओं का गलत अर्थ निकालेगी और समाज में संघर्ष का वातावरण बन जाएगा। इसी कारण आज लिखित संविधान को ही महत्व दिया जाता है, क्योंकि इसके अन्तर्गत प्रत्येक विषय स्पष्ट व निश्चित होता है। इसी कारण ऐसा संविधान ही आदर्श संविधान हो सकता है जो लिखित हो और स्पष्टता व निश्चितता के गुण से युक्त हो।

(2) व्यापकता (Comprehensiveness) :- संविधान के स्पष्ट व निश्चित होने के साथ-साथ उसका व्यापक होना भी आवश्यक है। व्यापकता का अर्थ है कि इसमें सरकार के संगठन व शक्तियों की विस्तृत व्याख्या होनी चाहिए। संविधान में इस बात का स्पष्ट उल्लेख होना चाहिए कि नागरिकों व सरकार के क्या सम्बन्ध हैं और सरकार नागरिकों के लिए क्या कर सकती है। इसमें नागरिक स्वतन्त्रओं व अधिकारों का भी स्पष्ट उल्लेख होना चाहिए। संघात्मक राज्यों में तो संविधान की व्यापकता का विशेष महत्व होता है, क्योंकि केन्द्र इकाइयों के सम्बन्धों का नियामक होता है। अतः संविधान में व्यापकता का गुण ही उसे आदर्श बनाता है।

(3) संक्षिप्तता (Bravity) :- एक आदर्श संविधान का संक्षिप्त होना भी जरूरी है। संविधान का अधिक लम्बा होना भी इसे आदर्श होने से रोकता है। इस दृष्टि से अमेरिका का संविधान एक आदर्श संविधान है क्योंकि उसमें केवल सात अनुच्छेद हैं जबकि आस्ट्रेलिया के संविधान में 128 तथा भारत के संविधान में 395 अनुच्छेद हैं। एक विस्तृत संविधान नागरिकों के लिए आवश्यक समस्याएं पैदा करता है और उसे समझना आम नागरिक के वश की बात नहीं होती। अतः जटिलता

के अवगुण को दूर करने के लिए संविधान का संक्षिप्त होना बहुत जरूरी है।

(4) लचीलापन (Flexibility) :- आदर्श संविधान वही होता है जो परिस्थितियों के अनुसार स्वयं को ढाल सके। यदि संविधान में लोचशीलता या परिवर्तनशीलता का गुण नहीं होगा तो वहां जन-विद्रोह की सम्भावनाएं अधिक होंगी। अमेरिका और फ्रांस की क्रान्तियां इस बात का प्रमाण हैं कि वहां के पूर्ववर्ती संविधान कठोर प्रकृति के थे। इसी कारण इन क्रान्तियों ने वहां के प्राचीन संविधानों को धराशायी करके सर्वथा नवीन संविधानों की नींव डाली। इसलिए आदर्श संविधान में लचीलेपन का गुण अवश्य होना चाहिए ताकि क्रान्ति की सभी सम्भावनाओं को टाला जा सके। लेकिन इसको इतना लचीला भी नहीं होना चाहिए कि यह शासक वर्ग के हितों का पोषक ही बनकर रह गए।

(5) संविधान की सर्वोच्चता (Supermacy of the Constitution) :- एक अच्छे संविधान का गुण है कि उसको देश का सर्वोच्च कानून माना जाना चाहिए। यदि संसद संविधान की मूल आत्मा के विरुद्ध कोई कानून बनाए तो न्यायपालिका को उसे अवैध घोषित करने का अधिकार होना चाहिए।

(6) न्यायपालिका की स्वतन्त्रता (Independence of Judiciary) :- एक आदर्श संविधान में स्वतन्त्र न्यायपालिका का होना बहुत जरूरी है ताकि वह निष्पक्ष होकर संविधान की व्यवस्था कर सके और मौलिक अधिकारों की रक्षा कर सके। एक निष्पक्ष व स्वतन्त्र न्यायपालिका ही जनता को राजनीतिक शक्ति की निरंकुशता से बचा सकती है।

(7) मौलिक अधिकार व कर्तव्यों की घोषणा (Declaration of Fundamental Rights and Duties):- अधिकार व कर्तव्य एक सिक्के के दो पहलू होते हैं। किसी एक का अभाव दूसरे के लिए परेशानी पैदा करता है। इसलिए आदर्श संविधान वही हो सकता है जिसमें इन दोनों की व्यवस्था होती है। अधिकारों के बिना व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास नहीं हो सकता और कर्तव्यों के बिना राज्य के व्यक्तित्व का। अतः आदर्श संविधान में अधिकार और कर्तव्यों की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए।

(8) संविधान में संशोधन करने की विधि का वर्णन (Description of the Methods of Amendment) :- इए आदर्श संविधान का यह गुण होता है कि उसमें संशोधन की विधि का स्पष्ट उल्लेख होता है। यदि संविधान में संशोधन की विधि का स्पष्ट प्रावधान न हो तो उससे संसदीय तानाशाही के पैदा होने के आसार बढ़ जाते हैं। राज्य, राज्य न होकर अराजकता को जन्म देने वाला यन्त्र बनकर रह जाता है। अतः आदर्श संविधान में विधि का स्पष्ट वर्णन होता है।

संविधान में संशोधन के तरीके

(Methods of Amendments in the Constitution)

आज का युग प्रजातन्त्र का युग है। आज लोककल्याणकारी राज्य की अवधारणा के उदय ने संविधानों को जनइच्छा के अनुकूल बने रहने को अपरिहार्य बना दिया है। इसी कारण सभी देशों में संविधान को बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार ढाला जाने लगा है। इसके लिए सी०एफ० स्ट्रांग ने चार विधियों का उल्लेख किया है :-

(1) साधारण विधानमण्डल द्वारा निर्धारित प्रक्रिया के तहत।

(2) जनमत संग्रह द्वारा।

(3) संघ राज्य की सभी इकाइयों के बहुमत द्वारा

(4) विशेष सम्मेलन द्वारा।

व्यवहार में इन चार विधियों से कई बार दो या दो से अधिक पद्धतियां एक साथ प्रयोग की जाती हैं। अमेरिका, भारत, स्विट्जरलैण्ड आदि देशों में दो से अधिक विधियांएक साथ प्रयोग करके संविधान में संशोधन किए जाते हैं। प्रथम प्रक्रिया के तहत संविधान में संशोधन विधानमण्डल द्वारा निश्चित बहुमत के आधार पर किया जाता है। भारत में ससंद संविधान की कई धाराओं में साधारण बहुमत से तथा कई में दो-तिहाई बहुमत से संधोधन का संशोधन कर सकती है। द्वितीय विधि के तहत संविधान में संशोधन जनता की राय लेकर ही किया जाता है। यह विधि कम जनसंख्या वाले देशों में ही सम्भव है। यह विधि स्विट्जरलैण्ड में प्रयोग की जाती है। तीसरी विधि के तहत संशोधन संघात्मक शासन प्रणाली वाले देशों में ही किया जाता है। इसके लिए केन्द्र सरकार राज्य विधानमण्डलों की अनुमति या समर्थन भी प्राप्त करती है। अमेरिका और भारत में कुछ

विषयों में इसी विधि का प्रयोग किया जाता है। चौथी विधि द्वारा संविधान में संशोधन करने के लिए विशेष निकाय की स्थापना की जाती है। यह विधि लेटिन अमेरिका में अपनाई जाती है।

संविधानिक संशोधन की विधियों का व्यवहारिक रूप

(Practical form of the Methods of Constitutional Amendment)

परिवर्तन समाज का आवश्यक नियम है। समाज की बदलती मान्यताओं के अनुसार राजनीतिक शक्ति व शासकों को भी अपने मानदण्डों में परिवर्तन करना पड़ता है। संविधान किसी देश की वह मौलिक कानून होता है जो शासक व शासितों के सम्बन्धों का नियमन करता है। बदलती परिस्थितियों के अनुसार संविधान को प्रासंगिक बनाए रखने के लिए इसमें संशोधन करना अनिवार्य हो जाता है। सभी देशों में संविधान में संशोधन करने के लिए अलग-अलग तरीके अपनाए जाते हैं। अमेरिका, ब्रिटेन, चीन व स्वीट्जरलैण्ड के संविधन संशोधन के लिए निम्नलिखित प्रक्रिया अपनाई जाती है :-

(1) संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान में संशोधन (Amendment in the Constitution of U.S.A.) :- संयुक्त राज्य अमेरिका का संविधान 1787 के फिलाडेल्फिया सम्मेलन की उपज है। यह विश्व का सबसे छोटा संविधान है जिसमें केवल 7 अनुच्छेद हैं। इसमें अब तक केवल 26 संशोधन हुए हैं। अमेरिका के संविधान की विधि का अनुच्छेन 5 में वर्णन है। इसमें प्रस्थापना और अनुसमर्थन की दो विधियों का संविधान में उल्लेख है। अभी तक संशोधन सम्बन्धी सारे प्रस्ताव कांग्रेस के दोनों सदनों के दो तिहाई बहुमत से ही पारित हुए हैं और 21 वें संशोधन को छोड़कर शेष सभी संशोधन प्रस्ताव राज्य विधानमण्डलों द्वारा अनुमोदित भी हुए हैं।

संविधान में संशोधन विधि की प्रक्रिया में लिखा गया है कि कांग्रेस के दोनों सदन दो-तिहाई बहुमत से संविधान में संशोधन का प्रस्ताव ला सकते है या कांग्रेस के कुल राज्यों के दो तिहाई बहुमत पर या राज्य विधायिकाओं की प्रार्थना पर संशोधन के सुझाव प्रस्तुत करने के लिए एक सम्मेलन बुला सकती है। यद्यपि अनुच्छेद 5 में यह स्पष्ट नहीं है कि 2/3 बहुमत कुल सदस्य संख्या से हों या मतदान में भाग लेने वाले सदस्यों से। इसके लिए बहुमत या सदन में गणपूर्ति (कोरम) होना अर्थात आधे सदस्यों का होना आवश्यक है। यदि राज्य विधानमण्डलों की 2/3 संख्या कांग्रेस से प्रार्थना करे तो कांग्रेस संविधान में संशोधन के लिए एक राष्ट्रीय सम्मेलन बुला सकती है। व्यवहार में अब तक सभी संशोधन कांग्रेस के दोनों सदनों की स्वीकृति पर ही हुए हैं, राज्य विधामण्डलों द्वारा संशोधन प्रस्तावों पर आज तक 21वें संशोधन को छोड़कर अनुमति या अनुसमर्थन लेने की आवश्यकता नहीं पड़ी है।

अमेरिका में संविधान में संशोधन करने की प्रक्रिया को दो भागों में बांटा गया है-(i) संविधान में संशोधन का सुझाव देना तथा (ii) संविधान संशोधन की स्वीकृति। प्रथम विधि के अन्तर्गत कांग्रेस के दोनों सदन 2/3 बहुमत से संशोधन का सुझाव दे सकते हैं या 2/3 राज्य विधानमण्डल भी ऐसा कर सकते हैं। अब तक राज्य विधानमण्डलों ने अपनी तरफ से किसी संशोधन प्रस्ताव को पेश नहीं किया है। आज तक कांग्रेस के दोनों सदनों ने ही संशोधन प्रस्ताव पेश किए हैं। संशोधन की दूसरी विधि की अवस्था में संशोधन करने के लिए दो तरीके प्रयोग में लाए जाते हैं। प्रथम तो यह कि संशोधन प्रस्ताव को 3/4 राज्य विधानमण्डल स्वीकार कर ले। दूसरा यह कि कुल राज्यों में से 3/4 राज्य बुलाए गए सम्मेलन में इसको स्वीकृति दे दें। इस तरीके को 21वें संविधान संशोधन में प्रयुक्त किया गया था, अन्यथा सभी मामलों में दूसरी विधि का प्रथम तरीका ही प्रयोग में लाया गया है। यह विधि कम खर्चीली भी है। यदि संशोधन के लिए राज्य विधानमण्डलों का सम्मेलन बुलाना पड़े तो वह राजकोष पर अनावश्यक खर्च डालने वाला है।

अमेरिका में संशोधन के सभी प्रस्तावों को चाहे उनका स्त्रोत कांग्रेस हो या राष्ट्रीय सम्मेलन, अनिवार्य रूप से राज्यों के पास अनुमोदन के लिए भेजा जाता है। केन्द्र सरकार उन्हें राज्यपालों के पास भेजती है। राज्य दोनों तरीकों में से किसी एक तरीके से उनका अनुमोदन करते हैं। परन्तु यह राज्यों की इच्छा पर निर्भर नहीं है कि कौन सा तरीका अपनाएं इसका निर्धारण कांग्रेस ही करती है। जब वह अनुमोदन के लिए राज्यों के पास संशोधन प्रस्ताव भेजती है। अनुमोदन के पहले तरीके की कार्यवाही राज्यों के विधानमण्डलों के द्वारा ही पूरी होती है। संशोधन प्रस्ताव को राज्यों के विधानमण्डलों के पास विचारार्थ भेजे जाने के पश्चात यदि कोई या सभी 3/4 राज्यों के विधानमण्डल प्रस्ताव का अनुमोदन कर दें तो संशोधन पारित हो जाता है। यदि एक छोटा सा राज्य भी गणना में कम रह जाए तो वह संशोधन पारित नहीं हो सकता। इसके लिए 50 में से 38 राज्यों का अनुमोदन आवश्यक है। अनुमोदन का दूसरा तरीका राज्य . ीय सम्मेलन बुलाने का है। इस तरीके का केवल 21वें संविधान

संशोधन में ही प्रयोग किया गया था। राज्यों द्वारा अनुसमर्थित संशोधन संविधान का अंग बन जाते हैं और इसकी औपचारिक घोषणा विदेश मन्त्री द्वारा कर दी जाती है। इस समस्त प्रक्रिया से राष्ट्रपति दूर ही रहता है। यदि कोई राज्य एक बार संशोधन प्रस्ताव का अनुमोदन कर दे तो वह फिर से उसे रद्द नहीं कर सकता। अनुमोदन के लिए कोई सीमा निर्धारित नहीं है। ओहियो राज्य ने एक बार 80 वर्ष बाद एक संशोधन प्रस्ताव का अनुमोदन किया था।

अमेरिका के संविधान में संशोधन विधि की आलोचना :- अमेरिकन संविधान में संशोधन विधि पर आलोचकों ने यह आरोप लगाया है कि यह अत्यधिक धीमी तथा कठिन विधि है। न्यायधीश मार्शल ने इसे स्थूल और कष्टकारक कहा है। इसकी कठिनता का कारण कांग्रेस का 2/3 बहुमत तथा 3/4 राज्यों का अनुसमर्थन है। कुल आलोचकों ने कहा है कि यह विधि अत्यन्त सरल है, क्योंकि 26 संविधान संशोधन को छोड़कर शेष सभी संशोधन आसानी से हो गए हैं। इस पर उदारवादियों ने आरोप लगाया है कि यह अलोकतांत्रिक है, क्योंकि इसमें जनता को भाग लेने का अवसर नहीं मिलता। सत्य तो यह है कि अमेरिका के संविधान में न तो अधिक कठोरता है और न ही सरलता, बल्कि इन दोनों का अच्छा मिश्रण है। अतः अमेरिका के संविधान की संशोधन विधि अधिक कठोर नहीं है।

(II) ग्रेट ब्रिटेन के संविधान में संशोधन (Amendment in the Constitution of Great Britain) :- इंग्लैण्ड या ब्रिटेन के संविधान में संशोधन करने का तरीका काफी आसान है। वहां पर संविधान का अधिकतर रूप अलिखित है। संविधान का जो रूप लिखित है, वह संसदीय कानूनों और न्यायिक निर्णयों के रूप में है। इंग्लैण्ड में संसद ही सर्वोच्च है। इसलिए संविधान में संशोधन करने के लिए उसे विशेष विधि अपनाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। वहां पर जिस प्रकार साधारण कानून का निर्माण किया जाता है, उसी तरह संविधान में संशोधन कर दिया जाता है। इसी कारण वहां पर साधारण कानून और संवैधानिक कानून में कोई अन्तर नहीं है। इंग्लैण्ड में कोई भी संशोधन संसद द्वारा साधारण बहुमत से पास कर दिया जाता है। इंग्लैण्ड में संसद के कानून ही संविधान है। वहां पर संसद परम्पराओं व रीति-रिवाजों के विरुद्ध कोई संशोधन नहीं ला सकती, क्योंकि परम्पराओं पर ही वहां का संविधान आधारित है। इस विधि का प्रमुख गुण यह है कि यह परिवर्तनशीलता का गुण रखती है। इससे जन विद्रोह की सभी आकांक्षाएं निर्मूल साबित होती हैं। स्वस्थ परम्पराओं का विकास होने के कारण इंग्लैण्ड में आज तक राजनीतिक सत्ता द्वारा संशोधन की सरल विधि का कोई दुरुपयोग नहीं किया जाता है।

(III) स्विट्जरलैण्ड के संविधान में संशोधन (Amendment in the Constitution of Switzerland) :- 1815 की वियना कांग्रेस ने स्विट्जरलैण्ड को उदारवादी विचारधारा से परिपूरित किया। 1845 में 7 कैथोलिक बहुमत वाले कैटनों ने अपना पृथक संघ बना लिया और स्विटजरलैण्ड में गृह युद्ध भड़ उठा। इस गृहयुद्ध में प्रोटेस्ट समर्थक कैंटनों की विजय हुई और 1848 में उदारवादी आन्दोलन से प्रभावित होकर स्विस डाइट (संविधान सभा) ने नया संविधान बनाया जो 1874 में बदल गया और उसका स्थान एक नए संविधान ने ले लिया जो जनमत संग्रह पर आधारित था और वही संविधान आज भी प्रचलित है। 1874 से 1950 तक इसमें 50 संशोधन हुए हैं। स्विस संविधान में संशोधन विधि साधारण कानून बनाने की प्रक्रिया से कठिन है, किन्तु यह अमेरिका की तुलना में काफी सरल है।

स्विस संविधान की संशोधन दो प्रकार का होता है :- (i) आंशिक संशोधन तथा (ii) पूर्ण संशोधन। इसके लिए दो प्रकार की विधियां प्रयोग में लाई जाती हैं :-

(i) संवैधानिक जनमत संग्रह द्वारा (By Constitutional Referendum)

(ii) संवैधानिक आरम्भण द्वारा (By Constitutional Initiative)

प्रथम विधि द्वारा संविधान में संशोधन के लिए यह जरूरी है कि संघीय विधानमण्डल के दोनों सदन राज्य-सभा और राष्ट्रीय परिषद संयुक्त राय में संविधान में पूर्ण या आंशिक संशोधन का निश्चय करे और उसके बाद संशोधन का प्रस्ताव तैयार करे। उसके बाद इस संशोधन का सर्वसाधारण और कैंटनों के जनमत संग्रह के लिए प्रस्तुत किया जाता है। यदि सर्वसाधारण और कैंटन उसे बहुमत से स्वीकार कर लें तो संशोधन स्वीकृत माना जाता है। दूसरी विधि द्वारा पूर्ण या आंशिक संशोधन, सर्वसाधारण द्वारा 50000 स्विस नागरिकों के हस्ताक्षरों से युक्त आवेदन-पत्र पर संघीय विधानमण्डल की अनुमति प्राप्त करके ही होता है।

संविधान में पूर्ण संशोधन करने के लिए दो तरीके अपनाए जाते हैं। प्रथम तो संविधान में पूर्ण संशोधन का प्रस्ताव संघीय सभा में लाया जाता है। यदि संघीय सभा के दोनों सदन-राज्य सभा और राष्ट्रीय परिषद उसे अलग-अलग बहुमत से पास कर दें तो उसके बाद जनता तथा कैंटनों की राय ली जाती है। यदि जनता तथा कैन्टन उसे बहुमत से स्वीकार कर लें तो वह

प्रस्ताव पास हो जाता है। परन्तु कई बार संघीय सभा में पेंश किए गए प्रस्ताव पर एक सदन सहमत नहीं होता तो उसे जनता तथा कैन्टनों की राय जानने के लिए रखा जाता है। यदि जनता की वोटों के बहुमतन तथा कैन्टनों के बहुमत से उस प्रस्ताव को पास कर दिया जाता है तो संघीय सभा को भंग करके नए चुनाव कराए जाते हैं और नई संघीय सभा उस प्रस्ताव के आधार पर संविधान का प्रारूप तैयार करके जनमत व कैन्टनों की राय जानने के लिए भेजती है। यदि वहां पर उस प्रस्ताव को बहुमत मिल जाता है तो पूर्ण संशोधन के रूप में नया संविधान अस्तित्व में आ जाता है। संविधान में पूर्ण संशोधन की दूसरी विधि के अन्तर्गत 50000 वोटर अपने हस्ताक्षर युक्त आवेदन पत्र संघीय सभा के पास भेजते हैं। यदि संघीय सभा उस प्रस्ताव को पास कर दे तो वह प्रस्ताव पास माना जाता है। संघीय सभा उसी प्रस्ताव पर सहमत हो या न हो तब भी उस प्रस्ताव को जनता की स्वीकृति के लिए रखा जाता है। यदि संघीय सभा असहमत हो तो उसको भंग करके नए चुनाव कराकर नई संघीय सभा द्वारा उस प्रस्ताव के आधार पर संविधान का नया प्रारूप तैयार करके जनता तथा कैन्टनों की स्वीकृति ली जाती है और बहुमत मिलने पर नया संविधान अस्तित्व में आ जाता है।

संविधान में आंशिक संशोधन के लिए संशोधन का प्रस्ताव संघीय सभा द्वारा भी पेश किया जा सकता है और उसके बाद इस पर जनता तथा कैन्टनों की स्वीकृति ली जा सकती है। यदि जनता और कैटनों उस पर आनी स्वीकृति दे दें तो वह प्रस्ताव पास हो जाता है। संविधान में आंशिक संशोधन का प्रस्ताव 50000 वोटरों के द्वारा भी पेश किया जा सकता है। यह प्रस्ताव साधारण शब्दों में भी हो सकता है और निश्चित शब्दों में भी। यदि संघीय सभा उस प्रस्ताव पर सहमत हो तो वह उस प्रस्ताव का प्रारूप तैयार करके जनता तथा कैंटनों के पास भेजती है और उस पर बहुमत मिलने पर संविधान में संशोधन हो जाता है। यदि संघीय सभा इस प्रस्ताव से सहमत न हो तो भी वह उसे जनता की स्वीकृति के लिए भेजती है। यदि जनता उसे स्वीकार कर लेती है तो संघीय सभा इस प्रस्ताव का प्रारूप बिल तैयार करके जनता के पास तथा कैंटनों के पास फिर से भेजती है। जनता तथा कैंटनों का समर्थन मिल जाने पर वह संशोधन पास कर दिया जाता है। यदि मतदाताओं की निश्चित संख्या (50000) इस बात पर सहमत हो जाए और संशोधन मनमाने रूप में कराना चाहे तो भी संघीय सभा बहुमत के बिना भी उस प्रस्ताव को जनमत संग्रह के लिए छोड़ देती है। यदि उस पर कैन्टनों तथा जनता की स्वीकृति मिल जाती है तो वह प्रस्ताव पास हो जाता है।

स्विस संविधान में संशोधन प्रक्रिया का प्रमुख गुण यह है कि यह जनतांत्रिक है। जनमत संग्रह तथा आरम्भन् में जनता को भी भाग लेने का अवसर प्रदान किया गया है। दूसरा गुण यह है कि इसमें पूर्ण संशोधन की भी व्यवस्था है। यदि संविधान का सम्पूर्ण ढांचा ही जनता के हितों के प्रतिकूल हो जाए तो उसके स्थान पर नया ढांचा अस्तित्व में आ जाता है जो जनता की इच्छानुसार ही होता है।

(IV) चीन के संविधान में संशोधन (Amendment in the Constitution of China) :- 1 अक्तूबर, 1949 को अस्तित्व में आए जनवादी चीन का प्रथम संविधान 1954 में बना जो 1975 तक लागू रहा। जनवरी 1975 में राष्ट्रीय जन कांग्रेस ने एक नए संविधान का निर्माण किया जो 1978 तक अस्तित्व में रहा। 1978 में बनाए गए नए संविधान का स्थान 4 दिसम्बर, 1982 को एक नए संविधान ने ले लिया। आज भी चीन में यही संविधान प्रचलित है। इसमें 138 अनुच्छेद हैं और यह 1954 के संविधान से मिलता-जुलता है। यह संविधान राष्ट्रीय आम सहमति व वैचारिक समझौते का परिणाम है। इस संविधान में मौलिक अधिकारों तथा संविधानवाद में बहुत विश्वास व्यक्त किया गया है।

चीन का संविधान एक कठोर संविधान है। 1982 से पूर्व के संविधान काफी लचीले थे और उनमें संशोधन की विशेष प्राक्रेया का उल्लेख नहीं था। परन्तु 1982 के संविधान में संशोधन करने की प्रक्रिया साधारण कानून बनाने की प्रक्रिया से अलग है। चीन के संविधान में संशोधन करने का अधिकार राष्ट्रीय जन कांग्रेस के 20% सदस्यो द्वारा संशोधन का प्रस्ताव रखा गया हो और उसे जनवादी कांग्रेस के 2/3 सदस्यों द्वारा अनुसमर्थित या अनुमोदित किया गया हो। लेकिन व्यवहार में स्थिति कुछ भिन्न है। कोई भी संशोधन साम्यवादी नीतियों व कार्यक्रमों के अनुसार ही किया जाता है। राष्ट्रवादी जनकांग्रेस पर साम्यवादी दल का ही प्रभुत्व होता है। इसलिए कोई भी संशोधन साम्यवादी दल की सहमति पर ही किया जा सकता है। दल की इच्छा के विरुद्ध कोई भी संविधानिक संशोधन संभव नहीं है।

चीन के संविधान में संशोधन प्रक्रिया का प्रमुख अवगुण यह है कि यह अप्रजातांत्रिक है। इसमें जनता को संशोधन प्रक्रिया से काफी दूर रखा गया है। इसमें संशोधन जनवादी कांग्रेस की बजाय साम्यवादी दल की इच्छानुसार ही किया जाता है। इससे चीन में संविधान को साम्यवादी दल द्वारा अपने हितों के अनुसार ढालने की निरंकुश व्यवस्था का आभास होता है।

संविधानवाद

(Constitutionalism)

संविधानवाद के साथ ही संविधानवाद की अवधारणा जुड़ी हुई है। राजनीतिक शक्ति पर नियन्त्रण के रूप में संविधान के जन्म के साथ ही संवैधानिक सरकार की स्थापना हुई और संविधानवाद की परम्परा का विकास हुआ। संविधानवाद की प्रमुख मान्यता यह है कि यदि राजनीतिक शक्ति पर संविधानिक नियन्त्रण न हो तो वह निरंकुश बन जाती है और मानव स्वतन्त्रताओं और अधिकारों का भक्षण करने लगती है। इसी कारण राजनीतिक शक्ति को नियन्त्रण में रखने के लिए और उसे जन-कल्याण का साधन बनाने के लिए उसमें उत्पीड़न या बाध्यता की शक्ति का समावेश किया जाता है। यह शक्ति ही संविधान कहलाती है और सभी शासकों या राजनीतिक शक्ति को नियन्त्रित रखने की संवैधानिक व्यवस्था ही संविधानवाद है।

संविधानवाद का अर्थ

(Meaning of Constitutionalism)

संविधानवाद संविधान पर आधारित अवधारणा है। यह एक ऐसी राजनीतिक व्यवस्था है जिसका संचालन उन विधियों और नियमों द्वारा होता है जो संविधान में वर्णित होते हैं। संविधानवाद संविधानिक शासन का आधार व सार दोनों ही हैं। संविधान और संवैधानिक सरकार संविधावाद का आधार हैं। संविधानवाद उसी राजनीतिक व्यवस्था में सम्भव है जहां संविधान और संविधानिक सरकार दोनो हों। प्रथम विश्व युद्ध के बाद जर्मनी व इटली में संविधान तो थे, लेकिन वहां संवैधानिक सरकारें नहीं थीं। इसी कारण वहां संविधानवाद का विकास अवरुद्ध हुआ। संवैधानिक सरकार वह होती है जो संविधान की व्यवस्थाओं के अनुसार संगठित, सीमित और नियन्त्रित हो तथा व्यक्ति विशेष की इच्छाओं के स्थान पर कानून के शासन का ही पालन करती है। संवैधानिक सरकार ही संविधान को व्यवहारिक बनाती है और संविधानवाद की स्थापना करती है।

संविधानवाद को उत्तरदायी या सीमित सरकार का नाम दिया जाता है। यह शासन की वह पद्धति है जिसमें जनता की असस्थाओं, मूल्यों और आदर्शों को परिलक्षित करने वाले संविधान के नियमों व सिद्धान्तों के अनुसार ही शासन किया जाता है और संविधान के द्वारा ही शासक वर्ग को प्रतिबन्धित या नियन्त्रित किया जाता है ताकि वह निरंकुश बनकर जनता का शोषण न करे। संविधानवाद को कुछ विद्वानों ने निम्न प्रकार से परिभाषित किया है :-

(1) सी०एफ० स्ट्रांग के अनुसार-"संवैधानिक राज्य वह है जिसमें शासन की शक्तियों, शासितों के अधिकारों और इन दोनों के बीच सम्बन्धों का समायोजन किया जाता है।"

(2) कार्टन हर्ज के अनुसार-"मौलिक अधिकार तथा स्वतन्त्र न्यायपालिका प्रत्येक संविधानवाद की अनिवार्य और सामान्य विशेषता है।"

(3) जे०एस० राअसैक के अनुसार-"धारणा के रूप में संविधानवाद का अभिप्राय है कि यह अनविार्य रूप से सीमित सरकार तथा शासन के रूप में नियन्त्रण की एक व्यवस्था है।"

(4) कोरी अथा अब्राहम के अनुसार-"स्थापित संविधान के निर्देशों के अनुरूप ही शासन हो संविधानवाद कहा जाता है।"

(5) के०सी० व्हीयर के अनुसार-"संविधानवाद का अर्थ है निरंकुश शासन के विपरीत नियमानुकूल शासन।"

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि संविधानवाद एक सीमित शासन है, क्योंकि इसमें कुछ प्रतिबन्धों की व्यवस्था द्वारा सरकार को सीमित व उत्तरदायी बनाया जाता है।

संविधान और संविधानवाद में अन्तर

(Difference between Constitution and Constitutionalism)

संविधान ही संविधानवाद का आधार होता है। कुछ राजनीतिक विद्वान इन दोनों को पर्यायवाची मानते हैं, लेकिन व्यवहार में स्थिति भिन्न हो सकती है। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद जर्मनी और इटली में संविधान तो थे, लेकिन संविधानवाद नहीं था। इसलिए संविधान और संविधानवाद में परिस्थितियों के अनुसार अन्तर होता है। इस अन्तर के प्रमुख आधार निम्नलिखित हैं :-

(1) परिभाषा की दृष्टि से अन्तर (Difference from the view point of definition) :- यदि परिभाषा के आधार पर देखा जाए तो संविधान एक संगठन का प्रतीक होता है तथा संविधानवाद एक विचारधारा का प्रतीक है जिसमें राष्ट्र के मूल्य, विश्वास तथा राजनीतिक आदर्श शामिल होते हैं। संविधान एक ऐसा संगठन है जिसमें सरकार और शासितों के सम्बन्धों को निर्धारित किया जाता है। संविधान राजनीतिक व्यवस्था के शक्ति सम्बन्धों की आत्मकथा है। संविधानवाद उन विचारों का द्योतक है जो संविधान का वर्णन और समर्थन करते हैं तथा जिसके माध्यम से राजनीतिक शक्ति पर प्रभावकारी नियन्त्रण कायम रखना सम्भव होता है। सी०एफ० स्ट्रांग ने संविधान को परिभाषित करते हुए कहा है-"संविधान उन सिद्धान्तों का समूह है जिनके अनुसार राज्य के अधिकारों, नागरिकों के अधिकारों और दोनों के सम्बन्धों में सामंजस्य स्थापित किया जाता है।" संविधानवाद को परिभाषित करते हुए कोरी तथा अब्राहम ने लिखा है-"स्थापित संविधान के निर्देशों के अनुरूप शासन को संविधानवाद माना जाता है।" इस प्रकार परिभाषा की दृष्टि से संविधान एक संगठन का तथा संविधानवाद एक विचारधारा का प्रतिनिधित्व करता है।

(2) प्रकृति की दृष्टि से अन्तर (Difference from the view point of Nature) :- प्रकृति की दृष्टि से संविधान एक साधन प्रधान धारणा है और संविधानवाद एक साध्य प्रधान धारणा है। संविधानवाद राजनीतिक समाज के लक्ष्यों और उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए सुव्यवस्था है। यह हर समाज के गन्तव्यों को प्राप्त करने की संविधान रूपी साधन द्वारा चेष्टा करता है। इस तरह संविधान वह साधन है जो राजनीतिक समाज के लक्ष्यों व उद्देश्यों को प्राप्त करके संविधानवाद की स्थापना करता है या संविधानवाद रूपी साध्य को प्राप्त करता है।

(3) उत्पत्ति की दृष्टि से अन्तर (Difference from the view point of Origin) :- संविधान का निर्माण किया जाता है, जबकि संविधानवाद विकास की लम्बी प्रक्रिया का परिणाम होता है। यद्यपि ब्रिटेन का संविधान परम्पराओं पर आधारित व अलिखित होने के कारण इसका अनुवाद है। संविधान का निर्माण सर्वोच्च अधिकार प्राप्त किसी संस्था द्वारा किया जाता है। उदाहरण के लिए भारत का संविधान एक संविधान सभा द्वारा लगभग तीन वर्ष में तैयार किया गया था। संविधानवाद किसी भी देश के राजनीतिक समाज के मूल्यों, विश्वासों तथा आदर्शों के विकास का परिणाम होता है। संविधान जनता की आवश्यकताओं के अनुरूप सदैव परिवर्तित व संशोधित होते रहे हैं, लेकिन संविधानवाद की स्थापना के बाद उसे बदलना या समाप्त करना निरंकुशता व अराजकता को जन्म देता है।

(4) क्षेत्र की दृष्टि से अन्तर (Difference from the view point of Scope) :- क्षेत्र की दृष्टि से संविधान एक अपवर्जक (exclusive) तथा संविधानवाद एक अन्तर्भूतकारी (Inclusive) धारणा है। संविधानवाद तो कई देशों में यदि उनकी संस्कृति समान है तो एक पाया जा सकता है, लेकिन संविधान हर देश का अलग-अलग होता है, क्योंकि इसमें वर्णित अधिकार व कर्तव्य, शासक व शासितों के सम्बन्ध प्रत्येक देश के राजनीतिक समाज में अलग-अलग ढंग के होते हैं। यद्यपि देशों के संविधानों में भी समानता का लक्षण दिखाई देता है, लेकिन यह लक्षण मात्रात्मक होता है, गुणात्मक नहीं। उदाहरण के लिए लोकतन्त्रीय देशों में संविधान में प्रायः कई प्रकार के समान लक्षण होते हैं। उसी तरह साम्यवादी देशों के संविधानों में भी अलग प्रकार की समानता देखने को मिलती है। इस तरह संविधान एक सीमित अवधारणा है, जबकि संविधानवाद एक विस्तृत धारणा है। इसे देश काल की सीमाएं बांध नहीं सकती।

(5) औचित्य की दृष्टि से अन्तर (Difference from the view point of Legitimacy) :- संविधान का औचित्य विधि के आधार पर सिद्ध किया जाता है, जबकि संविधानवाद में आदर्शों का औचित्य विचारधारा के आधार पर सिद्ध होता है। जिस देश के संविधान में उचित कानून व नियमों की व्यवस्था होती है तथा संविधान जन-इच्छा के अनुकूल होता है तो उस संविधान को औचित्यपूर्ण माना जाता है। इसी तरह यदि किसी देश में संवैधानिक आदर्शों को संवैधानिक उपायों से ही प्राप्त करने के प्रयास किए जाते हैं तो संविधानवाद का औचित्य सिद्ध हो जाता है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि संविधान और संविधानवाद में गहरा अन्तर है। एक संगठन का प्रतीक है तो दूसरा विचारधारा का। एक साधन है तो दूसरा साध्य। एक सीमित धारणा है तो दूसरी विस्तृत। एक का निर्माण होता है तो दूसरे का विकास। इतने अन्तर के बावजूद भी दोनों में आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। यदि दोनों की दिशाएं अलग अलग होंगी तो इसके राजनीतिक समाज के लिए विनाशकारी परिणाम निकलेंगे।

संविधानवाद के आधार

(Foundations of Constitutionalism)

राजनीतिक समाज के लोगों में पाई जाने वाली मतैक्य की भावना ही संविधानवाद का आधार है। यह मतैक्य इतना ठोस और व्यापक होता है कि राजनीतिक शक्ति को जनता के ऊपर आजमाने की कोई आवश्यकता नहीं होती। यह मतैक्य विरोध और सहमति के बीच में होता है। सामान्य परिस्थितियों में जनता शासक वर्ग की हर आज्ञा का पालन करना अपना धर्म समझती है और संविधान के आदर्शों को प्राप्त करने में शासक वर्ग को पूरा सहयोग देती है। या मतैक्य जितना अधिक विरोध की बजाय सहमति के नजदीक होगा, उतनी ही अधिक संविधानवाद में ठोसता व व्यावहारिकता का गुण होगा। यही मतैक्य संविधानवाद की आवश्यक शर्त भी है और आवश्यकता भी है। विलियम जी०एण्ड्रयूज के अनुसार यह मतैक्य चार प्रकार का हो सकता है :

(I) संस्थाओं के ढांचे और प्रक्रियाओं पर मतैक्य (Consensus on the form of Institutions and Procedures) :- यदि नागरिक यह महसूस करते हैं कि सरकार उनके हितों के विरुद्ध कार्य कर रही है तो वे सरकार का विरोध करने में कोई देर नहीं करते। इससे विद्रोह या क्रान्ति की सम्भावना बढ़ जाती है। इसलिए ऐसी स्थिति संविधानवाद के विपरीत होती है। इसी कारण संविधानवाद के लिए जनता का सरकार व उसकी नीतियों पर पूर्ण विश्वास होना चाहिए। यही विश्वास ही संविधान और संविधानवाद के साम्य का आधार है। इसलिए संविधानवाद को बनाए रखने के लिए संस्थाओं के ढांचे और प्रक्रियाओं पर नागरिकों में मतैक्य होना जरूरी है।

(II) सरकार के आधार के रूप में विधि-शासन की आवश्यकता पर सहमति (Agreement on desirability of the rule of law as basis of Government) :- जनता को सर्दव यह विश्वास होना चाहिए कि सरकार या शासन कानून द्वारा ही चलाया जा रहा है और शासक वर्ग विधि के शासन की उपेक्षा नहीं कर रहा है। जनता की यही आस्था या विश्वास आपातकाल में शासक वर्ग को संविधानवाद से छूट देकर लाभ पहुंचाता है। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद जर्मनी में हिटलर को तथा इटली में मुसोलिनी को इसी छूट का लाभ मिला था। ऐसा विशिष्ट परिस्थितियों में ही होता है। इसलिए संविधानवाद के लिए जनता को सरकार के कार्यों को विधि के शासन के रूप में देखने पर मतैक्य की भावना रखनी चाहिए। यही सहमति संविधानवाद की रक्षा करती है।

(III) समाज के सामान्य उद्देश्यों पर सहमति (Agreement on the general goals of Society) :- राजनीतिक समाज के लोगों में सामान्य उद्देश्यों पर सहमति का अभाव राजनीतिक व्यवस्था में तनाव व खिंचाव उत्पन्न करता है। इससे दूसरे क्षेत्रों के मतैक्य के टूटने की सम्भावना बढ़ जाती है। सामान्य उद्देश्यों पर असहमति की स्थिति सम्पूर्ण संवैधानिक ढांचे को नष्ट कर सकती है। इसलिए संविधानवाद के लिए यह आवश्यक है कि नागरिक समाज के लोगों में समाज के सामान्य उद्देश्यों पर सहमति बनी रहे। यही संविधानवाद की आधारशिला है। इसके अभाव में संविधानवाद में ठोसता नहीं आ सकती।

(IV) गौण लक्ष्यों एवं विशिष्ट नीति-प्रश्नों पर सहमति (Concurrence in lesser goal and on specific policy question) :- संविधान के भवन को धराशायी होने से बचाने के लिए यह आवश्यक है कि नागरिक समाज के लोगों में गौण लक्ष्यों और विशिष्ट नीति-प्रश्नों पर भी सहमति बनी रहे। विशिष्ट नीति-प्रश्नों पर असहमति सहमति के अन्य क्षेत्रों को भी प्रभावित कर सकती है और संविधानवाद रूपी भवन को गिरा सकती है। यह सहमति अधिक आवश्यक न होते हुए भी, संविधानवाद की ठोसता के लिए जरूरी है। इसके कारण संविधानवाद रूपी भवन हल्के-फुल्के झटकों से हिलने से बच जाता है। यह सहमति संविधानवाद को व्यवहारिकता का गुण प्रदान करती है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि राजनीतिक समाज के लोगों में संस्थाओं के ढांचे व प्रक्रियाओं पर, सरकार के आधार के रूप में विधि के शासन की आवश्यकता पर, समाज के सामान्य उद्देश्यों, गौण लक्ष्यों तथा विशिष्ट नीति-सम्बन्धी प्रश्नों पर आम राय का होना जरूरी है। यह राय या मतैक्य सहमति के जितने पास होता है और विरोध से जितनी दूर होता है, संविधानवाद की जड़ें उतनी ही अधिक गहरी होती हैं। राजनीतिक समाज में होने वाले छोटे-मोटे उतार-चढ़ाव संविधानवाद को इस स्थिति में कोई हानि नहीं पहुंचा सकते। यदि राजनीतिक समाज के लोगों में मतैक्य की भावना का अभाव होगा तो संविधानवाद की रक्षा करने का कोई विकल्प नहीं हो सकता। अतः विभिन्न बातों पर राजनीतिक समाज के लोगों में पाया जाने वाला मतैक्य या सहमति ही संविधानवाद का आधार है।

संविधानवाद के तत्व

(Elements of Constitutionalism)

संविधान के आदर्श ही संविधानवाद का आधार होते हैं। इन आदर्शों का अभाव जनक्रान्ति की पृष्ठभूमि तैयार करता है। इसलिए संविधानवाद के लिए इन आदर्शों का होना बहुत जरूरी होता है। इन आदर्शों या तत्वों के अभाव में कोई भी संविधान व्यवहारिक धरातल पर उपयोगी नहीं हो सकता। पिनॉक व स्मिथ के अनुसार ये तत्व निम्नलिखित हैं :-

(1) संविधान आवश्यक या अपरिहार्य संस्थाओं के अभिव्यक्तक के रूप में (The Constitution as an embodiment of Essential Institutions) :- कोई भी संविधान चाहे वह लिखित हो या परम्पराओं पर आधारित, ब्रिटेन के संविधान की तरह अलिखित हो, अपनी अपरिहार्य संस्थाओं (कार्यपालिका, विधानपालिका तथा न्यायपालिका) की व्यवस्था अवश्य करता है। यदि संविधान में इन संस्थाओं और इनके अधिकार क्षेत्र की स्पष्ट व्याख्या नहीं होगी तो संविधानवाद की कल्पना करना असम्भव है। संविधान में इन संस्थाओं के अधिकार व शक्तियों के साथ-साथ इनके पारस्परिक सम्बन्ध की व्याख्या होना जरूरी है, यही संविधानवाद की प्रमुख मांग है। यदि इन संस्थाओं के अधिकार क्षेत्र की स्पष्ट व्याख्या न की गई तो सदैव शासक-वर्ग या नौकरशाही तन्त्र के निरंकुश होने के आसार बने रहते हैं। अतः संविधानवाद के लिए प्रत्येक संविधान में चाहे वह लिखित हो या अलिखित, उसमें विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के गठन, शक्तियों और उनके पारस्परिक सम्बन्धों की स्पष्ट व्याख्या, संविधानवाद के लिए आवश्यक हैं, क्योंकि ये संस्थाएं राज्य की अपरिहार्य संस्थाएं हैं।

(2) संविधान राजनीतिक शक्ति के प्रतिबन्धक के रूप में (The Constitution as restraint upon Political Power) :- प्रत्येक देश की शासन-व्यवस्था को सुचारु ढंग से चलाने के लिए उस पर कुछ प्रतिबन्धों की व्यवस्था का होना भी संविधानवाद की आधारशिला है। प्रत्येक लोकतन्त्रीय राजनीतिक व्यवस्था के संविधान में कुछ ऐसे उपाय किए जाते हैं कि शासन या सरकार हर समय नियंत्रित रहते हुये अपनी शक्तियों का जन-हित में ही उपयोग किए हैं। इससे शासक वर्ग की स्वेच्छाचारिता का फल जनता को नहीं भोगना पड़ता। लोकतांत्रिक राज्य में ये प्रतिबन्ध, विधि का शासन (Rule of Law), मौलिक अधिकार (Fundamental Rights), शक्तियों का पृथक्करण (Separation of Powers) तथा परम्पराएं व सामाजिक बहुलवाद (Conventions and Pluralism) आदि के रूप में होते हैं। जब राज्य का शासन कानून के अनुसार चलाया जाएगा और नागरिकों के अधिकारों का अतिक्रमण नहीं होगा तो संविधानवाद को हिलाने वाला कोई नहीं हो सकता। यदि संविधान में ही शासन के तीनों अंगों की शक्तियों का पृथक्करण कर दिया जाएगा तो शक्तियों का केन्द्रीयकरण नहीं होगा और शासक वर्ग निरंकुश नहीं बन सकेगा तो संविधानवाद मजबूत स्थिति में बना रह सकता है। इसी तरह सामाजिक परम्पराएं तथा बहुलवाद जब इतना मजबूत होगा कि साधारण सी राजनीतिक उथल-पुथल अराजकता पैदा करने में नाकाम रहे तो संविधानवाद को बनाए रखने में कोई परेशानी नहीं हो सकती। इस तरह संविधान में इन प्रतिबन्धों की व्यवस्था किए बिना संविधानवाद के स्थायित्व की कल्पना नहीं की जा सकती। ये प्रतिबन्ध ही शासन को सीमित व उत्तरदायी बनाते हैं। अतः प्रतिबन्धों द्वारा सीमित व उत्तरदायी सरकार ही संविधानवाद का आधार है। इसलिए संविधान का राजनीतिक शक्ति पर नियन्त्रण लगाना अनिवार्य है।

(3) संविधान विकास के निदेशक के रूप में (The Constitution as the Director of Development) :- संविधान में विकास का गुण भी होना चाहिए। वर्तमान में ही प्रभावी शक्ति बने रहने से वह भविष्य के प्रति उदासीन बन सकता है। इसलिए उसमें गतिशीलता तथा लोचशीलता का गुण भी होना चाहिए। समय व परिस्थितियों के अनुसार राजनीतिक समाज के मूल्यों, आदर्शों, मान्यताओं आदि में परिवर्तन होते रहते हैं। पुराने राजनीतिक मूल्यों व आदर्शों का स्थान नए मूल्य व आदर्श लेने के लिए तैयार रहते हैं, केवल उन्हें राजनीतिक समाज की अनुमति की प्रतीक्षा होती है। इसलिए प्रत्येक देश के संविधान में नवीन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए इन परिवर्तित व सम्बन्धित मूल्यों को ग्रहण करने की क्षमता का होना आवश्यक है। यदि कोई भी संविधान भावी विकास की योजना की उपेक्षा करता है तो वह राजनीतिक समाज की सहानुभूति खो देता है और क्रान्ति का शिकार हो सकता है। गतिहीनता को प्राप्त संविधान समाज के सामान्य व गौण उद्देश्यों को प्राप्त करने की बजाय उसमें बाधक बनकर राजनीतिक व सामाजिक विकास का मार्ग अवरुद्ध करता है। इसलिए संविधान को राजनीतिक समाज की बदलती हुई मान्यताओं या संस्कृति का सम्मान करना चाहिए ताकि संविधानवाद की व्यावहारिकता बनी रहे और संविधानवाद एक गत्यात्मक धारण बनी रहे।

(4) संविधान राजनीतिक शक्ति के संगठक के रूप में (The Constitution as an Organisor of Political Authority) :- संविधान किसी भी शासन-व्यवस्था को वैधता या औचित्य प्रदान करता है। वह यह बात सुनिश्चित करता है कि सरकार के समस्त क्रिया-कलाप उसके अधिकार-क्षेत्र के अनुसार ही हों और स्वयं सरकार की सीमाओं का गुण बनाए रखे। इसलिए संविधान सरकार की सीमाओं की स्थापना के साथ-साथ सरकार की विभिन्न संस्थाओं में शक्तियों का लम्बात्मक तथा अम्बरान्तीय (Vertical and Horizontal) विभाजन व वितरण भी करता है। संविधान राजनीतिक शक्ति का संगठन उसी अवस्था में रह सकता है जबकि संविधान द्वारा यह व्यवस्था हो कि सरकार के कार्य अधिकार-युक्त रहें तथा सरकार स्वयं भी वैध हो। यदि ऐसा न होगा तो सरकार विरोधी शक्तियां सरकार को गिरा सकती हैं। सरकार को संविधान के लक्ष्यों को प्राप्त करने के अलावा अपनी ऐसी कार्यशैली की स्थापना करनी होती है कि लोगों में शासन-सत्त के प्रति निष्ठा व लगाव बना रहे। यही निष्ठा या लगाव सरकार की वैधता का भी प्रतिबिम्ब है। यदि कोई भी सरकार वैधतापूर्ण नहीं रहेगी तो न तो संविधान राजनीतिक शक्ति का संगठक रहेगा और न ही संविधानवाद की प्राप्ति होगी। इसलिए सरकार का संविधानवाद की व्यावहारिकता के लिए वैध होना अनिवार्य है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि संविधान अपरिहार्य संस्थाओं का अभिव्यक्तक, राजनीतिक शक्ति का प्रतिबन्धक, राजनीतिक विकास का निदेशक तथा राजनीतिक शक्ति का संगठन होना चाहिए। इसके अभाव में संविधान संविधानवाद का आधार कभी नहीं बन सकता तथा वह केवल कागज का टुकड़ा मात्र होगा, जिसकी कोई व्यावहारिक उपयोगिता नहीं होगी।

संविधानवाद की विशेषताएं

(Features of Constitutionalism)

यद्यपि किसी भी देश के संविधान में दूसरे देशों के संविधानों से मात्रात्मक समानता मिल सकती है, क्योंकि वह संविधान गुणात्मक रूप से दूसरे देशों के संविधान के समान नहीं होता, लेकिन संविधानवाद की दृष्टि से कई देशों के संविधानवाद में गुणात्मक समानता भी मिल जाती है। विकासशील लोकतन्त्रीय देशों में संविधानवाद की सभी विशेषताएं या गुण लगभग समान रूप में मिल जाते हैं। ये विशेषताएं ही संविधानवाद के स्वरूप को निश्चित करती हैं। संविधानवाद की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित होती हैं :-

(1) संविधानवाद एक गत्यात्मक अवधारणा है (Constitutionalism is a Dynamic Concept) :- गतिशीलता संविधानवाद का प्रमुख गुण होता है। इसी कारण संविधानवाद विकास का सूचक होता है, विकास में बाधक नहीं। समय व परिस्थितियों के अनुसार समाज के मूल्य व आदर्शों के बदलने के कारण संविधानवाद को भी अपनी प्रकृति को बदलना पड़ता है। यही संविधानवाद की गत्यात्मकता का आधार है। संविधानवाद समाज के मूल्यों व आदर्शों की स्थापना व प्राप्ति करने के साथ-साथ नए मूल्यों या समाज की भविष्य की आकांक्षाओं के प्रति भी गम्भीर होता है। यदि संविधानवाद लोचशीलता तथा परिवर्तनशीलता के गुण से हीन होगा तो संविधानवाद में रक्षा करने वाला कोई नहीं होगा। ऐसे संविधानवाद के दिन जल्दी ही लद जायेंगे और वह विनष्ट हो जाएगा। अतः संविधानवाद का प्रमुख गुण गतिशीलता है और संविधानवाद एक गत्यात्मक अवधारणा है।

(2) संविधानवाद मूल्यों पर आधारित अवधारणा है (Consitutionalism is a value based Concept) :- संविधानवाद का सम्बन्ध उन आदर्शों से होता है जो किसी राष्ट्र के लिए बहुत महत्वपूर्ण होते हैं और राष्ट्रवाद का आधार होते हैं। संविधानवाद उन विश्वासों, राजनीतिक आदर्शों और मूल्यों की तरफ इशारा करता है जो प्रत्येक नागरिक को बहुत ही प्रिय होते हैं। अभिजन वर्ग के बाद समाज का बुद्धिजीवी वर्ग इसको जनता तक पहुंचाता है। सामाजिक स्वीकृति प्राप्त होने पर ही मूल्य संविधान का आदर्श बनते हैं और संविधानवाद को मूल्यों से युक्त करता है। इन मूल्यों की रक्षा के लिए नागरिक हर बलिदान देने को तैयार रहते हैं। जिन मूल्यों को समाज द्वारा अस्वीकृत कर दिया जाता है, वे मूल्य संविधानवाद से दूर हट जाते हैं। सामाजिक स्वीकृति के बाद ही ये मूल्य राष्ट्र-दर्शन के रूप में प्रतिष्ठित स्थान पर पहुंच जाते हैं। अतः संविधानवाद मूल्य-युक्त अवधारणा है और इसका सम्बन्ध राष्ट्र-दर्शन से है।

(3) संविधानवाद संस्कृति सम्बद्ध अवधारणा है (Constitutionalism is a Culture-based Concept) :- मूल्य किसी भी राजनीतिक समाज की संस्कृति का अंग होते हैं। [illegible] देश के मूल्य व आदर्श उस देश की संस्कृति की ही उपज होते है और उनका विकास भी राजनीतिक संस्कृति के विकास पर ही निर्भर करता है। संविधानवाद भी इन्हीं मूल्यों और

आदर्शों से घनिष्ठ रूप से जुड़ा होता है। यद्यपि राजनीतिक समाज की संस्कृति में विविधता का गुण भी पाया जाता है, परन्तु संविधानवाद एक समन्वयकारी शक्ति के रूप में सभी विरोधों में सामंजस्य स्थापित करके उन्हें अपने देश की संस्कृति का अंग बना देता है। इस तरह प्रत्येक देश की संस्कृति से ही संविधानवाद अपना विकास करता है। अतः संविधानवाद का राजनीतिक संस्कृति से गहरा सम्बन्ध होता है।

(4) संविधानवाद संविधान पर आधारित अवधारणा है (*Constitutiionalism is a Constitution based Concept*) :- संविधान नागरिक समाज के मूल्यों व आदर्शों का प्रतिबिम्ब होता है। संविधान किसी भी देश का सर्वोच्च कानून होता है। प्रतिबन्धों की व्यवस्था के कारण जनता का संविधान में गहरा विश्वास होता है। यही विश्वास और लगाव संविधानवाद का भी आधार है। यदि संविधान और संविधानवाद में साम्य नहीं होगा तो राजनीतिक उथल-पुथल की घटनाएं शुरु हो सकती हैं और देश में अराजकता का माहौल पैदा हो सकता है। इसलिए संविधानवाद को संविधान पर ही अपना भवन खड़ा करना पड़ता है। जब संविधान रूपी आधारशिला कमजोर होगी तो संविधानवाद को बचाने वाले कोई नहीं हो सकता। ऐसी सम्भावना असामान्य स्थिति में ही होती है, सामान्य स्थिति में नहीं। इसलिए संविधानवाद को संविधान पर ही आश्रित रहना पड़ता है। इसी से संविधानवाद व्यवहारिकता का गुण प्राप्त करता है।

(5) संविधानवाद समभागी अवधारणा है (*Constitutionalism is a Shared Concept*) :- एक देश के मूल्य व आदर्श दूसरे देशों के संविधान का भी अंग बन सकते हैं, लेकिन ये समान आदर्श मात्रात्मक आधार पर तो ठीक रहते हैं गुणात्मक आधार पर नहीं। लेकिन संविधानवाद का आदर्श बनने पर ये मूल्य और मान्यताएं स्थायित्व का गुण प्राप्त कर लेते हैं। यद्यपि समान संविधानवाद वाले देशों में भी कुछ असमान लक्षण हो सकते हैं, लेकिन यह अन्तर मात्रात्मक ही रहता है, गुणात्मक नहीं। विकासशील प्रजातन्त्रीय देशों में संविधानवाद के आधारभूत लक्षण लगभग समान मिलते हैं। यदि कोई अन्तर दृष्टिगोचर भी होता है तो वह संविधानवाद की समन्वयकारी शक्ति में घुल जाता है। अतः संविधानवाद एक समभागी अवधारणा है। संविधान तो प्रत्येक देश का अपना अलग होता है, संविधानवाद के लक्षण समान रूप से कई देशों में एक जैसे ही मिल सकते हैं।

(6) संविधानवाद साध्यमूलक अवधारणा है (*Constitutionalism is an ends Concept*) :- संविधानवाद का मूख्य उद्देश्य संविधानवाद के लक्ष्यों को प्राप्त करना होता है। इस कार्य में वह साधन रूपी संविधान की उपेक्षा नहीं कर सकता। साध्य और साधन में गहरा समन्वय होने के कारण इन्हें एक दूसरे से अलग करने का तात्पर्य होगा संविधानवाद की आत्मा को नष्ट करना। इसलिए साध्यों के रूप में संविधानवाद राजनीतिक समाज के मूल्यों व आदर्शों को प्राप्त करने की पूरी चेष्टा करता है। अतः संविधानवाद का सम्बन्ध साध्यों से अधिक तथा साधनों से कम होता है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि संविधानवाद संविधान पर आधारित अवधारणा है। यह संविधान के आदर्शों व मूल्यों का साध्य के रूप में प्राप्त करने का प्रयास करता है। इसका राजनीतिक समाज के मूल्यों से गहरा लगाव होने के कारण यह संस्कृति से सम्बन्धित भी होता है। इसमें अन्य देशों की संस्कृति को अंगीकार करने का गुण भी होता है और यह समय व परिस्थितियों के अनुसार विकास की तरफ भी बढ़ता रहता है। इस प्रकार यह गतिशील अवधारणा भी है। संविधानवाद की इन्हीं विशेषताओं के कारण संविधानवाद दूसरे देशों तक अपना विस्तार करता है और यह एक व्यापक अवधारणा बन जाता है।

संविधानवाद की उत्पत्ति और विकास

(The Origin and Development of Constitutionalism)

संविधानवाद की उत्पत्ति किसी आकस्मिक घटना का परिणाम नहीं है। इसकी उत्पत्ति और विकास एवं ऐतिहासिक प्रक्रिया की उपज है। यूनानियों से लेकर वर्तमान समय तक संविधानवाद एक लम्बी ऐतिहासिक प्रक्रिया से गुजरा है। यूनानी चिन्तकों के बाद इसे परवर्ती विचारकों ने भी विकसित होने में अपना सहयोग दिया है। एक गतिशील अवधारणा के रूप में संविधानवाद का अपना एक विशिष्ट प्रकार का इतिहास है। यूनानी नगर राज्यों के जन्म से वर्तमान अवस्था तक संविधानवाद के विकास को निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत समझा जा सकता है :-

(I) यूनानी संविधानवाद (Greek Constitutionalism) :- संविधानवाद की उत्पत्ति सबसे पहले यूनान के ऐथेंस नगर में हुई थी। सर्वप्रथम यूनानी दार्शनिकों ने ही राज्य के रूप, कार्यों और उद्देश्यों पर विचार करते हुए राज्य के विभिन्न रूपों में अन्तर किया। उन्होंने विवेकपूर्ण ढंग से संविधानिक शासन पर विचार किया और व्यक्ति की स्वतन्त्रता को सीमित

करने वाली राज्य की शक्ति पर मनन किया। प्लेटो ने संविधानिक शासन के बारे में कहा कि संविधानिक शासन शासक की इच्छा से नहीं, बल्कि नियमानुसार संचालित होते हैं। प्लेटो की तरह अरस्तु ने भी संविधानवाद के तत्वों-सार्वजनिक हित, सामान्य कानूनों का शासन, सहमति का आधार आदि पर अपने विचार दिए। अरस्तु की दृष्टि में अच्छी नागरिकता की कसौटी-संविधान का पालन करना था। अरस्तु ने सर्वप्रथम राज्य और सरकार में शासन के उद्देश्यों तथा संस्थात्मक आधार पर भेद व वर्गीकरण किया। यूनानी विचारकों ने संविधानों का पालन कराने के लिए शिक्षा पर बहुत जोर दिया ताकि राज्य को अराजकता से बचाया जा सके। यूनानी नगर राज्यों में संविधान का पालन अनिवार्य रूप से किया जाता था। आज भी यूनानी संविधानवाद का प्रभाव कानून की सर्वोच्चता के रूप में विद्यमान है। लेकिन यूनानी संविधानवाद का सबसे बड़ा दोष उसमें गतिशीलता व परिवर्तनशीलता का अभाव था। इसी कारण वह संविधानवाद तो समाप्त हो गया लेकिन उसका राजनीतिक आदर्श आज भी जीवित है।

(II) रोमन संविधानवाद (**Roman Constitutionalism**) :- यूनानी नगर-राज्यों के पतन के बाद रोम के महान साम्राज्य की स्थापना के बाद रोम ने सरकार के उपकरण के रूप में संविधान का जन्म हुआ। यह संविधान दृष्टांतों, मानव स्मृतियों, राज्य के विशेषज्ञों के कथनों, रीति-रिवाजों पर आधारित सरकार का कानून था। रोमन संविधानवाद कानून के शासन के रूप में विश्यात है। उन्होंने सामान्य और संविधानिक कानूनों में अन्तर किया। उनका व्यवस्था व एकता में गहरा लगाव होने के कारण एक अतिराष्ट्रीय सत्ता में भी विश्वास था। उन्होंने यह भी सिद्धान्त दिया कि कानूनी शक्ति का स्रोत जनता ही है। जब रोमन गणतन्त्र का पतन हुआ तो संविधानवाद भी विनाश की ओर चल पड़ा। प्रो० स्ट्रांग ने लिखा है-"रोमन संविधानवाद की शुरुआत एकतन्त्रात्मक, अभिजाततंत्रात्मक और लोकतन्त्रात्मक तत्वों के सुन्दर मेल से हुई और उसका अन्त अनुत्तरदायी निरंकुशतन्त्र के रूप में हुआ।" लेकिन रोमन संविधानवाद की यह बात आज भी लोकतन्त्रीय शासन प्रणालियों में संविधान का प्रमुख आदर्श है कि सम्राट को शक्ति सौंपने वाली जनता उसकी शक्ति को वापिस भी ले सकती है। आधुनिक युग में जो अन्तर्राष्ट्रीय प्रेम, बन्धुत्व, सहिष्णुता का आदर्श अपनाया जा रहा है, वह रोमन संविधानवाद की ही देन है। कानून का संहिताकरण और उत्तरदायी सरकार का सिद्धान्त रोमन संविधानवाद की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि थी, जो आधुनिक संविधानवाद का प्रमुख आधार है।

(III) मध्यकाल में संविधानवाद (**Constitutionalism in Middle Age**) :- रोमन साम्राज्य के नष्ट होने के बाद यूरोप में सामन्तवाद का प्रादुर्भाव हुआ। इस युग में चर्च ही सर्वोच्च धार्मिक सत्ता थी। उसे ईश्वर का प्रतिनिधि माना जाता था। राजा केवल ईश्वर के प्रति ही उत्तरदायी था। इससे संविधानवाद का मार्ग अवरुद्ध हो गया। लेकिन आगे चलकर सामन्तवाद की बुराईयों का अन्त हुआ और दैवीय सत्ता के स्थान पर स्वेच्छाचारी राजतन्त्र तथा वैधानिक राजतन्त्र की स्थापना हुई। इंगलैण्ड, फ्रांस, स्पेन में केन्द्रीयकरण की प्रगति ने सामन्तवाद की बुराईयों को नष्ट कर दिया और वहां पर संविधानवाद के लक्षण प्रकट होने लगे। ब्रिटेन में राजा के दैवी अधिकारों के स्थान पर संसद की सर्वोच्चता का सिद्धान्त पनपने लगा। इस युग में लोकप्रिय सम्प्रभुता के सिद्धान्त, सर्वव्यापी कानून, प्रतिनिधि लोकतन्त्रवाद की अवधारणा का उदय हुआ। पैहुआ के मार्सीलियो ने कहा कि "जनता की आवाज ईश्वर की आवाज है।" इंग्लैण्ड और फ्रांस में संविधानवाद की दो दिशाएं-राष्ट्रवाद और प्रतिनिधि लोकतन्त्रवाद का उदय हुआ। फ्रांस में स्वतन्त्रता, समानता तथा भ्रातृत्व की भावना के उदय ने निरंकुश राजतन्त्र पर तीव्र प्रहार करके संविधानवाद का नया अध्याय शुरु किया।

(4) पुनर्जागरण और संविधानवाद (**Renaissance and Constitutionalism**) :- पुनर्जागरण काल में इटली और जर्मनी में संविधानवाद का मार्ग अवरुद्ध हो गया। इटली में मैकियावेली ने 'The Prince' पुस्तक में राजनीति की नैतिक नियमों से अलग कर दिया। यूरोप में सामन्तवाद के पतन के बाद एकीकरण करने वाली शक्ति राजा ही था। इस काल में केवल इंग्लैण्ड ही ऐसा देश था, जहां संविधानवाद का विकास हुआ। 1688 की शानदार क्रान्ति के बाद इंग्लैण्ड के निरंकुश राजतन्त्र के स्थान पर सीमित राजतन्त्र की स्थापना हुई। इस युग में इंग्लैण्ड में मन्त्रिपरिषद तथा प्रधानमन्त्री की संस्थाओं का जन्म हुआ। 1742 में प्रधानमन्त्री वालपोल ने अविश्वास मत के कारण अपना पद छोड़ दिया। इससे इस सिद्धान्त की स्थापना हो गई कि मन्त्रिपरिषद व प्रधानमन्त्री अपने पद पर उसी समय तक रह सकते हैं, जब तक उन्हें लोकसदन का विश्वास हासिल रहे। इंग्लैण्ड में कानून के शासन की स्थापना ने संविधानवाद का नया अध्याय शुरु किया। इस युग में ही अमरीकी व फ्रांसीसी क्रान्तियों ने लोकतन्त्रीय सिद्धान्तों को जन्म दिया। अमेरिका के स्वतन्त्रता युद्ध का नारा था-"प्रतिनिधित्व के बिना कर नहीं।" 4 जुलाई 1776 के अमेरिका स्वतन्त्रता के घोषणा पत्र में कहा गया कि "सब

व्यक्ति समान हैं और सभी को जीवन, स्वतन्त्रता तथा सुख प्राप्त करने के अधिकार हैं।" इन अधिकारों की प्राप्ति के लिए ही सरकारें स्थापित की जाती हैं।" वास्तव में आधुनिक संविधानवाद का जन्म यहीं से होता है। 1789 की फ्रांसीसी क्रान्ति के घोषणा पत्र में भी इसी बात पर बल दिया गया कि मनुष्य जन्म से स्वतन्त्र और अधिकारों में समान है। कानून सामान्य इच्छा की अभिव्यक्ति है। जब 1791 में फ्रांस का संविधान बनाया गया तो इस घोषणा को उसमें महत्वपूर्ण जगह मिली।

(5) औद्योगिक क्रान्ति से प्रथम विश्वयुद्ध तक संविधानवाद (Constitutionalism from Industrial Revolution upto First World War) :- औद्योगिक क्रान्ति के जन्म ने संविधानवाद को विकसित किया। इस क्रान्ति के कारण पूंजीपति वर्ग ने शासन पर कब्जा करके कानूनों का प्रयोग मनमाने तरीके से करना शुरु कर दिया। पूंजीवाद के परिणामस्वरूप राष्ट्रीयता की भावना में वृद्धि हुई और राजनीतिक प्रतिद्वन्द्वता की भावना भी बढ़ी। पूंजीवाद ने श्रमिक आन्दोलनों को जन्म दिया। श्रमिक संगठित होकर अपने राजनीतिक अधिकारों की मांग करने लगे। 1867 और 1885 के सुधार अधिनियम श्रमिकों के आन्दोलन के ही परिणाम थे। 1848 में मार्क्स के कम्यूनिष्ट मैनीफेस्टो 'Communist Manifesto' में श्रमिकों को एकता के लिए कहा गया। इसका संविधानवाद के विकास पर बहुत प्रभाव पड़ा। पूंजीपतियों ने निरंकुश सत्ता के स्थान पर संविधानिक सत्ता के प्रयास शुरु कर दिये। मध्यम वर्ग को मताधिकार प्राप्त हो गया और राष्ट्रवादी दलों के संगठन के कारण राष्ट्रवाद तथा संविधानिक सुधारों का विकास हुआ। इटली तथा जर्मनी में एकीकरण आन्दोलनों का विकास हुआ। 1859 में एकीकृत इटली का संविधान बना, डेनमार्क में 1864 में संसदीय व्यवस्था की स्थापना हुई, आस्ट्रिया और हंगरी में 1869 में नए संविधान बने और फ्रांस में 1875 में तृतीय गणतन्त्र की स्थापना हुई। इस तरह संविधानवाद का सीमित विकास हुआ। 1874 में स्विट्जरलैण्ड में भी आधुनिक ढंग के संविधान का निर्माण हुआ, जो आज तक भी प्रचलित है। इसमें जनमत संग्रह की व्यवस्था द्वारा जनता को ही महत्वपूर्ण स्थान दिया गया। 1889 में जापान के सम्राट ने भी वैधानिक शासन की स्थापना के लक्ष्य को प्राप्त करने वाले नए संविधान पर हस्ताक्षर किए। 1875 में कनाडा में भी एक नए संविधान का निर्माण किया गया। इस तरह संविधानवाद में नई-नई प्रवृत्तियों का विकास हुआ और संविधानवाद में आधुनिकीकरण का समावेश होता गया।

(6) प्रथम विश्वयुद्ध से द्वितीय विश्वयुद्ध तक संविधानवाद (Constitutionalism from First World War upto Second World War) :- प्रथम विश्वयुद्ध के बाद संविधानवाद का विकास नए ढंग से हुआ। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद संविधानवाद यूरोपीय सीमाओं को लांघकर सार्वभौमिकता की तरफ बढ़ने लगा। युद्ध के बाद सभी देशों ने लोकतन्त्रीय संविधानों का निर्माण शुरु किया। राष्ट्र संघ की स्थापना ने संविधानवाद के विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। इस दौरान इटली में फासीवाद तथा जर्मनी में नाजीवाद के उदय ने संविधानवाद को गहरी क्षति भी पहुंचाई। इसी तरह रूस में भी साम्यवाद के प्रादुर्भाव ने संविधानवाद के लोकतन्त्रीय सिद्धान्तों का त्याग कर दिया। लेकिन इसके बावजूद भी नए लिखित संविधानों में वैयक्तिक स्वतन्त्रता, लोकसत्ता और राष्ट्रीयता को महत्वपूर्ण स्थान मिला। लेकिन यह व्यवस्था आडम्बरपूर्ण थी। 1922 में मुसोलिनी ने इटली में तथा 1933 में हिटलर ने जर्मनी में संविधान के आदर्शों के विपरीत अपनी निरंकुश सत्ता स्थापित करके संवैधानिक शासन की धज्जियां उड़ा दीं। ऐसे वातावरण में 1936 में स्पेन में जनरल फ्रांको ने भी प्रचलित गणतन्त्रात्मक संविधान का उल्लंघन कर दिया। इस स्थिति में बेल्जियम, नीदरलैण्ड, डेनमार्ग और चकोस्लोवाकिया आदि राज्यों ने अपनी संसदीय व्यवस्था की बड़ी मुश्किल से रक्षा की।

(7) द्वितीय विश्व युद्ध के बाद संविधानवाद (Constitutionalism after Second World War) :- द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद धुरी शक्तियों का नामोनिशान मिट गया और संविधानवाद का मार्ग अवरुद्ध करने की उनमें कोई शक्ति नहीं रही। लेकिन इसके बाद संविधानवाद का साम्यवादी प्रतिमान उभरने लगा। अनेक देशों में सोवियत संघ के मार्ग दर्शन में साम्यवादी सरकारों की स्थापना ने लम्बे समय तक संविधानवाद का साम्यवादी तरीके से विकास किया। उधर अमेरिका के झण्डे तले पाश्चात्य संविधानवाद का पाश्चात्य प्रतिमान ही लागू करने के प्रयास जारी रहे। नवोदित तृतीय विश्व के राष्ट्रों ने संविधानवाद का नया प्रतिमान विकसित किया। इस तरह संविधानवाद के नए नए प्रतिमान उभरे, उपनिवेशवाद तथा साम्राज्यवाद की पकड़ ढीली होने से स्वतन्त्र राष्ट्रों ने अपने अपने संविधान बनाने आरम्भ कर दिए। जापान ने 1946 में संविधान का नया प्रारूप स्वीकार किया जो प्रजातान्त्रिक तथा शांतिवादी सिद्धान्तों पर आधारित था। वह प्रारूप जापान में आज भी विद्यमान है। 1947 में भारत ने ब्रिटेन से औपनिवेशिक स्वतन्त्रता प्राप्त करके 1950 में अपना नया

प्रजातन्त्रीय संविधान लागू किया। 1949 में चीनी क्रान्ति के बाद माओ के नेतृत्व में चीन में जनवादी गणतन्त्र की स्थापना हुई। चीन में 1954 में समाजवादी संविधान बनाया गया, लेकिन उसके बाद 1975, 1978 तथा 1982 में चौथी बार संविधान का निर्माण हुआ। अन्तिम संविधान चीनी जन कांग्रेस ने व्यापक विचार-विमर्श के बाद ही तैयार किया है और उसका सब आज भी वही है। इसके बाद बर्मा, इण्डोनेशिया, श्रीलंका आदि राष्ट्रों ने भी अपने नये संविधान बनाए। 1958 में फ्रांस में पाँचवें गणतन्त्रीय संविधान का निर्माण हुआ। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद संयुक्त राष्ट्र संघ का चार्टर सभी राष्ट्रों के लिए लोकतन्त्रीय सिद्धान्तों के आदर्श के रूप में कार्यरत हैं।

यद्धपि द्वितीय विश्व युद्ध के बाद ईराक, अफगानिस्तान, पाकिस्तान आदि राष्ट्रों में सैनिक शासन व निरंकुशतावादी ताकतों के प्रादुर्भाव से संविधानवाद को गहना आघात भी पहुंचा है। अमेरिका ने अफगानिस्तान और ईराक की फासीवादी ताकतों को समाप्त करके वहीं अपना कठपुतली अस्थायी शासन तो स्थापित कर लिया है, लेकिन वहां संवैधानिक सरकार जैसी कोई वस्तु नहीं है। वहां पर अराजकता की स्थिति में संविधानवाद की कल्पना करना असम्भव है। इसी तरह पाकिस्तान में सैनिक शासन के कारण आज संविधानिक सरकार के अभाव में संविधानवाद नहीं है। लेकिन आज जनता की आवाज संविधानवाद के लिए नया मार्ग तलाश करने को तैयार है। पाकिस्तान, ईराक व अफगानिस्तान में भी वहां की जनता का रुझान प्रजातन्त्रीय सिद्धान्तों के प्रति अधिक है। आज विश्व में संविधानवाद का रास्ता रोकने वाली ताकत अधिक मजबूत नहीं है। संविधानवाद का रास्ता रोकने वाली ताकतों का जो हर्ष ईराक व अफगानिस्तान में हुआ है, वहीं अन्य देशों में भी हो सकता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि आज संविधानवाद विकास के मार्ग पर अग्रसर है।

संविधानवाद की अवधारणाएं

(Concepts of Constitutionalism)

संविधानवाद संविधान पर आधारित अवधारणा है। संविधान जनता का सर्वोच्च कानून होता है। प्रत्येक देश के संविधान के अपने राजनीतिक आदर्श व मूल्य होते हैं। प्रत्येक देश की संस्कृति के अपने गुण अन्य देशों से भी साम्य रखने के कारण कई देशों में सांझे संविधानवाद का विकास हो जाता है। यद्यपि यह तो सत्य है कि समस्त विश्व में एक संविधानवाद नहीं हो सकता, क्योंकि विश्व के देशों की संस्कृति में काफी अन्तर है। इसी आधार पर संविधान भी अलग अलग होते हैं और संविधानवाद भी। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद विश्व में तीन तरह का संविधानवाद विकसित हुआ है। इस आधार पर संविधानवाद की तीन अवधारणाएं निम्नलिखित हैं :-

(I) संविधानवाद की पाश्चात्य अवधारणा (Western Concept of Constitutionalism)

(II) संविधानवाद की साम्यवादी अवधारणा (Marxist or Communist Concept of Constitutionalism)

(III) संविधानवाद की विकासशील देशों की अवधारणा (Concept of Constitutional of Developing Countries)

(I) संविधानवाद की पाश्चात्य अवधारणा (Western Concept of Constitutionalism) :- इस अवधारणा को उदारवादी लोकतन्त्र की अवधारणा भी कहा जाता है। यह अवधारणा मूल्य मुक्त तथा मूल्य-अविभूत दोनों व्याख्याओं पर आधारित है। मूल्य मुक्त अवधारणा के रूप में इसमें केवल संविधानिक संस्थाओं का वर्णन किया जाता है, संविधानवाद के आदर्शों व मूल्यों का नहीं। जब राजनीतिक समाज के आदर्शों और मूल्यों के दृष्टिगत संविधानवाद की व्याख्या की जाती है तो वह मूल्य-अभिभूत व्याख्या कहलाती है। मूल्य अभिभूत व्याख्या ही आधुनिक लोकतन्त्र की मांग है। संविधानवाद की पाश्चात्य अवधारणा उदारवाद का दर्शन है। यह संविधानवाद साध्य और साधन दोनों हैं। इसमें राजनीतिक संस्थाओं के ढांचे के साथ-साथ राजनीतिक समाज के मूल्यों, आदर्शों (स्वतन्त्रता, समानता, न्याय) को भी महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है। यह संविधानवाद प्रतिबन्धों की व्यवस्था द्वारा सीमित सरकार की व्यवस्था करता है और कुछ संविधानिक उपबन्धों द्वारा राजनीतिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त का भी प्रतिपादन करता है। इससे व्यक्ति की स्वतन्त्रता व अधिकारों का बचाव होता है और विधि के शासन द्वारा समाज में सुव्यवस्था बनी रहती है। पश्चिमी संविधानवाद में संविधान का महत्व सरकार से अधिक होता है क्योंकि सरकार का निर्माण संविधान के बाद में होता है। इस संविधानवाद में संवैधानिक सरकार संविधान के आदर्शों को मानने के लिए बाध्य प्रतीत होती है। संवैधानिक उपबन्ध तथा उत्तरदायित्व का सिद्धान्त उसे संविधानिक बनाए रखने में मदद करते हैं। इस तरह पाश्चात्य संविधानवाद लोकतन्त्रीय भावना पर आधारित होता है।

पाश्चात्य संविधानवाद के आधार

(Foundations of Western Constitutionalism)

पाश्चात्य संविधानवाद के दो आधार-संस्थागत व दार्शनिक हैं। दार्शनिक आधार साध्यों के संकेतक हैं और संस्थागत आधार इन साध्यों को व्यवहार में प्राप्त करने के साधनों की व्यवस्था है। इन्हीं आधारों पर पाश्चात्य संविधानवाद आधारित हैं। ये आधार निम्नलिखित ढंग से समझे जा सकते हैं :-

(क) दार्शनिक आधार (Philosophical Foundations) :- प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था के कुछ मूलभूत लक्ष्य होते हैं। इन्हीं लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए वह व्यवस्था गतिशील रहती है। यह जरूरी नहीं है कि सभी पाश्चात्य देशों में राजनीतिक व्यवस्थाओं के लक्ष्य समान हों। इसलिए पाश्चात्य संविधानवाद के चार दार्शनिक आधार निम्नलिखित हैं :-

(1) व्यक्ति की स्वतन्त्रता :- यह पाश्चात्य संविधानवाद का प्रमुख साध्य है। समस्त संविधानवाद पाश्चात्य राजनीतिक व्यवस्थाओं में इसी साध्य के आसपास घूमता है। इस साध्य में राजनीतिक संस्थाएं व्यक्ति की मदद करती हैं। व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व के विकास के लिए व्यक्ति की स्वतन्त्रता को पाश्चात्य राजनीतिक व्यवस्थाओं में साध्य का दर्जा दिया गया है। यदि व्यक्ति को असीमित स्वतन्त्रता प्रदान की गई तो वह निरंकुशतावादी बन जाएगा और समाज में अराजकता की स्थिति पैदा हो जाएगी।, इसलिए व्यक्ति को सीमित स्वतन्त्रता ही दी गई है।

(2) राजनीतिक समानता :- पाश्चात्य संविधानवाद राजनीतिक शक्ति की सर्वोच्चता को प्रतिबंधित करते हुए उसे विभिन्न वर्गों में बांटता है। यदि राजनीतिक शक्ति का असमान वितरण किया गया तो सदैव राजनीतिक शक्ति के दुरुपयोग की सम्भावना बढ़ जायेगी। इसलिए राजनीतिक शक्ति को समान सहभागिता का रूप दिया जाना जरूरी है। पाश्चात्य संविधानवाद का प्रमुख लक्ष्य व्यक्ति की स्वतन्त्रता के साथ-साथ राजनीतिक समानता का लक्ष्य भी अपनाया गया है। राजनीतिक समानता द्वारा इसमें राजनीतिक शक्ति को निरंकुश बनने से रोकने की उचित व्यवस्था है।

(3) सामाजिक और आर्थिक न्याय :- यदि राजनीतिक सत्ता समाज के समस्त वर्गों तथा व्यक्तियों के लिए सामाजिक व आर्थिक न्याय की स्थापना नहीं करेगी तो समाज में आर्थिक और सामाजिक विषमताएं चरम सीमा तक पहुंच कर संविधानिक व्यवस्था को ही चुनौती देने लगेंगी। इससे व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के अन्त के साथ-साथ सामाजिक विघटन की स्थिति पैदा हो जाएगी। इसलिए पाश्चात्य या उदार लोकतन्त्रात्मक संविधानवाद में सामाजिक तथा आर्थिक न्याय की व्यवस्था बनी रहे।

(4) लोक-कल्याण की भावना :- पाश्चात्य संविधानवाद का प्रमुख लक्ष्य जन-कल्याण है। खुली प्रतिस्पर्धा और आर्थिक साधनों के अभाव में आर्थिक व सामाजिक विषमता के शिकार लोगों को ऊपर उठाने के लिए पाश्चात्य संविधानवाद में विशेष गुण पाए जाते हैं। पाश्चात्य देशों में समाज के पिछड़े वर्गों के लिए सरकार विभिन्न कल्याणकारी योजनाओं को अपनी संविधानिक व्यवस्था में ही स्थान दे देती है। उदारवादी लोकतन्त्रीय देशों में शासन व्यवस्था का प्रमुख लक्ष्य जन-कल्याण को बढ़ावा देना है ताकि अधिकतम व्यक्तियों के लिए अधिकतम सुख के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सके। इसी साध्य से अन्य साध्यों को गति प्राप्त होती है।

(ख) संस्थागत आधार (Institutional Foundations) :- पाश्चात्य संविधानवाद के संस्थागत आधार दार्शनिक आधारों को अमली जामा पहनाते हैं। इसके लिए राजनीतिक शक्ति को विभिन्न राजनीतिक संस्थाओं में वितरित किया जाता है। इससे सरकार को सीमित व उत्तरदायी बनाया जाता है। इसके लिए पाश्चात्य संविधानवाद में राजनीतिक व्यवस्थाओं की शक्ति को निम्नलिखित तरीकों से नियन्त्रित किया जाता है :-

(1) लोकतान्त्रिक सरकार का गठन :- लोकतन्त्रीय सरकार जनता की प्रतिनिधि होती है। जनता ही राजनीतिक शक्ति का अन्तिम स्रोत मानी जाती है। जिस सरकार का गठन जनता द्वारा किया जाता हो और वह जनता के प्रति ही उत्तरदायी हो, वह कभी निरंकुश नहीं बन सकती। उदारवादी लोकतन्त्रों में ऐसी ही सरकारों को प्राथमिकता दी जाती है,

(2) प्रतिनिधि सरकार :- जब लोकतन्त्रीय सरकार प्रतिनिधि सरकार होगी तो वह सीमित रहेगी। राजनीतिक समाज के प्रत्येक वर्ग को न केवल चुनावों में प्रतिनिधित्व प्राप्त हो बल्कि सरकार के गठन में प्रतिनिधित्व प्राप्त हो। सभी वर्गों को प्रतिनिधित्व न मिलने से प्रतिनिधित्व से ही वर्ग राजनीतिक सत्ता के विरुद्ध विद्रोह कर सकता है। इसलिए व्यवस्थित

प्रतिनिधित्व की व्यवस्था के अभाव में सरकार सही अर्थों में संस्थागत व्यवस्थाओं से सीमित व प्रतिबंधित नहीं बन सकती।

(3) सामाजिक बहुलवाद :- राजनीतिक समाज में अनेक वर्ग व संघ का पाया जाना स्वाभाविक है। बहुल समाज में सभी वर्गों के हितों में तालमेल बैठाना सरकार का उत्तरदायित्व बनता है। यदि सरकार वर्ग विशेष के हितों की रक्षा करने वाली होगी तो सामाजिक बहुलवाद को धक्का लगेगा और समाज की विघटनकारी ताकतें सुविधाहीन वर्ग के साथ मिलकर सरकार की वैधता को ही चुनौती देने लगेंगे। अतः सरकार को सीमित रखने में सामाजिक बहुलवाद की व्यवस्था महत्वपूर्ण सिद्ध हो रही है।

(4) खुला समाज अथवा सामाजिक गतिशीलता :- खुला समाज, वास्तव में व्यक्ति के लिए सामाजिक गतिशीलता की व्यवस्था ही है। ऐसा समाज सभी परम्परागत, कानूनी तथा अन्य रूढ़िवादी बन्धनों से मुक्त होता है। ऐसा समाज अन्तःकरण, अभिव्यक्ति और भाषण की स्वतन्त्रता पर आधारित होता है और समाज के हर व्यक्ति और वर्ग को वैध संघ या संस्था बनाने की छूट होती है। ऐसे समाज में ही राजनीतिक व्यवस्था उन्मुक्त बन सकती है और लोकतन्त्रीय रूप ग्रहण कर सकती है। ऐसा समाज किसी विशेष दर्शन से मुक्त रहता है क्योंकि विशेष दर्शन से युक्त समाज में संस्थागत सरकारों पर नियंत्रण करना असम्भव होता है। संस्थागत सरकारों पर स्वयं के दर्शन से रहित खुले समाज में ही सम्भव है।

पाश्चात्य संविधानवाद के तत्व

(Elements of Western Constitutionalism)

पाश्चात्य देशों में संविधानवाद के दो तत्व-सीमित सरकार की परम्परा तथा राजनीतिक उत्तरदायित्व का सिद्धान्त हैं।

(क) सीमित सरकार (Limited Government) :- पाश्चात्य राजनीतिक समाजों में सीमित सरकार की परम्परा का विकास लोकतन्त्र के विकास के साथ ही हुआ है। राजनीतिक शक्ति को नियन्त्रित व उत्तरदायी बनाने के लिए पाश्चात्य समाजों में अनेकों संस्थागत व्यवस्थाएं की गई हैं। पश्चिमी देशों में जैसे जैसे लोकतन्त्रीय सिद्धान्तों का विकास होता गया वैसे वैसे सरकार को नियन्त्रित करने की विधियां भी विकसित होती गई। पाश्चात्य देशों में सरकार को सीमित रखने के निम्नलिखित संस्थागत तरीके अपनाए जाते हैं :-

(1) कानून का शासन (Rule of Law)।

(2) मौलिक अधिकारों व स्वतन्त्रताओं की व्यवस्था (Provision of Fundamental Rights and Liberties)।

(3) राजनीतिक शक्ति का विभाजन पृथक्करण, विकेन्द्रीकरण व नियन्त्रण (Distribution, Separation, Decentralization and Control of Political Power)।

(4) स्वतन्त्र व निष्पक्ष न्यायपालिका (Independent and Impartial Judiciary)।

(1) विधि का शासन (Ruleof Law) :- यह शासन इंग्लैण्ड के संविधानवाद की देन है। यह शासन व्यक्ति की स्वतन्त्रता की रक्षा करने तथा किसी शासक की तानाशाही रोकने का सबसे अच्छा व प्रभावी उपाय है। जब किसी देश में किसी व्यक्ति का शासन न होकर कानून का शासन होता है तो वहां व्यक्ति की स्वतन्त्रता को कोई हानि नहीं पहुंच सकती। कानून के सामने सभी व्यक्ति समान होते हैं और समस्त राजकीय व प्रशासनिक गतिविधियां कानून द्वारा नियन्त्रित रहती हैं। यह सच्चे संविधानवाद का आधारभूत तत्व होता है। पिनाक एवं स्मिथ ने पाश्चात्य देशों के संविधानवाद में कानून के शासन की व्यवस्था के बारे में कहा है-"विधि का शासन का सिद्धान्त पश्चिमी संविधानवाद की सबसे शक्तिशाली और गहरी परम्परा है।" इसी तरह चार्ल्स मैकलवेन ने लिखा है-"कानून का शासन पश्चिमी जगत में सरकार पर एक आधारभूत प्रतिबन्ध है और यही संविधानवाद का अति प्राचीन और क्रमिक आधार है।" इस तरह कानून के शासन द्वारा शासक-वर्ग पर नियन्त्रण रखकर सीमित सरकार की परम्परा को विकसित किया जाता है।

(2) मौलिक अधिकारों व स्वतन्त्रताओं की व्यवस्था (Provision of Fundamental Rights and Liberties):- मौलिक अधिकारों और स्वतन्त्रताओं की व्यवस्था पाश्चात्य संविधानवाद का आधारभूत स्तम्भ है। संविधान में अधिकारों व स्वतन्त्रताओं की व्यवस्था करके सरकार के कार्यों को मर्यादित किया जाता है। इससे सरकार का कार्यक्षेत्र निश्चित होता है और सरकार की निरंकुशता पर रोक भी लगती है। अधिकारों की स्वीकृति ही सामाजिक गतिशीलता को जन्म

देती है और सामाजिक विभिन्नताओं की एकता के सूत्र में बांधने का सबसे अच्छा उपाय भी साबित होती है। इनके द्वारा सामाजिक न्याय की प्राप्ति भी सम्भव हो जाती है। प्रायः पाश्चातय संविधानों में चार प्रकार की स्वतन्त्रताएं प्रदान की जाती हैं-(i) व्यक्ति की स्वतन्त्रता (ii) अन्तःकरण अथवा आत्मा व मस्तिष्क की स्वतन्त्रता (iii) समान लाभ व अवसरा की स्वतन्त्रता (iv) राजनीतिक गतिविधियों की स्वतन्त्रता। इन स्वतन्त्रताओं में राजनीतिक स्वतन्त्रता या अन्य स्वतन्त्रताओं के लिए आधार-स्तम्भ के रूप में कार्य करती है। कोई भी व्यक्ति या संस्था इन अधिकारों व स्वतन्त्रताओं का उल्लघन नहीं कर सकता। बहुमत पर आधारित शासन में अल्पसंख्यकों पर अत्याचार व अन्याय रोकने का भी ये सबसे प्रभावशाली प्रावधान है। इस तरह मौलिक अधिकार और स्वतन्त्रताएं पश्चिमी संविधानवाद की महत्वपूर्ण उपलब्धि ह।

(3) राजनीतिक शक्ति का विभाजन, पृथक्करण, विकेन्द्रीकरण व नियन्त्रण (Distribution, Separation, Decentralization and Control of Political Power) :- पाश्चात्य संविधानवाद में शक्ति विभाजन का महत्वपूर्ण स्थान है। राजनीतिक शक्ति का केन्द्रीय स्तर से स्थानीय स्तर तक विकेन्द्रीकरण करके राजनीतिक शक्ति के केन्द्रीयकरण को रोका जाता है और इसके दुरुपयोग की संभावना कम की जाती है। राजनीतिक शक्ति का विभाजन होने से सभी शक्तियां अपने अपने अधिकार क्षेत्र में ही रहकर कार्य करने को विवश होती हैं और दूसरे के क्षेत्राधिकार में प्रवेश नहीं करती। राजनीतिक शक्ति का विभाजन के साथ साथ कार्यपालिका, व्यवस्थापिका तथा न्यायपालिका को अलग अलग शक्तियां सौंप दी जाती हैं। यदि राजनीतिक शक्ति तीनों के पास रहेगी तो उनके अपने अपने स्वतन्त्र अधिकार क्षेत्र होने के कारण वे एक दूसरे के नियन्त्रक भी बने रहेंगे। पिनॉक तथा स्मिथ ने लिखा है-"राजनीतिक संविधानवाद का सार शक्तियों के पृथक्करण में निहित है।" राजनीतिक शक्ति के विकेन्द्रीकरण के रूप में संसद के दोनों सदनों के पास अलग-अलग शक्तियां होती हैं और एक सदन दूसरे सदन की निरंकुशता पर रोक लगाने का प्रभावी साधन बनता है। इस तरह शक्तियों का विकेन्द्रीकरण भी सरकार को सीमित रखने का महत्वपूर्ण साधन है। इस तरह पाश्चात्य संविधानवाद में एक शक्ति को दूसरी शक्ति का नियन्त्रण बनाने के लिए राजनीतिक शक्ति का विभाजन किया जाता है, राजनीतिक शक्ति को केन्द्रीय, क्षेत्रीय और स्थानीय सरकारों में विभाजित करके संघात्मक व्यवस्था द्वारा राजनीतिक शक्ति पर नियन्त्रण रखा जाता है। सरकार के तीनों अंगों को अलग अलग शक्तियां सौंपकर उनके अधिकार क्षेत्र की व्याख्या कर दी जाती है ताकि वे एक दूसरे पर नियन्त्रण रखें। राजनीतिक संस्थाओं की शक्ति का विकेन्द्रीकरण करके शक्तियों के सदुपयोग को सुनिश्चित किया जाता है क्योंकि इसमें कार्यपालिका की शक्तियां केन्द्रीय सतर से स्थानीय स्तर तक विकेन्द्रित कर दी जाती हैं। राजनीतिक शक्तियों के विभाजन, पृथक्करण व विकेन्द्रीकरण द्वारा राजनीतिक शक्ति के अलग अलग स्वतन्त्र केन्द्रों की स्थापना से राजनीतिक शक्ति का दुरुपयोग रुक जाता है और संसद के दो सदनों की व्यवस्था करके, दोनों को एक दूसरे पर आश्रित करके, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका का इन पर अंकुश लगाकर राजनीतिक सत्ता पर नियन्त्रण स्थापित किया जाता है। इस प्रकार शक्तियों के विभाजन, पृथक्करण तथा विकेन्द्रीकरण द्वारा सरकार को सीमित रखा जाता है।

(4) स्वतन्त्र व निष्पक्ष न्यायपालिका (Independent and Impartial Judiciary) .- पाश्चात्य देशों की शासन-व्यवस्था में न्यायपालिका की कार्यपालिका तथा विधानपालिका के हस्तक्षेप से मुक्त रखा जाता है। स्वतन्त्र व निष्पक्ष न्यायपालिका ही संवैधानिक प्रतिबन्धों को अमली जामा पहनाती है, यह सरकार को संवैधानिक बनाती है और राजनीतिक शक्तियों का दुरुपयोग रोकती है। न्यायपालिका ही कानून के शासन की स्थापना करती है और सरकार की शक्तियों को सीमित रखती है। निर्णायक शक्ति के कारण न्यायपालिका कार्यपालिका तथा विधायिका की निरंकुशता पर रोक लगाती है और कानून का शासन कायम रखती है। निष्पक्ष न्यायपालिका ही पाश्चात्य संविधानवाद की प्रमुख विशेषता है। पीटर एच०मार्क के अनुसार-"स्वतन्त्र व निष्पक्ष न्यायपालिका आधुनिक संवैधानिक सरकार को सबसे अधिक महत्वपूर्ण लक्ष्यों में से एक है।" अतः स्वतन्त्र व निष्पक्ष न्यायपालिका आधुनिक शासन-व्यवस्था की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता है।

(ख) राजनीतिक उत्तरदायित्व (Political Responsibility) :- पश्चिमी संविधानवाद की महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि उसने शासन के प्रत्येक अंग को जनता के प्रति उत्तरदायी बनाने की व्यवस्था की है। नागरिकों के प्रति सरकार का उत्तरदायित्व पाश्चात्य संविधानवाद का आधारभूत लक्षण है। राजनीतिक उत्तरदायित्व प्रजातन्त्र का मेरुदण्ड है। पाश्चात्य संविधानवाद में राजनीतिक शक्ति को जनता के प्रति जवाबदेह बनाने के लिए निम्नलिखित संस्थागत उपाय किए गए हैं :-

(1) निश्चित समय के बाद चुनाव (Elections after definite tenure) !

(2) राजनीतिक दलों की व्यवस्था (Provision of Political Parties)।

(3) समाचार पत्रों अथवा प्रैस की स्वतन्त्रता (Freedom of Press)।

(4) लोकमत का महत्व (Importance of Public-Opinion)।

(5) परम्पराएं और सामाजिक बहुलवाद (Traditions and Social Pluralism)।

(1) निश्चित समय के बाद चुनाव (**Election after definite tenure**) :- पाश्चात्य देशों की राजनीतिक व्यवस्थाओं में निश्चित अवधि के बाद चुनावों को बहुत महत्वपूर्ण तरीके से सम्पन्न कराया जाता है। चुनावों के द्वारा ही सरकार के औचित्वपूर्ण कार्यों की समीक्षा की जाती है। चुनाव जनता के हाथ में महत्वपूर्ण शस्त्र होता है जिसका प्रयोग जनता जन-विरोधी सरकार को बदलने के लिए प्रयोग करती है। चुनाव की तलवार सदैव शासक-वर्ग को जनहित के प्रति जागरूक बनाए रखती है। कई बार मध्यावधि चुनाव भी सरकार की वैधता की परीक्षा करते हैं। शासन की बागडोर अपने हाथ में लेने के लिए शासक वर्ग सदैव जनता के कल्याण पर ही ध्यान देने के प्रयास करता रहता है। चुनाव ही संविधानवाद को असली जामा पहनाता है। चुनावों की व्यवस्था सरकार को उत्तरदायी बनाने का महत्वपूर्ण साधन है।

(2) राजनीतिक दलों की व्यवस्था (**Provision of Political Parties**) :- राजनीतिक दल जन इच्छा की अभिव्यक्ति का महत्वपूर्ण साधन है। राजनीतिक दलों के बिना राजनीतिक उत्तरदायित्व की स्थापना नहीं हो सकती। दलों के माध्यम से ही नागरिक अपनी विशिष्ट नीतियां प्रकाश में लाते हैं। राजनीकि दल लोगों को जागरूक बनाते हैं और सरकार व समाज के बीच कड़ी का काम भी करते हैं। राजनीतिक दल जनता की भावना को सरकार तक पहुंचाकर उसे सचेत करते रहते हैं। पाश्चात्य संविधानवाद में एक से अधिक दलों को महत्व देकर उनके द्वारा राजनीतिक व्यवस्था को गतिशील बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करने की व्यवस्था की है। पश्चिमी संविधानवाद की मान्यता है कि एक दल राजनीतिक उत्तरदायित्व के स्थान पर राजनीतिक निरंकुशता को जन्म देता है। ऐसी व्यवस्था तो साम्यवादी संविधानवाद में पाई जाती हैं। पश्चिमी देशों में बहुदलीय पद्धति विभिन्न वर्गों के प्रतिनिधित्व के माध्यम से लोकतन्त्र को मजबूत बनाने का महत्वपूर्ण तरीका है। इसमें विरोधी दल की भूमिका के कारण सत्तारूढ दल सरकार की भूमिका का निर्वहन करते समय जनता की आवाज को पहचानने में कभी चूक नहीं करता। इस प्रकार राजनीतिक दलों की भूमिका सरकार को उत्तरदायी बनाए रखती है।

(3) प्रैस की स्वतन्त्रता (**Freedom of Press**) :- पाश्चात्य देशों में प्रैस को सबसे अधिक स्वतन्त्रता प्रदान की गई है। समाचार पत्र जनमत को व्यक्त करने वाले प्रभावशाली साधन हैं। समाचार-पत्र जनता की आवाज सरकार तक पहुंचाकर सरकार को जनकल्याण के प्रति सचेत करते रहते हैं और उसे अपने जन-उत्तरदायित्व का निर्वहन करने को बाध्य भी करते हैं। इसलिए प्रैस की स्वतन्त्रता राजनीतिक उत्तरदायित्व का महत्वपूर्ण साधन है।

(4) लोकमत का महत्व (**Importance of Public Opinion**) :- जनमत प्रजातन्त्र का प्राण है। समाचारपत्र, रेडियो, दूरदर्शन आदि जनमत को अभिव्यक्त करने वाले प्रमुख साधन हैं। लोकमत एक ऐसा प्रभावशाली शस्त्र है जो सरकार को बनाने या गिराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति चुनावों के समय होती है। इसको प्रत्येक देश में महत्व दिया जाता है। लोकमत के आगे निरंकुश सरकार भी झुकने को विवश हो जाती है। अतः लोकमत सरकार को उत्तरदायी बनाने का महत्वपूर्ण साधन है।

(5) परम्पराएं और सामाजिक बहुलवाद (**Traditions and Social Pluralism**) :- प्रत्येक राजनीतिक समाज में गैर-राजनीतिक समूहों व संस्थाओं का सरकार पर दबाव बनाने के लिए विशेष महत्व होता है। ये समूह इतने शक्तिशाली होते हैं कि कई बार ये अप्रत्यक्ष रूप में सरकार को बनाने और गिराने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। ये सरकार पर अपने अपने हितों को प्राप्त करने के लिए अनुचित दबाव भी डाल देते हैं। लेकिन प्रतिरोधी समूह या संघ सरकार को ऐसा करने से रोकते हैं। इस तरह सरकार की शक्तियां मर्यादित बनी रहती हैं। जिस देश में लोकतन्त्रीय परम्पराएं बहुत मजबूत होती हैं, वहां सरकार इन परम्पराओं और उनके सजग प्रहरी गैर राजनीतिक समुदायों की उपेक्षा नहीं कर सकती। उसे सामाजिक बहुलवाद का सम्मान हर अवस्था में करना ही पड़ता है। सुस्थापित परम्पराओं और सामाजिक समूहों की उपेक्षा करने का अर्थ होगा राजनीतिक अराजकता को बुलावा देना।

इस प्रकार पाश्चात्य देशों में सीमित सरकार और राजनीतिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त को महत्व दिया गया है। इन देशों में

सरकार को सीमित रखने के लिए विशेष संस्थागत प्रावधान किए गए हैं। कानून के शासन व निष्पक्ष न्यायपालिका द्वारा सरकार की निरंकुशता पर रोक लगाकर उसे जनता के प्रति उत्तरदायी बनाने के लिए भी विशेष प्रावधान किए गए हैं। इन प्रावधानों के होते सरकार अपने क्षेत्राधिकार का अतिक्रमण करने में संकोच करती है। समय पर चुनावों, राजनीतिक दलों व प्रेस की स्वतन्त्रता के द्वारा पाश्चात्य देशों में शासन-व्यवस्था को जनता के प्रति उत्तरदायी बनाने के विशेष उपाय किए गए हैं। पाश्चात्य संविधानवाद की यही सबसे महत्वपूर्ण बात है कि इसमें सरकार मर्यादित व उत्तरदायी बनी रहकर जन-कल्याण के कार्य करती है।

(II) संविधानवाद की साम्यवादी अवधारणा

(Marxist or Communist Concept in Constitutionalism)

साम्यवादी देशों में संविधानवाद की अवधारणा पाश्चात्य संविधानवाद से सिद्धान्त में साम्य रखते हुए भी व्यवहारिक दृष्टिकोण से काफी भिन्न है। इस अवधारणा की दृष्टि में संविधान का उद्देश्य सबके लिए स्वतन्त्रता, समानता, न्याय और अधिकार निश्चित करना न होकर, बल्कि समाजवाद की स्थापना करना है। यह संविधानवाद मार्क्स व लेनिन के वैज्ञानिक समाजवादी विचारों पर आधारित हैं। समस्त साम्यवादी संविधानवाद सोवियत संविधान के इर्द-गिर्द ही घूमता है और सोवियत संविधान का निर्माण समाजवादी तत्वों से हुआ है। साम्यवादी देशों में सरकार व शक्ति का अर्थ पाश्चात्य देशों के दृष्टिकोण से बिल्कुल विपरीत है। इसी आधार पर संविधानवाद में भी भिन्नता आ जाती है। साम्यवादी सरकार को पूंजीपति वर्ग के हाथ की कठपुतली मानते हैं जो धनिक वर्ग के हितों को ही पोषक होती है। उनके अनुसार राजनीतिक शक्ति का आधार आर्थिक शक्ति है। उत्पादन शक्ति के धारक होने के कारण पूंजीपति राजनीतिक सत्ता के भी स्वामी होते हैं। इसलिए राजनीतिक शक्ति और मौलिक अधिकारों का प्रयोग जनसाधारण की बजाय अमीर लोग ही करते हैं। इसलिए पाश्चात्य जगत में मौलिक अधिकारों की व्यवस्था राजनीतिक शक्ति प्राप्त लोगों के लिए ही रहती है। राजनीतिक शक्ति पर किसी प्रकार से नियन्त्रण की बात करना मूर्खता है, क्योंकि आर्थिक व राजनीतिक शक्ति से सम्पन्न सरकार पर कोई भी नियन्त्रण प्रभावी नही हो सकता। इसलिए राजनीतिक शक्ति पर नियन्त्रण केवल तभी सम्भव है, जब आर्थिक शक्ति पर नियन्त्रण लगाया जाए।

साम्यवादी संविधानवाद आर्थिक शक्ति पर नियन्त्रण करने के लिए ऐसी समाजवादी व्यवस्था की स्थापना पर जोर देता है जो आर्थिक साधनों का बंटवारा समाज के सभी व्यक्तियों या वर्गों में कर दे। उनका मानना है कि आर्थिक शक्ति के विकेन्द्रीकरण से राजनीतिक शक्ति भी समस्त समाज के हाथ में आ जाएगी और सरकार की नीतियों का लाभ सभी व्यक्तियों को मिलने लगेगा। साम्यवादी विचारकों का मानना है कि आर्थिक शक्ति पर नियन्त्रण राजनीतिक शक्ति पर भी स्वयं नियन्त्रण रखने लग जाएगा।

संविधानवाद की साम्यवादी अवधारणा की मान्यताएं

(Assumption of Communist Concept of Constitutionalism)

साम्यवादी संविधानवाद की अवधारणा निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है :-

(1) शक्ति के आर्थिक पक्ष की सर्वोच्चता :- साम्यवादियों का मानना है कि सामाजिक जीवन में आर्थिक शक्ति की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। जिस व्यक्ति के पास आर्थिक शक्ति की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। जिस व्यक्ति के पास अधिक आर्थिक शक्ति होती है, वह सम्पूर्ण समाज पर अपना प्रभुत्व कायम करने व रखने में सफल होता है। इसी व्यवस्था के कारण वर्ग-संघर्ष का जन्म होता है और शोषण व अन्याय की शुरुआत होती है। इसलिए वर्ग-संघर्ष व शोषण को रोकने के लिए आर्थिक शक्ति का बंटवारा समाज के समस्त व्यक्तियों के हात में होना चाहिए।

(2) समाज में आर्थिक शक्ति से सम्पन्न वर्ग का प्रभुत्व :- आर्थिक शक्ति की सर्वोच्चता एक आर्थिक शक्ति सम्पन्न वर्ग को जन्म देती है। व्यवहार में इसी शक्ति से सम्पन्न वर्ग का राजनीतिक शक्ति पर भी नियन्त्रण रहता है। समस्त समाज आर्थिक शक्ति सम्पन्न वर्ग के निर्देशानुसार ही संचालित होता है।

(3) राजनीतिक शक्ति का आर्थिक शक्ति के अधीन होना :- आर्थिक शक्ति से सम्पन्न वर्ग राजनीतिक शक्ति को अधीन कर देता है। समाज की सभी संस्थाएं आर्थिक शक्ति के आगे झुकने को मजबूर हो जाती है। इसलिए नियन्त्रण राजनीतिक शक्ति की बजाय आर्थिक शक्ति पर ही लगाए जाने चाहिए।

इससे स्पष्ट होता है कि साम्यवादी देशों में राजनीतिक शक्ति की बजाय आर्थिक शक्ति पर नियन्त्रण रखने हेतु संवैधानिक प्रावधान किए जाते हैं। साम्यवादी धारणा के अनुसार नियन्त्रणों की संस्थात्मक व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य आर्थिक शक्ति को सार्वजनिक सत्ता के अधीन करना है। यद्यपि सामाजिक मूल्यों, राजनीतिक आदर्शों और संस्थाओं की प्राप्ति के लिए साम्यवादी देशों में भी पाश्चात्य देशों के समान ही संस्थागत व्यवस्थाएं की गई हैं। साम्यवादी देशों में भी पाश्चात्य संविधानवाद की तरह लिखित व सर्वोच्च संविधान, शक्तियों का विभाजन व पृथक्करण, नागरिकों के मौलिक अधिकार, सरकार का उत्तरदायित्व, कानून का शासन आदि की सैद्धान्तिक रूप में संस्थागत व्यवस्थाएं की गई हैं, लेकिन व्यवहारवाद में इन व्यवस्थाओं का कोई महत्व नहीं है। साम्यवादी देशों में साम्यवादी समाज की आर्थिक शक्ति पर नियन्त्रण रखने हेतु व्यवहार में निम्नलिखित तरीके प्रयोग में लाए जाते हैं :-

(i) उत्पादन व वितरण के साधनों पर सार्वजनिक स्वामित्व :- साम्यवादियों का मानना है कि आर्थिक साधनों पर निजी स्वामित्व आर्थिक शक्ति को कुछ पूंजीपतियों तक ही सीमित कर देता है। इससे वर्ग-संघर्ष का जन्म होता है। आर्थिक शक्ति से सम्पन्न वर्ग राजनीतिक सत्ता प्राप्त करके समाज के बहुसंख्यक श्रमिक वर्ग का शोषण करना शुरु कर देता है। समाज का बहुसंख्यक वर्ग पूंजीपतियों के आदर्शों व मूल्यों को मानने पर मजबूर हो जाता है। ऐसी स्थिति में संविधान के प्रावधानों-मौलिक अधिकारों व स्वतन्त्रताओं का कोई महत्व नहीं रह जाता। इसलिए संविधानवाद को व्यवहारिक बनाने के लिए उसके मार्ग की बाधाएं दूर करना आवश्यक हो जाता है। ऐसा तभी सम्भव हो सकता है, जब उत्पादन व वितरण के साधनों पर सार्वजनिक स्वामित्व की व्यवस्था हो। इससे राजनीतिक शक्ति व सत्ता का दुरुपयोग होने की संभावना कम हो जाएगी और संविधानवाद को व्यवहारिक गति मिलेगी।,

(ii) सम्पत्ति का समान वितरण :- उत्पादन व वितरण के साधनों पर सार्वजनिक नियन्त्रण हो जाने पर सम्पत्ति के समान बंटवारे में कोई परेशानी नहीं आएगी। इससे समाज में सम्पत्ति के कारण न तो संघर्ष होगा और न असमानता ज़न्म लेगी। इसलिए साम्यवादी आर्थिक समानता की स्थापना द्वारा संविधानवाद का लक्ष्य प्राप्त करना चाहते हैं। वे समाज को उन सभी बन्धनों से मुक्ति दिलाना चाहते हैं जो संविधानवाद के रास्ते में बाधा बनते हों।

(iii) साम्यवादी दल का शासन :- साम्यवादी देशों में आर्थिक समानता के कारण वर्ग-विहीन समाज में राजनीतिक दलों की आवश्यकता नहीं रहती। साम्यवादी बहुदलीय प्रणाली को साम्यवाद के लक्ष्यों को प्राप्त करने के मार्ग में बाधक मानते हैं। परन्तु साम्यवादी लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए समाज को नेतृत्व देने व निर्देशन के लिए एक राजनीतिक दल को तो आवश्यक मानते हैं। साम्यवादियों की दृष्टि में ऐसा दल साम्यवादी दल ही हो सकता है। यह दल ही समाज का सच्चा प्रतिनिधि हो सकता है। यह दल शोषण व दमन का अन्त कर सकता है और सार्वजनिक हित में वृद्धि कर सकता है।

उपरोक्त व्याख्या के आधार पर कहा जा सकता है कि संविधानवाद की साम्यवादी अवधारणा सिद्धान्त में तो पाश्चात्य अवधारणा के पास हो सकती है, लेकिन व्यवहार में वह उससे काफी दूर ही रहती है। साम्यवादियों का मानना है कि संविधानवाद को व्यवहारिक बनाने के लिए नियन्त्रण की पाश्चात्य व्यवस्थाएं प्रभावी नहीं हो सकती। इसलिए वे आर्थिक साधनों के वितरण की मौलिक व्यवस्थाओं द्वारा राजनीतिक शक्ति पर नियन्त्रण स्थापित करके संविधानवाद के आदर्शों को सभी नागरिकों के लिए उपलब्ध कराते हैं। सिद्धान्त तौर पर साम्यवादी देशों में नियन्त्रण की जो औपचारिक व्यवस्थाएं की जाती हैं, व्यवहार में उनका कोई महत्व नहीं है। साम्यवादी देशों में शक्तियों के पृथक्करण, मौलिक अधिकार, कानून का शासन आदि संवैधानिक व्यवस्थाएं संविधानवाद की स्थापना में अपना कोई योगदान नहीं देती। साम्यवादी दल की तानाशाही के आगे ये व्यवस्थाएं निरर्थक व औपचारिकता मात्र रह जाती हैं। सोवियत संघ में 1917 में लेनिन की सरकार स्थापित होने के बाद वहां साम्यवादी दल की तानाशाही रही। लेनिन की दृष्टि में संवैधानिक उपबन्धों की कोई अहमियत नहीं थी। उसके बाद स्टालिन ने भी अपनी तानाशाही सरकार द्वारा संविधानवाद की धज्जियां उड़ा दी। इसी तरह पौलैण्ड, हंगरी, रुमानिया, चेकोस्लोवाकिया, उत्तरी कोरिया, वियतनाम, क्यूबा आदि देशों में साम्यवाद की स्थापना होने के बाद से उसके पतन तक संविधान के आदर्शों की बजाय साम्यवादी दल या साम्यवादियों के आदर्शों का ही बोलबाला रहा। 1991 में सोवियत संघ के विघटन के बाद तथा अन्य साम्यवादी देशों द्वारा लोकतन्त्र को अपनाए जाने तक संविधानवाद के आदर्शों को व्यवहारिक तौर पर दबाया गया। आज चीन, वियतनाम व क्यूबा आदि साम्यवादी देशों में संविधानवाद का व्यवहारिक स्वरूप कुछ और ही है। इन देशों में साम्यवादी दलों या साम्यवादी नेतृत्य क आगे संवैधानिक उपबन्धों का कोई महत्व नहीं है। इन देशों में अधिकारों की अपेक्षा कर्तव्यों पर अधिक जोर दिया जाता है। इन देशों के संविधानों में ऐसी धाराएं हैं जो साम्यवादी दल का तानाशाही की आड़ में संविधानवाद

की ही धज्जियां उड़ा देती है। संविधान के पास सरकार को नियन्त्रित व उत्तरदायी बनाने के लिए साम्यवादी दल के हाते हुए कोई उपाय शेष नहीं रह जाता। इसलिए कुछ आलोचक साम्यवादी देशों में संविधानवाद के अस्तित्व से ही इन्कार करते हैं क्योंकि वहां पर समस्त गतिविधियों का निर्णायक यही है। इन देशों में संवैधानिक उपबन्ध जनता के साथ धोखा है और स्वयं संविधान भी साम्यवादी दल के हाथ में एक कठपुतली है। अतः साम्यवादी देशों में संविधानवाद की बात करना भी मूर्खता है।

(III) संविधानवाद की विकासशील देशों की अवधारणा

(Concept of Constitutionalism of Developing Countries)

राजनीतिक स्थायित्व के अभाव में विकासशील देशों में संविधानवाद का विकास उतना नहीं हुआ है, जितना पश्चिमी देशा में हुआ है। भारत को छोड़कर शेष सभी विकासशील देशों की राजनीतिक व्यवस्थाएं अभी संक्रमणकाल के दौर से गुजर रही हैं। भारत ही एकमात्र ऐसा देश है जो राजनीतिक स्थायित्व के साथ-साथ संविधानवाद में भी पाश्चातय देशों से पीछे नहीं है। भारत में संविधानवाद अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच चुका है। भारत ने पाश्चात्य संविधानवाद के समस्त आदर्श प्राप्त कर लिए हैं और यह बराबर संविधानवाद का विकास कर रहा है। विकासशील देशों की अपनी कुछ समस्याएं हैं जो संविधानवाद के मार्ग में बाधा बनकर खड़ी हैं। फिर भी विकासशील देश कम या अधिक मात्रा में पश्चिमी देशों की तरह ही संविधानवाद का पोषण कर रहे हैं। विकासशील देशों के संविधानवाद को समझने के लिए इन देशों की समस्याओं को समझना बहुत आवश्यक है।

विकासशील देशों की समस्याएं

(Problems of Developing Countries)

विकासशील देशों की समस्याएं विकासशील देशों के संविधानवाद की सच्ची प्रकृति को स्पष्ट करती हैं। इनके कारण ही *विकासशील देशों के संविधानवाद व पाश्चात्य देशों के संविधानवाद में अन्तर दिखाई देता है। ये समस्याएं निम्नलिखित हैं :*

(1) राजनीतिक स्थायित्व की समस्या :- अधिकतकर विकासशील देश लम्बे समय तक साम्राज्यवादी शोषण का शिकार रहे हैं। कुछ देशों में तो राजनीतिक सत्ता प्राप्त करने के लिए कत्लेआम हुआ और भारत जैसे देशों को लम्बे राष्ट्रीय आन्दोलन के बाद भी सत्ता मिल गई थी। लेकिन सत्ता प्राप्ति से आज तक अधिकांश विकासशील देश राजनीतिक अस्थिरता का शिकार रहे हैं। राजनीतिक दलों की अनेकता और राष्ट्रवाद के अभाव में राजनीतिक अस्थिरता को पनपने में भरपूर मदद की है। इसलिए इन देशों में संविधानवाद की संस्थात्मक व्यवस्थाओं पर कभी भी मतैक्य नहीं हो सका है और संविधानवाद के चिरस्थायी मूल्य जन्म नहीं ले सके हैं। पाश्चात्य देशों में इस प्रकार की राजनीतिक अस्थिरता का सर्वथा अभाव होने के कारण वहां से विधानवाद का पूर्ण विकास हुआ है।

(2) आर्थिक विकास की समस्या :- लम्बे साम्राज्यवादी शोषण का शिकार रह चुके विकासशील देशों को राजनीतिक अस्थिरता के साथ-साथ आर्थिक पिछड़ापन भी गुलामी से विरासत में मिला है। साम्राज्यवादी देशों द्वारा इनका आर्थिक दोहन करने के कारण इनकी आर्थिक स्थिति इतनी कमजोर है कि ये देश आज भी साम्राज्यवादी देशों पर निर्भर हैं और नव-साम्राज्यवाद या डालर साम्राज्यवाद का शिकार हैं। देश की आर्थिक समस्याएं बार-बार संविधानवाद को चुनौती देती रहती हैं। तकनीकी ज्ञान के अभाव में उपलब्ध आर्थिक साधनों का भी समुचित उपयोग न हो पाने के कारण आर्थिक विकास की समस्या दिन-प्रतिदिन और अधिक गहरी होती जा रही है। आर्थिक समस्याओं के कारण इन देशों को बार-बार राजनीतिक अस्थिरता का सामना करना पड़ रहा है। जगह जगह संविधानवाद को कुलचने वाली गतिविधियां जन्म ले रही हैं।

(3) राजनीतिक सत्ता की वैधता की समस्या :- विकासशील देशों में शासक वर्ग को सदैव आनी सत्ता की वैधता की परीक्षा देनी पड़ती है। इसलिए वे चुनावों में अनुचित साधनों को महत्व देते हैं और समाज में अनैतिक मूल्यों को जन्म देकर संविधानवाद को पनपने से रोकते हैं।

(4) आधुनिकीकरण की समस्या :- नवोदित विकासशील देशों के सामने अनधुनिकीकरण की समस्या एक विकट समस्या है। इन देशों में प्राचीन और नवीन मूल्यों में संघर्ष व्याप्त रहता है। इसलिए शासक व शासित वर्ग में मतैक्य के अभाव

के कारण इन देशों में संविधानवाद पिछड़ रहा है। इन देशों में आज तक भी सभी परम्परावादी लोगों और आधुनिकीकरण के प्रतिनिधियों के रूप में अभिजन वर्ग के बीच में वैचारिक संघर्ष है। यही संघर्ष और मतैक्य का अभाव संविधानवाद के लिए सबसे बड़ा खतरा है।

(5) राजनीतिक संरचना विकल्पों की समस्या :- इन देशों के सामने सबसे बड़ी समस्या उपयुक्त राजनीतिक व्यवस्था के चुनाव की है। वे इस अनिश्चय की स्थिति में हैं कि वे पूंजीवाद को अपनाएं या साम्यवाद को, लोकतन्त्र को अपनाएं या निरंकुशवाद को। यदि वे एक को स्वीकार करते हैं तो फिर परिस्थितियां दूसरी को अपनाने को बाध्य कर देती हैं। भारत को छोड़कर शेष सभी विकासशील देश आज तक अपनी राजनीतिक व्यवस्था का स्वरूप निश्चित नहीं कर पाए हैं। इसके अभाव में संविधानवाद के पाश्चात्य या साम्यवादी मॉडल को स्वीकार करना सम्भव नहीं है। इसलिए राजनीतिक विकास के संस्थात्मक मार्गों का अनिश्चय विकासशील देशों में संविधानवाद की स्थिति को अस्पष्ट बना देता है।

(6) अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा की समस्या :- अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा और पहचान बनाने के लिए विकासशील देशों के समाने समस्या आती है कि वे किस गुट में शामिल हों या किस मे नहीं। आज उन देशों के सामने गुट-राजनीति में शामिल होना मजबूरी है। इससे वे समाज के निश्चित मूल्यों की बलि चढ़ाकर अपनी अन्तर्राष्ट्रीय पहचान कायम करने का प्रयास करते हैं और संविधानवाद को खो देते हैं।

(7) सुरक्षा की खोज की समस्या :- विकासशील देशों के समाज बहुलवादी समाज हैं। परस्पर विरोधी हितों के कारण समाज के बहुलवादी समाज का बार-बार राजनीतिक व्यवस्था पर दबाव पड़ता रहता है। इससे सरकार को आन्तरिक सुरक्षा की चिन्ता हो जाती है और बाहरी आक्रमणों द्वारा भी जनता को एकता के सूत्र में बांधने तक के भी प्रयास करने पड़ते हैं। विकासशील देशों में सरकारों के सामने सदा आन्तरिक सुरक्षा के साथ साथ बाहरी सुरक्षा या राष्ट्रीय सीमाओं की सुरक्षा की भी चिन्ता लगी रहती है। इससे समाज के सामान्य लक्ष्यों को प्राप्त करने से उनका ध्यान हट जाता है। इसके फलस्परूप संस्थात्मक व्यवस्थाओं को मजबूत बनाने के लिए समाज व सरकार में मतैक्य नही बन पाता है ओर संविधानवाद से वे काफी दूर हट जाते हैं।

(8) सामाजिक-सांस्कृतिक समता का उद्देश्य :- राजनीतिक शक्ति को प्राप्त करने के लिए विकासशील देशों के बहुलवादी समाज का प्रत्येक वर्ग पूरी कोशिश करता है और अन्य समूहों को विकसित होने से रोकने के लिए राजनीतिक शक्ति का भी प्रयोग करता है। इससे समाज में संघर्ष की प्रवृत्ति जन्म लेती है। ऐसी स्थिति में समाज के मूल्यों व आदर्शों के विकास की कल्पना करना बेकार है। इसलिए राष्ट्रीय एकीकरण के अभाव में उचित व परिपक्व संविधानवाद विकसित नहीं हो सकता।

(9) संविधानों की परिवर्तनशील प्रवृत्ति :- विकाशील संविधानों की तुलना में विकासशील देशों के संविधानों को बाद बार संशोधनों या परिवर्तनों का सामना करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में स्वच्छ संवैधानिक परम्पराएं विकसित नहीं हो पाती हैं और संविधानवाद का विकास भी रुक जाता है।

विकासशील देशों के संविधान के लक्षण

(Features of Constitutionalism in Developing Countries)

विकासशील देशों की समस्याएं इन देशों में संविधानवाद को उस स्तर तक विकसित नही होने देती जैसा वह पाश्चात्य देशों में है। बहुलवादी समाज व शासक वर्ग में मतैक्य का अभाव विकासशील देशों के संविधानवाद को विकसित होने से रोकता है। लेकिन भारत जैसे विकासशील राष्ट्र में जो संविधानवाद विकसित हुआ है, वह पाश्चात्य संविधानवाद से कम नहीं है। विकासशील देशों के संविधानवाद की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं :-

(1) विकासशील देशों में संविधानवाद संक्रमणकालीन दौर में है :- विकासशील देशों में संविधानवाद अभी निर्माण की अवस्था में है। इन देशों में सामान्य उद्देश्यों पर समाज व सरकारों में मतैक्य का अभाव है। आज तक यह निश्चित नहीं हो पाया है कि राजनीतिक संस्थाओं और प्रक्रियाओं का स्वरूप क्या हो ? कभी विकासशील देशों में उदारवारी लोकतन्त्र के आदर्शों को अपनाने पर जोर दिया जाता है तो कभी वे साम्यवादी विचारों की ओर अग्रसर होते हैं। इस संक्रमणकालीन

दौर में संविधानवाद का विकसित रूप उभरना असम्भव है। भारत को छोड़कर अन्य किसी भी विकासशील देश ने निश्चित राजनीतिक व्यवस्था को नहीं अपनाया है।

(2) विकासशील देशों का संविधानवाद मिश्रित प्रकृति का है :- विकासशील देश पाश्चात्य तथा साम्यवादी संविधानवाद को एक बिन्दु वह लाने का प्रयास कर रहे हैं। वे पाश्चात्य उदारवादी लोकतन्त्र के स्वतन्त्रता, न्याय, समानता के साथ साथ सोवियत समाजवाद को भी अपने देश के संविधानों में स्थान देते हैं। भारत में लोकतन्त्र के सिद्धान्तों - समानता व स्वतन्त्रता के साथ-साथ समाजवाद के सिद्धान्त आर्थिक समानता के लिए सम्पत्ति पर सार्वजनिक नियन्त्रण की बात को बराबर महत्व दिया जाता है। भारत की अर्थव्यवस्था को मिश्रित प्रकृति विकासशील देशों के संविधानवाद के लिए प्रमुख आदर्श है। इसी तरह मौलिक अधिकार और उन पर नियन्त्रण की व्यवस्था भी भारत के संविधानवाद की मिश्रित प्रकृति को इंगित करता है।

(3) विकासशील देशों में संविधानवाद प्रवाह के दौर में है :- विकासशील देशों में संविधानवाद स्थिरता प्राप्त नहीं कर सका है। यद्यपि राजनीतिक विकास का भ्रम संविधानवाद को विकसित समझने का भ्रम उत्पन्न करता है, लेकिन राजनीतिक व्यवस्था में अराजकता उत्पन्न करने वाली तथा उसे पिछड़ेपन के मार्ग पर धकेलने वाली परिस्थितियां उत्पन्न होकर उसे प्रवाह के दौर में छोड़ देती हैं।

(4) विकासशील देश संविधानवाद दिशा रहित चरण में है :- विकासशील देश इस अनिश्चय की स्थिति में है कि वे पाश्चात्य लोकतन्त्र का आदर्श लेकर आगे बढ़े या साम्यवादी विचारों का आदर्श। आज तक विकासशील देश संविधानवाद के निश्चित आधारों व लक्ष्यों की स्थापना करने में असफल रहे हैं। अतः विकासशील देशों का संविधानवाद आधारों के अभाव व मूल्यों की अनिश्चितता के कारण दिशाहीन चरण में है।

भारत में संविधानवाद

(Constitutionalism in India)

भारत एक विकासशील देश है। भारत में संविधानवाद पाश्चात्य व साम्यवादी संविधानवाद का मिश्रित रूप है। भारत ने संसदीय प्रजातन्त्र को विरासत के रूप में अपनाया है। भारत में यह व्यवस्था अन्य विकासशील देशों की तुलना में अधिक सफल रही है। भारत के संविधानवाद में कानून का शासन, मौलिक अधिकारों, स्वतन्त्रता व समानता का आदर्श, स्वतन्त्र व निष्पक्ष न्यायपालिका, राजनीतिक शक्ति का पृथक्करण, निश्चित अवधि के बाद चुनाव, राजनीतिक दलों की व्यवस्था, प्रेस की स्वतन्त्रता, सामाजिक बहुलवाद आदि द्वारा सीमित सरकार व उत्तरदायी सरकार की परम्परा का निर्वाह किया गया है। इस दृष्टि से भारत में संविधानवाद उदारवादी पाश्चात्य लोकतन्त्र के काफी निकट है। इसी तरह भारत में साम्यवादी संविधानवाद के समाजवादी लक्ष्यों को भी अपनाया गया है। भारत में जनकल्याण को बढ़ावा देने के लिए उत्पादन व वितरण के साधनों पर सार्वजनिक स्थायित्व की व्यवस्था की गई है। अतः भारत का संविधानवाद मिश्रित प्रकृति का है और विकसित अवस्था में है।

इस प्रकार विकासशील देशों में भारत को छोड़कार संविधानवाद अभी निर्माण के दौर में है। धीरे धीरे कई विकासशील देशों में स्वच्छ संवैधानिक परम्पराएं विकसित हो रही हैं। होवार्ड रीमिन्स का कथन सत्य है कि-"राज्य नए हैं और राजनीतिक खेल के नियम प्रवाह में हैं इसलिए संविधानवाद अभी सुस्थिर नहीं हो सका है।" आज विकासशील देश संविधानवाद की वास्तविकताओं से काफी दूर हैं। भारत की तरह आज बर्मा, इण्डोनेशिया, नाईजीरिया, श्रीलंका आदि विकासशील देशों में संविधानवाद की लोकतन्त्रीय परम्पराएं विकसित हो रही हैं।

संविधानवाद की समस्याएं व सीमाएं

(Problems and Limitations of Constitutionalism)

संविधानवाद आधुनिक लोकतन्त्र का मूल मन्त्र है। संविधानवाद के बिना लोकतन्त्रीय आदर्शों व सिद्धान्तों का न तो विकास सम्भव है और न ही उनकी रक्षा। राष्ट्र संघ की स्थापना के बाद संविधानवाद को साम्यवादी क्रान्ति ने उदारवादी प्रजातन्त्रीय सिद्धान्तों को चोट पहुंचाई और इटली में फासीवाद, जर्मनी में नाजीवाद तथा स्पेन, पोलेण्ड, यूनान, रुमानिया आदि राष्ट्रों में अधिनायकवादी शासकों के उत्कर्ष ने संविधानवाद की गहरी जड़ें भी हिलाकर रख दीं। लेकिन द्वितीय विश्व युद्ध ने धुरी राष्ट्र

तथा अन्य अधिनायकवादी राष्टों को भारी नुकसान पहुंचाया और संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना के बाद विश्व में संविधानवाद फिर से अपना आधार खड़ा करने के प्रयास में सफल हुआ। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद इटली, जर्मनी, फ्रांस, स्वीडन, स्वीट्जरलैण्ड आदि राज्यों में अधिनायकवादी तत्व समाप्त हो गए और उन देशों में संविधानवाद का विकास करने वाले प्रजातन्त्रीय तत्वों के विकास की परम्परा शुरु हो गई। लेकिन द्वितीय विश्व युद्ध के बाद संविधानवाद के विकास के जो लक्षण दिखाई देते थे, वे आज धूमिल होते नजर आ रहे हैं। आज ईराक, अफगानिस्तान, पाकिस्तान आदि देशों में सैनिकवाद और निरंकुशतावाद को जो बोलबाला है, चारों ओर अराजकता का जो माहौल है, उसके परिणामस्वरूप संविधानवाद का विकास नहीं किया जा सकता। यद्यपि गिने-चुने देशों में संविधानवाद विरोधी तत्वों के होने से संविधानवाद के विकास का रास्ता नहीं बदला जा सकता, लेकिन फिर भी संविधानवाद को चुनौती देने वाली समस्याएं संविधानवाद के मार्ग में बाधक हैं। उनके निराकरण के बिना संविधानिकवाद का पूर्ण विकास सम्भव नहीं है। संविधानवाद के मार्ग में बाधक समस्याएं निम्नलिखित हैं :-

(1) युद्ध (War) :- संविधानवाद की प्रमुख सीमा यह है कि इसे शांतिकाल में ही लागू किया जा सकता है और विकास किया जा सकता है। युद्ध चाहे गृहयुद्ध के रूप में हो या दो देशो व अनेक देशों के मध्य में हो, इसे कायम रखना असम्भव व कठिन दोनों होता है। युद्ध के वातावरण में संविधानिक अधिकारों व आदर्शों का गहरा शून्य हो है। इसमें नागरिकों के मौलिक अधिकार स्थाई या अस्थाई तौर पर स्थगित हो जाते हैं और संविधानिक सरकार भी संविधान के निर्धारित कार्य करने को बाध्य हो जाती है। इसलिए संविधान जैसी वस्तु का अस्तित्व नष्ट होने लगता है। युद्ध में संविधान और संवैधानिक सरकार दोनों का आदर्श समाप्त होने से संविधानाद स्वतः ही नष्ट हो जाता है। यद्यपि यह जरूरी नहीं है कि युद्धकाल में संविधानवाद पूरी तरह नष्ट हो जाए। यदि जनता स्वयं सरकार को अपने अधिकारों और सुविधाओं को कम करने की अनुमति दे दे या सरकार के युद्धकालीन कार्यों का समर्थन कर दे तो संविधानवाद को बचाने में मदद मिल सकती है। ऐसी स्थिति में संविधानवाद पर युद्ध का क्या प्रभाव पड़ता है और युद्ध के बाद संविधानवाद को फिर से खड़ा करने में आसानी रहती है। लेकिन कई बार तानाशाही शासक इस छूट का अनुचित लाभ उठाकर उस देश में संविधानवाद की गहरी जड़ों को भी हिलाकर रख देते हैं। अतः युद्ध संविधानवाद की प्रमुख सीमा या उसके मार्ग में बाधा है।

(2) निरंकुशतावाद (Dictatorship) :- संविधानवाद और निरंकुशतावाद में विपरीत सम्बन्ध है। यदि एक आगे बढ़ता है तो दूसरा पीछे हटता है और यदि दूसरा आगे बढ़ता है तो पहला पीछे हटता है। निरंकुशतावाद का रूप चाहे फासीवाद हो, नाजीवाद हो, सर्वहारा या साम्यवादी दल की तानाशाही हो, सैनिकवादी शासन हो, किसी को भी संविधानवाद का मित्र नहीं कहा जा सकता। प्रथम विश्व युद्ध के बाद इटली में फासीवादी और जर्मनी में नाजीवादी ताकतों ने संविधानवाद को जो क्षति पहुंचाई थी, उससे निरंकुशतावाद को किसी भी रूप में संविधानवान के लिए अनुकूल नहीं माना जा सकता। निरंकुश या सर्वसत्ताधिकारवादी शासक शासन का संचालन संविधान के नियमों के अनुसार न करके अपनी इच्छा के अनुसार स्वार्थ सिद्धि के लिए ही करता है। इसमें जनभावना की बजाय शासक भावना की कदर की जाती है। इसलिए निरंकुशतावाद संविधानवाद की प्रमुख सीमा है। संविधानवाद को तानाशाही व सैनिक शासन में न तो लागू किया जा सकता है और न इसे लागू रखा जा सकता है। पाकिस्तान में सैनिक शासन के कारण वहां वह लम्बे समय से न तो संविधान के आदर्शों का पालन हो रहा है और न ही वहां पर संविधानिक सरकार है। इसी तरह ईराक व अफगानिस्तान में भी लम्बे समय तक ऐसी ही स्थिति का रहना संविधानवाद के मार्ग में निरंकुशतावाद को बाधक बनाता है। अतः निरंकुशतावाद संविधानवाद के मार्ग में प्रमुख बाधा है। के०सी० व्हीयर ने लिखा है-"जैसे जैसे निरंकुशतावाद बढ़ता है, वैसे वैसे संविधानवाद पीछे हटता है।"

(3) संसदीय संस्थाओं के पास कार्यभार की अधिकता (Too much workload of Parliamentary Institutions) :- यदि संसदीय संस्थाओं के पास कार्यभार अधिक होगा तो वे अपने संविधानिक उत्तरदायित्वों का निर्वहन सरलता से नहीं कर सकती। आधुनिक युग प्रजातन्त्र का युग है। इसमें राज्य को कल्याणकारी राज्य का दर्जा दिया गया है। आज इन संस्थाओं के पास राजनीतिक कार्यों के साथ साथ आर्थिक कार्यों का बोझ भी है। ऐसी स्थिति में ये संस्थाएं अपने संविधानिक उत्तरदायित्व को उचित रूप से निभाने में असमर्थ हैं। इससे संविधानवाद का विरोध होता है। इसलिए संसदीय संस्थाओं का अधिक कार्यभार संविधानवाद की सीमा भी है और इसके मार्ग में प्रमुख बाधा भी है।

(4) राजनीतिक समानता का सिद्धान्त (Principle of Political Equality) :- "प्रत्येक नागरिक को एक माना जाएगा, एक से अधिक नहीं।" यह लोकतन्त्र का प्रमुख सिद्धान्त है। यह सूत्र कम या अधिक विकसित देशों में तो ठीक हो सकता

है, पिछड़े हुए या विकासशील देशों में नहीं। इन देशों में यह श्रमिकों को खुश करने की बजाय उन्हें नाराज ही करता है। सी०एस० स्ट्रांग का कहना है-"यह सूत्र भारी उलझन पैदा करता है, क्योंकि जहां समाज के कम उन्नत अगों के आर्थिक हित के लिए यह आवश्यक है कि राज्य के केन्द्रीय अवयवों को और अधिक कर्त्तव्य सौंपे जाये, हालांकि उनके पास पहले ही इतने अधिक कर्त्तव्य हैं कि वे उनका उचित रूप से निष्पादन कठिनाई से ही कर सकते हैं, वहां मतदान की आधुनिक प्रणाली के अन्तर्गत गठित संसद में उन्हें बहुमत प्राप्त करने में परेशारी पदा होती है और ऐसी परिस्थिति में यह सम्भव है कि वे हताश होकर कुछ उच्छृंखल असंविधानिक मार्गों का अनुचित मांगों के लिए चुनाव कर लें। ऐसी स्थिति में संविधानिक राज्य को उस कठिनाई का अनुभव करने पड़ेगा क्योंकि श्रमिकों के बहुमत में न होने के कारण भी उनका संगठित अल्पमत अपनी मांगों की पूर्ति के लिए जो असंवैधानिक कृत्य करेगा, वह समाज को पंगु बना सकता है और राज्य में फूट डाल सकता है।" इस प्रकार लोकतन्त्र का राजनीतिक समानता का सिद्धान्त भी संविधानवाद के मार्ग में बाधा उत्पन्न कर सकता है।

(5) संविधान और संविधानिक सरकार द्वारा प्रदान की गई अधिक छूटें व स्वतन्त्रताएं (More Relaxations and Liberties provided by Constitution and Constitutional Government) :- जिन देशों में लोगों को आवश्यकता से अधिक स्वतन्त्रताएं और दूसरी सुविधाएं प्रदान की जाती हैं, वहां पर नागरिक कई बार उनका अनुचित फायदा उठाने का प्रयास करते हैं। उदाहरण के लिए जिन देशो में प्रैस को अधिक स्वतन्त्रता दी गई हे, वहां पर प्रैस कई बार अपनी स्वतन्त्रता का दुरुपयोग करके सरकार विरोधी वक्तव्य जारी करती रहती है। इससे सरकार के खिलाफ एक ऐसा जनमत तैयार हो जाता है कि सरकार के सामने दो ही विकल्प शेष रह जाते हैं कि या तो वह अपना पद छोड़ दे या सरकार विरोधी तत्वों को सख्ती से कुचल दे। इससे सरकार के सामने संविधानिक संकट व निरंकुशतावाद दोनों की समस्या पैदा होती है। लेकिन लोगों के आन्दोलन को सख्ती से दबाना संविधानवाद के हित में हो, यह आवश्यक नहीं है। दमन से संविधान और संविधानवाद दोनों को नुकसान पहुंचता है। इसलिए संविधानिक शासन द्वारा जनता को आवश्यकता से अधिक छूट देने से सरकार विरोधी तत्व संविधान के आदर्शों को नुकसान पहुंचाने की चेष्टा करते हैं। इससे संविधानवाद को हानि पहुंचती है।

(6) संवैधानिक शासन का स्थगन (Postponing the Constitutional Government) :- कई बार आपात स्थिति में युद्ध या किसी अन्य संकट के समय अस्थायी रूप से संवैधानिक शासन को स्थगित कर दिया जाता है। जैसे राष्ट्रीय आपातकाल की घोषणा के समय देश के शासक या सरकार द्वारा नागरिकों को दी जाने वाली सुविधाओं और अधिकारों को कुछ समय के लिए स्थगित कर दिया जाता है और कुछ समाप्त होने या आपात स्थिति के टल जाने पर उन्हें फिर से उसी स्थिति में लौटा दिया जाता है। लेकिन यह आवश्यक नहीं है कि आपातकाल में प्राप्त अधिकारों को शासक वर्ग फिर से विकेन्द्रित कर दे। जर्मनी और इटली में प्रथम विश्व युद्ध के बाद हिटलर और मुसोलिनी ने राष्ट्रीय आपातकाल के नाम पर जो सुविधाएं जनता से ली थी उन्हें वापिस नहीं की। लम्बे समय तक इन दोनों ने अपने अपने देश की शासन की बागडोर निरंकुश शासकों के रूप में संभाली। इससे इन देशों में संविधानवाद को गहरा आघात पहुंचा। इसी तरह पाकिस्तान में जनरल मुशर्रफ। ने भी शासन की बागडोर अपने हाथ में लेकर अब तक भी जनता को संवधानिक शासन की स्थापना के अधिकार नहीं दिए हैं। अतः असंवैधानिक शासन का स्थगन संविधानवाद के मार्ग में कई बार बहुत बड़ी बाधा बन जाता है।

(7) गृह-युद्ध (Civil War) :- जब किसी देश में किसी कारणवश गृह-युद्ध की शुरुआत होती है तो ऐसी स्थिति में संविधान विरोधी ताकतें सक्रिय हो जाती हैं और वे संविधानवाद के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा बन जाती हैं। संविधानिक सरकार की इन तत्वों को कुचलने के लिए ताकत का प्रयोग करना पड़ता है। कई बार गृह-युद्ध को समाप्त करना सरकार की काबू से बाहर हो जाता है। गृह-युद्ध में प्रायः सरकार विरोधी निरंकुश ताकतें ही अपने उद्देश्यों में कामयाब रहती हैं। ऐसी स्थिति में देश का शासन न तो संविधान के अनुसार ही चलाया जा सकता है और न ही सरकार का रूप संविधानिक रहता है। अतः गृह-युद्ध संविधानवाद के लिए बहुत बड़ी बाधा है।

(8) वैयक्तिक स्वतन्त्रता व समाज-हित के बीच टकराव (Contradiction between Individual Freedom and Social Interest) :- आज राज्य के सामने यह समस्या है कि वह व्यक्ति की स्वतन्त्रता को सर्वोपरि माने या सामाजिक कल्याण को प्रमुखता दे। सामाजिक कल्याण के लिए कानून बनाते समय व्यक्ति विशेष की स्वतन्त्रता सीमित हो सकती है

बहुसंख्यक वर्ग के हितों के लिए अल्पसंख्यक वर्ग के हितों का बलिदान भी दिया जा सकता है। व्यक्तिवादी विचारक इस बात का विरोध करते हैं कि समाज हित में व्यक्ति की स्वतन्त्रता का दमन क्यों हो। इस असंतुलन की स्थिति में कई बार जन-आन्दोलन तक खड़े हो जाते हैं। इस पर नियन्त्रण पाने के लिए सरकार को कई बार असंवैधानिक उपाय या दमन की नीति का भी सहारा लेना पड़ता है।

(9) विकासशील देशों में संविधानवाद की समस्याएं (Problem of Constitutionalism in Developing Countries):- विकासशील देश अचानक राजनीतिक व सामाजिक उथल-पुथल के दौर से गुजर रहे हैं। राजनीतिक अस्थिरता व आन्तरिक संघर्षों का शिकार होने से देश संविधान के मूल ढांचे पर भी एकमत नहीं हो पा रहे हैं। इन देशों के सामने यह विकट समस्या है कि ये पाश्चात्य संविधानवाद को अपनाएं या साम्यवादी संविधानवाद को। इन देशों में स्वस्थ राजनीतिक परम्पराओं का अभाव है। इन देशों का आर्थिक पिछड़ापन भी इन देशों के स्थिर शासन व संविधानवाद की परम्पराओं को विकसित नहीं होने दे रहा है। सामाजिक और आर्थिक पिछड़ेपन ने विकासशील देशों में गम्भीर संविधानिक समस्याओं को जन्म दिया है। विषम आर्थिक व सामाजिक समस्याओं से निजात पाने के लिए 1975 में भारत में लागू किया गया आपातकाल संविधानवाद के लिए गहरा आघात था। यद्यपि इस आपातकाल का उद्देश्य देश की आर्थिक दशा का सुधारना ही था, लेकिन जनता के कष्टों में जो वृद्धि हुई, वह संविधानवाद के आदर्शों के विपरीत ही थी।

उपरोक्त विवेचन के बाद कहा जा सकता है कि सर्वाधिकावाद और युद्ध संविधानवाद के लिए सबसे बड़ा खतरा है। प्रजातन्त्र के विरुद्ध सरकार का कोई भी निरंकुश रूप संविधानवाद की आत्मा के खिलाफ है। आज प्रजातन्त्रीय आस्थाएं और संविधानवाद का ही निकारा है। संविधानिक शासन का पतन करने का अर्थ है-संविधानवाद का पतन। आज आवश्यकता इस बात की है कि संविधानवाद की समस्याओं पर नियन्त्रण किया जाए।

संविधानवाद की समस्याओं या बाधाओं का निराकरण

(Ecadiction of the problems of Constitutionalism)

यदि हमें संविधानवाद का लक्ष्य प्राप्त करना है तो इसके मार्ग में आने वाली प्रमुख बाधाओं का निराकरण करना आवश्यक हो जाता है। संविधानवाद की प्रमुख समस्याओं के समाधान के निम्नलिखित तरीके हैं :

(1) सरकार को हर अवस्था में संविधान के आदर्शों व मूल्यों की रक्षा के लिए तैयार रहना चाहिए। उसे कोई ऐसा कार्य नहीं करना चाहिए जिससे संविधानिक आदर्शों को हानि पहुंचती हो।

(2) राज्य व सरकार को अराजता की स्थिति से निपटने में सक्षम होना चाहिए। यदि सरकार अराजकता से निपटने में असक्षम रहती है तो वह कभी संविधानवाद की रक्षा नहीं कर सकती। उसे अराजकता की स्थिति से निपटने के लिए प्रभुसत्तात्मक शक्तियां अपने पास सुरक्षित रखनी चाहिए ताकि अराजकता उत्पन्न करने वाली ताकतों का सफाया किया जा सके। लेकिन इस कार्य को करते समय सरकार को बड़ा सोच-समझकर ही कदम उठाना चाहिए। जो सरकार अराजकता को समाप्त करने में असमर्थ रहती है, वह स्वयं भी अराजकता की पोषक बन जाती है और उसे किसी भी अवस्था में संवधानिक नहीं माना जा सकता।

(3) राजनीतिक दलों को लोगों को राजनीतिक शिक्षा देने का अपना उत्तरदायित्व पूरा करना चाहिए ताकि लोगों में जागृति आए और वे न तो कोई असंवैधानिक कार्य करें और न दूसरे को करने की अनुमति दें। संविधानवाद के लिए शिक्षित व राजनीतिक रूप से जागरूक जनता से बढ़कर कोई दूसरा अस्त्र नहीं है।

(4) सरकार व राज्य को ऐसे कार्य करने चाहिए कि जनता को यह विश्वास हो जाए कि शासक वर्ग उनकी भलाई के लिए ही कार्य कर रहा है और वे अपने भाग्य के स्वयं निर्माता हैं। सरकार को संवैधानिक सत्ता का प्रयोग इस प्रकार करना चाहिए कि व्यक्तिगत अधिकारों को कोई नुकसान न हो। बहुमत को सदैव अल्पमत के हितों का ख्याल रखते हुए ही राज्य के अवयवों का गठन और विकास करना चाहिए। इससे संगठित अल्पमत के मन में शासन-सत्ता के प्रति विश्वास कायम होगा और वे असंवैधानिक मार्ग द्वारा अपनी मांगों के लिए आन्दोलन नहीं करेंगे। इसलिए राज्य व सरकार को प्रभुसत्ता की जटिल समस्याओं को ध्यान में रखकर ही कार्य करना चाहिए।

(5) संसदीय संस्थाओं के कार्यभार को कम करके संसदीय व्यवस्था को संविधानवाद के मार्ग में [illegible] रूप में रखा जा सकता है। जब तक संसदीय संस्थाओं के पास कार्य की अधिकता रहेगी, तब तक वे जनता के प्रति उदासीन [illegible] बनी रहेंगी और उनका जनता से सम्पर्क टूटता जाएगा और अवैधानिक मार्गों का द्वारा खुल जाएगा। इसलिए [illegible] ने कहा है-"एकात्मक राज्य भी अपने विधानमण्डलों के कार्यभार को इस तरह ईकाइयों में विभाजित कर दे कि उनके पास केन्द्रीय परियोजनाओं के लिए ही वे आवश्यक शक्तियां रह जाएं जो सामान्य हित के लिए आवश्यक हों।" इसका अर्थ है-एकात्मक राज्य में संघीय राज्य का सृजन करना। इसका सीधा सम्बन्ध विकेन्द्रीकरण से है। राष्ट्रीय महत्व के विषयों को छोड़कर केन्द्रीय सरकार से समस्त शक्तियां स्थानीय निकायों के पास विकेन्द्रित कर देनी चाहिए। इससे जनता व जन-प्रतिनिधियों में निरन्तर सम्पर्क बना रहेगा और केन्द्रीय विधानमण्डलों का बोझ भी कम हो जाएगा। इससे प्रभुसत्ता का अर्थपूर्ण विकेन्द्रीकरण हो सकेगा। यह सारी प्रक्रिया निश्चित योजना के अनुसार ही अमल में लाने से संविधानवाद की रक्षा की जा सकती है, अन्यथा नहीं। स्ट्रांग ने लिखा है-"विकेन्द्रीकरण से केन्द्रीय विधानमण्डलों का अनावश्यक व असहनीय बोझ कम होगा, नौकरशाही के दोष दूर होंगे तथा जनता व प्रतिनिधियों में प्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित हो जाएगा।" इसमें स्थानीय स्वशासन की संस्थाएं केवल मात्र स्थानीय संस्थाएं ही नहीं होंगी बल्कि वे संसद के साथ प्रभुसत्ता में भी हाथ बांटने वाली होगी।

(6) अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों का विकास करके भी संविधानवाद का विकास किया जा सकता है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों ने निरंकुशतावादी ताकतों पर जो दबाव बनाया है, वह संविधानवाद के लिए प्राणदायक है। आज संयुक्त राष्ट्र संघ संविधानवाद के रक्षक के रूप में कार्यरत है और इसने कई प्रकार से संविधानवाद की रक्षा की है। स्ट्रांग ने लिखा है-"अन्तर्राष्ट्रीय संगठन राजनीतिक संविधानवाद की सुरक्षा की आवश्यक शर्त है।" इसलिए तृतीय विश्वयुद्ध को टालने के लिए हमें अन्तर्राष्ट्रीयता को ही बढ़ावा देना चाहिए। संकीर्ण राष्ट्रीयता की भावना संविधानवाद के लिए बहुत बड़ा खतरा बन सकती है जैसा जर्मनी और इटली में हुआ था। अतः विश्व संघ या अन्तर्राष्ट्रीय संघों के विकास द्वारा ही संविधानवाद की रक्षा की जा सकती है।

(7) संविधानवाद के विकास के लिए यह भी आवश्यक है कि विशाल क्षेत्र व जनसंख्या वाले देशों में विभिन्न प्रादेशिक सरकारों को अधिक स्वायत्तता अथवा शासन के अधिकार सौंपे जाएं। जहां तक संभव हो संघात्मक शासन प्रणाली का विकास किया जाए ताकि संघ व इकाईयों में मेल बना रहे और देश में अराजकतावादी ताकतें मुंह न उठा सकें।

उपरोक्त विवेचन के बाद कहा जा सकता है कि संविधानवाद के मार्ग में युद्ध व निरंकुशता ही सबसे बड़ा खतरा है। आज आवश्यकता इस बात की है कि संविधानवाद के विकास के लिए अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना का विकास किया जाए और समाजवादी प्रजातन्त्र की स्थापना को ही महत्व दिया जाए। सरकार का स्वरूप जनवादी होना चाहिए ताकि जनता का सरकार व संविधान दोनों में विश्वास बना रह सके। जिस देश में राजनीतिक सत्ता के प्रति जनता का गहरा विश्वास होता है वहां संविधानवाद की जड़ें हिलाने वाली कोई भी ताकत पनप नहीं सकती। संविधानवाद की जड़ें गहरी करने वाली स्वस्थ राजनीतिक परम्पराओं का विकास आज के समय की एक महती आवश्यकता है। जिस देश में स्वस्थ राजनीतिक परम्पराएं विकसित हो चुकी हों, वहां वाटरगेट जैसे कांड भी संविधानवाद को हिला नहीं सकते। आज आवश्यकता इस बात की है कि सरकार को अराजकतावादी तत्वों से निपटने में समर्थ होना चाहिए ताकि संविधानवाद को कोई खतरा उत्पन्न न हो।

--- o ---

अध्याय-4

ऐतिहासिक विरासतें तथा राजनीतिक परम्पराएं

(Historical Legacies and Political Traditions)

किसी भी देश की राजनीतिक संस्कृति, राजनीतिक संस्थाओं, राजनीतिक संरचनाओं, राजनीतिक प्रक्रियाओं व राजनीतिक परम्पराओं व उसके इतिहास से गहरा सम्बन्ध होता है। किसी भी राजनीतिक व्यवस्था को आधुनिक बनाने के लिए उस देश की परम्पराओं का विरोध नहीं किया जा सकता। परम्पराएं किसी भी देश की राजनीतिक प्रणाली की वास्तविक विरासत होती है। किसी भी देश की राजनीतिक परम्पराएं व ऐतिहासिक विरासतें उस देश के संवैधानिक विकास में घुली-मिली होती हैं। राजनीतिक परम्पराओं व विरासतों का विकसित व आधुनिक रूप किसी भी देश की राजनीतिक संस्कृति में देखा जा सकता है।

राजनीतिक परम्पराओं का अर्थ

(Meaning of Political Traditions)

राजनीतिक परम्पराएं उन समझौतों, आदतों अथवा प्रथाओं से मिलकर बनती हैं जो राजनीतिक नैतिकता के नियम होने के साथ-साथ सार्वजनिक सत्ताओं के दिन-प्रतिदिन के व्यवहार व गतिविधियों को प्रभावित करते हैं। राजनीतिक परम्पराओं में किसी देश के संवैधानिक कानूनों व संविधियों के साथ-साथ उन रीति-रिवाजों को भी शामिल किया जाता है जिन्हें किसी देश की जनता ने आधार मान लिया हो। परम्पराओं का निर्माण किसी निश्चित समय पर तथा किसी निश्चित वर्ग या संस्था द्वारा नहीं होता बल्कि संयोग एवं योजना से मिलकर होता है। इनमें उन सभी नियमों, सिद्धान्तों, अधिनियमों, परम्पराओं, सामयन्य रूढ़ियों, न्यायिक निर्णयों व कानूनी टीकाओं को शामिल किया जाता है जिनके आधार पर किसी भी देश की राजनीतिक गतिविधियों का संचालन होता है। इन्हें किसी भी राजनीतिक व्यवस्था के सिद्धान्तों व व्यवहार का जटिल मिश्रण माना जाता है। इनमें उन अभिवृत्तियों, विश्वासों और भावनाओं को शामिल किया जाता है जो किसी राजनीतिक व्यवस्था को अर्थ प्रदान करती है तथा राजनीतिक व्यवहार को रूप देती है।

राजनीतिक परम्पराओं के प्रकार

(Types of Political Traditions)

राजनीतिक परम्पराएं क्रमिक विकास का परिणाम होती हैं। इन्हें अचानक नहीं बदला जा सकता। जिन राज्यों में राजनीतिक परम्पराएं व राजनीतिक संस्थाएं सुदृढ होती हैं वहां आर्थिक व सामाजिक नीतियों में परिवर्तन तेजी से लाया जा सकता है। किन्तु जहां राजनीतिक व आर्थिक नीतियों में सांस्कृतिक असंगतियां उत्पन्न होने लगें, वहां चाहकर भी तेजी से परिवर्तन नहीं लाया जा सकता। राजनीतिक परम्पराओं में परिवर्तन को गति के आधार पर राजनीतिक परम्पराओं को मन्द-परिवर्तनवादी अथवा स्थिरवादी तथा क्रान्तिकारी या प्रगतिशील में बांटा जाता है। ब्रिटेन की राजनीतिक परम्पराएं स्थिरतावादी हैं, क्योंकि ब्रिटेन में क्रमिक विकास पर जोर दिया जाता है। इसके विपरीत चीन तथा फ्रांस में क्रान्तिकारी परिवर्तनों को पसंद किया जाता है। इसी कारण चीन की परम्पराएं क्रान्तिकारी अथवा प्रगतिशील हैं। राजनीतिक परम्पराओं को विचारवाद के आधार पर भी उदारवादी तथा मार्क्सवादी दो भागों में बांटा जाता है। उदारवादी राजनीतिक परम्पराएं लोकतंन्त्रीय सिद्धान्तों का समर्थन करने वाली होती हैं। इसके विपरीत मार्क्सवादी परम्पराएं राजनीतिक लोकतन्त्र की बजाय आर्थिक लोकतन्त्र या आर्थिक समानता को महत्वपूर्ण मानती हैं।

राजनीतिक परम्पराओं के निर्धारक तत्व

(Determinants of the Political Traditions)

किसी भी देश की राजनीतिक परम्पराओं का निर्माण उस देश की राजनीतिक संस्कृति, इतिहास, भूगोल तथा सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों से होता है। इनकी संक्षिप्त व्याख्या निम्न प्रकार से है :-

(1) राजनीतिक संस्कृति (Political Culture) :- किसी भी देश के लोगों के सांस्कृतिक मूल्य उस देश की राजनीतिक संस्कृति का निर्माण करते हैं। यही राजनीतिक संस्कृति उस देश की राजनीतिक परम्पराओं का निर्धारण करती है। जिन देशों में जनता का झुकाव लोकतन्त्रीय असस्थाओं की तरफ होता है, वहां यह सामान्य राजनीतिक परम्परा बन जाती है कि किसी भी नेता को जनता का विश्वास खो देने पर त्यागपत्र दे देना चाहिये। भारत, ब्रिटेन तथा अमेरिका में इसी राजनीतिक परम्परा का विकास हुआ है। इसके विपरीत जिन देशों में जनता साम्यवादी शासन व्यवस्थायें हैं, वहां की जनता का संवैधानिक अभिवृत्तियां या सोच प्रजातन्त्र के मार्ग में बाधा होती है। इसी कारण वहां पर स्वस्थ राजनीतिक परम्पराएं जन्म नहीं ले पाती।

(2) इतिहास (History) :- इतिहास परम्पराओं का वाहक होता है। किसी देश के प्राचीन गौरवपूर्ण अतीत को ही आधार बनाकर परम्पराओं को सुरक्षित रखा जा सकता है। इतिहास में विभिन्न सभ्यताओं व संस्कृतियों का समन्वय करने की अनोखी शक्ति होती है। इतिहास का राजनीतिक घटनाओं व परम्पराओं दोनों पर अच्छा या बुरा प्रभाव पड़ता है। किसी देश की राजनीतिक प्रणाली क्रमिक विकास का ही परिणाम होती है। ब्रिटेन में राजनीतिक निरन्तरता का कारण वहा के परम्परागत मूल्यों तथा आधुनिक अभिवृत्तियों में समन्वय का होना है। ब्रिटैन का गौरवपूर्ण इतिहास ही उसकी राजनीतिक परम्पराओं का प्रतिबिम्ब है। 1688 की शानदार क्रान्ति द्वारा स्थापित संसदीय सर्वोच्चता का सिद्धान्त आज भी प्रचलित है।

(3) भूगोल (Geography) :- किसी देश की भौगोलिक स्थिति भी परम्पराओं का निर्धारण करती है। ब्रिटेन की अद्वितीय भौगोलिक स्थिति ने उसे ऐसी राजनीतिक संस्कृति दी है जो भाषा, जाति व धर्मो के आधार पर विभाजित नहीं है। इसके विपरीत बाहरी आक्रमणों से संरक्षित ब्रिटिश राजनीतिक समाज आज भी विशेष तरह की राजनीतिक परम्पराओं को समेटे हुए है। ब्रिटेन की सुरक्षित भौगोलिक स्थिति ने उसे राजनीतिक स्थायित्व की परम्परा प्रदान की है। इसी कारण ब्रिटेन की राजनीतिक परम्पराएं मन्द परिवर्तनवादी व स्थिरतावादी हैं। इसके विपरीत चीन की भौगोलिक स्थिति ने उसको क्रान्तिकारी या परिवर्तनशील परम्पराओं का देश बनाया है।

(4) सामाजिक-आर्थिक संरचना (Socio-Economic Structure) :- राजनीतिक परम्पराओं के विकास में सर्वाधिक योगदान सामाजिक, आर्थिक संरचनाओं को होता है। कृषि प्रधान समाजों में जनता का झुकाव रूढ़िवादिता की तरफ होने के कारण वहां राजनीतिक चेतना अधिक विकसित नहीं हो पाती। इसी कारण वहों स्थिर व सुदृढ़ राजनीतिक परम्पराओं का विकास नहीं हो पाता। इसके विपरीत औद्योगिक व तकनीकी समाजों में उच्च स्तर की राजनीतिक चेतना उच्च स्तर की व प्रगतिशील राजनीतिक परम्पराओं को जन्म देती हैं।

ब्रिटिश राजनीतिक परम्पराएं व विरासत

(British Political Traditions and Legacies)

ब्रिटिश जनता स्वभाव से रूढ़िवादी है। उसे अपनी परम्पराओं से गहरा लगाव है और वे वर्षों पुरानी राजनीतिक संस्थाओं व प्रक्रियाओं को बनाए रखना चाहते हैं। वे रूढ़िवादी होने के साथ-साथ स्थिर व शान्त परिवर्तनों के भी पक्षधर हैं। इसी कारण वे राजपद को समाप्त करने की बजाय उसे संवैधानिक लोकतन्त्र के अनुकूल बनाना चाहते हैं। ब्रिटिश जनता में आज भी राजनीतिक परम्पराओं के बारे में जो आम सहमति है, वह विश्व के अन्य देशों में नहीं है। आज ब्रिटेन में संविधानिक राजतन्त्र, संसदीय शासन प्रणाली, अलिखित संविधान, स्थानीय स्वशासन, द्वि-दलीय प्रणाली आदि के रूप में स्वस्थ राजनीतिक परम्पराएं विद्यमान हैं। अपने इस मुकाम तक पहुंचने के लिए इन राजनीतिक परम्पराओं को लम्बे ऐतिहासिक विकास क्रम से गुजरना पड़ा है। ऐतिहासिक विकास क्रम ब्रिटिश शासन प्रणाली को जो लाभ हुआ है वह उसकी विरासत है जो परम्पराओं के रूप में ही है।

राजनीतिक परम्पराओं का ऐतिहासिक विकास

(Historical Development of the Political Traditions)

ब्रिटिश राजनीतिक परम्पराओं की जड़ें उनके इतिहास में है। यह इतिहास 1300 वर्ष पुराना है। ब्रिटिश संविधान का इतिहास ऐंग्लो-सैकसन काल से आरम्भ होता है। पांचवीं सदी के उत्तरार्द्ध से लेकर 1066 तक ब्रिटिश राजनीति पर ऐंग्लों-सैकसन जाति का प्रभुत्व रहा। उस समय ब्रिटेन में छोटे-छोटे कबीले व समुदाय थे। धीरे-धीरे शक्तिशाली समुदायों ने निर्बलों पर अपना अधिकार कर लिया। यहीं से ब्रिटिश राजतन्त्र की स्थापना का इतिहास शुरु होता है। इस युग में वैसेकस वंश ने राजवंश की सर्वोच्चता स्थापित की। कहीं पर राजा का पद परम्परागत था तो कहीं पर निर्वाचित परन्तु निरंकुश। कालान्तर में यही पद सीमित राजतन्त्र में बदल गया। उस समय देश प्रान्तों या इकाइयों में बंटा होने के कारण स्थानीय स्वशासन का भी विकास हुआ। इस काल में राजतन्त्र तथा स्थानीय स्वशासन की परम्परा का जन्म हुआ जो आज भी ब्रिटिश ऐतिहासिक विरासत के रूप में मौजूद है।

ऐंग्लों-सैकसन जाति का पतन होने के बाद 1066 में ब्रिटेन में नार्मन युग की शुरुआत हुई। इस युग में राजतन्त्र का विकास हुआ और राजा को सलाह देने वाली संस्था विटनेजमोट (Witenagemot) का स्थान अब महान परिषद (Magnum Councillium) ने ले लिया। इस युग में राजा की न्यायपालिका नामक संस्था का भी जन्म हुआ जिसका स्थान आधुनिक प्रिवी कौंसिल ने तथा महान परिषद का स्थान आधुनिक हाऊस ऑफ लार्डस ने ले लिया। इस युग में जनता ने 1218 में बड़े-बडे जमींदारों ने राजा जॉन से गृह-युद्ध की धमकी दी और उससे अपनी मांगें मनवा ली। इससे 'मैगना कार्टा' का जन्म हुआ। उसक बाद 1295 में राजा एडवर्ड प्रथम ने एक संसद बुलाई जिसकी सदस्य संध्या धीरे-धीरे बढ़ती गई और यही संसद आधुनिक शासन व्यवस्था का अंग बन गई। कालान्तर में यही संसद द्वि-सदनीय हो गई जिसके दो सदन आज - हाऊस ऑफ लार्डस तथा हाऊस ऑफ कामन्स हैं। संसद की शक्तियों में वृद्धि के साथ ही राजा की शक्तियां सीमित होती गई। इस युग में राजा ने संसद की ये शर्त मानी की संसद की स्वीकृति के बिना राजा कोई नया कर नहीं लगायेगा और न ही किसी मन्त्री की नियुक्ति करेगा। इस तरह इस युग में संसदीय सर्वोच्चता तथा सीमित राजतन्त्र की परम्परा का विकास हुआ।

इसके बाद प्लानटेगनेट व लंकास्ट्रीयन युग की शुरुआत होती है। इस युग (1153-1485) में संसद की शक्तियां उत्तरोतर बढ़ती गई। संसद ने सम्राट एडवर्ड द्वितीय तथा रिचर्ड द्वितीय को झुकने पर मजबूर कर दिया। इस दौरान संसद ने लंकास्ट्रीयन वंश के राजा हेनरी को ब्रिटिश ताज का स्वामी बना दिया। इस युग में संसद ने मन्त्रियों के मन्त्रिमण्डल को प्रिवि कौन्सिल का नाम दिया। 1407 में इसी काल में हाऊस ऑफ कॉमनद को स्वयं वित्त विधेयक आरम्भ करने का अधिकार प्राप्त हो गया। इस युग में राजा की शक्तियां सीमित होती गई और संसद की शक्तियां बढ़ती गई। परन्तु इस युग में संसद अपनी शक्तियों को समेट नहीं सकी और फिर से संसद की जगह गुलाबों के युद्ध ने निरंकुश राजतन्त्र की स्थापना कर दी। 1485 में ब्रिटेन में ट्यूडर राजाओं की निरंकुश सत्ता स्थापित हो जाने पर संसद की शक्ति को बड़ा आघात पहुंचा। आगे चलकर एलिजाबेथ प्रथम ने संसद से सलाह लेनी शुरु कर दी। इसके बाद संसद सहित राजा के अधिकारों में वृद्धि होती गई। इसी युग में राजसत्ता पर से धर्म सत्ता का नियन्त्रण भी समाप्त हुआ।

उसके बाद ब्रिटेन में स्टुअर्ट युग (1603-1714) की शुरुआत हुई। इस युग में संसद और राजा एक दूसरे के विरोधी रहे। इस समय जनता ने यह मांग की कि राजाओं की शक्ति को सीमित करके वैधानिक राजतन्त्र स्थापित किया जाये। 1688 की शानदार क्रान्ति ने जनता की इसी इच्छा को पूरा किया और ब्रिटेन में राजा की निरंकुश सत्ता का स्थान संसद की सम्प्रभुत्ता ने ले लिया। 1679 में बन्दी प्रत्यक्षीकरण अधिनियम पारित हुआ। इस अधिनियम के अनुसार यह स्वीकार किया गया कि राजा जिन लोगों को बन्दी बनाएगा, उन पर तुरन्त न्यायालय में मुकद्दमा चलाया जायेगा। इसके बाद 1689 के अधिकार पत्र (Bill of Rights) द्वारा यह निश्चित किया गया कि राजा संसद की स्वीकृति के बिना न तो काई नया कर लगायेगा और न ही कोई सेना रखेगा। उसके बाद 1701 में संसद ने एक समझौते का अधिनियम पारित किया। इसके अनुसार राजा इंग्लैण्ड के चर्च का अनुयायी होगा और किसी ऐसे देश की रक्षा के लिए संसद को बाध्य नहीं करेगा जो देश इंग्लैण्ड के अधीन न हो। इसके बाद 1779-81 में विलियम और मेरी का शासन समाप्त होते ही ब्रिटेन में टोरी और ह्विग दलों का जन्म हुआ। वही दल आज क्रमशः अनुदारवादी तथा उदारवादी हैं। 1693 में राजा बिलियम ने संसद में बहुमत दल में से ही अपने मन्त्रिमण्डल का निर्माण किया। उसने इसे जुन्टा (Janta) कहा। वही जुन्टा आधुनिक ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल है।

स्टुअर्ट काल के बाद 1714 में हैनोवर वंश ने ब्रिटिश राजपद सम्भाला। संसदीय लोकतन्त्र का वास्तविक विकास इसी युग में हुआ। 1716 के सप्तवर्षीय अधिनियम, 1732 के संसद अधिनियम, 1835 के म्यूनिसिपल कॉरपोरेशन अधिनियम, 1837 के सुधार अधिनियम, 1888 के स्थानीय शासन अधिनियम, 1911 व 1949 में संसदीय अधिनियमों, 1928 के मताधिकार अधिनियम, 1963 के पीयरेज (Peers) अधिनियम व 1969 के जन प्रतिनिधित्व कानून ने संसदीय सर्वोच्चता का सिद्धान्त स्थापित किया और राजा की शक्तियां सीमित हो गई। इस तरह धीरे-धीरे ब्रिटेन में संसदीय सर्वोच्चता का सिद्धान्त विकसित होता गया और सीमित राजतन्त्र की परम्परा सुदृढ़ हो गई।

ब्रिटिश राजनीतिक परम्पराएं व विरासत

(British Political Traditions and Legacies)

ब्रिटिश जनता का स्वभाव रूढ़िवादी है और इसी कारण वह अपनी राजनीतिक परम्पराओं को विरासत के रूप में संजोकर रखे हुए है। ब्रिटिश राजतन्त्र के ऐतिहासिक विकास से यह बात स्पष्ट होती है कि ब्रिटेन में शासन-प्रणाली का जो रूप आज प्रचलित है, वह वर्षों पुरानी राजनीतिक परम्पराओं का विकसित रूप है। ब्रिटिश राजनीतित परम्पराओं व उसकी विरासत को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है :-

(1) सीमित राजतन्त्र (Limited Monarchy) :- ब्रिटेन में आज भी राजा का पद गौरव का प्रतीक है। इस पद की जड़ें ऐंग्लो सैकसन काल में मिलती हैं। ब्रिटेन में राजा का पद एक परम्परा के रूप में निरन्तर विकसित होता रहा है। यह एक वंशानुगत रहा है और आज भी है। 1688 की शानदार क्रान्ति से पूर्व यह पद निरंकुशता का प्रतीक था, लेकिन 1688 की क्रान्ति की सफलता ने इस पर अंकुश लगा दिए और राजा को नाममात्र का संवैधानिक मुखिया बना दिया। आज राजा की शक्तियां ताज में निहित हैं जिनका प्रयोग संसद करती है। ब्रिटेन में सीमित राजतन्त्र की परम्परा ब्रिटिश राजतन्त्र की एक महत्वपूर्ण विरासत है जिसे राजनीतिक परम्परा के रूप में ब्रिटिश जनता ने संजोया है।

(2) संसदीय-सर्वोच्चता (Parliamentary Supremacy) :- ब्रिटेन में प्रारम्भ से ही संसद की सम्प्रभुता के प्रयास होते रहे हैं। लेकिन 1485 में ट्यूटर काल में संसद की शक्ति को काफी आघात पहुंचा। आगे चलकर 1688 की गौरवपूर्ण क्रान्ति ने राजा की शक्तियों को सीमित करके संसद को शक्तिशाली बना दिया। बाद में संसद ने विभिन्न अधिनियमों की सहायता से स्वयं को इतना शक्तिशाली बना दिया कि आज भी ब्रिटिश संसद के सम्प्रभु होने की बात प्रचलित है। इसी आधार पर ब्रिटेन में संसदीय शासन प्रणाली सफलतापूर्वक कार्य कर रही है। संसदीय शासन प्रणाली में राष्ट्राध्यक्ष नाममात्र का होता है और शासन की वास्तविक शक्तियां मन्त्रिमण्डल के पास ही होती हैं। ब्रिटेन में संसदीय शासन की परम्परा काफी प्राचीन हैं। इसी कारण आज यहां संसदीय सर्वोच्चता का सिद्धान्त प्रचलित है।

(3) द्वि-दलीय शासन प्रणाली (Two Party System) :- द्वि-दलीय शासन प्रणाली ब्रिटिश राजनीतिक परम्परा की महत्वपूर्ण विशेषता है। शुरु से ही ब्रिटिश जनता का झुकाव दो दलों की तरफ रहा है। प्रारम्भ में ब्रिटेन में ह्विग और टोरी दो ही दल थे। बाद में इनका स्थान उदारवादी तथा अनुदारवादी दलों ने ले लिया। कालान्तर में उदारवादी दल का प्रभाव कम हो गया और एक नये दल (श्रमिक दल) का उदय हुआ जो आज कभी सत्ता में तो कभी विपक्ष में रहता है। यह द्वि-दलीय प्रणाली राजनीतिक परम्परा के रूप में आज भी ब्रिटेन की शासन-प्रणाली की महत्वपूर्ण विरासत है।

(4) स्थानीय स्वशासन (Local Self-Government) :- ब्रिटेन में ऐंग्लो-सैकसन युग में ही देश प्रान्तों या इकाईयों में बंटा था। यद्यपि आज ब्रिटेन में एकात्मक शासन प्रणाली को अपनाया गया है, लेकिन प्रशासन की सुविधा के लिए देश को आज भी अनेक इकाईयों में बांटा गया है। पिछले कुछ समय से ब्रिटेन में स्थानीय स्वशासन की परम्परा दृढ़ हो रही है और शक्तियों के विकेन्द्रीकरण की मांग की जा रही है। उत्तरी आयरलैण्ड की तो अपनी अलग विधायिका तथा प्रधानमन्त्री है। यही मांग स्काटलैण्ड तथा वेल्स की भी है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि स्थानीय स्वशासन की परम्परा ब्रिटिश राजतन्त्र की महत्वपूर्ण विरासत है।

(5) हाऊस ऑफ लार्डस (House of Lords) :- ब्रिटेन में आज जो लार्ड सभा नामक संस्था है, वह ऐंग्लो-सैकसन काल में विटनेजमोट तथा नार्मन युग में महान परिषद (Magnum Councillium) थी। इसका प्रमुख कार्य राजा को सलाह देना होता था। आज यह संसद का एक प्रमुख सदन है।

(6) द्वि-सदनीय संसद (Bicameral Parliament) :- ब्रिटेन में आज संसद के दो सदन हैं - (i) कॉमन सदन (House of Commons) तथा (ii) लार्ड सदन (House of Lords)। प्रारम्भ में सदन की बैठक एक सदन के रूप में ही हुई थी। लेकिन कालान्तर में व्यवहारिक स्वार्थों ने संसद को दो सदनों में बांट दिया। 1295 में एडवर्ड प्रथम ने जब संसद की बैठक बुलाई तो उस समय तीन अलग-अलग समूह थे जो बाद में दो समूहों में रह गये। समान हितों के कारण एक तरफ तो सामन्त तथा पादरी तथा दूसरी तरफ निम्न कोटि के सामन्त और सामान्य जन मिल गएं यही दो समूह क्रमशः लार्ड सदन तथा कॉमन सदन की उत्पत्ति का आधार बने।

(7) मन्त्रिमण्लीय प्रणाली (Cabinet System) :- ब्रिटेन में स्टुअर्ट काल में 1693 में राजा विलियम ने संसद में बहुमत वाले दल में से अपने मन्त्रिमण्डल का निर्माण किया। उसने इसे जुन्टा (Junta) कहकर पुकारा। तभी से इस परम्परा का जन्म हुआ और साथ में इस परम्परा का भी जन्म हुआ कि मन्त्रिमण्डल ससद में बहुमत प्रापत दल से ही होगा। आगे चलकर हैनोपर शासकों ने मन्त्रिमण्उल की बैठकों में जाना छोड़ दिया। उनके स्थान पर कोई मन्त्री मन्त्रिमण्डल की बैठकों की अध्यक्षता करने लगा और वह बाद में प्रधानमन्त्री कहलाया। इस तरह आधुनिक मन्त्रिमण्उल व प्रधानमन्त्री का पद ब्रिटिश राजनीतिक परम्परा का विकसित रूप ही है और महान विरासत भी है। जिनकी निकट भविष्य में समाप्ति की आशा नहीं है।

(8) अन्य राजनीतिक परम्पराएं (Miscellaneous Political Traditions) :- ब्रिटेन में कई अन्य राजनीतिक परम्पराएं भी विरासत के रूप में आज भी मौजूद हैं और विश्व की शासन-प्रणालियों का मार्गदर्शन कर रही हैं। इनमें कानून के शासन की परम्परा, प्रतिनिधि शासन की परम्परा, लचीले संविधान की परम्परा आदि प्रमुख हैं।

इस प्रकार उपरोक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि ब्रिटेन में राजनीतिक परम्पराओं का क्रमिक विकास हुआ है। इन परम्पराओं का इतिहास ऐंग्लो-सैकसन युग से शुरु होता है और ब्रिटेन की ऐतिहासिक विरासत के रूप में अनेक राजनीतिक परम्पराएं आज भी मौजूद हैं। लेकिन अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों तथा अन्तर्राष्ट्रीयता के युग में संसदीय सम्प्रभुता की परम्परा को बनाए रखना अधिक लम्बे समय तक असम्भव है। ब्रिटिश राजनीतिक परम्पराओं में धीरे-धीरे परिवर्तन आ रहे हैं। आज ब्रिटिश प्रधानमन्त्री, संसद तथा सम्राट की वह भूमिका नहीं रही जो 30 वर्ष पहले थे। आज राजनीतिक पर अर्थशास्त्र का अधिक प्रभाव दिखाई देता है। कुछ व्यक्ति ब्रिटिश संविधान में सुधारों की मांग कर रहे हैं। अधिकतर लोग तो राजपद को वंशानुगत ही बनाए रखना चाहते हैं, लेकिन ब्रिटिश समाज का एक वर्ग ऐसे लोगों का भी है जो राष्ट्राध्यक्ष को राष्ट्रपति की तरह अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित करने तथा लार्ड सभा को समाप्त कर एकसदनीय शासन प्रणाली का समर्थन करता है। इसलिए आने वाले समय में ब्रिटिश राजनीतिक परम्पराओं के रूप में सुरक्षित ऐतिहासिक विरासत को खतरा उत्पन्न हो सकता है। लेकिन निकट भविष्य में ऐसी सम्भावना नजर नही आती।

अमेरिकन राजनीतिक परम्पराएं व विरासत

(American Political Traditions and Legacies)

संयुक्त राज्य अमेरिका आज विश्व का सर्वाधिक शक्तिशाली तथा समुन्नत और समृद्ध पूंजीवादी लोकतन्त्र है जो महान लोकतन्त्रीय परम्पराओं को समेटे हुए है। इसके बारे में 1492 से पहले की जानकारी इतिहासकारों के पास भी नहीं है। विश्व मानचित्र पर सबसे पहले लिखित संविधान वाले देश अमेरिका की संस्कृति भारत, चीन तथा मिस्त्र के ही समकालीन मानी जाती है। इसके संवैधानिक विकास कह कहानी औपनिवेशिक युग से शुरु होती है। 1492 में स्पेन निवासी कोलम्बस ने पश्चिमी हिन्द द्वीप की खोज करके अमेरिका के द्वारा यूरोप के लिए खोल दिये। प्रारम्भ में यहां भारतीय आदम जातियों का निवास था। लेकिन धीरे-धीरे यहां अन्य जातियों का भी आगमन हुआ। इस तरह अमेरिका विदेशी जातियों की प्रमुख भूमि बन गया। विदेशी जातियों के आगमन पर उपनिवेशों की स्थापना से अमेरिकन राजनीतिक व्यवस्था में महत्वपूर्ण परिवर्तन आए। अमेरिकन जनता से विदेशी जातियों व उपनिवेशवादियों से राजनीतिक क्षेत्र में काफी कुछ सीखा।

अमेरिकन राजनीतिक परम्परा का विकास

(Development of the American Political Traditions)

अमेरिका में सबसे पहले स्पेन के आक्रमणकारियों ने 16वीं तथा 17वीं सदी में अमेरिकन सभ्यताओं को ध्वंश कर मैक्सिको, मध्य

अमेरिका तथा दक्षिण अमेरिका में अपना साम्राज्य स्थापित किया। उसके बाद ब्रिटेन ने वहां अपने उपनिवेश स्थापित किए। 17 6 में वहां उपनिवेशों की संख्या 13 हो गई। इन उपनिवेशों पर ब्रिटेन का राजनीतिक आधिपत्य स्थापित हुआ। ये उपनिवेश आन्तरिक मामलों में तो स्वतन्त्र थे, लेकिन विदेशी मामलों, सेना व युद्ध सम्बन्धी मामलों में ये ब्रिटिश आधिपत्य में थे। इस आन्तरिक मामलों की स्वतन्त्रता ने वहां स्थानीय स्वशासन की व्यवस्था को जन्म दिया। वही व्यवस्था आज अमेरिकन राजनीतिक प्रणाली की महत्वपूर्ण परम्परा बनी हुई है। बर्न्स तथा पैन्टेसन ने लिखा है-"अमेरिका के शासन के आधारभूत तत्वों, जिनसे आज हम परिचित हैं, की स्थापना औपनिवेशिक काल में हो चुकी थी।" ब्रिटेन तथा इंग्लैण्ड के औपनिवेशिक सम्बन्धों ने अमेरिकन राजनीति में केन्द्रीय तथा प्रान्तीय इकाईयों में शक्ति-विभाजन को जन्म दिया और कानून की सर्वोच्चता से भी अवगत कराया। इसी आधार पर लोकतन्त्र के सिद्धान्त का विकास हुआ। ब्रिटिश उपनिवेशवाद ने अमेरिका को मैग्न कार्टा, अधिकारों का पत्र (Bill of Rights), बन्दी प्रत्यक्षीकरण, सामान्य कानून की परम्परा, प्रतिनिधि निर्वाचन पद्धति तथा स्थानीय स्वशासन की परम्पराएं उत्तराधिकार में दी।

बाद में जब ब्रिटिश उपनिवेशवासियों ने अमेरिकी जनता पर अत्याचार करने शुरु किये तो उससे अमेरिकन जनता शोषण के विरुद्ध संगठित हो गई। नई चेतना व जागरुकता ने अमेरिकन जनता को पूर्ण स्वतन्त्रता पर आधारित पूर्ण स्वशासन के बारे में सोचना शुरु कर दिया। जब ब्रिटिश सरकार ने उपनिवेशवासियों पर नए कर लगाने शुरु किए तो अमेरिकन लोगों ने कहा 'बिना प्रतिनिधित्व के कर नहीं।' यह नारा ब्रिटिश सरकार के लिए खुली चुनौती था। इसके बाद अमेरिका में उपनिवेशिक शोषण के खिलाफ जनता एकजुट हो गई और क्रान्ति की ज्वाला भड़क गई। इस क्रान्ति का नेतृत्व मेसाच्युसेटस की जनता ने किया और 5 सितम्बन 1774 को 12 उपनिवेशों के प्रतिनिधियों का सम्मेलन फिलाडेल्फिया नगर में हुआ। इसे प्रथम महाद्वीपिय काग्रेस कहा जाता है। धीरे-धीरे अमेरिकन स्वतन्त्रता आन्दोलन इतना तीव्र हो गया कि उसने ब्रिटिश सरकार के अमेरिका से पैर उखाड दिये और 4 जुलाई, 1776 को 13 उपनिवेशों ने स्वयं को स्वतन्त्र घोषित कर दिया। इसके बाद सभी उपनिवेशों की जीत हुई। अब ब्रिटिश सरकार ने फैसला किया कि अमेरिका से शान्ति सन्धि कर ली जाये। 1783 में यह शान्ति सन्धि पूर्ण हो गई आर 13 उपनिवेशों को स्वतन्त्र व प्रभुसत्तासम्पन्न घोषित कर दिया गया।

इसके बाद 1776 की संघीय व्यवस्था में परिवर्तनों की मांग को लेकर सारे देश में एक विशाल जन आन्दोलन खड़ा हो गया। इसमें केन्द्र को शक्तिशाली बनाने की मांग प्रबल थी। इस आन्दोलन के दृष्टिगत 1787 में कांग्रेस ने 25 मई 1787 को फिलाडेल्फिया में एक विशाल सम्मेलन बुलाया जिसमें 12 राज्यों के 55 प्रतिनिधि शामिल हुए। इस सम्मेलन में नए संघीय ढाचे पर सर्वसम्मति हो गई जिसमें स्वशासित राज्यों और शक्तिशाली केन्द्र की स्थापना में समायोजन पर जोर दिया जाना था। 17 सितम्बर, 1787 को सर्वसम्मति से एक प्रलेख जारी हुआ। इस समझौते ने अमेरिका में केन्द्रीय स्तर पर दो सदनों की व्यवस्था को जन्म दिया। इसमें निम्न सदन में जनसंख्या के आधार पर राज्यों के प्रतिनिधि तथा उच्च सदन में राज्यों के समान प्रतिनिधित्व की व्यवस्था की गई। लेकिन इस प्रस्तावित संविधान व समझौते ने सम्पूर्ण देश को दो दलों में बांट दिया। एक गुट संघ विरोधी था जो केन्द्र को अधिक शक्तिशाली बनाने की बजाय, उसे स्वतन्त्र राज्यों का शिथिल संगठन बनाए रखना चाहता था, जबकि दूसरा गुट संघ समर्थक था जो केन्द्र को शक्तिशाली बनाए रखना चाहता था। इस नए प्रस्तावित संविधान का काफी विरोध हुआ, क्योंकि इसमें अधिकार पत्र (Bill of Rights) की कोई व्यवस्था नहीं थी। इसलिए संविधान सभा ने उसमें कुछ संशोधन किए और अन्त में 9 राज्यों ने उसे स्वीकार कर लिया। इस संविधानिक व्यवस्था ने अमेरिका में नए संघ की स्थापना की। इस संविधानिक व्यवस्था ने लिखित संविधान की परम्परा को जन्म दिया।

अमेरिकन राजनीतिक परम्पराएं व विरासत

(American Political Traditions and Legacies)

अमेरिकन संविधान विश्व का सर्वाधिक प्राचीन व लिखित संविधान है। औपनिवेशिक काल से लेकर अमेरिका की स्वतन्त्रता की घोषणा तक अपनी छोटी सी यात्रा में संवैधानिक विकास की परम्परा ने अमेरिका में कई राजनीतिक परम्पराओं को जन्म दिया है। इनमें से कुछ उपनिवेशिक शासन की देन है और कुछ सर्वथा नई हैं। अमेरिका में ऐतिहासिक विरासत के रूप मे मौजूद प्रमुख राजनीतिक परम्पराएं निम्नलिखित हैं :-

(1) लिखित संविधान की परम्परा (Tradition of Written Constitution) :- अमेरिका का संविधान एक लिखित संविधान है। यद्यपि ब्रिटेन ने अपने औपनिवेशिक शासनकाल में अमेरिका को काफी कुछ दिया है, लेकिन वह कोई ऐसी राजनीतिक

परम्परा अमेरिका को नहीं दे सका जिससे वहां लिखित संविधान की परम्परा का विकास हो। लिखित संविधान की परम्परा अमेरिकन जनता की स्वतन्त्र सोच का ही परिणाम है। आज विश्व के अनेक देशों में लिखित संविधान की परम्परा विकसित हो चुकी है। उस परम्परा पर थोड़ा बहुत प्रभाव अमेरिकन संविधान का भी है। ग्लैडस्टर ने अमेरिकन संविधान को सर्वाधिक मौलिक कृति कहा है।

(2) संघात्मक शासन-प्रणाली की परम्परा (Tradition of Federal System of Government) :- संघात्मक शासन व्यवस्था को व्यावहारिक रूप देने का श्रेय सबसे पहले अमेरिका को ही प्राप्त है। विश्व के अनेक देशों में अमेरिका की संघात्मक प्रणाली से काफी कुछ सीखा है। यद्यपि अमेरिका में 1781 में भी एक परिसंघ की स्थापना हुई थी, लेकिन उसकी स्थिति बालू की रस्सी की तरह थी। इसी कारण 1787 में फिर से नए संविधान की स्थापना करके संघात्मक शासन प्रणाली को मजबूत बनाया गया। आज अमेरिकन संघात्मक प्रणाली में संघात्मक प्रणाली के सभी लक्षण - द्वैध शासन, केन्द्र व राज्यों में शक्तियों का विभाजन, स्वतन्त्र व निष्पक्ष कार्यपालिका, संविधान की सर्वोच्चता आदि विद्यमान हैं। ऐसे ही लक्षण विश्व की अन्य संघात्मक प्रणालियों में भी मिलते हैं। उन सभी पर अमेरिका की संघ प्रणाली ही प्रभाव हैं सबसे पहले अमेरिका में ही शक्तिशाली केन्द्र की स्थापना पर विचार किया गया था। आज विश्व में अनेक देश केन्द्र को शक्तिशाली बनाने पर विचार कर रहे हैं। उनके सामने अमेरिका का ही आदर्श है। लेकिन शक्तिशाली केन्द्र के साथ-साथ जो सहकारी संघवाद का प्रतिमान उभर रहा है, वह भी अमेरिका की ही देन है, क्योंकि अमेरिका में केन्द्र व इकाईयों में पर्याप्त मात्रा में सहयोग की पद्धति पाई जाती है।

(3) स्थानीय स्वशासन की परम्परा (Tradition of Local-Self Government) :- अमेरिका में औपनिवेशिक काल में स्थानीय स्वशासन की परम्परा प्रचलित थी। इसी परम्परा ने आगे चलकर शक्ति-पृथक्करण सिद्धान्त को जन्म दिया तथा संघवाद का विकास किया। आल अमेरिका में संघवाद होने के कारण शक्तियों का विभाजन केन्द्र व इकाईयों में है। सभी प्रान्तों या राज्यों के अपने अपने संविधान हैं और कुछ मामलों में वे स्वतन्त्र भी हैं। विश्व के अन्य देशों ने भी अमेरिकन स्वशासनव की परम्परा से काफी कुछ सीखा है। भारत में भी संघात्मक शासन प्रणाली के अधीन प्रान्तों को कुछ शक्तियां दी गई हैं। अतः स्थानीय स्वशासन की परम्परा अमेरिकन राजनीतिक प्रणाली की महत्वपूर्ण परम्परा है जो आज भी प्रचलित है।

(4) सीमित शासन की परम्परा (Tradition of Limited Government) :- अमेरिका में सीमित शासन या सरकार की परम्परा पाई जाती है। वहां शासन की शक्तियों पर संवैधानिक सीमाएं हैं। अमेरिकन संविधान निर्माता इस बात से भली-भाँति परिचित थे कि शक्तियों का केन्द्रीयकरण निरंकुश शासन को जन्म देगा। इसी कारण उन्होंने शासन की शक्तियों को सीमित करने के लिए नागरिकों के अधिकार-पत्र, शक्तियों के पृथक्करण, निरोध एवं सत्तुलन तथा संघात्मकता के सिद्धान्तों को मान्यता दी। उन्होंने संघीय सरकार की शक्तियों का उल्लेख करने के बाद अवशिष्ट शक्तियां जनता व राज्य सरकारों को सौंप रखी है। बाद में संविधान में परिवर्तन करके अधिकारों के चार्टर द्वारा केन्द्र व राज्य सरकारों की निरंकुशता पर भी रोक लगाई गई। अमेरिका में जनता के अधिकारों की सुरक्षा तथा सरकार की शक्तियों को नियन्त्रित करने के उद्देश्य से सरकार के तीनों अंगों को अलग-अलग करके शक्तियां सौंपी गई हैं। बाद में सरकार के तीनों अंगों की शक्तियों को निरोध व संतुलन के सिद्धान्त द्वारा नियन्त्रित रखा गया है।

(5) लोकप्रिय सम्प्रभुता का सिद्धान्त (Principle of Popular Sovereignty) :- अमेरिका में सर्वोच्च शक्ति जनता में ही निहित है। संविधान की प्रस्तावना में ही इस सिद्धान्त का प्रतिपादन कर दिया गया है कि जनता सम्प्रभु है। अमेरिका में सरकार की समस्त शक्तियां प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में जनता को प्राप्त हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार अपने कर्तव्यों का पालन न करने वाली सरकार को बदला जा सकता है। अमेरिका में स्वतन्त्रता के घोषणा पत्र में जन सम्प्रभुता की व्याख्या की गई है। अमेरिका में लोकप्रिय जन-प्रभुसत्ता का सिद्धान्त व्यवहार में चाहे कम सफल रहा है, लेकिन सिद्धान्त तौर पर तो वह आज भी सफल है। इस सिद्धान्त से विश्व के अनेक देशों ने सबक लिया है। इसी कारण विश्व के लोकतन्त्रीय देशों में इस सिद्धान्त का काफी महत्व है। वहां शासन की अन्तिम शक्ति जनता में ही निहित है।

(6) शक्ति-पृथक्करण का सिद्धान्त (Principle of the Separation of Powers) :- यद्यपि अमेरिका में प्रत्यक्ष रूप में तो शक्ति-पृथक्करण की कोई संवैधानिक व्यवस्था नहीं है,लेकिन व्यवहार में वहां सरकार की शक्तियों का कार्यपालिका, विधायिका तथा न्यायपालिका में विभाजन हैं। तीनों शक्तियों को सीमित रखने के लिए अर्थात् एक दूसरे के क्षेत्राधिकार

का अतिक्रमण रोकने के लिए वहां निरोध व संतुलन का सिद्धान्त भी अपनाया गया है। कुछ व्यवहारिक जटिलताओं के साथ ये दोनों सिद्धान्त आज भी अमेरिकन राजनीतिक व्यवस्था के आधार स्तम्भहैं यह सिद्धान्त औपनिवेशिक युग की ही देन ह जा आज अमेरिका में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर चुका है।

(7) अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली (**The Presidential Form of Government**) :- अमेरिकन संविधान संसदीय शासन प्रणाली की जगह अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली की परम्परा का निर्वहन करता है। अमेरिका से एक ही व्यक्ति का राज्य व शासन दोनों का अध्यक्ष है। वहां विधायिका तथा कार्यपालिका एक दूसरे से पृथक है। अध्यक्ष की स्थिति नाममात्र की न होकर वास्तविक है। कार्यपालिका विधानमण्डल के विश्वास पर आधारित न होकर स्वतन्त्र अस्तित्व रखती है। ऐसी शासन प्रणाली में वास्तविक कार्यपालक को केवल महाभियोग द्वारा ही हटाया जा सकता है। अमेरिकन अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली की लम्बी परम्परा से कई देशों ने काफी कुछ सीखा है। अमेरिका में अध्यक्षात्मक प्रणाली की परम्परा जितनी सफल रही है, उतनी किसी अन्य देश में नहीं रही।

(8) द्वि-सदनीय विधानमण्डल (**Bi-Cameral Legislature**) :- अमेरिका में उपनिवेशवाद के दौरान ही स्थानीय स्वशासन की व्यवस्था के तहत शासन की शक्तियां केन्द्र व राज्य सरकारों के विधानमण्डलों में विभाजित थी। कालान्तर में यह व्यवस्था अमेरिका संविधान का आधारभूत सिद्धान्त बन गई। 17 सितम्बर, 1787 को स्वशासित राज्यों और शक्तिशाली केन्द्र की स्थापना के मुद्दे पर सर्वसहमति प्रलेख जारी किया गया। इस समझौते ने अमेरिका में केन्द्रीय स्तर पर ही दो सदनो की व्यवस्था कर दी। इसमें निम्न सदन (प्रतिनिधि सभा) में जनसंख्या के आधार पर राज्यों के प्रतिनिधि तथा अन्य सदन (सीनेट) में राज्यों के समाज प्रतिनिधित्व की व्यवस्था की गई। आज भी अमेरिका में दोनों सदनों की यही व्यवस्था या ढांचा है।

(9) न्यायिक सर्वोच्चता का सिद्धान्त (**The Doctrine of Judicial Supermacy**) :- अमेरिका में औपनिवेशिक युग में ही इस सिद्धान्त का प्रचलन हुआ कि राज्य के कार्यों से संविधान और राष्ट्रीय कानून का उल्लंघन होता है या नहीं। आगे चलकर संविधान का निर्माण करते समय इस बात पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। लेकिन हैमिल्टन ने स्पष्ट किया कि संविधान की भावना के अनुसार न्यायपालिका को जनता एवं विधानमण्डल के बीच निर्णायक माना जाएगा। यही वाक्य न्यायिक पुनरावलोकन का आधार है। न्यायिक पुनरावलोकन के सिद्धान्त के विकास ने न्यायिक सर्वोच्चता के सिद्धान्त को मजबूत किया और आज अमेरिकन राजनीतिक प्रणाली में न्यायिक पुनरावलोकन का सिद्धान्त महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर चुका है।

(10) मौलिक अधिकार (**Fundamental Rights**) :- अमेरिकन जनता की स्वतन्त्रता की दृढ़ इच्छा का आभास होता है। कालान्तर में यही दृढ़ इच्छा नागरिक स्वतन्त्रताओं व अधिकारों की जननी बनी। अमेरिकन क्रान्ति के बाद 1789 में निर्मित संविधान में मौलिक अधिकारों की जो व्यवस्था नहीं थी, उसे प्रथम दस संशोधनो द्वारा 15 दिसम्बर, 1791 को ही लागू कर दिया गया। आज अमेरिका ने नागरिकों को जो मौलिक अधिकार व स्वतन्त्राएं प्राप्त हैं, वे विश्व के अन्य देशों में भी नहीं हैं। मौलिक अधिकारों की परम्परा ने ही अमेरिका में लोकतन्त्र को सफल बनाया है।

(11) द्वि-दलीय प्रणाली (**Two Party System**) :- यह व्यवस्था 1787 के सर्व-सहमति प्रलेख की देन है। अमेरिका की घोषणा के तुरन्त बाद संविधान का संघीय ढांचा तैयार किया गया। जनता की इस ढांचे पर सहमति प्राप्त करते समय सम्पूर्ण देश दो दलों में बंट गया एक तरफ तो संघ विरोधी थे और दूसरी तरफ संघवादी थे। कालान्तर में यही दल डेमोक्रेटिक तथा रिपब्लिकन दल बने। आज भी अमेरिका में द्वि-दलीय प्रणाली है जो अमेरिका के घोषणापत्र की महान विरासत व परम्परा है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि अमेरिका की स्वतन्त्रता का घोषणापत्र काफी महत्वपुर्ण प्रलेख था जिसने अमेरिकन शासन प्रणाली में नई राजनीतिक परम्पराओं को जन्म दिया। मानव स्वतन्त्रता के सिद्धान्त की जो उद्घोषणा इस प्रलेख से हुई, आगे चलकर वही विश्व के संविधानों के लिए एक मार्गदर्शक बन गई। यद्यपि सीमित सरकार, अधिकार पत्र, शक्ति-पृथक्करण, लौकिक सम्प्रभुता के सिद्धान्त काफी पहले ही प्रचलित हो चुके थे, लेकिन अमेरिका में इन्हें नवीन व व्यवहारिक रूप मिला। अमेरिकन शासन प्रणाली ने लिखित संविधान, न्यायिक सर्वोच्चता, संघात्मक शासन प्रणाली, द्वि-सदनीय विधायिका, स्थानीय स्वशासन की जो परम्पराएं विकसित की हैं, वे आज विश्व की शासन-प्रणालियों के लिए प्रेरणा स्रोत हैं और अमेरिकन राजनीतिक प्रणाली की ऐतिहासिक विरासत हैं जिन पर अमेरिका की जनता आज भी गर्व करती है।

चीन की राजनीतिक परम्पराएं व विरासत
(Political Traditions and Legacies of China)

माओ के स्वप्नों का चीन एक सुन्दर अतीत लिए हुए है। चीन की राजनीतिक प्रणाली को समझने के लिए उसके ऐतिहासिक विकास का अध्ययन करना जरूरी है। प्रारम्भ से ही चीन एक विशेष प्रकार की संस्कृति समेटे हुए है। इसमें बहुराष्ट्रीयताएं निवास करती हैं और सभी के प्रति समभाव विकसित हुआ है। चीन में लम्बे समय तक विभिन्न राजवंशों का शासन रहा और बाद में साम्राज्यवादियों ने उसे अपना शिकार बनाया। इस दौरान चीन में कभी भी जनप्रिय सम्प्रभुसता की भावना विकसित नहीं हो सकी। लम्बे समय तक चीन में निरंकुश राजतन्त्र व सामन्तशाही का रहना चीन में लोकतन्त्र की स्थापना के मार्ग में बाधक बना रहा और चीनी क्रान्ति के बाद भी चीन में सर्वसत्ताधिकारवादी शासन की ही स्थापना हुई।

चीनी राजनीतिक परम्परा का विकास (Development of Chinese Political Tradition) :- चीनी राजतन्त्र का इतिहास 1200 ई० पूर्व हसिया वंश से प्रारम्भ होता है। इन शासकों ने सामन्तों की अधिसत्ता को कुचलकर चीन में निरंकुश राजतन्त्र की स्थापना की। उसके बाद चीन में शांग वंश तथा चाओ वंश की निरंकुश सत्ता रही। कालान्तर में चाओ वंश की शक्ति कमजोर हो गई और उसका स्थान अधीनस्थ सामन्तशाही ने ले लिया। इन सामन्तों में चीन वंश अधिक शक्तिशाली था। 221 ई० पूर्व चीन राजवंश ने चाओ सम्राट को पराजित करके एक संगठित चीनी साम्राज्य की नींव डाली। चीन में अभिजात वर्ग ने राजतन्त्र की अधीनता और सम्राट की सम्प्रभुता स्वीकार की और केन्द्रीयकरण की व्यवस्था को लागू किया। सम्राट के देशव्यापी ओर एकछत्र शासन से सारे देश में व्यवस्था और शान्ति स्थापित हो गई। आगे चलकर यही व्यवस्था आधुनिक चीन की एकात्मक शासन प्रणाली का आधार बन गई। इस युग में ही नौकरशाही का विकास हुआ। चीन में अभिजात वर्ग की एक सुशिक्षित और प्रशासकीय कार्य में कुशल श्रेणी थी जो सम्राट को शासन चलाने में मदद देती थी। इसके बाद चीन में सुई, टांग, सूंग तथा मिंग वंश का शासन रहा। 16वीं सदी में मंगोलों के आक्रमण से उत्पन्न स्थिति का लाभ उठाकर मांचू वंश ने वहां अपना साम्राज्य स्थापित किया जो 1912 तक रहा। इस काल में राजा को ईश्वर का पुत्र समझा जाता था और उसकी सत्ता व शक्ति असीम थी। इस युग में सम्राट की मदद के लिए एक मन्त्रिपरिषद होती थी जो उसक सलाह देती थी। इस काल में स्थानीय स्वशासन को भी प्रोत्साहन मिला जो आगे चलकर लोकतन्त्रीय केन्द्रीयकरण के सिद्धान्त का आधार बना। इसी काल में चीन में साम्राज्यवादियों का आगमन हुआ और अफीम युद्धों ने चीन की कमर तोड़ दी। चीनी जनता जहां पहले निरंकुश राजवंशों का शिकार रही, अब इन साम्राज्यवादियों के चंगुल में फंस गई। अफीम युद्धों में हारने के बाद चीन का बंटवारा हो गया और चीन कई साम्राज्यवादियों का प्रभाव क्षेत्र बन गया। साम्राज्यवादियों के शोषण व असफल मांचू वंश को समाप्त करने के लिए वहां बाकसर विद्रोह हुआ। इस विद्रोह के परिणामस्वरूप चीन में दो हजार वर्ष से चले आ रहे सामन्तशाही स्वरूपी राजतन्त्र को कुचलकर चीन में गणतन्त्र की स्थापना की गई। अतीत की देन के रूप में चीनी राजनीति की प्रमुख विरासत-व्यक्तियों का शासन, कानूनी के स्थान पर नैतिकता पर आधारित राजनीति और सरकार की शक्तियों का सम्मिश्रण रही। वास्तव में 1911 की चीनी क्रान्ति ने चीनी राजतन्त्र की परम्परा को ही समाप्त कर दिया।

चीनी क्रान्ति के जनक डा० सुनयाल सेन ने सर्वप्रथम चीन की जनक्रान्ति की सफलता के लिए राष्ट्रीयता और जनतन्त्र के आदर्शों पर जोर दिया। उसने अपने कोमिनतांग दल को सैनिक शक्ति द्वारा चीन का एकीकरण पर जोर दिया। यही सिद्धान्त आगे चलकर वर्तमान चीन की राजनीतिक प्रणाली के अनिवार्य अंग बन गये। सेन ने अपनी कोमिमांग पार्टी को रूस के साम्यवादी दल की तरह संगठित किया और जनतंत्रीय केन्द्रवाद का सिद्धान्त विकसित किया। इस दौरान चीन में साम्यवादी दल भी जन्म ले चुका था। सेन ने साम्यवादी दल से भी समझौता किया ताकि चीन से साम्राज्यवाद को उखाड़ फैंका जा सके। 1925 में डा० सेन की मृत्यु हो गई और कोमिनतांग की बागडोर च्यांग काई शेक के हाथ में आ गई। इसके बाद कोमिनतांग और साम्यवादी दल में आपसी मतभेद गहरा गए और चीनी जनता के समर्थन से चीन में 1928 में च्यांग काई शेक के नेतृत्व में राष्ट्रीय सरकार बनी। 1931 में इस सरकार ने डा० सुनयात सेन के ही सिद्धान्तों का पालन करते हुए एक अस्थायी संविधान लागू किया। इस दौरान जापान में चीन पर आक्रमण कर दिया और इसमें चीन की हार हो जाने से च्यांग काई शेक की लोकप्रियता कम हुई और साम्यवादियों के प्रति जनता का रुझान बढ़ा। 1935 में माओं ने चीनी साम्यवादी दल की बागडोर अपने हाथ में ली और कृषक वर्ग को अपने क्रान्ति दल में शामिल किया। उसने गुरिल्ला युद्ध प्रणाली अपनाई और लाल सेना का गठन बिया। साम्यवादियों ने द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान कूटनीति से काम लिया। 1941 में कोमिनतांग सरकार और साम्यवादियों के बीच

युद्ध हो गया। इस युद्ध में जनता ने साम्यवादियों का ही साथ दिया और अन्त में साम्यवादियों की ही विजय हुई। च्यांग काई शेक को देश छोड़कर भागना पड़ा और 1 अक्तूबर, 1949 को माओ ने जनवादी गणराज्य घोषित कर दिया।

चीन पर साम्यवादी दल का प्रभुत्व स्थापित होने के बाद चीन में राजनीतिक परम्पराओं का पुराना इतिहास नष्ट हो गया। चीन में 1949 में अस्थायी संविधान का निर्माण हुआ जिसमें नवीन प्रजातन्त्र या जनतांत्रिक अधिनायकवाद की स्थापना पर जोद दिया गया। इस नवीन व्यवस्था का लक्ष्य चीन से सामन्तवाद और उपनिवेशवाद के तत्वों को नष्ट करना था। आगे चलकर 1949 का अस्थाई संविधान ही 1954 के संविधान, 1975, 1978 तथा 1982 के संविधानों का आधार बना। आज चीन मे जो संविधान प्रचति है वह 1982 का संविधान ही है। इस संविधान में चीन को समाजवादी राष्ट्र घोषित करता है। इस संविधान ने चीन की साम्यवादी शासन प्रणाली को कुछ उदार बनाया है। इस संविधान के निर्माण में साम्यवादी दल की ही महत्वपूर्ण भूमिका है। यह संविधान चीन में जनवादी गणतन्त्र तथा अध्यक्षात्मक व संसदात्मक दोनों शासन प्रणालियों का मिश्रण करके राष्ट्रपति पद की भी व्यवस्था करता है। इस संवैधानिक विकास ने चीन में कई नई राजनीतिक परम्पराओं को जन्म दिया है जो चीनी क्रान्ति की महान विरासत है।

चीनी क्रान्ति की विरासत

(Legacies of the Chinese Revolution)

चीन को विश्व का महान एवं शक्तिशाली देश बनाने का श्रेय साम्यवादी क्रान्ति को जाता है। च्यांग काई सरकार की कमजार स्थिति, राष्ट्रीयता की उग्र भावना, चीन में व्याप्त भ्रष्टाचार, किसान वर्ग की कमजोर व दुर्बल दशा, आम जनता का उत्पीड़न आदि के कारण चीनी साम्यवादी दल ने माओ के नेतृत्व में इस क्रान्ति को सफल बनाया और जनता को उनके कष्टों से निजात दिलाई। चीन की वर्तमान समय में जो व्यवस्था है वह साम्यवादी क्रान्ति की ही देन है। चीनी क्रान्ति की प्रमुख देन या ऐतिहासिक विरासत निम्नलिखित हैं :-

(1) जनतांत्रिक केन्द्रवाद का सिद्धान्त :- चीनी साम्यवादी क्रान्ति के आदर्शों पर चलकर चीन में जितने भी संविधान बने उनमें लोकतन्त्रीय केन्द्रवाद के सिद्धान्त को ही महत्व दिया गया और यह सिद्धान्त आज भी चीनी राजनीतिक व्यवस्था की महत्वपूर्ण विशेषता है। इस सिद्धान्त के अनुसार चीनी गणतन्त्र की समस्त स्थानीय इकाईयां उस समय तक स्वविवेक से काम कर सकती हैं, जब तक शासन की उच्च इकाईयां उनके कार्य में बाधा न डाले। इसी सिद्धान्त की अनुपालना में ही चीनी सरकार कार्य करती है। चीन में शक्तिशाली केन्द्र सरकार की स्थापना का श्रेय साम्यवादी दल के इसी सिद्धान्त को जाता है।

(2) शक्तिशाली केन्द्रीकृत सरकार की स्थापना :- साम्यवादी क्रान्ति से पहले चीन में कभी भी ऐसी शक्तिशाली केन्द्र सरकारें स्थापित नहीं हो सकी जो सम्पूर्ण देश को एकता के सूत्र में बांधे रख सके। यह कार्य साम्यवादी क्रान्ति ने ही किया। साम्यवादी क्रान्ति के सफल होने पर चीन में साम्यवादी सरकारें स्थापित हुई हैं जो आज तक भी शक्तिशाली केन्द्रीकृत सरकार के रूप में ही कार्य करती रही हैं। वर्तमान चीनी सरकार भी ऐसी ही सरकार है। उसका प्रादेशिक सरकारों पर पूरा नियन्त्रण है।

(3) समाजवादी अर्थव्यवस्था :- 1911 की क्रान्ति ने ही समाजवाद के लक्षण प्रकट कर दिये थे। लेकिन 1949 की क्रान्ति ने चीन में समाजवादी अर्थव्यवस्था को अपनाने का रास्ता साफ किया जिसके अन्तर्गत उत्पादन व वितरण के साधनों पर राज्य का ही नियन्त्रण स्थापित किया गया। आज चीन में समाजवादी कार्यक्रम व नीतियां ही कार्य कर रही हैं। चीन में समाजवादी कार्यक्रम आज भी सफलता से कार्य कर रहे हैं। इनकी सफलता के लिए वहां केन्द्रीकृत नियोजन प्रणाली अपनाई गई है। समाजवादी अर्थव्यवस्था वास्तव में साम्यवादी क्रान्ति की चीन को महान देन है जिसने चीन को एक विकसित औद्योगिक देश बना दिया है।

(4) संवैधानिक विकास की प्रक्रिया की शुरुआत :- चीनी क्रान्ति के बाद 1949 में सर्वप्रथम अस्थायी संविधान की स्थापना की गई। उसके बाद 1954, 1975, 1978 तथा 1982 में नए संविधान बनाये गये जो साम्यवादी दल की नीतियों व कार्यक्रमों को ही साकार रूप दे रहे हैं।

(5) उद्योगों का राष्ट्रीयकरण :- चीन में साम्यवाद कायम रखने के लिए वहां की सरकारों ने उद्योगों के राष्ट्रीयकरण की नीति लागू की है। आज चीन में कोई भी उद्योग निजी स्वामित्व में नहीं है। यही राष्ट्रीयकरण समाजवाद की नींव सुदृढ

करता है। भारत सरकार ने भी चीन से सबक लेते हुए बाद में अपने महत्वपूर्ण उद्योगों का राष्ट्रीयकरण किया।

(6) कृषि का सामूहिकीकरण :- चीन में साम्यवादी क्रान्ति की सफलता के बाद वहां वर्षों से चली आ रही जमींदारी प्रथा का अन्त करके सहकारी कृषि की योजना लागू की गई। आज चीन में उच्च कृषि उत्पादक सहकारी संघ तथा परस्पर सहयोग समूह कार्य कर रहे हैं। इनका उद्देश्य सहकारी कृषि को ही बढ़ावा देना है।

(7) माओवादी शिक्षा :- माओ चीनी क्रान्ति के महान नेता हैं। उन्होंने चीन को महान देश बनाने में सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान दिया है। चीन में 1949 से आज तक माओवादी गीता का पाठ प्रतिदिन होता है। इसके अतिरिक्त सरकार ने जनता के सर्वांगीण विकास के लिए अनेक प्रकार के शिक्षण संस्थान भी खोले हैं। आज चीन तकनीकी शिक्षा के क्षेत्र में भी काफी आगे हैं। लेकिन माओवादी शिक्षा आज भी चीनी समाज के लिए प्रेरणा स्रोत हैं।

(8) जनवादी गणतन्त्र :- साम्यवादी क्रान्ति के बाद चीन में जनवादी गणतन्त्र की स्थापना की गई है। 1911 की चीनी क्रान्ति के समय ही डा० सुनयात सेन ने अपने समाजवादी सिद्धान्तों में जनतन्त्र के सिद्धान्त को विशेष महत्व दिया था जो आगे चलकर साम्यवादी दल का भी एक प्रमुख सिद्धान्त बन गया। सिद्धान्त में तो आज भी चीन में राष्ट्रीय जन कांग्रेसों के पास ही शासन की वास्तविक शक्ति है, लेकिन व्यवहार में उसका प्रयोग साम्यवादी दल ही करता है।

उपरोक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि चीन में आज जो कुछ भी है, वह साम्यवादी क्रान्ति का ही प्रतिफल है। क्रान्ति से पहले की राजनीतिक परम्पराएं क्रान्ति की कब्र में ही दफन होकर रह गई हैं। लम्बे समय से चली आ रही राजतन्त्र व सामन्तशाही की परम्परा चीनी क्रान्ति की सफलता के साथ ही नष्ट हो गई। आज चीन साम्यवादी दल के नेतृत्व में ही विकास की दिशा में अग्रसर है। इस दल ने चीन को समाजवादी राज्य बनाया है जहां शिक्षा, उद्योग, कृषि, साहित्य आदि पर इसी दल की नीतियों का प्रभाव है। आज चीन एकात्मक राज्य है जो बहुराष्ट्रीयताओं को समेटे हुए है। वास्तव में सरकार की समस्त शक्तियों पर साम्यवादी दल का ही नियन्त्रण है, इसी कारण चीन में वे राजनीतिक परम्पराएं जन्म नहीं ले सकी जो ब्रिटेन, अमेरिका तथा स्विट्जरलैण्ड में हैं।

स्विस राजनीतिक परम्पराएं व विरासत

(Swiss Political Traditions and Legacies)

स्पिट्जरलैण्ड एक अनूठी परम्पराओं का देश है। यह राजनीतिक रूप से एक स्थायी तटस्थ राष्ट्र है तथा इसमें कई राष्ट्रीयताएं निवास करती हैं। इसके मूल निवासी हैल्वेटिक जाति के कबीलों से सम्बन्ध रखते हैं। यहां पर विभिन्न धर्मों की जनता निवास करती है और राज्य का धर्म के बारे में धर्म-निरपेक्ष दृष्टिकोण है। स्विट्जरलैण्ड को विश्व का सर्वाधिक प्राचीन प्रत्यक्ष लोकतन्त्रीय परम्परा वाला देश कहा जाता है। इसकी वर्तमान राजनीतिक परम्पराएं हजारों वर्ष पुरानी हैं। इसकी राजनीतिक प्रणाली को समझने के लिए हमें इसके संवैधानिक विकास की परम्परा को समझना जरूरी है।

स्विट्जरलैण्ड की राजनीतिक परम्परा का विकास

(Development of the Swiss Political Traditions)

स्विस राजनीतिक परम्परा का इतिहास 1291 से शुरु होता है जब उरी, स्वेज तथा उंटरवाल्डेन ने मिलकर एक सामन्त विरोधी संघ की स्थापना की थी। इस संघ का उद्देश्य विदेशी आक्रमणों और सामन्ती हस्तक्षेप से सदस्य राज्यों की रक्षा करना था। यहीं से स्विस राष्ट्रीयता का जन्म होता है। इस संघ का निर्माण होने के बाद आस्ट्रिया के राजा ने कैण्टनों पर आक्रमण किया और इसमें कैण्टन (प्रान्त) विजयी रहे। इसके बाद 1353 में आठ राज्यों (कैण्टनों) का नया मैत्री संघ बना। इसी मैत्री संघ को आगे चलकर स्विट्जरलैण्ड का नाम दिया गया। यही संघ व्यवस्था आधुनिक स्विस संघ की शासन प्रणाली की आधार है। इसमें 19 पूर्ण तथा 6 अर्द्ध कैन्टन शामिल हैं।

आगे चलकर 1531 में स्विट्जरलैण्ड में गृह-युद्ध की ज्वाला भड़क उठी। स्विस राज्यमण्डल के पास केन्द्रीय सेना का अभाव था। उसके कुछ कैण्टनों में तो प्रजातन्त्र और कुछ में कुलीनतन्त्र था। धर्मान्धता ने भी राज्यमण्डल की शक्ति को दुर्बल कर दिया। इस तरह स्विस राज्य मण्डल को कई भयानक उथल-पुथल देखनी पड़ी। 1789 की फ्रांसीसी क्रांति ने स्विट्रजरलैण्ड में नेपोलियन को प्रवेश करने के लिए प्रलोभन दिया। इसके बाद नेपोलियन ने स्विट्जरलैण्ड पर आक्रमण करके वहां अपना

एकात्मक संविधान लागू कर दिया। उसने कैंटनों से कुलीनतन्त्र का अन्त करके वहां क्रान्तिकारी लोकतन्त्र की स्थापना की। उसने सभी कैण्टनों को केन्द्र सरकार का प्रशासनिक क्षेत्र बना दिया और सीनेट व ग्राण्ड कौंसिल नामक द्वि-सदनीय विधामनण्डल की स्थापना की। उसने वहां हैलवेटिक गणतन्त्र पूरी तरह स्थापित कर दिया। स्विस कार्यपालिका की शक्ति भी 5 व्यक्तियों की समिति को दे दी। आगे चलकर यही व्यवस्था स्विस बहुल कार्यपालिका के सिद्धान्त का जनक बनी। नेपोलियन के शासन की प्रमुख देन - केन्द्रीयकरण, राष्ट्रीय नागरिकता निर्वाचित संसद व उत्तरदायी कार्यपालिका रही। लेकिन इस व्यवस्था ने स्विस जनता के मन में विद्राह की भावना भड़क उठी। नेपोलियन ने युद्ध से डरकर 1803 में कैण्टनों की स्वतन्त्रता को स्वीकार करना पड़ा और 1803 के मध्यसस्थता अधिनियम द्वारा स्विट्जरलैण्ड को पुनः एक संघात्मक राज्य बना दिया गया। वहां एक केन्द्रीय सभा (Diet) की स्थापना हुई। यह व्यवस्था अधिक समय तक नहीं चल सकी और स्विस डाइट ने 1815 की वियना कांग्रेस के पेरिस समझौते के अधीन नया संविधान लागू कर दिया। आज स्विस कैण्टनो की संख्या 25 (19 पूर्ण + 6 अर्द्ध) हो गई। इस संविधान द्वारा सभी कैण्टनों को समान राजनीतिक स्तर प्रदान किया गया और स्थानीय मामलों में उन्हें स्वतन्त्र मान लिया गया। इस व्यवस्था के कारण 1815 से 1830 तक देश में शान्ति-व्यवस्था कायम रही। लेकिन 1830 में दूसरी फ्रांसीसी क्रान्ति का प्रभाव भी स्विस शासन पर पड़ा और वहां उदारवादी प्रजातन्त्रीय सिद्धान्तों के लिए आन्दोलन शुरु हो गया। 1845 में कैथोलिक बहुमत वाले कैण्टनों ने भी अपना अलग संघ बना लिया। इससे फिर से वहां गृह-युद्ध की ज्वाला भड़क उठी। इस युद्ध में राष्ट्रीय एकता आन्दोलन की विजय हुई और स्विस डाइट ने 1848 का नया संविधान बनाया जिसमें जनमत संग्रह को विशेष महत्व दिया गया। इस संविधान ने स्विट्जरलैण्ड को संघ राज्य बना दिया और 1874 म संविधान में संशोधन करके नये रूप में 1848 का ही संविधान प्रस्तुत किया गया जिसमें स्विट्जरलण्ड को संघात्मक शासन प्रणाली वाला देश घोषित किया गया। इस तरह स्विट्जरलैण्ड में संघात्मक शासन की परम्परा पुनः स्थापित हो गई जो पूर्व संविधानों की राजनीतिक परम्पराओं को भी समेटे हुए है।

स्विस राजनीतिक परम्पराएं व विरासत

(Swiss Political Traditions and Legacies)

स्विस जनता परम्परा-प्रिय है। इसी कारण स्विस संविधान में कठोरता का समावेश है। कम्यूनों और कन्टनों के सामाजिक और राजनीतिक जीवन पर आज भी जन-जातीय और मध्यकालीन सामन्ती परम्पराओं की छाप है। स्त्रियों को लम्बे समय तक मताधिकार से वंचित रखे जाने के पीछे सामन्ती विचार ही है। स्विस जनता आज भी रूढ़ियों और परम्पराओं से प्रेम करती है, इसी कारण स्विस गणतन्त्र में कुलीनतन्त्र की आत्मा का भी वास है। वर्तमान स्विस राजनीतिक प्रणाली ने स्विस संविधान व राजनीतिक विकास की परम्परा से काफी कुछ सीखा है। स्विस राजनीतिक प्रणाली में आज भी हजारों वर्ष पुरानी राजनीतिक परम्पराएं विद्यमान हैं जो स्विस राजनीतिक प्रणाली की महान ऐतिहासिक विरासत हैं। ये राजनीतिक परम्पराए निम्नलिखित हैं :-

(1) गणतन्त्रीय परम्परा (**Republican Tradition**):- स्विट्जरलैण्ड विश्व का सर्वाधिक प्राचीन गणतन्त्रीय लोकतन्त्र है। राज्य को प्रधान को प्रत्यक्ष रूप से चुनाव द्वारा जनता ही चुनती है। संवैधानिक दृष्टि से तो इस परम्परा की शुरुआत 1849 में हुई है, लेकिन 600 वर्ष पूर्व भी स्विस शासन गणतन्त्रीय था। रेपार्ड ने लिखा है-"स्विट्जरलैण्ड युगों से गणराज्य रहा है।" वहां जनसम्प्रभुता का सिद्धान्त प्रचलित है।

(2) बहुल कार्यपालिका (**Plural Executive**) :- स्विट्जरलैण्ड में कार्यपालिका सघीय परिषद कहा जाता है। यह परिषद व्यवस्थापिका या संसद के दोनों सदनों द्वारा निर्वाचित 7 सदस्यों से मिलकर बनी है। इस व्यवस्था का प्रचलन नेपोलियन के शासन काल में ही हो चुका था। नेपोलियन ने स्विट्जरलैण्ड पर अपना अधिकार करने के बाद कार्यपालक शक्ति पांच व्यक्तियों की संचालक समिति को सौंप दी थी। इस समिति के सदस्य भी द्वि-सन्दीय विधायिका द्वारा ही चुने जाते थे। वही परम्परा आज भी मौजूद है। यह व्यवस्था नेपोलियन शासन प्रणाली की महान विरासत है।

(3) द्वि-सदनीय विधायिका (**Bi-Cameral Legislature**) :- स्विट्जरलैण्ड में आज द्विसदनीय विधायिका है जो शासन का सर्वोच्च अंग है। कार्यपालिका तथा न्यायपालिका पर संसद का ही नियन्त्रण है। संसद के दो सदन राष्ट्रीय परिषद (निम्न सदन) तथा राज्य परिषद (उच्च सदन) हैं। यह व्यवस्था भी नेपोलियन युग में ही शुरु हो चुकी थी। नेपोलियन ने स्विट्जरलैण्ड में हैल्वेटिक गणतन्त्र की स्थापना करके देश के शासन के लिए सीनेट तथा ग्राण्ड कासिल नामक दो

सदनों का विधानमण्डल स्थापित किया था। इस तरह द्वि-सदनीय विधानमण्डल भी स्विट्जरलैण्ड की महान राजनीतिक परम्परा व विरासत है।

(4) संघात्मक शासन प्रणाली (Federal Form of Government) :- स्विट्जरलैण्ड संघात्मक शासन प्रणाली का घर रहा है। 1291 में सर्वप्रथम उरी, स्वेज तथा उंटरवाल्डेन नामक तीन राज्यों को मिलाकर स्थायी संघ की स्थापना की गई थी। 1353 में फिर आठ कैण्टनों की उत्पत्ति हुई। आगे चलकर 1803 के मध्यस्थता अधिनियम तथा 1848 के संविधान में भी स्विस संघात्मक शासन प्रणाली का सिद्धान्त प्रतिपादित हुआ। आज स्विस संघ में 19 पूर्ण तथा 6 अर्द्ध कैन्टन हैं। संघात्मक शासन प्रणाली के अनुरूप स्विट्जरलैण्ड में भी शक्तियों का विभाजन केन्द्र व कैण्टन सरकारों के बीच में किया गया है। स्विस संघवाद अमेरिकन संघवाद के विरुद्ध कैण्टनों को अधिक सम्प्रभुता देता है।

(5) प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र व जनमत संग्रह (Direct Democracy and Referendom) :- स्विट्जरलैण्ड को प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र का घर कहा जाता है। वहां शासन के प्रत्येक कार्य में जनता अवश्य भाग लेती है। वहां संघ सरकार की शक्तियां कैण्टनों के पास अधिक है और कैण्टनों में अधिक महत्व कम्यूनों (जिलों) का है। वहां मताधिकार का प्रयोग अनिवार्य है। जनमत संग्रह की व्यवस्था ने भी प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र की परम्परा को अधिक सुदृढ किया है। सरकार के प्रत्येक कार्य पर जनता की सहमति अवश्य ली जाती है। इसी कारण वहां जनसम्प्रभुता का सिद्धान्त प्रचलित हो गया है।

(6) बहुदलीय व्यवस्था (Multi-Party System) :- स्विट्जरलैण्ड में बहुदलीय परम्परा का विकास हुआ है। स्विट्जरलैण्ड में दल प्रणाली की शुरुआत 1815 की वियना कांग्रेस के समय से ही हो चुकी थी। कालान्तर में यह दल प्रणाली विकसित होती रही। लेकिन यह प्रणाली ब्रिटेन तथा अमेरिका की तरह सुदृढ नहीं है। स्विस दल प्रणाली काफी दुर्बल है। जनमत संग्रह की व्यवस्था तथा कार्यपालिका का बहुल रूप इसकी कमजोर स्थिति के लिए उत्तरदायी है। स्विट्जरलैण्ड में प्रत्येक कार्य पर सरकार जनता की राय लेती है। स्विस दल प्रणाली दलबन्दी का शिकार नहीं है और इसमें पेशेवर राजनीतिज्ञ भी नहीं है। इस व्यवस्था का संविधान में भी उल्लेख नहीं है। आनुपातिक प्रतिनिधित्व सरकार में प्रत्येक दल को कुछ-न-कुछ प्रतिनिधित्व तो दिला ही देता है। इसी कारण वहां राजनीतिक दल समझौतवादी परम्परा से कार्य करते हैं। वास्तव में स्विस कार्यपालिका बहुदलीय कार्यपालिका है।

(7) प्रशासकीय कानून (Administrative Law) :- स्विस न्यायपालिका नेपोलियन की कानून-संहिता पर आधारित है। वहां सामान्य और प्रशासनिक न्यायालय समान्तर कार्य करते हैं। इसी कारण वहां प्रशासकीय कानून व्यवस्था से सामान्य न्याय व्यवस्था को कोई आघात नहीं पहुंचा है। प्रशासकीय कानून की परम्परा नेपोलियन युग की महान देन है जो आज भी स्विस शासन-प्रणाली की महान विरासत है।

(8) अन्य परम्पराएं (Miscellaneous Traditions) :- स्विस राजनीतिक प्रणाली में अन्य राजनीतिक परम्पराएं भी प्रचलित हैं। स्विस राजनीतिक प्रणाली धर्म-निरपेक्ष राज्य के सिद्धान्त पर आधारित है। यह परम्परा 1845 के गृह-युद्ध की समाप्ति पर ही प्रचलित हो चुकी थी। स्विस शासन प्रणाली मौलिक अधिकारों की भी व्यवस्था करती है। यह व्यवस्था संविधान पें अधिकार पत्र के माध्यम से न होकर विभिन्न अध्यायों में बिखरी पड़ी है। 1971 में संविधान में संशोधन करके स्त्रियों को भी मताधिकार देकर वहां समानता के सिद्धान्त से अधिक व्यवहारिक बना दिया गया है। वह प्रारम्भ से ही राजनीतिक तटस्थता की परम्परा को भी संजोए हुए है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि ब्रिटिश संविधान उदारवादी लोकतन्त्र, बहुल कार्यपालिका, द्विसदनीय विधानमण्डल, गणतन्त्रीय प्रजातन्त्र, जनमत संग्रह, संघात्मक शासन प्रणाली आदि राजनीतिक परम्पराओं को समेटे हुए है और इसकी प्रकृति अनूठी है।

--- o ---

अध्याय-5

विश्व के प्रमुख संविधानों की विशेषताएं : ब्रिटेन, अमेरिका, स्विस तथा चीन

(Features of the Main Constitutions of the World : Britain, America, Switzerland & China)

आधुनिक युग में विश्व की शासन व्यवस्था का विश्लेषण करने से पता चलता है कि उनमें से कुछ उदारवादी प्रजातांत्रिक व्यवस्थाएं हैं और कुछ साम्यवादी व्यवस्थाएं हैं। ब्रिटेन, भारत, अमेरिका, स्विस आदि देशों की शासन व्यवस्थाएं प्रथम वर्ग में शामिल हैं और रूस, चीन, वियतनाम, क्यूबा जैसे देशों की दूसरे वर्ग में शामिल हैं। शासन व्यवस्थाओं के वर्गीकरण के अन्य आधार भी हो सकते हैं। अन्य आधारों पर शासन व्यवस्थाएं संसदात्मक व अध्यक्षात्मक तथा एकात्मक व संघात्मक भी हो सकती है। शासन व्यवस्थाओं का यह वर्गीकरण उनके संवैधानिक ढांचे की प्रकृति को समझने में काफी सहायक सिद्ध होता है। इस अध्याय में हम संवैधानिक ढांचों की प्रकृति में अन्तर जानने के लिए ब्रिटेन, अमेरिका, स्विटजरलैण्ड तथा चीन के संविधानों की प्रकृति व विशेषताओं पर विचार करेंगे।

ब्रिटिश संविधान की विशेषतायें

(Features of the British Consitution)

ब्रिटिश संविधान विश्व का सबसे प्राचीन व अलिखित संविधान है। मुनरो ने इसे विश्व संविधानों की जननी कहा है। इसने ही विश्व संविधान निर्माताओं का पथ-प्रदर्शन किया है। इसकी मुख्य विशेषतायें निम्नलिखित हैं :

(1) अलिखित संविधान (Unwritten Consitution) :- ब्रिटिश संविधान का अधिकांश भाग अलिखित है। यह भारत, अमेरिका तथा चीन के संविधानों की तरह लिखित नहीं है। अलिखित होने के बावजूद भी इसका कुछ अंश संसदीय कानूनों व न्यायिक निर्णयों तथा अधिकार-पत्रों के रूप में लिखित मिल जाता है। इसमें परम्पराओं, रीति-रिवाजों तथा रूढ़ियों का सुन्दर समन्वय है। इस संविधान की कोई प्रति उपलब्ध न होने के कारण इसे अलिखित संविधान की संज्ञा दी जाती है। इसका प्रमुख कारण इसे संविधान सभा द्वारा न बनाया जाना भी है।

(2) विकसित संविधान (Evolved Constitution) :- ब्रिटिश संविधान का निर्माण किसी निश्चित तिथि को किसी सस्था या व्यक्ति द्वारा नहीं हुआ है। इसके विपरीत भारत तथा अमेरिका का संविधान एक संविधान सभा द्वारा बनाया गया था। ब्रिटिश संविधान तो क्रमिक विकास का प्रतिफल है जिसका विकास एंग्लो सैक्सन युग से होता आ रहा है। मुनरो ने इसे 'बुद्धि और संयोग की संतान' कहा है। ब्रिटिश संविधान स्वयं को बदलती परिस्थितियों के अनुसार ढाल रहा है। इसमें चीन तथा रूस की तरह भयंकर परिवर्तन नहीं हुए है। ऑग ने लिखा है "ब्रिटिश संविधान एक सचेष्ट जीवधारी के समान है जिसमें निरन्तर व स्थायी विकास की क्षमता है।" इसके विकास में ब्रिटिश लोगों के स्वभाव, परम्पराओं, न्यायिक निर्णयों तथा संसदीय कानूनों में महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है।'

(3) संसदीय शासन-प्रणाली (Parliamentary Form of Government) :- ब्रिटेन में संसदीय शासन-प्रणाली की व्यवस्था है। संसदीय शासन प्रणाली में दो प्रकार की कार्यपालिका होती है नाममात्र और वास्तविक। ब्रिटेन में सम्राट तो शासन का नाममात्र का मुखिया है। शासन की समस्त शक्तियों का प्रयोग प्रधानमन्त्री अपने मन्त्रिमण्डल के साथ मिलकर करता

है। ब्रिटेन में भी अन्य संसदात्मक अपने मन्त्रिमण्डल के साथ मिलकर करता है। ब्रिटेन में भी अन्य संसदात्मक शासन प्रणालियों की तरह सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त का अस्तित्व है और कार्यपालिका तथा वियायिका में भी घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है। इसमें कार्यपालिका संसद के प्रति उत्तरदायी होती है। ब्रिटेन में वास्तविक कार्यपालिका या मन्त्रिमण्डल को संसद में विश्वास मत खो देने पर त्यागपत्र देना पड़ता है। वहां व्यवस्थापिका कटौती प्रस्तावों, अविश्वास प्रस्तावों आदि द्वारा कार्यपालिका पर पूरा नियन्त्रण रखती है। यदि कार्यपालिका या मन्त्रिमण्डल विश्वास मत खो देता है तो कॉमन सभा भंग हो जाती है और नए चुनावों का सामना करना पड़ता है। जिस तरह कार्यपालिका पर विधायिका नियन्त्रण रखती है, उसी तरह अविश्वास मत का खतरा तथा नए चुनावों की सम्भावना संसद को भी खतरे में डाल देती है। इसी कारण ब्रिटेन में कार्यपालिका तथा विधायिका में आपसी तालमेल पाया जाता है।

(4) संसद की सर्वोच्चता (Supermacy of the Parliament) :- ब्रिटेन में कानूनी दृष्टि से संसद सम्प्रभु है। कार्यपालिका संसद के प्रति ही उत्तरदायी है। कानून बनाने, संशोधन करने, रद्द करने अथवा कानून का विस्तार करने का अधिकार संसद के पास ही है। संसद द्वारा पारित कानूनों को किसी न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती। संसद की सर्वोच्चता पर डी० लोमी ने लिखा है-"ब्रिटिश संसद पुरुष को स्त्री और स्त्री को पुरुष बनाने के सिवाय और सब कुछ कर सकती है।" लेकिन व्यवहार में उसकी सम्प्रभु शक्ति पर कुछ परम्परागत संविधानिक अभिसमयों के रूप में सीमाएं भी हैं।

(5) द्वि-सदनीय विधायिका (Bicameral Legislature) :- ब्रिटेन में द्विसदनीय विधायिका है। संसद के निम्न सदन को कॉमन सभा तथा अन्य सदन को हाऊस ऑफ लार्डस या लार्ड सभा कहा जाता है। ब्रिटिश संविधान की तरह द्वि-सदनीय विधानमण्डल का इतिहास भी काफी पुराना है।

(6) कानून का शासन (Rule of Law) :- ब्रिटेन में शासन किसी व्यक्ति या संस्था की इच्छानुसार नहीं चलता। वहां शासन का संचालन कानून के अनुसार होता है। कानून के शासन का अर्थ यह है कि सब व्यक्ति चाहे वह सम्राट हो या प्रधानमन्त्री, कानून से ऊपर नहीं है। कानून की दृष्टि में सभी समान हैं और किसी व्यक्ति को कानून तोड़ने की अनुमति नहीं है। डायसी के अनुसार ब्रिटेन में कानून का शासन संसदीय अधिनियमों, न्यायिक निर्णयों तथा सामान्य विधि में निहित है। इसी आधार पर वहां विधि के शासन का विकास हुआ है।

(7) मिश्रित संविधान (Mixed Constitution) :- ब्रिटेन के संविधान में राजतन्त्र तथा प्रजातन्त्र के सिद्धान्तों का सुन्दर समन्वय पाया जाता है। सिद्धान्त रूप में वहां राजतन्त्र है, लेकिन व्यवहार में संसद की सर्वोच्चता होने के कारण प्रजातन्त्र है। ऑग का कहना है-"ब्रिटेन में राज्य-व्यवस्था शुद्ध सैद्धान्तिक रूप से निरंकुश राजतन्त्र है; बाह्य स्वरूप में सीमाबद्ध वैधानिक राजतन्त्र का तथा कॉमन सदन लोकतन्त्र का प्रतिनिधि है। इसलिए ब्रिटिश संविधान को मिश्रित संविधान कहा जाता है।

(8) संवैधानिक राजतन्त्र (Constitutional Monarchy) :- ब्रिटेन में राजा का पद राजतन्त्र का प्रतीक है। लेकिन 1688 की शानदार क्रान्ति के बाद राजा की शक्तियां ताज की शक्तियां हो गई जिनका प्रयोग राजा तथा संसद कानूनी सीमाओं के अन्तर्गत करते हैं। वास्तव में राजा कोई भी कार्य मन्त्रिमण्डल तथा प्रधानमन्त्री की सलाह के लिए करता है। राजा और मन्त्रिमण्डल दोनों कानून की परिधि से बाहर जाकर कोई भी कार्य नहीं कर सकते। आज ब्रिटिश राजतन्त्र पूरी तरह लोकतन्त्रीय आदर्शों पर आधारित हो चुका है। इसी कारण उसे संवैधानिक या सीमित राजतन्त्र कहा जाता है।

(9) लचीला संविधान (Flexible Constitution) :- ब्रिटिश संविधान की प्रमुख विशेषता उसका लचीलापन है। वहां संसद जिस तरह साधारण कानून पारित करती है, उसी तरह वह संविधान में सरलता से बिना किसी विशेष प्रक्रिया को अपनाए संशोधन कर सकती है। ब्रिटेन में संसद के पास कानून निर्माण तथा उसमें परिवर्तन की दोनों शक्तियां हैं। वहां संवैधानिक कानून तथा साधारण कानून में कोई अन्तर नहीं है। भारत तथा अमेरिका की तरह ब्रिटेन में संवैधानिक संशोधन की कोई विधि नहीं है। संसद साधारण बहुमत से संविधान में कैसा भी संविधान कर सकती है।

(10) सबसे प्राचीन संविधान (The oldest Constitution) :- ब्रिटेन का संविधान विश्व के अन्य संविधानों की अपेक्षा काफी प्राचीन है। वहां की संसद अन्य संसदों की जननी कहलाती है। अन्य देशों के लोगों ने ब्रिटिश संविधान से काफी कुछ ग्रहण किया है। भारत के संविधान में भी कुछ बातें ब्रिटेन के संविधान से ही ली गई हैं।

(11) एकात्मक शासन प्रणाली (Unitary Form of Government) :- ब्रिटेन में भारत तथा अमेरिका की तरह संघात्मक

शासन प्रणाली नहीं है। वहां शासन की शक्तियों क[illegible] राज्यों में विभाजन नहीं किया गया है। ब्रिटेन में प्रान्तों का जो शक्तियां प्राप्त हैं, वे केन्द्र शासन द्वारा प्रदत्त हैं। क[illegible]रकार जब चाहे उन शक्तियों को वापिस ले सकती है। संसद का कानून समस्त देश के लिए मान्य होता है। केन्द्र सरकार प्रान्तीय सरकारों के अधिकार व शक्तियों में अपनी इच्छानुसार परिवर्तन कर सकती है। स्थानीय शासन को कानून बनाने का कोई अधिकार नहीं है। वह तो केवल केन्द्रीय कानून को लागू करने के लिए उप-नियम बना सकता है।

(12) मौलिक अधिकार व स्वतन्त्रताएं (Fundamental Rights and Liberties) :- ब्रिटेन में भी भारत तथा अमेरिका की तरह नागरिक स्वतन्त्रताएं हैं। यद्यपि संविधान में कहीं भी उनका उल्लेख नहीं है, क्योंकि वहां संविधान लिखित ही नहीं है। लेकिन 1215 के मैग्नाकार्टा एक्त बन्दी प्रत्यक्षीकरण अधिनियम 1679 तथा अधिकार पत्र 1669 के तहत वहां नागरिक अधिकारों व स्वतन्त्रतओं का विकास हुआ है। आज ब्रिटेन में भी अन्य देशों के नागरिकों की तरह लोगों को अधिकार व स्वतन्त्रताएं प्राप्त हैं।

13) द्वि-दलीय प्रणाली (Two Party System) :- ब्रिटेन में प्रारम्भ से अब तक दो दल ही सत्ता में रहे हैं। यद्यपि वहां कई अन्य दल भी हैं, लेकिन पिछली सदी से वहां अनुदार दल तथा श्रमिक दल की ही सरकारें बनी हैं। वहां चुनावों के बाद एक दल सरकार बनाता है तो दूसरा विरोधी दल की भूमिका अदा करता है।

(14) संवैधानिक अभिसमयों का महत्व (Importance of Constitutional Conventions) :- ब्रिटेन का संविधान परम्पराओं व रीति-रिवाजों पर आधारित है। यदि ब्रिटिश संविधान से अभिसमयों या परम्पराओं को निकाल दिया जाये तो संविधान केवल निर्जीव शरीर की तरह रह जायेगा। इनके बिना शासन चलाना कठिन है, क्योंकि ये राजनीतिक परम्पराओं के रूप में ब्रिटिश शासन-व्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान पा चुके हैं। यद्यपि इनका संविधान में कहीं उल्लेख नहीं है, फिर भी वे संवैधानिक संस्थाओं के कार्य-व्यवहार का आवश्यक अंग है। उदाहरण के लिये प्रधानमन्त्री का कामन सदन से होना, सम्राट द्वारा किसी बिल को वीटो न करना आदि संवैधानिक कानून न होकर परम्पराओं का ही विकसित रूप है।

(15) राजा और ताज में अन्तर (Distinction between the King and Crown) :- 1688 की शानदार क्रान्ति ने राजा की शक्तियों को छीनकर ताज को सौंप दिया। इससे पहले ताज की शक्तियां राजा की ही शक्तियां थीं। राजा व ताज म कोई संवैधानिक अन्तर नहीं था। लेकिन अब राजा एक मृत्युशील जीवधारी है जबकि ताज एक स्थायी संस्था है जिसका कोई अन्त नहीं है। अतः ब्रिटेन में राजा व ताज में अन्तर किया जाता है। स्वयं राजा भी ताज के अधीन है।

(16) न्यायपालिका की स्वतन्त्रता (Independence of Judiciary) :- ब्रिटिश न्यायपालिका अपनी निष्पक्षता व स्वतन्त्रता के लिए विश्व में प्रसिद्ध है। वहां न्यायधीशों पर कार्यपालिका तथा विधायिका का कोई नियन्त्रण या दबाव नहीं है। वहां कानून की दृष्टि में सब समान हैं। न्यायधीशों का कार्यकाल उनके सदाचार पर निर्भर है। न्यायधीशों का अच्छा वतन व सुविधायें भी उसे स्वतन्त्रता प्रदान करती है। न्यायपालिका की स्वतन्त्रता व प्रभाव का स्पष्टीकरण इस बात से हो जाता है कि ब्रिटेन में न्यायिक निर्णय संविधान का आवश्यक अंग है। सभी व्यक्ति व संस्थाएं न्यायिक निर्णयों का पूरा सम्मान करते हैं।

(17) पैतृक सिद्धान्त (Hereditary Principle) :- ब्रिटिश संविधान में वंशानुगत ततव भी पाए जाते हैं। वहा राजा का पद वंशानुगत है। लार्ड सभा के अधिकांश सदस्य आनुवांशिक पीयर हैं। ब्रिअिश जनता को पैतृक या आनुवांशिक सिद्धान्तो से गहरा लगाव है और वे उन्हें छोडना नहीं चाहते। इसी कारण पैतृक सिद्धान्त आज भी ब्रिटिश संविधान के आवश्यक तत्व हैं।

(18) निरोध व सन्तुलन का सिद्धान्त (Principle of Check and Balance) :- ब्रिट्रेन में शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धान्त की अपेक्षा विरोध व सन्तुलन का सिद्धान्त अपनाया गया है। वहां सरकार के प्रत्येक अंग पर एक दूसरे का कुछ-न-कुछ नियन्त्रण अवश्य है। उदाहरण के लिए मन्त्रिमण्डल सामूहिक रूप से लोकसदन (कामन सभा) के प्रति उत्तरदायी है और प्रधानमन्त्री को सम्राट को कहकर लोकसदन को भंग करने का अधिकार प्राप्त है। इसी तरह संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित किसी भी विधेयक पर सम्राट के हस्ताक्षर होते हैं, लेकिन सम्राट के साथ-साथ उस विधेयक पर जब किसी मन्त्री के हस्ताक्षर हों, तभी वह विधेयक मान्य हो सकता है। इस तरह सरकार का प्रत्येक अंग एक दूसरे पर कुछ-न-कुछ नियन्त्रण स्थापित करता है।

(19) सिद्धान्त व व्यवहार में अन्तर (Difference between Theory and Practice) :- ब्रिटेन के संविधान की प्रमुख विशेषता उसके सिद्धात व व्यवहार में अन्तर का पाया जाना है। मुनरो ने लिखा है- "ब्रिटेन में कोई बात जैसे दिखाई देती है, वैसी नहीं है और जैसी है वैसी दिखाई नहीं देती।" ऑग व रिक न भी ब्रिटिश संविधान में सिद्धान्त व व्यवहार में पर्याप्त भेद माना है। सिद्धान्त में तो ब्रिटेन में राजतन्त्र है, लेकिन व्यवहार में राजा की शक्तियों पर मन्त्रिमण्डल का नियन्त्रण है। राजा अपनी शक्तियों का प्रयोग मन्त्रिमण्डल की सलाह से ही करता है। ब्रिटेन में राजा की शक्तियां ताज की शक्तियां हैं। सिद्धान्त में तो वहा संसद सर्वोच्च है, लेकिन व्यवहार में उस पर मन्त्रिमण्डल का नियन्त्रण रहता है। सिद्धान्त में तो वहां लार्ड सभा के पास सर्वोच्च शक्ति है, लेकिन व्यवहार में न्याय सम्बन्धी समस्त कार्य कानूनी लार्डों द्वारा ही किये जाते हैं। सिद्धान्त में ब्रिटेन में शक्तियों का पृथक्करण है, लेकिन व्यवहार में कार्यपालिका तथा विधायिका में घनिष्ट सम्बन्ध रहता है। इसी तरह के अन्य कई उदाहरण ब्रिटिश संविधान मे मिल जाते हैं जो वहां सिद्धान्त और व्यवहार में अन्तर स्पष्ट करते हैं।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि ब्रिटेन में संविधान अलिखित तथा पर्याप्त लचीला है। कानून का शासन तथा संसदीय सर्वोच्चता का अनूठा मिश्रण ब्रिटिश संविधान को विचित्रता का गुण प्रदान करते हैं। ब्रिटिश संविधान में राजतन्त्र तथा प्रजातन्त्र का अनूठा संगम देखने को मिलता है। ब्रिटिश संविधान को विश्व का सबसे प्राचीन संविधान होने का गौरव प्राप्त है तो वहां की संसद संसदीय शासन-प्रणालियों की जननी है। आज ब्रिटेन में सिद्धान्त और व्यवहार में काफी अन्तर पाया जाता है, लेकिन फिर भी ब्रिटिश संविधान को विश्व का सर्वाधिक प्रजातन्त्रीय और विकासशील संविधान माना जाता है। जितना लम्बा अतीत का गौरवमय इतिहास ब्रिटिश संविधान समेटे हुए है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

अमेरिका के संविधान की विशेषताएं

(Features of the American Constitution)

अमेरिका का संविधान एक संघात्मक संविधान है जो 1787 के फिलाडेल्फिया सम्मेलन की उपज है। अमेरिकन संविधान में फ्रांस की तरह शक्तियों के पृथक्करण का सिद्धान्त अपनाया गया है, लेकिन फिर भी उसे विरोध व सन्तुलन के सिद्धान्त के द्वारा संघात्मक शासन प्रणाली को सफल बनाने का सुन्दर प्रयास किया गया है। इस संविधान की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं :-

(1) लिखित संविधान (Written Constitution) :- अमेरिकन संविधान आधुनिक युग का एक प्राचीनतम लिखित और निर्मित संविधान है। भारत, चीन, स्विस आदि देशों के संविधान उससे बाद के हैं। इसका निर्माण 1787 के फिलाडेल्फिया सम्मेलन द्वारा गठित महासभा द्वारा किया गया था। इसमें शासन के मूल सिद्धान्तों, शासन के अंगों व कार्यों, नागरिक अधिकारों की स्पष्ट व्याख्या की गई है। इसमें ब्रिटिश संविधान की तरह परम्पराओं तथा अभिसमयों को भी मान्यता मिली हुई है। ये परम्पराएं व अभिसमय मन्त्रिमण्डलीय व्यवस्था, राष्ट्रपति का प्रत्यक्ष चुनाव, दलीय व्यवस्था का महत्व, स्पीकर के अधिकार आदि रूपों में है। इस तरह उसका कुछ भाग अलिखित व विकसित भी है।

(2) संक्षिप्त संविधान (Short Constitution) :- अमेरिकन संविधान विश्व के सभी लिखित संविधानों में सबसे संक्षिप्त है। इसमें कुल चार हजार शब्द हैं और बारह पृष्ठों वाला यह संविधान आधे घण्टे में पढ़ा जा सकता है। इसमें केवल 7 अनुच्छेद हैं। इसके विपरीत भारत के संविधान में 395, आस्ट्रेलिया के संविधान में 128 तथा दक्षिण अफ्रीका के संविधान में 153 अनुच्छेद हैं। इस तरह यह विश्व में सबसे संक्षिप्त या छोटा संविधान है।

(3) कठोर संविधान (Rigid Constitution) :- अमरीका का संविधान अपरिवर्तनशील है। इसमें ब्रिटेन की तरह साधारण विधि से संशोधन नहीं किया जा सकता। इसमें संशोधन करने के लिए कांग्रेस के दोनों सदनों के साथ-साथ राज्यों के विधानमण्डलों को भी अनुमति लेनी पड़ती है। इसकी कठोरता का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि विगत 225 वर्षों में इसमें केवल 27 संशोधन ही हो पाए हैं, जबकि भारत के संविधान में मात्र 55 वर्ष में लगभग 100 संशोधन हो चुके हैं।

(4) निर्मित संविधान (Enacted Constitution) :- अमेरिकन संविधान ब्रिटिश संविधान की तरह विकसित संविधान ही हैं बल्कि यह विशेष अवसर पर संविधान सभा द्वारा भारतीय संविधान की तरह निर्मित संविधान है। इसकी रचना 1787 के फिलाडेल्फिया सम्मेलन द्वारा गठित संविधान सभा द्वारा की गई है। इसमें कांग्रेस के व्यवस्थापन, संविधान में संशोधन

तथा न्यायिक निर्णयों द्वारा विकास के गुण भी आ गए हैं। इस तरह इसका कुछ भाग विकसित भी है।

(5) मौलिक अधिकारों व स्वतन्त्रताओं की व्यवस्था (Provision for Fundamental Rights and Liberties) :- अमेरिकन संविधान में नागरिकों को कुछ मौलिक अधिकार व स्वतन्त्रताए प्रदान की गई हैं, जिनका उल्लंघन करने का अधिकार किसी को प्राप्त नहीं है। यदि कोई व्यक्ति उन अधिकारों व स्वतन्त्रताओं का अतिक्रमण करता है तो न्यायपालिका द्वारा उसे दण्डित किया जाता है। अमेरिकन न्यायालयों को मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिए बन्दी प्रत्यक्षीकरण, अधिकार पृच्छा, निषेधाज्ञा जैसे लेख जारी करने का अधिकार है। यद्यपि युद्धकाल या विशेष परिस्थितियों में इन अधिकारों को सीमित अवश्य किया जा सकता है, लेकिन इनका स्थायी स्थगन या समापन नहीं हो सकता।

(6) न्यायिक सर्वोच्चता (Judicial Supremacy) :- अमेरिकन संविधान न्यायिक सर्वोच्चता का सिद्धान्त प्रतिपादित करता है। संविधान ने सर्वोच्च न्यायाल को न्यायिक पुनरावलोकन (Judicial Review) को जो शक्ति दी है, उसका प्रयोग वह विधायिका तथा कार्यपालिका द्वारा निर्मित कानूनों की संवैधानिकता जांचने के लिए कर सकता है। यदि कोई कानून संविधान की आत्मा के विरुद्ध हो तो वह उसे अवैध घोषित कर सकता है।

(7) संविधान की सर्वोच्चता (Supremacy of the Constitution) :- अमेरिक संविधान देश का सर्वोच्च व मौलिक कानून है। राष्ट्रपति, कांग्रेस तथा सर्वोच्च न्यायालय सभी संविधान के अधीन हैं। संविधान के अनुच्छेद 6 के अन्तर्गत लिखा गया है कि "संविधान और उसके अनुसार निर्मित सभी कानून तथा संयुक्त राज्य अमेरिका के सभी प्राधिकार के अधीन की गई समस्त सन्धियां व समझौते, देश का सर्वोच्च कानून होंगे और प्रत्येक राज्य में न्यायधीश उसका पालन करने के लिए बाध्य होंगे। जो बात संविधान के विरुद्ध होगी, उसे अवैध माना जाएगा।" इस तरह संविधान ही अमेरिका का सबसे बड़ा कानून है और सभी व्यक्ति और संस्थाएं उसके अधीन हैं।

(8) अध्यक्षात्मक कार्यपालिका (Presidential Executive) :- अमेरिका में अध्यक्षात्मक शासन-प्रणाली अपनाई गई है। वहा राष्ट्रपति ही देश का वास्तविक शासक है। ब्रिटेन की तरह वहां नाममात्र और वास्तविक कार्यपालिका में भेद नहीं किया गया है। कार्यपालिका पर विधायिका का कोई नियन्त्रण नहीं है। राष्ट्रपति का निर्वाचन 4 वर्ष के लिए होता है और वह अपने उत्तरदायित्वों का वहन करते समय कांग्रेस के प्रति उत्तरदायी नहीं है।

(9) संघात्मक शासन प्रणाली (Federal Form of Government) :- अमेरिका की शासन व्यवस्था संघात्मक है। संविधान द्वारा शासन की शक्तियों का बंटवारा केन्द्र व राज्यों के बीच किया गया है। राष्ट्रीय महत्व के विषय पर केन्द्र सरकार को तथा स्थानीय विषयों पर राज्य सरकारों को कानून बनाने का अधिकार दिया गया है। आज तक अमेरिकन संघ का व्यवहार में कोई कठिनाई अनुभव नहीं हुई है। केन्द्र सरकार तथा सभी 50 राज्यों में आपसी सहयोग की भावना ने वहा संघात्मक शासन प्रणाली को सफल बनाया हैं वहां अवशिष्ट शक्तियां भी राज्यों को ही प्राप्त हैं। परन्तु धीरे-धीरे शक्तियों का झुकाव केन्द्र की तरफ बढ़ रहा है।

(10) लोकप्रिय सम्प्रभुता (Popular Sovereignty) :- अमेरिका के संविधान में सम्प्रभुता जनता में निहित मानी गई है। अमेरिकन संविधान की प्रस्तावना जन-प्रभुसत्ता का सिद्धान्त स्थापित करती है। अमेरिकन स्वतन्त्रता के घोषणा पत्र में स्पष्ट लिखा हुआ है कि सरकारें अपनी उचित शक्तियां जनता की अनुमति से प्राप्त करती हैं। इसी कारण वहा कार्यपालिका तथा विधायिका को जनादेश का सम्मान अवश्य करना पड़ता है। चुनाव वह अस्त्र है जो जनता को सम्प्रभु बना देता है।

(11) शक्तियों का पृथक्करण (Separation of Powers) :- अमेरिका में पहले तो शक्तियों का विभाजन केन्द्र व राज्य सरकारों के बीच किया गया है। उसके बाद केन्द्र सरकार की शक्तियां भी कार्यपालिका, विधायिका तथा न्यायपालिका को सौंप दी गई हैं। शक्तियों का यह विभाजन सरकार को निरंकुश बनने से रोकने में काफी सहायक सिद्ध हुआ है। इस सिद्धान्त के अनुसार सरकार का कोई भी अंग निर्धारित सीमा का उल्लंघन नहीं कर सकता। अमेरिका में विधायी शक्तियां कांग्रेस को, कार्यपालक शक्तियां तथा राष्ट्रपति को तथा न्यायिक शक्तियां सर्वोच्च न्यायालय को सौंपकर इस सिद्धान्त का पालन किया गया है।

(12) निरोध व सन्तुलन का सिद्धान्त (Principle of Checks and Balances) :- अमेरिका में सिद्धान्त तार पर तो शक्तियों का विभाजन कर दिया गया है, लेकिन व्यवहार में वहां निरोध व सन्तुलन का सिद्धान्त भी लागू हुआ है। यदि वहां शक्तियां

के पृथक्करण को पूरी तरह लागू कर दिया जाता तो प्रत्येक शक्ति अपने अधिकारों का दुरुपयोग कर सकती है। इसलिए सरकार के प्रत्येक अंग की अपनी क्षेत्र में निरंकुशता रोकने के लिए इस सिद्धान्त का प्रयोग हुआ है। उदाहरण के लिए देश के समस्त उच्च पदों पर नियुक्तियां तो राष्ट्रपति ही करता है, लेकिन उन पर उसे सीनेट का अनुसमर्थन प्राप्त करना जरूरी है, अन्यथा वे नियुक्तियां अवैध मानी जायेंगी। इसी तरह किसी विधेयक पर अपनी वीटो शक्ति का प्रयोग करके राष्ट्रपति कांग्रेस पर दबाव बना सकता है। एक तरफ तो न्यायपालिका को स्वतन्त्र बनाया गया है, लेकिन दूसरी तरफ न्यायधीशों को हटाने का अधिकार कांग्रेस व राष्ट्रपति को दे दिया है।

(13) प्रतिनिधि सरकार (Representative Government) :- अमेरिका में प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र की जगह अप्रत्यक्ष प्रजातन्त्र अपनाया गया है। इसे प्रतिनिधि प्रजातन्त्र भी कहा जाता है। अमेरिका में केन्द्र तथा राज्यों का शासन चुने हुए प्रतिनिधियों द्वारा चलाया जाता है।

(14) सीमित सरकार (Limited Government) :- अमेरिका में सरकार को निरंकुश शक्तियां प्राप्त नहीं हैं। उसकी शक्तियों का विभाजन किया गया है। उन शक्तियों पर संविधान व न्यायपालिका का नियन्त्रण स्थापित किया गया है। कोई भी सरकार अपनी मनमानी नहीं कर सकती। उसे संविधान की मर्यादा का निर्वहन करना पड़ता है। संविधान में वर्णित अधिकारों पर भी सरकार का कोई अन्य शक्ति प्रतिबन्ध नही लगा सकती। मुनरो का कहना है कि अमेरिका का संविधान प्रतिबन्धों पर आधारित सीमित सरकार की सुन्दर व्यवस्था स्थापित करता है।

(15) दोहरी नागरिकता (Duel Citizenship) :- अमेरिका के संविधान में दोहरी नागरिकता का प्रावधान किया गया है। वहां प्रत्येक नागरिक सम्बन्धित राज्य का नागरिक होने के साथ-साथ देश का नागरिक भी होता है। दोहरी नागरिकता के कारण वहां पृथकतावाद की भावना का विकास नहीं होता।

(16) लूट-प्रणाली (Spoil System) :- अमेरिकन संविधान में लूट प्रथा का प्रावधान है। इस प्रथा के तहत अमेरिकन राष्ट्रपति को यह अधिकार है कि वह लोकसेवकों को हटाकर उनके स्थान पर अपने चहेतों को बिठा सकता है। इस प्रथा का प्रारम्भ राष्ट्रपति एण्ड्रयू जैकसन ने किया था और यह प्रथा लम्बे समय तक अमेरिकी राजनीतिक जीवन में काले बादल की तरह छायी रही। लेकिन कांग्रेस ने 'Pendention Pact' लागू करके इस प्रथा का अन्त कर दिया। परन्तु इस प्रथा के अवशेष आज भी वहां मौजूद है। अब 10 प्रतिशत पदों पर ही राष्ट्रपति अपने समर्थकों को नियुक्त कर सकता है।

(17) द्वितीय सदन में राज्यों का समान प्रतिनिधित्व (Equal Participation of States in Second Chamber) :- अमेरिका में कांग्रेस के निम्न सदन 'प्रतिनिधि सभा' में सभी राज्यों को समान प्रतिनिधित्व दिया गया है चाहे उनकी आकार व जनसंख्या कितनी ही हो। कम या अधिक जनसंख्या होने का प्रतिनिधित्व पर कोई असर नहीं पड़ता।

(18) गणतन्त्रीय सरकार (Republican Government) :- अमेरिका का संविधान लोकतन्त्रीय होने के साथ-साथ गणतन्त्रीय भी है। इसमें ब्रिटेन की तरह पैतृक सिद्धान्त को नही अपनाया गया है। गणतन्त्र की प्रमुख विशेषता होती है कि उसमें राष्ट्राध्यक्ष जनता द्वारा निर्वाचित व्यक्ति होता है। इसी तरह अमेरिका में भी राष्ट्रपति जनता द्वारा निर्वाचित होता है। अतः अमेरिका में गणतंन्त्रीय सरकार की व्यवस्था है।

(19) अन्य विशेषतायें (Miscellaneous Features) :- उपरोक्त विशेषताओं के अतिरिक्त भी अमेरिकन संविधान की कुछ अन्य विशेषतायें भी हैं। प्रथम अमेरिका में ब्रिटेन की तरह प्रथाओं व अभिसमयों ने भी संविधान का विकास किया है। जैसे राजनीतिक दलों का विकास प्रथाओं पर आधारित है। दूसरी बात यह है कि वहां अन्य देशों की बजाय दूसरा सदन (सीनेट) अधिक शक्तिशाली है। तीसरी बात यह है कि वहां प्रत्येक राज्य का अपना संविधान है। चौथी बात यह है कि वहां कानून की उचित प्रक्रिया को अपनाया गया है। पाँचवीं विशेषता यह है कि वहां ब्रिटेन व भारत की तरह द्विसदीय विधामण्डल है और इसी तरह द्वि-दलीय प्रणाली भी है।

स्विस-संविधान की विशेषताएं

(Features of the Swiss-Constitution)

स्विस शासन प्रणाली प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र का घर है। वहां पर अमेरिका की तरह न तो अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली है और न ही ब्रिटेन की तरह संसदात्मक शासन प्रणाली है, बल्कि दोनों का संयोग है। स्विट्जरलैण्ड का वर्तमान संविधान 1820 में निर्मित

संविधान का 1874 में संशोधित रूप को समेटे हुए हैं। इस संविधान की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं :-

(1) लिखित संविधान (Written Constitution) :- स्विस संविधान भारत तथा अमेरिका की तरह लिखित संविधान है। इसमें 123 धाराएं तथा 3 अध्याय हैं। इसमें राज्य-जीवन के मूल सिद्धान्त, नियम, अधिकार व कर्तव्य, सरकार के संगठन व कार्य लिपिबद्ध हैं। लिखित संविधान होने के बावजूद भी इसका कुछ भाग विकसित भी हुआ है।

(2) निर्मित संविधान (Enacted Constitution) :- स्विस संविधान ब्रिटिश संविधान की तरह विकास का परिणाम है। इसे तो संविधान आयोग ने बनाया है जिसमें 14 सदस्य थे। आयोग ने 17 फरवरी 1848 से 8 अप्रैल 1848 तक निरन्तर विचार-विमर्श द्वारा इस संविधान की रचना की और उसके बाद यह स्विस राज्य-मण्डल की डाइट द्वारा स्वीकृत हुआ। 1874 में संविधान में संशोधन हुए और इसका निर्मित रूप और अधिक आधुनिक बनाया गया।

(3) कठोर संविधान (Rigid Constitution) :- स्विस संविधान एक दुष्परिवर्तनशील संविधान है। इस संविधान में सरलता से संशोधन नहीं हो सकता। स्विटजरलैण्ड में साधारण कानून बनाने तथा संविधान में संशोधन करने की प्रक्रिया में अन्तर है। स्विट्जरलैण्ड में संविधान में परिवर्तन जनता, कैण्टनों तथा संघीय सरकार द्वारा मिलकर ही किया जा सकता है। संशोधन की यह विधि इतनी जटिल व लम्बी है कि इसमें आसानी से संशोधन नहीं हो सकता। इसी कारण पिछले 1[illegible] वर्षों में इसमें केवल 57 संशोधन ही हुए हैं। परन्तु अमेरिका की तुलना में यह कम कठोर है।

(4) गतिशील संविधान (Dynamic Constitution) :- स्विस संविधान में गतिशीलता का गुण है। यह समयानुसार स्वयं को परिवर्तित करता रहा है। इसने अपने में से अनावश्यक तत्वों को बाहर निकाला है और आवश्यक तत्वों को ग्रहण भी किया है। 1877, 1908 तथा 1920 के अधिनियमों ने औद्योगिक शोषण का अन्त करके आर्थिक उदारवाद की स्थापना की है। 1885 तथा 1930 के नशाबन्दी अधिनियमों ने व्यक्ति के स्वास्थ्य व सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था की है। इस तरह के अनेक अधिनियमों द्वारा स्विस संविधान अधिक गतिशील बन चुका है और उसकी गतिशीलता जारी है

(5) संघीय विधायिका (Federal Legislature) :- स्विस संविधान में संघीय विधानमण्डल की व्यवस्था है। इसमें विधानमण्डल के दो सदन - राज्य सभा (उच्च सदन) तथा राष्ट्रीय परिषद (निम्न सदन) हैं। राज्य सभा तो कैण्टनों का प्रतिनिधित्व करती है, जबकि राष्ट्रीय परिषद आम जनता का प्रतिनिधित्व करती है, जबकि राष्ट्रीय परिषद आम जनता का प्रतिनिधित्व करती है।

(6) बहुल कार्यपालिका (Plural Executive) :- स्विट्जरलैण्ड में अमेरिका तथा भारत की तरह एकल कार्यपालिका नहीं है। वहां कार्यपालिका की शक्तियां किसी व्यक्ति विशेष के पास नहीं हैं। वहां तो एक बहुल कार्यपालिका के रूप में संघीय परिषद है जिसके सदस्यों का चुनाव 4 वर्ष के लिए विधान सभा या संघीय सभा द्वारा किया जाता है। परिषद ही वास्तविक कार्यपालिका होती है। इसमें अध्यक्ष तथा अन्य सदस्यों में समान स्तर की शक्तियां व महत्व होता है। यह परिषद ही प्रधान कार्यपालिका तथा देश का सर्वोच्च शासक है। राष्ट्र की समस्त कार्यपालक शक्तियां इसी के पास हैं।

(7) मौलिक अधिकार (Fundamental Rights) :- स्विस संविधान में भारत तथा अमेरिका की तरह संविधान के मूल रूप में मौलिक अधिकारों की व्यवस्था तो नहीं है, अर्थात् कहीं भी संविधान में औपचारिक अधिकार पत्र नहीं है। परन्तु संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों में इधर-उधर मौलिक अधिकारों की व्यवस्था अवश्य है। अनुच्छेद 4 के अनुसार सभी नागरिक कानून की नजर में समान हैं। स्विस संविधान का अनुच्छेद 31 व्यवसाय से तथा अनुच्छेद 49 धार्मिक स्वतन्त्रता से सम्बन्धित है। अनुच्छेद 56 भी समुदाय बनाने की स्वतन्त्रता देता है। अधिकारों के साथ-साथ संविधान में कर्तव्यों का भी वर्णन किया गया है। यदि किसी नागरिक के अधिकारों व स्वतन्त्रताओं का हनन होता हो तो वह संघीय न्यायाधिकरण की शरण ले सकता है।

(8) प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र (Direct Democracy) :- स्विस संविधान में स्विट्जरलैण्ड को प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र घोषित किया गया है। इसमें जनता शासन के प्रत्येक कार्य में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अवश्य भाग लेती है। वहां कैण्टनों से अधिक महत्व कम्यूनों का है। वहां 20 वर्ष की आयु वाले सभी स्त्री-पुरुषों को मताधिकार प्रदान किया गया है। वहां Referendum, Initiative तथा Recall जैसी व्यवस्थाएं जनता को सम्प्रभु बना देती है। जनता को किसी भी विधि को प्रस्तावित करने, पारित करने तथा अपने प्रतिनिधियों को पद से हटाने का अधिकार प्राप्त है। इसी कारण स्विट्जरलैण्ड को प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र का घर कहा जाता है। जुर्चर ने लिखा है कि-"विगत वर्षों में स्विट्जरलैण्ड तथा लोकतन्त्र प्रायः समानार्थी

बन गये हैं।"

(9) संसदीय तथा अध्यक्षात्मक शासन प्रणालियों का समन्वय (Integration of Parliamentary and Presidential Systems of Government) :- स्विट्जरलैण्ड में संसदीय शासन प्रणाली के साथ अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली को भी ग्रहण किया गया है। स्ट्रांग ने लिखा है-"संसार में स्विस व्यवस्थापिका ही ऐसी व्यवस्थापिका है जिसके दोनों सदनों में कोई महत्वपूर्ण भेद नहीं है।" स्विट्जरलैण्ड में शासन का प्रमुख प्रधानमन्त्री भी है और राष्ट्रपति भी। दोनों ही वास्तविक शासक भी हैं और नाममात्र भी। स्विस कार्यपालिका संसद से ली जाती है और संसद की कार्यवाही में भाग भी लेती है तथा उसके प्रति उत्तरदायी भी होती है, लेकिन संसद में अविश्वास मत पास हो जाने पर उसे त्यागपत्र नहीं देना पड़ता। वहां सामूहिक उत्तरदायित्व की भावना होने के बावजूद भी मन्त्रियों को अपना पद नहीं छोड़ना पड़ता। वहां दोनों सदनों के अधिकार बराबर हैं और शक्तियों के पृथक्करण का अभाव है।

(10) संघात्मक शासन प्रणाली (Federal Form of Government) :- स्विट्जरलैण्ड में 25 कैण्टन (19 पूर्ण तथा 6 अर्द्ध) हैं। अमेरिका की तरह वहां प्रत्येक कण्टन का अपना अलग संविधान है, नागरिकता के नियम हैं और उनकी अपनी विधियां, प्रथाएं, इतिहास व विचार हैं। स्विस संविधान में शक्तियों का विभाजन केन्द्र तथा इकाईयों के बीच में किया गया है। वहां द्विसदीय विधानमण्डल है, जिसमें एक सदन राज्यों को समान प्रतिनिधित्व प्रदान करता है। इसी कारण के०सी० व्हीयर ने स्विस संविधान को संघीय संविधान कहा है। वहां अमेरिका की तरह दोहरी नागरिकता भी है।

(11) संघीय न्यायमण्डल (Federal Tribunal) :- स्विस संविधान में भी अमेरिका की तरह सर्वोच्च न्यायालय की व्यवस्था है। वहां सर्वोच्च न्यायालय को संघीय न्यायाधिकरण कहा जाता है। स्विस न्यायालय अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय की तरह न्यायिक पुनरावलोकन का अधिकार नहीं रखता है। इस संविधान के निर्वाचन का अधिकार प्राप्त नहीं है।

(12) विभिन्नता में एकता का प्रतीक (Symbol of Unity in Diversity) :- स्विस संविधान विभिन्नता में एकता स्थापित करता है। स्विट्जरलैण्ड में विभिन्न धर्मों, जातियों, भाषाओं के लोग रहते हैं, लेकिन जनता राष्ट्रीयता की भावना के प्रति ही लगाव व्यक्त करती है। स्विट्जरलैण्ड में कभी भी धर्म व जाति के आधार पर कोई झगड़ा नहीं हुआ है। इसी कारण वहां धर्म व जाति के आधार पर कोई झगड़ा नहीं हुआ है। इसी कारण वहां धर्म, जाति व भाषा को राष्ट्रीयता में बाधक नहीं माना जाता है।

(13) प्रशासकीय कानून (Administrative Law) :- स्विस संविधान फ्रांस की तरह प्रशासकीय कानून व न्याय की व्यवस्था करता है। वह आम जनता तथा नौकरशाहों के विरुद्ध शिकायतें सुनने के लिए अलग-अलग न्यायिक व्यवस्थाएं हैं। वहां प्रशासकीय कानून नागरिक अधिकारों व स्वतन्त्रताओं की रक्षा के लिये ही है।

(14) अन्य विशेषतायें (Miscellaneous Features) :- स्विस संविधान कई अन्य अनूठी विशेषतायें भी लिये हुये है। प्रथम, संविधान उदारवादी दर्शन के प्रभाव के कारण समाजवाद की दिशा में अग्रसर हो रहा है। द्वितीय, स्विस न्यायपालिका के पास न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति नहीं है। तृतीय स्विट्जरलैण्ड में शक्ति-पृथक्करण के सिद्धान्त का अभाव है, चतुर्थ, स्विस संविधान धर्म-निरपेक्ष राज्य के विचार का समर्थन करता है, पञ्चम स्विट्जरलैण्ड विश्व में सबसे प्राचीन गणराज्य है। छठी, स्विस संविधान जर्मन, फ्रेंच, इटालियन तथा रोमन चार राष्ट्र भाषाएं घोषित करता है। सप्तम स्विस संविधान एक लम्बा प्रलेख भी है। इसमें 133 धाराएं हैं। अष्टम, स्विस संविधान में नीति-निर्देशक सिद्धान्तों का अभाव है। नाम स्विट्जरलैण्ड में संविधान की बजाय संसद की सर्वोच्चता है, क्योंकि वहां न्यायपालिका संघ की संसद की किसी भी विधि को अवैध नहीं ठहरा सकती।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि स्विस संविधान संसदीय तथा अध्यक्षात्मक शासन प्रणालियों का संयोग है। यह संघात्मक शासन प्रणाली के गुण भी रखता है। यह स्विट्जरलैण्ड को प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र घोषित करता है। अपनी मौलिक तथा अनूठी विशेषताओं के कारण आज स्विस संविधान विश्व के उदारवादी प्रजातंत्रीय देशों के लिए एक आदर्श प्रस्तुत करता है।

चीनी संविधान की विशेषताएं

(Features of the Chinese Constitution)

चीन एक साम्यवादी देश है। 1949 में स्वतन्त्रता प्राप्त करने के बाद इसने अपना प्रथम संविधान 1954 में लागू किया, लेकिन

वह संविधान उसने 1975 में बदल डाला और उसके बाद भी उसने 1975 के संविधान को बदल कर 1978 में नया संविधान बनाया। यह संविधान भी उसने 1982 में बदल दिया। आज चीन में 1982 में निर्मित संविधान ही लागू है। चीन में समय-समय पर देश व समाज की बदलती हुई परिस्थितियों के अनुरूप संविधान में आवश्यक परिवर्तन किये गए हैं। चीन का वर्तमान संविधान चीनी समाज के मूल्यों व प्रतिबद्धताओं का पुंज है जो साम्यवादी व्यवस्था की सभी आधारभूत विशेषतायें व सिद्धान्त समेटे हुए हैं। इस संविधान की प्रमुख विशेषतायें निम्नलिखित हैं :-

(1) लिखित संविधान (Written Constitution) :- चीन का वर्तमान संविधान लिखित संविधान है और इस संविधान सभा ने बनाया है। इस संविधान में 138 अनुच्छेद है और समस्त संविधान चार भागों में बंटा हुआ है। प्रथम अध्याय का सम्बन्ध संविधान के साधारण सिद्धान्तों, दूसरे का मालिक अधिकारों व कर्तव्यों, तीसरे का राज्य संरचना या सरकार के अंगों के संगठन तथा चौथे का सम्बन्ध राष्ट्रीय प्रतीकों से है। इसमें संविधान की प्रस्तावना का भी अलग से वर्णन है।

(2) लचीला संविधान (Flexible Constiution) :- चीन के संविधान की धारा 64 में संशोधन प्रक्रिया का उल्लेख है। इस प्रक्रिया के अनुसार संविधान में संशोधन का प्रस्ताव राष्ट्रीय जन कांग्रेस की स्थायी समिति द्वारा या स्वयं जन कांग्रेस व 115 सदस्यों के द्वारा प्रस्तावित होना चाहिये तथा यह प्रस्ताव राष्ट्रीय जन कांग्रेस के 2/3 बहुमत से स्वीकृत होना चाहिए। चीन में एकात्मक शासन प्रणाली होने के कारण 2/3 बहुमत प्राप्त करना कोई कठिन काम नहीं है। प्रायः सभी संशोधन आसानी से हो जाते हैं। इसी कारण चीनी संविधान को लचीला संविधान कहा जाता है।

(3) एकात्मक शासन प्रणाली (Unitary Form of Government) :- यद्यपि चीन एक विशाल जनसंख्या वाला देश है, लेकिन फिर भी वहां संघात्मक शासन प्रणाली के स्थान पर एकात्मक शासन प्रणाली अपनाई गई है। वहां शक्तियों का बंटवारा केन्द्र व इकाईयों में नहीं है। शासन संचालन की दृष्टि से सम्पूर्ण देश को 3 भागों में बांटकर भी उन पर केन्द्र का ही नियन्त्रण रखा गया है। वहां किसी इकाई का कोई स्वतन्त्र संवैधानिक अस्तित्व नहीं है। इकाईयां केवल उन्हीं शक्तियों का प्रयोग कर सकती है जो संविधान या राष्ट्रीय सरकार ने उन्हें सौंपी है। राष्ट्रीय सरकार को यह पूरा अधिकार है कि वह जब चाहे किसी इकाई की रचना में परिवर्तन कर सकती है, संशोधन कर सकती है या उन्हें समाप्त कर सकती है।

(4) एक सदनीय विधानमण्डल (Unicameral Legislature) :- चीन में भारत ब्रिटेन तथा अमेरिका की तरह द्वि सदनीय विधायिका की व्यवस्था नहीं है, बल्कि एक सदनीय विधायिका ही है जिसे राष्ट्रीय जन कांग्रेस कहा जाता है। इसका कार्यकाल 5 वर्ष है।

(5) लोकतन्त्रीय केन्द्रवाद (Democratic Centralism) :- चीनी संविधान के अनुच्छेद 3 में लोकतन्त्रीय केन्द्रवाद के सिद्धान्त अपनाया गया है। इस सिद्धान्त का अर्थ यह है कि शासन की प्रत्येक निम्न इकाई अपने से ऊपर की इकाई या शक्ति के अधीन है। इसमें शासन के निचले अंग अपने से ऊंचे अंगों का चुनाव करते हैं और उन्हीं के आदेशों का पालन करते हैं। चीन में स्थानीय, क्षेत्रीय, प्रांतीय और राष्ट्रीय स्तर की जन कांग्रेसों का गठन किया गया है। इनमें निचली जन कांग्रेस अपने से ऊंची जन कांग्रेस का चुनाव करके उसी के नेतृत्व में कार्य करती है। इसमें राष्ट्रीय जन कांग्रेस सबसे सर्वोच्च शक्ति है जिसकी अपनी स्थायी समिति है और वह भी स्वयं इस समिति के अधीन है।

(6) जनवादी लोकतन्त्रीय अधिनायकवाद (People's Democratic Dictatorship) :- चीनी संविधान की प्रस्तावना व अनुच्छेद 1 में ही स्पष्ट कहा गया है कि चीनी संविधान जनवादी लोकतन्त्रीय अधिनायकतन्त्र की स्थापना करता है। यह जनवादी तानाशाही का नेतृत्व मजदूर वर्ग तथा कृषक वर्ग करता है जो अटूट मैत्री पर आधारित है। यही चीनी प्रजातन्त्रीय व्यवस्था का आधार है।

(7) समाजवादी लोकतन्त्र (Socialist Democracy) :- चीनी संविधान समाजवादी लोकतन्त्र की स्थापना करता है। इसके अनुच्छेद 2 में कहा गया है कि राज्य की समस्त सत्ता जनता के हाथों में केन्द्रित है। विधायिका के हर स्तर पर किसान, मजदूरों और साधारण जनता को प्रतिनिधित्व प्राप्त है तथा आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक गतिविधियों पर जनता का ही नियन्त्रण है। चीन में समाजवादी अर्थव्यवस्था के सिद्धान्त को अपनाते हुए जनता की सम्प्रभुता भी स्थापित की गई है।

(8) बहुराष्ट्रीय राज्य की स्थापना (Establishment of the Multy-National State) :- चीन एक बहुराष्ट्रीय राज्य है

जिसमें 56 राष्ट्र जातियां रहती हैं। इन राष्ट्र-जातियों को अपनी-अपनी भाषा, लिपि एवं संस्कृति की रक्षा करने का अधिकार है और वित्तीय मामलों में भी कुछ स्वतन्त्रता प्राप्त है। इन सभी राष्ट्रजातियों में समानता, एकता और परस्पर सहयोग का सम्बन्ध कायम किया गया है। कोई भी राष्ट्र-जाति राष्ट्रीयता या राष्ट्रवाद के प्रति अहंकार नहीं कर सकती। वास्तव में चीन में विभिन्नता में एकता का सिद्धान्त स्थापित किया गया है।

(9) नागरिकों के अधिकार व कर्तव्य (**Rights and Duties of Citizens**) :- चीनी संविधान के अनुच्छेद 33 से 50 तक नागरिक अधिकारों की व्यवस्था की गई है और 51 में इन पर प्रतिबन्धों की भी व्यवस्था है। चीनी नागरिकों को चुनाव लड़ने व मत देने का अधिकार धार्मिक विश्वास की स्वतन्त्रता, कानून के समक्ष समानता, आलोचना करने का अधिकार, रोजगार या काम का अधिकार, विश्राम या अवकाश पाने का अधिकार, साहित्य, कला, विज्ञान और संस्कृति के क्षेत्र में अनुसंधान तथा सृजन का अधिकार आदि नागरिक अधिकार प्राप्त हैं। लेकिन व्यवहार में नागरिकों को ये अधिकार साम्यवादी दल के कठोर नियन्त्रण में ही सम्भव है। चीन में अधिकारों की अपेक्षा कर्तव्यों पर अधिक जोर दिया गया है। चीनी संविधान के अनुच्छेद 52 से 56 तक कर्तव्यों का ही वर्णन किया गया है। चीनी नागरिकों को संविधान व कानून का पालन करने, देश की एकता की सुरक्षा करने, कर देने, सैनिक सेवा प्रदान करने आदि के कर्तव्य सौंपे गये हैं।

(10) साम्यवादी दल की सर्वोच्चता (**Supermacy of the Communist Party**) :- चीन में सिद्धान्त में तो चाहे शासन की शक्तियां सरकार के किसी भी अंग को सौंपी गई हों, लेकिन व्यवहार में वहां पर शासन की समस्त शक्तियां साम्यवादी दल में निहित है। चीन में साम्यवादी दल ही लोगों के जीवन का नियन्ता है। चीन में कार्यपालिका, विधायिका तथा न्यायपालिका पर साम्यवादी दल का पूरा नियन्त्रण है। साम्यवादी दल का जीवन के हर पहलू पर नियन्त्रण है। वहां सरकार का प्रत्येक अंग साम्यवादी दल से ही अपनी शक्ति प्राप्त करता है। चीन में समस्त शासकीय व प्रशासकीय नीतियां व कार्यक्रम साम्यवादी दल ही तैयार करता है और उन्हें लागू भी करवाता है।

(11) समाजवादी अर्थ-व्यवस्था (**Socialist Economic System**) :- चीन में समाजवादी अर्थव्यवस्था को स्थापित किया गया है। वहां उत्पादन व वितरण क साधनों पर राज्य का स्वामित्व है। वहां सामूहिक कृषि की जाती है और आय का निश्चित भाग कर के रूप में भी देना पड़ता है। वहां पर सहकारी समितियां हैं जो दस्तकारी, उद्योग, व्यापार, परिवजन आदि पर नियन्त्रण रखती हैं। वहां वितरण की व्यवस्था के बारे में भी संविधान के अनुच्छेद 6 में लिखा है-"प्रत्येक व्यक्ति को अपनी क्षमता के अनुसार कार्य करना होगा और उसे कार्य के अनुसार वेतन मिलेगा।" इस तरह चीनी संविधान समाजवादी अर्थ-व्यवस्था का प्रतिपादन करता है।

(12) सम्पत्ति का अधिकार (**Right to Property**) :- चीनी संविधान के अनुच्छेद 13 में सीमित रूप में निजी सम्पत्ति रखने का भी अधिकार नागरिकों को प्रदान किया गया है। वहां नागरिकों को बचत करने तथा अपनी आवश्यकता की वस्तुओं का संचय करने का अधिकार है। निजी क्षेत्र में छोटे-मोटे उद्योग लगाने की भी छूट नागरिकों को दी गई है। किसान अपनी उपज को बाजार में बेचने के लिए भी स्वतन्त्र है। लोगों को पैतृक सम्पत्ति प्राप्त करने का भी अधिकार प्राप्त है। लेकिन संविधान में इस बात का स्पष्ट उल्लेख किया गया है कि निजि सम्पत्ति का संचय उसी सीमा तक वैध है, जहां तक वह समाजवादी लक्ष्यों के मार्ग में बाधा उत्पन्न न करे।

(13) स्वतन्त्र विदेश नीति (**Independent Foreign Policy**) :- चीनी संविधान की प्रस्तावना में कहा गया है कि चीन पंचशील के आदर्श का पालन करेगा। यह साम्राज्यवाद, प्रमुखवाद और उपनिवेशवाद के किसी भी रूप का विरोध करता है। यह स्वतन्त्र विदेश नीति का पालन करते हुए विश्व के देशों से राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक सम्बन्धों को मजबूत बनाने के लिए कृतसंकल्प है। यह विकासशील देशों की राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था के विकास में सहयोग का इच्छुक है और विश्वशांति के लिए प्रयत्नशील है।

(14) केन्द्रीय सैनिक आयोग की स्थापना (**The Establishment of the Central Military Commission**) :- 1982 के चीनी संविधान में एक केन्द्रीय सैनिक आयोग की स्थापना की गई है। इसके अध्यक्ष व सदस्यों की नियुक्ति व पदच्युति का अधिकार राष्ट्रीय जन कांग्रेस को सौंपा गया है। आयोग का अध्यक्ष सेनाओं का सेनापति होता है, राष्ट्रपति नहीं। सैनिक शक्ति पर आयोग का पूर्ण नियन्त्रण रहता है। इसका कार्यकाल 5 वर्ष है और वह अपने कार्यों के लिये राष्ट्रीय जन-कांग्रेस के प्रति ही उत्तरदायी है।

(15) अन्य विशेषतायें (**Miscellaneous Features**) :- 1982 का चीनी संविधान कुछ अन्य विशेषताएं भी समेटे हुए है। प्रथम, चीन में राष्ट्रपति की भी व्यवस्था है। राष्ट्रपति का कार्य प्रधानमन्त्री व मन्त्रियों की नियुक्ति करना, राष्ट्रीय जन-कांग्रेस द्वारा पारित विधियों को लागू करना, स्थायी समिति के आदेशों का क्रियान्वयन करना, राजदूतों की नियुक्ति व वापसी का आदेश देना, सन्धियों का अनुसमर्थन करना आदि हैं। लेकिन वह सेनाओं का सर्वोच्च सेनापति नहीं है। वह कार्य तो सैनिक आयोग करता है। दूसरी चीन में जन कांग्रेस के उत्तरदायित्वों का वहन करने का कार्य स्थायी समिति को सौंपा गया है। तृतीय, सिद्धान्त तौर पर चीन में संविधान राज्य की मौलिक व सर्वोच्च विधि है। परन्तु व्यवहार में साम्यवादी दल ही सर्वोच्च है। चतुर्थ, चीनी संविधान मार्क्सवाद, लेनिनवाद तथा माओवाद के सिद्धान्तों पर आधारित हैं। पंचम, चीन में न्यायपालिका के पास न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति प्राप्त नहीं है। षष्ठ, चीनी कार्यपालिका की शक्तियां सिद्धान्त रूप में राज्य परिषद के पास हैं जो चीन का मन्त्रिमण्डल है। यह अपने कार्यों के लिए राष्ट्रीय जन कांग्रेस के प्रति उत्तरदायी है। सप्तम, चीनी संविधान जनसमाहर्ताओं या प्राक्यूरेटरों की भी व्यवस्था करता है। ये जनसमाहर्ता न्यायिक कार्य करते हैं। अष्टम, चीनी संविधान में स्त्री-पुरुषों को समान माना गया है।

उपरोक्त विवेचन के बाद कहा जा सकता है कि चीन का संविधान एकात्मक शासन प्रणाली की स्थापना करता है तथा चीन में समाजवादी राज्य व अर्थव्यवस्था पर जोर दिया गया है। सिद्धान्त तौर पर वहां संविधान सर्वोच्च कानून है और सरकार के विभिन्न अंगों में शक्तियों का बंटवारा भी किया गया है, लेकिन व्यवहार में साम्यवादी दल ही चीनी लोगों के जीवन का नियन्ता है। सिद्धान्त में सरकार की जो शक्तियां हैं, व्यवहार में उनका प्रयोग साम्यवादी दल के सदस्यों द्वारा ही किया जाता है। चीन में न्यायपालिका को न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति प्राप्त नहीं है। चीन में नागरिक अधिकारों की बजाय कर्त्तव्यों पर अधिक जोर दिया गया है। सत्य तो यह है कि आधुनिक उदारवाद के दौर में भी चीनी संविधान व्यवहार में साम्यवादी दल की तानाशाही के सिवाय कुछ नहीं है।

--- o ---

अध्याय-6

संविधानिक ढांचा - विधायिका

(Constitutional Structure - Legislature)

आधुनिक युग में विधायिका, विधानमण्डल, व्यवस्थापिका या विधानसभा शासन का प्रमुख अंग हैं। आज सरकार के कार्य इतने अधिक जटिल तथा व्यापक हो गए हैं कि किसी एक व्यक्ति, संस्था या समूह द्वारा शासन संचालन की कल्पना करना बेकार है। इसी कारण सरकार के कार्यों के कुशल संचालन के लिए उसे तीन अंगों में बांटा गया है। इनमें से विधायिका तो कानून निर्माण करती है, कार्यपालिका उन्हें लागू करती है तथा न्यायपालिका संविधान व सरकार की मर्यादा को बनाए रखती है। आज कार्यपालिका और विधायिका के कार्यों में इतना तालमेल हो चुका है कि अमेरिका जैसे देश में शक्ति-पृथक्करण सिद्धान्त के बावजूद भी यह पहचान करना कठिन हो चुका है कि विधायिका और कार्यपालिका के कौन-कौन से कार्य हैं। लोक कल्याणकारी राज्य के विचार को अमली जामा पहनाने के लिए आज विधायिका वित्तीय और प्रशासनिक कार्य भी करने लगी है और कार्यपालिका, विधायिका कानून निर्माण में भी योगदान देती है। आज जनता की भावनाओं को व्यक्त करने और उनकी इच्छानुसार शासन चलाने के लिए यह आवश्यक है कि जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि संसद (विधायिका) के रूप में विधि-निर्माण और नीति-निर्धारण के साथ-साथ कार्यपालिका पर भी अंकुश रखने का प्रयास करें। जो शासन व्यवस्था जन-प्रतिनिधित्व पर आधारित नहीं है तो वह लोकतन्त्र विरोधी है। लेकिन इतना होने के बावजूद भी आज विधायिका उतनी शक्तिशाली नहीं रही जितनी इससे आशा की जाती है। लोकतन्त्रीय देशों में जहां यह जन-इच्छा को अभिव्यक्त करती है, वहीं साम्यवादी देशों में यह साम्यवादी दल के प्रवक्ता के रूप में कार्य करती है।

व्यवस्थापिका का अर्थ और परिभाषा

(Meaning and Definition of Legislature)

साधारण शब्दों में विधायिका या व्यवस्थापिका सरकार का वह अंग है जो कानून निर्माण का कार्य करता है। इसे आमतौर पर संसद के नाम से जाना जाता है। संसद शब्द की उत्पत्ति फ्रेंच शब्द 'Parler' जिसका शाब्दिक अर्थ है-बातचीत करना या बोलना तथा लेटिन शब्द 'Parliamentum' से हुई है। संसद को अंग्रेजी में 'Parliament' कहा जाता है। लेटिन शब्द 'Parliamentum' का प्रयोग भी बातचीत के लिए ही होता रहा है। इस प्रकार संसद शब्द का प्रयोग व्यक्तियों की उस संस्था के लिए प्रयोग किया जाता है जो चर्चा या विचार-विमर्श के लिए एकत्रित हुए हों। आज सरकार के कार्यों के सन्दर्भ में संसद को व्यवस्थापिका या विधायिका का नाम दिया जाता है, जिसका सम्बन्ध कानून निर्माण से है। कुछ विद्वानों ने व्यवस्थापिका को परिभाषित करते हुए कहा है :-

(1) गिलक्राइस्ट के अनुसार- 'विधानमण्डल सरकार की शक्ति का अधिक भाग है, जिसका सरकार के वित्त तथा कानून निर्माण दोनों पर अधिकार होता है।"

(2) एलेन बाल के अनुसार-"विधायिका, कार्यपालिका का परामर्शदात्री निकाय है।"

लेकिन आधुनिक समय में विधायिका कार्यपालिका का परामर्शदात्री निकाय न होकर एक विशेष प्रकार का संगठन है, जिसका शासन-व्यवस्था के संचालन में महत्वपूर्ण कार्य होता है। आधुनिक समय में "व्यवस्थापिका व्यक्तियों का ऐसा सामूहिक संगठन है जो कानून बनाने के अधिकार से युक्त होता है।" आधुनिक समय में व्यवस्थापिका की सही परिभाषा फाईनर ने ही दी है। उसका कहना है कि "विधायिका सरकार का वह अंग है जिसका कार्य जनमत या जनता की इच्छा को कानून निर्माण में लगाना और कार्यपालिका के कार्यों का निर्देशन, निरीक्षण एवं नियन्त्रण करना है।" अतः सार रूप में कहा जा सकता है कि व्यवस्थापिका सरकार का कानून निर्मात्री अंग है जो अध्यक्षात्मक सरकार में तो कार्यपालिका से स्वतन्त्र होता है, लेकिन

संसदीय सरकार में कार्यपालिका पर नियन्त्रण भी रखता है। इस दृष्टि से उसके कार्य कानून निर्माण व कार्यपालिका पर नियन्त्रण रखना, दोनों हैं।

विधायिका या व्यवस्थापिका के कार्य व भूमिका
(Functions and Role of Legislature)

व्यवस्थापिका के कार्य व भूमिका अलग-अलग देशों में अलग-अलग हैं। व्यवस्थापिका के कार्यों का निष्पादन शासन प्रणाली की प्रकृति पर निर्भर करता है। जिन देशों में निरंकुश राजतन्त्र होता है, वहां यह पूर्ण रूप से राज्य के नियन्त्रण में रहकर एक सलाहकार समिति के रूप में कार्य करती है। संसदीय सरकार में विधायिका की स्थिति बहुत मजबूत रहती है। अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली में व्यवस्थापिका के कार्य संविधान द्वारा मर्यादित होते हैं। फाईनर ने व्यवस्थापिका के कार्य-जनता का कानून निर्माण में लगाना और कार्यपालिका के कार्यों का निर्देशन व निरीक्षण करना बताए हैं। व्यवस्थापिका के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हो सकते हैं :-

(1) विधायी या कानून-निर्माण सम्बन्धी कार्य (Legislative Functions) :- आधुनिक समय म आधारभूत संविधानिक कानूनों को छोड़कर शेष सभी तरह के कानून विधानमण्डल या व्यवस्थापिका द्वारा ही बनाए जाते ह। जन इच्छा का प्रतिनिधि होने के नाते जनमत की मांगों व दबावों को कानून का रूप देना विधायिका का प्रमुख कर्तव्य बनता ह। इसी कारण रिनाऊ ने लिखा है-"आधुनिक संसद एक प्रकार के वे कारखाने हैं जिनका कार्य कानून का निर्माण करना ह। यहां जनमत के नाम के कच्चे माल को प्रस्तावों, नीतियों और कानूनों में बदला जाता है।" विधायिका समाज मे शान्ति बनाए रखने तथा नागरिकों के विकास के लिए अनेक प्रकार के कानून बनाती है। देश की बदली हुई परिस्थितियों में पुराने कानूनों में परिवर्तन या उन्हें रद्द भी करती है। संसदीय सरकार में अधिकतर बिल मन्त्रियों के द्वारा विधानपलिका में पेश किए जाते हैं, क्योंकि मन्त्रिमण्उल का संसद में बहुमत होता है। अध्यक्षात्मक सरकार मे मन्त्रियों की बजाय बिलो के बारे में केवल सन्देश राष्ट्रपति ही भेज सकता है। उन्हें स्वीकार करना या न करना विधायिका की मर्जी है। लेकिन विधायिका भी अपनी मर्जी से कानून बनाने को स्वतन्त्र नहीं है। उस पर कुछ संविधानिक प्रतिबन्ध भी हैं। वह संविधान को कानूनी सीमा में रहकर कानूनों का निर्माण कर सकती है। लेकिन स्थिति चाहे कुछ भी हो, कानून निर्माण का कार्य विधायिका को ही करना पड़ता है। इस कार्य में वह अपनी समितियों की सहायता लेती है। ब्रिटेन में तो संसदीय सर्वोच्चता होने के कारण कानून निर्माण पर पूरा अधिकार विधायिका का ही है। सधात्मक शासन प्रणाली वाल भारत जैसे देशां में व्यवसीपिका की शक्तियों का केन्द्रीयकरण होने के कारण संसद राष्ट्रीय महत्व के विषयों पर ही कानून बना पाती है। कानून बनने से पहले उस पर कार्यपालिका के अध्यक्ष के हस्ताक्षर करवाने भी जरूरी होते हं। हालांकि कार्यपालिका अध्यक्ष उस पर पुनर्विचार करने के लिए बिल को विधायिका के पास लौटा सकता है, लेकिन अन्त में हस्ताक्षर करना उसकी मजबूरी सी बन गई है। कानून बनाने के इस काम में विधायिका को भी आज अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है, लेकिन अन्त में वह कानून-निर्माण में सफलता प्राप्त कर ही लेती है।

(2) कार्यपालिका पर नियन्त्रण (Control over the Executive) :- कार्यपालिका पर नियन्त्रण रखना भी विधायिका का प्रमुख कार्य है। संसदीय शासन प्रणाली में यह नियन्त्रण प्रत्यक्ष रहता है, क्योंकि मन्त्रिमण्डल का चुनाव उसके द्वारा ही किया जाता है और वह उसके प्रति ही उत्तरदायी होता है। संसदीय शासन प्रणाली में विधायिका द्वारा नियन्त्रण के अनेक साधनों-कार्यपालिका से प्रश्न व पूरक प्रश्न पूछना, ध्यानाकर्षण प्रस्ताव, स्थगन प्रस्ताव, कटौती तथा निन्दा प्रस्ताव, अविश्वास प्रस्ताव आदि का प्रयोग किया जाता है। इसमें व्यवस्थापिका धन की मांग को अस्वीकार करके या कार्यपालिका द्वारा प्रस्तुत नीति, प्रस्ताव या विधेयक को अस्वीकार करके भी नियन्त्रण रख सकती है। इंग्लैण्ड तथा भारत म यही व्यवस्था है। अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली वाले देशों में शक्तियों के पृथक्करण होने के कारण विधायिका द्वारा कार्यपालिका पर प्रत्यक्ष नियन्त्रण कर पाना सम्भव नहीं है। इसलिए वह धन की मांग या आवश्यक व्यवस्थागन पारित न करके कार्यपालिका को नियन्त्रित रखने का प्रयास रखती है। राष्ट्रपति द्वारा की गई नियुक्तियों या सन्धियों का अनुमादन रोककर भी वह नियन्त्रण की व्यवस्था कार्यपालिका पर नियन्त्रण रखती है। इस प्रकार शासन व्यवस्था चाहे कोई भी हो, उसमें व्यवस्थापिका का कम या अधिक नियन्त्रण कार्यपालिका पर अवश्य रहता है। भारत में यह नियन्त्रण प्रत्यक्ष व अधिक है, जबकि अमेरिका में अप्रत्यक्ष व कम है।

(3) न्यायिक कार्य (Judicial Functions) :- यद्यपि न्यायिक कार्य सम्पन्न करना न्यायपालिका का कार्य है, लेकिन आज अनेक देश में व्यवस्थापिकाएं भी पूर्ण या अर्द्ध-न्यायिक कार्य करती हैं। इंग्लैण्ड में हाऊस ऑफ लार्डस जो संसद का उपरि सदन है, अपील का सर्वोच्च न्यायालय है। अमेरिका में राष्ट्रपति के खिलाफ लगाए गए महाभियोग के बारे में अन्तिम निर्णय देने के लिए सीनेट न्यायालय के रूप में बैठती है। भारत में राष्ट्रपति पर इसी तरह महाभियोग की सुनवाई की व्यवस्था राज्य सभा (ऊपरी सदन) करती है। स्विट्जरलैण्ड में राष्ट्रीय सभा को संविधान की व्याख्या करने का अधिकार प्राप्त होने के कारण वह भी न्यायिक कार्य करने वाली व्यवस्थापिका कहलाती है। लेकिन भारत तथा अमेरिका में आज तक किसी भी राष्ट्रपति को महाभियोग का परिणाम नहीं भुगतना पड़ा है। अतः व्यवस्थापिका न्यायिक कार्य भी करती है।

(4) वित्तीय कार्य (Financial Functions) :- प्रत्येक देश में राष्ट्रीय वित्त को सही ढंग से खर्च करने के लिए सुव्यवस्था व्यवथापिकाएं ही करती हैं। वास्तव में धन ही किसी राजनीतिक व्यवस्था व समाज का आधार होता है। यदि इसका दुरुपयोग किया गया तो राजनीतिक व्यवस्था पर आने वाले संकटों से कोई नहीं बचा सकता। मेडिसन ने लिखा है-"जिसके पास वित्तीय शक्ति है, उसी के पास वास्तविक शक्तियां होती हैं।" प्रजातन्त्रीय देशों में वित्तीय शक्ति पर नियन्त्रण की व्यवस्था विधायिका के निम्न सदन (निर्वाचित सदन) को सौंपी गई है। उसकी स्वीकृति के बिना एक भी पैसा खर्च नहीं किया जा सकता। नए कर लगाना तथा अनावश्यक करों को समाप्त करना भी व्यवस्थापिका का ही कार्य है। वित्त विधेयक भी हमेशा निचले सदन में ही पेश किया जाता है। वह धन कटौती का प्रस्ताव पेश कर सकता है। अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली में वित्त विधेयक पूर्ण रूप से कार्यपालिका द्वारा ही तैयार कराकर विधायिका के पास भेजा जाता है, लेकिन प्रायः विधायिका उसमें से कुछ राशि काटकर उसे पास करती है। यद्यपि विधायिका की वित्तीय शक्तियों पर भी सभी देशों में अनेक प्रतिबन्ध हैं, लेकिन अन्तिम रूप में किसी न किसी तरह व्यवस्थापिकाएं वित्तीय कार्यों का सम्पादन सफलता के साथ करने में कामयाब हो ही जाती हैं।

(5) संविधान में संशोधन सम्बन्धी कार्य (Constitution Amending Functions) :- व्यवस्थापिका को संविधान में संशोधन का भी अधिकार प्राप्त होता है। कुछ देशों में तो यह अधिकार पूर्ण रूप से प्राप्त है और कुछ में आंशिक। कुछ देशों में तो विधायिका साधारण बहुमत से संविधान में संशोधन कर देती है, लेकिन कुछ में विशेष प्रक्रिया के तहत ही संशोधन करना पड़ता है। भारत में यह कार्य संसद तीन तरह से कर सकती है-(1) संसद के साधारण बहुमत से (2) संसद के दो तिहाई बहुमत से (3) संसद के दो तिहाई बहुमत तथा आधे से अधिक राज्यों की स्वीकृति से। ब्रिटेन में यह कार्य साधारण बहुमत द्वारा ही सम्पन्न हो जाता है। स्विटजरलैण्ड में संशोधन सम्बन्धी प्रस्ताव जनता के समाने जन-निर्णय के लिए पेश किए जाते हैं। वहां जनता को संविधान संशोधन का प्रस्ताव रखने का अधिकार है। संशोधन प्रस्ताव पर कैंटनों की स्वीकृति आवश्यक होती है। अमेरिका, जर्मनी, स्विटजरलैंड आदि देशों में संसद को संशोधन का आंशिक ही अधिकार प्राप्त है, जबकि भारत तथा ब्रिटेन में उसे संशोधन का पूरा अधिकार प्राप्त है। संशोधन का यह अधिकार संसदीय देशों में व्यवस्थापिका की सर्वोच्चता को सिद्ध करता है।

(6) निर्वाचन सम्बन्धी कार्य (Electoral Fuctions) :- संसार के सभी देशों में विधायिका के चुनाव सम्बन्धी कार्य भी करने पड़ते हैं। भारत में राष्ट्रपति का चुनाव संसद के दोनों सदनों के चुने हुए सदस्य तथा प्रान्तीय विधानसभाओं के सदस्यों द्वारा मिलकर किया जाता है। स्विट्जरलेण्ड में राष्ट्रीय सभा, मन्त्रिपरिषद, न्यायधीशों तथा प्रधान सेनापति का चुनाव करती है। रूस में सुप्रीम सोवियत (संसद) ही कार्यपालिका के सदस्य तथा सुप्रीम कोर्ट क न्यायधीशों को चुनाव करती है। इंग्लैण्ड तथा भारत में निम्न सदन स्पीकर का चुनाव करती है। चीन में सघीय राष्ट्रपति संसद के द्वारा ही चुना जाता है। अमेरिका में कांग्रेस निर्वाचनों, निर्वाचन विवरणों तथा सदस्यों की निर्वाचन सम्बन्धी योग्यताओं का निर्णय करने का अधिकार रखती है। जापान में व्हाइट (संसद) प्रधानमन्त्री का चुनाव करती है। इस तरह सभी देशों में व्यवस्थापिका निर्वाचन सम्बन्धी कार्य भी करती है।

(7) विमर्शात्मक कार्य (Deliberative Functions) :- कोई भी कानून तभी लोकप्रिय हो सकता है, जब वह व्यापक सूझ-बूझ व विचार-विमर्श से निर्मित हो। इसलिए व्यवस्थापिका अच्छे कानून का निर्माण करने के लिए व्यापक विचार-विमर्श करती है। व्यवस्थापिका अनेक हितों, दृष्टिकोणों और समुदायों का प्रतिनिधित्व करने वाला सभा स्थल है। इसमें सार्वजनिक विषयों, राष्ट्रपति तथा अन्तर्राष्ट्रीय विषयों के बारे में व्यापक विचार-विनिमय होता है। इसमें शासन सम्बन्धी सारी बातों पर आवश्यक विचार करके ही निर्णय किया जाता है। अपना कार्य सही ढंग से करके वास्तव में

व्यवस्थापिका उचित व्यवस्थापन कार्य ही करती है। इस कार्य को करने में व्यवस्थापिका की समितियां उसका पूरा सहयोग करती हैं।

(8) अन्य कार्य (Other Functions) :- आज का युग कल्याणकारी राज्यों का युग है। संसदीय पद्धति के विकसित हो जाने से कानून बनाने तथा प्रशासन पर नियन्त्रण रखने का कार्य कार्यपालिका भी करने लगी है। लेकिन इससे व्यवस्थापिका का बोझ कम नहीं हुआ है। वह आज अनेक उत्तरदायित्वों से लदी हुई है। उसे उपरोक्त कार्यों के अतिरिक्त भी अनेक कार्य करने पड़ते हैं। लोकमत का निर्माण करने, जनमत को शिक्षित करने, जनता की शिकायत दूर करने, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों पर नजर रखने, प्रतिनिधित्व करने, हित-स्वरूपीकरण और हित-समूहीकरण करने, राजनीतिक समाजीकरण तथा पर्यवेक्षण व निगरानी सम्बन्धी कार्य भी आज विधायिका को ही करने पड़ते हैं। ये कार्य संसदीय देशों में तो व्यवस्थापिका के महत्वपूर्ण कार्य बन रहे हैं। इसी कारण फ्रेडिक ने लिखा है-"आधुनिक समय में एक प्रतिनिधि सभा का मूल कार्य कानून-निर्माण उतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना कि आम जनता की राजनीतिक शिक्षा, प्रचार-कार्य तथा विभिन्न मतों, विचारों और मतभेदों का एकीकरण करना है।" लेकिन व्यवस्थापिका की यह भूमिका लोकतन्त्रीय शासन व्यवस्थाओं तक ही सिमट कर रह जाती है। अधिनायकवादी देशों में उसकी भूमिका सिकुड़ जाती है।

व्यवस्थापिका की भूमिका का मूल्यांकन

(Evaluation of the Role of Legislature)

यद्यपि व्यवस्थापिकाएं प्रत्येक देश में पाई जाती हैं और कुछ भी अधिक कार्यों का निष्पादन भी करती हैं, लेकिन आज उनकी भूमिका सिकुड़ रही है। अधिकतर देशों में तो उनके कार्यों का निष्पादन औपचारिकता मात्र रह जाता है। आज संवधानिक देशों में व्यवस्थापिकाओं की भूमिका विधि-निर्माण में कम हो रही है। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि लोकतन्त्रीय देशो में इसकी भूमिका महत्वहीन हो गई है। इन देशों में सरकारी और अन्य राजनीतिक कार्य इन्हीं के द्वारा पूरे किए जाते हैं। अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली में सरकार के कार्यों पर विधायिका का प्रभाव स्वतन्त्र व अधिक है। ब्रिटेन में ससदीय प्रणाली होने के कारण इसका प्रभाव द्वि-दलीय व्यवस्था के तहत कार्यपालिका जितना ही है, किन्तु भारत में व्यवस्थापिका का प्रभाव कम है। सोवियत संघ में एक दल के आधित्य के कारण यह भारत या अमेरिका जितनी भी प्रभावी नहीं है। आज भारत में संसद की वह स्थिति नहीं है जो 26 जून 1975 से पहले थी, लेकिन ब्रिटेन की संसद आज भी आदर की संस्था है। इसका जो कुछ भी प्रभाव है, वह इस कारण है कि यह राजनीतिक सत्ता को वैधता प्रदान करती है। जनता को राजनीतिक शिक्षा देने तथा काण्डों का भण्डाफोड करने में अ[illegible]पिका अपनी भूमिका बेखूबी निभा रही है। स्वेच्छाचारी देशों में भी व्यवस्थापिका के बिना शासकों का काम नहीं च[illegible]। इण्डोनेशिया और पाकिस्तान में सैनिक शासन के बाद भी किसी न किसी रूप में व्यवस्थापिकाएं अवश्य हैं। बर्मा में जनरल वेबिन आज भी इसके कारण ही शासन कर रहे हैं। नेपाल में लोकतन्त्र का गला घोंटने के बाद भी राष्ट्रीय पंचायत के रूप में व्यवस्थापिका आज भी मौजूद है। तानाशाही देशों में व्यवस्थाएं चाहे दिखावा मात्र ही क्यों न हों, हैं अवश्य। कुछ तानाशाही देशों में तो व्यवस्थापिकाएं बहुत महत्वपूर्ण हैं। यूगोस्वालाविया में मार्शल टीटो आज भी व्यवस्थापिका को ही काफी महत्व देते हैं। इसलिए तानाशाही देशों में व्यवस्थापिकाओं की भूमिका शासक वर्ग की सोच पर निर्भर करती हैं। इसी तरह सर्वसत्ताधिकारी देशों में व्यवस्थापिका की भूमिका का मुख्य नियामक, निर्देशक व नियन्त्रक साम्यवादी दल होता है। विकासशील देशों में संस्थागत आधरों के अभाव में व्यवस्थापिकाएं न तो सरकारी कार्यों का ठीक तरह से निष्पादन कर पा रही हैं और न ही राजनीतिक कार्यों का। इन देशों में व्यवस्थापिकाएं हंगामा स्थल बनकर रह गई हैं। इन देशों में व्यवस्थापिकाओं की भूमिकाओं को प्रभाव रखने के लिए अनुकूल संस्कृति का निर्माण व विकास नहीं हो पाया है। बहुदलीय प्रणाली तथा सांसद सरकार के प्रतिमान ने आज व्यवस्थापिका की भूमिका को धराशाही कर दिया है। लेकिन धीरे-धीरे विकासशील देशों में व्यवस्थापिकाओं की भूमिका में सुधार होता नजर आ रहा है। अतः सार रूप में कहा जा सकता है कि व्यवस्थापिकाओं की भूमिका राजनीतिक व्यवस्था तथा शासन प्रणाली विशेष की प्रकृति पर निर्भर करती है।

व्यवस्थापिका का संगठन

(Structure of Legislature)

आधुनिक युग प्रतिनिधि लोकतन्त्र का युग है। इसमें कानून बनाने का पूरा उत्तरदायित्व जन-प्रतिनिधियों के संगठन व्यवस्थापिका का है। कई देशों में व्यवस्थापिका एक सदनीय है और कई में द्विसदनीय। लेकिन यह बात तो सत्य है कि किसी भी देश म

विधानमण्डल या व्यवस्थापिका अवश्य पाई जाती है। इस बात पर कोई सर्वसम्मत राय आज तक नहीं बन पाई है कि व्यवस्थापिका का एक सदन हो या दो। जहां जे०एस०मिल०, सर हेनरी मेन तथा लेकी जैसे विद्वान दो सदनीय विधायिका का समर्थन करते हैं, वहीं बेन्थम, अबेसियस तथा बेंजमन फ्रेंकलिन जैसे विद्वान एक सदनीय विधायिका का ही पक्ष लेते हैं, आज विश्व के आधे से अधिक देशों में एक सदनीय व्यवस्थापिका तथा जहां व्यवस्थापिका के दो सदन हैं, उसे द्वि-सदनीय व्यवस्थापिका की संज्ञा दी जाती है। जहां पर दो सदन हैं उनमें से एक को निम्न सदन तथा दूसरे को उपरि सदन कहा जाता है। भारत, इंग्लैण्ड, कनाडा, आस्ट्रेलिया, दक्षिणी अफ्रीका, श्रीलंका आदि में द्विसदनीय विधायिकाएं हैं, जबकि चीन, पाकिस्तान, रोडेशिया, तुर्की, पुर्तगाल आदि देशों में एक-सदनीय विधायिकाएं हैं।

एक सदनीय व्यवस्थापिका

(Unicameral Legislature)

जिस देश में व्यवस्थापिका का एक सदन होता है उसे एक सदनीय व्यवस्थापिका कहा जाता है। यह पद्धति आज विश्व के अनेक देशों में प्रचलित है। यह पद्धति 18वीं तथा 19वीं सदी के दौरान अधिक लोकप्रिय रही और आज भी है। इस पद्धति के समर्थकों का कहना है कि लोकप्रिय सम्प्रभुता जनता में निवास करती है और उसका प्रतिनिधित्व केवल एक ही सदन द्वारा होना चाहिए। सीएज का कहना है कि "कानून लोगों की इच्छा का परिणाम है। लोग एक समय मे एक ही विषय पर दो भिन्न इच्छाएं नहीं रख सकते, इसलिए कानून निर्माण करने वली सभा भी, जो जनता का प्रतिनिधित्व करती है, अनिवार्यतः एक ही होनी चाहिए।" बेन्जामिन फ्रैंकलिन ने भी एक सदन का ही समर्थन किया है। आज यूनान, यूगोस्लाविया, चीन, पाकिस्तान, तुर्की आदि देशों में एक-सदनीय व्यवस्थापिकाएं हैं।

एक सदनीय विधायिका के पक्ष में तर्क

(Arguments in favour of Unicameral Legislature)

आज अनेक देशों में एकसदनीय व्यवस्थापिकाएं हैं। इसके समर्थक कहते हैं कि जनमत का प्रतिनिधित्व एक सदन ही कर सकता है, दो नहीं। इसलिए इसके पक्ष में निम्नलिखित तर्क दिए जाते हैं :-

(1) एकसदनीय व्यवस्थापिका सम्प्रभुता के सिद्धान्त की समर्थक है। इसके समर्थकों का कहना है कि सम्प्रभुता की अभिव्यक्ति जनता की इच्छा में होती है जिसका प्रतिनिधित्व व्यवस्थापिका द्वारा ही होता है। यह सम्प्रभु की इच्छा या अखण्ड या अविभाजित होती है। इसलिए इसका प्रतिनिधित्व एक सदन से ही होना चाहिए।

(2) एकसदनीय व्यवस्थापिका में उत्तरदायित्व सुनिश्चित रहता है। इसमें उत्तरदायित्व का दो सदनों या दो स्थानों पर विभाजन नहीं होता।

(3) यह सार्वजनिक हित के अनुकूल है। द्वितीय सदन तो धनवान वर्गों का पोषक है।

(4) इससे समय व धन दोनों की बचत होती है।

(5) इसमें दो सदनों में पाए जाने वाले गतिरोध की संभावना नहीं होती है।

(6) यह अच्छे व उपयोगी कानूनों का निर्माण करती है।

(7) यह सरल पद्धति है। इसके आधार पर विधायिका का संगठन आसानी से समझा जा सकता है।

एकसदनीय विधायिका के विपक्ष में तर्क

(Arguments against Unicameral Legislature)

एकसदनीय विधायिका के विपक्ष में द्विसदनीय विधायिका के समर्थक निम्नलिखित तर्क देते हैं :-

(1) एकसदनीय विधायिका के स्वेच्छाचारी तथा निरंकुश बनने के आसार अधिक होते हैं, क्योंकि कानून-निर्माण की सारी शक्ति उसी में केन्द्रित होती है।

(2) एकसदनीय विधायिका जल्दबाजी में एकपक्षीय और तर्कहीन कानूनों का निर्माण करती है।

(3) एकसदनीय विधायिका में शक्तियों का केन्द्रीयकरण प्रजातन्त्र के सिद्धान्तों के विपरीत है। इससे वैयक्तिक स्वतन्त्रता

को खतरा उत्पन्न हो सकता है।

(4) आज के कल्याणकारी राज्यों के युग में व्यवस्थापिका के कार्य भी बढ़ गए हैं। एक सदनीय विधायिका द्वारा उन्हें पूरा करना सम्भव नहीं है।

(5) एक सदनीय विधायिका में सभी वर्गों को उचित प्रतिनिधित्व नहीं मिल सकता। इसलिए दूसरे सदन का होना आवश्यक है।

(6) एकसदनीय विधायिका में व्यवस्थापिका अपनी गलतियों का पुनरावलोकन नहीं कर सकती।

(7) एकसदनीय व्यवस्थापिका संघात्मक शासन-व्यवस्था में अनुपयुक्त रहती है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि एकसदनीय विधायिका लोकतन्त्र की आस्था के विपरीत है। इसके अवगुणों के कारण आज द्विसदनीय विधायिका का प्रतिमान अधिक लोकप्रिय होता जा रहा है।

द्विसदनीय व्यवस्थापिका

(Bicameral Legislature)

द्विसदनीय व्यवस्थापिका की परम्परा ब्रिटेन की देन है। सबसे पहले ब्रिटेन में ही संसद के दो सदन विकसित हुए थे। बाद में सभी प्रजातन्त्रीय देशों ने ब्रिटिश प्रतिमान का ही अनुसरण किया है और उनमें द्विसदनीय विधायिकाएं हैं। प्रत्येक देश में निम्न सदन जन-साधारण का प्रतिनिधित्व करता है और उच्च सदन जनता के कुछ निम्न सदन जन साधरण का प्रतिनिधित्व करता है। जनसाधारण का प्रतिनिधित्व करने के कारण निम्न सदन, उच्च सदन से अधिक शक्तिशाली भी होता है। लेकिन आज विश्व के अनेक देशों में द्विसदनीय विधायिका का परम्परा का ही निर्वहन हो रहा है। प्रथम सदन की रचना तो जन-प्रतिनिधियों द्वारा ही होती है, जबकि उच्च सदन की रचना के बारे में अलग-अलग प्रावधान हैं। ब्रिटेन में यह वंशानुगत आधार पर होती है तो अमेरिका में निर्वाचन के आधार पर होती है। जापान, इटली और कनाडा में उच्च सदन के सदस्यों का मनोनयन होता है। भारत में निर्वाचन तथा मनोनयन के बीच की व्यवस्था द्वारा उच्च सदन (राज्य सभा) की रचना होती है। आज अनेक देशों में विधायिका के दूसरे सदन की महत्वपूर्ण भूमिका है। भारत, कनाडा, अमेरिका, आस्ट्रेलिया आदि देशों में द्विसदनीय विधायिकाएं हैं।

द्विसदनीय व्यवस्थापिका के पक्ष में तर्क

(Arguments in favour of Bicameral Legislature)

सर हैनरी मेन का कहना है कि व्यवस्थापिका का दूसरा सदन अवश्य होना चाहिए ताकि पहले सदन की निरंकुशता को रोका जा सके। लोकतन्त्र के चढ़ते ज्वार ने व्यवस्थापिका को सम्पूर्ण शक्ति का केन्द्र बना दिया है। नागरिकों की स्वतन्त्रता की रक्षा करने तथा व्यवस्थापिकाओं को दलीय हितों का पोषक बनने से रोकने के लिए आज द्विसदनीय विधायिका का सिद्धान्त प्रबल हो गया है। इस सिद्धान्त के अनुसार प्रथम सदन यदि अपनी शक्तियों का दुरुपयोग करता है तो उसे दूसरे सदन द्वारा रोका जा सकता है, क्योंकि द्वितीय सदन के रूप में शक्ति को शक्ति का नियन्त्रक बनाया गया है। इसकी स्थापना का उद्देश्य ही पहले सदन की तानाशाही पर रोक लगाना है। द्विसदनीय विधायिका के समर्थक इसके पक्ष में निम्न तर्क देते हैं :

(1) दूसरा सदन पहले सदन की निरंकुशता पर रोक लगाता है (Second Chamber checks the despotism of the Lower House) :- द्विसदनीय विधायिका के समर्थकों का कहना है कि जिस देश में विधानपालिका का एक ही सदन होता है, उसके निरंकुश बनने की सम्भावना अधिक रहती है। साधारणतया यह बात सत्य दिखलाई देती है कि शक्ति मनुष्य को भ्रष्ट करती है और निरंकुश शक्ति उसे पूर्ण भ्रष्ट कर देती है। व्यवस्थापिका के प्रथम सदन के सदस्य यद्यपि जनता द्वारा निर्वाचित होते हैं, लेकिन फिर भी उनके पथभ्रष्ट होने की संभावना तो रहती ही है। जिस दल का सदन में बहुमत होता है, वह अपनी मनमानी करके स्वेच्छाचारी कानूनों का निर्माण कर सकता है और अल्पसंख्यकों के हितों की अनदेखी कर सकता है। लीकाक ने कहा है कि एकसदनीय व्यवस्थापिका निरंकुश और अनुत्तरदायी होती है। इसी तरह लेकी ने भी सरकार के सभी रूपों में सर्वशक्तिसम्पन्न लोकतन्त्रीय सदन को बुरा बताया है। जे०एस०गिल ने लिखा है "दूसरे सदन के अभाव में एक सदन निरंकुश एवं स्वेच्छाचारी हो जाता है। अतः अविभाजित सत्ता के दूषित प्रभाव का रोकने

के लिए दूसरा सदन आवश्यक है।" गैटेल ने भी लिखा है-"यदि कानून बनाने की सारी शक्ति एक सदन में ही केन्द्रित कर दी गई तो इस सदन के राज्य में सारी राजनैतिक सत्ता अपने हाथ में लेने, भ्रष्टाचारी तथा अत्याचारों का भय अधिक हो जाएगा। इसलिए दूसरे सदन की स्थापना भी अनिवार्यता करनी ही चाहिए।" लार्ड एकटन ने ठीक कहा है-"स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए दूसरा सदन अति आवश्यक है।" जे०एस० मिल ने भी दूसरा सदन पहले सदन की निरंकुशता को रोकने के लिए आवश्यक माना है। स्टोरी ने भी कहा है-"व्यवस्थापिका के अत्याचारों से बचने का यही उपाय है कि उसके कार्यों का विभाजन कर दिया जाए। हित के विरुद्ध हित, इच्छा के विरुद्ध इच्छा का गठनबन्धन या प्रभुत्व खड़ा कर दिया जाए।" इसी तरह ब्राईस ने भी इसी बात पर जोर दिया है कि पहले सदन की निरंकुशता को रोकने के लिए दूसरा सदन आवश्यक है।

(2) दूसरा सदन अविचारपूर्ण तथा जल्दीबाजी में पास किए गए कानूनों को रोकता है (Second Chamber prevents hasty and ill-considered Legislation) :- पहले सदन द्वारा अविचारपूर्ण तथा जल्दी में पास किए गए कानूनों को रोकने के लिए दूसरा सदन बहुत आवश्यक होता है। पहले सदन का जनता द्वारा निर्वाचित किया जाने के कारण, चुनाव के समय उसके सदस्यों ने जनता के साथ कुछ वायदे किए होते हैं, इसलिए चुनावों के बाद सरकार बनने पर उस सदन के नेता जोश में आकर गलत कानून बना देते हैं। ऐसे कानून जनता को थोड़े समय के लिए तो खुश कर देते हैं, लेकिन उनके परिणाम भयानक होते हैं। एक सदन में पास काम की अधिकता के कारण भी कानूनों को बिना पूर्ण सोच विचार के पास करने की सम्भावना भी बढ़ जाती है। इसलिए अच्छे कानूनों का निर्माण करने के लिए तथा पहले सदन के द्वारा बनाए गए कानूनों पर विचार करने के लिए दूसरे सदन की महती आवश्यकता है। इससे कानून की गलतियां दूर हो जाती हैं और जो कानून बनता है, उसका प्रभाव अधिक स्थाई होता है। सोच विचारकर बनाए गए कानून ही राजनीतिक समाज का आधार मजबूत कर सकते हैं। ब्लंशली ने दूसरे सदन का समर्थन करते हुए लिखा है-"चार आंखें दो आंखें की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह देख सकती हैं, विशेषतया जब किसी विषय पर विभिन्न दृष्टिकोणों से विचार करना आवश्यक हो।" लेकी ने भी दूसरे सदन की आवश्यकता पर जोर दिया हैं यह बात सही है कि दूसरे सदन के नियन्त्रण के बिना पहले सदन की न तो निरंकुशता को रोक पाना सम्भव है और न ही अच्छे कानूनों का निर्माण सम्भव है।

(3) दूसरा सदन पहले सदन के समय की बचत करता है (Second Chamber saves the time of the Lower House) :- आज का युग कल्याणकारी राज्यों का युग है। इसमें राज्यों के कार्यों में अपार वृद्धि हो चुकी है। इससे विधानमण्डल के कार्य भी बहुत बढ़ गए हैं। एक सदन के पास कार्यों का बोझ इतना अधिक हो गया है कि वह उसे सम्भालने में परेशानी महसूस करने लगा है। इसके सदस्य बार-बार बदलने के कारण विधायिका को शासन की जटिलता समझने का अवसर प्राप्त नहीं होता। विकासशीलदेशों में तो राजनीतिक अस्थिरता के कारण यह समस्या और भी अधिक गहरी है। इसलिए दूसरा सदन स्थाई सदन होने के कारण शासन की बारीकियों को समझने में सक्षम होता है आर प्रथम सदन के कार्यभार को कम भी कर सकता है। दूसरे सदन में अधिक अनुभवी व योग्य व्यक्ति होते हैं, जिससे प्रशासनिक कार्यों में भी सुविधा रहती है। बिलों पर वाद-विवाद करके पहले सदन का समय बनाने में भी दूसरा सदन उपयोगी है। दूसरे सदन में जो बिल पेश किये जाते हैं, वे प्रायः कम महत्व के होते हैं। उन पर दूसरा सदन ही प्रायः विचार-विमर्श करके पहले सदन को आवश्यक बिलों पर व्यापक विचार-विमर्श करने का पर्याप्त समय मिल जाता है।

(4) दूसरा सदन विशेष हितों और अलसंख्यकों को प्रतिनिधित्व देने के लिए आवश्यक है (Necessary for Representation to the Interest Groups and Minorities) :- निम्न सदन में बहुमत का प्रतिनिधित्व होने के कारण अल्पसंख्यक वर्गों के हितों का पोषण करने वाला प्रतिनिधि वर्ग पीछे रह जाता है। शांति की स्थापना के लिए यह जरूरी होता है कि समाज के सभी वर्गों को शासन में भागीदार बनाया जाए। जनता द्वारा निर्वाचित होने के कारण कई बार पहले सदन में समाज के कुछ विशेष वर्गों या अल्पसंख्यक वर्गों के हितों की अनदेखी हो जाती है। इसलिए उनके हितों को प्रतिनिधित्व देने के लिए दूसरे सदन की व्यवस्था जरूरी है। इसके अतिरिक्त देश में कुछ ऐसे व्यक्ति भी होते हैं जो चुनाव लड़ना पसंद नहीं करते, परन्तु उनकी योग्यता की देश को आवश्यकता होती है। द्वितीय सदन में ऐसे ही योग्य, अनुभवी, कुशल व बुद्धिजीवियों को मनोनीत कर लिया जाता है। भारत में राष्ट्रपति को राज्य सभा या उच्च सदन में 12 ऐसे सदस्य मनोनीत करने का अधिकार है जिन्होंने साहित्य, कला, विज्ञान, इतिहास तथा समाजसेवा में उल्लेखनीय कार्य किया हो। इसी तरह ब्रिटेन में सम्राट या साम्राज्ञी को ऐसे ही योग्य व्यक्तियों को लार्ड सदन में मनोनीत करने का अधिकार प्राप्त है।

(5) दूसरा सदन स्थाई है (Second Chamber is Stable) :- द्वितीय सदन का कार्यकाल पहले सदन की तुलना में अधिक होता है। संसदीय शासन प्रणाली वाले देशों, विशेष तौर पर विकासशील देशों में जहां सरकार अस्थिर होती है, वहा तो इसका महत्व स्थायित्व के कारण अधिक बढ़ जाता है। भारत तथा इंग्लण्ड में प्रधानमन्त्री की सलाह से राष्ट्राध्यक्ष व शासनाध्यक्ष निम्न सदन को निर्धारित अवधि से पहले भी भंग कर सकता है। परन्तु भारत में राज्य सभा और इंग्लण्ड में लार्ड सदन स्थाई सदन है। उन्हें किसी भी अवस्था में भंग करने का अधिकार किसी को भी नहीं है। भारत व अमेरिका में उपरी सदन की अवधि तो 6 वर्ष है, लेकिन निम्न सदन की 5 वर्ष है। भारत में अवश्विास पारित करके इस सदन को समय से पहले भी प्रधानमन्त्री की सिफारिश पर राष्ट्रपति द्वारा भंग किया जा सकता है। अधिक स्थाइ होने के कारण स्थाई शासन के गुण इस सदन में ही होते हैं और जनता को इसके स्थायित्व व इसके सदस्यों की याग्यता का पूरा लाभ मिलने लगता है। यह स्थायित्व अच्छे शासन व अच्छे कानून दोनों के हित में है।

(6) दूसरा सदन संघात्मक राज्यों के लिए अनिवार्य है (Second Chamber is essential in Federal form of Government) :- जिन देशों में संघात्मक सरकार की स्थापना की गई है, वहां विधायिका का दूसरा सदन जरूरी है। पहले सदन (निम्न सदन) के सदस्यों को चुनाव तो आबादी के आधार पर होता है, जिससे अधिक आबादी वाले राज्यों को अधिक प्रतिनिधित्व मिल जाता है। इससे कम आबादी वाले राज्यों को प्रतिनिधित्व की हानि होती है। बडे-बड़े राज्य छोटे-छोटे राज्यों के विरुद्ध कानून पास करके उनके हितों को हानि पहुंचा सकते हैं। इसलिए उनके हितो की सुरक्षा के लिए उच्च सदन या द्वितीय सदन की स्थापना करना आवश्यक है। प्रो० गेटेल ने लिखा है- "दो सदनों के रहन से विचार-विमर्श में सतर्कता एवं संतुलन और अधिक सावधानी से विश्लेक्षित एवं संग्रहित व्यवस्थापन की प्राप्ति होती है।" अमेरिका, भारत, स्विटजरलैण्ड में सभी राज्यों को ऊपरी सदन में बराबर प्रतिनिधित्व दिया गया है ताकि सभी राज्यों के हितों को घोषित करके संघात्मक व्यवस्था को सुदृढ़ बनाया जा सके।

(7) पहले सदन के कार्यों का पुनरावलोकन (Review of the Functions of First Chamber) :- दूसरा सदन पहले सदन द्वारा पारित किए गए कार्यों का पुनरावलोकन करने के लिए बहुत आवश्यक है। आजकल पहले सदन के पास कार्यभार की अधिकता के कारण सभी बिलों पर ध्यान देना असम्बन्ध है। व्यापक विचार-विमर्श की बजाय प्रायः जल्दीबाजी में ही बिलों को पास कर दिया जाता है। इससे कानून त्रुटिपूर्ण बन जाता है। इसलिए व्यवस्थापिका में न्यायपालिका की तरह पुनरावलोकन का होना भी जरूरी है। इसलिए दूसरा सदन भी इसी कमी की पूर्ति कर सकता है। पर्याप्त समय होने के कारण यह योग्य व्यक्तियों के सदन के रूप में पहले सदन के बिलों पर व्यापक विचार-विमर्श करके कमियो को दूर करने में अहम् भूमिका निभा सकता है। ब्लांशली ने ठीक ही कहा है कि एक से दो आंखें अधिक अच्छी होती हैं। इसलिए दूसरा सदन कानूनों ने पुनरावलोकन के लिए बहुत आवश्यक है।

(8) द्विसदनीय व्यवस्थापिका कार्यपालिका की स्वतन्त्रता के लिए आवश्यक है (Bicameral Legislature is essential for Independence of Executive) :- दो सदनीय विधायिका में दोनों सदन एक दूसरे पर नियन्त्रण करके कार्यपालिका को अधिक स्वतन्त्रता प्रदान करते हैं। कार्यपालिका अपना कार्य तभी कुशलतापूर्वक कर सकती है, जब उसे कार्य करने की आजादी हो। कई बार कार्यपालिका को अपनी नीतियों का एक सदन में तो समर्थन प्राप्त नहीं होता, परन्तु दूसरे में प्राप्त हो जाता है। कार्यपालिका की एक सदन पर निर्भरता कम होने से वह अपना कार्य स्वतन्त्रतापूर्वक कर सकती है। भारत तथा अमेरिका जैसे देशों में कार्यपालिका के अध्यक्ष को संसद अभियोग द्वारा हटा सकती है। लेकिन दो सदनों की व्यवस्था में यह कार्य कठिन हो जाता है। इसमें एक सदन तो आरोप लगाता है, जबकि दूसरा जांच करता है। एक सदन द्वारा लगाए गए गलत आरोपों का दूसरे सदन में निवारण हो जाता है। इससे कार्यपालिका निर्भय होकर उचित कार्यों के निष्पादन में लगी रह सकती है। इसलिए कार्यपालिका की स्वतन्त्रता के लिए दूसरे सदन का होना बहुत जरूरी है।

(9) दूसरा सदन योग्य व्यक्तियों का सदन है (Second Chamber is the Chamber of able persons) : दूसरा सदन पहले सदन की अपेक्षा योगय व्यक्तियों का ही सदन है। भारत में निम्न सदन में अनपढ़ तथा अयोग्य व्यक्ति भी पहुंच सकते हैं, लेकिन दूसरे सदन (राज्य सभा) में सभी सदस्य योग्य व अनुभवी ही मिलते हैं। उन्हें राष्ट्रपति उनकी योग्यता के कारण ही मनोनीत करता है। उनके भाषण भी उच्च स्तर के होते हैं। इंग्लैण्ड में इस सदन में रिटायर न्यायधीश, प्रशासक, स्पीकर, डॉक्टर आदि नियुक्त किए जाते हैं। उनके कार्य-व्यवहार का जनता पर व्यापक प्रभाव पडता है। उनक

भाषण जनता को उच्च स्तर की राजनीतिक शिक्षा प्रदान करने वाले होते हैं। इसलिए जनता को राजनीतिक व्यवस्था के लाभों से परिपूर्ण करने के लिए दूसरे सदन की महती जरूरत है।

(10) ऐतिहासिक समर्थन (Historical Support) :- द्वितीय सदन के समर्थकों का कहना है कि इतिहास के आधार पर भी दूसरे सदन की आवश्यकता स्वतः सिद्ध है। 1649 ई० में इंग्लैण्ड में क्रामवैल ने दूसरे सदन को समाप्त कर दिया था, लेकिन उसके महत्व को देखते हुए 1660 ई० में उसे दोबारा स्थापित करना पड़ा। आज भी वहां दो सदन हैं। अमेरिका में भी स्वतन्त्रता के समय एक ही सदन था, लेकिन बाद में दूसरे सदन की आवश्यकता महसूस होने पर इसकी भी स्थापना करनी पड़ी। आज संसार के अनेक देशों में व्यवस्थापिका के दो सदन पाए जाते हैं। यदि दूसरे सदन की कोई उपयोगिता नहीं होती तो उसे क्यों स्थापित रखा जाता। इसलिए ऐतिहासिक तथ्य भी द्विसदीय विधायिका का ही समर्थन करते हैं।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि दूसरे सदन की आवश्यकता स्वतन्त्र, निष्पक्ष व अनुभवी सदन के रूप में है। चीन को छोड़कर आज बड़ी जनसंख्या वाले देशों में संसद के दो सदन ही पाए जाते हैं। सांस्कृतिक दृष्टि से विभिन्नता वाले समाजों में समान राजनीतिक प्रतिनिधित्व व उनके हितों में सामंजस्य स्थापित करने के लिए दूसरा सदन महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहा है। संघात्मक शासन प्रणालियों वाले देशों में आज दूसरा सदन समन्वयकारी भूमिका निभा रहा है। अतः निष्कर्ष रूप में द्वितीय सदन का होना आधुनिक राज्यों में बहुत ही अनिवार्य है।

द्विसदनीय विधायिका के विपक्ष में तर्क

(Arguments against Bicameral Legislature)

यद्यपि दूसरा सदन अनेक देशों में महत्वपूर्ण कार्य कर रहा है, लेकिन फिर भी उसके ऊपर कुछ आपेक्ष लगाए जाते हैं। इन आपेक्षों में कुछ दम भी दिखाई देता है। इसके विपक्ष में निम्नलिखित तर्क पेश किए जाते हैं :-

(1) दूसरा सदन समाज के दूसरे मत का अभिव्यक्तक होने के कारण समाज में विभाजन की प्रवृत्ति को पैदा करता है।

(2) यह व्यवस्था सम्प्रभुता की धारणा के विरुद्ध है, क्योंकि सम्प्रभुता की अभिव्यक्ति जनता की इच्छा में होती है। उस इच्छा का प्रतिनिधित्व करने में निम्न सदन ही पर्याप्त है। इसलिए उस इच्छा को बांटना अनुचित है।

(3) उपरि सदन व्यर्थ या शरारती दोनों है। यदि वह निम्न सदन के प्रत्येक बिल को पास कर देता है तो वह व्यर्थ है। यदि उसके रास्ते में बाधाएं खड़ी करता है तो वह शरारती है।

(4) निम्न सदन में कानून सोच-विचार के बाद ही पास होते हैं। द्विसदनीय विधायिका के समर्थकों का यह कथन गलत है कि एक सदन में कानून सही नहीं बन पाता। कानून बनने से पहले बिल के कई वाचन होते हैं और उचित प्रक्रिया से गुजरकर ही वह कानून का रूप लेता है।

(5) दूसरे सदन के समर्थकों का यह कथन भी गलत है कि यह पहले सदन की स्वेच्छाचारिता को रोकता है। दूसरा सदन अप्रत्यक्ष रूप में चुना जाने के कारण निम्न सदन से कम शक्तिशाली होने के कारण निम्न सदन पर प्रभावी नियन्त्रण कैसे रख सकता है ? वह निम्न सदन द्वारा पास बिल पर देरी तो कर सकता है उसे निरस्त नहीं कर सकता। भारत जैसे देश में विधानमण्डल पर नियन्त्रण न्यायपालिका ही कर सकती है, दूसरा सदन नहीं।

(6) दूसरा सदन पूंजीपति वर्ग का ही प्रतिनिधित्व करता है, इसलिए यह सर्वसाधारण के हितों के विरुद्ध है।

(7) दूसरा सदन संसद के द्वारा राष्ट्रीय धन को अपव्यय का साधन बन जाता है। लास्की का कहना सही है कि इससे राष्ट्रीय कोष पर अनावश्यक भार पड़ता है।

(8) इससे व्यवस्थापिका के दोनों सदनों में गतिरोध की सम्भावना बढ़ जाती है, क्योंकि दूसरा सदन रूढ़िवादियों और प्रतिक्रियावादियों का समूह होता है।

(9) संघात्मक शासन में दूसरा सदन आवश्यक नहीं है। इसमें अल्पसंख्यकों अथवा संघीभूत इकाईयों के अधिकारों की रक्षा दूसरे सदन की अपेक्षा वैधानिक संरक्षणों एवं स्वतन्त्र न्यायपालिका के द्वारा ही हो सकती है, दूसरे सदन से नहीं।

(10) दूसरे सदन की संगठनात्मक व्यवस्था अनेक देशों में वंशानुगत है या प्रजातन्त्र के सिद्धान्तों के विपरीत है। अतः दूसरा सदन अनावश्यक व अप्रजातन्त्रीय है।

अतः द्विसदनीय विधायिका के पक्ष और विपक्ष में दिए गए तर्कों के आधार पर निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि आधुनिक समयों में दूसरे सदन को व्यर्थ ही माना जाता है। बैंजामिन फ्रेंकलिन ने तो यहां तक कह दिया है कि "व्यवस्थापिका जो दो सदनों में विभाजित है, एक ऐसी गाड़ी के समान है जिसे एक घोड़ा आगे खींच रहा है और दूसरा पीछे।" अबेसियस ने इसे व्यर्थ या शरारती सदन कहा है। लास्की का भी मत है कि संघ की रक्षा के लिए दूसरा सदन कोई प्रभावशाली गारन्टी नहीं है। आज अनेक देशों में दूसरा सदन राष्ट्रीय कोष पर अनावश्यक भार बन रहा है। लेकिन इसका अर्थ यह कदापि नहीं हो सकता कि दूसरा सदन उपयोगी नहीं है। ऐतिहासिक आधार पर इस बात का समर्थन किया जा सकता है कि जिन देशों में दूसरे सदन को समाप्त किया गया था, वहां इसे फिर से स्थापित करना पड़ा। इसकी स्थापना ही इसकी उपयोगिता की गारन्टी है। लीकाक ने तो यहां तक कहा है कि एक सदनीय प्रणाली तो कभी अधिक सफल नहीं रही, लेकिन दो सदनों वाली विधायिका सभी देशों में सफल रही है। इसलिए यह कहना सर्वथा गलत है कि दूसरा सदन अनुपयोगी है। अमेरिका में दूसरा सदन (सीनेट) संसार में शासन-व्यवस्था के लिए एक प्रबल उदाहरण है। भारत में भी राज्य सभा की दूसरे सदन के रूप में प्रभावी भूमिका है। जिन जिन देशों में लोकतन्त्रीय व्यवस्थाएं हैं, वहां पर दूसरे सदन की आवश्यकता अनुभव की जाती है। सर्वसत्ताधिकारवादी तथा तानाशाही या एकात्मक शासन व्यवस्था वाले देशों में तो द्विसदनीय विधायिका की दशा मरे हुए सांप की तरह है जो अपनी रक्षा ही नहीं कर सकता तो जनहितों का ख्याल कैसे रख पाएगा। अतः यह कहना अनुचित है कि आज विश्व की शासन प्रणालियों में दूसरे सदन के महत्व का ह्रास हो रहा है। लोकतन्त्रीय आस्थाओं के प्रहरी के रूप में दूसरे सदन की आज भी महती आवश्यकता है।

वर्तमान समय में व्यवस्थापिका का ह्रास
(Decline of Legislature in Present Time)

यदि आज व्यवस्थापिका के कार्यों और शक्तियों की आलोचनात्मक परीक्षा की जाए तो उनमें गिरावट की स्थिति दृष्टिगोचर होती है। सबसे पहले जेम्स ब्राइस का ध्यान इस ओर गया और उसने अपनी पुस्तक 'Modern Democracies' में विधायिका के ह्रास की बात की, लेकिन वह समस्या की तह तक पहुंचने में नाकाम रहा। उसके बाद के०सी० व्हीयर ने अपनी पुस्तक 'Legislature' में विधायिकाओं के पतन' का अध्याय जोड़ा। उसने विधायिका के ह्रास का कारण कार्यपालिका की शक्तियों में वृद्धि को बताया। रैक्से म्योर ने भी कार्यपालिका की मजबूत स्थिति का परिणाम बताया है। ला पालोम्बरा ने विधायिका के ह्रास का कारण उसकी प्रतिनिध्यात्मकता तथा कार्यपालिका की शक्ति को बढ़ने को माना है। राबर्ट सी० बोन इसे कार्यपालिका तथा विधायिका के सम्बन्धों में आए बदलाव को उत्तरदायी ठहराया है।

आज व्यवस्थापिकाओं के पतन की जो बात चर्चा में है, वह यह है कि आज संसदों का युग लद गया है, नौकरशाही की विजय हो रही है और कार्यपालिका या मन्त्रिमण्डल की तानाशाही स्थापित हो चुकी है। इस चर्चा पर व्हीयर ने अपनी पुस्तक 'Legislature' में अनेक प्रश्न उठाए हैं। उसने लिखा है-"क्या व्यवस्थापिकाओं की शक्ति में कमी आ गई है, क्या इनकी कार्य दक्षता नहीं रही, क्या इनके प्रति जनता की रुचि तथा सम्मान कम हुआ है, क्या विधायकों के व्यवहार में या व्यवस्थापिकाओं के शिष्टाचार में कमी आई है, क्या यह पतन अन्य सामाजिक और राजनीतिक संस्थाओं के मुकाबले या कार्यपालिका के मुकाबले में हुआ है ? व्हीयर का कहना है कि यदि इन बातों को ध्यान में रखकर व्यवस्थापिका के पतन पर विचार किया जाए तो कोई सर्वमान्य हल नहीं निकाला जा सकता। व्यवस्थापिका के पतन को तो कार्यपालिका की शक्तियों में हुई वृद्धि के सन्दर्भ में ही समझा जा सकता है। आज कार्यपालिकाएं ऐसे कार्य करने लगी हैं जो पहले नहीं किए जाते थे। इसी तरह व्यवस्थापिकाएं भी पहले से अधिक कार्य करने लगी हैं। लेकिन कार्यपालिका के मुकाबले में वे काफी पिछड़ी हुई हैं। व्यवस्थापिकाओं के पिछड़ने या पतन की तरफ जाने के अनेक कारण हो सकते हैं :-

(1) कार्यपालिका की शक्तियों में असीम बढ़ोतरी (Tremendous Growth in the Executive Functions) :- व्यवस्थापिका के ह्रास के कारण सबसे पहले कार्यपालिका की शक्तियों में हुई वृद्धि में खोजा जा सकता है। व्हीयर ने कहा है कि दो विश्व युद्धों के कारण विश्व में आए आर्थिक एकता, राज्यों द्वारा समाजवादी या लोककल्याणकारी नीतियों को अपनाने और अन्तर्राष्ट्रीय तनाव के बराबर बना रहने से सरकार ने परिस्थितियों को देखते हुए अपनी कार्यकारी शक्तियों में वृद्धि करनी शुरु कर दी। अब कार्यपालिका ऐसे कार्य करने लगी, जो पहले कोई नहीं करता था। इससे कार्यपालिका का कार्य-क्षेत्र पहले की तुलना में अधिक हो गया है। वैसे तो विधायिका के भी कार्य बढ़े हैं, लेकिन कार्यपालिका जितने

नहीं। कार्यपालिका के मुकाबले विधायिका की शक्तियों का ह्रास ही हुआ है, विकास नहीं।

(2) प्रदत्त व्यवस्थापन का विकास (Development of Delegated Legislation) :- प्रदत्त व्यवस्थापन की व्यवस्था करके विधायिका ने स्वयं ही अपनी शक्तियों का ह्रास किया है। जो कानून विधायिका बनाती थी, वे आज कार्यपालिका द्वारा बनाए जाते हैं। वे कानून भी विधायी कानूनों की तरह ही मान्य होते हैं। इसलिए विधायिका ने कार्यपालिका के प्रति जो शक्ति-प्रत्यायोजन किया है, उससे विधायिका की कुछ शक्ति कार्यपालिका में जाने के कारण विधायिका की शक्तियों का ह्रास ही हुआ है।

(3) संचार साधनों की भूमिका (Role of means of Communications) :- आधुनिक युग में रेडियो, टी०वी, इन्टरनेट जैसी व्यवस्थाओं ने संसद के बाहर भी वाद-विवाद के मंच को विकसित किया है। अब कार्यपालक इन साधनों की सहायता से जनता को अपनी बात कर सकता है और जनता की बात सुन सकता है। इससे जनसम्पर्क का महत्व बढ़ा है। आज संचार साधनों को जनमत का निमाण करने में महत्वपूर्ण माना जाता है। आज संचार के साधन जनमत को सरकार के पक्ष या विपक्ष में तैयार करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहे हैं। इससे संसद की उपयोगिता में कमी आई है। संसद के प्रति जनता के मन में जो डर था, वह अब समाप्त हो गया है। अब लोग संसद के वाद-विवाद की बजाय कार्यपालक को टी०वी० या रेडियो पर ही सुनना पसंद करते हैं। इसलिए विधायिका का ह्रास होना स्वाभाविक ही है।

(4) दबावगुटों व हित समूहों का विकास (Development of Pressure Groups and Interest Groups) :- आधुनिक समय मे जनता की मांगों को सरकार तक पहुंचाने वाले अनेक गैर-सरकारी संगठन खड़े हो गए हैं। आज दबाव गुट व हित समूह जनता की शिकायतों को लेकर विधायिका की बजाय सीधे कार्यपालिका में ही पहुंच जाते हैं। इस निर्णय प्रक्रिया में कार्यपालिका की प्रत्यक्ष भूमिका होने के कारण विधायिका की प्रतिष्ठा को धक्का लगना स्वाभाविक ही है। इससे विधायिका की शक्तियों के ह्रास की बात की जाए तो कोई अतिश्योक्ति भी नहीं होनी चाहिए।

(5) विशेषज्ञ व परामर्शदात्री समितियों का विकास (Development of Consultative and Advisory Committees) :- आज प्रत्येक विभाग में विशेषज्ञों व सलाहकारों के रूप में समितियां मौजूद हैं। विधेयक के प्रारूप से लेकर उनके कानून बनने तक इन समितियों की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। स्वयं विधायिका भी इन्हीं समितियों पर आश्रित है। यदि भूलवश कोई विधायक बिल के बारे में कोई जानकारी चाहने की चेष्टा करता है तो उसे समितियों का हवाला देकर हताश कर दिया जाता है। ऐसी अवस्था में व्यवस्थापिका के सामने ऐसे प्रस्तावों और विधेयकों पर अपना अनुमोदन करना ही पड़ता है। कई बार राष्ट्रहित का वास्ता देकर व्यवस्थापिका को सामान्य विषयों पर वाद-विवाद करने से वंचित कर दिया जाता है। अतः कार्यपालिका के आगे विधायिका बौनी ही पड़ती है।

(6) कार्यपालिका की विदेशी सम्बन्धों में सर्वोच्चता (Supermacy of Executive in Foreign-Relations) :- आज अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को बढ़ावा देने के लिए सारे प्रयास कार्यपालिकाएं ही करती हैं। आज कार्यपालिका ही विदेशी-सम्बन्धों के संचालन में अहम् भूमिका निभाती हैं। कार्यपालिका द्वारा किए गए समझौतों व सन्धियों का विधायिका को अनुमोदन करना ही पड़ता है। अतः विदेशी सम्बन्धों के मामलों में भी विधायिका कमजोर ही पड़ती है।

(7) युद्ध और संकटकालीन परिस्थितियां (War and Emergency Situations) :- युद्ध और संकटकाल में कार्यपालिका ही निर्णय लेने वाली प्रमुख संस्था होती है। लोकतन्त्रीय देशों में तो कार्यपालिका अध्यक्ष द्वारा ऐसी परिस्थितियों में लिए गए निर्णयों का विधानमण्डल द्वारा अनुमोदन करना ही पड़ता है। युद्ध व संकटकाल में आपात निर्णय लेना जरूरी होता है। ऐसे में संसद की बैठक बुलाकर विचार-विमर्श का समय नहीं होता। इसलिए राष्ट्राध्यक्ष सेनाओं का कार्यपालक होने के नाते सर्वेसर्वा होता है। आज परमाणु युग में राष्ट्राध्यक्षों को आपस में हॉट लाइन पर सम्पर्क बनाए रखना आवश्यक हो गया है। यद्यपि युद्ध के बारे में अन्तिम निर्णय लेने का अधिकार विधायिका के पास ही होता है, लेकिन परिस्थितियों को देखते हुए यह निर्णय कार्यपालिका ही ले लेती है। 1965 व 1971 में भारत-पाक युद्ध के समय कार्यपालिका ने ही निर्णय लिया था। 1971 में युद्ध का संचालन भी स्वयं श्रीमती इन्दिरा गांधी ने ही किया था। वियतनाम युद्ध में भी अमेरिका के राष्ट्रपति ने कई बार कांग्रेस की अवहेलना की थी। अतः युद्ध और संकटकालीन परिस्थितियों में कार्यपालिका ही विधायिका पर हावी हो जाती है। इससे विधायिका की शक्तियों के ह्रास की बात चलना स्वाभाविक ही है।

(8) कल्याणकारी राज्यों का उदय (The rise of Welfare-States) :- आज का युग कल्याणकारी राज्यों का युग है। आज

सरकार के कार्य सामाजिक और आर्थिक समस्याओं का समाधान करने तक ही सीमित नहीं है, बल्कि नागरिकों को सब तरह की सुविधाएं या विकास की परिस्थितियां पैदा करने के लिए भी हैं। इससे कार्यपालिका के क्षेत्र का विकास हुआ है और विधायिका की शक्तियों का ह्रास हुआ है।

(9) अनुशासित राजनैतिक दलों का विकास (Growth of Disciplined Political Parties) :- एलेन बाल का यह कथन सही है कि आज अनुशासित राजनीतिक दलों के विकास तथा कार्यपालिका की शक्तियों में हुई वृद्धि के कारण व्यवस्थापिका का ह्रास हुआ है। संसदीय व अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली में कार्यपालिका दल के समर्थन से व्यवस्थापिका की समस्त शक्तियों का प्रयोग ही नहीं करती, अपितु उसके नियन्त्रण से भी मुक्त रहती है। एक दल के बहुमत में तो व्यवस्थापिकाएं कार्यपालिकाओं की कठपुतलियां बनकर रह जाती हैं। शैपीरो ने रूसी जगत में सर्वोच्च सोवियत के लिए कहा था कि रूसी राजनीतिक पद्धति में विधायिका रबड़ की मुहर है।

(10) न्यायिक पुनरावलोकन (Judicial Review) :- न्यायपालिका की इस शक्ति ने विधायिका पर नियन्त्रण किया है। भारत तथा अमेरिका में संघीय न्यायपालिका के रूप में व्यस्थापिका के ऐसे निर्णय अवैध घोषित करने का अधिकार न्यायिक पुनरावलोकन के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालयों को प्राप्त हैं। 1933 में आर्थिक मन्दी के दौरान अमेरिका में सर्वोच्च न्यायालय ने इस शक्ति का प्रयोग करके कई आवश्यक कानूनों को भी रद्द कर दिया था। 1969 में भारत में भी सर्वोच्च न्यायालय ने बैंकों के राष्ट्रीयकरण को अवैध घोषित किया था। इससे स्पष्ट हो जाता है कि न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति भी विधायिका की शक्तियों को मर्यादित करती है।

(11) अन्य कारण (Other Reasons) :- उपरोक्त कारणों के अतिरिक्त भी विधायिका की शक्ति का ह्रास करने वाले कुछ अन्य कारण भी हैं जैसे-व्यवस्थापिका के सदस्य अनभिज्ञ या नौसीखिए होने के कारण कार्यपालिका के सदस्यों के आगे कमजोर पड़ते हैं। कार्यपालिका की तुलना में व्यवस्थापिका के पास साधनों का अभाव भी होता है। कार्यपालिका की तुलना में व्यवस्थापिका का बड़ा आकार होने के कारण उसके सदस्यों में आपसी एकता का अभाव भी पैदा हो जाता है। इसके अतिरिक्त व्यवस्थापिका के सत्र कम ही बार बुलाए जाते हैं, जबकि कार्यपालिका सदा क्रियाशील रहती ह। हाल ही में किए गए दल-बदल कानून में संशोधन ने विधायिका की शक्ति का ह्रास हुआ है और इसके लिए विधायिका काफी हद तक स्वयं दोषी है।

उपरोक्त विवेचन से निष्कर्ष निकलता है कि व्यवस्थापिका का ह्रास हो रहा है। लेकिन इसका अर्थ यह कदापि नहीं समझना चाहिए कि व्यवस्थापिका की मृत्यु हो चुकी है। आज विधायिका जनता की शिकायमें अधिक से अधिक सुनने लगी हं। विधानमण्डलों में आज जनहितज की इतनी अधिक चर्चा होने लगी है कि कार्यपालिका का महत्व घटता नजर आने लगा ह। आज राजनीतिक चेतना के बढ़ने के कारर्ण कार्यपालिका को विधायिका द्वारा प्रश्न पूछे जाने का डर बना रहता है। आज जनता विधानमण्डलों की कार्यवाही को टी०वी० व रेडियो पर सुनने में रुचि लेने लगी है। अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के विकास के कारण भी आज सरकार के कामकाज पर विधायिका द्वारा निगरानी रखना आवश्यक हो गया है। आज सार्वजनिक महत्व के विषयो पर विधायिका अपनी समितियों के माध्यम से नीति-निर्माण पर व्यापक विचार-विमर्श करती है। कानून बनने से पहले किसी बिल की व्यापक जांच-पड़ताल करना आज विधायिका का लोकप्रिय कार्य हो गया है। इसलिए विधायिका के अन्त या ह्रास की बात करना मूर्खता है। आर०बी० जैन ने कहा है-"यह निश्चित है कि दूरगामी प्रवृत्ति विधायिकाओं की मृत्यु या ह्रास की दिशा में नहीं है, जैसी पहले लेखकों की मान्यता रही है।" आज का युग व्यवस्थापिका और कार्यपालिका के मिलन का युग है। इसमें कार्यपालिका की तुलना में विधायिका के ह्रास की बात करना निराधार है। विधायिका के ह्रास की बात विगत शताब्दी में तो ठीक हो सकती है, आज नहीं।

ब्रिटेन में विधायिका का ढांचा

(Legislative Structure in Britain)

ग्रेट ब्रिटेन में विधायिका संसद कहलाती है। ब्रिटेन में संसद ही एकमात्र ऐसी संस्था है जो कानून बनाती है। विधायी क्षेत्र में ब्रिटैन की संसद की स्थिति काफी मजबूत है, क्योंकि वहां अलिखित संविधान के कारण संवैधानिक कानून औ साधारण कानून में कोई अन्तर नही है। संसद के कार्यों में न्यायपालिका तथा अन्य कोई संस्था हस्तक्षेप नहीं कर सकती। ब्रिटेन में संसद का शासन न होकर संसद द्वारा शासन है। 1688 की शानदार क्रान्ति ने ब्रिटेन में राज्य के स्थान पर संसद की सर्वोच्चता का

सिद्धान्त स्थापित किया और तभी से निरन्तर संसद की सर्वोच्चता में वृद्धि हो रही है। ब्रिटिश संसद को संसदीय शासनव की जननी माना जाता है और यह विश्व में संवैधानिक दृष्टि से सबसे अधिक शक्तिशाली निकाय है। डायसी ने लिखा है-"ब्रिटिश संसद कानूनी दृष्टि से इतनी शक्तिशाली है कि वह शिशु को प्रौढ़ घोषित कर सकती है, अवैध शिशु को वैध घोषित कर सकती है, मरणोपरान्त भी किसी व्यक्ति को राजद्रोही सिद्ध कर सकती है और यदि उचित समझे तो किसी भी व्यक्ति को अपना न्यायधीश बना सकती है।" न्यूमैन ने तो इसे राजनीति रूपी शरीर का हृदय तक कहा है। इसकी अद्वितीय एवं असीमित शक्ति के कारण इसे सम्प्रभु कहा जाता है। ब्रिटेन में संसद के दो सदन-लार्ड सभा और कॉमन सदन हैं।

(I) कॉमन सदन

(The House of Commons)

ब्रिटेन में संसद के इस सदन को निम्न-सदन, लोकसदन या लोकसभा के नाम से भी जाना जाता है। यह जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित सदन है। यह जन-भावनाओं का प्रतीक है। यह संसार का सर्वाधिक प्राचीन प्रतिनिधि सदन है जिसे आमतौर पर संसद ही कह दिया जाता है। यद्यपि जन्म और विकास के दृष्टिकोण से तो यह निम्न सदन है, लेकिन महत्व के दृष्टिकोण से यह प्रथम सदन है। जैसे-जैसे लार्ड सभा की शक्तियों व महत्व में कमी आई है, वैसे-वैसे इस सदन का महत्व बढ़ता रहा है। न्यूमैन ने लिखा है-"लोकसभा सरकार एवं जनता के मध्य सम्पर्क का केन्द्र है जिसके द्वारा दोनों एक-दूसरे पर अपना प्रभाव डालते हैं।" सिडनी लो ने भी इसे संसार में सर्वाधिक महत्वपूर्ण सार्वजनिक सभा माना है।

कॉमन सदन की रचना (Composition of the House of Commons) :- 1832 के सुधार अधिनियों के बाद इस सदन के स्वरूप में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। 1948 के जन प्रतिनिधित्व अधिनियम के तहत इसके सदस्यों की संख्या 626 थी। 1955 में किए गए परिवर्तनों के अनुसार इसकी सदस्य संख्या 630 हो गई। परन्तु 1 मई, 1997 की स्थिति के अनुसार हाऊस ऑफ कॉमन्स की सदस्य संख्या 659 है। इस सदन के प्रतिनिधि जनता द्वारा व्यस्क मताधिकार के आधार पर प्रत्यक्ष तरीके से चुने जाते हैं। वर्तमान में मताधिकार की आयु 18 वर्ष है जो सभी स्त्री-पुरुषों को प्राप्त है। इसके सदस्यों का चुनाव एकल सदस्य निर्वाचन क्षेत्र से होता है।

मतदाताओं की योग्यता (Qualification of Voters) :- वर्तमान समय में 18 वर्ष की आयु प्राप्त व्यक्ति को मत देने का अधिकार है। विदेशी, पागल, अपराधी, दिवालिया और पीयर को इसमें मत देने का अधिकार प्राप्त नहीं है।

कॉमन सदन के सदस्यों की योग्यताएं (Qualifications of the Members of the House of Commons) :- कॉमन सदन का सदस्य बनने के लिए निम्नलिखित योग्यताएं हैं :-

(1) वह ब्रिटेन का नागरिक हो।

(2) वह 21 वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो।

(3) उसका नाम मतदाता सूची में हो।

(4) वह देश व राष्ट्र के प्रति निष्ठावान हो।

(5) वह विदेशी, दिवालिया, पागल व अपराधी न हो।

(6) वह कुलीन जन या पीयर तथा लार्ड सभा का सदस्य न हो।

(7) वह इंग्लैण्ड, स्टाटलैण्ड तथा आयरलैण्ड में स्थापित गिरजाघरों और रोमन कैथोलिक चर्च का पादरी न हो।

(8) वह 1957 में पाए किए गए 'कॉमन सदन अयोग्यता अधिनियम' के प्रावधानों से मुक्त हो।

(9) वह किसी सरकारी लाभदायक पद पर न हो।

कॉमन सदन के सदस्यों का चुनाव (Election of the Members of the House of Commons) :- कॉमन सदन के सदस्यों का चुनाव व्यस्क मताधिकार के आधार पर एक सदस्यीय निर्वाचन क्षेत्र के आधार पर किया जाता है। इसके लिए सम्पूर्ण देश को 659 क्षेत्रों में बांटा जाता है। इसमें 18 वर्ष की आयु पूरी कर चुके व्यक्ति मताधिकार का प्रयोग कर सकते हैं। 1957 के कामन सदन अयोग्यता अधिनियम के अन्तर्गत अपने वाले व्यक्ति मतदान से दूर रहते हैं।

कॉमन सदन का कार्यकाल (Tenure of the House of Commons) :- 1911 से पहले कामन सदन का कार्यकाल 7 वर्ष था। लेकिन 1911 के संसद अधिनियम के पारित हो जाने पर इसका कार्यकाल 5 वर्ष निर्धारित किया गया। वर्तमान में इसका कार्यकाल 5 वर्ष ही है, लेकिन संकटकाल या विशेष परिस्थितियों में इसका कार्यकाल घटाया-बढ़ाया जा सकता है। संसद में विश्वास मत खो देने पर सम्राट प्रधानमन्त्री की सलाह पर इसे समय पूर्व भी भंग कर सकता है। 1970 में प्रधानमन्त्री विल्सन ने कामन सदन को भंग करवा दिया था। ऐसा ही 1983 और 1992 में भी किया गया।

कॉमन सदन के सदस्यों के विशेषाधिकार **(Privileges of the Members of the House of Commons)** :- कॉमन सदन के सदस्यों को निम्नलिखित विशेषाधिकर प्राप्त हैं :-

(1) संसद के अधिवेशन के 40 दिन पूर्व और 40 दिन बाद तक राज्य के विरुद्ध घोर अपराध किए जाने पर भी किसी सदस्य को गिरफ्तार नहीं किया जा सकता।

(2) कॉमन सदन के सदस्यों पर सदन में दिए गए भाषणों पर कोई कानूनी कार्यवाही नहीं की जा सकती।

(3) इस सदन के सदस्यों को सामूहिक रूप से या स्पीकर के माध्यम से सम्राट तक अपनी बात पहुंचाने का अधिकार है।

(4) कॉमन सदन को यह अधिकार है कि यदि कोई व्यक्ति सदन के विशेषाधिकार का अतिक्रमण करता है तो उसे जेल भेजा जा सकता है।

(5) सदन का अपनी कार्यवाही पर सम्पूर्ण नियन्त्रण रहता है।

कॉमन सदन के सदस्यों के वेतन व भत्ते **(Salary and Allowances of the Members of the House of Commons)** :- जून 1980 में कॉमन सदन के सदस्यों को 10725 पौण्ड वार्षिक वेतन तथा अधिवेशन के दिनों में दैनिक भत्ता भी मिलता था। लेकिन वर्तमान समय में कॉमन सदन के सदस्यों को 66650 पौंड वेतन मिलता है। इसके अतिरिक्त कई तरह के भत्ते तथा 10 वर्ष तक कॉमन सदन का सदस्य रहने तथा 65 वर्ष की आयु पार कर चुके सदस्यों को पेंशन भी दी जाती है।

गणपूर्ति तथा अधिवेशन **(Quorum and Session)** :- कॉमन सदन का अधिवेशन चलाने के लिए 40 सदस्यों का उपस्थित होना जरूरी है। यदि 40 सदस्यों की संख्या या गणपूर्ति न हो तो संसद का अधिवेशन नहीं चल सकता। 'The Bill of Rights 1689' के अनुसार वर्ष में कम से कम एक बार कॉमन सदन का अधिवेशन अवश्य बुलाया जाता है। कॉमन सदन के अधिवेशन वेस्टमिंस्टर भवन में होते हैं। एक अधिवेशन प्रायः 5 से 7 महीने तक चलता है। कॉमन सदन का अधिवेशन सप्ताह के प्रथम 5 दिन तक चलता है और इसकी बैठकों दोपहर बाद शुरु होती हैं। अधिवेशन सम्बन्धी नियम परम्पराओं और राजनीतिक व्यवहार पर आधारित हैं। अधिवेशन का सभापतित्व स्पीकर या अध्यक्ष करता है जिसका लोकसदन या कॉमन सदन में सर्वाधिक शक्तिशाली एवं गौरवपूर्ण स्थान है।

कॉमन सदन की शक्तियां व कार्य

(Powers and Functions of the House of Commons)

ब्रिटिश कॉमन सदन की शक्तियां महान होने के कारण इस सदन को लोकप्रिय सदन कहा जाता है। जैसे-जैसे लार्ड सभा की शक्तियों में कमी आती गई, वैसे-वैसे कामन सदन की शक्तियों व अधिकारों में वृद्धि होती गई। 1911 के संसद अधिनियम और फिर 1949 के अधिनियम ने इस सदन को काफी शक्तिशाली बना दिया है। इस सदन की प्रमुख शक्तियां व कार्य निम्नलिखित हैं :-

(1) विधायी या व्यवस्थापन सम्बन्धी कार्य **(Legislative Powers)** :- ब्रिटेन में कानून-निर्माण की प्रक्रिया पर संसद का पूर्ण नियन्त्रण है। संसद में लार्ड सभा, कॉमन सदन तथा सम्राट तीनों शामिल हैं। 1911 के संसद अधिनियम ने सम्राट व लार्ड सभा की विलम्बकारी शक्ति को और अधिक सीमित कर दिया है अर्थात् किसी विधेयक को सम्राट तथा लार्ड-सभा अधिक लम्बे समय तक रोक नहीं सकते। यदि साधारण बिल को कॉमन सदन लगातार तीन अधिवेशनों में पास कर दे और इतने में 2 वर्ष का समय भी बीत जाए तो लार्ड सदन द्वारा उस विधेयक को पास न किए जाने पर भी वह विधेयक कानून का रूप ले लेता है। 1911 के संसद कानून ने लार्ड सभा तथा सम्राट दोनों की विलम्बकारी शक्ति या निषेधाधिकार (Veto) की शक्ति को समाप्त कर दिया है। अब 1949 के संसद कानून ने लार्ड सदन की 2 वर्ष की देरी करने वाली शक्ति को एक वर्ष कर दिया है। यद्यपि वर्तमान समय में साधारण बिल को किसी भी सदन में पेश किया

जा सकता है, लेकिन प्रायः 90 प्रतिशत बिल कॉमन सदन में ही पेश किए जाते हैं। कॉमन सदन द्वारा पास किए गए बिल प्रायः कानून का रूप ले ही लेते हैं। धन विधेयक को लार्ड-सभा एक महीने तक तथा साधारण विधेयक को 1 वर्ष तक ही रोक सकती है। इस दौरान यदि कॉमन सदन उस विधेयक को फिर से पास करके सम्राट की औपचारिक अनुमति प्राप्त कर लेती है। यद्यपि सम्राट को निषेधाधिकार प्राप्त है, लेकिन वह उसका प्रयोग नहीं करता। लेकिन विधायी शक्तियों के सन्दर्भ में व्यवहार में मन्त्रिमण्डल तथा प्रधानमन्त्री ही उनका प्रयोग करता है। व्यक्तिगत रूप में कॉमन सदन के सदस्यों के पास कानून-निर्माण की कोई शक्ति नहीं है। व्यवहार में बजट निर्माण तथा प्रदत्त-व्यवस्थापन के तहत विधायिका की वास्तविक शक्ति कम महत्वपूर्ण है। फिर भी न्यायिक पुनरावलोकन के अभाव में कॉमन सदन द्वारा किए गए विधायी कार्य काफी महत्वपूर्ण होते हैं।

(2) वित्तीय शक्तियां (Financial Powers) :- यद्यपि बजट-निर्माण में कार्यपालिका का ही महत्वपूर्ण योगदान होता है, लेकिन राष्ट्रीय वित्त पर लोक सदन या कॉमन सदन का ही वास्तविक नियन्त्रण है। वित्तीय विधेयक इसी सदन में पेश किए जा सकते हैं। लार्ड सदन वित्त विधेयक को केवल एक महीने तक रोक सकता है। यदि किसी बिल के वित्तीय बिल होने पर कोई मतभेद हो जाए तो उस पर निर्णय देना कॉमन सदन का ही अधिकार है। इस सदन की स्वीकृति के बिना न तो कोई कर लगाया जा सकता है और न ही कोई व्यय किया जा सकता है। सम्राट द्वारा की गई धन सम्बन्धी मांग पर भी यही सदन स्वीकृति देता है। वित्तीय अनुदानों के सम्बन्ध में कॉमन सदन को अन्तिम शक्ति प्राप्त है। देश का वार्षिक बजट वित्तमन्त्री इसी सदन में प्रस्तुत करता है। इसमें आय-व्यय का पूरा ब्यौरा होता है। इसकी पूरी समीक्षा कॉमन सदन द्वारा की जाती है। इस सदन की लोक लेखा समिति तथा प्राकलन समिति वार्षिक बजट की विस्तृत जांच व प्रतिवेदन प्रस्तुत करती है। मन्त्रिमण्डल अपने समस्त कार्यों के लिए इसी सदन के प्रति उत्तरदायी होता है। लेकिन व्यवहार में कठोर दलीय अनुशासन ने उस सदन को कम महत्वपूर्ण बना दिया है। वित्तमन्त्री द्वारा प्रस्तुत बजट उसी रूप में पास हो जाता है और करों सम्बन्धी समस्त निर्णय मन्त्रिमण्डल ही लेता है। इस सदन को तो वस्तुतः उनकी पुष्टि करनी ही पड़ती है। फिर भी यह सदन राष्ट्रीय हित पर विभिन्न तरीकों से कुछ न कुछ नियन्त्रण रखती ही है।

(3) कार्यपालिका पर नियन्त्रण (Control over Executive) :- ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल के हाथ में इतनी शक्तियां हैं कि यदि उन्हें नियन्त्रित न किया जाए तो वे तानाशाही का कारण बन सकती हैं। इसी कारण लोकसभा कार्यपालिका पर नियन्त्रण करती हैं। ब्रिटिश अभिसमयों के अनुसार मन्त्रिमण्डल लोकसभा या कॉमन सदन के प्रति उत्तरदायी होता है। लोकसभा ही मन्त्रिमण्डल के अस्तित्व को बनाए रखती है। मन्त्रिमण्डल के प्रमुख सदस्य लोकसभा के भी सदस्य होते हैं तथा लोकसभा में बहुमत दल के नेता को ही प्रधानमन्त्री नियुक्त किया जाता है। इस सदन के सदस्यों का बहुमत न होने पर प्रधानमन्त्री सहित सम्राट मन्त्रिमण्डल को त्यागपत्र देना पड़ता है। लास्की ने लिखा है -"सरकार बनाना तथा उसे राज-काज करने का नियमित अधिकार प्रदान करना या न करना लोकसभा का ऐसा कार्य है जिस पर अन्य सभी कार्य निर्भर करते हैं।" यदि कॉमन सदन सरकार को प्रशासन चलाने के लिए नियमित अधिकार प्रदान न करे और उसे अपना आवश्यक समर्थन न दे तो सरकार का कार्य चलना असम्भव हो जायेगा और सम्पूर्ण शासन तन्त्र ठप्प पड़ जायेगा। कॉमन सदन प्रश्न पूछकर, आलोचना करके, स्थगन प्रस्ताव, निन्दा प्रस्ताव, अविश्वास प्रस्ताव, वित्तीय अधिकार आदि साधनों का प्रयोग करके कार्यपालिका को नियन्त्रित करती रहती है। कॉमन सदन के सदस्य किसी भी नीति अथवा सार्वजनिक महत्व के किसी भी विषय पर वाद-विवाद की मांग कर सकते हैं। यह सदन काम रोको प्रस्ताव लाकर या मन्त्रिमण्डल के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पास करके मन्त्रिमण्डल पर प्रभावी नियन्त्रण रहता है। लेकिन व्यवहारिक धरातल पर स्थिति कुछ और ही हो जाती है। कठोर दलीय अनुशासन तथा बहुमत के कारण मन्त्रिमण्डल लोकसभा से किसी भी स्थिति में कमजोर नहीं है। व्यवहार में मन्त्रिमण्डल अपनी इच्छानुसार हर विधेयक पास करवा लेता है और नीति-निर्माण सम्बन्धी निर्णय भी स्वयं ही लेता है। कॉमन सदन को यह भय भी बना रहता है कि कहीं ऐसा न हो कि प्रधानमन्त्री कॉमन सदन को भंग करवाकर नए चुनाव न करवा दे। इसी कारण जेनिंग्स ने लिखा है- "लोकसभा का कार्य सरकार पर नियन्त्रण रखना नहीं है; बल्कि आलोचना स्थल के रूप में कार्य करना और बाह्य मत की ओर ध्यानाकर्षण करना है।"

(4) कॉमन सदन जन-सेवक के रूप में (The House fo Commons as a Public-Servant) :- लोकसभा या कॉमन सदन के सदस्य जन-प्रतिनिधि हैं। वे जनता की शिकायतों को सदन के माध्यम से सरकार तक पहुंचाते हैं तथा उनका निवारण करने के लिए उसे बाध्य भी करते हैं। लास्की ने लिखा है-"जन कष्टों की अभिव्यक्ति से अभिप्राय जनता के कष्टों पर ध्यानाकर्षण शक्ति से है। जहां इस शक्ति का अभाव है वहां अत्याचार होना जरूरी है।" जनता को सरकार के विरुद्ध

कई शिकायतें होती हैं। कॉमन सदन का विरोधी दल कभी तो स्वतन्त्र रूप से तो कभी सत्तारूढ़ दल के सदस्यों के साथ मिलकर जन-शिकायतों का समाधान करवाने का प्रयास करता है। विरोधी दल के सदस्य जन-समस्याओं को लेकर मन्त्रियों से प्रश्न पूछते रहते हैं। विरोधी दल की सक्रिय आलोचनात्मक भूमिका कामन सदन को जन-सेवक का पद प्रदान करती है। जेनिंग्स ने तो यहां तक लिख दिया है-"यह जानने के लिए कि जनता स्वतन्त्र है केवल यही जानना आवश्यक है कि क्या कोई विरोधी दल है और यदि है तो कहां।" कॉमन सदन में आलोचनात्मक कार्य के परिणामस्परूप उदासीन और अक्षम प्रशासन से जनता की सुरक्षा होती है। इसी कादण जेनिंग्स ने कॉमन सदन को आलोचना का मेल तथ लोकतन्त्र का केन्द्र कहा है।

(5) नेतृत्व का शिक्षालय (School of Leadership) :- कॉमन सदन में व्यापक विचार-विमर्श होता है। जो व्यक्ति कॉमन सदन की कार्यवाही की जानकारी कर लेता है और विरोधी दल के प्रश्नों के उत्तर चतुराई से देता ह, वह आगे चलकर अच्छा नेता बन सकता है। ब्रिटेन के इतिहास में ऐसें कई उदाहरण हैं जब कॉमन सदन ने देश को चर्चिल जैसे अच्छ नेता दिए हैं। इसी कारण ब्रिटेन के प्रधानमन्त्री विंस्टन चर्चिल ने स्वयं कहा था-"मैं जो कुछ भी हूं, लोकसदन द्वारा बनाया गया हूं।"

(8) अन्य कार्य (Miscellaneous Functions) :- कॉमन सदन अपने अध्यक्ष (Speaker) तथा 2 उपाध्यक्षों का चुनाव भी करता है। यह न्यायधीशों को हटाने में भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। ऐसा केवल तभी किया जा सकता ह, जब न्यायधीश पर कदाचार का आरोप हो और दोनों सदन उसके विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव पास करें

कॉमन सदन की वास्तविक स्थिति

(Actual Position of the House of Commons)

ब्रिटेन में सिद्धान्त तथा व्यवहार में काफी अन्तर है। जो सिद्धान्त में है, वह व्यवहार में नहीं पाया जाता ओर जो व्यवहार में होता है, वह सैद्धान्तिक सत्य से परे रहता है। यही बात कॉमन सदन की शक्तियों के बारे में लागू होती है। सिद्धान्त में तो ब्रिटेन का कॉमन सदन काफी शक्तिशाली है, लेकिन व्यवहार में इसकी स्थिति कम महत्वपूर्ण है। आज ब्रिटेन में कॉमन सदन या संसद की अपेक्षा कार्यपालिका अधिक शक्तिशाली हो गई है। मन्त्रिमण्डल ही सदन का नेतृत्व करता है। जो शक्तियां कामन सदन की हैं, उनका प्रयोग मन्त्रिमण्डल ही करने लगा है। प्रदत्त व्यवस्थापन की व्यवस्था ने जब स्वास्थ्य, शिक्षा, सामाजिक कल्याण व दरिद्रता उन्मूलन के कार्यों के लिए नए कानून बनाए हैं। इसी कारण वर्तमान समय में 'लोकसदन के शासन' के स्थान पर 'लोकसदन द्वारा शासन' की प्रथा का विकास हो रहा है। व्यवहार में लोक सदन की शक्तियों का प्रयोग कार्यपलिका करती है, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि लोकसदन या कॉमन सदन की स्थिति पूर्णतया महत्वहीन है। व्यवहार में लोकसदन ही ब्रिटिश संसद है जिसका प्रमुख कार्य सरकारी नीतियों तथा कार्यक्रमों की आलोचना करना है। कोई भी सरकार लोकसदन की उपेक्षा नहीं कर सकती। इसी कारण आज ब्रिटेन में लोकसदन तथा मन्त्रिमण्डल के नेतृत्व के बीच संतुलन कायम करने पर बल दिया जाने लगा है। इसी दृष्टि से कई बार संसद को मन्त्रिमण्डीय नियन्त्रयण से मुक्त रखने के लिए संसदीय प्रकिया में भी सुधारों की मांग की जाती है।

(II) लार्ड सदन

(The House of Lords)

ब्रिटिश लार्ड सभा विश्व की सर्वाधिक प्राचीन धारा-सभा है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह लोकसभा या कॉमन सदन के एक हजार से भी अधिक पुरानी है। वर्तमान लार्ड सदन को नार्मन एजिवन काल की 'महान परिषद (The Magnum Concillium or the Great Council) की उत्तराधिकारिणी माना जाता है। इस सदन का विकास राजतन्त्र के विकास के साथ ही हुआ है। आधुनिक युग में यह सदन ही एकमात्र ऐसा उच्च सदन है जो वंशानुगत आधार पर संगठित है। 1912 तक आते आते इस सदन ने अपनी शक्तियां खो दी और वे शक्तियां कॉमन सदन के हाथों में चली गई। इसी कारण आज इसे उच्च सदन कहा जाना अपमानजनक सा प्रतीत होता है। यह उच्च सदन कहलाने का अधिकारी केवल इसी आधार पर रह गया है कि इसमें उच्च या कुलीन वग के व्यक्ति होते हैं।

लार्ड सदन की रचना (Composition of the House of Lords) : लार्ड सदन विश्व का बड़ा सदन माना जाता ह। इसकी

सदस्य संख्या समयानुसार परिवर्तित होती रही हैं। प्रधानमन्त्री के परामर्श पर सम्राट द्वारा नए पीयर (Peer) नियुक्त किए जा सकते हैं। 1959 में इस सदन की सदस्य संख्या 878 थी जो 1981 में बढ़कर 1168 हो गई जिसमें 26 धार्मिक सामन्त भी शामिल थे। वर्तमान समय में इस सदन की सदस्य संख्या 1198 है जो विश्व में सर्वाधिक है। इस सदन के अधिकतर सदस्य पैतृक आधार पर बने हुए हैं। इनमें जमींदार, धनी व्यक्ति, कुलीन व्यक्ति तथा धार्मिक दण्डाधिकारी आदि व्यक्ति शामिल हैं। इस सदन में राजवंश के सदस्य, आनुवांशिक पीयर, धार्मिक पीयर, स्काटलैण्ड के आनुवंशिक पीयर, न्यायकर्ता या लॉ-लार्ड तथा आजीवन कुलीन पुरुष तथा कुलीन महिलाएं हैं। डा० स्वराज पाल प्रथम अप्रवासी भारतीय हैं जिन्हें लार्ड सदन का सदस्य बनाया गया है। लार्ड सदन वंशानुगत आधार पर निर्मित होने के कारण एक स्थाई सदन है।

लार्ड सदन के सदस्यों के विशेषाधिकार एवं निर्योग्यताएं (Privileges and Disqualifications of the Members of the House of Lords) :- लार्ड सदन के सदस्यों को भाषण व अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता प्राप्त है। सदन के अधिवेशन के दौरान उन्हें गिरफ्तार नहीं किया जा सकता। लार्ड सदन के सदस्य को सम्राट के पास बातचीत के लिए सीधे जाने का अधिकार है। लार्ड सदन के सदस्यों को अपने विशेषाधिकारों का उल्लंघन करने वाले व्यक्ति के विरुद्ध कार्यवाही करने का अधिकार प्राप्त है। इस सदन के सदस्यों को यह भी अधिकार प्राप्त है कि वे सदन द्वारा अयोग्य घोषित सदस्यों को सदन की कार्यवाही में भाग लेने से रोक सकते हैं।

लार्ड सदन की सदस्यता 18 वर्ष से कम आयु के व्यक्ति, विदेशी, दिवालिए, पागल, अपराधी, राजद्रोही आदि को नहीं दी जा सकती। लार्ड सदन के सदस्य कॉमन सदन के सदस्य नहीं बन सकते और न ही संसद के चुनाव में वोट डाल सकते हैं। यदि कोई व्यक्ति लार्ड सदन या कॉमन सदन का सदस्य बनना चाहे तो उसे लार्ड सदन की सदस्यता छोडनी पड़ेगी।

लार्ड सदन के सदस्यों का वेतन व भत्ते (Salary and Allowances of the Members of the House of Commons) :- 1957 से पहले लार्ड सदन के सदस्यों को कोई वेतन तथा भत्ता नहीं मिलता था। आज भी इन सदस्यों को कोई वेतन नहीं मिलता। इन्हें केवल 32 पौंड के हिसाब से प्रतिदिन भत्ता मिलता है।

लार्ड सदन का सभापति (Chairman of the House of Lords) :- लार्ड सदन में एक लार्ड चांसलर होता है जो सदन का सभापति होता है। वह मन्त्रिमण्डल का भी अनिवार्य सदस्य होता है। लार्ड चांसलर की नियुक्ति प्रधानमन्त्री की सिफारिश पर राजा द्वारा की जाती है। लार्ड चांसलर संसद के किसी भी सदन का सदस्य हो सकता है और यदि वह सदन के किसी भी सदन का सदस्य नहीं है तो तो राजा उसे लार्ड सदन का सदस्य नियुक्त कर देता है। लार्ड चांसलर को 126138 पौंड वार्षिक वेतन तथा रिटायरमैंट पर पेंशन भी मिलती है। लार्ड सदन में लार्ड चांसलर की महत्वपूर्ण स्थिति होती है। उसका कार्यकाल मन्त्रिमण्डल के साथ ही चलता है। इसके बैठने के लिए लार्ड सदन में एक विशेष कुर्सी होती है जिसे वूलसेक (Woolsack) कहा जाता है। उस कुर्सी पर बैठकर वह सदन की अध्यक्षता करता है। उसे लार्ड सदन में अनुशासन बनाए रखने का पूर्ण अधिकार प्राप्त है। जब लार्ड सदन सर्वोच्च न्यायालय के रूप में कार्य करता है तो तब भी चांसलर ही लार्ड सदन की अध्यक्षता करता है। वह प्रिवि परिषद की न्यायिक समिति की भी अध्यक्षता करता है। न्यायधीशों की नियुक्ति तथा न्यायपालिका के संगठन पर नियन्त्रण रखने का कार्य भी वही करता है। न्यायधीशों की नियुक्ति सम्राट चांसलर की सलाह से ही करता है। व्यवहार में राजा द्वारा न्यायिक शक्तियों का प्रयोग चांसलर की सलाह से ही किया जाता है। राज परिवार के संरक्षण में चलने वाले हस्पतालों, पागलखानों और अनाथालयों की संचालन व्यवस्था पर भी चांसलर का ही नियन्त्रण रहता है। वह राजा की अनुपस्थिति में संसद में क्राउन (ताज) के नाम से भाषण भी देता है। लेकिन चांसलर के बारे में यह बात महत्वपूर्ण है कि उसे सदन में निर्णायक मत देने का अधिकार नहीं है। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि चांसलर की स्थिति कमजोर है। ब्रिटेन की समस्त न्यायपालिका उसी के नियन्त्रण में कार्य करती है। अतः चांसलर का पद ब्रिटिश विधायिका में सर्वोच्च व सम्मान का पद है।

लार्ड सदन का अधिवेशन (Session of the House of Lords) :- यद्यपि ब्रिटिश संसद का अधिवेशन एक ही समय पर होता है, परन्तु दोनों सदनों की बैठक अलग-अलग होती है। लार्ड सदन की बैठकें वैस्टमिंस्टर स्थित एक वैभवशाली भवन में होती हैं। लार्ड सदन की बैठकें सप्ताह में केवल चार दिन सोमवार से वीरवार तक होती हैं। सदन में साधारणतया एक घन्टा ही कार्य होता है। लार्ड सदन में आवश्यक गणपूर्ति 3 सदस्यों की है, लेकिन कोई भी बिल 30 सदस्यों की उपस्थिति के बिना पास नहीं हो सकता। इस सदन में वाद-विवाद काफी उच्च स्तर का होता है। इस सदन की समिति प्रणाली भी कॉमन सदन की तरह ही है।

लार्ड सदन के कार्य व शक्तियां

(Functions and Powers of the House of Lords)

1832 के 'संसद सुधार अधिनियम' से पहले इस सदन की शक्तियां महत्वपूर्ण थी, लेकिन 1832 के सुधान अधिनियम के पास होते ही इसकी शक्तियों में कमी आती गई। 1911 तथा 1949 के संसदन अधिनियमों ने इसकी शक्तियां और अधिक कम कर दी। प्रजातन्त्र के विकास ने ब्रिटिश लार्ड सदन को असामयिक और असंगतता प्रदान की ह। इसी कारण आग और जिंक ने लिखा है-"आज लार्ड सभा दूसरा सदन नहीं, बल्कि दूसरे दर्जे का सदन हो गया है।" इसलिए आज अन्य विद्वान भी लार्ड सदन की अप्रासंगिकता की बात करने लगे हैं। फिर भी इस सदन की अपनी शक्तियां व कार्य हैं जो निम्नलिखित हैं :-

(1) विधायी या कानून-निर्माण की शक्तियां (Legislative Powers) :- प्रारम्भ में लार्ड सदन को कॉमन सदन के समान ही विधायी शक्तियां थीं। वह किसी भी विधेयक को अस्वीकृत कर सकता था। इसकी स्वीकृति के बिना कॉमन सदन द्वारा पारित बिल कानून का रूप नहीं ले सकता था। लेकिन 1911 के संसद-कानून ने इस सदन की विधायनी शक्तियां कम कर दी। इस कानून के अनुसार यदि किसी साधारण बिल को लोक सदन (कॉमन सदन) लगातार तीन अधिवेशनों में पास कर दे तो इतने में दो वर्ष का समय मिल जाए तो लार्ड सदन द्वारा बिल को पास न करने पर भी उसे कानून का रूप दे दिया जाता है। इस एक्ट ने लार्ड सदन की निषेधाधिकार की शक्ति सीमित कर दी है। अब लार्ड सदन 1949 के एक्ट के अनुसार उस बिल को एक वर्ष तक ही रोक सकता है। यदि एक वर्ष के बाद कॉमन सदन उस विधेयक को पुनः पारित कर तो वह विधेयक सम्राट के हस्ताक्षर होते ही कानून बन जाता है।

(2) वित्तीय शक्तियां (Financial Powers) :- वित्तीय क्षेत्र में भी लार्ड सदन की शक्तियां महत्वहीन हैं। वित्तीय क्षेत्र में भी कॉमन सदन ही अधिक शक्तिशाली है। वित्तीय विधेयक केवल कॉमन सदन में ही पेश किए जाते हैं। लार्ड सदन कामन सदन की अनुमति के बिना किसी भी वित्त विधेयक को न तो रद्द कर सकती है और न ही उसमें परिवर्तन कर सकती है। लार्ड सदन की अनुमति प्राप्त किए बिना भी कॉमन सदन द्वारा पास हो जाने पर धन-विधेयक एक महीने बाद कानून का रूप ले लेता है। इसी तरह किसी भी विधेयक के बारे में कि यह वित्त विधेयक है या साधारण विधेयक, फैसला भी कॉमन सदन का स्पीकर ही करता है। अतः वित्तीय क्षेत्र में भी लार्ड सदन महत्वहीन है।

(3) कार्यपालक शक्तियां (Executive Powers) :- लार्ड सदन के पास कॉमन सदन की तरह मन्त्रिमण्डल पर नियन्त्रण रखने का कोई साधन नहीं है। लार्ड सदन तो केवल सरकार की आलोचना करके या प्रश्न पूछ कर कार्यपालिका पर प्रभाव ही डाल सकता है। लेकिन कई बार कुछ मन्त्री लार्ड सदन से ही लिए जाते हैं और इसकी स्थिति में कुछ सुधार अवश्य आता है। लेकिन लार्ड सदन को मन्त्रिमण्डल के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पास करने का कोई अधिकार नहीं है। अतः लार्ड सदन की कार्यकारी शक्तियां भी अधिक महत्व की नहीं हैं।

(4) न्यायिक शक्तियां (Judicial Powers) :- लार्ड सदन को ब्रिटिश शासन प्रणाली की सर्वोच्च न्यायपालिका माना जाता है। परन्तु न्यायिक मामलों में सम्पूर्ण सदन भाग नहीं लेता, बल्कि लार्ड चान्सलर तथा 11 लार्ड सामन्त ही भाग लेते हैं। न्यायधीशों को अपदस्थ करने में सदन के दूसरे सदस्यों का भी हाथ हो सकता है। लार्ड सदन किसी भी व्यक्ति को सदन के विशेषाधिकारों का अतिक्रमण करने पर सजा दे सकता है। यदि महान्यायवादी यह सिद्ध कर दे कि अमुक विषय असाधारण सार्वजनिक महत्व का है तो लार्ड सदन फौजदारी विषय पर भी अपीलें सुन सकता है। अपीलीय क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत यह सदन ब्रिटेन और उत्तरी आयरलैण्ड की दीवानी अपीलें भी सुन सकता है, यदि अपीलीय न्यायालय इसकी अनुमति दे दे। न्यायालय के रूप में कार्य करते समय इस सदन की अध्यक्षता भी लार्ड चान्सलर ही करता है। लार्ड सदन का निर्णय अन्तिम होता है जिसे कोई भी संसद या न्यायालय नहीं बदल सकता।

(5) विचारात्मक कार्य (Deliberative Functions) :- लार्ड सदन की उपयोगिता इसके विचारात्मक कार्यों के कारण ही है। यह सदन सार्वजनिक विषयों जैसे विदेश नीति, गृह नीति, आर्थिक तथा समाज सुधारों आदि विषयों पर व्यापक विचार-विमर्श करता है।, इस सदन के सदस्य अनुभवी व उच्च कोटि के विद्वान होते हैं। इस सदन के सदस्य महत्वपूर्ण प्रश्नों पर विचार करने के लिए सदैव तैयार रहते हैं। इस सदन के वाद-विवाद का जनमत पर काफी अच्छा प्रभाव पड़ता है क्योंकि इस सदन में शान्त व स्वतन्त्र वातावरण रहता है और प्रत्येक विषय पर गहराई व गम्भीरता से विचार-विमर्श होता है।

उपरोक्त विवेचन के बाद कहा जा सकता है कि लार्ड सदन केवल एक पुनर्विचारक और पुनर्निरीक्षक सदन है। कानून निर्माण आकर वित्तीय क्षेत्र में इसकी शक्तियां महत्वहीन हैं। मन्त्रिमण्डल भी लार्ड सदन के प्रति उत्तरदायी नहीं है।। यह तो केवल एक परामर्शदात्री निकाय बनकर रह गया है। इसकी शक्ति और कार्य तो विचार और आलोचना करने तक ही सिमट गए हैं। इसी कारण आज लार्ड सदन को समाप्त करने की मांग उठने लगी है।

लार्ड सदन का औचित्य

(Justification of the House of Lords)

यद्यपि लार्ड सदन की शक्तियां और महत्व कॉमन सदन की तुलना में काफी कम हैं। कई विद्वानों ने तो इस सदन को निरर्थक मानकर समाप्त करने का सुझाव दिया है। इसके विपरीत कुछ विद्वान इस सदन की व्यावहारिक उपयोगिता को देखते हुए इसे बनाए रखने के पक्षधर हैं। इस सदन को समाप्त करने के पक्ष में मत देने वाले विद्वानों का कहना है कि लार्ड सदन का संगठन अप्रजातन्त्रीय है, क्योंकि इसमें आम जनता को कोई प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं है। इसी कारण यह सदन निहित स्वार्थों की शरण-स्थली बन चुका है। इस सदन के समर्थक अनुदयवादी होने के कारण ब्रिटिश राजतन्त्र के लोकतन्त्रीयकरण के विरुद्ध मत देते हैं। इसमें निष्पक्षता का भी अभाव है और इसके पास वित्तीय और विधायी शक्तियां भी नहीं हैं। इस सदन की उपस्थिति विधेयक को अनावश्यक रूप से देरी के गर्त में धकेलती है। आज संसदीय कानूनों ने इसे पूर्णतया महत्वहीन बना दिया है। इसलिए इसको बनाए रखना अप्रासंगिक व निरर्थक है। लेकिन राजनीतिक विद्वानों का एक ऐसा वर्ग भी है जो ब्रिटिश संसद के दूसरे सदन को लोकतन्त्रीय राजतन्त्र की सफलता के लिए आवश्यक मानता है। इस मत के समर्थक दूसरे सदन के औचित्य के बारे में निम्न तर्क देते हैं :-

(1) लार्ड सदन प्रजातन्त्रीय राज्यों की आधारभूत विशेषता है। जिन देशों से दूसरे सदन को समाप्त किया गया था, वहां दूसरा सदन फिर से स्थापित किया गया।

(2) यह सदन ब्रिटिश राजतन्त्र की परम्परा को समेटे हुए है और ब्रिटिश जनता के स्वाभावानुकूल है।

(3) यह सदन कॉमन सदन को जल्दबाजी में बिल पास करने से रोकता है।

(4) यह सदन कॉमन सदन की निरंकुशता पर रोक लगाता है।

(5) यह सदन कानून-निर्माण में प्रथम सदन की मदद करता है।

(6) यह सदन ब्रिटिश समाज में व्यापक भाग का प्रतिनिधित्व करता है। आग ने लिखा है-"यह सदन उद्योग, कला, साहित्य, वित्त, धर्म व विज्ञान का प्रतिनिधि है।"

(7) इस सदन के विचारात्मक कार्य उच्च स्तर के हैं जो कॉमन सदन के सदस्यों के संकीर्ण स्वार्थों पर अंकुश लगाते हैं।

(8) यह सदन कॉमन सदन के कार्यभार को कम करता है।

(9) यह सदन उच्चतम अपीलीय न्यायालय का कार्य करता है।

(10) यह सदन जनमत को शिक्षित करने का प्रमुख साधन है।

उपरोक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि लार्ड सदन को ब्रिटिश राजतन्त्र में हटाना कठिन है। ब्रिटेन की अधिकतर मानव-जाति इस सदन को आज भी उपयोगी मानती है और इसकी क्रियाशीलता में अपना विश्वास व्यक्त करती है। ब्रिटिश राजनीतिक समाज की परम्परा भी इसे समाप्त न करके इसमें सुधार के लिए आवश्यक कदम उठाने की बात का हमेशा स्वागत हुआ है। यदि इस सदन को और अधिक लोकतांत्रिक बना दिया और कुछ अन्य दोषों का भी निवारण कर दिया जाए तो इसी उपयोगिता बढ़ती जाएगी और इसे समाप्त करने के विचारों की आवाज मन्द पड़ जाएगी।

कॉमन सदन का स्पीकर

(Speaker of the House of Commons)

ब्रिटिश कॉमन सदन के अध्यक्ष को स्पीकर कहा जाता है। कॉमन सदन के सभी पदाधिकारियों में यह पद सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। यह पद संसद के प्रारम्भिक समय से ही चला आ रहा है। ऐतिहासिक तथ्यों से ज्ञात होता है कि सर टॉमस हेनरी फोर्ड

ने सबसे पहले इस पद को सुशोभित किया था। स्पीकार प्रारम्भ में राजा और प्रजा के बीच कड़ी का कार्य करता था। उस समय कॉमन सदन केवल प्रार्थना पत्र भेजने वाली संस्था थी। लेकिन कालान्तर में लार्ड सदन की शक्तियों में कमी आने से कॉमन सदन की शक्तियां बढ़ने लगी और वह लोक सम्प्रभुत्ता की प्रतीक बन गई और उसके अध्यक्ष का पद गौरव व सम्मान का पद हो गया। मुनरो ने स्वीकार के पद की महानता का वर्णन करते हुए लिखा है कि "स्पीकर कॉमन सभा में प्रमुखतम व्यक्ति होता है।" इसी तरह मौरिसन ने भी उसे प्रथम दर्जे का व्यक्ति माना है।

स्पीकर की नियुक्ति (Appointment of Speaker) :- कॉमन सदन के चुनावों के बाद कॉमन सदन के सदस्य सर्वसम्मति के आधार पर स्पीकर का चुनाव करते हैं। पहले स्पीकर की नियुक्ति सम्राट करता था, लेकिन आज वह कॉमन सदन की इच्छा पर अपनी सहमति की मुहर मात्र ही लगाता है। स्पीकर के पद पर ऐसे व्यक्ति को ही चुना जाता है जो निष्पक्ष व दलगत राजनीति से दूर हो। अब यह परम्परा बन गई है कि यदि स्पीकर कॉमन सदन के सदस्य के रूप में फिर से चुनाव जीत जाए तो उसे बार-बार स्पीकर ही बनाया जाता है। कॉमन सदन में विरोधी दल भी इसी प्रथ का सम्मान करता है। इसका अर्थ यह है कि "एक बार अध्यक्ष, सदैव अध्यक्ष"। यदि वही स्वयं त्यागपत्र न दे दे या उसकी मृत्यु न हो जाए तो वह सदा के लिए इस पद पर बना रहता है। चुनावों में भी उसके विरुद्ध कोई उम्मीदवार खड़ा नहीं किया जाता। लेकिन कई बार इस पद के लिए संघर्ष भी होता है। 29 अप्रैल 1992 में इस पद को लेकर अनुदार दल तथा मजदूर दल के बीच संघर्ष हुआ था।

कामन सदन के स्पीकार की योग्यताएं (*Qualifications for the member of the House of Commons*) :- स्पीकर पद के लिए निम्नलिखित योग्यताएं होनी चाहिए :-

(1) स्पीकर कामन सदन का सदस्य होना चाहिए।

(2) वह निष्पक्ष व दलगत राजनीति से दूर रहने वाला होना चाहिए।

(3) उसमें सोचने समझने तथा निष्पक्ष निर्णय देने की शक्ति हो।

(4) उसका व्यक्तित्व प्रभावशाली हो।

(5) उसमें वे सभी योग्यताएं होनी चाहिए जो कामन सदन का सदस्य बनने के लिए आवश्यक हैं।

स्पीकर का वेतन व भत्ते (Salary and Allowances of the Speaker) :- ब्रिटिश स्पीकर को दस हजार पौंड वार्षिक वेतन दिया जाता है जो कर रहित होता है। रिटायर होने पर उसे 4000 पौंड की वार्षिक पेंशन भी दी जाती है। उसको कार्य-विमुक्ति के बाद सम्मान के तौर पर विस्काऊंट की उपाधि भी दी जाती है।

ब्रिटिश स्पीकर की शक्तियां व कार्य

(Powers and Functions of British Speaker)

ब्रिटिश स्पीकर का पद विश्व में सर्वाधिक सम्मानजनक, गौरवपूर्ण और ऐतिहासिक पद है। उसकी महत्वपूर्ण शक्तियां व कार्य निम्नलिखित हैं :-

(1) वह कॉमन सदन की अध्यक्षता करता है तथा सदन में अनुशासन बनाए रखता है। यदि कोई सदस्य अनुशासन भंग करता है तो वह उसे बाहर जाने के लिए कह सकता है।

(2) वह सदन में बोलने की व्यवस्था पर पूरा नियन्त्रण रखता है। उसकी आज्ञा के बिना कोई भी सदस्य सदन में बोल नहीं सकता। यह निर्णय भी स्पीकार ही करता है किसको कब और कितना बोलना है।

(3) वह संघीय नियमों की व्याख्या करता है। उसके ये निर्णय पूर्व-दृष्टांत बन जाते हैं और न्यायिक निर्णयों की श्रेणी में आ जाते हैं।

(4) वह सदन में शान्ति तथा सुव्यवस्था बनाए रखता है। वह सदन में अप्रासांगिक बातों और असंसदीय व्यवहार पर कठोर नियन्त्रण रखता है।

(5) वह सदन में वाद-विवाद को सीमित या समापन का निर्णय कर सकता है।

(6) उसे प्रश्नों में संशोधन करने का अधिकार प्राप्त है।

(7) उसे सदन में अपना निर्णायक मत देने का अधिकार है।

(8) वह किसी बिल को प्रमाणित करने का अधिकार रखता है। इसका अर्थ यह है कि इस बात का निर्णय स्पीकर ही करता है कि कोई विधेयक वित्तीय है या साधारण।

(9) वह प्रस्तावों और प्रश्नों को सदन के सामने रखता है।

(10) वह सदन की कार्यवाही के लिए आवश्यक कोरम पूरा न होने पर सदन की बैठक समाप्त कर सकता है।

(11) वह सदन में प्रश्न पूछने की अनुमति देता है।

(12) उसकी अनुमति के बिना सदन में कोई भी विधेयक प्रस्तुत नहीं किया जा सकता।

(13) वह कामन सदन और सम्राट के बीच कड़ी का कार्य करता है। इन दोनों के बीच पत्र-व्यवहार स्पीकर के माध्यम से ही होता है।

(14) वह सदन में काम रोको प्रस्ताव पर अनुमति देता है।

(15) वह सदन के अधिकारों और विशेषाधिकारों की रक्षा करता है।

(16) वह सदन का मुख्य प्रवक्ता होता है।

(17) वह कामन सदन के प्रबन्धक के रूप में कुछ कर्मचारियों को भी नियुक्त करता है।

(18) वह कॉमन सदन में अल्पसंख्यकों के हितों का भी रक्षक होता है

स्पीकर की स्थिति

(Position of the Speaker)

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि ब्रिटिश कॉमन सदन का स्पीकर एक निष्पक्ष तथा निर्दलीय व्यक्ति होता है। उसका सदन की सम्पूर्ण कार्यविधि पर प्रत्यक्ष व प्रभावी नियन्त्रण रहता है। उसे सदन की मर्यादा बनाए रखने व निर्णायक मत देने का भी अधिकार प्राप्त है। राजनीति से तटस्थ रहने के कारण उसका पद अत्यधिक गौरव, सम्मान व अधिकारयुक्त है। वह संसद की सम्प्रभुता का प्रतीक है। गौरव में तो स्पीकर का पद प्रधानमन्त्री के पद से भी अधिक महत्वपूर्ण है। जैनिंग्स ने लिखा है-"परम्पराओं तथा विचार-विमर्श दोनों ने मिलकर उस व्यक्ति को, जो सदन की अध्यक्षता करता है, ऐसा गौरव, सम्मान तथा अधिकार प्रदान किये हैं कि वह कभी अतिक्रमण नहीं कर सकता।" ब्रिटिश स्पीकर अपने कार्यों के लिए कॉमन सदन के प्रति ही उत्तरदायी होता है और उसके निर्णयों का सदैव सम्मान किया जाता है। उसकी निष्पक्षता, निर्दलीयता और उत्तरदायित्व उसे एक आदर्श अध्यक्ष बना देती है।

ब्रिटेन में समिति व्यवस्था

(Committee System in Britain)

ब्रिटिश संसद विधि-निर्माण का कार्य संसद ही करती है, लेकिन वह अपना यह कार्य समितियों के माध्यम से ही करती है। इनका उद्देश्य विधि-निर्माण में कठिन कार्य को सुचारु ढंग सम्पादित करने के लिए ही हुआ था और आज ये संसदीय शासन प्रणाली [illegible] की सभी व्यवस्थापिकाएं अपने कार्यों को सुचारू रूप से चलाने के लिए, समय की बचत [illegible] तथा विधेयकों का प्राथमिक तथा समुचित परीक्षण करने के लिए समितियों का ही प्रयोग करती हैं तो ब्रिटेन इसका [illegible] कैसे हो सकता है। ब्रिटेन में समिति प्रणाली का प्रारम्भ महारानी एलिजाबेथ प्रथम के समय हुआ था जब विधेयकों [illegible] अच्छी तरह विचार करने के लिए उन्हें प्रवर-समितियों को सौंपा जाने लगा। धीरे-धीरे कल्याणकारी राज्य की अवधारणा [illegible] विकास ने समिति प्रणाली को और अधिक प्रासंगिक बना दिया। आज ब्रिटेन में निम्नलिखित समितियां हैं :-

(1) स्थायी समितियां (Standing Committees) - ये समितियां अधिवेशन के आरम्भ में नियुक्त की जाती हैं और तब तक [illegible] रहती हैं जब तक संसद अधिवेशन समाप्त के लिए स्थगित न हो जाए। इन समितियों को छोटा सदन भी कहा जाता है।

[illegible] होता है। इनमें अधिक से अधिक 15 सदस्य हो सकते हैं।

[illegible] समितियां (Select-Sessional Committees) - ये समितियां विशेष विषयों पर अधिवेशन के शुरु में ही नियुक्त की जाती है और ये पूर्ण अधिवेशन तक जारी रहती हैं। सदन समिति, सार्वजनिक लेखा समिति, अनुमान समिति, विशेषाधिकार समिति, स्थायी आदेश समिति, राष्ट्रीयकृत उद्योग समिति आदि समितियां प्रवर अधिसत्रीय समितियों का उदाहरण हैं।

(4) प्रवर विशेषज्ञ समितियां (Select Specialist Committees) :- ये समितियां शिक्षा, विज्ञान, अप्रत्यक्ष, कृषि, जातीय मामलों आदि की जांच पड़ताल करने के लिए नियुक्त की जाती हैं।

(5) प्राईवेट बिल समितियां (Private Bills Committees) : ये समितियां काफी छोटी होती हैं और इनमें निष्पक्ष व्यक्तियों को नियुक्त किया जाता है। ये समितियां न्यायालयों की तरह बिलों की जांच पड़ताल करती हैं।

(6) सम्पूर्ण सदन की समिति (Committee of the Whole House) : इस समिति में सदन के सारे सदस्य होते हैं। इस समिति में धन विधेयक, अस्थायी आदेश, अत्यावश्यक बिल तथा संवैधानिक महत्व के बिल ही पेश किए जाते हैं।

(7) संयुक्त समिति (Joint Committee) :- किसी विशेष विषय पर विचार करने के लिए संसद के दोनों सदनों की संयुक्त समिति भी बना दी जाती है।

ब्रिटिश समिति प्रणाली का मूल्यांकन

(Evaluation of British Committee System)

यद्यपि समिति प्रणाली ने ब्रिटेन की शासन व्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। समितियां सदन के मामलों की गहन जांच पड़ताल भी करती है और कार्य को सीघ्रता व कुशलता के साथ करती है। इन समितियों में योग्य व अनुभवी व्यक्ति होते हैं जो सदन को लाभ पहुंचाते हैं। लेकिन फिर भी इन समितियों के बारे में यह कहना गलत नहीं होगा कि अन्य देशों की तुलना में ब्रिटेन समिति प्रणाली की स्थिति कमजोर है। इन समितियों ने संसद के महत्व को कम किया है और इनका आकार बड़ा होने के कारण इन्हें कुशलतापूर्वक कार्य भी नहीं किया है। फिर भी हमें यह बात स्वीकार करनी ही चाहिए कि ब्रिटेन में समिति प्रणाली ने संसद को सुचारू ढंग के विधि-निर्माण के कार्य में सहयोग दिया है। अतः ब्रिटेन में समिति प्रणाली काफी उपयोगी है।

संसद की सर्वोच्चता का सिद्धान्त

(Principle of the Supremacy of the Parliament)

ब्रिटिश व्यवस्थापिका का जिक्र आते ही उसके बारे में यह मत व्यक्त किया जाता है कि ब्रिटिश संसद सम्प्रभु है। उसकी सत्ता सर्वोपरि, असीमित और निरंकुश है। ब्रिटेन में संसद जो चाहे कर सकती है। वह कानून बना सकती है, उसमें परिवर्तन कर सकती है और उसे रद्द भी कर सकती है। संसद द्वारा पारित किसी भी विधेयक और कानून को किसी भी न्यायालय में कोई चुनौती नहीं दी जा सकती। संसद वैधानिक रूप में सब कुछ कर सकती है। कानून निर्माण के क्षेत्र में संसद को प्राप्त असीमित शक्ति को ही संसद की सम्प्रभुसत्ता कहा जाता है। संसद की सर्वोच्चता उसकी सम्प्रभुता पर ही आधारित है। उसका सम्प्रभु होना ही उसे सर्वोच्च बनाता है।

एडवर्ड कोक ने कहा है-"संसद की शक्ति और अधिकार क्षेत्र इतने महान, श्रेष्ठ एवं अनियन्त्रित हैं कि उस पर किसी व्यक्ति का, किन्हीं कारणों का और किसी भी सरकार का बन्धन नहीं है।" डी० लोमे ने लिखा है कि ब्रिटिश संसद स्त्री को पुरुष और पुरुष को स्त्री बनाने के सिवाय कुछ भी कर सकती है। डायसी ने संसद की सर्वोच्चता पर अपना मत व्यक्त करते हुए कहा है-"ब्रिटिश संसद कानूनी दृष्टि से इतनी शक्तिशाली है कि वह एक शिशु को प्रौढ करार दे सकती है, किसी भी व्यक्ति को मृत्यु के बाद राजद्रोही सिद्ध कर सकती है, गैर-कानूनी संतान को कानूनी ठहरा सकती है और उचित समझे तो किसी भी व्यक्ति को अपने ही मामले में न्यायधीश बना सकती है।" 1911 और 1949 के संसदीय कानूनों ने संसद को व्यापक शक्तियां प्रदान करके सर्वोच्च बना दिया है। डायसी ने अपनी पुस्तक 'Introduction to the Law of Constitution' में लिखा है-"

(1) संसद प्रत्येक विषय पर कानून बना सकती है उसमें परिवर्तन कर सकती है तथा उसे भंग भी कर सकती है।

(2) ब्रिटिश कानून किसी भी व्यक्ति या संस्था को यह अधिकार नहीं देता कि वह संसदीय कानूनों की मर्यादा तोडे।

(3) संसद एक ही समय में विधानमण्डल तथा संविधान सभा है।

1688 की क्रान्ति से पूर्व राजा को महान शक्तियां व अधिकार प्राप्त थे। लेकिन इस क्रान्ति की सफलता ने राजा को नाममात्र की शक्तियों का स्वामी बना दिया और ताज की समस्त शक्तियां संसद के अधीन आ गई। इस शानदार क्रान्ति ने यह निर्णय कर डाला कि राज्य सम्प्रभु नहीं है, बल्कि संसद ही सम्प्रभु व सर्वोच्च है। 1679 के बन्दी प्रत्यक्षीकरण नियम, 1701 का समझौता अधिनियम, 1707 का स्काटलैण्ड से संयोग अधिनियम, 1800 का आयरलैण्ड के एकीकरण का अधिनियम, 1832, 1867, 1884 व 1885 के सुधार अधिनियम, 1888, 1894, 1929 तथा 1933 के स्थानीय शासन अधिनियम, 1873, 1875, 1876 तथा 1894 के न्यायालय अधिनियम, 1911 तथा 1949 के संसदीय अधिनियमों आदि की व्यवस्था ने लोकसदन या संसद की सर्वोच्चता स्थापित की है।

संसद की सम्प्रभुत्ता व सर्वोच्चता का मूल्यांकन

(Evaluation of the Sovereignty and Supermacy of the Parliament)

ब्रिटेन में संसदीय शासन प्रणाली के सिद्धान्त और व्यवहार में काफी अन्तर है। वैधानिक रूप से सर्वशक्तिमान संसद व्यवहार में कभी भी निरंकुश नहीं बन सकती। इसके कार्य व्यवहार और शक्तियों पर कुछ सीमाएं अंकित हैं जो ब्रिटिश राजनीतिक परम्पराओं तथा संसदीय व्यवहार की देन हैं। ये सीमाएं जनमत, मन्त्रिमण्डल, प्रदत्त व्यवस्थापन, विधि का शासन, अन्तर्राष्ट्रीय कानून, परम्पराओं आदि के रूप में हो सकती है। ब्रिटेन में स्वस्थ राजनीतिक परम्पराओं के विकास तथा विधि के शासन ने संसद की सम्प्रभुत्ता को इस तरह मर्यादित किया है कि वह चाहते हुए भी निरंकुश नहीं बन सकती।

संयुक्त राज्य अमेरिका में विधायिका का ढांचा

(Legislative Structure in U.S.A.)

संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान की प्रथम धारा ने कांग्रेस नामक द्विसदनीय व्यवस्थापिका की व्यवस्था की है। 1787 के फिलाडेल्फिया सम्मेलन में संविधान का निर्माण करते समय सीमित सरकार की परम्परा को स्थापित करते हुए समस्त विधायी शक्तियां कांग्रेस को सौंप दी गई। कांग्रेस को द्विसदनीय बनाने के पीछे मूल विचार यह था कि वहां पर संघात्मक शासन व्यवस्था को अपनाया गया है। इसलिए सभी राज्यों को विधानमण्डल में उचित प्रतिनिधित्व देने के लिए दूसरे सदन की उपस्थिति पर फिलाडेल्फिया सम्मेलन में बहुमत से सहमति हो गई। संविधान की धारा 1 में कांग्रेस को संघ सरकार का लोकप्रिय सदन कहा गया है। इसके पीछे यही मुख्य कारण है कि कांग्रेस का एक सदन संघ के राज्यों का प्रतिनिधि है इसलिए इसे प्रतिनिधि सदन का नाम दिया गया है और दूसरा सदन सीनेट है जिसमें प्रत्येक राज्य दो प्रतिनिधि भेजता है। प्रतिनिधि सदन अमेरिकी कांग्रेस का निम्न सदन है तथा सीनेट उच्च सदन है।

(I) प्रतिनिधि सदन

(The House of Representatives)

अमेरिका की संघीय व्यवस्थापिका के निम्न सदन को ही प्रतिनिधि सदन कहा जाता है। यह समस्त राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करता है और यह ब्रिटेन तथा भारत के लोकसदन के समान है। इस सदन को राष्ट्र का छोटा चित्र कहा जाता है। इसमें हर राज्य को जनसंख्या के अनुपात में प्रतिनिधित्व प्राप्त है। इसमें प्रत्येक राज्य को कम से कम एक प्रतिनिधि भेजने का अवसर अवश्य प्राप्त है। इस सदन के सदस्य प्रत्यक्ष रूप में व्यस्त मताधिकार द्वारा चुने जाते हैं। इस सदन की सदस्य संख्या 435 है। अर्थात् अमेरिका के समस्त भूभाग से 435 प्रतिनिधि व्यस्क मताधिकार के आधार पर चुनकर इस सदन में आते हैं। अमेरिका में इस सदन के सदस्यों के चुनाव में सभी क्षेत्र एक सदस्यीय होते हैं। लगभग 3 लाख 30 हजार व्यक्तियों के पीछे एक प्रतिनिधि को ही चुना जाता है।

प्रतिनिधि सदन के सदस्यों की योग्यताएं (Qualifications for the Members of the House of Representative :- प्रतिनिधि सदन को सदस्य बनने के लिए निम्नलिखित योग्यताएं होनी चाहिए :-

(1) प्रतिनिधि सदन के प्रत्याशी की आयु कम से कम 25 वर्ष होनी चाहिए।

(2) वह कम से कम 7 वर्ष तक अमेरिका का नागरिक रह चुका हो।

(3) वह जिस राज्य से चुनाव लड़ रहा है, उस राज्य का निवासी हो।

(4) वह संघीय सरकार का सैनिक तथा नागरिक अधिकारी न हो।

(5) वह अमेरिका का निवासी हो।

(6) वह पागल या दिवालिया न हो।

प्रतिनिधि सदन के सदस्यों का निर्वाचन (Election of the Members of the House of Representatives) :- प्रतिनिधि सदन के सदस्यों का चुनाव व्यस्क मताधिकार के आधार पर किया जाता है। वर्तमान समय में अमेरिका में मताधिकार की आयु 18 वर्ष है जो स्त्री, पुरुष, गोरे व काले सभी को प्राप्त है। पागल व अयोग्य व्यक्तियों को मताधिकार से वंचित रखा गया है।

प्रतिनिधि सदन के सदस्यों के वेतन तथा भत्ते (Salary and Allowances of the Members of the House of Representatives) :- अमेरिकन प्रतिनिधि सदन के प्रत्येक सदस्य को 1,33,600 डालर वार्षिक वेतन मिलता है और उसे 20 सैंट प्रति मील के हिसाब से यात्रा-भत्ता भी मिलता है। इसके अतिरिक्त 25 हजार से 60 हजार डालर तक प्रति वर्ष कार्यालय खर्च के लिए भी मिलते हैं। इसके अतिरिक्त उसे रिटायर होने पर पैंशन भी दी जाती है।

सदस्यों के विशेषाधिकार व उन्मुक्तियां (Privileges and Immunities of the Members) :- प्रतिनिधि सदन के किसी भी सदस्य को अधिवेशन के दिनों में किसी दीवानी मुकद्दमें में न तो गिरफ्तार किया जा सकता है और न ही कोई सजा दी जा सकती है। लेकिन यह छूट उन सदस्यों को प्राप्त नहीं है जिन पर देश-द्रोह, भ्रष्टाचार और शान्ति भंग करने का अपराध हो। इसके अतिरिक्त प्रतिनिधि सदन के सदस्यों को भाषण की स्वतन्त्रता भी प्राप्त है।

प्रतिनिधि सदन का कार्यकाल (Tenure of the House of Representatives) :- प्रतिनिधि सदन के सदस्यों का कार्यकाल दो वर्ष है जो भारत तथा ब्रिटेन की तुलना में बहुत कम है। भारत तथा ब्रिटेन में निम्न सदन के सदस्य 5 वर्ष के लिए चुने जाते हैं।

अधिवेशन (Sessions) :- इस सदन का वर्ष में एक अधिवेशन होना जरूरी है। यह अधिवेशन जनवरी मास में होता है। सदन में गणपूर्ति के लिए सदस्यों के बहुमत की उपस्थिति होना जरूरी है।

प्रतिनिधि सदन का स्पीकर

(Speaker of the House of Representative)

ब्रिटेन या भारत की तरह अमेरिका में भी स्पीकर पद की व्यवस्था है। प्रभाव की दृष्टि से अमेरिका का अध्यक्ष राष्ट्रपति के बाद दूसरा व्यक्ति माना जाता है। अमेरिकन संविधान के अनुच्छेद-1 भाग-2 में स्पष्ट लिखा है कि "प्रतिनिधिगण सदन के सभापति तथा अन्य अधिकारियों का चुनाव करेंगे। प्रत्येक नई प्रतिनिधि सभा के गठन के साथ ही अध्यक्ष के चुनाव की प्रक्रिया शुरु हो जाती है। अध्यक्ष का कार्यकाल भी प्रतिनिधि सदन की तरह 2 वर्ष ही होता है। स्पीकर हमेशा बहुमत दल से ही चुना जाता है। इसके विपरीत ब्रिटिश स्पीकार का पद स्थायी और निर्दलीय है।

अमेरिकन स्पीकर भी ब्रिटिश तथा भारतीय स्पीकर की तरह अनेक कार्य करता है। सदन की बैठकों की अध्यक्षता करना, सदन की कार्यवाही को नियमित एवं व्यवस्थित करना, सदन में सुव्यवस्था बनाए रखना, सदन में अनुशासन बनाए रखना, अशान्ति की अवस्था में सदन को स्थगित करना, सदन के नियमों का क्रियान्वयन करना, सदन की सम्पूर्ण कार्यवाही पर नियन्त्रण रखना आदि उसके प्रमुख कार्य हैं। लेकिन इसके बावजूद भी उसकी स्थिति ब्रिटिश स्पीकर से भिन्न है।

प्रतिनिधि सदन के कार्य व शक्तियां

(Functions and Powers of the House of Representatives)

यद्यपि अमेरिका में शक्तियों के पृथक्करण सिद्धान्त की संवैधानिक व्यवस्था ने कांग्रेस के दोनों सदनों को समान शक्तियां प्रदान की हैं लेकिन अपनी शक्तियों के प्रयोग में यह सदन भारत तथा ब्रिटेन के निम्न सदनों की तरह शक्तिशाली नहीं है। इस सदन के प्रमुख कार्य व शक्तियां निम्नलिखित हैं :-

(1) विधायी शक्तियां (Legislative Powers) :- प्रतिनिधि सदन सीनेट के साथ मिलकर संघीय सरकार में दिए गए विषयों

पर कानून बनाता है। कानून-निर्माण के क्षेत्र में दोनों सदनों को समान शक्तियां प्राप्त हैं। कोई भी विधेयक प्रतिनिधि सदन की स्वीकृति के बिना कानून नहीं बन सकता। लेकिन वित्त विधेयक केवल इसी सदन में पेश किए जा सकते हैं। सभी संवैधानिक विधेयकों पर भी प्रतिनिधि सदन को कांग्रेस के सीनेट की तरह ही समान शक्ति प्राप्त है। यदि दोनों सदनों में किसी बात को लेकर मतभेद उत्पन्न हो जाए तो दोनों सदनों की संयुक्त बैठक में सीनेट का पक्ष ही स्वीकृत होता है। इसलिए प्रतिनिधि सदन की विधायी शक्तियां सीनेट से कम हो जाती हैं।

(2) कार्यपालक शक्तियां (Executive Powers) :- सीनेट की तुलना में प्रतिनिधि सदन की कार्यपालक शक्तियां नहीं के समान हैं। सन्धियों का पुष्टिकरण, राष्ट्रपति द्वारा की गई नियुक्तियों पर सीनेट ही स्वीकृति देता है, परन्तु विशेष परिस्थिति में प्रतिनिधि सदन को राष्ट्रपति का निर्वाचन करने के अधिकार प्राप्त है। यदि किसी प्रत्याशी को चुनाव में स्पष्ट बहुमत प्राप्त न हो तो प्रतिनिधि सदन सर्वाधिक मत प्राप्त तीन व्यक्तियों में से एक को राष्ट्रपति निर्वाचित कर सकता है। प्रतिनिधि सदन सीनेट के साथ मिलकर युद्ध की घोषणा भी कर सकता है। यह अपने सदस्यों की योग्यता की जांच-पड़ताल भी कर सकता है।

(3) न्यायिक शक्तियां (Judicial Powers) :- प्रतिनिधि सदन न्यायिक कार्यों के अन्तर्गत राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति एवं राष्ट्रीय अधिकारियों व अपने सदस्यों के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही कर सकता है। यह सदन का अपमान करने वाले व्यक्ति को दण्ड दे सकता है। महाभियोग सम्बन्धी प्रस्ताव इसी सदन से पास होकर सीनेट को जाता है। यह सदन सीनेट के साथ मिलकर सर्वोच्च न्यायालय के अधीनस्थ न्यायालयों की स्थापना करता है। 1998 में इस सदन ने राष्ट्रपति बिल क्लिंटन के विरुद्ध मोनिका लेंविसकी मामले में महाभियोग प्रस्ताव पास किया था। इस तरह देश के प्रमुख संवैधानिक पदों पर आसीन अधिकारियों के विरुद्ध यह सदन महाभियोग लगा सकता है।

(4) संविधान में संशोधन (Amendment in the Constitution) :- यह सदन सीनेट के साथ मिलकर संशोधन का प्रस्ताव प्रस्तुत कर सकता है। संविधान में संशोधन सम्बन्धी कोई भी प्रस्ताव प्रतिनिधि सदन द्वारा 2/3 बहुमत से पास किया जाना अनिवार्य है, अन्यथा संविधान में कोई संशोधन नहीं होगा। इस बारे में प्रतिनिधि को महत्वपूर्ण शक्ति प्राप्त है।

(5) स्पीकर का चुनाव (Election of the Speaker) :- प्रतिनिधि सदन निर्वाचन सम्बन्धी कार्य भी करती है। अपने प्रथम अधिवेशन में ही यह स्पीकार को बहुमत के आधार पर चुनती है जो इसकी बैठकों की अध्यक्षता करता है।

(6) अन्य कार्य (Miscellenous Functions) :- प्रतिनिधि सदन को अपने सदस्यों को भ्रष्टाचार, देशद्रोह जैसे मामलों में सदन से निष्काषित करने का अधिकार प्राप्त है। यह सदन विशेष समितियों के माध्यम से संघीय सरकार के प्रशासन तथा संघीय न्यायालयों के कार्य की जांच पड़ताल भी कर सकता है। यह अपने सदस्यों के निर्वाचन तथा योग्यताओं के सम्बन्ध में नियम भी बना सकता है।

प्रतिनिधि सदन की स्थिति

(Position of the House of the Representative)

उपरोक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि प्रतिनिधि सदन में कार्यपालक शक्ति का अभाव है। विधायी क्षेत्र में भी यह सीनेट से कमजोर है। यह अपनी समस्त शक्तियों का प्रयोग सीनेट के साथ मिलकर ही करता है। इसका कार्यकाल छोटा होने के कारण यह जनता पर अपना प्रभाव छोड़ने में असक्षम होता है। विदेशी मामलों में भी इसकी स्थिति सीनेट से कमजोर ही है। इसकी कमजोर स्थिति का प्रमुख कारण सीनेट का शक्तिशाली होना है। अमेरिका में कार्यपालिका तथा विधायिका में शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धान्त के चलते घनिष्ठ सम्बन्ध कायम किए बिना इस सदन को भारत तथा ब्रिटेन के निम्न सदन (लोक सदन) की तरह शक्तिशाली बनाना असम्भव है। अमेरिका में जो संविधान द्वारा सीनेट को इतनी अधिक शक्तियां सौंप दी गई हैं कि प्रतिनिधि सदन का महत्व गौण हो गया है।

(II) सीनेट

(The Senate)

अमेरिकन सीनेट कांग्रेस का दूसरा महत्वपूर्ण सदन है। यह राज्यों का प्रतिनिधित्व करता है और प्रतिनिधि सदन से अधिक शक्तिशाली है। आज विश्व के किसी भी देश में उच्च सदन इतना शक्तिशाली नहीं है जितना कि संयुक्त राज्य अमेरिका की

सीनेट। इस सदन की व्यवस्था छोटे राज्यों को सन्तुष्ट करने के लिए की गई थी, लेकिन व्यवहार में यह काफी शक्तिशाली व्यवस्था सिद्ध हुई। लास्की ने लिखा है-"अकुशल तथा भ्रष्ट शासन को रोकने के लिए यह सबसे अधिक प्रभावशाली साधनों का प्रयोग कर सकता है।" इसके कहने के पीछे यही निहितार्थ है कि सीनेट को प्रशासन में कुशलता तथा मितव्यतता बनाए रखने के लिए जांच समितियां नियुक्त करने का अधिकार प्राप्त है यह सदन भारत तथा ब्रिटेन के उच्च सदनों से अधिक शक्तिशाली है; यह ऐसा सदन है जिसने प्रतिनिधि सदन को काफी पीछे छोड़ दिया है।

सीनेट की रचना (Composition of the Senate) :- सीनेट का गठन 51 राज्यों द्वारा भेजे गए 102 सदस्यों से होता है। अमेरिका में पहले 50 राज्य थे, लेकिन अब 51 राज्य हो गए हैं। सभी राज्यों को सीनेट में समान प्रतिनिधित्व प्राप्त है। प्रत्येक राज्य चाहे उसकी जनसंख्या व भूभाग कितना ही छोटा हो या बड़ा हो, केवल 2 प्रतिनिधि ही सीनेट में भेज सकता है। इस व्यवस्था को आधुनिक समय में अल्पतन्त्रीय माना जाता है।

सीनेट सदस्यों की योग्यताएं (Qualifications of the Members of the Senate) : अमेरिकन संविधान के अनुसार सीनेट का सदस्य बनने के लिए निम्नलिखित योग्यताएं होनी चाहिए :

(1) वह अमेरिका का नागरिक हो।

(2) उसकी आयु 30 वर्ष से कम न हो।

(3) वह 9 वर्ष से संयुक्त राज्य अमेरिका का नागरिक रहा हो।

(4) वह किसी सरकारी लाभकारी पद पर न हो।

(5) वह सार्वजनिक महत्व के पदों पर रह चुका हो।

(6) वह उस राज्य का निवासी हो जहां से वह चुनाव लड़ना चाहता है।

(7) वह धनी, गणमान्य तथा प्रौढ व्यक्ति हो।

सीनेट सदस्यों का निर्वाचन (Election of the Members of the Senate) :- प्रारम्भ में सीनेट सदस्य अप्रत्यक्ष चुनाव प्रणाली द्वारा चुने जाते थे। इनका चुनाव राज्य विधानमण्डलों द्वारा किया जाता था, लेकिन 1913 में 17वें संविधान संशोधन द्वारा सीनेट सदस्यों का चुनाव प्रत्यक्ष तरीके से होने लगा है। अब सीनेट सदस्यों का चुनाव करने के लिए राज्य में निर्वाचन क्षेत्र नहीं बनाए जाते बल्कि राज्य की समस्त जनता एक साथ ही दोनों सीनेटरों का चुनाव करती है।

अवधि (Tenure) :- सीनेट एक स्थायी सदन है। इसका प्रत्येक सदस्य 6 वर्ष के लिए चुना जाता है। इसके 1/3 सदस्य प्रत्येक 2 वर्ष बाद रिटायर हो जाते हैं। भारत में भी यही व्यवस्था है। रिटायर सीनेटरों के स्थान पर निर्वाचित होकर नए सीनेटर आ जाते हैं। इस सदन की लम्बी अवधि ने ही इसे प्रतिनिधि सदन से अधिक शक्तिशाली बना दिया है।

वेतन व भत्ते (Salary and Allowances) :- सीनेट के सदस्यों को प्रतिनिधि सदन के सदस्यों की तरह ही 1,33,600 डालर वार्षिक वेतन मिलता है तथा प्रतिदिन 20 सेंट प्रतिमील यात्रा भत्ता भी मिलता है। इसी तरह कार्यालय खर्च के लिए 25 से 60 हजार तक खर्चा मिलता है।

विशेषाधिकार व उन्मुक्तियां (Privileges and Immunities) :- सीनेट सदस्यों को भी प्रतिनिधि सदन के सदस्यों की तरह ही कई विशेषाधिकार व उन्मुक्तियां प्राप्त हैं। इन्हें अधिवेशन के दौरान किसी भी दीवानी मुकद्दमे में नहीं पकड़ा जा सकता और न ही गवाही देने के लिए बाध्य किया जा सकता है। इन्हें सदन में बोलने की पूरी स्वतन्त्रता भी होती है।

अधिवेशन व गणपूर्ति (Session and Quorum) :- इस सदन का अधिवेशन भी प्रतिनिधि सदन के साथ ही प्रत्येक वर्ष 3 जनवरी को आरम्भ होता है। यह अधिवेशन वर्ष में एक बार अवश्य होता है। आवश्यकतानुसार राष्ट्रपति द्वारा विशेष अधिवेशन भी बुलाया जा सकता है। सीनेट की कार्यवाही चलाने के लिए 52 सदस्यों का होना जरूरी है।

सीनेट का सभापति (Presiding Officer of the Senate) :- अमेरिका का उप-राष्ट्रपति सीनेट का पदेन अध्यक्ष होता है। वह स्पीकर की तरह ही सदन की अध्यक्षता करता है और सदन में अनुशासन व शांति बनाए रखता है। उसे साधारण वोट देने का अधिकार तो नहीं है, लेकिन वह निर्णायक मत अवश्य दे सकता है। इस सदन के अध्यक्ष के अधिकार व शक्तियां प्रतिनिधि सदन की तुलना में काफी कम होते हैं।

सीनेट की कार्यकारी विधि (Procedure of the Senate) :- सीनेट अपनी कार्यकारी विधियों को स्वयं निर्मित करती है। सदन का कामकाज स्थापित नियमों के अनुसार ही चलता है। सदन में कोई भी सदस्य बोलने की पूरी स्वतन्त्रता रखता है। लेकिन कई बार भाषण की स्वतन्त्रता के दुरुपयोग की सम्भावना को देखकर वहां पर फिलिबस्टर नामक संस्था की भी व्यवस्था की गई है। यह वह विधि है जिसके प्रयोग द्वारा सीनेट के सदस्य इस क्रम से बोलते हैं कि बिल के पास होने में अधिक से अधिक देरी की जा सके। उनका लक्ष्य यह होता है कि देरी करके विधेयक में इच्छानुसार परिवर्तन कराया जा सके। यह इतनी प्रभावशाली विधि है कि कई बार तो बिल पास ही नहीं होते। इस तरह असीमित समय के लिए बहस करते रहना विधेयक के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा बन गया तो 1917 में यह नियम बनाया गया कि यदि बहस की समाप्ति का प्रस्ताव 1/6 सदस्यों के हस्ताक्षरों से सीनेट में पेश किया जाता है और वहां उपस्थित 2/3 सदस्यों की स्वीकृति मिलने पर वह प्रस्ताव पास हो जाता है तो बहस समाप्त करनी ही पड़ती है। 1949 में इस नियम में संशोधन करके 2/3 बहुमत की बजाय कुल सदस्यों की बहु-संख्या कर दी गई।

सीनेट के कार्य व शक्तियां

(Functions and Powers of the Senate)

सीनेट विश्व का सर्वाधिक शक्तिशाली सदन है। इसकी शक्तियां अमेरिकन राष्ट्रपति से अधिक हैं। संविधान-निर्माताओं ने इसे राष्ट्रपति द्वारा की गई सन्धियों व समझौते का अनुसमर्थन करने के उद्देश्य से प्रतिनिधि सदन से अधिक शक्तियां इस सदन को प्रदान की है। इस सदन की प्रमुख शक्तियां व कार्य निम्नलिखित हैं :-

(1) व्यवस्थापन सम्बन्धी शक्तियां (Legislative Functions) :- विधि निर्माण के क्षेत्र में सीनेट की प्रतिनिधि सदन के समान ही शक्तियां प्राप्त हैं सीनेट की स्वीकृति के बिना कोई भी विधेयक कानून नहीं बन सकता। यदि किसी विधेयक पर कोई विवाद उत्पन्न हो जाए तो दोनों सदनों की संयुक्त समिति बनाकर मतभेद दूर करने का प्रयास किया जाता है। यदि संयुक्त समिति भी विवाद को हल करने में नाकाम रहे तो अन्तिम निर्णय सीनेट के पक्ष में ही माना जाता है। साधारण विधेयक किसी भी सदन द्वारा प्रस्तावित हो सकते हैं। लेकिन दोनों की स्वीकृति के बिना वे कानून का रूप नहीं ले सकते। प्रत्येक विधेयक के पारित होने के लिए यह आवश्यक है कि दोनों सदन अपने-अपने 2/3 बहुमत से उसे पास करें।

(2) कार्यकारी शक्तियां (Executive Powers) :- सीनेट की कार्यपालक शक्तियों ने उसे विश्व का सर्वाधिक शक्तिशाली उच्च सदन बना दिया है। कार्यपालक शक्तियों के रूप में सीनेट राष्ट्रपति द्वारा की गई नियुक्तियों पर अपनी सहमति या पुष्टि की मुहर लगाती है। विदेशों में भेजे जाने वाले राजदूतों, सैनिक अधिकारियों, न्यायधीशों आदि की नियुक्तियों पर इस सदन का अनुसमर्थन प्राप्त किया जाना आवश्यक होता है। यदि सीनेट उन नियुक्तियों पर असहमत हों तो वे नियुक्तियां रद्द मानी जाती हैं। राष्ट्रपति निक्सन द्वारा केन्द्रीय जांच ब्यूरो के डायरेक्टर पद पर ग्रे की नियुक्ति को सीनेट ने समर्थन नहीं दिया था। इसी तरह राष्ट्रपति द्वारा किसी देश के साथ की गई सन्धियों व समझौतों पर भी सीनेट का अनुसमर्थन प्राप्त करना पड़ता है। यदि सीनेट के 2/3 सदस्य समझौते या सन्धि की पुष्टि कर दे तो वह प्रभावी हो सकता है अन्यथा रद्द। इस अधिकार ने सीनेट को विदेश नीति के मामले में राष्ट्रपति का भागीदार बना दिया है। 1919 में सीनेट ने राष्ट्रपति विल्सन द्वारा की गई वर्साय की सन्धि को अस्वीकृत कर दिया था।

(3) वित्तीय शक्तियां (Financial Powers) :- सीनेट को प्रतिनिधि सदन के समान ही वित्तीय शक्तियां भी प्राप्त हैं। अमेरिकन संविधान के अनुच्छेद 1 के अनुसार वित्त विधेयक केवल प्रतिनिधि सदन में ही पेश किए जा सकते हैं, परन्तु उनमें आवश्यक संशोधन करने का अधिकार सीनेट को पूरा अधिकार है। सीनेट वित्त-विधेयक के शीर्षक को छोड़कर उसमें शेष सभी प्रकार के संशोधन कर सकती है। कोई भी वित्तीय विधेयक सीनेट की अनुमति के बिना कानून नहीं बन सकता।

(4) न्यायिक शक्तियां (Judicial Powers) :- अमेरिकन सीनेट को महाभियोगों को सुनने का एकाधिकार प्राप्त है। सीनेट राष्ट्रपति, उप-राष्ट्रपति, राजदूत, मन्त्रिमण्डल के सदस्यों, सर्वोच्च न्यायालय के न्यायधीशों एवं अन्य नागरिक अधिकारियों के विरुद्ध अभियोग सुन सकती है। अभियोग सम्बन्धी प्रस्ताव तो प्रतिनिधि सदन ही लाता है, लेकिन सीनेट के 2/3 बहुमत के बिना वह महाभियोग प्रस्ताव पास नहीं हो सकता। महाभियोगों की सुनवाई करते समय सीनेट का अध्यक्ष सर्वोच्च न्यायालय का मुख्य न्यायधीश होता है और गणपूर्ति 2/3 सदस्यों की उपस्थिति से होती है। 2/3 बहुमत के अभाव में 1968 में राष्ट्रपति एण्ड्रयू, जॉनसन पर लगाया गया महाभियोग असफल रहा। लार्ड ब्राइस ने महाभियोग की शक्ति को एक

भारी अस्त्र माना है जो सीनेट के हाथ में जाकर प्रभावी बनता है।

(5) संविधान में संशोधन (Amendment in the Constitution) :- सीनेट प्रतिनिधि सदन के साथ मिलकर 2/3 बहुमत से संशोधन प्रस्ताव पास करके संविधान में संशोधन कर सकती है।

(6) अन्य शक्तियां (Miscellaneous Powers) :- सीनेट को प्रशासन के कार्यों की जांच के लिए जांच समितियां गठित करने का अधिकार प्राप्त है। 1932-33 के दौरान विश्व-व्यापी आर्थिक महामन्दी के दौरान गठित कमेटी ने दलाल बाजार के घोटालों का पर्दाफाश किया था। यह सदन अपने सदस्यों की योग्यता व चुनाव से सम्बन्धित प्रश्नों पर भी निर्णय ले सकता है। इस सदन को राष्ट्रपति तथा उपराष्ट्रपति के चुनावों में चुनाव मण्डल द्वारा डाली गई वोटों की गिनती करने तथा परिणाम घोषित करने की भी शक्ति प्राप्त है। यदि चुनाव में उप-राष्ट्रपति पद के लिए किसी भी प्रत्याशी को बहुमत न मिले तो सीनेट व्यक्तिगत मतदान द्वारा उप-राष्ट्रपति का निर्वाचन कर सकती है।

उपरोक्त विवेचन के बाद कहा जा सकता है कि सीनेट को कुछ मामलों में तो प्रतिनिधि सदन के समान शक्तियां प्राप्त हैं और कुछ में अधिक। इस सदन के पास जितनी अधिक शक्तियां हैं, वे विश्व में किसी भी उच्च सदन के पास नहीं हैं। इस सदन को उपरि सदन की तरह दूसरे दर्जे का सदन नहीं माना जा सकता। इसके सम्मान का बड़ा कारण इसकी विशेष शक्तियां हैं जिनका प्रयोग वह राष्ट्रपति द्वारा की गई सन्धियों व समझौतों के अनुसमर्थन के रूप में करता है। ब्राइस ने इस सदन को सरकार की शक्ति का ध्रुव केन्द्र माना है। इसकी अपार शक्तियों के कारण इसे संसार का सबसे शक्तिशाली द्वितीय सदन कहना सर्वथा सही है।

"सीनेट विश्व का सर्वाधिक शक्तिशाली दूसरा सदन है"

(Senate is the Strongest Second Chamber of the World)

आज विश्व में राजनीतिक विश्लेषकों के दिलो-दिमाग में यह अवधारणा बन चुकी है कि 'सीनेट विश्व का सर्वाधिक शक्तिशाली दूसरा सदन है।" इस उक्ति के पीछे जो निहितार्थ है, वह यह है कि इस सदन के पास जो शक्तियां व अधिकार हैं वे संसार के किसी भी उच्च सदन के पास नहीं हैं। लिंडसे रोजर्स का कहना है-"संयुक्त राज्य की सीनेट संसार का सर्वाधिकार शक्तिशाली सदन है। दूसरे देशों की शासन व्यवस्था में द्वितीय सदन की शक्तियों का ह्रास हुआ है, लेकिन सीनेट की शक्ति में अपार वृद्धि हुई है।" ऐसे ही विचार लास्की के हैं। लास्की ने इसे समस्त उच्च सदनों में सफल व विशिष्ट सदन माना है। यदि इस सदन की ब्रिटिश लार्ड सभा तथा भारत की राज्य-सभा से तुलना की जाए तो अमेरिकन सीनेट ही अधिक शक्तिशाली है। यह प्रतिनिधि सदन के साथ-साथ अन्य देशों के उच्च सदनों से भी अधिक शक्तिशाली है। इस विचार के पक्ष में निम्न तर्क दिए जा सकते हैं :-

(1) संविधान निर्माताओं की इच्छा :- अमेरिकन संविधान के निर्माता सीनेट को संघीय शासन प्रणाली की रीढ बनाना चाहते थे। उनकी इच्छा थी कि राष्ट्रपति अपनी शक्तियों का स्वेच्छाचारी प्रयोग न कर सके, इसलिए इन्होंने इस सदन को प्रतिनिधि सदन के समान शक्तियां प्रदान की। वर्तमान समय में अमेरिका में कोई भी विधेयक सीनेट की स्वीकृति के बिना कानून का रूप नहीं ले सकता। सीनेट वित्त-विधेयक में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन कर सकता है। ऐसी शक्ति न तो ब्रिटिश लार्ड सभा के पास है और न ही भारतीय राज्य सभा के पास है। संविधान-निर्माताओं की इच्छा का यह परिणाम है कि आज सीनेट व्यवस्थापन सम्बन्धी कार्यों में प्रतिनिधि सदन के समान और अधिक अधिकार रखता है।

(2) प्रत्यक्ष निर्वाचन :- सीनेट के सदस्यों का चुनाव प्रत्यक्ष तरीके से होता है, जबकि प्रतिनिधि सदन तथा दूसरे देशों के उच्च सदन का चुनाव अप्रत्यक्ष तरीके से होता है। सीनेट का सदस्य राज्य के प्रतिनिधित्व के साथ-साथ समस्त क्षेत्र के निवासियों का प्रतिनिधित्व कर देता है। प्रत्यक्ष निर्वाचन के कारण यह उच्च सदन की बजाय निम्न सदन का सम्मान प्राप्त कर लेता है।

(3) स्थायित्व :- सीनेट एक स्थायी सदन है। इस सदन का विघटन नहीं होता। इसके सदस्यों का कार्यकाल 6 वर्ष है। इसके 1/3 सदस्य दो वर्ष बाद रिटायर होते जाते हैं और उनके स्थान पर नए सदस्य आते रहते हैं। पुनर्निर्वाचन द्वारा इसके सदस्य कई वर्षों तक अपने पद पर बने रहते हैं। इस सदन के अधिकतर सदस्य ख्याति प्राप्त व अनुभवी व्यक्ति होते हैं। वे सदैव जनमत को अपने पक्ष में करने के लिए कल्याण के कार्य करते रहते हैं। इसके विपरीत प्रतिनिधि सदन के

सदस्य कम समय के लिए ही निर्वाचित होते हैं। जनता उन पर विश्वास करने की बजाय सीनेटरों पर ही अधिक विश्वास करती है।

(4) आकार व रचना :- सीनेट का आकार अन्य देशों के अन्य सदनों तथा प्रतिनिधि सदन से काफी छोटा होता है। भारत की राज्य सभा में 250, ब्रिटेन की लार्ड-सभा में 1198 तथा फ्रांस की सीनेट में 230 सदस्य हैं। इसी तरह अमेरिका के प्रतिनिधि सदन में 453 सदस्य हैं। परन्तु इस सदन में केवल 102 सदस्य हैं। इसका छोटा आकार सदन की कार्यवाही में अनुशासनात्मक कठिनाई पैदा नहीं करता। इस सदन में छोटे आकार के कारण वाद-विवाद अधिक प्रभावी व सजीव होता है। समाचार पत्र भी सीनेटरों के भाषणों को ही अधिक महत्व देते हैं, क्योंकि ये भाषण योग्य व अनुभवी व्यक्तियों के होते हैं।

(5) सीनेट की विशिष्ट शक्तियां :- अमेरिकन सीनेट को संविधान ने कुछ विशिष्ट शक्तियां प्रदान की हैं जो इसे शक्तिशाली बनाती हैं। ये शक्तियां विश्व में किसी अन्य सदन को प्राप्त नहीं हैं। राष्ट्रपति द्वारा की गई नियुक्तियां व समस्त सन्धियां व समझौते सीनेट के अनुसमर्थन पर ही लागू हो सकती है।

(6) दल-नियन्त्रण से दूर :- प्रतिनिधि सदन तथा विश्व के अन्य सदनों पर राजनीतिक दलों का अत्यधिक नियन्त्रण रहता है जिससे उनकी शक्ति व स्वतन्त्रता कम होने लगती है। अमेरिकी सीनेट में दलीय संगठन, दलीय नेतृत्व तथा दलीय अनुशासन का नितान्त अभाव है। इस सदन के सदस्य किसी भी विषय पर स्वतन्त्रतापूर्वक बोल सकते हैं। इसी कारण यह सदन अन्य सदनों से अधिक शक्तिशाली है। इस पर किसी का कोई नियन्त्रण नहीं है।

(7) मन्त्रिमण्डलीय व्यवस्था का अभाव :- अमेरिका में मन्त्रिमण्डलीय व्यवस्था के अभाव ने भी अप्रत्यक्ष रूप से सीनेट को विशेष शक्तिशाली बनाने में मदद की है। अन्य देशों में प्रथम सदन इसी कारण शक्तिशाली है कि वे मन्त्रिमण्डल के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव पास करके उसे नष्ट कर सकते हैं। अमेरिका में ऐसा कुछ नहीं है। इसी कारण सीनेट का महत्व प्रतिनिधि सदन की कमजोर स्थिति के कारण बढ़ा है।

(8) सीनेट की विशिष्ट कार्य प्रणाली :- सीनेट के सदस्य लम्बे समय तक किसी विषय पर वाद-विवाद करके स्वतन्त्र निर्णय ले सकते हैं। अमेरिका के अन्य सदनों के सदस्यों को यह स्वतन्त्रता नहीं होती है कि वे लम्बे समय तक वाद-विवाद करते रहें। इसी कारण सीनेट को अधिक सम्मान दिया जाता है।

(9) कार्य-विधि की सरलता :- सीनेट का महत्व इस बात से भी बढ़ा है कि यह अपने सदस्यों को वाद-विवाद की पूर्ण स्वतन्त्रता देता है और कार्य में रुकावट डालने की कोई कोशिश नहीं की जाती। सीनेटरों का आपसी तालमेल समस्त कार्यविधि को सरल बना देता है। इसके विपरीत प्रतिनिधि सदन तथा अन्य देशों के उच्च सदनों के द्वारा काम में लायी जाने वाली प्रणाली जटिल होती है।

(10) सीनेट के विशेषाधिकारों ने भी उसे प्रतिनिधि सदन के समान ही महत्वपूर्ण बना दिया है।

(11) सीनेट योग्य एवं वरिष्ठ व्यक्तियों का सदन है।

(12) सीनेट के सदस्यों में आपसी भाईचारे की भावना पाई जाती है।

(13) इस सदन को विभागीय कार्यों की जांच पड़ताल करने के लिए जांच समितियां नियुक्त करने का अधिकार है, जो अधिकारियों को बुलाकर पूछताछ करती है और भ्रष्टाचार की जांच करती है। यह शक्ति प्रतिनिधि सदन को प्राप्त नहीं है।

(14) सीनेट को कार्यपालिका पर नियन्त्रण रखने की शक्ति है, जिसका प्रयोग वह कार्यपालकों के विरुद्ध कर सकती है।

उपरोक्त विवेचन के बाद कहा जा सकता है कि सीनेट गुरुत्वाकर्षण का केन्द्र है जिसने योग्य व अनुभवी व्यक्तियों को अपनी तरफ आकर्षित किया है। अपनी अनुभव व कार्यकुशलता की योग्यता के कारण यह प्रतिनिधि सदन पर भारी पड़ता है। ग्लैड स्टोन ने ठीक ही कहा है कि आधुनिक राजनीति से जितने भी अधिकारी हुए हैं, उनमें सीनेट सबसे अद्भुत हैं। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि उसमें कोई दोष है। जैसे सीनेट में राज्यों का समान प्रतिनिधित्व लोकतन्त्रीय भावना के विपरीत है। यह सदन धनी वर्ग का प्रतिनिधि है और अनुत्तरदायी है। इस सदन ने कई बार महत्वपूर्ण सन्धियों व समझौतों का अनुसमर्थन नहीं किया। फिर भी यह सदन एक सफल, विशाल तथा अद्वितीय द्वितीय सदन के रूप में प्रतिष्ठित है। यह सदन अमेरिकन प्रशासन की धुरी है। यदि इस सदन को नष्ट कर दिया जाए तो समस्त अमेरिकी शासन-व्यवस्था ध्वस्त हो जाएगी।

स्विट्जरलैण्ड में विधायिका का ढांचा

(Legislative Structure in Switzerland)

स्विट्जरलैण्ड की व्यवस्थापिका ब्रिटेन, भारत तथा अमेरिका की तरह द्विसदनीय है। स्विट्जरलैण्ड की व्यवस्थापिका को संघीय सभा (Federal Assembly) कहा जाता है। स्विस संविधान के अनुच्छेद 71 में ही स्विस विधानमण्डल की दो विशेषताओं का वर्णन किया गया है-स्विस विधायिका के पास सर्वोच्च सत्ता है और यह द्वि-सदनीय है। स्विस संघ की समस्त शक्तियों का प्रयोग संघीय सभा ही करती है। संघीय सभा के निर्णयों को किसी न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती। कैण्टन [illegible] पूर्ण सभा है। व्यावहारिक दृष्टि से भी स्विस विधानमण्डल [illegible] द्वि-सदनीय [illegible] को [illegible] और अमेरिका [illegible] में अपने प्रतिनिधि भेजती है। द्वितीय सदन [illegible] परिषद है जिसमें अमेरिका की तरह समानता के आधार पर कैण्टनों को समान प्रतिनिधित्व दिया गया है। संविधान में किसी भी सदन को [illegible] निम्न घोषित नहीं किया गया है। [illegible] सभा को ही सर्वोच्च घोषित किया गया है। इसकी सर्वोच्चता ब्रिटिश संसद जैसी नहीं है, क्योंकि यह न तो कार्यपालिका बर्खास्त कर सकती है और न ही यह कार्यपालिका विधेयकों को भंग कर सकती है। स्विस विधायिका दो [illegible] सदनों [illegible] है।

(The National Council) :-

राष्ट्रीय परिषद की [illegible] राष्ट्रीय परिषद संघीय सभा के निम्न सदन [illegible] राष्ट्रीय परिषद सम्पूर्ण स्विस जनता का प्रतिनिधित्व करती है, कैण्टनों का नहीं। संविधान द्वारा इसके [illegible] निर्धारित [illegible] की [illegible] दी गई है।

निर्वाचन (Election) :- राष्ट्रीय परिषद के [illegible] का चुनाव [illegible] प्रतिनिधित्व [illegible] (Proportional [illegible]) के आधार पर किया जाता है। इस पद्धति को [illegible] में अपनाया गया। इससे पहले इसके सदस्यों का चुनाव एकल राष्ट्रीय निर्वाचन क्षेत्र [illegible] के आधार पर होता था। स्विस [illegible] अनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली की [illegible] में अनेक आधारों पर आलोचना की है। इसके [illegible] में राजनीतिक दलों का [illegible] बढ़ जाता है। अनेक [illegible] दलों को जन्म देती है, परिणामतः [illegible] विधानमण्डल की स्थिति कमजोर हो जाती है। किसी एक दल को स्पष्ट बहुमत नहीं मिलता, क्योंकि [illegible] सभी दलों की स्थिति समान होने के कारण यह निर्वाचित [illegible] को अनुपस्थित नहीं कर पाती। इसके परिणामस्वरूप संघीय परिषद का संगठन भी बहुदलीय हो जाता है, जिसका शासन [illegible] पड़ता है। बहुदलीय होने के कारण राष्ट्रीय परिषद एवं परिषद का दायरा बन जाती है।

मतदाता (Voters) :- स्विस [illegible] में [illegible] 20 वर्ष या इससे अधिक हो को [illegible] है। [illegible] बात यह है कि यहां पर स्त्रियों को काफी समय तक मताधिकार से वंचित रखा गया। 7 फरवरी 1971 को संशोधन [illegible] को मताधिकार दिया गया। इसके अतिरिक्त यहां नागरिकता से वंचित व्यक्तियों, फौजदारी अपराध में दण्डनीय व्यक्ति पागलों, दिवालिए, भिक्षुओं, दुश्चरित्र व्यक्तियों को मताधिकार से वंचित रखा गया है।

योग्यताएं (Qualifications) :- संविधान द्वारा स्विस राष्ट्रीय परिषद के सदस्यों के लिए कुछ योग्यताएं [illegible] जो वहां मतदाताओं के लिए हैं। प्रत्येक स्विस नागरिक जिसे मताधिकार प्राप्त है राष्ट्रीय परिषद का सदस्य [illegible] लेकिन इसके कुछ संवैधानिक अपवाद हैं जैसे धारा-75 के अनुसार कोई धर्माधिकारी (Clergy) धारा-77 के अनुसार राज्य एवं तथा संघीय परिषद के सदस्य राष्ट्रीय परिषद के सदस्य नहीं बन सकते। कैण्टन पार्षदों को अन्य किसी पद पर कार्य करने से वंचित कर सकते हैं।

पदावधि (Tenure) :- स्वि संविधान के तहत राष्ट्रीय परिषद के सदस्यों का कार्यकाल दो वर्ष निश्चित किया गया था। लेकिन 1931 में संवैधानिक संशोधन द्वारा यह कार्यकाल दो के स्थान पर चार वर्ष कर दिया गया। वर्तमान समय में भी इसके सदस्यों की पदावधि चार वर्ष है। इसके सदस्य अपनी इच्छानुसार पुनर्निवाचित हो सकते हैं।

अधिवेशन एवं गणपूर्ति (Session and Quorum) :- संघीय सभा के दोनों सदनों का वर्ष में एक अधिवेशन अनिवार्य है। लेकिन वास्तव में । वर्ष में इसके चार अधिवेशन होते हैं, मार्च, जून, सितम्बर, दिसम्बर में। लेकिन इन चारों अधिवेशनों को एक ही सत्र के अन्तर्गत माना जाता है। इसका अधिवेशन एक बार में 4 सप्ताह तक चलता है। राष्ट्रीय परिषद के 1/4 सदस्यों के अनुरोध पर इसकी असाधारण बैठकें बुलाई जा सकती हैं। कुछ विशेष कार्यों के लिए दोनों सदनों की संयुक्त बैठक (Joint Session) भी बुलाए जाते हैं, जिसका सभापतित्व राष्ट्रीय परिषद का अध्यक्ष करता है और इसमें निर्णय दोनों के उपस्थित सदस्यों के बहुमत से होता है। गणपूर्ति के लिए कम से कम सदन के कुछ सदस्यों का उपस्थित होना अनिवार्य है।

मुख्य अधिकारी (Main Officers) :- राष्ट्रीय परिषद प्रति वर्ष अपने सदस्यों में से एक को अध्यक्ष ओर एक उपाध्यक्ष के रूप में चुनती है। लेकिन संवैधानिक प्रावधान के अनुसार इन दोनों पदाधिकारियों को चुनाव प्रत्येक साधारण या असाधारण अधिवेशन के लिए होना चाहिए। परम्परा के अनुसार वर्ष के सभी अधिवेशनों को एक ही अधिवेशन का भाग मान लिया जाता है। ये अधिकारी पुनः निर्वाचित भी हो सकते हैं। परन्तु इन पर प्रतिबन्ध अवश्य लगाया गया है कि कोई भी अधिकारी लगातार दो बार एक पद पर नहीं रह सकता और न ही कोई उपाध्यक्ष अगली बार अध्यक्ष बन सकता है। अध्यक्ष को कोई विशेष अधिकार प्राप्त नहीं हैं। उसकी शक्तियां सामान्य हैं। उसे ग्रंथि (Tie) की स्थिति में निर्णायक मत (Casting Vote) देने का अधिकार है। सदन में अनुशासन रखने का दायित्व भी उसी का है।

वेतन और भत्ते (Salary and Allowances) :- स्विस राष्ट्रीय परिषद के सदस्यों को प्रति माह कोई वेतन नहीं मिलता। उन्हें सदन के अधिवेशन के समय मात्र 70 फ्रेंक प्रतिदिन भत्ता तथा मार्ग व्यय दिया जाता है। जो इतना कम है कि इससे उनका जीवन निर्वाह नहीं चल पाता इसलिए उन्हें किसी दूसरे वैतनिक राजनीतिक पद पर कार्य करना पड़ता है।

(II) राज्य परिषद

(The Council of States) :-

राज्य परिषद की रचना (Composition of the Council of States) :- राज्य परिषद स्विस व्यवस्थापिका ,जिसे संघीय सभा (Federal Assembly) कहते हैं, का उपरी सदन है, जिसकी रचना अमेरिकी सिनेट से मिलती-जुलती है। अमेरिकी संघ की भांति स्वि सघ में भी प्रत्येक कैंटन को चाहे उस का आकार व जनसंख्या कुछ भी हो, समानता के आधार पर प्रतिनिधित्व दिया गया है। स्विटजरलैण्ड में कुल 25 कैण्टन (State) हैं जिनमें से 19 पूर्ण कैण्टन और 6 आधा कैण्टन (Half Canton) हैं। प्रत्येक पूर्ण कैण्टन को राज्य परिषद में 2 सदस्य और अर्ध कैण्टन को एक-एक सदस्य भेजने का अधिकार है। इसकी कुल संख्या 44 है। जिनमें से 17 कैण्टनों के 38 सदस्य और 6 कैण्टनों के 6 सदस्य होते हैं। राज्य परिषद के समस्त सदस्यों की निर्वाचन विधि, पदावधि, योग्यताएं आदि का निर्धारण एक समान न होकर कैण्टन के हाथों में है। प्रत्येक कैण्टन के अलग-अलग नियम हैं। संविधान की कतिपय धाराओं द्वारा इसके सदस्यों के चुनाव पर कुछ प्रतिबन्ध लगाए गए हैं जैसे-धारा-6 में स्पष्ट किया गया है कि "कैण्टन के समस्त सदस्यों का चुनाव लोकतन्त्रीय विधि से हो।" धारा-81 में लिखा है कि "राज्य परिषद का सदस्य इस पद पर रहते हुए न तो राष्ट्रीय परिषद और न संघीय परिषद का सदस्य हो सकता है। धारा-108 के तहत परिषद के सदस्यों को एक साथ संघीय न्यायालय की सदस्यता प्राप्त करने पर रोक लगा दी है।

पदावधि (Tenure) :- स्विस राज्य परिषद के सदस्यों के कार्यकाल में असमानता पाई जाती है। सभी कैण्टन अपने-अपने सदस्यों का चुनाव अलग-अलग अवधियों के लिए करते हैं। यह अवधि एक वर्ष से लेकर 5 वर्ष तक हो सकती है। संविधान द्वारा इसके सदस्यों के पुनर्निर्वाचन पर कोई रोक नहीं है। अधिकांश प्रतिनिधि उच्च शिक्षा प्राप्त उच्चकोटि के विद्वान होते हैं जो अपनी इच्छापर्यन्त निर्वाचित होते रहते हैं।

पदाधिकारी (Officers) :- राज्य परिषद प्रति वर्ष अपने सदस्यों में से एक अध्यक्ष और एक उपाध्यक्ष निर्वाचित नहीं हो सकते हैं। अध्यक्ष इसकी बैठकों की अध्यक्षता करता है।

विशेषाधिकार एवं उन्मुक्तियां (Privileges and Immunities) :- स्वि संघीय सभा के सदस्यों को संविधान द्वारा कुछ विशेषाधिकार व उन्मुक्तियां दी गई हैं। उन्हें सिर्फ अपने सदन के प्रति उत्तरदायी ठहराया जा सकता है। अन्य किसी अधिकारी

के प्रति नहीं। इसके सदस्यों को विचार अभिव्यक्ति और वाद-विवाद में भाग लेने की पूर्ण स्वतन्त्रता है। वे विधानमण्डल द्वारा पारित विधियों के प्रति उत्तरदायी नहीं होते। न्यायिक क्रियाओं (Judicial Proceedings) के सत्र के समय उन्हें उन्मुक्ति प्राप्त है। विधानमण्डल के सत्र के समय सम्बन्धित सदन से 24 घण्टे के अन्दर आज्ञा लेकर, किसी गम्भीर अपराध के लिए किसी प्रतिनिधि को गिरफ्तार किया जा सकता है।

राष्ट्रीय परिषद व राज्य परिषद में सम्बन्ध

(Relationship between the National Council and the Council of States)

स्विस संविधान ने विधानमण्डल के दोनों सदनों को समान शक्तियां प्रदान करके स्विस कार्यपालिका की तरह अद्वितीय बना दिया है। स्विट्जरलैण्ड ने द्वितीय सदन प्रथम सदन के समान ही शक्तिशाली है, कोई भी विधेयक तब तक पास नहीं हो सकता, जब तक संघीय सभा के दोनों सदन उसे पास न कर दें। स्विस विधानमण्डल में यदि किसी विधेयक पर कोई सदन आपत्ति करता है तो दोनों सदनों के बीच उत्पन्न मतभेद को दूर करने के लिए एक मध्यस्थ समिति गठित की जाती है। यदि यह समिति समाधान तक पहुंचने में असफल हो जाए तो विधेयक रद्द हो जाता है। स्विटजरलैण्ड में द्वितीय सदन को ब्रिटेन तथा भारत की तरह विधेयकों में देरी करने की ही शक्ति प्राप्त नहीं है, बल्कि समान स्थिति प्राप्त है। भारत तथा ब्रिटेन में तो द्वितीय सदन द्वारा अमान्य विधेयक पर मध्यस्थ समिति का गठन कर दिया जाता है और यदि समिति उस मतभेद को दूर करने में असफल रहती है तो प्रथम सदन को ही प्राथमिकता मिलती है, लेकिन स्विस में ऐसा नहीं है। वित्तीय क्षेत्र में भी दोनों को समान अधिकार प्राप्त हैं। भारत तथा ब्रिटेन में वित्त पर प्रथम या निम्न सदन का ही वर्चस्व रहता है। परन्तु स्विट्जरलैण्ड में ऐसा नहीं है। वहां पर हर क्षेत्र में दोनों को समान शक्तियां प्राप्त हैं। यदि वहां दोनों सदनों में कोई अन्तर प्रकट होता है तो वह मात्रात्मक है, गुणात्मक नहीं।

राष्ट्रीय परिषद की बढ़ती शक्ति व प्रभाव

(Emerging Power and Influence of the National Council)

वर्तमान समय में स्विट्जरलैण्ड में एक नए प्रकार की प्रवृत्ति उभर रही है, वह है-राष्ट्रीय परिषद की शक्तियों में वृद्धि व उसका बढ़ता प्रभाव। इसका प्रमुख कारण राज्य परिषद के कुछ सदस्यों का अल्प कार्यकाल, विभिन्न तरीकों से चुनाव, इसके द्वारा संघीय परिषद के कम सदस्यों को चुना जाना, कुछ सदस्यों का अप्रत्यक्ष चुनाव तथा सदस्यों का जनसंख्या के अनुपात में प्रतिनिधित्व न करना। अर्थात राज्य परिषद की घटती शक्ति व प्रभाव ही राष्ट्रीय परिषद के बढ़ते प्रभाव के लिए उत्तरदायी है। इसके साथ ही राष्ट्रीय परिषद जनसाधारण की प्रतिनिधि है। समस्त राजनीतिक क्रियाओं का केन्द्रस्थल होने के कारण उसकी प्रतिष्ठा ही अधिक है। लावेल ने राज्य परिषद के घटिया प्रभाव का कारण उसमें नेताओं की कमी होना है। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि स्विस राज्य परिषद संस्था महत्वहीन है। व्यवहार में कम सही, परन्तु सिद्धान्त में तो वह आज भी भारत तथा ब्रिटेन के द्वितीय सदनों से अधिक शक्तिशाली है।

संघीय सभा के कार्य व शक्तियां

(Functions and Powers of the Federal Assembly)

ब्रिटेन की संसद की तरह स्विस संघीय सभा में भी राष्ट्र की सर्वोच्च शक्ति निहित है। परन्तु स्विस संविधान ने संघीय सभा पर कुछ प्रतिबन्ध भी लगाए हैं जो जनता, कैण्टनों तथा संघीय प्राधिकारी को संविधान द्वारा सौंपे गए अधिकारों के रूप में हैं। स्विस संविधान के अनुच्छेद 84 में लिखा है कि संघीय सभा वे समस्त कार्य कर सकती है जो राज्य के अधिकार क्षेत्र में हैं, यदि वे अन्य किसी संघीय प्राधिकारी को नहीं सौंपे गए हैं। स्विस संविधान के अनुच्छेद 85 के अन्तर्गत स्विस संघीय सभा की प्रमुख शक्तियां व कार्य निम्नलिखित हैं :-

(1) विधायी शक्तियां (Legislative Powers) :- संघीय सभा एक विधायी सभा होने के नाते प्रत्येक संघीय विषय पर कानून बनाने का अधिकार रखती है। इसे संघ के बड़े-बड़े प्राधिकारियों का संगठन व नियुक्ति सम्बन्धी कानून बनाती है। सभी नए नियम व अधिनियम उसके सामने ही प्रस्तुत किए जाते हैं और उनकी स्वीकृति होने पर ही वे कानून का रूप ले सकते हैं। स्विस संविधान में कार्यपालिका (राष्ट्रपति) को यह अधिकार प्राप्त नहीं है कि वह किसी विधेयक पर वीटो शक्ति

का प्रयोग कर सके। परन्तु स्विस जनता को यह अधिकार अवश्य प्राप्त है कि वह अपने अधिकारों का प्रयोग करके किसी विधेयक को अधिनियम बनने से रोक सकती है। स्विस संघीय सभा ही संघीय अधिकारियों के भत्ते व वेतन निर्धारित करती है और नए संघीय पदों का स्थायी सृजन रकती है। संविधान संशोधन में भी संघीय सभा विशेष भूमिका अदा करती है।

(2) कार्यपालक या प्रशासकीय शक्तियां (Executive Powers) :- संघीय सभा अपने संयुक्त अधिवेशन में संघीय परिषद के सदस्यों, उनके अध्यक्ष और उपाध्यक्ष, संघीय न्यायपालिका के न्यायाधीशों, संघीय बीमा निकाय के सदस्यों, सर्वोच्च सेनापति, विशेष जन-अभियोजन, चांसलर आदि की नियुक्ति करती है। वह राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय नीति का भी संचालन करती है। युद्ध अथवा शान्ति की घोषणा करना तथा विदेशों से की गई सन्धियों पर समझौतों पर अनुसमर्थन देना इसी का कार्य है। यह कैण्टनों की शासन व्यवस्था पर भी अपना नियन्त्रण रखती है। जब कोई कैण्टन संघीय कानून का अतिक्रमण करता है तो उसके विरुद्ध कार्यवाही करने का अधिकार इसी को है। यह कैण्टनों तथा विदेशी राष्ट्रों के बीच हुए समझौतों व सन्धियों की भी पुष्टि करती है। देश में शान्ति तथा व्यवस्था बनाए रखना तथा संघीय संविधान को क्रियान्वित करना इसी का काम है। उपरोक्त सभी कार्यों का निष्पादन करने का उत्तरदायित्व यह संघीय परिषद को सौंप देती है और वह परिषद संघीय सभा की दिशा-निर्देशानुसार ही कार्य करती है।

(3) वित्तीय शक्तियां (Financial Powers) :- राष्ट्रीय वित्त पर भी संघीय सभा का पूर्ण नियन्त्रण है। संघीय सभा संघीय परिषद द्वारा प्रस्तुत वार्षिक बजट को पास करती है। यह करों की मात्रा निश्चित करने तथा सरकारी आय को खर्च करने का पूर्ण अधिकार रखती है। यह रेलवे अनुदान प्रदान करती है तथा सार्वजनिक आय-व्यय तथा लेखे का परीक्षण भी कराती है।

(4) न्यायिक शक्तियां (Judicial Powers) :- संघीय सभा देश की न्याय-व्यवस्था पर पूर्ण नियन्त्रण रखती है। यह संघीय न्यायपालिका के न्यायधीशों का निर्वाचन करती है और न्यायपालिका का निरीक्षण व निर्देशन भी करती है। कई मामलों में यह स्वयं ही अन्तिम न्यायालय होती है। यह संघीय परिषद, संघीय न्यायालय तथा बीमा न्यायालयों के बीच उत्पन्न मतभेदों को दूर करती है। यह प्रशासनिक मामलों पर भी अपील सुन सकती है। यह किसी भी संघीय प्राधिकारी व कर्मचारी के विरुद्ध कुछ विशेष मामलों में केस सुन सकती है और उसे सजा भी दे सकती है। इसे संघीय न्यायालय द्वारा दण्डित तथा सैनिक शासन के अर्न्तगत मृत्युदण्ड सुनाए गए व्यक्ति के दण्ड को माफ करने का अधिकार भी है।

संघीय सभा की स्थिति

(Position of the Federal Assembly)

उपरोक्त विवेचन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि स्विस संघीय सभा ब्रिटिश संसद की तरह सर्वोच्च सत्ता रखती है। स्विस संघीय परिषद भी इसी के नियन्त्रण व निर्देशन में कार्य करती है। संघीय सभा संवैधानिक उपबन्धों तथा व्यवहारिक परम्पराओं के परिणामस्वरूप एक सम्प्रभुसत्ता सम्पन्न विधायिका बन चुकी है। स्विस संघीय सभा की कार्य-प्रणाली ने इसे जो प्रतिष्ठा प्रदान की है, वह अन्य किसी देश की विधायिका को प्राप्त नहीं हुई है। लार्ड ब्राइस ने लिखा है-"स्विस व्यवसीपन विभाग बड़ी ईमानदारी से कार्य करने वाली संस्था है जो शान्ति तथा देशप्रेम से प्रभावित होकर अपने कार्य का सम्पादन करती है। वहां के सदस्य व्यर्थ में ओजस्वी भाषण नहीं देते, न उन भाषणों की प्रशंसा की जाती है और न ही बीच में उनकी काट की जाती है। उनको तो अपने कार्य विशेष से ही लगाव रहता है।" संघीय व्यवस्थापिका हमेशा ही निष्पक्ष व अनुशासनबद्ध रहकर कार्य करती है।

यदि स्विस शासन प्रणाली का गहराई से अवलोकन किया जाए तो वास्तविकता कुछ और ही है। स्विस संघीय सभा उस सीमा तक सर्वोच्च नहीं है जैसी कल्पना की जाती है। स्विस शासन-प्रणाली में संसदीय-सर्वोच्चता के स्थान पर सार्वजनिक सम्प्रभुता व सर्वोच्चता का सिद्धान्त व्यवहारिक रूप में लागू है। संविधान द्वारा संघीय सभा पर जनता व कैण्टनों के अधिकार बाधित हैं। जनमत संग्रह की व्यवस्था संघीय सभा की सम्प्रभुता को चुनौती देती है। आज स्विस जनता स्वयं ही कानून-निर्माण में भाग लेती है। कैण्टनों के अधिकार भी संघीय सभा की सम्प्रभुता को सीमित करते हैं। आज स्विस कार्यपालिका की बढ़ती शक्ति भी संघीय व्यवस्थापिका को चुनौती दे रही है। यद्यपि स्वि व्यवस्थापिका काफी निष्पक्षता व ईमानदारी से कार्य करती है, लेकिन फिर भी उसे ब्रिटिश संसद की तरह सम्प्रभु मानना हमारी भूल है। सत्य तो यह है कि उसे शंका, अनिश्चितता व अहसायवस्था के वातावरण में अपना कार्य शान्ति, समझदारी, निष्पक्षता व ईमानदारी से करना पड़ता है।

चीन में विधायिका का ढांचा

(Legislative Structure in China)

चीन में भी ब्रिटेन तथा भारत की तरह संसदीय सर्वोच्चता को स्वीकार तो किया गया है, लेकिन एक सदनात्मक स्वरूप में। चीन एक साम्यवादी राज्य है, इसलिए चीन को सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक व्यवहारिक सत्यताओं के सन्दर्भ में एक ही सदन की व्यवस्था की गई है जिसे राष्ट्रीय जन कांग्रेस कहा जाता है। राष्ट्रीय जन कांग्रेस चीन की सर्वोच्च व्यवस्थापिका है जो साम्यवादी दल के झण्डे तले ही रहकर कार्य करती है। चीनी गणतन्त्र का संविधान संसदीय सर्वोच्चता के सिद्धान्त पर आधारित है और वह शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धान्त को मान्यता नहीं देता। 1982 के चीनी संविधान में राष्ट्रीय जन कांग्रेस को सर्वोच्च विधायी निकाय स्वीकार किया गया है। संविधान के अनुच्छेद 3 में स्पष्ट लिखा है कि चीनी जनवादी गणतन्त्र की समस्त शक्तियां जनता में निहित हैं और वह अपनी शक्तियों का प्रयोग जनकांग्रेस के माध्यम से करती है।

राष्ट्रीय जनकांग्रेस : चीनी व्यवस्थापिका

(National People's Congress : Chinese Legislature)

चीन में एक सदनीय व्यवस्थापिका की व्यवस्था है, जिसे राष्ट्रीय जन कांग्रेस कहा जाता है। यद्यपि चीन एक बहुराष्ट्रीय राज्य है, लेकिन फिर भी वहां दूसरे सदन की व्यवस्था नहीं की गई है। इसका प्रमुख कारण वहां की शासन व्यवस्था पर साम्यवाद के प्रभाव का होना है। चीन का साम्यवादी दल चीनी शासनतन्त्र पर कठोर नियन्त्रण रखता है। सिद्धान्त में तो चीन में कार्यपालिका, न्यायपालिका तथा विधायिका नाम के निकाय हैं, लेकिन व्यवहार में उन पर साम्यवादी दल का ही कठोर नियन्त्र रहता है और उन सभी का कार्य साम्यवादी दल के कार्यक्रमों व नीतियों को अमली जामा पहनाना है। चीन के 1982 के संविधान जो धन भी प्रचलित है, में अनुच्छेद 57 में लिखा है कि राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस राज्य-सत्ता का सर्वोच्च अंग है। चीन मे एकात्मक शासन होने के कारण स्थानीय जन कांग्रेस पर भी राष्ट्रीय जन कांग्रेस का ही नियन्त्रण रहता है।

राष्ट्रीय जन कांग्रेस की रचना (Composition of National People's Congress) :- 1982 के संविधान में राष्ट्रीय जन कांग्रेस एक सदनीय है जिसके सदस्यों की संख्या अनिश्चित है। इसके सदस्यों की संख्या कानून द्वारा निश्चित की जाती है। संविधान के अनुच्छेद 59 में केवल यह लिखा गया है-"राष्ट्रीय जन कांग्रेस में ऐसे प्रतिनिधि नियुक्त होंगे जिनका निर्वाचन प्रान्तों, केन्द्रीय सरकार के प्रत्यक्ष नियन्त्रणाधीन नगरपालकों, स्वायत्त क्षेत्रों तथा सेना के द्वारा किया जाएगा।" इसमें यह भी लिखा है कि राष्ट्रीय जन-कांग्रेस के सदस्यों की संख्या व उनके चुनाव की प्रक्रिया कानून द्वारा ही तय की जाएगी। वर्तमान में राष्ट्रीय जन-कांग्रेस के सदस्यों के चुनाव का प्रबन्ध एक स्थायी समिति करती है। चीनी संविधान के अनुच्छेद 34 में स्पष्ट लिखा है कि जन कांग्रेस के प्रतिनिधियों का चुनाव व्यस्क मताधिकार के आधार पर किया जाएगा, जिसमें 18 वर्ष की आयु के व्यक्ति भाग लेंगे। राष्ट्रीय जन कांग्रेस के किसी भी सदस्य को जनता किसी भी समय बदलने का अधिकार रखती है।

1983 में राष्ट्रीय जन कांग्रेस के सदस्यों की संख्या 2978 थी। फिर 1993 में 292। प्रतिनिधि चुने गए। 1998 में गठित राष्ट्रीय जन कांग्रेस के सदस्यों की संख्या 2978 है। राष्ट्रीय जन कांग्रेस के सदस्यों के चुनाव में पागल या किसी न्यायालय द्वारा दण्डित व्यक्ति को भाग लेने का अधिकार नहीं हैं ऐसा व्यक्ति न तो वोट डाल सकता है और न ही चुनाव लड़ सकता है। चीन के संविधान में लोकतन्त्रीय केन्द्रवाद का सिद्धान्त अपनाते हुए क्रमशः स्थानीय, क्षेत्रीय और प्रांतीय जन-कांग्रेसें अपने से बडी जन कांग्रेसों का निर्वाचन करते हुए अन्ततः राष्ट्रीय जन-कांग्रेस को चुनती है।

राष्ट्रीय जन कांग्रेस का कार्यकाल (Tenure of National People's Congress) :- पुराने संविधान में राष्ट्रीय जन कांग्रेस का कार्यकाल 4 वर्ष था, परन्तु 1982 के संविधान में इसका कार्यकाल 5 वर्ष कर दिया गया है। विशेष परिस्थिति में इसके कार्यकाल में वृद्धि की जा सकती है।

राष्ट्रीय जन कांग्रेस के सदस्यों के विशेषाधिकार व उन्मुक्तियां (Priveleges and Immunities of the Members of the National People's Congress) :- 1954 के संविधान में राष्ट्रीय जन कांग्रेस के प्रतिनिधियों को कुछ विशेषाधिकार प्राप्त थे, लेकिन 1975 तथा वर्तमान संविधान में ऐसा कोई उल्लेख नहीं है।

अधिवेशन व गणपूर्ति (Session and Quorum) :- 1982 के संविधान के अनुच्छेद 61 के अन्तर्गत लिखा गया है कि राष्ट्रीय

जन कांग्रेस का अधिवेशन बुलाने का अधिकार स्थायी समिति को है। इसका अधिवेशन वर्ष में एक बार बुलाना आवश्यक है। अधिवेशन बुलाने के लिए समिति के 1/5 सदस्यों की स्वीकृति होना आवश्यक है।

पदाधिकारी (Officers) :- चीनी संविधान इस बारे में चुप है कि राष्ट्रीय जन कांग्रेस के पदाधिकारी कौन-कौन होंगे। व्यवहार में राष्ट्रीय जन कांग्रेस एक प्रेजिडियम का निर्माण करती है। प्रेजिडियम की संख्या बड़ी होने पर कुछ स्थायी अध्यक्ष चुने जाते हैं। इन अध्यक्षों के अधिकारों व शक्तियों का भी संविधान में उल्लेख नहीं है। अपने पदाधिकारियों के निर्वाचन तथा समितियों के गठन का निर्माण राष्ट्रीय जन कांग्रेस ही करती है।

राष्ट्रीय जन-कांग्रेस के कार्य व शक्तियां

(Functions and Powers of the National People's Congress)

1982 के चीनी संविधान के अनुच्छेद 62 के भाग-17 में राष्ट्रीय जन कांग्रेस की निम्नलिखित शक्तियों व कार्यों का उल्लेख किया गया है :-

(1) विधायी शक्तियां (Legislative Powers) :- राष्ट्रीय जन कांग्रेस एक प्रमुख विधायी निकाय है जिसे कानून निर्माण के क्षेत्र में व्यापक शक्तियां प्राप्त हैं। चीन में शक्ति पृथक्करण सिद्धान्त की अस्वीकृति ने राष्ट्रीय जन कांग्रेस को समस्त विधायी शक्तियों का स्रोत बना दिया है। चीन में ऐसी कोई संस्था नहीं है जो राष्ट्रीय जन-कांग्रेस द्वारा निर्मित कानून पर वीटो शक्ति का प्रयोग कर सके। इसलिए यह प्रतयेक विषय पर कानून बनाने का अधिकार रखती है।

(2) संविधान में संशोधन (Constitutional Amemdment) :- चीन की राष्ट्रीय जन कांग्रेस संविधान में भी संशोधन कर सकती है, संविधान के अनुच्छेद 64 में यह व्यवस्था है कि संविधान में संशोधन का प्रस्ताव कांग्रेस की स्थाई समिति या जन कांग्रेस के 1/5 सदस्य के रूप में पेश कर सकते हैं। परन्तु संविधान में संशोधन का कोई भी प्रस्ताव उसी समय पास हो सकता है, जब राष्ट्रीय जन कांग्रेस के 2/3 सदस्य उसे पारित कर दें

(3) कार्यपालक शक्तियां (Executive Powers) :- 1982 के चीनी संविधान के अन्तर्गत राष्ट्रीय जन कांग्रेस को प्रधानमन्त्री तथा राज्य-परिषद के सदस्यों को नियुक्त करने तथा बर्खास्त करने का अधिकार है। लेकिन इस शक्ति का प्रयोग करते समय उसे साम्यवादी दल की केन्द्रीय समिति की सहमति जरूरी लेनी पड़ती है। स्थायी समिति के अध्यक्ष तथा उपाध्यक्षों का चुनाव भी राष्ट्रीय जन कांग्रेस ही करती है। उन्हें वापिस बुलाने का अधिकार भी इसी के पास है। यद्यपि इस शक्ति पर साम्यवादी दल की केन्द्रीय समिति का कोई नियन्त्रण नहीं है, लेकिन फिर भी राष्ट्रीय जन कांग्रेस उसकी सहमति अवश्य लेती है। चीन के राष्ट्रपति तथा उपराष्ट्रपति का निर्वाचन भी राष्ट्रीय जन कांग्रेस ही करती है। सेना आयोग के अध्यक्ष तथा सर्वोच्च जन न्यायालय के अध्यक्ष का चुनाव तथा युद्ध तथा शान्ति के प्रश्नों पर विचार करने का कार्य भी राष्ट्रीय जन कांग्रेस के पास ही है। यह विभिन्न प्रकार की समितियों का गठन भी करने का अधिकार रखती है। जिस प्रकार यह नियुक्ति सम्बन्धी शक्तियां रहती हैं, उसी तरह यह अपने द्वारा नियुक्त किसी भी पदाधिकारी को पदच्युत भी कर सकती है। विदेशों में भेजे जाने वाले कूटनीतिक अधिकारियों (राजदूतों) को नियुक्त करने तथा उन्हें वापिस बुलाने का भी अधिकार राष्ट्रीय जन-कांग्रेस के पास ही है।

(4) वित्तीय शक्तियां (Financial Powers) :- राष्ट्रीय वित्त व अर्थ व्यवस्था से सम्बन्धित किसी भी नीति को स्वीकृत करना तथा उन्हें कार्य रूप देने की योजना सुझाना राष्ट्रीय जन कांग्रेस की महत्वपूर्ण शक्ति है। राष्ट्रीय बजट तथा आय व्यय का लेखा जोखा रखने का अधिकार भी राष्ट्रीय जन कांग्रेस को ही है। यह राष्ट्रीय बजट का निरीक्षण करने व उसकी पुष्टि करने का अधिकार रखती है। यह वित्तीय प्रावधानों की जांच कर सकती है, आर्थिक योजनाएं बना सकती है तथा बजट समिति का निर्माण भी कर सकती है। जनता पर कर लगाना और उसे वसूल करने के नियम बनाना भी इसी का कार्य है।

(5) प्रशासकीय शक्तियां (Administrative Powers) :- चीन में प्रशासन पर राष्ट्रीय जन कांग्रेस का ही नियन्त्रण लगाया गया है। इस निकाय को यह अधिकार है कि वह राज्य परिषद और स्थायी समिति की कार्यप्रणाली की जांच कर सकती है। इसकी बैठक में प्रधानमन्त्री केन्द्र सरकार व प्रशासन के बारे में महत्वपूर्ण रिपोर्ट पेश करता है और वह इस पर व्यापक विचार-विमर्श करती है। अनुच्छेद 73 के अन्तर्गत यह व्यवस्था है कि "राष्ट्रीय जन कांग्रेस के सदस्य राज्य परिषद और राज्य परिषद के मन्त्रालयों एवं आयोगों से प्रश्न पूछ सकते हैं और उनका उत्तर देना उन संस्थाओं के लिए अनिवार्य

होता है।"

(6) अन्य कार्य (Miscellaneious Functions) :- राष्ट्रीय जन कांग्रेस संविधान को लागू करने के लिए आवश्यक दिशा निर्देश देती है। वह फौजदारी अपराधों, नागरिक विषयों, राज्य अंगों तथा अन्य विषयों पर कानून बना सकती है और उनमें संशोधन कर सकती है। चीनी संविधान में इस बात का स्पष्ट उल्लेख है कि राष्ट्रीय जन कांग्रेस उन सभी शक्तियों का प्रयोग कर सकती है जिनका प्रयोग करना वह आवश्यक समझे।

राष्ट्रीय जन-कांग्रेस की स्थिति

(Position of the National People's Congress)

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि राष्ट्रीय जन-कांग्रेस एक सर्वोच्च विधायी निकाय है जिसकी शक्तियां असीम हैं। जनता का प्रतिनिधि होने के कारण इसे भी अन्य लोकतन्त्रीय देशों की व्यवस्थाओं की तरह व्यापक शक्तियां सौंपी गई हैं परन्तु साम्यवादी दल के कठोर नियन्त्रण के तले वे शक्तियां एकमात्र कल्पना बनकर रह गई हैं। डी०जे० वालर ने लिखा है-"यह निकाय केवल विचार-विमर्श करने वाला है जिसका प्रमुख कार्य साम्यवादी दल की केन्द्रीय समिति द्वारा निर्धारित नीतियों को स्वीकृति प्रदान करना है। इसलिए यह बात निराधार है कि चीन में प्रजातंत्रात्मक व्यवस्थापिका है। विरोधी दल के अभाव में चीन में राष्ट्रीय जन कांग्रेस के सदस्यों का चुनाव निष्पक्ष एवं स्वतन्त्र नहीं हो सकता। राष्ट्रीय जन कांग्रेस की समस्त गतिविधियों पर साम्यवादी दल का कठोर नियन्त्रण है। राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस के अधिवेशन वर्ष में एक बार ही होते हैं। यह अपना कार्यकाल भी स्वेच्छा से बढ़ा सकती है। इसके सदस्यों की अधिक संख्या किसी विषय पर गम्भीर चिन्तन नहीं कर सकती। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि राष्ट्रीय जन कांग्रेस सरकार का एक निष्क्रिय अंग है। सत्य तो यह है कि राष्ट्रीय जन कांग्रेस विभिन्न वर्गों की प्रतिनिधि है और इसकी सबसे बड़ी उपयोगिता इस बात में है कि यह साम्यवादी नीतियों व कार्यक्रमों को अमली जामा पहनाती है।

राष्ट्रीय जन कांग्रेस की स्थायी समिति

(Standing Committee of the National People's Congress) :-

राष्ट्रीय जन कांग्रेस के बढ़ते राजनीतिक व प्रशासनिक उत्तरदायित्वों ने चीन में एक ऐसी संवैधानिक व्यवस्था के बारे में संविधान-निर्माताओं को सोचने पर विवश किया है जो राष्ट्रीय जन कांग्रेस के कार्यभार को कम कर सके और साम्यवादी नीतियों और कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में जन-कांग्रेस को सहयोग दे सके। इसी दृष्टि से 1982 में चीनी संविधान में राष्ट्रीय जन कांग्रेस के एक स्थायी अंग के रूप में स्थायी समिति की भी व्यवस्था की गई है। जिस प्रकार सर्वोच्च सोवियत सोवियत संघ की विधायिका के रूप में अपना कार्य अध्यक्षमण्डल (Presidium) के माध्यम में करती है, उसी तरह स्थायी समिति भी चीन की विधायिका राष्ट्रीय जन कांग्रेस भी अपना कार्य स्थाई समिति नामक संस्था के माध्यम से ही करती है। इसका प्रमुख कारण यह है कि राष्ट्रीय जन कांग्रेस का अधिवेशन वर्ष में केवल एक बार ही होता है, इसलिए प्रशासन में कार्यकुशलता लाने के लिए इस समिति का महत्व आजीवन बना रहता है।

स्थायी समिति की रचना (Composition of the Standing Committee) :- 1982 के संविधान के अनुच्छेद 65 में कहा गया है कि-"राष्ट्रीय जन कांग्रेस स्थायी समिति के सदस्यों का चुनाव करेगी। इस समिति में एक अध्यक्ष, कुछ उपाध्यक्ष, और अन्य सदस्य होंगे।" इस अनुच्छेद में यह बात स्पष्ट नहीं है कि ये सदस्य राष्ट्रीय जन-कांग्रेस में से ही चुने जायेंगे या बाहर से भी हो सकते हैं। परन्तु इस बात का उल्लेख अवश्य हुआ है कि समिति का कोई भी सदस्य राज्य के प्रशासकीय या न्यायिक अंग के किसी पद पर आसन नहीं हो सकता। यद्यपि स्थायी समिति के सदस्यों की संख्या तो निश्चित नहीं है, लेकिन इसमें सभी अल्पसंख्यक राष्ट्रीयताओं को अवश्य प्रतिनिधित्व दिया गया है। स्थायी समिति के सदस्यों का चुनाव राष्ट्रीय जन कांग्रेस करती है और अपने कार्यों के प्रति समिति राष्ट्रीय जन-कांग्रेस के प्रति ही जवाबदेह होती है। इसकी सदस्य संख्या अनिश्चित है।

कार्यकाल (Tenure) :- स्थायी समिति का कार्यकाल राष्ट्रीय जन कांग्रेस के कार्यकाल पर ही निर्भर है। व्यवहार में यह उस समय तक कार्यरत रहती है, जब तक नव-निर्वाचित राष्ट्रीय जन कांग्रेस द्वारा नई स्थायी समिति का गठन न कर लिया जाता है। तृतीय राष्ट्रीय जन कांग्रेस 1964 से 1974 तक कार्यरत रही। संविधान में यह भी व्यवस्था है कि राष्ट्रीय जन कांग्रेस जब

चाहे तब किसी भी सदस्य को वापिस बुला सकती है। अनुच्छेद 66 में इसका कार्यकाल भी 5 वर्ष है। अब यह भी व्यवस्था है कि कोई भी व्यक्ति दो बार से अधिक स्थायी समिति का सदस्य नहीं बन सकता।

स्थायी समिति का अध्यक्ष (Chairman of the Standing Committee) :- स्थायी समिति की बैठकों का संचालन करने के लिए संविधान में इस बात की व्यवस्था है कि स्थायी समिति का अध्यक्ष ही बैठकों की अध्यक्षता करेगा। उसकी सहायता के लिए उपाध्यक्ष तथा महासचिव भी होते हैं। यदि अध्यक्ष की मृत्यु हो जाती है या वह त्यागपत्र दे देता है तो नए अध्यक्ष का चुनाव राष्ट्रीय जन कांग्रेस द्वारा किया जाता है। इस समिति के अध्यक्ष का पद अधिक गरिमापूर्ण नहीं है।

स्थायी समिति के अधिवेशन (Session of the Standing Committee) :- यह समिति निरन्तर क्रियाशील रहती है। इसकी बैठकें महीने में दो बार होती हैं। आवश्यकतानुसार इसकी बैठकें कम या अधिक भी बुलाई जा सकती हैं।

स्थायी समिति के कार्य व शक्तियां (Functions and Powers of the Standing Committee) :- चीन के 1982 के संविधान के अनुच्छेद 67 में स्थायी समिति को कुछ अधिकार व शक्तियां सौंपी गई हैं। इनमें से कुछ तो वास्तविक शक्तियां हैं, जबकि कुछ औपचारिक हैं, क्योंकि कुछ शक्तियों का प्रयोग स्थायी समिति द्वारा राष्ट्रीय जन कांग्रेस की अनुमति से ही किया जाता है। स्थायी समिति की प्रमुख शक्तियां व कार्य निम्नलिखित हैं :-

(1) यह राष्ट्रीय जन कांग्रेस के क्षेत्राधिकार को छोड़कर शेष विषयों पर कानूनों का निर्माण तथा उनमें संशोधन कर सकती है।

(2) यह संविधान की व्याख्या करती है और उसकी क्रियान्विति पर नजर रखती है।

(3) यह राष्ट्रीय जन कांग्रेस के सत्रावसान काल में राष्ट्रीय, आर्थिक और सामाजिक विकास की योजनाओं का निरीक्षण करके उनकी पुष्टि करती है।

(4) राष्ट्रीय जन कांग्रेस के अधिवेशन की अनुपस्थिति में यह किसी कानून में परिवर्तन कर सकती है।

(5) यह राष्ट्रीय जन कांग्रेस के सत्रावसान काल में प्रधानमन्त्री के परामर्श पर मन्त्रिमण्डल के सदस्यों, विभिन्न आयोगों के अध्यक्षों, राज्य परिषद के महासचिव अथवा महालेखा परीक्षक की नियुक्ति करती है।

(6) यह संविधान तथा संसद द्वारा बनाए गए नियमों के विरुद्ध प्रान्तों, स्वायत्त क्षेत्रों तथा केन्द्र शासित नगरों द्वारा बनाए गए नियमों व निर्णयों को रद्द कर सकती है।

(7) यह राज्य परिषद, केन्द्रीय सेना आयोग, सर्वोच्च जन-न्यायालय तथा सर्वोच्च प्राथमिकता के कार्यों का निरीक्षण कर सकती है।

(8) यह राज्य परिषद के उन प्रशासकीय नियमों, नियमितताओं, निश्चयों अथवा आदेशों को संविधान व्यवस्थापिका विरोधी कानूनों को रद्द कर सकती है।

(9) यह जन कांग्रेस के सत्रावसान काल में केन्द्रीय सेना आयोग के अध्यक्ष की सलाह पर आयोग के अन्य सदस्यों की नियुक्ति करती है।

(10) यह सर्वोच्च जन-न्यायालय के अध्यक्ष के परामर्श से सर्वोच्च न्यायालय के जजों, उपाध्यक्षों, न्यायिक समिति के सदस्यों तथा सेना न्यायालय के अध्यक्ष को नियुक्त अथवा पदच्युत कर सकती है।

(11) यह विदेशी राजदूतों को नियुक्त भी कर सकती है और उन्हें वापिस बुलाने का भी अधिकार रखती है।

(12) यह विदेशों के साथ की गई सन्धियों व समझौतों की पुष्टि करती है।

(13) यह प्रोक्यूरेटर जनरल के परामर्श पर प्रोक्यूरेटरों के उपाध्यक्ष, प्रोक्यूरेटर समिति के सदस्यों, सैनिक प्रोक्यूरेटरों की नियुक्ति व पदच्युति तथा स्थानीय प्रोक्यूरेटरों (समाहर्ता) को नियुक्त व पदच्युत करने का भी अधिकार रखती है।

(14) यह राष्ट्रीय जन कांग्रेस के सदस्यों का चुनाव कराती है। इस रूप में यह एक चुनाव आयोग की भूमिका अदा करती है।

(15) यह राष्ट्रीय जन कांग्रेस के अधिवेशन भी बुलाती है।

(16) यह अपराधियों का दण्ड माफ कर सकती है।

(17) यह नागरिकों को सम्मान की उपाधि देने के सम्बन्ध में निर्णय कर सकती है।

(18) यह किसी भी प्रान्त, स्वाधीन क्षेत्र तथा केन्द्रीय सरकार के प्रत्यक्ष नियन्त्रण में आने वाली नगरपालिकाओं में सैनिक कानून लागू कर सकती है।

(19) यह समिति राष्ट्रीय जन कांग्रेस में अधिवेशन की अनुपस्थिति में युद्ध सम्बन्धी प्रश्न पर निर्णय ले सकती है और युद्ध की घोषणा भी कर सकती है।

(20) इसे आज्ञप्तियां जारी करने का भी अधिकार प्राप्त है। राष्ट्रीय जन कांग्रेस के अधिवेशन की अनुपस्थिति में इन आज्ञप्तियों का महत्व राष्ट्रीय जन कांग्रेस द्वारा पारित कानूनों के समान होता है।

स्थायी समिति की स्थिति

(Position of the Standing Committee)

उपरोक्त विवेचन के बाद कहा जा सकता है कि चीन में स्थायी समिति को राष्ट्रीय जनकांग्रेस के एक अंग के रूप में महत्वपूर्ण शक्तियां व अधिकार सौंपे गए हैं। वह राष्ट्रीय जन कांग्रेस के अधिवेशन की अनुपस्थिति में उन सभी शक्तियों की स्वामी बन जाती है जो उसे ऐसा करने की अपेक्षा रखते हैं। चीन में सिद्धान्त में तो राष्ट्रीय जन कांग्रेस ही शासन की सर्वोच्च सत्ता है, लेकिन व्यवहार में जन कांग्रेस की समस्त शक्तियों का प्रयोग करने वाली स्थायी समिति ही सर्वोच्च है। स्थायी समिति को कांग्रेस की अनुपस्थिति में युद्ध की घोषणा करने जैसे महत्वपूर्ण अधिकार भी मिले हुए हैं। पीटर टेंग ने लिखा है-"राष्ट्रीय जन कांग्रेस के स्थायी निकाय के रूप में स्थायी समिति को कार्यपालक, विधायी न्यायिक एवं प्रशासकीय क्षेत्रों में व्यापक अधिकार प्राप्त हैं।" स्थायी समिति किसी भी प्रांत या क्षेत्र में मार्शल लॉ तक भी लागू कर सकती है। आपातकीलन स्थिति में इसे और भी महत्वपूर्ण निर्णय लेने का अधिकार है। यह जन कांग्रेस की अनुपस्थिति में आज्ञप्तियां भी जारी कर सकती है, जिसका महत्व संसदीय कानूनों के समान है। यद्यपि यह समिति अपने कार्यों के लिए राष्ट्रीय जन कांग्रेस के प्रति उत्तरदायी है, परन्तु व्यवहार में यह जन कांग्रेस के अधिक महत्वपूर्ण कार्यों का निष्पादन करके अपने को जन कांग्रेस के समकक्ष लाकर खड़ी हो जाती है। इस समिति में साम्यवादी नेताओं की उपस्थिति के कारण यह राष्ट्रीय जन कांग्रेस के साथ मतभेदों की स्थिति से प्रायः दूर ही रहती है। इसके बढ़ते महत्व व भूमिका ने इसे राष्ट्रीय जन कांग्रेस की दासी बनाने के निर्माताओं के प्रयासों को धूमिल कर दिया है। वास्तविकता तो आज यह है कि राष्ट्रीय जन कांग्रेस ओर उसकी स्थायी समिति दोनों ही साम्यवादी दल के कठोर अनुशासन के पाश में जकड़ी हुई है। उनको कार्य और शक्तियां साम्यवादी दल के कार्यक्रमों और नीतियों के साथ बंधी हुई है। व्यवहार में वे साम्यवादी नेताओं की इच्छा के बिना कुछ नहीं कर सकती।

--- o ---

अध्याय-7

संविधानिक ढांचा - कार्यपालिका

(Constitutional Structure - Executive)

आधुनिक समय में कार्यपालिका की भूमिका इतनी अधिक महत्वपूर्ण है कि उसे ही आमतौर पर सरकार समझ लिया जाता है। परन्तु लोकतन्त्र की रक्षा के लिए कार्यपालिका का मर्यादित रहना भी अनिवार्य माना जाता है। कार्यपालिका सरकार का वह अंग है जो सरकार की इच्छा को अमली जामा पहनाता है। कार्यपालिका का जन्म शक्तियों के पृथक्करण सिद्धान्त का परिणाम माना जाता है। सरकार के कार्यों में वृद्धि होने के परिणामस्वरूप प्रशासनिक सुविधा की दृष्टि से कार्यपालिका का जन्म हुआ। आज कार्यपालिका सरकार के कानूनों का क्रियान्वयन करने वाला अंग ही नहीं है, बल्कि यह कानून निर्माण में भी भाग लेने लगी है। संगठन की दृष्टि से यह अंग सभी देशों में समानता का गुण रखता है। संसदीय शासन प्रणाली वाले देशों में इसका विधायिका से प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है जबकि अध्यक्षात्मक में यह सम्बन्ध स्वतन्त्र व परोक्ष हो जाता है। आज प्रशासन को भी कार्यपालिका और प्रशासन के कार्यों का आपस में घनिष्ठ रूप से जुड़ा होना है। इसी कारण आज अनेक विद्वानों ने कार्यपालिका की अलग पहचान देने के लिए राजनीतिक कार्यपालिका शब्द का प्रयोग करना शुरु कर दिया है। आज सभी देशों में यह सरकार का इतना महत्वपूर्ण अंग बन चुका है कि इसके बिना सरकार पंगु है।

कार्यपालिका का अर्थ और परिभाषा

(Meaning and Definition of Executive)

साधारण अर्थ में कानूनों का क्रियान्वयन करने वाली संस्था कार्यपालिका कहलाती है। आज इसका अर्थ सीमित और व्यापक दोनों अर्थों में किया जाता है। आधुनिक राज्यों के कल्याणकारी स्वरूप ने कार्यपालिका के साथ नौकरशाही को भी मिला दिया है। सीमित अर्थ में तो राज्य के प्रधान तथा उसके मन्त्रिमण्डल को ही कार्यपालिका कहा जाता है। व्यापक अर्थ में कार्यपालिका के अन्तर्गत नीति को अमली जामा पहनाने वाले प्रशासकीय अंग भी शामिल हो जाते हैं। कार्यपालिका को कुछ विद्वानों ने सीमित और व्यापक दोनों अर्थों में निम्न प्रकार से परिभाषित किया है :-

(1) मेक्रिडीस के अनुसार-"राजनीतिक कार्यपालिका, राजनीतिक समाज के शासन के लिए औपचारिक उत्तरदायित्व निभाने वाली संस्थागत व्यवस्थाएं हैं।"

(2) गिलक्राइस्ट के अनुसार-"कार्यपालिका सरकार का वह अंग है जो कानून के रूप में अभिव्यक्त जनता की इच्छा को कार्य में परिणत करती है। यह वह धुरी भी है जिनके चारों ओर राज्य का वास्तविक प्रशासन घूमता है।"

(3) ला पालोम्बारा के अनुसार-"कार्यपालिका से आशय मुख्य कार्यपालक, विभागों के अध्यक्ष तथा सरकारी सोपान में उच्चतम स्तर के सार्वजनिक प्रशासकों से है। इसमें वे व्यक्ति, सिविल कर्मचारी तथा अन्य लोग जो मुख्य कार्यपालक की मदद के लिए भर्ती किए जाते हैं, शामिल होते हैं।"

(4) गार्नर के अनुसार-"व्यापक तथा सामूहिक अर्थ में कार्यपालिका के अन्तर्गत व सभी अधिकारी, राज्य कर्मचारी तथा एजेन्सियां आ जाती हैं जिनका कार्य राज्य की इच्छा को, जिसे विधानमण्डल ने प्रकट कानून का रूप दे दिया है, कार्यरूप में परिणत करना है।"

इस प्रकार कार्यपालिका का अर्थ सीमित और व्यापक दोनों अर्थों में किया जाता है। आज कार्यपालिका तथा प्रशासन में अन्तर करने के लिए सरकार तथा राजनीतिक कार्यपालिका जैसे शब्दों का प्रचलन बढ़ गया है। आधुनिक अर्थों में कार्यपालिका के

लिए राजनीति विज्ञान में सरकार तथा राजनीतिक कार्यपालिका जैसे शब्दों का प्रचलन आम बात है। अब कार्यपालिका के अन्तर्गत उन व्यक्तियों को शामिल किया जाता है जो नीति निर्धारण, योजना-निर्माण, कानूनों का क्रियान्वयन तथा सैनिक व अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों या विदेश नीति का प्रतिनिधित्व करते हैं। आज प्रशासकीय अधिकारियों को कार्यपालिका से दूर रखा जाता है। यद्यपि व्यवहार में कार्यपालिका को प्रशासन से दूर करना कठिन कार्य है, लेकिन सद्धान्तिक तौर पर तो यह प्रयास किया ही जाता है। आम व्यक्ति की दृष्टि में तो प्रशासन ही कार्यपालिका है और कार्यपालिका ही प्रशासन है।

कार्यपालिका के निर्माण अथवा चुनाव के तरीके

(Mode of Choice of Executive)

विभिन्न देशों में कार्यपालिका का निर्माण करने के लिए निम्नलिखित तरीके हैं :-

(I) वंशानुगत आधार पर निर्वाचन।

(II) जनता द्वारा निर्वाचन।

(III) निर्वाचित निर्वाचक-मण्डल द्वारा अप्रत्यक्ष निर्वाचन।

(IV) व्यवस्थापक मण्डल द्वारा निर्वाचन।

(I) वंशानुगत आधार पर निर्वाचन :- इस विधि के तहत किसी वंश विशेष के व्यक्ति को ही कार्यपालिका मे लिया जाता है। इसमें वंशानुगत आधार पर निर्वाचन करते समय ज्येष्ठता का सिद्धान्त प्रयोग किया जाता है। यह व्यवस्था ब्रिटेन में प्रचलित है। इस व्यवस्था के तहत चुना हुआ कार्यपालक (सम्राट) आजीवन अपने पद पर बना रहता है।

(II) जनता द्वारा निर्वाचन :- इस विधि का प्रयोग प्रत्यक्ष निर्वाचन के लिए किया जाता है। जर्मनी के वाइमर संविधान मे भी राष्ट्रपति का निर्वाचन जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप में ही किया जाता था, लेकिन आज वहां स्थिति भिन्न है। आज यह प्रणाली चिली, घाना तथा दक्षिणी अमेरिका के कुछ राज्यों में है। यह प्रणाली कम जनसंख्या वाले देशो के लिए ही अधिक उपयुक्त मानी जाती है। इससे जनचेतना का विकास होता है और जनता को राजनीतिक शिक्षा भी मिलती है। इस प्रणाली द्वारा चुना हुआ कार्यपालक प्रजा का वास्तविक प्रतिनिधि होने के कारण देश का भी वास्तविक शासक होता है। उसकी शक्तियां नाममात्र की नहीं हो सकती। यह प्रणाली अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली वाले देशों में तो ठीक रह सकती है, संसदीय शासन प्रणाली वाले देशों में नहीं।

(III) निर्वाचित निर्वाचक-मण्डल द्वारा अप्रत्यक्ष निर्वाचन :- प्रत्यक्ष निर्वाचन के दोषों से बचने के लिए ही इस प्रणाली का प्रयोग किया जाता है। इसमें जनता प्रत्यक्ष रूप से कार्यपालिका का निर्माण नहीं करती बल्कि जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि ही निर्वाचक मण्डल के रूप में उसका निर्वाचन करते हैं। अमेरिका, अर्जेन्टाइना तथा स्पेन में यही प्रणाली अपनाई जाती है। अमेरिका तथा स्पेन में राष्ट्रपति का चुनाव एक निर्वाचक-मण्डल द्वारा ही किया जाता है।

(IV) व्यवस्थापक-मण्डल द्वारा निर्वाचन :- इस प्रणाली के तहत व्यवस्थापिका के द्वारा ही कार्यपालिका का निर्वाचन किया जाता है। भारत तथा स्विट्जरलैण्ड में यही पद्धति अपनाई जाती है। इस प्रणाली का प्रमुख गुण यह है कि इसमें योग्य व बुद्धिमान व्यक्तियों द्वारा ही कार्यपालिका का निर्वाचन किया जाता है। इससे कार्यपालिका तथा व्यवस्थापिका म आपसी सहयोग की भावना भी बनी रहती है। यह प्रणाली कम खर्चीली भी है। लेकिन इस प्रणाली का दोष यह है कि इसमें राष्ट्रपति व्यवस्थापिका के हाथ की कठपुतली बन सकता है।

कार्यपालिका के प्रकार

(Types of Executive)

कार्यपालिका के प्रमुख रूप या प्रकार निम्नलिखित हैं :-

(I) वास्तविक तथा नाममात्र की कार्यपालिका (Real and Nominal Executive) :- प्राचीन समय में नाममात्र तथा वास्तविक कार्यपालिका में कोई अन्तर नहीं था। शासन की सारी शक्तियां राजा के पास होती थी और वही अकेला समस्त शक्तियों का प्रयोग करता था। लेकिन 1688 की शानदार क्रान्ति के बाद इंग्लैण्ड में मन्त्रीमण्डल की संस्था के जन्म के साथ ही कार्यपालिका के दो रूप उभर गए। शासन को वास्तविक शक्तियां मन्त्रीमण्डल की संस्था के हाथ में चली गई

और नाममात्र की शक्तियां सम्राट के पास रह गई। नाममात्र की कार्यपालिका के लिए संविधानिक कार्यपालिका का भी प्रयोग किया जाता है। संसदीय शासन प्रणाली वाले सभी देशों में इस प्रकार की कार्यपालिकाएं हैं। भारत में राष्ट्रपति को नाममात्र की कार्यपालिका है और प्रधानमन्त्री वास्तविक। नाममात्र की कार्यपालिका वह कार्यपालिका होती है जिसमें शासन की शक्तियों का राष्ट्राध्यक्ष के नाम पर वास्तविक प्रयोग मन्त्रीमण्डल या प्रधानमन्त्री ही करता है, क्योंकि वही वास्तविक कार्यपालक होता है। राष्ट्राध्यक्ष तो रबड की मुहर या ध्वजमात्र होता है। उसे अपने अधिकारों और शक्तियों का स्वतन्त्र प्रयोग करने की अनुमति नहीं होती। भारत में राष्ट्रपति शासन सम्बन्धी जो भी कार्य करता है, वह मन्त्रीमण्डल की सलाह से ही करता है। संसदीय शासन प्रणालियों में ही वास्तविक और नाममात्र की कार्यपालिका का अन्तर देखने को मिलता है, अध्यक्षात्मक सरकारों में नहीं। अध्यक्षात्मक सरकारों में तो राष्ट्राध्यक्ष ही वास्तविक कार्यपालक होता है, वहां नाममात्र की कार्यपालिका का सर्वथा अभाव होता है, राष्ट्राध्यक्ष ही अपने कार्यों के लिए पूर्ण रूप से उत्तरदायी होता है।

(II) राजनीतिक और स्थायी कार्यपालिका (**Political and Permanent Executive**) :- आज राज्यों के कार्यों में वृद्धि हो जाने के कारण कार्यपालिका प्रशासन के साथ जुड़ गई है। आज कार्यपालिका के सभी कार्य प्रशासनिक अधिकारियों या नौकरशाही द्वारा ही किए जाते हैं। इससे प्रशासकीय और राजनीतिक कार्यपालिका का अन्तर मिट गया है। लेकिन राजनीति विज्ञान में इनका अलग-अलग अर्थों में प्रयोग किया जाता है। लोकतन्त्रीय देशों में तो सारे राजनीतिक निर्णय तथा सर्वोच्च प्रशासनिक निर्णय मुख्य कार्यपालक या मन्त्रीमण्डल द्वारा ही लिए जाते हैं। इसे राजनीतिक कार्यपालिका कहा जाता है। इसका स्वरूप अस्थायी होता है। निश्चित अवधि के बाद चुनावों के बाद नई कार्यपालिका अस्तित्व में आ जाती है। दूसरी तरफ प्रशासन के अधिकारी स्थायी रूप से अपने पद पर रिटायरमैन्ट की अवधि तक रहते हैं। उन्हें अपने पद पर रहने के लिए राजनीतिक समर्थन की आवश्यकता नहीं होती। इनका कार्य राजनीतिक कार्यपालिका के निर्णयों को कार्यरूप देना है। यह कार्यपालिका स्थायी कार्यपालिका कहलाती है। इसका स्वरूप स्थायी है। आज के लोकतन्त्रीय देशों में वे दोनों कार्यपालिकाएं इस तरह से अंगीकार हो चुकी हैं कि इनमें अन्तर करना कठिन हो गया है। भारत में स्थायी व राजनीतिक कार्यपालिका का सुन्दर समन्वय है।

(III) संसदीय तथा अध्यक्षात्मक कार्यपालिका (**Parliamentary and Presidential Executive**) :- कार्यपालिका तथा विधायिका के पारस्परिक सम्बन्धों के आधार पर दो तरह की कार्यपालिका होती है-संसदीय और अध्यक्षात्मक। संसदीय कार्यपालिका को मन्त्रिमण्डल तथा उत्तरदायी कार्यपालिका भी कहा जाता है। संसदीय कार्यपालिका के सदस्य संसद या विधायिका के सदस्यों में से चुने जाते हैं और वे अपने अस्तित्व के लिए विधायिमा के निरन्तर विश्वास और समर्थन पर आश्रित होते हैं। वे अपने कार्यों के लिए सीधे ही संसद के प्रति उत्तरदायी होते हैं। इस प्रकार की कार्यपालिका में राष्ट्राध्यक्ष व सरकार के अध्यक्ष नाममात्र की शक्तियों का स्वामी होता है तथा शासनाध्यक्ष (प्रधानमन्त्री) वास्तविक शक्तियों का स्वामी होता है। इसमें समस्त निर्णय सामूहिक स्तर पर मन्त्रिमण्डल द्वारा ही लिए जाते हैं और अपनी नीतियों के लिए वह उत्तरदायी रहता है। उसके अन्तर्गत राष्ट्राध्यक्ष का कोई उत्तरदायित्व नहीं होता। उसकी स्थिति तो रबड़ की मुहर जैसी होती है। इस कार्यपालिका में राष्ट्राध्यक्ष शासनाध्यक्ष की अनुमति से कार्यपालिका को भंग कर सकता है। इसके विपरीत अध्यक्षात्मक कार्यपालिका में शासनाध्यक्ष व राष्ट्राध्यक्ष एक ही व्यक्ति होता है। उसे शासन की समस्त शक्तियां प्राप्त होती हैं। वह अपने कार्यकाल तथा नीतियों के लिए विधायिका के प्रति उत्तरदायी नहीं होता। वह प्रतीकात्मक या नाममात्र का शासनाध्यक्ष न होकर वास्तविक कार्यपालक होता है। इस प्रकार की कार्यपालिका अमेरिका में है, जबकि संसदीय कार्यपालिका इंग्लैण्ड तथा भारत में है।

(IV) एकल तथा बहुकार्यपालिका (**Single and Plural Executive**) :- राज्य की कार्यपालक शक्तियों के आधार पर कार्यपालिका, एकल व बहुसंख्यक दो प्रकार की होती है। जहां पर शासन की सारी शक्तियां एक ही व्यक्ति में निहित रहती हैं, वह एकल कार्यपालिका होती है। इसके विपरीत जब कार्यपालक शक्तियां अनेक व्यक्तियों के समूह के हाथों में होती है तो उसे बहुल या मण्डल कार्यपालिका के नाम से जाना जाता है। भारत, स्विटजरलैंड व ब्रिटेन में बहुकार्यपालिका है, जबकि अमेरिका में एकल कार्यपालिका है। एकल कार्यपालिका वहीं पर अस्तित्व में पाई जाती है, जहां शक्तियों के पृथक्करण सिद्धान्त को कठोरता से अपनाया गया हो। अमेरिका में शक्तियों के पृथक्करण के कारण कार्यपालिका, विधायी निमन्त्रण से मुक्त है। वहां पर राष्ट्रपति द्वारा शासन की कार्यपालक शक्तियों की समिति या

मन्त्रिमण्डल बनाई जा सकती है, लेकिन उनका कोई स्वतन्त्र व संविधानिक अस्तित्व नहीं हो सकता। वे कार्यपालक शक्तियों का प्रयोग राष्ट्रपति की इच्छानुसार ही करते हैं। वास्तविक कार्यपालक के रूप में प्रशासन पर समस्त अधिकार उसी का होता है। इसके विपरीत बहुल कार्यपालिका में सामूहिक उत्तरदायित्व का सिद्धान्त कार्य करता है। इसमें शासन की सारी शक्तियां मन्त्रिमण्डल नामक संविधानिक संस्था के पास होती है। इसके अन्तर्गत न तो कार्यपालक शक्तियों का एकमात्र स्वामी होता है और न ही वह अपनी इच्छानुसार कार्यपालक शक्तियों का प्रयोग कर सकता है। अमेरिका का राष्ट्रपति एकल कार्यपालिका का उत्तम उदारहण है तो भारत का मन्त्रिमण्डल बहुल कार्यपालिका का।

(V) पैतृक तथा चुनी हुई कार्यपालिका (**Hereditary and Elective**) :- जिस देश में कार्यपालिका को पैतृक आधार पर चुना जाता है, वह पैतृक कार्यपालिका होती है। ब्रिटेन में सम्राट का चुनाव पैतृक आधार पर ही होता है। यह कार्यपालिका वंशानुगत होती है। इसमें जनइच्छा का अभाव पाया जाता है। इसके विपरीत जिन देशों में कार्यपालिका जनता या जन-प्रतिनिधियों द्वारा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से चुनाव के आधार पर चुनी जाती है, उसे निर्वाचित या चुनी हुई कार्यपालिका कहा जाता है। भारत, अमेरिका, बंगलादेश, श्रीलंका, पीरु, चिल्ली आदि देशों की कार्यपालिकाएं, निर्वाचित कार्यपालिकाएं हैं।

कार्यपालिका के कार्य व भूमिका

(Functions and Role of Exexutive)

लोककल्याणकारी राज्यों के प्रादुर्भाव से सरकार के उत्तरदायित्वों में भी वृद्धि हुई है। आज सरकार ऐसे कार्य करने लग गई है जो पहले किसी भी संस्था के द्वारा नहीं किए जाते थे। इन कार्यों की प्रकृति राजनीतिक व्यवस्था की प्रकृति, ढांचे व राजनीतिक कार्यपालिका की स्वयं की प्रकृति पर निर्भर करती है। कार्यपालिका द्वारा निष्पादित किए जाने वाले कार्य प्रत्येक देश में अलग अलग हैं। संविधानिक तौर पर तो कार्यपालिका का कार्य विधायिका द्वारा बनाए गए नियमों व कानूनों का क्रियान्वयन करना या उन्हें अमली जामा पहनाना है, लेकिन आज कार्यपालिका वास्तविक रूप में अनेक कार्य करती है। कार्यपालिका द्वारा निष्पादित किए जाने वाले प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं :-

(1) प्रशासकीय कार्य (**Administrative Functions**) :- कार्यपालिका प्रशासन को सुचारू रूप से चलाने के लिए सभी प्रशासनिक तथा नीति सम्बन्धी निर्णय लेती है। विधायिका द्वारा निर्मित कानूनों को अमली जामा पहनाने के लिए वह महत्वपूर्ण पदों पर कर्मचारियों व अधिकारियों की नियुक्ति करती है। प्रशासन को चलाने के लिए सभी आवश्यक विभागों की स्थापना भी कार्यपालिका ही करती है। सभी विभागों पर अपना नियन्त्रण, निर्देशन व निरीक्षण बनाए रखने की भी व्यवस्था कार्यपालिका ही करती है। संसदीय देशों में कार्यपालिका को अपने प्रशासकीय कार्य अधिक कुशलता से करने पड़ते हैं। इनमें मन्त्रिमण्डल नामक संस्था के द्वारा सामूहिक उत्तरदायित्व के आधार पर प्रशासकीय कार्यों का निष्पादन होता है, जबकि अध्यक्षात्मक देशों में राष्ट्राध्यक्ष ही वास्तविक कार्यपालक होने के नाते समस्त प्रशासन का अधिकृत प्रशासक होता है। सभी महत्वपूर्ण विभागों में नियुक्तियां व प्रशासनिक अधिकारियों पर उसी का नियन्त्रण रहता है। देश के अन्दर प्रशासन पर कार्यपालिका का ही वास्तविक नियन्त्रण रहता है।

(2) विदेश नीति का संचालन (**Conduct of Foreign-Policy**) :- आज का युग अन्तर्राष्ट्रीय अन्तर्निर्भरता का युग है। दूसर देशों से व्यापारिक तथा कूटनीतिक सम्बन्ध बनाए रखना प्रत्येक राष्ट्र की मजबूरी है। परमाणु युद्ध का खतरा उत्पन्न होने के बाद तो विदेशी-सम्बन्धों का महत्व और अधिक बढ़ गया है। ये कार्य अब कार्यपालिका के हाथों से ही सम्पन्न किए जाते हैं। विदेशों में विदेश-नीति के संचालन के लिए राजदूतों की नियुक्ति, विदेशी राजनयिकों का स्वागत, अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों व सम्मेलनों में देश का प्रतिनिधित्व, विदेशी सम्बन्धों को सुसंगत बनाए रखने के लिए की जान वाली सन्धियां व समझौते, सांस्कृतिक, शैक्षिक व व्यापारिक गतिविधियों का संचालन व नियन्त्रण आदि समस्त कार्य कार्यपालिका के ही कार्य हैं। राष्ट्रीय हित को प्राप्त करनें में कार्यपालिका का बहुत अधिक हाथ होता है। यद्यपि विदेश नीति के संचालन में विधायिका का भी कुछ न कुछ योगदान अवश्य होता है, लेकिन वह औपचारिकता तक ही सिमटकर रह जाता है। युद्धकाल में तो कूटनीतिक सम्बन्धों को गति देने के लिए सक्रिय कार्यपालिका की आवश्यकता अधिक अनुभव की जाती है। भारत में विदेश नीति के संचालन में राष्ट्रपति व प्रधानमन्त्री दोनों की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। अमेरिका में इस कार्य के राष्ट्रपति पूर्ण रूप से मत्वपूर्ण अधिकार रखता है।

(3) व्यवस्थापन सम्बन्धी कार्य (Legislative Function) :- संसदीय देशों में व्यवस्थापन का कार्य कार्यपालिका के सहयोग से विधायिका द्वारा स्वतन्त्र रूप से किया जाता है। अध्यक्षात्मक व संसदीय सरकार में कानून को मूर्त रूप देने का कार्य कार्यपालिका ही करती है। कार्यपालिका प्रत्येक व्यवस्थापन में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका संसदीय शासन प्रणाली वाले देशों में ही निभाती है। यहां पर वह कानून का निर्माण और उसे लागू करना दोनों कार्यों को पूरा करने में सक्षम होती है। पारस्परिक निर्भरता के सिद्धान्त पर आधारित होने के कारण व्यवस्थापन प्रक्रिया से उसका प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है। संसद का अधिवेशन बुलाना, उसका सत्रावसान, स्थगन तथा विघटन कार्यपालिका ही करती है। कार्यपालिका ही विधेयक पेश करती है और उसे संसद से पारित भी कराती है। व्यवस्थापन कार्य में कार्यपालिका नीति-सम्बन्धी सूचनाएं व्यवस्थापिका को उपलब्ध भी कराता है। अध्यक्षात्मक देशों में व्यवस्थापन को प्रभावित करने का कार्य कार्यपालिका अप्रत्यक्ष रूप में ही करती है। वहां पर विधायिका कार्यपालिका की सलाह मानने को बाध्य नहीं होती। लेकिन आजकल कई देशों मे अध्यक्षात्मक सरकार के व्यवस्थापन सम्बन्धी कार्यों को कार्यपालिका कुछ न कुछ प्रभावित अवश्य करती है। अपनी प्रदत व्यवस्थापन की शक्ति के अन्तर्गत कार्यपालिका को स्वतन्त्र रूप से कानून बनाने का अधिकार प्राप्त होता है। विधायिका के अधिवेशन न चलने की स्थिति में कार्यपालिका अध्यादेश भी जारी कर सकती है।

(4) सैनिक कार्य (Military Function) :- युद्धकाल या शांतिकाल में देश की सैनिक शक्ति को संगठित रखना व संचालन करने का अधिकार भी कार्यपालिका के हाथों में ही होता है। राष्ट्रपति सेनाओं का वास्तविक कार्यपालक होता है। उसे सेनाओं के गठन, सैनिक अधिकारियों की नियुक्ति, पदच्युति और युद्ध का नेतृत्व करने का अधिकार प्राप्त होता है। वह राष्ट्रीय सम्मान या सुरक्षा के लिए युद्ध की घोषणा भी कर सकता है। वह राष्ट्रीय सम्मान या सुरक्षा के लिए युद्ध की घोषणा भी कर सकता है। संसदीय सरकार में तो उसे मन्त्रिमण्डल या विधायिका की अनुमति लेनी पड़ती है, लेकिन अध्यक्षात्मक सरकार में उसे स्वतन्त्र रूप से सैनिक कार्यों के संचालन का अधिकार होता है। युद्ध काल में कार्यपालिका देश के निवासियों को अनिवार्य सैनिक सेवा देने को बाध्य भी कर सकती है। अमेरिका में अफगानिस्तान और ईराक के विरुद्ध की घोषणा अमेरिका के राष्ट्रपति ने ही की थी। सद्दाम को पकड़ने का निर्णय राष्ट्रपति बुश का ही स्वतन्त्र निर्णय था। इस तरह सैनिक कानून लागू करने और संकटकाल की घोषणा करने का भी अधिकार राष्ट्रपति या कार्यपालिका को ही है, चाहे वह औपचारिक हो या अनौपचारिक। युद्धकाल में कार्यपालिका की शक्ति कई गुणा बढ जाती है। तानाशाही देशों में तो कार्यपालिका का सैनिक कार्यों पर सर्वाधिकार हो जाता है। शांतिकाल में भी देश की सेनाओं पर वास्तविक नियन्त्रण कार्यपालिका का ही होता है, चाहे वह प्रत्यक्ष हो या अप्रत्यक्ष।

(5) वित्तीय कार्य (Financial Functions) :- आज देश के वित्त पर भी कार्यपालिका का कुछ न कुछ नियन्त्रण अवश्य रहता है। आय-व्यय पर व्यावहारिक नियन्त्रण प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कार्यपालिका का ही होता है। सिद्धान्त रूप में तो यह कार्य विधायिका का है। संसदीय देशों में कार्यपालिका को विधानमण्डल में बहुमत प्राप्त होने के कारण नए टैक्स लगाने, टैक्स हटाने या घटाने के बिल प्रायः कार्यपालिका ही पेश करती है और उन्हें पास करा लेती है। राष्ट्रीय कोष की समुचित व्यवस्था के लिए कार्यपालिका के अन्तर्गत एक वित्त विभाग रहता है। कार्यपालिका प्रत्येक विभाग के वित्त पर नियन्त्रण भी रखती है। अध्यक्षात्मक सरकार में भी कार्यपालिका बजट तो पेश नहीं करती, लेकिन बजट को अपनी देखरेख में ही तैयार कराती है। अमेरिका में बजट का निर्माण राष्ट्रपति की ही देखरेख में होता है। भारत में वित्तमन्त्री ही बजट पेश करता है। इस तरह कार्यपालिका कुछ वित्तीय कार्य भी करती है।

(6) न्यायिक कार्य (Judicial Functions) :- उच्चतम न्यायालयों के न्यायधीशों की नियुक्ति कार्यपालिका द्वारा ही की जाती है। कार्यपालिका के अध्यक्ष के पास अपराधी की सजा माफ करने या घटाने का पूरा अधिकर है। यद्यपि लोकतन्त्र में इस शक्ति को खतरे की निशानी समझा जाता है, लेकिन आज न्यायपालिका के अधिकार का भी कार्यपालिका द्वारा कुछ न कुछ प्रयोग अवश्य किया जाता है। भारत में सर्वोच्च न्यायाल द्वारा दी गई फांसी की सजा को भी राष्ट्रपति माफ कर सकता है या आजीवन कारावास में बदल सकता है। इससे न्यायपालिका की शक्ति का ह्रास अवश्य होता है।

(7) नीति-निर्माण करना (Formulation of Policy) :- कार्यपालिका का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य नीति निर्धारण करना भी है। संसदीय सरकार में कार्यपालिका अपनी नीति निर्धारित करके संसद के सामने प्रस्तुत करती है। अध्यक्षात्मक सरकार में वह अपनी नीतियां की स्वतन्त्र निर्धारक होती है। कार्यपालिका ही देश की आन्तरिक व बाहरी नीति का निर्धारिण करती है और उसी के आधार पर शासन चलाती है। नीतियों को लागू करना भी कार्यपालिका का ही कार्य है।

(8) संकटकालीन कार्य (Emergency Functions) :- संकटकालीन परिस्थितियों में कार्यपालिका की शक्तियां कई गुणा बढ़ जाती हैं। सैनिक संकट, विद्रोह, बाहरी आक्रमण, देश की सुरक्षा को खतरा या आर्थिक संकट के पैदा होने की स्थिति में कार्यपालिका अपनी संकटकालीन शक्तियों का प्रयोग कर सकती है। ऐसे समय में वह नागरिकों के मौलिक अधिकारों का स्थगन भी कर सकती है और देश में आर्थिक आपातकाल की भी घोषणा कर सकती है। इन शक्तियों के कारण व्यवस्थापिका की शक्ति का ह्रास होने लगा है।

(9) राजनीतिक कार्य (Political Functions) :- प्रत्येक देश में राजनीतिक कार्यपालिका कुछ न कुछ राजनीतिक कार्य भी अवश्य करती है। इनमें प्रतिनिधित्व, नेतृत्व, विचार विमर्श व निर्णय, निरीक्षण व नियन्त्रण आदि कार्य शामिल हैं। राजनीतिक समाज में विभिन्न संस्थागत व्यवस्थाओं का संयोजन व एकीकरण करना भी कार्यपालिका ही करती है। विभिन्न हितों को प्रतिनिधित्व देना व उनमें सामंजस्य बिठाना भी कार्यपलिका का ही कार्य है। कार्यपालिका देश व समाज को नेतृत्व देने का भी कार्य करती है। प्रदत्त व्यवस्थापन के अन्तर्गत निर्णय देना भी कार्यपालिका का ही कार्य है। कार्यपालिका की निर्णयकारी भूमिका के कारण आज उसकी शक्तियों में अप्रत्याशित वृद्धि हो रही है।

(10) आर्थिक कार्य (Economic Functions) :- आज का युग कल्याणकारी राज्यों का युग है। आज सभी सरकारें लोकहित के कार्य करने को मजबूर है। इसी कारण में नियोजन द्वारा आर्थिक विकास की योजनाओं को सफल बनाने के प्रयास करती है। इस आर्थिक योजना पर कार्यपालिका का ही पूर्ण नियन्त्रण रहता है। देश को सम्पूर्ण आर्थिक जीवन पर नियन्त्रण होने के कारण कार्यपालिका का महत्व भी बढ़ रहा है। व्यापार, वाणिज्य, कृषि, उद्योग जैसे विषयों पर कार्यपालिका का नियन्त्रण बढ़ रहा है। व्यापार, वाणिज्य, कृषि, उद्योग जैसे विषयों पर कार्यपालिका का नियन्त्रण बढा है। आय व व्यय पर नियन्त्रण रखने के साथ-साथ आर्थिक साधनों की उत्पादन व वितरण प्रणाली पर भी कार्यपालिका का ही नियन्त्रण रहता है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि आधुनिक युग में कार्यपालिका की शक्तियों का विस्तार जीवन के हर क्षेत्र तक है। राज्य के कल्याणकारी आदर्श, राष्ट्रीय सुरक्षा, अन्तर्राष्ट्रीय उत्तरदायित्व, वित्त-व्यवस्था, विधि-निर्माण, सैनिक कार्यों का संचालन करना, प्रशासनिक व कूटनीतिक कार्य करना आदि के रूप में कार्यपालिका के उत्तरदायित्व बढ़े हैं। आज प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था में विदेशी सम्बन्धों के संचालन से लेकर आर्थिक गतिविधियों के नियन्त्रण तक कार्यपालिका के अधिकार-क्षेत्र का ही विस्तार है। आज कार्यपालिका का समजा को सही शासन का लाभ देने व आर्थिक विकास को गति देने में महत्वपूर्ण भूमिका है। आज कार्यपालिका के संविधानिक, संकटकालीन व राजनीतिक कार्यों के रूप में राजनीतिक व्यवस्था को गतिशील बनाए रखने में अभूतपूर्व भूमिका है। चेस्टर बनार्ड ने अपनी पुस्तक 'Functions of the Executive' में कार्यपालिका के कार्यों को बहुआयामी बताया है। उनके अन्तर्गत समस्त प्रकार के प्रशासनिक, वित्तीय, न्यायिक, कूटनीतिक, सैनिक, राजनीतिक व आर्थिक कार्य आ जाते हैं। सार रूप में देश में शान्ति व्यवस्था बनाए रखना, लोककल्याण के आदर्श को प्राप्त करना तथा विदेश नीति का सफल क्रियान्वयन ही कार्यपालिका का आदर्श है।

आधुनिक समय में कार्यपालिका की शक्तियों का विकास
(Growth of the Executive Powers in Modern Time)

व्यवस्थापिका की शक्तियों के ह्रास ने जिस नए आयाम को जन्म दिया है, वह कार्यपालिका की शक्तियों में वृद्धि से सम्बन्ध रखता है। आज राजनीति विज्ञान में राजनीतिक कार्यपालिका की शक्ति के विकास की सर्वत्र चर्चा की जाती है। सभी देशों की शासन-व्यवस्थाओं में कार्यपालिका की शक्ति में होने वाली वृद्धि ने राजनीतिक विश्लेषकों को चौंका दिया है। आज कार्यपालिका नीति-निर्माण का प्रमुख यन्त्र बन गई है। द्वितीय विश्व युद्ध क बाद उत्पन्न होने वाली परिस्थितियों तथा राज्यों के कल्याणकारी स्वरूप ने कार्यपालिका की ओर सरकार की शक्तियों को झुका दिया है। आज सर्वत्र कार्यपालिका की शक्तियों में होने वाली वृद्धि के प्रमुख कारण निम्नलिखित माने जाते हैं :-

(1) अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो के कुशल संचालन में कार्यपालिका, व्यवस्थापिका की अपेक्षा अधिक सफल रही है। इसी कारण आज सभी देशों में कार्यपालिका को विदेश-नीति के सफल संचालन की स्वतन्त्रता प्राप्त है। आज अन्तर्राष्ट्रीय समझौते व सन्धियां कार्यपालिका ही करने लगी है। भारत-पाक युद्ध पर शिमला समझौता भारत के कार्यपालक ने ही किया था।

(2) व्यवस्थापिका का अपनी शक्ति का कुछ भाग प्रदत्त-व्यवस्थापन के रूप में कार्यपालिका को दिया है। इस शक्ति का

प्रयोग करके आज कार्यपालिका प्रभावी कानून बनाने लगी है। इससे विधायिका की शक्ति को कम हुई है लेकिन कार्यपालिका की शक्ति बढ़ी है।

(3) आज संचार के साधनों के विकास ने भी जनता को सीधे कार्यपालिका से जोड़ दिया है। इससे कार्यपालिका का जनता के प्रति उत्तरदायित्व बढ़ा है। अब कार्यपालिका जनता के आमने-सामने पेश हो रही है। कार्यपालिका की जनता के प्रति निकटता ने भी कार्यपालिका का सम्मान बढ़ाया है। आज कार्यपालिका ही राजनीतिक चेतना को बढ़ाने में जनता के साथ सहयोग करके भी व्यवस्थापिका से आगे निकल गई है।

(4) आज संसद तो निरर्थक वाद-विवाद का केन्द्र मानी जाने लगी है। संसद की बैठकों के दौरान जो व्यवहार जनता के सामने आता है, वह सर्वविदित है। आज हमारे विधायक या सांसद असभ्य व्यवहार के यथार्थवाची बन चुके हैं। आज जनता एक व्यक्ति विशेष में ही अपनी रुचि दिखाने लगी है। जनता देश में एकता देखना चाहती है। ऐसा स्वप्न कार्यपालिका का अध्यक्ष ही पूरा कर सकता है। आज जनता की प्रधानमन्त्री तथा राष्ट्रपति के बारे में लोकप्रिय छवि उभरी है। वर्तमान कार्यपालिका में जनता का विश्वास बढ़ने का कारण प्रधानमन्त्री अटल बिहारी वाजपेयी तथा राष्ट्रपति अब्दुल कलाम का योग्य नेतृत्व ही है। व्यवस्थपिकाओं में ऐसे नेतृत्व की कमी होती जा रही है।

(5) व्यवस्थापिका के अधिवेशन की तुलना में कार्यपालिका के अधिवेशन अधिक होते हैं। वह निरन्तर अधिवेशन में रहने वाली संस्था बनकर उभरी है। वह समाज की पहरेदार, राष्ट्र की रक्षक व प्रशासन की अधिष्ठात्री है। वह समाज हित में सरकार के दूसरे अंगों के अधिकार क्षेत्र मं प्रवेश करने लगी है। उसकी इस सक्रियता से उसकी प्रतिष्ठा बढ़ी है।

(6) आज सरकार की जटिल समस्याओं से निपटने में कार्यपालिका ही अपना उत्तरदायित्व निभाने में सक्षम है। आज शासन की नीतियों का सम्पूर्ण राजनीतिक जीवन से सम्बन्ध होने के कारण कार्यपालिका का जागरुक होना आवश्यक हो गया है। अपने उत्तरदायित्वों को निभाने तथा पेचिदा राजनीतिक परिस्थितियों से निपटने में सफल रहने के कारण कार्यपालिका के सम्मान में वृद्धि हुई है।

(7) संविधान संशोधनों ने भी कार्यपालिका के शक्ति क्षेत्र में वृद्धि की है।

(8) राजनीतिक व्यवस्था में बार-बार आने वाले राजनीतिक व आर्थिक संकटों से निपटने के लिए कार्यपालिका के पास आपातकालीन शक्तियां रहती हैं। अपनी इन शक्तियों का कुशलतापूर्वक प्रयोग करके भी कार्यपालिका ने अपनी शक्तियां बढ़ा ली हैं।

(9) कार्यपालिका विधायिका के कानून तथा न्यायालयों के निर्णय भी निष्पक्षता व ईमानदारी से लागू करती है। शासनतन्त्र की धुरी के रूप में वह सम्पूर्ण राजनीतिक व्यवस्था को गति देने लगी है। इससे उसकी प्रतिष्ठा में वृद्धि हो रही है।

(10) राष्ट्रीय संकट के समय कार्यपालिका को सब बन्धनों से मुक्ति मिल जाती है और उसकी शक्तियां असीम हो जाती हैं। कारगिल युद्ध में भारत की कार्यपालिका को सारे देश की जनता व राजनीतिक दलों का समर्थन प्राप्त था। भारत में कार्यपालिका को आपातकाल का सामना करने के लिए कुछ संविधानिक सुविधाएं भी दी हैं।

(11) राजनीतिक दल के माध्यम से भी व्यवस्थापिका की सारी शक्तियां कार्यपालिका में निहित हो जाती हैं। विधायिका में दल के बहुमत के कारण वह संसद में अपनी बात मनवाने में सफल रहती है।

(12) आधुनिक समय में कार्यपालिका के अधिकारियों और संस्थाओ की संख्या में अभूतपूर्व वृद्धि होने के कारण भी कार्यपालिका की कार्य-निष्पादन की व्यवस्था में सुधार आने के कारण भी कार्यपालिका का सम्मान बढ़ा है।

(13) कार्यपालिका की कार्यकुशलता व योग्यता के कारण भी उसका सम्मान बढ़ा है। कार्यपालिका में योग्य व अनुभवी व्यक्ति ही होते हैं, जबकि विधायिका में अनपढ़, असभ्य तथा अनुभवहीन व्यक्ति होते हैं। राजनीतिक व्यवस्था में होने वाला हर कार्य उनकी योग्यता व अनुभव का ही परिणाम होता है। कानून निर्माण व नीति निर्माण में भी उसकी भूमिका होने के कारण व्यस्थापिका की शक्ति सरक कर उसके पास आ गई है।

(14) लोककल्याणकारी राज्य की अवधारणा ने भी कार्यपालिका की भूमिका में वृद्धि की है।

(15) कार्यपालिका द्वारा विधानपालिका के अधिवेशन न होने की स्थिति में अध्यादेश जारी किया जाता है। अपने दलीय बहुमत के कारण वह बाद में उसे संसद से स्वीकृत भी करा लेती है। इससे भी कार्यपालिका की शक्ति बढ़ी है।

(16) आर्थिक नियोजन तन्त्र पर भी कार्यपालिका का एकाधिकार होने के कारण उसकी शासन में प्रभावशीलता बढ़ी है।

(17) कार्यपालकों के करिश्माई व्यक्तित्व ने भी कार्यपालिका का सम्मान बढ़ाया है। भारत में प्रधानमन्त्री इन्दिरा गांधी, अमेरिका में राष्ट्रपति रुजवेल्ट, फ्रांस के राष्ट्रपति जनरल डिगाल, अफ्रीका में नेल्सन मंडेला, मिश्र के कर्नल नासीर अपने करिश्माई व्यक्तित्व के कारण ही लोकप्रिय कार्यपालक हुए हैं। उनके कारण ही कार्यपालिका की प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई है।

(18) संसदीय देशों में कार्यपालिका को निम्न सदन को भंग करने की शक्ति भी प्राप्त है। भारत में राष्ट्रपति प्रधानमन्त्री की सलाह पर निम्न सदन को भंग कर सकता है। इस अधिकार के कारण भी इन देशों में कार्यपालिका को महत्वपूर्ण शक्ति का स्वामी माना जाता है।

(19) स्वयं विधायिका की अक्षमता तथा असमर्थता भी इसकी शक्तियों में वृद्धि करने के लिए उत्तरदायी है। विकासशील देशों में कार्यपालिका की असीमित शक्तियां व्यवस्थापिकाओं की कार्य-निष्पादन में असमर्थता का ही परिणाम है।

उपरोक्त विवेचन के बाद कहा जा सकता है कि द्वितीय विश्व युद्ध के बाद बदलती परिस्थितियों तथा राष्ट्रीय विकास की आवश्यकता ने कार्यपालिका को शक्तिशाली बनाने की आवश्यकता महसूस करा दी। लोक कल्याण के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए तथा संकटों का सामना करने के लिए कार्यपालिका का शक्तिशाली होना आवश्यक माना जाने के कारण कार्यपालिका के व्यवहारिक ढांचे में अनेक परिवर्तन आए हैं। आज कार्यपालिकाएं महज एक कानून निर्मात्री संस्थाएं न होकर राजनीतिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रही हैं। व्यवस्थापिका का कार्य-व्यवहार भी कार्यपालिका की बढ़ती सक्रिय भूमिका के प्रति काफी हद तक उत्तरदायी है। प्रशासनिक कार्यों की जटिलता ने कार्यपालिका की आवश्यकता महसूस करा दी है। जटिल समस्याओं का समाधान जिस तरह कार्यपालिकाओं ने किया है, उससे उनकी प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई है और भविष्य में भी कार्यपालिका के क्षेत्र का विस्तार होने की सम्भावना नजर आती है।

ब्रिटेन में कार्यपालिका का ढांचा

(Executive Structure in U.K.)

राजतन्त्र का इतिहास ब्रिटेन में सर्वाधिक प्राचीन और महत्वपूर्ण है। प्रारम्भ में राजतन्त्र का जो रूप निरंकुश था, कालान्तर में वही सीमित या संवैधानिक राजतन्त्र में बदल गया। 1215 ई० में मैगनाकार्टा एक्ट के लागू होते ही ब्रिटेन के राजतन्त्र के इतिहास में एक नया मोड़ आया। इससे वहां सीमित राजतन्त्र की स्थापना हुई। आगे चलकर ट्यूडर तथा स्टुअर्ट काल में फिर से ब्रिटेन में निरंकुश राजतन्त्र की स्थापना हुई, लेकिन 1688 की शानदार क्रान्ति (Glorious Revolution) ने निरंकुश राजतन्त्र की जड़ें सदा के लिए हिलाकर रख दीं और इंग्लैण्ड में फिर से संवैधानिक राजतन्त्र की स्थापना हुई। इसके बाद राजा के स्थान पर संसद को सर्वोच्चता प्रदान की गई और राजा की शक्तियां ब्रिटिश ताज के अधीन हो गई। आज ब्रिटेन में राजा नाममात्र की कार्यपालिका है और मन्त्रिमण्डल वास्तविक कार्यपालिका है। आज ब्रिटेन में राजा और ताज में अन्तर किया जाता है। अब राजा केवल संवैधनिक मुखिया रह गया है। उसके स्थान पर कार्यपालिका की समस्त शक्तियां प्रधानमन्त्री तथा मन्त्रीमण्डल के हाथ में आ गई हैं। इतना होने के बाद भी राजा या सम्राज्ञी के प्रति जनता के मन में आज भी प्रधानमन्त्री या अन्य किसी व्यक्ति व संस्था से अधिक सम्मान व श्रद्धा है।

राजा और ताज में अन्तर

(Difference between King and Crown)

1688 की शानदार क्रान्ति से पूर्व राजा और ताज में कोई अन्तर नहीं था। शासन की वास्तविक बागडोर व कार्यपालक शक्तियों का प्रयोग राजा स्वयं ही करता था। लेकिन 1688 की शानदार क्रांन्ति ने ब्रिटेन में राजा के स्थान पर संसद की सर्वोच्चता स्थापित कर दी और तभी से राजा और ताज (मुकुट) में अन्तर किया जाने लगा और राजा केवल संवैधानिक मुखिया हीरह गया। अब शासन की वास्तविक कार्यपालक शक्तियों या ताज की शक्तियां मन्त्रीमण्डल के हाथ में आ गई। राजा व मुकुट अब अलग-अलग माने जाने लगे और इनमें अन्तर को लेकर काफी हंगामा भी हुआ। यदि शाब्दिक दृष्टि से देखा जाए तो राजा वह व्यक्ति होता है जो एक समय विशेष में राज्य के प्रमुख पद पर आसीन होता है, जबकि ताज या राजमुकुट राज्य शक्ति का प्रतीक है जो राजा या रानी अपने सिर पर धारण करती है। 1688 की क्रान्ति से पहले मुकुट की सारी शक्तियां राजा की ही शक्तियां थीं। ताज पहनने का अधिकारी होने के नाते वह मुकुट की समस्त शक्तियों का प्रयोग अपनी इच्छानुसार ही कर

सकता था। इससे स्पष्ट है कि राजा और राजमुकुट में अन्तर है। संवैधानिक दृष्टि से राजा द्वारा प्रयोग की जाने वाली समस्त शक्तियां मुकुट या ताज की ही शक्तियां हैं। 1688 से पहले राजा ही ताज था और ताज ही राजा। लेकिन अब स्थिति भिन्न है। आज मुकुट की शक्तियां कई संस्थाओं में निहित हैं। राजतन्त्र के लोकतांत्रिकरण ने अब स्थिति को बदल दिया है। इसी कारण राजा और ताज में अन्तर किया जाना स्वाभाविक ही है।

राजा व ताज में अन्तर करने के लिए क्राउन या ताज का अर्थ जानना भी जरूरी है। सर मारिश आमोस ने कहा है-"ताज प्रभुसत्तात्मक शक्तियों, विशेषाधिकारों तथा अधिकारों का समूह है। यह एक कानूनी विचार है।" ताज को एकमात्र ऐसा सुनहरी मुकुट समझना मूर्खता है जो राजा द्वारा राजपद के प्रतीक के रूप में विशेष अवसरों पर पहना जाता है। ताज तो राजतन्त्र की एक संस्था का प्रतीक है। कई बार इस कथन का प्रयोग किया जाता है कि 'राजा मर गया, राजा चिरंजीवी हो।' इस कथन में राजा शब्द का पहली बार जो प्रयोग किया गया है वह शासक के रूप में है जो एक जीवित व्यक्ति था। राजा शब्द का दूसरी बार जो प्रयोग किया गया है वह मुकुट या ताज के लिए किया गया है जो कभी नष्ट नहीं हो सकता। ताज शासन की उन शक्तियों का प्रतीक है जिसका राजा प्रयोग करता है। ऑग ने लिखा है-"ताज शासन की सर्वोच्च कार्यपालिका तथा नीति-निर्माण करने वाली संस्था है।" ताज व राजा में अन्तर करने वाली परिभाषा मुनरो ने दी है। उसका कहना है-"ताज एक कृत्रिम संस्था है। इसकी कभी मृत्यु नहीं होती। ताज की शक्तियां, विशेषाधिकार और कर्तव्य राजा की मृत्यु को एक मिनट के लिए भी निष्क्रिय नहीं होते।"

उपरोक्त विवेचन के आधार पर निष्कर्ष के तौर पर राजा व ताज में निम्नलिखित अन्तर होते हैं :-

(1) राजा एक व्यक्ति है, जबकि ताज एक संस्था है :- ताज के अन्तर्गत मन्त्री, राजा, प्रिवी कौंसिल तथा संसद शमिल हैं। राजमुकुट शासन की प्रतीक संस्था है। राजा वह व्यक्ति है जो राजा पद को सुशोभित करता है। इससे स्पष्ट है कि राजा ताज रूपी संस्था का केवल एक अंगमात्र है।

(2) राजमुकुट या ताज स्थाई है, जबकि राजा अस्थाई है :- ताज एक संस्था के रूप में निरन्तर अस्तित्व में बनी रहने वाली है। राजाएक जीवित प्राणी के रूप में नाशवान है। ताज की संस्था का इतिहास काफी पुराना है। इसकी भविष्य में बने रहने की सभावना है। राजनीतिक शक्ति के रूप में इसका अस्तित्व भी उस समय तक अवश्य रहेगा, जब तक राजनीतिक समाज रहेगा। इसका अन्त राज्य रूपी संस्था के अन्त से पहले होने वाला नहीं है। इसके विपरीत राजा मरते रहते हैं और उनके स्थान पर दूसरे राजा आ जाते हैं और ताज की शक्तियों का प्रयोग करते हैं। अतः राजा तो नाशवान है, जबकि राजमुकुट अमर है।

(3) राजमुकुट जन इच्छा का प्रतीक है, जबकि राजा सजावट मात्र है :- ताज शासन की वास्तविक शक्तियों का स्वामी है जिसका प्रयोग संसद मन्त्रिमण्डल आदि के द्वारा किया जाता है। इसलिए ताज जन इच्छा का प्रतीक है। इसके विपरीत शासक एक ध्वजमात्र या सजावट मात्र है जिसे स्वर्णिम शून्य कहा जाता है, वह ब्रिटिश शासन की शोभा बढाता है।

(4) राजा एक शरीरधारी व्यक्ति है, जबकि ताज एक अमूर्त विचार है :- फाइनर ने कहा है कि "जब हम राजनीति में ताज के कार्यों की विवेचना करते हैं तब हमारा तात्पर्य उस प्रेरक शक्ति से होता है जिसका निर्माण जनता, संसद तथा मन्त्रिमण्डल ने सदियों के संवैधानिक विकास द्वारा स्थापित कुछ औपचारिक उपायों से किया है। ताज इन राजनीतिक शक्तियों के असली केन्द्र के ऊपर एक अलंकृत उपाधि है। यह एक अमूत विचार तथा कृत्रिम व्यक्ति भी है जो अपनी समस्त शक्तियों का प्रयोग जनता द्वारा निर्धारित प्रतिनिधियों की सलाह से करता है।" इसके विपरीत राजा एक वास्तविकता है जो नश्वर है।

(5) राजमुकुट या ताज सामूहिक है जबकि राजा वैयक्तिक है :- राजा एक वैयक्तिक कार्यपालक है जबकि ताज का रूप सामूहिक कार्यपालिका का है जिसमें संसद, मन्त्रीमण्डल तथा लोकसेवा के सदस्य होता है। ताज से शासन की सम्पूर्ण शक्ति के योग का बोध होता है। राजा स्वयं ही सम्पूर्ण शक्ति का एक भाग है।

(6) सम्राट का पद वंशानुगत है, जबकि ताज शब्द शासन की समस्त शक्तियों का प्रतीक है, यह कोई पद नहीं है।

(7) राजा का सामाजिक जीवन में बहुत महत्व है, जबकि ताज के बारे में ऐसा कुछ नहीं कहा जा सकता।

(8) राजा का जन्म होता है, जबकि ताज का कोई जन्म नहीं होता, वह तो एक चिरस्थायी संस्था है।

ताज की शक्तियों के स्त्रोत

(Sources of Crown's Powers)

ताज की शक्तियां निरन्तर परिवर्तनशील रही हैं। मैगनाकार्टा एक्ट के लागू होने से राजा की वैयक्तिक शक्तियां कम हुई और ताज की शक्तियां बढ़ी। मैगनाकार्टा ने राजा को कानून के अधीन किया तथा उसके मनमाने अधिकारों को छीन लिया। 'अधिकार पत्र' के लागू होने पर राजा पर यह प्रतिबन्ध लगा दिया गया कि वह न देश के प्रचलित कानूनों को निलम्बित करेगा और न ही उन्हें समाप्त करेगा। इसी तरह अन्य के काफी प्रावधानों या परिवर्तनों ने भी कालान्तर में राजा की शक्तियों को सीमित कर दिया। 1688 की शानदार क्रान्ति ने तो राजा को पूरी तरह शक्तिहीन करके उसकी समस्त शक्तियां संसद के हाथों में हस्तांतरित कर दीं। राजा की शक्तियों के क्षीण होने पर ताज की शक्तियां बढ़ती गई और जो शक्तियां राजा के पास थी, वे अब जनता को हस्तांतरित कर दी गई और उनका प्रयोग जनता के प्रतिनिधियों द्वारा ताज के माध्यम से किया जाने लगा। ताज की शक्तियों के स्त्रोत निम्नलिखित हैं :-

(I) परमाधिकार (Prerogatives)

(II) संविधि (Statutes)

(I) परमाधिकार (Prerogatives) :- मन्त्रिमण्डल व संसद को हस्तांतरित शक्तियों के बाद जो अवशिष्ट शक्तिया बचती ह उन्हें ही राजा का परमाधिकार या विशेषाधिकार कहा गया है। इसी तरह ताज के विशेषाधिकार का अर्थ है-ताज की स्वतन्त्र शक्ति या अधिकार। 1688 की क्रान्ति से पहले ताज के विशेषाधिकार ही सम्राट के अधिकार थे। लेकिन 1688 की क्रान्ति ने राजा के परमाधिकार को ताज के हाथों में हस्तांतरित कर दिया। डायसी ने परमाधिकार को परिभाषित करते हुए कहा है-"परमाधिकार उस स्वेच्छाचारी या निरंकुश शक्ति का अवशेष है जिसे किसी समय ताज के हाथों में छोड़ दिया गया था।" इसी तरह राजा के सन्दर्भ में परमाधिकार को परिभाषित करते हुए ब्लैकस्टोन ने लिखा है-"परमाधिकार या विशेषाधिकार वह श्रेष्ठता है जो राजा को किसी कानून प्राप्त न होकर उसको अपने राजसी महत्व के कारण अन्य सभी व्यक्तियों के अतिरिक्त प्राप्त होती है।" अब राजा को परमाधिकार ताज के परमाधिकार हैं। संसद के अधिवेशन बुलाना, युद्ध अथवा तटस्थता की घोषणा करना, कॉमन्स सभा भंग करने का अधिकार, नए पीयर नियुक्त करने का अधिकार, उच्च अधिकारियों की नियुक्ति व पदच्युत करने का अधिकार, संधि व समझौते करना, न्याय करना, सेनाओं का संचालन करना आदि ताज के परमाधिकार हैं। ये सभी परमाधिकार ब्रिटिश राजतन्त्र की स्वस्थ परम्परा का परिणाम हैं। ऑग व जिंक ने लिखा है-"विशेषाधिकार वे अधिकार हैं जो किसी के द्वारा प्रदान नहीं किये जाते हैं, बल्कि नियमानुसार परिपाटियों, रीति-रिवाजों तथा न्यायिक निर्णयों द्वारा प्राप्त होते हैं और उस समय तक भी विद्यमान रहते हैं जब संसद इतनी शक्ति प्राप्त कर लेती है कि वह उसमें अपनी इच्छानुसार परिवर्तन कर सकती है।"

(II) संविधि या संसदीय कानून (Statutes) :- ताज की बहुत सी शक्तियां संसदीय कानूनों पर भी आधारित हैं। संविधि द्वारा प्राप्त शक्तियां वे शक्तियां हैं जिन्हें संसद द्वारा कार्यपालिका को सौंपा गया है। इसमें विभिन्न विभागों के प्रबन्ध, महत्वपूर्ण नियुक्तियों और प्रशासनिक तन्त्र पर नियन्त्रण आदि शामिल हैं। जैसे-जैसे राज्य के कार्यक्षेत्र का विस्तार हुआ वैसे वैसे ताज की शक्तियों में वृद्धि होती गई। संसद के कानूनों ने ताज को अनेक अधिकार दे दिए। इन कानूनों में स्पष्टता व निश्चितता का गुण होने के कारण राजा व ताज द्वारा इनको व्यवहारिक धरातल पर प्रतिष्ठित करने में सुविधा रही।

उपरोक्त स्त्रोतों के अतिरिक्त भी ताज की शक्तियों का अध्ययन करने से पता चलता है कि ताज की कुछ शक्तियां ऐसी हैं जो न तो परमाधिकार पर आधारित है और न ही संविधियों पर। मूलतः वे परमाधिकार की उपज है जिन्हें बाद में संसदीय कानूनों द्वारा परिभाषित किया गया है। ताज की शक्तियों के बारे में जो बात सत्य है, वह यह है कि इनमें निरन्तर परिवर्तन होता रहा है।

ताज की शक्तियां

(Powers of Crown)

ताज की शक्तियों का प्रयोग मन्त्रिमण्डल की सलाह पर राजा द्वारा किया जाता है। पहले इन शक्तियों का प्रयोग राजा स्वतन्त्रतापूर्वक करता था। मैगनाकार्टा तथा 'बिल ऑफ राइटस' ने राजा की शक्तियों को सीमित करके ताज की शक्तियो

में वृद्धि कर दी और जो शक्तियां राजा के पास थी, वे ताज के पास हस्तांतरित हो गई। आज राजा उन शक्तियों का प्रयोग स्वतन्त्रतापूर्वक नहीं कर सकता। सत्ता के लोकतांत्रिकरण ने ताज को राजा से अधिक शक्तिशाली बना दिया है। ताज की शक्तियां निम्नलिखित हैं :-

(I) कार्यपालक शक्तियां (Executive Powers) :- ब्रिटेन में सभी कार्यपालक शक्तियां ताज के अधीन हैं। ताज ही समस्त देश के शासन के लिए उत्तरदायी होता है। ताज ही ब्रिटेन की कार्यपालिका का सर्वोच्च अधिकारी होता है। राष्ट्र की सारी गतिविधियां उसी के नाम से संचालित होती हैं। प्रशासन चलाना तथा विदेशी सम्बन्धों का संचालन उसी के द्वारा किया जाता है। उसके कार्यपालक कार्य निम्नलिखित हैं :-

(1) उच्च अधिकारियों की नियुक्ति करना।

(2) न्यायधीशों को छोड़कर शेष सभी अधिकारियों को उनके पद से हटाना।

(3) सेना का सर्वोच्च अधिकारी होने के नाते सभी सैनिक अधिकारियों की नियुक्ति करना।

(4) प्रधानमन्त्री तथा अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति करना।

(5) राजदूतों की नियुक्ति करना।

(6) विदेशी सम्बन्धों का संचालन करना।

(7) युद्ध अथवा संधि करना।

(8) स्थानीय प्रशासन की देखभाल करना।

(9) अपराधियों को क्षमा देना।

(10) प्रशासनिक विभागों व उनके कार्य पर नियन्त्रण रखना।

(11) सार्वजनिक सम्पति की सुरक्षा करना।

(12) विदेशी राजदूतों का स्वागत करना।

(13) अधिराज्यों के महाराज्यपालों की नियुक्ति करना।

(14) राष्ट्रीय कोष पर नियन्त्रण रखना।

(15) आकस्मिक निधि पर नियन्त्रण रखना।

(II) विधायी शक्तियां (Legislative Powers) :- ताज की इस शक्ति का प्रयोग सम्राट द्वारा संसद के साथ मिलकर किया जाता है। ब्रिटेन में कानून निर्माण का कार्य राजा और संसद के दोनों सदन मिलकर करते हैं, जब किसी विधेयक को संसद द्वारा कानून का रूप दिया जाता है तो उसमें लिखा जाता है कि "यह अधिनियम सम्राट द्वारा लार्ड सभा के सदस्यों की अनुमति से और उनके अधिकार से पारित हुआ है।" ऑग और जिंक ने लिखा है-"ताज केवल कार्यपालक शक्ति का ही संरक्षक नहीं है, वह विधायी कार्यों में भी भागीदार है।" सम्राट संसद का अभिन्न अंग होने के नाते विधायी कार्य भी करता है। ताज के रूप में सम्राट द्वारा किए जाने वाले प्रमुख विधायी कार्य निम्नलिखित हैं :-

(1) संसद का अधिवेशन बुलाना तथा उसका स्थगन करना।

(2) संसद में भाषण देना।

(3) विधेयक को स्वीकार करना या निषेधाधिकार का प्रयोग करना।

(4) विधेयक को संसद में प्रस्तावित करना।

(5) वित्त विधेयक को अनुमति देना।

(6) कामन सदन को भंग करना।

(7) पीयर नियुक्त करना।

(8) परिषद् के आदेश जारी करना।

(9) संसद की नीति को कार्यरूप में परिणित करना।

(10) संसदीय कानूनों के आधार पर प्रत्यायोजित विधि-निर्माण करना।

(III) न्यायिक शक्तियां (Judicial Powers) :- ब्रिटेन की न्यायपालिका ताज के अधीन है। इसलिए समस्त न्यायपालिका पर ताज का ही नियन्त्रण रहता है। यद्यपि आज ब्रिटेन में स्वतन्त्र व निष्पक्ष न्यायपालिका है, लेकिन फिर भी ताज को न्यायिक शक्तियां प्राप्त हैं। ताज की प्रमुख न्यायिक शक्तियां निम्नलिखित हैं :-

(1) न्यायधीशों की नियुक्ति करना।

(2) संसद की अनुमति से न्यायधीशों को हटाना।

(3) अपराधी का दण्ड कम करने, स्थगित करने तथा उसे क्षमा करने का अधिकार।

(4) प्रिवी परिषद् की न्याय समिति की सिफारिश पर अधिराज्यों की अपीलें सुनना।

(5) प्रशासनिक न्याय करना।

(IV) धार्मिक शक्तियां (Religious Powers) :- ताज इंग्लैण्ड के चर्च का अध्यक्ष होता है। वह चर्च के समस्त अधिकारियों जैसे कि आर्कविशप, डीनों, बिशपों, कैननों को नियुक्त करता है। चर्च की राष्ट्रीय सभा के द्वारा निर्मित समस्त नियमों को ताज की स्वीकृति के लिए भेजा जाता है। धर्म सम्बन्धी मामलों में अन्तिम अपील ताज के पास ही की जाती है। धर्म के मामलों में ताज का निर्णय अन्तिम होता है। इसी कारण ताज को धर्म का रक्षक कहा जाता है। चर्च की सभाओं का आयोजन भी ताज ही करता है। धार्मिक न्यायालयों की अन्तिम अपील प्रिवी कौंसिल की न्यायिक समिति के पास ही आती हैं। अतः ताज एक महत्वपूर्ण धार्मिक दण्डाधिकारी है।

(V) अन्य शक्तियां (Miscellanious Powers) :- ताज को सम्मान का स्त्रोत भी माना जाता है। जो व्यक्ति राज्य की महत्वपूर्ण सेवा करते हैं या साहित्य, विज्ञान तथा कला के क्षेत्र में अपनी योग्यता का परिचय देते हैं, उन्हें ताज द्वारा उपाधियां और पदक लिये जाते हैं। वह अपने जन्मदिन पर या नव वर्ष पर विशिष्ट नागरिकों का यह सम्मान करता है। उसे हाऊस ऑफ लार्डस के सदस्य बनाने का भी अधिकार है। परन्तु वह ऐसा करते समय मन्त्रिमण्डल की सलाह लेता है। उसे कुछ व्यक्तियों को संरक्षण देने का भी अधिकार है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि ब्रिटिश ताज के पास असीमित शक्तियां हैं। इन तमाम शक्तियों का प्रयोग ब्रिटिश ताज के नाम पर ही किया जाता है। यद्यपि इनमें से राजा की कुछ निजि शक्तियां भी हैं जैसे विदेशी राजदूतों का स्वागत करना, लोकसभा के अध्यक्ष का अनुमोदन करना, प्रधानमन्त्री की नियुक्ति करना आदि। लेकिन प्रधानमन्त्री उसी व्यक्ति को बनाना पड़ता है जिसे लोकसभा में बहुमत प्राप्त हो। यदि किसी दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त न हो तो राजा स्व-विवेक की शक्ति का प्रयोग करके किसी को भी प्रधानमन्त्री बना सकता है। इसके अतिरिक्त ब्रिटिश ताज की शक्तियों का प्रयोग मन्त्रिमण्डल, प्रधानमन्त्री, प्रिवी कौंसिल आदि मिलकर ताज की शक्तियों का प्रयोग करते हैं, क्योंकि ताज कोई मूर्त संस्था नहीं है।

राजा के विशेषाधिकार व उन्मुक्तियां

(Royal Privileges and Immunities)

कानूनी दृष्टि से सम्राट की स्थिति काफी महत्वपूर्ण है। ताज स्वयं अपनी शक्तियों व विशेषाधिकारों का प्रयोग नहीं कर सकता। कानूनी व्यक्तित्व होने के नाते राजा या साम्राज्ञी ही ताज की समस्त शक्तियों व विशेषाधिकारों का प्रयोग करती है। राजा को कुछ विशेषाधिकार और उन्मुक्तियां प्राप्त हैं। उसके विरुद्ध कोई षडयन्त्र या विद्रोह की कल्पना करना भी मौत को बुलाना है। उसके विरुद्ध किसी न्यायालय में कोई मुकदमा नहीं चल सकता और न ही उस पर कानूनी प्रक्रिया लागू होती है। उसे न तो बन्दी बनाया जा सकता है और न ही उसकी सम्पत्ति नीलाम की जा सकती है। जब तक वह राजमहल में रहता है, तब तक उसके विरुद्ध कोई न्यायिक प्रक्रिया शुरु नहीं की जा सकती। यदि राजा किसी की हत्या भी कर दे तो उसके विरुद्ध कानूनी कार्यवाही नहीं की जा सकती। उसे किसी मामले में न्यायालय के सामने पेश होने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता और न ही उसे कैद में डाला जा सकता है। यदि राजा और साधारण नागरिक के अधिकारों को लेकर कोई टकराव उत्पन्न हो जाए तो राजा को ही प्राथमिकता दी जाएगी। राजा को आम व्यक्ति की तरह सम्पत्ति खरीदने व बेचने का अधिकार होता है। प्रत्येक वर्ष सरकार राजा को आर्थिक अनुदान देती है जिसका प्रयोग वह व्यक्तिगत तथा सामाजिक कार्यों के लिए खर्च

करने में कर सकता है। इस बारे वे किसी को जवाबदेह नहीं है। वर्तमान में राजा को मिलने वाली आर्थिक सहायता संसद द्वारा स्वीकृत होती है और उसके जीवन काल में इसमें कोई कटौती नहीं की जा सकती। संसद द्वारा सम्राट व राजघराने के सदस्यों के लिए दिए जाने वाले अनुदान का निर्धारण किया जाता है, उसे 'सिविल लिस्ट' कहा जाता है। वर्तमान में राजा या रानी को 475,000 पौंड की राशि प्रतिवर्ष दी जाती है जिसका प्रयोग निजी तथा राजघराने के कार्यों में खर्च करने के लिए करता है। पहले तो इस राशि पर कोई कर नहीं लगता था, लेकिन अब इस धन पर कर भी लगने लगा है।

सम्राट का पद और उत्तराधिकार का नियम

(Title and Succession of the Crown)

1688 की शानदार क्रान्ति से पहले सम्राट के पद के बारे में कोई निश्चित नियम नहीं था। 1688 की 'महान क्रान्ति' ने राजा के स्थान पर संसद की प्रभुसत्ता स्थापित कर दी और यह भी निश्चित कर दिया कि संसद सम्राट के पद और ताज सम्बन्धी कोई भी कानून बना सकती है। इसी शक्ति का प्रयोग करते हुए संसद ने 1701 में राजा के पद से सम्बन्धित एक समझौता अधिनियम पास किया। इस एक्ट के अनुसार राजपद हैनोवर वंशीय, इलैक्ट्रेस सोफिया के वंशजों में से आनुवंशिक आधार से चलेगा जब तक कि राजा या वंश प्रोटेस्टेन्ट धर्म का अनुयायी रहेगा। दूसरा नियम ज्येष्ठत्व का था। इसके अतिरिक्त स्त्री की तुलना में पुरुष वंश को श्रेष्ठता प्रदान की गई। 1701 के एक्ट में यह भी प्रावधान है कि यदि उस वंश में प्रोटैस्टेंट्स धर्म को मानने वाले उत्तराधिकारी न रहे तो तब संसद को यह अधिकार प्राप्त है कि वह राजपद किसी दूसरे वंश को दे सकती है, जो प्रोटेस्टेन्ट धर्म का अनुयायी हो। 'रायल मेरिजिज एक्ट' 1772 के अनुसार सिंहासन के उत्तराधिकार को प्रभावित करने वाले व्यक्ति की आयु यदि 25 वर्ष से कम हो तो किसी राजवंशीय व्यक्ति के विवाह के बारे में सम्राट की स्वीकृति लेना आवश्यक होता है। जिस व्यक्ति की आयु 25 वर्ष पूरी हो चुकी हो, उसे सम्राट की स्वीकृति लेने की बजाय केवल प्रिवि कौंसिल को ही एक वर्ष का नोटिस देना पड़ता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि संसद की स्वीकृति के बिना विवाह नहीं हो सकता। इसका सबसे अच्छा उदाहरण यह है कि साम्राज्ञी एलिजाबेथ की बहन राजकुमारी मारग्रेट को पीटर टाउनसैंड से विवाह करने का विचार त्यागना पड़ा था, क्योंकि संसद ने इसकी स्वीकृति नहीं दी थी। इसके बाद 1931 में सिंहासन त्यजन अधिनियम बनाया गया। जिसके अनुसार उत्तराधिकार के नियमों में कुछ परिवर्तन किए गए। इस अधिनियम के अनुसार इंग्लैण्ड की राजगद्दी से सम्बन्धित कानून जब तक नहीं बदले जा सकते तब तक उस बारे में इंग्लैण्ड की संसद कानूनी अनुमति प्रदान न कर दे। 1937 और 1943 में 'रीजेंसी अधिनियम' पास करके संसद ने व्यवस्था की कि यदि राजा और संरक्षक (रिजेन्ट) दोनों ही अयोग्य होंगे तो शासन रिजेंट परिषद के हाथ में रहेगा। राजपद और उत्तराधिकार के नियम के निम्नलिखित निहितार्थ हैं :-

(I) राजपद आनुवांशिक क्रम पर चलेगा।

(II) राजपद प्रदान करते समय ज्येष्ठत्व के नियम का पालन करना होगा।

(III) स्त्री की तुलना में पुरुष वंश को प्रधानता दी जाएगी।

(IV) राजपद पर प्रोटेस्टेण्ड धर्मावलम्बी ही बैठेगा, कथौलिक नहीं।

(V) उत्तराधिकार के नियमों में संसद ही परिवर्तन कर सकती है।

(VI) सम्राट के राजपद के अयोग्य होने पर रिजेंट या रिजेंट परिषद की व्यवस्था की गई है।

इंग्लैण्ड में वंशानुगत का सिद्धान्त और उत्तराधिकार का नियम दोनों ही विद्यमान हैं। वहां पर राजपद के लिए कभी विवाद उत्पन्न नहीं हुआ है और यह व्यवस्था आज तक भी पवित्र बनी हुई है। इस व्यवस्था ने ब्रिटिश राजतन्त्र को चुनावी खर्च से बचाया है और ब्रिटेन में स्वस्थ राजनीतिक परम्पराओं को जन्म दिया है।

राजा की वास्तविक स्थिति

(Actual Position of the King)

1688 की क्रान्ति से राजा को शासन की निरंकुश शक्तियां प्राप्त थी। देश का समस्त शासन व प्रशासन उसकी इच्छा से ही चलता था और राजा का पद सर्वशक्तिसम्पन्न था। लेकिन 1688 की शानदार या महान क्रान्ति ने ब्रिटेन के इतिहास में नया मोड़ ला दिया। अब राजा की शक्तियां ताज की शक्तियां हो गई और राजा व ताज में अन्तर किया जाने लगा। वर्तमान समय

में सम्राट की वास्तविक स्थिति यह है कि सिद्धान्त में तो उसे काफी शक्तियां प्राप्त हैं, लेकिन व्यवहार में वह मन्त्रिमण्डल व संसद का नियन्त्रण है। आज राजा को जो शक्तियां प्राप्त हैं, उनमें से अधिकतर का प्रयोग वह स्वतन्त्रतापूर्वक न करके संसद व मन्त्रिमण्डल की सलाह से ही करता है। यद्यपि आज भी राजा को कुछ विशेषाधिकार और उन्मुक्तियां प्राप्त हैं जो उसे महान बनाते हैं। उसकी वास्तविक स्थिति को समझने के लिए हमें निम्नलिखित बातों पर ध्यान करना चाहिए :

(I) राजा कोई गलती नहीं करता।

(II) राजा राज्य करता है, शासन नहीं।

(III) राजा के विशेषाधिकार व उन्मुक्तियां।

(IV) राजा का व्यापक प्रभाव।

(I) राजा कोई गलती नहीं करता :- ब्रिटेन में एक कहावत प्रचलित है कि 'राजा कोई गलती नहीं करता'। इस कथन का प्रयोग इस अर्थ में किया जाता है कि राजा को किसी कार्य के लिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता। इसका कारण यह है कि राजा सलाह देता है और निर्णय मन्त्री करते हैं। इसलिए किसी कार्य के लिए उसे दोषी नहीं माना जा सकता। इसलिए उसके द्वारा किए गए कार्यों के लिए मन्त्रीमण्डल ही दोषी है। इस कहावत के दो अर्थ हो सकते हैं कानूनी और राजनीतिक। कानूनी रूप से राजा अपने कार्यों के लिए कानून से ऊपर है, क्योंकि वह स्वयं स्व-विवेक से कोई कार्य नहीं करता, अपितु मन्त्रियों की सलाह से ही समस्त कार्य करता है। राजनीतिक दृष्टि से इसका तात्पर्य यह है कि यदि राजा कोई राजनीतिक गलती करे या किसी अपराध की सलाह दे तो उसके विरुद्ध कुछ नहीं किया जा सकता। उसकी गलती के लिए सम्बन्धित विभाग का मन्त्री ही उत्तरदायी होगा। इसलिए राजा के पास वास्तविक शक्ति न होने पर वह कोई गलती नहीं कर सकता। इस कहावत को कि 'राजा कोई गलती नहीं करता' निम्नलिखित प्रकार से समझा जा सकता है

(1) राजा कानून से ऊपर है :- इसका अर्थ यह है कि राजा कानून और न्याय का स्रोत है। उस पर किसी कानून के अन्तर्गत कोई भी दोष नहीं लगाया जा सकता। उस पर न तो कोई न्यायालय मुकद्दमा चला सकता है और न ही उसे अपराधी घोषित किया जा सकता है। यदि वह किसी की हत्या कर दे तो भी न्यायालय उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकता।

(2) राजा किसी अन्य व्यक्ति को भी गलती करने का अधिकार नहीं दे सकता :- इसका तात्पर्य यह है कि जब राजा स्वयं कोई गलती नहीं करता तो वह दूसरों को गलती करने का आदेश कैसे दे सकता है। यदि कोई मन्त्री गलत कार्य करके राजा पर दोष लगाता है तो वह स्वीकार्य नहीं हो सकता। 1678 में डेनमी कोड में संसद ने यह कानून पास कर दिया कि कोई भी मन्त्री अपनी गलती के लिए राजा का सहारा नहीं लेगा। इसके साथ ही यदि राजा कोई गलती भी करता है तो भी उसका उत्तरदायित्व किसी न किसी मन्त्री पर ही होगा। इसके बाद यह व्यवस्था भी की गई कि सम्राट द्वारा जारी आदेशों पर किसी न किसी मन्त्री के हस्ताक्षर अवश्य होंगे। यदि कहीं गलती हुई तो राजा की जगह मन्त्री का ही उत्तरदायित्व होगा। इस कथन की पुष्टि इस बात से हो जाती है कि एक बार चार्ल्स द्वितीय के महल के बाहर किसी दरबारी ने लिख दिया था-"यहां एक महान एवं शक्तिशाली राजा लेटा हुआ है जिसके वचनों का कोई विश्वास नहीं करता, जो कभी गलती नहीं करता और न ही गलत बात कहता है और न ही बुद्धिमता का कार्य करता है।" फिशर ने लिखा है-"राजा के बहुत से परमाधिकार हैं परन्तु जब उनको कार्यरूप दिया जाता है तो तब केवल संसद के प्रति उत्तरदायी मन्त्री की सलाह पर ही उनका प्रयोग होता है।" अतः राजा कोई गलती नहीं करता है। उसके स्थान पर मन्त्री ही स्वयं गलती करता है और वही उत्तरदायी होता है।

इससे स्पष्ट है कि राजा कोई गलती नहीं करता है। उसके नाम पर किए गए किसी गलत कार्य या किसी गलती को मान्यता नहीं दी जा सकती। इसलिए इस बात पर जोर दिया जाता है कि राजा के कार्य के लिए किसी दूसरे व्यक्ति को उत्तरदायी होना चाहिए। इस कथन से ब्रिटिश शासन प्रणाली में मन्त्रिमण्डल के उत्तरदायित्व के सिद्धान्त की स्थापना होती है। उत्तरदायी सरकार की आधारशिला है।

(II) राजा राज्य करता है, शासन नहीं :- इस उक्ति का अर्थ यह है कि राजा का कानूनी दृष्टि से तो आज भी महत्व है, लेकिन वास्तविकता में उसकी शक्तियों का प्रयोग कोई और ही करता है। प्रजातन्त्र के विकास ने आज राजा को केवल नाममात्र या संविधानिक प्रधान बना दिया है। राजा की समस्त शक्तियां आज ताज के अधीन हैं। ताज की शक्तियों का प्रयोग राजा या रानी नहीं स्वयं नहीं करते बल्कि उनका प्रयोग मन्त्रिमण्डल ही करता है। राजा के हाथ में शासन की कोई शक्ति न होने

के कारण ही [illegible] राजा शासन करता है, शासन नहीं करता। फाइनर ने लिखा है-"यह विशाल गगनचुम्बी और वैभवपूर्ण [illegible] के अन्दर राजनीतिक शक्ति का स्थान शून्य है।" इसका अर्थ यह नहीं है कि राजा की शक्ति शून्य है। राजा को [illegible] के क्षेत्र में कुछ अधिकार अवश्य प्राप्त हैं। बेजहाट ने लिखा है-"राजा के तीन अधिकार हैं-(i) सलाह देने का अधिकार (ii) प्रोत्साहन देने का अधिकार तथा (iii) चेतावनी देने का अधिकार। राजा को यह अधिकार है कि वह मन्त्रिमण्डल को सलाह दे सकता है। व्यवहार में कई बार मन्त्रिमण्डल राजा की सलाह लेता भी और उसे मानता भी है। राजा को शासन का आलोचक, मित्र और परामर्शदाता कहा जाता है। उसे परामर्शदाता कहने के पीछे यही निहितार्थ है कि मन्त्रिमण्डल [illegible] उससे अवश्य प्रभावित होता है। यद्यपि सलाह को मानना या न मानना मन्त्रिमण्डल की इच्छा पर निर्भर है, लेकिन [illegible] काफी महत्वपूर्ण होती है। राजा का दूसरा अधिकार प्रोत्साहन देने का है। यदि राजा किसी नीति को राज्य के [illegible] समझे तो वह उसी नीति को क्रियान्वित करने के लिए मन्त्रियों को प्रोत्साहित कर सकता है और उस [illegible] के सुझाव भी सुझा सकता है। इसलिए यह कहना सर्वथा गलत है कि राजा शक्तिहीन है। व्यवहार में चाहे [illegible] करते हों सिद्धान्त में तो उसका पद काफी प्रतिष्ठा का है और देश का शासन इसी के नाम पर ही चलता है।

(III) राजा के [illegible] और उन्मुक्तियां :- राजा कानून से ऊपर है। उस पर किसी तरह का कोई केस नहीं चल सकता। उसे कुछ विशेषाधिकार प्राप्त हैं जो उसे 'रबड़ की मोहर' की बजाय वास्तविक कार्यपालक ही बनाते हैं। उसके विशेषाधिकार हैं-प्रधानमन्त्री और अन्य मन्त्रियों को उनके पद से हटाना। पीयर नियुक्त करना, विधेयकों पर स्वीकृति देना या न देना। यद्यपि ये कार्य राजा प्रधानमन्त्री या मन्त्रिमण्डल की परामर्श से ही करता है। लेकिन कई अवसरों पर उसे मन्त्रिमण्डल की सलाह की आवश्यकता नहीं पड़ती। यदि लोकसभा में दो दलों को समान प्रतिनिधित्व प्राप्त हो तो यह राजा का स्वविवेक का अधिकार है कि वह किसी प्रधानमन्त्री नियुक्त करे। इसमें उसे किसी की सलाह लेने की आवश्यकता नहीं है। इसी तरह विदेशी राजदूतों का स्वागत वह स्वतन्त्रतापूर्ण कर सकता है। राजा के विशेषाधिकार ही उसे देश का वास्तविक शासक बनाते हैं। [illegible] ये विशेषाधिकार अधिक नहीं हैं। राजा के विशेषाधिकारों का प्रयोग व्यवहार में मन्त्रिमण्डल द्वारा ही किया जाता है।

(IV) राजा का व्यापक प्रभाव :- राजा का पद महत्वपूर्ण और प्रभावपूर्ण है। राजा मृत प्रायः, स्वर्णिम शून्य अथवा मिट्टी की मूर्ति मात्र नहीं है [illegible] 'रबड़ की मोहर' है। यद्यपि अधिकतर मामलों में उसकी शक्तियों का प्रयोग मन्त्रिमण्डल ही करता है [illegible] मन्त्रिमण्डल की सलाह के अनुसार कार्य करने को बाध्य होता है, लेकिन विदेशी राजदूतों का स्वागत करने, पीयर नियुक्त करने, कुछ अवसरों पर प्रधानमन्त्री की नियुक्ति करने, संसद में भाषण देने, उपाधियां देने में स्वतन्त्र है। उसका व्यक्तित्व, अनुभव, उसकी निष्पक्षता व कार्य-व्यवहार तथा उसका गौरवपूर्ण पद उसकी स्थिति को नाममात्र की बजाय वास्तविक [illegible] इसी कारण यह उक्ति भी चर्चा में आ जाती है कि 'राजा शक्तिहीन है, प्रभावहीन नहीं'। इंग्लैण्ड के इतिहास [illegible] हैं जिनसे स्पष्ट होता है कि राजा शासन को प्रभावित करता है और समय-समय पर उसको [illegible] राष्ट्रीय महत्व के प्रश्नों पर सलाह देता है और जनहित के कार्य करने के लिए सरकार को प्रोत्साहित [illegible] दलगत भावना से ऊपर उठकर जो कार्य करता है, वही उसके प्रभाव में वृद्धि करते हैं। अनेक अवसरों पर [illegible] सलाह को मन्त्रिमण्डल ने काफी महत्व दिया है। कुछ विद्वान सम्राट को 'गाड़ी का पांचवा पहिया' भी कहते [illegible] राज्य की शक्तियां उसके प्रभाव का रूप ले चुकी हैं। बेजहाट ने लिखा है-"राजा का सम्मानित स्थान [illegible] ब्रिटिश संविधान [illegible] असफल और नष्ट हो जाएगा।" आज राजा ब्रिटिश राष्ट्र की [illegible] है उसके द्वारा व्यक्तिगत तौर पर किए जाने वाले कार्य काफी महत्वपूर्ण हैं।

सम्राट की वास्तविक स्थिति पर उपरोक्त विवेचन के बाद कहा जा सकता है कि वास्तविक सत्ता तो मन्त्रिमण्डल में निहित है। लेकिन सम्राट का पद महान, प्रतिष्ठापूर्ण, गौरवशाली और प्रभावकारी है। वह राज्य का प्रतीक है। राजा सम्मान और शक्ति का प्रतीक है। उसकी स्थिति नाममात्र की नहीं है। अनेक अवसरों पर वह स्वविवेक का प्रयोग कर सकता है। राजा जो कार्य करता है, उसके लिए वह उत्तरदायी नहीं होता। देश का शासन ताज के नाम पर राजा ही चलाता है। राजा की व्यक्तिगत कोई [illegible] दूसरों की गलती होती है। किसी प्रधानमन्त्री की मृत्यु या त्यागपत्र देने पर या [illegible] में किसी को स्पष्ट बहुमत न मिलने पर वह स्वेच्छा से किसी भी व्यक्ति को प्रधानमन्त्री बना सकता है। विदेशी राजदूतों

का स्वागत वह स्वतन्त्रतापूर्वक कर सकता है। सार्वजनिक विषयों पर उसका प्रभाव विशिष्ट होता है। वह संस्कृति, कला और विज्ञान को प्रोत्साहित करता है और समाज सेवा को ही अपना धर्म मानता है। इसलिए राजा को समाज सेवा को ही अपना धर्म मानता है। इसलिए राजा को केवल मात्र गाड़ी का पांचवां पहिया और रबड़ का ठप्पा कहना गलत है। वास्तविकता तो यह है कि राजा की स्थिति व पद ब्रिटेन के इतिहास में प्रतिष्ठा लिए हुए है। आज भी जनता राजा को श्रद्धा व आदर की दृष्टि से देखती है। व्यवहार में चाहे राजा के पास शासन की शक्तियां कम हो, लेकिन सिद्धान्त में तो आज भी राजा के पास असीमित शक्तियां हैं जिनका प्रयोग वह मन्त्रिमण्डल की सलाह पर ही करता है।

ब्रिटेन में राजतन्त्र का औचित्य

(Justification of Monarchy in Britain)

ब्रिटेन में राजतन्त्र की जड़ें बहुत गहरी व पुरानी हैं। ब्रिटेन में प्रजातन्त्र के विकास के साथ-साथ राजतन्त्र की जड़ें भी गहरी होती रही हैं। प्रथम विश्व युद्ध के बाद जब फ्रांस, रूस, जर्मनी, स्पेन, इटली आदि देशों से राजतन्त्र की जड़ें उखड़ने लगे तो ब्रिटेन में सर्वथा उल्टा हुआ। यद्यपि ब्रिटेन में राजतन्त्र की हत्या के काफी प्रयास भी हुए, लेकिन उनका कोई प्रभाव राजतन्त्र को उखाड़ नहीं सका। 1688 की गौरवपूर्ण क्रान्ति ने राजतन्त्र को सीमित अवश्य कर दिया, लेकिन वह भी राजतन्त्र को समाप्त नहीं कर सकी। राजनीतिक विश्लेषकों ने जब ब्रिटेन में राजतन्त्र के जमे रहने के कारणों का अध्ययन किया तो उन्हें पाया कि यह ब्रिटिश लोगों की रुढ़िवादिता और स्वस्थ राजनीतिक परम्पराओं का ही परिणाम है, जो आज तक भी ब्रिटेन में राजतन्त्र को बनाए रखे हुए है। राजतन्त्र और लोकतन्त्र विरोधाभासी होते हुए भी आज तक ब्रिटेन में सामंजस्यपूर्ण तरीके से कर रहे हैं। संसदीय प्रजातन्त्र की जननी ब्रिटेन की राजतन्त्रीय व्यवस्था आज भी जनता के सामने एक अनूठा उदाहरण है। चर्चिल ने कहा है कि "हमारे समस्त लोगों के हृदय में राजतन्त्र गहरी पैठ बनाए हुए है और यह हमें अत्यन्त प्रिय है।" यद्यपि ब्रिटेन में राजतन्त्र को समाप्त करके गणतन्त्र की समाप्ति के अनेक प्रयास हुए हैं। राजतन्त्र के विरोध में यह कहा जाता रहा है के पैतृक आधार पर राजा की नियुक्ति अलोकतन्त्रीय है और इसी आधार पर लोकतन्त्र और राजतन्त्र एक साथ नहीं चल सकते। यह व्यवस्था अधिक खर्चीली भी है, क्योंकि राजपद और राजकुल पर प्रतिवर्ष अत्यधिक खर्च होता है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि आज राजा की स्थिति नाभमात्र की है। इसलिए राजतन्त्र का कोई औचित्य नहीं है। लेकिन फिर भी ब्रिटेन में राजतन्त्र का अस्तित्व बना हुआ है। इसके समर्थन में निम्नलिखित तर्क दिए जाते हैं :-

(1) राजा व्यक्तिगत तौर पर कई महत्वपूर्ण कार्य करता है :- यद्यपि कुछ विद्वान इस बात की वकालत करते हैं कि शासन के संचालन में राजा की स्थिति नाममात्र की है। राजा की समस्त शक्तियों का प्रयोग मन्त्रिमण्डल ही करता है। लेकिन वास्तविकता तो यह है कि शासन के संचालन में आज भी राजा की भूमिका महत्वपूर्ण है। राजा विदेशी राजदूतों का स्वागत करता है और संसद के उद्घाटन के समय सिंहासन से भाषण भी देता है। कुछ विशेष अवसरों पर यह प्रधानमन्त्री को स्वविवेक के आधार पर अपनी इच्छा से नियुक्त भी करता है। ऐसा करते समय उसे किसी मन्त्री या मन्त्रीमण्डल की स्वीकृति लेने की आवश्यकता नहीं है। मन्त्रियों को सलाह देना, प्रोत्साहन देना तथा आलोचना के अधिकार भी उसके व्यक्तिगत अधिकार ही हैं। कई मामलों में राजा की सलाह काफी महत्वपूर्ण होती है। ज्येष्टता के सिद्धान्त पर आधारित राजा का पद उसे योग्य व कार्यकुशल बनता है जो शासन के कुशल संचालन में अहम् भूमिका निभाती है। उपाधियां और पदक देते समय राजा अपनी इच्छा का स्वामी होता है। उसे सम्मान का स्रोत समझा जाता है। इसलिए राजपद को समाप्त करने का अर्थ होगा एक अनुभवी, योग्य व सम्मानित व्यक्ति के अनुभवों को खो देना। यदि राजा का पद या राजतन्त्र समाप्त कर दिया जाए तो उन करोड़ों व्यक्तियों की भावनाओं को आघात पहुंचेगा जो राजपद का सम्मान करते हैं।

(2) राजा की सलाहकारी भूमिका :- राजा एक अनुभवी व परिपक्व व्यक्ति होता है जिसे देश-विदेश की घटनाओं व सम्बन्धों की पूर्ण जानकारी होती है। उसे एक साधारण मन्त्री की अपेक्षा अधिक ज्ञान होता है। विदेश मन्त्रालय द्वारा प्रसारित समस्त प्रेषण पत्र प्रतिदिन राजा के पास भेजे जाते हैं। राजा का अपना कर्मचारी वर्ग भी होता है जो उसे समस्त राजनीतिक घटनाओं की जानकारी प्रतिदिन देता है। राजा को केवल शासन का ही ज्ञान नहीं होता बल्कि उसे शासन का अनुभव भी होता है। मन्त्री आते-जाते रहते हैं, लेकिन राजा अपने पद पर जीवन भर रहता है। इससे उसका अनुभव व शासकीय ज्ञान निरन्तर बढ़ता जाता है जो किसी भी विषय पर सलाह के रूप में महत्वपूर्ण सिद्ध होता है। परम्परा

के अनुसार ब्रिटेन में सलाह देना राजा का प्रमुख अधिकार है। उसकी सलाह देश हित के लिए बहुत महत्वपूर्ण होती है। इसी कारण राजा की सलाह को प्रायः मन्त्रिमण्डल स्वीकार कर ही लेता है। यद्यपि राजा की सलाह मानने के लिए मन्त्री बाध्य नहीं है। लेकिन स्वस्थ राजनीतिक परम्पराओं का निर्वहन करने के लिए राजा की सलाह का सम्मान किया जाता है। यदि राजपद की समाप्ति कर दी जाए तो ब्रिटेन का शासन अनुभवहीनता व अयोग्यता का शिकार हो जाएगा।

(3) राजा की मध्यस्थकारी भूमिका :- राजा की मध्यस्थकारी भूमिका कई बार बहुत महत्वपूर्ण होती है। अपने राजनीतिक प्रभाव व प्रतिष्ठा के कारण वह कई बार गम्भीर राजनीतिक विवादों का हल करता है। 1840 में महारानी विक्टोरिया ने इंग्लैण्ड और फ्रांस के बीच युद्ध को रोका था। 1861 में भी उसने इंग्लैण्ड और अमेरिका के बीच युद्ध रोका। 1884 में उसने ब्रिटिश संसद के दोनों सदनों के आपसी गतिरोध को समाप्त कराया था। 1913 व 1914 में राजा जार्ज प्रथम ने होमरूल बिल पर गतिरोध को समाप्त कराने का प्रयास किया। एडवर्ड सप्तम ने भी इंग्लैण्ड व फ्रांस के बीच मतभेदों को समाप्त कराया था। 1939 में जार्ज षष्ठ ने भी विदेशी दौरे करके इंग्लैण्ड के अन्य देशों के साथ सम्बन्धों में मधुरता पैदा की। इस दौरान ब्रिटेन और टर्की के बीच सैनिक सन्धि जार्ज षष्ठ के ही प्रयासों का परिणाम है। एटली ने राजा की मध्यस्थकारी भूमिका के बारे में लिखा है-"राजा एक रेफरी की तरह है, यद्यपि ऐसे अवसर बहुत कम आते हैं, जब उसे सीटी बजाने की जरूरत पड़ती है।" वर्तमान में महारानी एलिजाबेथ द्वितीय की भूमिका भी विदेशी सम्बन्धों में मधुरता लाने की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका कही जा सकती है।

(4) ब्रिटिश लोगों में गणतन्त्रात्मक भावना का अभाव :- ब्रिटेन की जनता राजा को सम्मान की दृष्टि से देखती है। प्रजा के लिए राजा का पद प्रतिष्ठा व गौरव का है। जनता हमेशा गणतन्त्र की बजाय राजतन्त्र को ही महत्व देती रही है। जब भी ब्रिटेन में किसी ने गणतन्त्रात्मक भावना का समर्थन किया तो जनता के बहुमत ने उसे हताश कर दिया। 1649 से 1660 तक क्रामवैल ने अपनी निरंकुश शक्तियों का प्रयोग करके गणतन्त्रीय शासन का स्थापना का प्रयास किया, लेकिन 1660 में ब्रिटेन में दोबारा राजतन्त्र की ही स्थापना हो गई। 1688 की गौरवपूर्ण क्रान्ति के बाद भी जब जेम्स द्वितीय सिंहासन छोड़कर भाग गया था, तब भी जनता ने राजतन्त्र को ही गले लगाया। आज जब ब्रिटेन में प्रजातन्त्रीय भावना अपनी चरम सीमा पर है, तब भी जनता राजतन्त्र के ही पक्ष में है।

(5) ब्रिटिश जनता शासन व प्रशासन में सुधारों की समर्थक तो रही है, लेकिन वह अपनी शानदार परम्पराओं को समाप्त करने की पक्षधर नहीं है। 1688 की शानदार क्रान्ति की सफलता के बाद भी जनता ने अपनी राजतन्त्र की परम्परा को नहीं छोड़ा। राजतन्त्र ब्रिटेन के लोगों की एक परम्परा है। राजपद इसी परम्परा का एक हिस्सा है। ब्रिटेन में राजपद का एक गौरवपूर्ण इतिहास है। ब्रिटेनवासियों के लिए राजपद एक ऐतिहासिक वस्तु है। आज जब राजतन्त्र जनतन्त्रीकरण हो गया तो अब इसे समाप्त करने का औचित्य क्या है ? ब्रिटिश जनता की रूढ़िवादिता और परम्पराओं के प्रति लगाव राजतन्त्र में सुधार की अनुमति तो दे सकता है, परन्तु इसे नष्ट करने की अनुमति किसी को नहीं दे सकता। आज ब्रिटेन में राजनीतिक दल भी राजतन्त्र का ही समर्थन करते हैं। 1948 में एक संस्था द्वारा राजतन्त्र को समाप्त करने या न करने के बारे में जनता की राय जानी तो 77% जनता ने राजतन्त्र को समाप्त न करने की वकालत की।

(6) राजा ब्रिटिश राष्ट्र व राष्ट्रमण्डल की एकता का प्रतीक है :- ब्रिटेन में राजा किसी राजनीतिक दल, समुदाय या किसी विशिष्ट वर्ग के प्रति निष्ठावान नहीं है। वह समस्त राष्ट्र के प्रति निष्ठावान और राष्ट्रहित की दृष्टि से ही हर कार्य करता है। इसी कारण वह राष्ट्रीय एकता का प्रतीक है और राष्ट्र की श्रद्धा और भक्ति का पात्र है। जनता राजा की आज्ञा का पालन निष्ठापूर्वक अपना कर्तव्य समझकर करती है। जनता प्रधानमन्त्री से तो नाराज हो सकती है, लेकिन सम्राट से नहीं। सम्राट परम्पराओं का वह इतिहास समेटे हुए है जो राष्ट्र की गौरवपूर्ण गाथा का प्रतीक है और जनता की भावनाओं को आपस में जोड़ने वाली कड़ी है। किसी भी राष्ट्रीय संकट के समय जनता सम्राट की तरफ ही देखती है। राजा की जनता को की गई कोई भी अपील राष्ट्र को एकता के सूत्र में बांधती है। जिस तरह राजा राष्ट्र की एकता का प्रतीक है, उसी तरह वह राष्ट्रमण्डल की एकता का भी प्रतीक है। राष्ट्रमण्डल के सदस्य देश भी उसे अपना मुखिया मानते हैं। चर्चिल ने कहा है "राजा एक दूर्बोध व जादू भरी कड़ी है जिसने हमारे ढीले बंधे हुए किन्तु दृढता से जुड़े हुए राष्ट्रमण्डलीय देशों, राज्यों या जातियों को मिला रखा है।" जेनिंग्स का कहना है कि-"ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के सदस्य एक ही प्रेरणा से जीवित हैं और वह प्रेरणा राजा में निहित है।" अतः राजा राष्ट्रीय एकता का प्रतीक व राष्ट्रमण्डलीय देशों को जोड़ने वाली कड़ी है।

(7) राजतन्त्र का लोकतन्त्रीय रूप :- राजतन्त्र का औचित्य इस बात में भी है कि आज इसका रूप प्रजातन्त्रवादी हो चुका है। ब्रिटेन का राजतन्त्र लोकतन्त्रीय है। उसने पहले जैसे निरंकुशता नहीं है। राजतन्त्र का लोकतन्त्रीय सिद्धान्त पर आधारित होना आधुनिक समय में एक विचित्र बात है। आज राजा अपनी मनमानी नहीं कर सकता। उसके समस्त अधिकार और शक्तियां आज मन्त्रिमण्डल द्वारा प्रतिबनित हैं। उसकी समस्त शक्तियों का प्रयोग मन्त्रीमण्डल ही करता है जो जनता की भावनाओं का प्रतिनिधित्व करता है। राजा जनमत के विरुद्ध कोई कार्य नहीं करता है, इसी कारण जनता भी राजा की बात मानती हैं आज राजा की शक्तिहीनता ही उसको बनाए रखने का बडा कारण है। इससे लोकतन्त्र के संचालन में कोई बाधा नहीं पहुंचती है। राजा व उसके परिवार के सदस्य दलगत राजनीति से दूर ही रहते हैं। आज ब्रिटेन में सिद्धान्त में तो राजतन्त्र है, लेकिन व्यवहार में वहां लोकतन्त्रात्मक गणतन्त्र है। इसी कारण वहां पर इसके पैर जमे हुए हैं। लास्की का कहना है-"राजतन्त्र को ब्रिटेन में प्रजातन्त्र के हाथो बेच दिया गया है, लेकिन इसके विरुद्ध उठने वाली कोई भी आवाज सुनाई नहीं देती।" आज राजा मन्त्रिमण्डल की सलाह पर ही कार्य करता है। इसी कारण ब्रिटेन में राजतन्त्र और प्रजातन्त्र दोनों एक साथ फल-फूल रहे हैं।

(8) संसदीय शासन प्रणाली का समर्थक :- राजा का नाममात्र का होना और संसद का वास्तविक शासक होना ही संसदीय शासन का प्रमुख लक्षण है। संसदीय शासन प्रणाली में एक तो नाममात्र की कार्यपालिका होती है और दूसरी वास्तविक। ब्रिटेन में राजा तो नाममात्र की कार्यपलिका है, जबकि मन्त्रिमण्डल वास्तविक है। यदि ब्रिटेन में राजतन्त्र को समाप्त कर दिया जाए तो भी संसदीय शासन के लिए भारत की तरह राष्ट्रपति की आवश्यकता होगी। राष्ट्रपति भी नाममात्र का ही अध्यक्ष होता है। संसदीय शासन प्रणाली के कारण ब्रिटेन में राजपद को समाप्त करने का कोई औचित्य ही नहीं है। यदि राजतन्त्र को समाप्त कर दिया जाए तो उसके स्थान पर अन्य मुखिया की स्थापना करनी पडेगी जो समस्याओ को बढा देगी। अतः ब्रिटेन में संसदीय शासन प्रणाली के कारण भी राजा संवैधानिक मुखिया के रूप में कार्य कर रहा है।

(9) राजतन्त्र का आर्थिक औचित्य :- राजतन्त्र अधिक खर्चीली व्यवस्था नहीं है। यदि राजतन्त्र का समाप्त कर दिया जाए तो उससे ब्रिटेन की आर्थिक दशा में कोई विशेष सुधार नहीं होगा। यदि राजा की जगह निर्वाचित मुखिया हो तो उसे जो वेतन व भत्ते देने पडेंगे वे भी राजतन्त्र में राजा पर किए गए खर्च से कम नहीं होंगे। उदाहरण के लिए भारत में राष्ट्रपति पर जो खर्च होता है, वह किसी भी मायने से ब्रिटेन के राजपद पर होने वाले खर्च से कम नहीं है। अमरिका में राष्ट्रपति पर भी लगभग उतना ही खर्च होता है, जितना ब्रिटेन में राजा पर। अतः राजतन्त्र खर्चीली प्रणाली नहीं है।

(10) राजा एक सामाजिक व्यक्ति है :- राजा केवलमात्र एक राजनीतिक व्यक्ति ही नहीं है, बल्कि वह देश के सामाजिक ढांचे की आवश्यक कड़ी है। उसका अपना सामाजिक व्यक्तित्व है और वह समाज की अनेक संस्थाओं का संरक्षण पदान करता है। राज्य द्वारा समाज हित में किए गए कार्य काफी महत्वपूर्ण होते हैं। दलगत राजनीति से दूर रहते हुए वह सामाजिक कार्यों में भाग लेता है। राजकीय परिवार कला, साहित्य, नतिकता आदि के क्षेत्र में आदर्श स्थापित करता है। राजा का सामाजिक व्यक्तित्व सरकार को लोकप्रियता प्रदान करता है। 1887, 1897 तथा 1977 में राजा सम्बन्धी जुबली उत्सवों ने उस समय की सरकारों को काफी लोकप्रिय बना दिया था। मोरीसन ने लिखा है कि जब जनता राजा या रानी की जय-जयकार करती है तो वह स्वतन्त्र प्रजातन्त्र की जय-जयकार कर रही होती है। जिस तरह राजकुमार चार्ल्स और राजकुमारी डायना की शादी ने विश्व का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया था, उसी तरह डायना की मृत्यु भी सम्पूर्ण विश्व में चर्चा का विषय बनी हुई है। अतः राजा का व्यक्तित्व समाज का व्यक्तित्व है। समाज वही करता है जो राजा करता है।

(11) राजतन्त्र का ऐतिहासिक आधार पर समर्थन :- ब्रिटेन में राजपद अत्यन्त प्राचीन ऐतिहासिक धरोहर है। राजतन्त्र अतीत को वर्तमान से और वर्तमान को अतीत से जोड़ने वाली कड़ी है। राजतन्त्र का गौरवपूर्ण इतिहास राजपद के प्रति स्वाभाविक प्रेम और सम्मान की भावना पैदा करता है। ऐसे काफी अवसर आए हैं जब राजाओं ने प्रजा की रक्षा के लिए व राष्ट्रीय हित के लिए संकीर्ण स्वार्थों से ऊपर उठकर कार्य किया है। जो राजपद सदियों से गौरवपूर्ण इतिहास को समेटे चला आ रहा है, उसे समाप्त करने का तात्पर्य होगा, ब्रिटेन के गौरवपूर्ण इतिहास का नष्ट करना।

(12) राजतन्त्र को मनोवैज्ञानिक आधार पर समर्थन :- राजतन्त्र ब्रिटिश जनता के दिलो दिमाग पर इस कदर छाया हुआ है कि उसको समाप्त करने की कल्पनामात्र ही भयानक परिणाम पैदा करने वाली है। राजतन्त्र ब्रिटेन की स्वस्थ राजनीतिक परम्पराओं को समेटे हुए है और राजपद को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। अंग्रेजों की भावना के अनुसार

राजा उनकी एकता और सुरक्षा का प्रतीक है। अंग्रेजों के लिए राजा या रानी एक महान औषधि है जो उन्हें दुःख को हर घड़ी में सांत्वना प्रदान करती है। अंग्रेज कहते हैं-"यदि राजा बकिंघम में होता है तो वे चैन की नींद सोते हैं।" इससे स्पष्ट होता है कि ब्रिटेन की जनता की भावना राजतन्त्र के प्रति ही है।

(13) राजा संतुलन के रूप में :- राजा दलगत राजनीति से ऊपर उठकर कार्य करता है। वह कार्यपालिका और विधायिका के बीच संतुलन कायम करता है। शासक दल और विरोधी दल दोनों सम्राट के अधीन ही कार्य करते हैं। राजा समाज के विभिन्न गुटों व समुदायों में भी एकता कायम करता है। राजा की बात का सभी राजनीतिक दल व समुदाय सम्मान करते हैं। मुनरो ने राजा की संतुलनकारी भूमिका के बारे में लिखा है-"राजा भिन्न-भिन्न विपक्षी गुटों के बीच शान्ति संस्थापक है जिनकी शत्रुता देश के लिए हानिकारक हो सकती है।" राजा की सलाह शासक दल तथा विरोधी दल सहित समाज के सभी समुदाय मानते हैं। इससे शासन व्यवस्था व समाज में शांति व संतुलनचक्र बना रहता है।

उपरोक्त विवेचन के बाद कहा जा सकता है कि राजतन्त्र एक ऐतिहासिक धरोहर है। इसका गौरवपूर्ण इतिहास इसको इतना लोकप्रिय बना देता है कि ब्रिटेनवासी इसके विरुद्ध सोच भी नहीं सकते। राजपद को ब्रिटेन में जो सम्मान प्राप्त है वह राजतन्त्र के औचित्य को सिद्ध करने के लिए ही पर्याप्त है। राजतन्त्र ब्रिटेनवासियों के लिए एक मानसिक औषधि है जो ब्रिटेनवासियों के लिए बहुत ही गुणकारी है। राष्ट्र व राष्ट्रमण्डल की एकता का प्रतीक राजतन्त्र आज ब्रिटेनवासियों के दिलों की धड़कन है। ब्रिटेनवासी राजतन्त्र के जनवादी रूप से काफी खुश है। उनकी राजा के प्रति श्रद्धा व सम्मान की भावना असीम है। आज जब राजतन्त्र ने अपने को जनवादी बना लिया है, ऐसे में इसकी समाप्ति की बात करना एक मूर्खता है जिसे ब्रिटेन की जनता पसंद नहीं कर सकती। ब्रिटेनवासी राजतन्त्र में सुधार का तो समर्थन कर सकते हैं, लेकिन इसको नष्ट करने के पूर्णतया विरोधी हैं। राजतन्त्र ब्रिटेन की आकांक्षाओं का प्रतीक है। राष्ट्र सम्मान के प्रतीक राजपद और ऐतिहासिक धरोहर के प्रतीक राजतन्त्र को समाप्त करने का ब्रिटेनवासियों की तरफ से कोई संकेत नहीं है। यही कारण है कि ब्रिटेन में राजतन्त्र आज भी लोकप्रिय है और भविष्य में भी इसकी लोकप्रियता में कमी आने के कोई लक्षण नहीं हैं।

ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल : वास्तविक कार्यपालिका

(British Cabinet : The Real Executive)

ब्रिटेन में संसदीय शासन प्रणाली है। संसदीय शासन प्रणाली में दो प्रकार की कार्यपालिका होती है-एक तो नाममात्र ओर दूसरी वास्तविक। ब्रिटेन भी इसका अपवाद नहीं है। ब्रिटेन में सम्राट तो नाममात्र की कार्यपालिका है। वह एक संवैधानिक मुखिया है। उसकी समस्त शक्तियां व्यवहार में ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल द्वारा ही प्रयोग की जाती है। यह मन्त्रिमण्डल ही ब्रिटेन की वास्तविक कार्यपालिका है। मन्त्रिमण्डल ब्रिटेन शासन-व्यवस्था का हृदय व उसका महत्वपूर्ण केन्द्र है। डायसी ने कहा है-"राज्य का प्रत्येक कार्य ताज के नाम पर किया जाता है और मन्त्रिमण्डल ताज की शक्तियों का प्रयोग करने वाली वास्तविक कार्यपालिका है। इसी कारण ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल को संवैधानिक मशीनरी का सबसे महत्वपूर्ण पुर्जा कहा जाता है। ब्रिटेन में शासन के क्षेत्र में मन्त्रिमण्डलीय कार्यपालिका का विकास सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना है। एमरी ने कहा है कि यह शासन का केन्द्रीय निर्देशक है। ग्लेडस्टन ने इसे एक सूर्यपिण्ड कहा है जिसके चारों ओर अन्य पिण्ड घूमते हैं। रेमजे म्यूर ने कहा है कि मन्त्रिमण्डल राज्यरूपी जहाज को घुमाने वाला चालक चक्र है। मन्त्रिमण्डल ही वह कड़ी है जो कार्यपालिका तथा विधायिका को जोड़ती है। सारांश में मन्त्रिमण्डल संविधान की मुख्य आभा है जो बुद्धि और संयोग की संतान है।

मन्त्रीमण्डल का अर्थ एवं परिभाषा

(Meaning and Definition of Cabinet)

साधारण अर्थों में मन्त्रिमण्डल वास्तविक शासक है जो ताज की शक्तियों का प्रयोग करती है और संसद में जनता का प्रतिनिधित्व करती है। यह वह शासक है जो सम्राट के नाम पर ही अपनी शक्ति प्राप्त करता है और उसका प्रयोग करती है। मन्त्रिमण्डल को परिभाषित करते हुए विद्वानों ने कहा है :-

(1) सिडनी लो के अनुसार-"मन्त्रिमण्डल उत्तरदायी कार्यपालिका है जिसके हाथ में प्रशासन का सम्पूर्ण नियन्त्रण और राष्ट्रीय कार्यों का सामान्य निर्देशन होता है, किन्तु यह अपने अधिकारों का प्रयोग प्रतिनिधि सदन के निरीक्षण तथा नियन्त्रण में करती है जिसके प्रति वह अपने अधिकारों का प्रयोग प्रतिनिधि सदन के निरीक्षण तथा नियन्त्रण में करती

है जिसके प्रति वह अपने समस्त कार्यों के लिए उत्तरदायी है।"

(2) बेजहाट के अनुसार-"मन्त्रिमण्डल विधानपालिका की समिति है।"

(3) लूनरो के अनुसार-"मन्त्रिमण्डल राजा के नाम पर और हाऊस ऑफ [illegible] चुने गये ऐसे परामर्शदाताओं का समूह है जो ताज को परामर्श देता है।"

(4) वुडरो विल्सन ने कहा है "मन्त्रिमण्डल तीन मोड़ वाला कब्जा है जो ब्रिटिश संविधान के तीन अंगों-संसद, कांग्रेस और कॉमन्स को परस्पर सम्मिलित करके कार्य करता है।"

प्रिवी परिषद, मन्त्रिमण्डल तथा मन्त्रीपरिषद में अन्तर

(Difference between Privy Council, Cabinet and Ministry)

कुछ व्यक्ति मन्त्रिमण्डल तथा मन्त्रीपरिषद दोनों को समान मानते हैं। यह धारणा [illegible] प्रिवी परिषद एक तकनीकी यन्त्र है जो पहले राजा की परामर्शदात्री संस्था था। इसके सदस्य [illegible] पुनः चुने जाते थे। ट्यूडर काल में यह राजाओं की निरंकुशता का शक्तिशाली माध्यम बन गई और यह उन कार्यों को करने लगी जो आज मन्त्रिमण्डल करता है। कालान्तर में जब राजा की शक्तियाँ ताज के अधीन चली गईं तो यह एक परामर्शदात्री संस्था नहीं रही। इसके सदस्यों की नियुक्ति राजा द्वारा प्रधानमन्त्री के परामर्श से की जाती है। इसके [illegible] साहित्यकार, चर्च के अधिकारी, अवकाश प्राप्त न्यायधीश आदि व्यक्ति होते हैं। इसकी बैठकें बहुत कम होती हैं। इसकी बैठकें केवल राजा की मृत्यु या राजा-रानी के विवाहोत्सव पर ही होती हैं। इसका कार्य मन्त्रिमण्डल के निर्णयों पर औपचारिक स्वीकृति देना है। इसके पास ऐसी कोई शक्ति नहीं है जो [illegible] दिखा सके। इसके विपरीत मन्त्रिमण्डल के कार्य औपचारिक नहीं है, वास्तविक हैं। प्रिवी परिषद [illegible] है, जबकि मन्त्रिमण्डल का विकास बाद में हुआ है। आज मन्त्रिमण्डल के सभी सदस्य प्रिवी [illegible] प्रिवी परिषद के कार्य विभिन्न विभागों में बंटे होते हैं जो मन्त्रियों द्वारा ही पूरे किए जाते हैं। वास्तव में [illegible] प्रिवी परिषद एक औपचारिक संस्था है जो अपने कार्य मन्त्रिमण्डल के माध्यम से पूरे करती है। इसके [illegible] तुलना में सीमित हैं, लेकिन फिर भी मन्त्रिमण्डल एक शक्ति का प्रतीक है और यह उस शक्ति [illegible]

मन्त्रिमण्डल और मन्त्रिपरिषद में भी अन्तर है। मन्त्रिमण्डल की चर्चा करते हुए [illegible] मन्त्रिपरिषद का हृदय है, शासन की धुरी है जिससे सभी महत्वपूर्ण विभागों के अध्यक्ष तथा कुछ [illegible] अधिकारी सम्मिलित हैं।" इसके विपरीत मन्त्रिपरिषद एक बड़ी संस्था होती है जिसमें सदस्यों की संख्या [illegible] कई गुणा अधिक होती है। मन्त्रिमण्डल और मन्त्रिपरिषद में अन्तर करते हुए ऑग और जिंक ने लिखा है "मन्त्रिमण्डल के सदस्य मन्त्री होते हैं, लेकिन सभी मन्त्री मन्त्रिमण्डल के सदस्य नहीं होते।" इस अन्तर को स्पष्ट करते हुए लावेल ने लिखा है "मन्त्रिमण्डल पहियों के अन्दर पहियों में से एक पहिया है।" उसने आगे लिखा है कि "मन्त्रिमण्डल के सभी सदस्य मन्त्री होते हैं, लेकिन सभी मन्त्री मन्त्रिमण्डल के सदस्य नहीं होते। लावेल ने भी ऑग व जिंक के ही मत की पुष्टि की है। मन्त्रिमण्डल तथा मन्त्रिपरिषद में निम्न अन्तर होते हैं :-

(1) मन्त्रिमण्डल एक छोटी संस्था है, जबकि मन्त्रीपरिषद एक व्यापक संस्था है। मन्त्रिपरिषद के सदस्यों की संख्या मन्त्रिमण्डल के सदस्यों की संख्या सबसे अधिक होती है।

(2) मन्त्रिमण्डल का प्रत्येक सदस्य मन्त्रिपरिषद का सदस्य होता है, लेकिन यह आवश्यक नहीं है कि जो मन्त्रिपरिषद का सदस्य है, वह मन्त्रीमण्डल का सदस्य भी हो।

(3) मन्त्रिमण्डल के सदस्यों की संख्या निश्चित नहीं है, जबकि मन्त्रीपरिषद के [illegible] निश्चित होती है।

(4) मन्त्रिमण्डल के सभी सदस्य स्वतन्त्र रूप से अपने-अपने विभागों के सर्वेसर्वा होते हैं और उनका सम्बन्धित विभाग पर पूरा नियन्त्रण रहता है, जबकि मन्त्रिपरिषद के सदस्यों का किसी विभाग पर कोई नियन्त्रण नहीं होता।

(5) मन्त्रिमण्डल के सदस्यों का वेतन व भत्ते अधिक होते हैं, जबकि मन्त्रिपरिषद के सदस्य को [illegible] वेतन मिलता है।

(6) मन्त्रिमण्डल के सदस्यों का कार्य नीति-निर्माण करना है, जबकि मन्त्रिपरिषद का कार्य उसे [illegible] करना है।

(7) मन्त्रिमण्डल की बैठकें प्रायः सप्ताह में एक बार अवश्य हो जाती हैं, लेकिन मन्त्रिपरिषद की बैठकें कई महीने में एक बार होती हैं।

ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल की उत्पत्ति व विकास

(Origin and Development of British Cabinet)

ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल एक संवैधानिक संस्था नहीं है और न ही इसका कोई लिखित व कानूनी आधार है। यह तो क्रमिक विकास का परिणाम है, जो परम्पराओं व अभिसमयों पर आधारित है। ब्रिटेन के संविधान में मन्त्रिमण्डल नामक संस्था का कोई उल्लेख नहीं है। अन्य संवैधानिक संस्थाओं की तरह इसके बीज भी इतिहास में निहित है। वर्तमान मन्त्रिमण्डल को 1937 के ताज अधिनियम द्वारा ही वैधानिक मान्यता प्राप्त हुई है। वर्तमान मन्त्रिमण्डल के बीज एंग्लो-सेकसन और नार्मन एंजिवेन युग में मिलते हैं। उस समय विटनेजमोट तथा क्यूरिया रेजिस नामक दो संस्थायें थीं। इन दोनों परामर्शदात्री संस्थाएं थी जिनका कार्य राजा को सलाह देना था। कुछ समय बाद विटनेजमोट का स्थान एक अन्य उच्चस्तरीय समिति ने ले लिया और कयूरिया रेजिस में से ही प्रिवि परिषद नामक छोटी समिति की उत्पत्ति हुई। बाद में प्रिवि परिषद से मन्त्रिमण्डल का निर्माण हुआ और उच्च स्तरीय समिति (मैगनम कौंसिलियम) से संसद का। राजा ने प्रिवि परिषद में से ही अपने कुछ विश्वासपात्र व्यक्तियों की सलाह देने वाली एक समिति बना दी, क्योंकि प्रिवि कौंसिल का आकार बड़ा होने पर सलाह लेना राजा के लिए कठिन कार्य हो गया था। यह माना जाता है कि प्रिवि कौंसिल का आकार बढ़ने पर 'कबाल' नामक संस्था का जन्म हुआ। कबाल राजा द्वारा चुने हुए पांच व्यक्तियों की परामर्शदात्री समिति थी। कबाल शब्द उन पांच व्यक्तियों के नामों के प्रथम अक्षरों से निर्मित शब्द था। राजा के प्रति उत्तरदायी होने के कारण जनता ने कबाल की काफी आलोचना की। लेकिन ऐसा माना जाता है कि चार्ल्स द्वितीय के काल में उत्पन्न कबाल ही मन्त्रिमण्डल नामक संस्था की जननी है। लेकिन संसद ने इस बात के लिए संघर्ष किया कि राजा के मन्त्री या सलाहकार राजा के प्रति उत्तरदायी न होकर, जनता के प्रतिनिधियों के प्रति उत्तरदायी होने चाहिए। इसी दौरान राजनीतिक दलों का विकास होना भी शुरु हो गया। राजा के समर्थक टोरी तथा विरोधर व्हिग कहलाए। 1688 की शानदार क्रांति ने यह सुनिश्चित कर दिया कि मन्त्री संसद के प्रति ही उत्तरदायी होंगे। इसके बाद विलियम तृतीय ने यह सिद्धान्त विकसित किया कि राज्य के महत्वपूर्ण पदों पर उसी दल के व्यक्तियों को नियुक्त किया जाएगा जिस दल को लोकसभा में बहुमत प्राप्त होगा। इस समय हवीग दल का लोकसभा में बहुमत था, इसलिए उसके सदस्यों को ही मन्त्री बनाया गया। इस तरह मन्त्रिमण्डलीय उत्तरदायित्व के साथ-साथ बहुमत दल द्वारा मन्त्रिमण्डल के निर्माण का सिद्धान्त भी अस्तित्व में आया।

मन्त्रिमण्डल का वास्तविक विकास हेनोवर युग में तेजी से हुआ। इस दौरान मन्त्रिमण्डल के संगठन एवं कार्यप्रणाली में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ। जार्ज प्रथम और द्वितीय ने अंग्रेजी भाषा का ज्ञान न होने के कारण मन्त्रिमण्डल की बैठकों में भाग लेना बन्द कर दिया और मन्त्रिमण्डल में ही एक प्रमुख सदस्य वालपोल को मन्त्रिमण्डल की बैठकों की अध्यक्षता करने की कमान सौंपी। अब मन्त्री राजा की बजाय वालपोल के आदेशानुसार ही कार्य करने लग। यहीं से प्रधानमन्त्री नामक संस्था का जन्म हुआ। वालपोल ने 10, डाउनिंग स्ट्रीट को अपना कार्यालय बनाया जो आज भी प्रधानमन्त्री का निवास स्थान है। वालपोल ने 1730 में टाउनसेण्ड को त्यागपत्र देने को मजबूर किया, क्योंकि वह उसकी नीतियों से सहमत नहीं था। वालपोल ने प्रशासनिक नीतियों का निर्धारण किया और उन्हें संसद से अनुमोदित भी कराया। 1742 में संसद में अविश्वास मत के कारण वालपोल ने त्याग-पत्र दे दिया। इससे ब्रिटिश संसदीय व्यवस्था में सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त का जन्म हुआ। आगे चलकर कई मन्त्रियों ने अविश्वास मत के कारण अपना पद छोड़ना पड़ा। 1867 में प्रथम बार वेजहाट ने अपनी पुस्तक 'ब्रिटिश संविधान' में मन्त्रिमण्डल नामक संस्था का उल्लेख किया। आगे चलकर 1923 में जार्ज प्रथम ने प्रधानमन्त्री बोनर ला के बाद लार्ड कर्जन की जगह स्टेनली बाल्डविन को प्रधानमन्त्री नियुक्त किया। इससे यह बात निश्चित हुई कि प्रधानमन्त्री कामन्स सभा का ही सदस्य होना चाहिए। इस तरह 20वीं सदी तक आते-आते मन्त्रिमण्डलीय पद्धति का काफी विकास हुआ। इस दौरान मन्त्रिमण्डलीय प्रणाली में इन विशेषताओ का जन्म हुआ कि केबिनेट या मन्त्रिमण्डल के सदस्य संसद के सदस्य होने चाहिए, वे लोकसभा में बहुमत प्राप्त दल के सदस्य हों, उनके राजनीतिक विचार समान हों, सारे मन्त्री लोकसभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी हों तथा सभी प्रधानमन्त्री की अध्यक्षता में कार्य करें। वर्तमान सदी में मन्त्रिमण्डलीय प्रणाली में कुछ नई प्रवृत्तियों का विकास हुआ है। अब मन्त्रिमण्डल राष्ट्रीय आपातकाल में दलगत निष्ठा को छोड़ देता है। आज कॉमन्स हाऊस का सदस्य ही प्रधानमन्त्री नियुक्त होता है। यह मन्त्रिमण्डलीय प्रणाली की परम्परा की ही देन है। आधुनिक समय में राजा या रानी तो नाममात्र के शासक हैं, शासन की वास्तविक शक्ति तो आज मन्त्रिमण्डल के पास ही है। ब्रिटेन में मन्त्रिमण्डल

जैसी शक्तिशाली संस्था या व्यक्ति अन्य कोई नहीं है। 1937 के ताज अधिनियम के बाद उसे विशेष शक्तियां प्राप्त हो गई हैं जो उसकी स्थिति को महत्वपूर्ण बनाती है।

ब्रिटिश मन्त्रिमण्डलीय प्रणाली की प्रकृति व विशेषताएं

(Nature and Features of British Cabinet System)

मन्त्रिमण्डल ही वास्तविक कार्यपालिका है। यह वह धुरी है जो शासन व्यवस्था को अपनी इच्छानुसार घुमाती है। इसका गठन प्रधानमन्त्री की सलाह पर सम्राट या ताज द्वारा किया जाता है। मुनरो ने कहा है कि "मन्त्रिमण्उल ताज के नाम पर प्रधानमन्त्री द्वारा नियुक्त किए गए उन राजकीय परामर्शदाताओं की संस्था का नाम है जिसे लोकसभा में बहुमत का समर्थन प्राप्त है।" सिद्धान्त में तो यह एक परामर्शदात्री संस्था है, लेकिन व्यवहार में यह वास्तविक कार्यपालक है। ब्रिटिश संविधान की तरह यह भी योजना, अवसर और बुद्धि की सन्तान है। मन्त्रिमण्डल को व्यवस्थापिका की भी शक्तियां प्राप्त हैं; क्योंकि यह कानून निर्माण में भाग लेता है और प्रशासन में भी भाग लेता है। यह अपने समस्त कार्यों के लिए सम्राट के प्रति उत्तरदायी न होकर लोक-सदन के प्रति उत्तरदायी है। यदि संसद राजनीति का हृदय है तो यह उसका मस्तिष्क है। ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल प्रणाली की निम्नलिखित विशेषताएं हैं :-

(1) राजा या सम्राट का पृथक्करण :- राजा ब्रिटिश कार्यपालिका का अभिन्न अंग होते हुए भी न तो मन्त्रिमण्डलीय बैठकों की अध्यक्षता करता है और न ही उनकी किसी कार्यवाही में भाग लेता है। सम्राट राज्य का संवैधानिक अध्यक्ष होता है। उसे नाममात्र की शक्तियां प्राप्त होने के कारण वह केवल परामर्श देने, चेतावनी देने तथा प्रोत्साहन देने का अधिकार रखता है। मन्त्रिमण्डलीय प्रणाली की यह सबसे प्रमुख विशेषता है कि मन्त्रियों पर सम्राट का कोई नियन्त्रण नहीं है। इस प्रणाली में मन्त्री राजा के प्रति उत्तरदायी न होकर संसद के प्रति ही उत्तरदायी होते हैं।

(2) कार्यपालिका और विधायिका में घनिष्ठ सम्बन्ध :- ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल संसद का अभिन्न अंग है। मन्त्रिमण्डल का निर्माण संसद के सदस्यों में से ही होता है। यदि गैर-संसद सदस्य को मन्त्री बनाया जाता है तो उसे 6 महीने के भीतर संसद सदस्य बनना पड़ता है या अपना पद छोड़ना पड़ता है। अपनी दोहरी स्थिति के कारण मन्त्री कार्यपालिका और विधायिका सम्बन्धी दोनों कार्य करते हैं। वे संसदीय बहस में भाग लेते हैं, व्यवस्थापन करते हैं और संसद में मतदान करते हैं। बेजहाट ने लिखा है-"व्यस्थापिका तथा कार्यपालिका की एक-दूसरे से स्वतन्त्रता अध्यक्षात्मक पद्धति का विशेष लक्षण है और इन दोनों की घनिष्ठता मन्त्रिमण्डलात्मक पद्धति की।" ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल संसद के प्रति ही उत्तरदायी है और संसद का विश्वास खोने पर उसे हटना पड़ता है। इससे स्पष्ट है कि कार्यपालिका और विधायिका का घनिष्ठ सम्बन्ध ब्रिटिश मन्त्रिमण्डलीय प्रणाली की प्रमुख विशेषता है।

(3) प्रधानमन्त्री का नेतृत्व :- प्रधानमन्त्री मन्त्रिमण्डल का प्रमुख होता है। उसका समस्त मन्त्रियों पर पूर्ण नियन्त्रण होता है। यद्यपि वह भी एक मन्त्री ही होता है, लेकिन उसका पद उसे महत्वपूर्ण बना देता है। समस्त मन्त्रीगण प्रधानमन्त्री रूपी कैप्टन के आदेश पर ही अमल करते हैं। उसे शासन की एकता का प्रतीक माना जाता है। उसे किसी भी मन्त्री को मन्त्रिमण्डल में शामिल करने या हटाने का पूर्ण अधिकार होता है। वह समकक्षों में प्रथम होता है। सारे मन्त्रिमण्डल को उसकी इच्छा का सम्मान करना पड़ता है। वह मन्त्रिमण्डल से एक टीम की तरह कार्य कराता है। यदि कोई मन्त्री टीम से बाहर जाना चाहे तो प्रधानमन्त्री उसे त्यागपत्र देने के लिए कह सकता है। मन्त्रिमण्डल का सर्वेसर्वा होने के नाते उसकी स्थिति काफी महत्वपूर्ण है। वास्तव में प्रधानमन्त्री ही वह धुरी है जिसके चारों तरफ मन्त्रिमण्डलीय व्यवस्था घूमती है।

(4) राजनीतिक एकरूपता :- ब्रिटिश मन्त्रिमण्डलीय व्यवस्था की प्रमुख विशेषता उसकी राजनीतिक सजातीयता (homogeneity) भी है। ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल के सभी मन्त्री प्रायः एक ही राजनीतिक दल तथा समान विचारधारा के होते हैं। मन्त्रिमण्डल की बैठकों में सभी सदस्य स्वतन्त्र रूप से विचार-विमर्श करते हैं और निर्णय लिए जाने पर सभी एकमत से उसका समर्थन करते हैं। ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल में सभी राजनीतिक प्रश्नों, समस्याओं, नीतियों व निर्णयों के सम्बन्ध में इसके सदस्यों मे एकता की भावना का पाया जाना एक महत्वपूर्ण बात है जो इसे राजनीतिक एकरूपता से परिपूरित करती है। राजनीतिक एकरूपता ही ब्रिटिश मन्त्रिमण्डलीय प्रणाली की सफलता का कारण है।

(5) सामूहिक उत्तरदायित्व :- ब्रिटेन में संसदीय प्रणाली होने के कारण मन्त्रिमण्डल सामूहिक रूप से व्यवस्थापिका या संसद

के प्रति उत्तरदायी होता है। इस व्यवस्था में सम्पूर्ण मन्त्रिमण्डल की एक टीम की तरह कार्य करना पड़ता है। किवनटिन ऑग ने लिखा है-"ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल की कार्यविधि का मूल आधार मन्त्रिमण्डल का सामूहिक उत्तरदायित्व है।" आज ब्रिटेन में यह उत्तरदायित्व संसद के दोनों सदनों के प्रति न होकर लोकसभा के प्रति ही है। सभी मन्त्री एक साथ ही पद ग्रहण करते हैं और एक साथ ही पद का त्याग भी करते हैं। यदि किसी एक मन्त्री के विरुद्ध कोई आरोप साबित हो जाए तो यह समस्त मन्त्रिमण्डल का दोष माना जाता है। ब्रिटिश परम्परा के अनुसार यदि मन्त्रिमण्डल लोकसभा (कॉमन्स सदन) में अपना बहुमत खो दे तो उसे त्यागपत्र देना पड़ता हैं। मन्त्रिमण्डल के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव पास होने का अर्थ होगा, संसद का भंग होना। यद्यपि संसद की अवधि 5 वर्ष है, लेकिन सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त का निर्वहन करते समय यदि संसद में मन्त्रिमण्डल विश्वास मत खो दे तो संसद भंग हो जाती है और फिर से चुनाव कराए जाते हैं। इस प्रकार का उत्तरदायित्व सामूहिक उत्तरदायित्व कहलाता है। सामूहिक उत्तरदायित्व का अर्थ यह नहीं है कि किसी भ्रष्ट या अयोग्य व्यक्ति के लिए समस्त मन्त्रिमण्डल त्यागपत्र देगा। यदि कोई मन्त्री चारित्रिक दोष या भ्रष्टाचार का शिकार हो जाए तो केवल उसे ही त्यागपत्र देना पड़ेगा, क्योंकि उसकी गलती मन्त्रिमण्डल की गलती नहीं थी। इसी कारण प्रत्येक मन्त्री को कोई भी निर्णय लेने से पहले मन्त्रिमण्डल से सलाह करनी पड़ती है। ऐसा करने से उसका व्यक्तिगत फैसला भी सामूहिक फैसला हो जाता है। सामूहिक उत्तरदायित्व को परिभाषित करते हुए सेलिसबरी ने कहा है-"मन्त्रिमण्डल में जो कुछ भी होता है, उसके लिए प्रत्येक मन्त्री, यदि वह अपना त्याग-पत्र नहीं देता है तो वह संसद के प्रति उत्तरदायी होता है।" फाइनर का कहना है-"ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल अकेला व्यक्ति नहीं है परन्तु वह एकल संस्था है।" 1938 में एन्थनी तथा डफ कूपर को इसी कारण अपना पद छोड़ना पड़ा था कि वे प्रधानमन्त्री चैम्बरलिन की म्यूनिख के बारे में तुष्टिकरण की नीति के विरोधी थे। इसी तरह 1958 में सर पीटर थरोनी ने प्रधानमन्त्री से रुष्ट होकर अपना त्यागपत्र दे दिया था।

सामूहिक उत्तरदायित्व का महत्व :- सामूहिक उत्तरदायित्व का सिद्धान्त मन्त्रियों में पारस्परिक सहयोग की भावना लाता है और सभी मन्त्री एक इकाई के रूप में कार्य करते हैं। इससे उनके स्वार्थपूर्ण हित भी व्यापक हितों का रूप ले लेते हैं। लास्की ने लिखा है-"प्रकृति से मन्त्रिमण्डल में एकता होती है और सामूहिक एकता एक ऐसा तरीका है जिसके द्वारा इस एकता को प्राप्त किया जा सकता है।" उन्होंने आगे लिखा है-"सामूहिक उत्तरदायित्व से ही उनमें आपस में विश्वास बढ़ता है और इससे नीति-निर्धारण में एक दूसरे के लिए त्याग सम्भव हो सकता है।" इस व्यवस्था से लोकसभा में कोई भी विधेयक आसानी से पास हो जाता है। यह व्यवस्था मन्त्रिमण्डल को स्थायित्व भी प्रदान करती है। सभी का यह प्रयास रहता है कि आपस में तालमेल बनाकर रखा जाए ताकि मध्यावधि चुनावों का मुंह न देखना पड़े। इस व्यवस्था का यह सिद्धान्त काफी लोकप्रिय है कि सब एक के लिए हैं और एक सभी के लिए।

सामूहिक उत्तरदायित्व के दोष :- सामूहिक उत्तरदायित्व का प्रमुख दोष यह है कि कई बार एक की गलती सभी की गलती बन जाती है जो अनुचित है। यह तो साथ लेकर डूबने और साथ लेकर तैरने वाली बात है। कई बार मन्त्रियों को दूसरे की गलत नीति का भी समर्थन इस भय के कारण करना पड़ता है कि कहीं आपसी एकता भंग न हो जाए। यह सिद्धान्त मन्त्रियों में एक अज्ञात भय का वातावरण पैदा करता है। कई बार मन्त्रिमण्डल के निर्णय को मन्त्री विशेष का निर्णय बताकर इस सिद्धान्त का दुरुपयोग किया जाता है। कई बार मन्त्रिमण्डल किसी मन्त्री को अपने गलत काम के लिए दोषी ठहराकर उसका त्यागपत्र मांग लेता है और अपनी सामूहिक जिम्मेदारी से पल्ला झाड़ लेता है। 1935 में सर सैमुअल होर को इसी के तहत बलि का बकरा बनाया गया था, जबकि इटली के साथ इंग्लैण्ड द्वारा किए जाने वाले समझौता का प्रारूप समस्त मन्त्रिमण्डल ने ही तैयार किया था। संसद द्वारा आलोचना किए जाने पर होर को ही इसका दोषी बताकर, उसका त्यागपत्र दिला दिया गया। इस तरह की व्यवस्था कई दोषों को जन्म देती है। इससे मन्त्रिमण्डलीय तानाशाही उभरती है और व्यक्तिगत उत्तरदायित्व की भावना कमजोर होती है। इससे मन्त्रिगणों की आत्मा की आवाज सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त के बोझ के नीचे दब जाती है। कई बार सम्राट तथा संसद को सामूहिक शक्ति द्वारा लिए गए गलत व अनुचित निर्णय भी स्वीकार करने पड़ते हैं।

(6) गोपनीयता :- गुप्त निर्णय लेना ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल की प्रमुख विशेषता है। इसमें समस्त मन्त्रिमण्डलीय कार्यवाही को गुप्त रखा जाता है। पद ग्रहण करते समय ही सभी मन्त्रियों को पर व गोपनियता की शपथ लेनी पड़ती है। मन्त्रिमण्डल की बैठकों के दौरान सदस्यों में परस्पर विरोध भी हो जाए तो भी उसे गुप्त ही रखा जाता है। सार्वजनिक रूप से मन्त्रिगण

केवल उन्हीं बातों को प्रकट करते हैं जो मन्त्रिमण्उल के निर्णयों के अनुकूल हों। मन्त्रिमण्डल की गोपनियता को विधि और अभिसमयों ने भी संरक्षित किया है। 1917 तक मन्त्रिमण्डल की कार्यवाहियों का कोई रिकार्ड नहीं रखा जाता था। 1917 में प्रधानमन्त्री लॉयड जार्ज ने एक मन्त्रिमण्डलीय सचिवालय की स्थापना की जिसका कार्य मन्त्रिमण्डल की बैठकों का रिकार्ड रखना था। लेकिन इसका कार्य भी समस्त रिकार्ड को गोपनियता के तहत ही रखना था। यही व्यवस्था आज भी है। अतः गोपनियता ब्रिटिश मन्त्रिमण्डलीय प्रणाली की महत्वपूर्ण विशेषता है।

(7) मन्त्रियों का संसद सदस्य होना :- ब्रिटिश मन्त्रिमण्डलीय प्रणाली की प्रमुख विशेषता यह है कि मन्त्रियों का विधानमण्डल से सम्बन्ध होने के कारण मन्त्रिमण्डल के सभी सदस्य संसद के किसी न किसी सदन के सदस्य अवश्य होते हैं। यदि कोई व्यक्ति संसद के किसी भी सदन का सदस्य न हो और उसे मन्त्री बना दिया जाए तो उसे 6 महीने के अन्दर किसी न किसी सदन का सदस्य अवश्य बनना पड़ता है, वरना अपने पद से उसे त्यागपत्र देना पड़ता है। प्रत्येक व्यक्ति का संसद का सदस्य होना इसलिए आवश्यक है, क्योंकि उसे अपनी नीति तथा कार्यों की व्याख्या जनप्रतिनिधियो के सामने करनी पड़ती हैं। यदि ऐसा न हो तो संसद का उन पर नियन्त्रण कम हो जाएगा।

(8) मन्त्रियों का व्यक्तिगत उत्तरदायित्व :- ब्रिटिश शासन प्रणाली में मन्त्रिमण्डलीय व्यवस्था के अन्तर्गत सामूहिक उत्तरदायित्व के साथ-साथ सभी मन्त्रियों का व्यक्तिगत उत्तरदायित्व भी है। यदि अनैतिकता या भ्रष्टाचार के मामले में कोई मन्त्री दोषी पाया जाता है तो उस मन्त्री को ही त्यागपत्र देना पड़ता है, सम्पूर्ण मन्त्रिमण्डल को नहीं। इसके पीछे मूल निहितार्थ यह है कि प्रत्येक मन्त्री अपने-अपने विभाग का अध्यक्ष होता है। यदि उससे प्रशासन चलाने में कोई गलती हो जाए तथा वह अपने विभाग के बारे में मन्त्रिमण्डल को गलत जानकारी दे तो उसके लिए उसका ही दोष है। 1947 में डा० हयू डाल्टन को बजट की कुछ मदें समय से पूर्व ही लीक हो जाने पर व्यक्तिगत उत्तरदायित्व के कारण अपने पद से त्यागपत्र देना पड़ा था।

(9) मन्त्रिमण्डल की अनिश्चित अवधि :- ब्रिटिश मन्त्रिमण्उल की अवधि अनिश्चित है। वह अपने पद पर उसी समय तक रह सकता है, जब तक उसे लोकसभा या कॉमन्स सदन में बहुमत प्राप्त है। यद्यपि कॉमन्स सदन की अवधि पांच वर्ष है। यदि मन्त्रिमण्डल का कॉमन्स सदन में विश्वास मत प्राप्त रहता है तो वह भी पांच वर्ष तक ही अपने पद पर बना रह सकता है। यदि वह कॉमन्स सदन में विश्वास मत खो देता है तो संसद भी भंग हो जाती है और फिर से नए चुनाव कराए जाते हैं। चुनाव के बाद नए मन्त्रिमण्डल का गठन होता है। अतः ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल की अवधि अनिश्चित है।

(10) प्रधानमन्त्री कॉमन्स सदन या लोकसभा को भंग कर सकता है :- ब्रिटेन में मन्त्रिमण्डल संसद के प्रति उत्तरदायी है। वहां पर संसद की सर्वोच्चता पर मन्त्रिमण्डल की तानाशाही रूपी एक अस्त्र एक प्रतिबन्ध है। यदि संसद में मन्त्रिमण्डल विश्वासमत खो देता है तो प्रधानमन्त्री सम्राट से कहकर लोकसभा (कॉमन्स सदन) को भंग करवा सकता है। मन्त्रिमण्डल इस अधिकार का प्रयोग तभी कर सकता है जब उसे विश्वास हो जाए कि लोकसभा सर्वथा अवांछनीय कार्य कर रही है। अविश्वास का प्रस्ताव पास होने पर प्रधानमन्त्री स्वयं त्यागपत्र देने की बजाय सम्राट को कॉमन्स सदन को भग करने की सलाह दे सकता है। स्थापित परम्परा के अनुसार सम्राट उसकी सलाह मानने को बाध्य होता है।

ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल का संगठन

(Organisation of British Cabinet)

ब्रिटेन में आम चुनावों के बाद जिस दल को लोकसभा या कामन्स सदन में बहुमत प्राप्त होता है, उस दल के नेता को सम्राट प्रधानमन्त्री की नियुक्ति के बाद मन्त्रिमण्डल के गठन की वास्तविक प्रक्रिया शुरु होती है। मन्त्रिमण्डल का गठन करना प्रधानमन्त्री का महत्वपूर्ण अधिकार है। पहले तो प्रधानमन्त्री सभी विभागों की सूची तैयार करता है और प्रत्येक विभाग के लिए एक मन्त्री की नियुक्ति करता है। यह प्रधानमन्त्री का स्वतन्त्र निर्णय होता है कि वह किसे मन्त्रिमण्डल में ले या न ले। प्रायः सभी मन्त्री कॉमन्स सदन से ही लिए जाते हैं, लेकिन कम महत्वपूर्ण विभाग लार्डस सभा के सदस्यों को भी दे दिये जाते हैं। ब्रिटेन में मन्त्रीमण्डल में कुछ मन्त्रियों को विभागों का मन्त्री बनाया जाता है तथा कुछ बिना विभागों के मन्त्री भी होते हैं। जिन मन्त्रियों को शिक्षा, गृह, अर्थ, विदेश आदि विभाग दिये जाते हैं वे विभाग-सहित मन्त्री कहलाते हैं। जिनको प्रिवि कौंसिल का अध्यक्ष, प्रिवि सील तथा लार्ड चांसलर बनाया जाता है, वे विभाग-रहित मन्त्री होते हैं। कई बार ऐसे व्यक्तियों को भी मन्त्री बना दिया जाता है जो किसी भी सदन के सदस्य नहीं होते। मन्त्रिमण्डल में कुछ मन्त्री राज्य मन्त्री होते हैं जिनकी स्थति पूर्ण

मन्त्री तथा संसदीय सचिव के बीच की होती है। इसके अतिरिक्त मन्त्रिमण्डल में संसदीय सचिव व राजमहल के मन्त्री भी होते हैं। मन्त्रिमण्डल का आकार बड़ा या छोटा रखना प्रधानमन्त्री का कार्य है। ब्रिटेन में छाया मन्त्रिमण्डल की व्यवस्था भी है। यह मन्त्रिमण्डल विरोधी दल का होता है जो सत्तारूढ दल के मन्त्रियों के समक्ष होता है। यह मन्त्रिमण्डल सत्तारूढ़ दल के मन्त्रियों पर अपनी नजर रखता है और आवश्यकता पड़ने पर सत्तारूढ़ होकर शासन चलाने के लिए तैयार रहता है। कभी कभी युद्ध या राष्ट्रीय संकट के समय युद्ध तथा संयुक्त मन्त्रिमण्डल की स्थापना भी कर ली जाती है, लेकिन इनका अस्तित्व अस्थाई है। परिस्थिति विशेष के बदलने पर ये लुप्त हो जाते हैं। 1931 की आर्थिक महामंदी का सामना करने के लिए ब्रिटेन में संयुक्त मन्त्रिमण्डल बना था। इसी तरह 1940 में चर्चिल ने भी पांच मन्त्रियों का युद्ध मन्त्रिकण्डल बनाया था। ब्रिटेन में मन्त्रिमण्डल के अन्दर भी मन्त्रिमण्डल होता है जिसे आंतरिक मन्त्रिमण्डल कहा जाता है। यह मन्त्रिमण्डल काफी छोटा होता है। इसका निर्माण प्रधानमन्त्री द्वारा सम्राट की सलाह के बिना ही रहस्यमयी तरीके से किया जाता है। देश की शासन सम्बन्धी सर्वोच्च नीतियों पर यही मन्त्रिमण्डल निर्णय लेता है।

ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल के कार्य

(Functions of British Cabinet)

ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल एक वास्तविक कार्यपालिका है। वह ब्रिटिश ताज की शक्तियों का वास्तविक प्रयोग करती है। राजा द्वारा किए गए समस्त कार्य मन्त्रिमण्डल की सहमति से व्यवहारिक बनते हैं। ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल ही शासन की आधारशिला है। यह शासन व प्रशासन सम्बन्धी समस्त कार्य करता है। इसके पास कार्यपालक शक्तियों के साथ-साथ विद्यायी, न्यायिक व वित्तीय शक्तियां भी हैं। रूमरी ने इसे सरकार का निर्देशक यन्त्र कहा है। ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल द्वारा किए जाने वाले कार्य निम्नलिखित हैं :

(1) कार्यपालिका सम्बन्धी कार्य (Executive Functions) :- ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल ब्रिटेन की सर्वोच्च व वास्तविक कार्यपालिका है। मन्त्रिमण्डल द्वारा कार्यपालिका के रूप में किए जाने वाले कार्य बहुत महत्वपूर्ण हैं। इसके द्वारा कार्यपालिका के रूप में किए जाने वाले कार्य निम्नलिखित हैं :-

(I) राष्ट्रीय नीति का निर्माण करना।

(II) सरकार की नीति, युद्ध एवं शान्ति सम्बन्धी प्रश्नों पर निर्णय करना।

(III) प्रशासनिक विभागों पर निर्धारण करना।

(IV) विदेश नीति का निर्धारण करना।

(V) महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्तियां करना।

मन्त्रिमण्डल देश की आर्थिक व सामाजिक परिस्थितियों को ध्यान में रखकर राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय नीति को तैयार करता है और उस पर संसद की स्वीकृति प्राप्त करता है। यह विभिन्न प्रशासनिक विभागों पर नियन्त्रण रखता है। प्रदत्त व्यवस्था की व्यवस्था ने इसकी शक्तियों में अपार वृद्धि की है। इसी कारण इसे छोटी व्यवस्थापिका भी कहा जाता है। देश के महत्वपूर्ण पदों पर की जाने वाली नियुक्तियां वास्तव में मन्त्रिमण्डल ही करता है, सम्राट तो केवल उन पर अपनी औपचारिक स्वीकृति देता है।

(2) विधायी या व्यवस्थापिका सम्बन्धी कार्य (Legislative Functions) :- ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल विधायनी कार्य भी करता है। संसद कानून का निर्माण मन्त्रिमण्डल की इच्छा से ही करती है। मन्त्रिमण्डल की सहमति के बिना संसद विधि-निर्माण का कोई भी कार्य नहीं कर सकती। मन्त्रिमण्डल के सदस्य ही संसद में सभी तरह के विधेयक प्रस्तुत करते हैं और उनको पारित करवाते हैं। कोई भी विधेयक उस समय तक कानून का रूप नहीं ले सकता, जब तक उस पर मन्त्रिमण्डल की स्वीकृति न मिल जास। संसद के सामने सरकारी नीति प्रस्तुत करना, प्रश्नों के उत्तर देना तथा आवश्यक कानूनों का निर्माण करना मन्त्रिमडल का ही कार्य है। संसद की अवधि में कमी करना, वृद्धि करना, अधिवेशन बुलाया या भंग करना परोक्ष रूप में मन्त्रिमण्डल का ही कार्य है। बेजहाट ने कहा है कि मन्त्रिमण्डल वह कड़ी है जो कार्यपालिका को विधायिका से जोड़ती है। इसके पीछे यही तथ्य दिया है कि वास्तविक कार्यपालिका के रूप में मन्त्रिमण्डल विधायिका के कार्य भी करता है। प्रदत्त व्यवस्थापिका के कार्य भी मन्त्रिमण्डल ही करता है।

(3) वित्तीय कार्य (Financial Functions) :- देश का बजट वित्तमन्त्री द्वारा मन्त्रिमण्डल की मदद से ही तैयार किया जाता

है। राज्य के समस्त व्यय के लिए मन्त्रिमण्डल ही उत्तरदायी होता है और उस व्यय की पूर्ति के लिए राजस्व एकत्रित करने की नीति तैयार करता है। मन्त्रिमण्डल ही यह निर्णय करता है कि राजस्व कैसे एकत्रित किया जाएगा, कौन से नए कर लगाए जायेंगे तथा उस धन का उपयोग कैसे होगा। वार्षिक बजट पर मन्त्रिमण्डल का पूरा नियन्त्रण होता है। संचित निधि से व्यय करने का अधिकार भी मन्त्रिमण्डल को ही होता है। बाहर से ऋण लेना व देना भी मन्त्रिमण्डल की अनुमति से ही सरकार द्वारा किया जाता है। संसद में बहुमत होने के कारण मन्त्रिमण्डल अपने वित्तीय नियमों पर स्वीकृति आसानी से प्राप्त कर लेता है।

(4) न्यायिक कार्य (Judicial Functions) :- वैसे तो ब्रिटेन में न्यायधीशों की नियुक्ति सम्राट द्वारा लार्ड चान्सलर की सलाह से की जाती है। लार्ड चान्सलर मन्त्रिमण्डल का ही सदस्य होता है और वह न्यायिक संगठन का भी सदस्य होता है। इसी तरह क्षमादान का अधिकार, दण्ड स्थगन आदि शक्तियों का प्रयोग भी सम्राट मन्त्रिमण्डल की सलाह से ही करता है। इस तरह सम्राट द्वारा न्यायिक शक्तियों का प्रयोग मन्त्रिमण्डल के परामर्श से ही किया जाता है।

(5) सलाहकारी कार्य (Advisory Functions) :- वर्तमान काल में ब्रिटेन में सम्राट नाममात्र की कार्यपालिका है। सम्राट कुछ मामलों को छोड़कर शेष सभी विषयों पर मन्त्रिमण्डल की सलाह लेकर ही कार्य करता है। जब सम्राट मन्त्रिमण्डल से सलाह लेता है तो सलाह देना मन्त्रिमण्डल का कर्तव्य बनता है। ब्रिटेन के इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण हैं जब सम्राट ने मन्त्रिमण्डल की सलाह ली है और मन्त्रिमण्डल ने हर कदम पर सम्राट को सलाह दी है।

(6) समन्वयकारी कार्य (Co-ordinatory Functions) :- ब्रिटेन में शासन व प्रशासन कई भागों में बंटा होता है। प्रत्येक विभाग एक मन्त्री के अधीन होता है। कई बार ऐसी समस्या उत्पन्न हो जाती है कि उसका सम्बन्ध दूसरे विभागों से भी होता है। ऐसे में मन्त्रिमण्डल उस समस्या के समाधान के लिए उचित मार्गदर्शन देता है और विभिन्न विभागों में समन्वय कायम करता है। उदाहरण के लिए वित्त-विभाग का अन्य सभी विभागों पर प्रभाव पड़ता है। इसलिए संगत नीति-निर्माण में मन्त्रिमण्डल सभी विभागों के हितों के लिए स्वयं भाग लेता है।

(7) नियुक्ति सम्बन्धी कार्य (Functions Regarding Appointments) :- वैसे तो यह मन्त्रिमण्डल का कार्यपालक कार्य है, लेकिन फिर भी इसे अलग से समझना आवश्यक है। यद्यपि सभी महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्तियां राजा ही करता है, लेकिन वह ऐसा करते समय मन्त्रिमण्डल की सलाह अवश्य लेता है। सम्राट की नियुक्ति सम्बन्धी अधिकार वास्तव में मन्त्रिमण्डल का ही अधिकार है। राजकोष के सचिव, विदेशों में भेजे जाने वाले राजदूतों, मुख्य योजना अधिकार, गवर्नर जनरल, वायसराय, न्यायधीशों आदि की नियुक्ति मन्त्रिमण्डल ही करता है, सम्राट तो उस पर अपनी औपचारिक मोहर लगाता है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय नीति का निर्माण करता है तथा विदेशी नीति निर्धारित करता है। देश में शांति व सुरक्षा बनाए रखने के लिए सम्राट को सैनिक शक्तियों का प्रयोग करने की अनुमति देता है। प्रशासन पर नियन्त्रण रखने तथा कानून सम्बन्धी कार्य भी वही करता है। उसका देश के वित्त पर पूरा नियन्त्रण होता है। उसकी अनुमति कि बिना कोई खर्च नहीं किया जा सकता। देश के महत्वपूर्ण पदों पर सभी नियुक्तियां उसकी सहमति से ही होती हैं। इसी कारण कुछ विद्वान मन्त्रिमण्डल के कार्यों को मन्त्रिमण्डल की तानाशाही का नाम देने लगे हैं।

मन्त्रिमण्डल की तानाशाही

(Dictatorship of the Cabinet)

ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल की शक्तियों और उसके द्वारा किए जाने वाले कार्यों का विश्लेषण करने के बाद आधुनिक समय में इस विचार का प्रतिपादन हुआ है कि ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल तानाशाह है। इसी कारण आज की सदी को मन्त्रिमण्डलीय अधिनायकत्व की सदी कहा जाने लगा है। कुछ विद्वानों का विचार है कि इस अधिनायकत्व के बीज 1688 की शानदार क्रान्ति ने ही बो दिये थे जब राजा की शक्तियां छीनकर ताज और संसद को दे दी थी। कालांतर में मन्त्रिमण्डल संसद से इतना अधिक शक्तिशाली हो गया कि वह ताज की समस्त शक्तियों पर अपना अधिकार जमा बैठा। इसी कारण कीथ ने कहा है-"संसद के प्रति ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल की स्थिति तानाशाही है।" मुनरो का कहना है कि "लोकसभा मन्त्रिमण्डल की इच्छा के अनुसार कार्य करती है।" वस्तुतः लोकसभा का मन्त्रिमण्डल पर नियन्त्रण न होकर, मन्त्रिमण्डल का लोकसभा पर ही नियन्त्रण है। आज मन्त्रिमण्डल ताज की छाया में राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में असीम शक्तियों का प्रयोग करता है। उसने संसद के कार्य पर

भी अपना अधिकार जमा लिया है। दलीय अनुशासन, प्रदत्त विधि-निर्माण, प्रशासकीय न्याय, मन्त्रिमण्डलीय उत्तरदायित्व आदि सिद्धान्तों ने मन्त्रिमण्डल को अत्यधिक शक्तिशाली बना दिया है। सिद्धान्त में तो ब्रिटिश संसद शक्तिशाली है, लेकिन व्यवहार में मन्त्रिमण्डल। व्यवहार में आज तक 1895 के बाद किसी भी सरकार के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव पास नहीं हुआ। रेम्जे म्योर ने कहा है-"एक निकाय जो इतनी अधिक शक्तियों का प्रयोग करता है, उसे सर्वशक्तिमान ही कहा जाएगा चाहे व्यवहार में वह अपनी सत्ता के प्रयोग में कठिनाई ही अनुभव क्यों न करे।" इस तरह की चर्चा अन्य विद्वानों ने भी की है। इस चर्चा के पीछे कुछ कारण निहित हैं, उन पर विचार करना जरूरी है।

ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल के अधिनायकत्व के कारण

(Reasons for the Dictatorship of British Cabinet)

ब्रिटिश मन्त्रिमण्डलीय तानाशाही के पीछे निम्नलिखित कारण हैं :'

(1) कठोर दलीय अनुशासन (Rigid Political Discipline) :- ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल की शक्तियों में वृद्धि का मुख्य कारण कठोर दलीय अनुशासन है। ब्रिटेन में द्वि-दलीय प्रणाली है। वहां पर दल से बाहर रहकर चुनाव जीतना कठिन है। आज तक जितने भी चुनाव लड़े गए हैं, वे दल के अनुशासन के अन्दर रहकर ही लड़े गए हैं। राजनीतिक दलों के बढ़ते महत्व ने दल प्रणाली को कठोर बना दिया है। दल के सदस्यों को दल की इच्छानुसार ही चलना पड़ता है। ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल उसी दल का होता है जिसे लोकसभा में बहुमत होता है। संसद में कोई भी सदस्य दलीय सचेतकों (Whips) की अवहेलना नहीं कर सकता। आज सम्पूर्ण दलीय प्रणाली का व्यावसायीकरण हो चुका है। आज राजनीतिक दल सेना के समान कठोर अनुशासन रखने को विवश है। लास्की ने लिखा है-"ब्रिटेन में राजनीतिक दलों के कठोर अनुशासन ने मन्त्रिमण्डल के हाथ मजबूत किए हैं।' आज संसद सदस्यों की अन्तरात्मा मर चुकी है। दल से निकाले जाने के भय से वे दलीय अनुशासन में रहना पसन्द करते हैं।

(2) कॉमन्स सदन को भंग करवाने की शक्ति (Power to get the House of Commons Dissolved) :- ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल के पास लोक सदन अथवा कामन्स सदन को भंग करवाने की शक्ति है। ब्रिटिश शासन प्रणाली में मन्त्रिमण्डल के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पास हो जाए तो उसे तुरन्त त्यागपत्र देने की जरूरत नहीं है। प्रधानमन्त्री जब चाहे तब लोकसदन को भंग करने की सिफारिश सम्राट से कर सकता है। यदि सम्राट सलाह न माने तो मन्त्रिमण्डल स्वयं त्यागपत्र दे सकता है। ऐसा होने से लोकसदन का संसद में बहुमत समाप्त हो जाएगा और फिर चुनाव कराने पड़ेंगे। चुनावी खर्च को देखते हुए संसद मन्त्रिमण्डल का कभी विरोध नही करते हैं। वे उसकी हर बात को स्वीकार कर ही लेते हैं। कीथ का कहना है कि यह विरोधी दल पर प्रभाव बनाने का महत्वपूर्ण तरीका है। बेजहाट ने लिखा है-"मन्त्रिमण्डल हाऊस ऑफ कामन्स से ही अपनी शक्ति प्रापत करता है और उसे ही नष्ट करने की शक्ति भी रखता है।" इसी कारण संसद सदस्यों को मन्त्रिमण्डल से सदा भय ही बना रहता है।

(3) प्रशासकीय न्याय (Administrative Justice) :- प्रशासकीय न्याय की व्यवस्था ने मन्त्रिमण्डल को शक्तिशाली बना दिया है। आज कार्यपालिका के पास न्याय करने की शक्ति भी आ गई है। ब्रिटेन में सभी मन्त्रियों का अपने-अपने विभागों पर पूर्ण नियन्त्रण होता है। यदि कोई विभागीय समस्या उत्पन्न होती है तो सम्बन्धित विभाग के मन्त्री को न्याय करने का पूरा अधिकार है। उस न्याय को किसी भी न्यायालय में कोई चुनौती नहीं दे सकता। 1913 में पारित 'मार्ग यातायात अधिनियम' के तहत ब्रिटिश परिवहन मन्त्री को यह अधिकार प्राप्त है कि वह चालक लाइसैंस सम्बन्धी अपील सुन सकता है और लाइसैंस जारी करने के आदेश दे सकता है। इसी तरह स्वास्थ्य मन्त्री वृद्धावस्था पैंशन सम्बन्धी अपील सुन सकता है। अतः इस तरह की न्यायिक शक्तियों ने मन्त्रिमण्डल को शक्तिशाली बना दिया है।

(4) सामूहिक उत्तरदायित्व (Collective Responsibility) :- ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल अपने कार्यों के लिए सामूहिक रूप से संसद के प्रति उत्तरदायी है। सभी मन्त्रीगण एक टीम की तरह कार्य करते हैं। यदि संसद में किसी एक मन्त्री के विरुद्ध आरोप की बात साबित हो जाए तो समस्त मन्त्रिमण्डल को त्यागपत्र देना पड़ सकता है। कई अवसरों पर ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल ने ऐसे मन्त्रियों को त्यागपत्र देने पर मजबूर किया जो भ्रष्टाचार तथा अनैतिकता के दोषी रहे थे। संसद में जब एक मन्त्री किसी समस्या पर कुछ बोलने में असमर्थ होता है तो दूसरे मन्त्री उसकी सहायता करते हैं। इस तरह सब साथ तैरते हैं और साथ डूबते हैं। सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त की स्वस्थ राजनीतिक परम्परा ने जनता का

दिल जीत रखा है। उसे अपने मन्त्रियों पर पूरा भरोसा रहता है। यही भरोसा ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल को महत्वपूर्ण बनाता है।

(5) प्रदत्त व्यवस्थापन (Delegated Legislation) :- आधुनिक समय में ब्रिटिश शासन प्रणाली के अन्तर्गत कानून निर्माण के क्षेत्र में संसद की शक्ति कम हो गई है। संसद के पास कार्य की अधिकता ने प्रदत्त व्यवस्थापन के तहत मन्त्रिमण्डल को कानून-निर्माण करने की शक्ति प्रदान की है। कानूनों की तकनीकी जटिलता ने विभिन्न बोर्डों को कानून बनाने के लिए अधिकृत किया है। इन बोर्डों पर मन्त्रियों का ही नियन्त्रण रहता है। आज महत्वपूर्ण विधेयक भी मन्त्रियों द्वारा ही पेश किए जाने लगे हैं। प्रतिवर्ष मन्त्रिमण्डल की ओर से हजारों प्रशासकीय आदेश जारी किए जाते हैं। आज कानूनों का प्रारूप मन्त्रिमण्डल ही तैयार करता है। वास्तविक कार्यपालिका होने के नाते यह विधायिका के कार्य भी करता है क्योंकि प्रदत्त व्यवस्थापन की व्यवस्था ने इसे शक्तिशाली बना दिया है।

(6) संसदीय जीवन स्तर (Conditions of Parliamentary Life) :- आधुनिक समय में ब्रिटेन में संसदीय कार्य-व्यवहार भी मन्त्रिमण्डल पर प्रभावशाली नियन्त्रण स्थापित करने में असफल रहा है। आज संसद की स्थिति ऐसी नहीं है कि वह मन्त्रिमण्डल पर नियन्त्रण रख सके। संसद के सत्र कई महीने बाद होते हैं। इसी बीच किसी को यह पता नहीं होता कि मन्त्रिमण्डल क्या कर रहा है। इसके अतिरिक्त संसद सदस्य अपने व्यक्तिगत स्वार्थों में इतने उलझे होते हैं कि वे मन्त्रिमण्डलीय व्यवहार के प्रति आंख बंद करना ही उचित समझते हैं। जब संसद का सत्र चलता है, तब भी संसद सदस्य आमोद-प्रमोद में ही डूबे रहते हैं। कई बार तो वे अपने कर्तव्यों तक को भूल जाते हैं। इस तरह का संसदीय व्यवहार जागरूक मन्त्रिमण्डलीय व्यवस्था को अधिक महत्वपूर्ण बना देता है।

(7) मन्त्रिमण्डल का वित्त पर नियन्त्रण (Cabinet's Control over Finance) :- देश के सम्पूर्ण वित्त पर मन्त्रिमण्डल का ही नियन्त्रण होता है। लोकसदन में बहुमत होने के कारण मन्त्रिमण्डल संसद में अपनी धन सम्बन्धी हर नीति को यपास करवाने में सफल रहता है। संसद में वित्त-विधेयक वित्त मन्त्री द्वारा ही पेश किया जाता है। यद्यपि संसद मंत्रीमण्डल द्वारा प्रस्तुत वित्तीय बिलों को रद्द भी कर सकती है, लेकिन लोक सदन में बहुमत होने के कारण मन्त्रिमण्डल के विरुद्ध जाने का दु:साहस वह नहीं करती। इसी कारण ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल को आर्थिक शक्ति का भी स्वामी माना जाता है।

(8) दो-दलीय प्रणाली (Two Party System) :- ब्रिटेन में लगातार दो दल ही अदल-बदलकर सत्ता पर काबिज होते आए हैं। अन्य राजनीतिक दलों का वहां कोई महत्व नहीं है। ब्रिटेन में अनुदार और श्रमिक दलों के ही मन्त्रिमण्डल बनते रहे हैं। विरोधी विचारधारा के चलते हुए भी ये दल संसद में मन्त्रिमण्डल का ही साथ देते हैं। जिस दल को लोकसदन में बहुमत प्राप्त होता है, वह दल बहुमत के कारण अपनी नीतियों को लागू करने में प्राय: सफल ही रहता है। बहुमत के चलते मन्त्रिमण्डल को विरोधी दल की तरफ से कोई खतरा भी नहीं रहता। यदि वहां बहुदलय प्रणाली होती तो सांझा मन्त्रिमण्डल बनने की संभावना अधिक हो सकती थी। भारत में मन्त्रिमण्डलीय प्रणाली का कमजोर होना बहुदलीय प्रणाली का ही परिणाम है।

(9) राष्ट्रीय आपात (National Emergency) :- राष्ट्रीय संकट के समय शासन की शक्ति थोड़े से व्यक्तियों के हाथों में आ जाती है। युद्ध के समय जनता के अधिकार मन्त्रिमण्डल के हाथों में चले जाते हैं। इस दौरान कार्यपालिका की शक्तियां भी सिकुड़ जाती हैं। इस दौरान समस्त निर्णय मन्त्रिमण्डल ही लेता है। इस तरह के अवसर ब्रिटेन में कई बार आए हैं। जब मन्त्रिमण्डल ने महत्वपूर्ण निर्णय लेकर ब्रिटिश जनता का विश्व में सम्मान बढ़ाया है। इसी कारण जनता मन्त्रिमण्डल तथा प्रधानमन्त्री की संस्था में पूर्ण विश्वास रखती है।

ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल की तानाशाही का वास्तविक रूप

(Practical Form of the Dictatorship of British Cabinet)

यदि उपरोक्त विवेचन के आधार पर निष्कर्ष प्रस्तुत किया जाए तो यह बात उभरती है कि ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल की तानाशाही संवैधानिक तानाशाही है। मन्त्रिमण्डल को जो शक्तियां प्राप्त हुई हैं वे संविधान व राजनीतिक परम्पराओं की ही देन है। यह मानना हमारी भूल है कि ब्रिटिश प्रजातन्त्र में शक्ति जन-प्रतिनिधियों के हाथ से निकलकर मन्त्रिमण्डल के हाथ में आ गई है। जो अधिनायकवाद हमें दिखाई देता है, वह स्थाई नहीं है। उस अधिनायकत्व की ब्रिटिश शासन-व्यवस्था को महती आवश्यकता है। लास्की, लावेल तथा एमरी आदि विद्वानों ने इस अधिनायकत्व को अल्पकालिक माना है। लावेल ने कहा है-"ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल की निरंकुशता वह निरंकुशता है जिस, अधिकतर प्रचार के साथ प्रयोग में लाया जाता है जो सदैव

आलोचना की कसौटी पर कसी रहती है और जनमत के अनुकूल ढलती है तथा जिस अविश्वास प्रस्ताव और आगामी चुनाव का भय हमेशा बना रहता है।" पिछले कुछ वर्षों में विश्व युद्ध, आर्थिक संकट तथा लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा ने कार्यपालिका की शक्ति में अपार वृद्धि कर दी है। इसलिए मन्त्रिमण्डल का भी शक्ति सम्पन्न होना कोई बुरी बात नहीं है। कोई भी मन्त्रिमण्डल चाहे कितना ही शक्तिशाली क्यों न हो, जनमत की उपेक्षा नहीं कर सकता। संसदीय अभिसमयों तथा अविश्वास प्रस्तावों ने मन्त्रिमण्डल को अधिनायकवादी बनने से रोका है। विरोधी दल का अंकुश भी मन्त्रिमण्डीय तानाशाही पर लगा रहता है। 1936 में सेमुअल होर को प्रबल जनविरोध के कारण अपना पद छोड़ना पड़ा था। इस तरह की घटनाओं से साबित होता है कि कोई भी सरकार जनमत की अवहेलना नहीं कर सकती। कुछ विद्वानों का मानना हे कि ब्रिटेन में स्वस्थ राजनीतिक परम्पराओं, कानून के शासन, जनमत, विरोधी दल आदि के रहते मन्त्रिमण्डलीय् तानाशाही की बात करना मूर्खता है। उन विद्वानों की बात में काफी दम है। इसलिए यह बात तो सत्य हो सकती है कि ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल शक्तिशाली है, लेकिन यह कदापि सत्य नहीं हो सकता कि वह तानाशाही है। आज ब्रिटेन में संसदीय परम्पराएं, सदन की प्रथाएं व लोकमत इतना प्रभावी है कि मन्त्रिमण्डलीय तानाशाही की कल्पना बेकार है।

ब्रिटिश प्रधानमन्त्री

(The British Prime Minister)

जिस तरह राजा राज्य का प्रतीक है, उसी तरह प्रधानमन्त्री सरकार का प्रतीक है। ब्रिटेन में प्रधानमन्त्री का पद संसार के सभी संवैधानिक राजनीतिक पदों में से अधिक शक्तिशाली है। ब्रिटिश प्रधानमन्त्री का पद भी बुद्धि और संयोग की संतान है। राबर्ट वालपोल को सबसे पहला प्रधानमन्त्री माना जाता है। जेनिग्स ने प्रधानमन्त्री को सम्पूर्ण संविधान की आधारशिला कहा है। प्रधानमन्त्री की महत्वपूर्ण स्थिति के कारण फाइनर ने मन्त्रिमण्डलीय सरकार को प्रधानमन्त्रीय सरकार कहा है। ताज की समस्त शक्तियों का प्रयोग प्रधानमन्त्री ही करता है। वहीं वास्तविक कार्यपालक है जिसे सरकार की धुरी माना जाता है। उसे सितारों में चन्द्रमा की संज्ञा भी दी जाती है।

प्रधानमन्त्री के पद की उत्पत्ति व विकास

(Origin and Development of the Office of Prime Minister)

प्रधानमन्त्री का पद परम्पराओं व संयोग का परिणाम है। कहा जाता है कि जार्ज प्रथम और जार्ज द्वितीय दोनों को अंग्रेजी भाषा का ज्ञान नहीं था। इसी कारण उन्होंने स्वयं मन्त्रिमण्डल की बैठकों में भाग लेने की बजाय सर राबर्ट वालपोल को मन्त्रिमण्डल की बैठकों की अध्यक्षता करने का उत्तरदायित्व सौंपा। वालपोल ने 10, डाऊनिंग स्ट्रीट में अपना कार्यालय बनाया जो आज भी प्रधानमन्त्री का निवास स्थान है। यहां से प्रधानमन्त्री पद की उत्पत्ति मानी जाती है। कुछ विद्वान उसे प्रथम प्रधानमन्त्री भी कहते हैं। लेकिन प्रधानमन्त्री शब्द का प्रयोग प्रथम बार 1878 में बर्लिन सन्धि में प्रयोग हुआ। आगे चलकर इस शब्द का प्रयोग किया जाने लगा। लेकिन इस पद को 1937 में 'ताज अधिनियम' के तहत ही मान्यता प्राप्त हुई।

प्रधानमन्त्री की नियुक्ति

(Appointment of Prime Minister)

ब्रिटेन में प्रधानमन्त्री की नियुक्ति सम्राट द्वारा की जाती है। लेकिन परम्परा के अनुसार सम्राट कामन्स सदन (लोकसभा) में बहुमत प्राप्त दल के नेता को ही प्रधानमन्त्री पद के लिए आमन्त्रित करता है। मन्त्रिमण्डलीय व्यवस्था के जन्म से पहले राजा किसी भी व्यक्ति को यह पद दे देता था। आज ब्रिटिश राजतन्त्र की स्वस्थ राजनीतिक परम्परा के अनुसार लोकसदन में बहुमत प्राप्त दल का नेता ही इस पद पर आसीन हो सकता है। लेकिन कुछ ऐसी परिस्थितियां भी हैं जब सम्राट स्वेच्छा से किसी भी व्यक्ति को प्रधानमन्त्री बना सकता है। ऐसा तभी होता है जब प्रधानमन्त्री स्वयं त्यागपत्र दे दे, उनकी मृत्यु हो जाए या कामन्स सदन में उसका बहुमत न रहे।

प्रधानमन्त्री के पद के लिए योग्यताएं

(Qualifications for the office of Prime Minister)

यद्यपि संसद या संविधान द्वारा इस पद के लिए कोई योग्यता निर्धारित नहीं की है। लेकिन स्थापित परम्परा के अनुसार इस

पद पर वही व्यक्ति बैठ सकता है जो कामन्स सदन का सदस्य हो और उसे बहुमत प्राप्त हो। उसके लिए व्यवहार में कुछ निजी गुणों का होना भी आवश्यक है। मुनरो ने कहा है-"प्रधानमन्त्री एक अच्छे घराने में पैदा हुआ, सुशिक्षित और अच्छी आर्थिक स्थिति वाला व्यक्ति होता है तो पहले राजनीति में भाग लेना शुरु करता है और बाद में राजनीति को ही पेशे के रूप में अपना लेता है।" इस पद तक वही व्यक्ति पहुंच सकता है जिसमें नेता बनने के गुण हों। यद्यपि लार्ड सभा का सदस्य भी प्रधानमन्त्री बन सकता है, लेकिन ब्रिटिश परम्परा इसकी अनुमति नहीं देती। इस बारे में कोई कानूनी बाधा नहीं है। यह तो ब्रिटिश राजतन्त्र की परम्परा का विकसित रूप है। इसी कारण कामन्स सदन से प्रधानमन्त्री को चुना जाता है। लास्की तथा जेनिंग्स ने भी प्रधानमन्त्री पद के लिए आकर्षक व्यक्तित्व, विवेक, कौशल, नेतृत्व की योग्यता, अच्छा वक्ता आदि गुणों का होना आवश्यक माना है। कीथ ने लिखा है कि प्रधामन्त्री पद के लिए कुलीन पुरुष का चुन लिया जाना एक आम बात हो गई है। अतः प्रधानमन्त्री पद के लिए कुलीन घराने वाला व्यक्ति अवश्य होना चाहिए तथा उसे कामन्स सदन का सदस्य भी अनिवार्य रूप से होना ही चाहिए।

प्रधानमन्त्री का कार्यकाल

(Tenure of Prime Minister)

प्रधानमन्त्री का कार्यकाल निश्चित नहीं है। जब तक उसे कामन्स सदन में बहुमत प्राप्त है तभी तक वह अपने पद पर रह सकता है। कामन्स सदन की अवधि 5 वर्ष होती है। यदि कामन्स सदन समय से पहले भंग न हो तो अपनी इच्छा से बहुमत के आधार पर प्रधानमन्त्री भी 5 वर्ष तक अपने पद पर बना रह सकता है।

ब्रिटिश प्रधानमन्त्री का वेतन व भत्ते

(Salary and Allowances of British Prime Minister)

1937 के क्राऊन या ताज अधिनियम के तहत ब्रिटिश प्रधानमन्त्री का वेतन दस हजार पौंड निर्धारित किया गया था जो बाद में समय-समय पर संसद द्वारा संशोधित किया जाता रहा है। वर्तमान समय में संसद के नए नियमों के तहत प्रधानमन्त्री का वेतन 1,48,860 पौंड प्रतिवर्ष तथा मन्त्रिमण्डल के सदस्यों का वेतन 1,03,860 पौंड वार्षिक निर्धारित किया गया है। इस वेतन के अतिरिक्त उसे रहने के लिए निवास स्थान, पासपोर्ट सुविधाएं तथा अन्य भत्ते भी मिलते हैं। पद से हटने के बाद उसे पेंशन का लाभ भी दिया जाता है।

ब्रिटिश प्रधानमन्त्री की शक्तियां व कार्य

(Powers and Functions of British Prime Minister)

ब्रिटिश प्रधानमत्री इंग्लैण्ड का वास्तविक कार्यपालक है। ब्रिटेन में प्रधानमन्त्री जैसा सर्वशक्तिमान शासकीय पद अन्य कोई नहीं है। प्रधानमन्त्री ही वह केन्द्र है जिसके चारों ओर समस्त शासन तन्त्र घूमता है। म्योर का कहना है कि जितनी शक्तियां ब्रिटिश प्रधानमन्त्री को प्राप्त हैं, उतनी अमेरिकन राष्ट्रपति को भी नहीं है। रेम्जे म्यूर ने कहा है कि प्रधानमन्त्री ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल रूपी पहिये का चालक है। मार्ले ने उसे मन्त्रिमण्डल रूपी मेहराब की आधारशिला कहा है। जेनिंग्स ने उसे ब्रिटिश संविधान की नींव कहा है। इन सब कथनों के पीछे प्रधानमन्त्री की असीमित शक्तियां व अधिकारों का होना है। ब्रिटिश प्रधानमन्त्री की प्रमुख शक्तियां व अधिकार निम्नलिखित हैं :-

(1) मन्त्रिमण्डल का नेता (Leader of the Cabinet) :- ब्रिटिश प्रधानमन्त्री मन्त्रिमण्डल का नेता होता है। सम्पूर्ण मन्त्री उसके नियन्त्रण में रहते हैं। यदि कोई मन्त्री उससे सहमत न हो तो वह अपना त्यागपत्र दे सकता है। एमरी ने लिखा है-"अपने मन्त्रिपरिषद के निर्माण में प्रधानमन्त्री की जितनी स्वेच्छाचारी शक्ति होती है; उतनी शक्ति का प्रयोग कोई अधिनायक भी नहीं करता।" मार्ले ने कहा है कि प्रधानमन्त्री ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल की मेहराब की आधारशिला है। सभी मन्त्री प्रधानमन्त्री के नेतृत्व में ही कार्य करते हैं। मन्त्रीमण्डल के निर्माण सम्बन्धी समस्त कार्य प्रधानमन्त्री ही करता है। यद्यपि प्रधानमन्त्री अपनी हर शक्ति का प्रयोग करते समय सम्राट की अनुमति लेता है, परन्तु यह एक महज औपचारिकता ही होती है। नाममात्र का अध्यक्ष होने के नाते सम्राट प्रधानमन्त्री के हर निर्णय का अनुमोदन कर ही देता है। प्रधानमन्त्री का मन्त्रिमण्डल की समस्त गतिविधियों पर नियन्त्रण रहता है। प्रधानमन्त्री को मन्त्रिमण्डल के रूप में निम्नलिखित शक्तियां प्राप्त हैं :-

(I) वह मन्त्रिमण्डल का गठन करता है और अपने निष्ठावान साथियों को मन्त्रिमण्डल में जगह देता है।

(II) वह मन्त्रियों में विभागों का वितरण करता है।

(III) वह मन्त्रिमण्डल की बैठकों की अध्यक्षता करता है।

(IV) यदि वह किसी मन्त्री के कार्य से सन्तुष्ट नहीं हो तो उसे पदच्युत भी करता है। इसके लिए वह किसी भी मन्त्री का त्यागपत्र मांग सकता है।

(V) वह आवश्यकता पड़ने पर विभागों में फेर बदल करके मन्त्रिमण्डल का पुनर्गठन भी कर सकता है।

इस तरह प्रधानमन्त्री मन्त्रिमण्डल का नेता होने के नाते महत्वपूर्ण कार्य करता है। मन्त्रिमण्डल का गठन करते समय व विभागों का वितरण करते समय वह विभिन्न वर्गों, धर्मों, जातियों आदि के प्रतिनिधित्व का ध्यान रखता है। मन्त्रिमण्डल की गतिविधियों को सुचारू रूप से चलाने के लिए वह हर गतिविधि पर अपना नियन्त्रण रखता है। लास्की ने लिखा है-"ब्रिटिश प्रधानमन्त्री मन्त्रिमण्डल के निर्माण, उसके जीवन और मृत्यु के लिए केन्द्रीय स्थिति रखता है।" अतः ब्रिटिश प्रधानमन्त्री मन्त्रिमण्डल का संतुलन चक्र है।

(2) लोकसभा का नेता (Leader of the House of Commons) :- ब्रिटिश प्रधानमन्त्री लोकसभा का नेता होने के नाते सम्पूर्ण सरकारी तन्त्र पर अपना नियन्त्रण रखता है और नीति-निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। सरकार की नीति व कार्यक्रम सम्बन्धी समस्त घोषणाएं उसी द्वारा की जाती हैं। लोकसदन की बैठकों का नेतृत्व उसी के द्वारा किया जाता है। सरकार का प्रमुख नेता होने के कारण शासन का समस्त भार उसी के कन्धों पर होता है। लोकसदन में पूछे गए प्रश्नों के उत्तर देना प्रधानमन्त्री का ही कर्तव्य है। बजट तैयार करना, विधेयक तैयार करना आदि कार्य भी उसके मार्गदर्शन में ही पूरे किए जाते हैं। लोकसभा के समय का निर्धारण भी उसी के द्वारा होता है। लोकसभा का नेता होने के नाते उसका लोकसदन की कार्यवाही पर पूरा नियन्त्रण रहता है। इस पद में कोई भी मन्त्री उसकी इच्छा के विरुद्ध नहीं जा सकता।

(3) दल का नेता (Leader of the Party) :- शासन का प्रधान होने के साथ ही प्रधानमन्त्री बहुमत दल का नेता भी होता है। प्रधानमन्त्री की सर्वोच्च शक्तियां उसकी दलीय स्थिति का ही परिणाम है। बहुमत दल का नेता होने के कारण उसका व्यक्तित्व सार्वजनिक रूप ग्रहण कर लेता है। वह दलीय प्रचार में पूरा व्यस्त रहता है। वह दलीय संगठन का सर्वेसर्वा होता है। उसके व्यक्तित्व के साथ ही दल का भविष्य भी जुड़ा होता है। वह दलीय एकता का प्रतीक होता है। वह दल का व्यक्तित्व होता है। उसके विरुद्ध अंगुली उठाना दल के विरुद्ध षड्यन्त्र माना जाता है। प्रधानमन्त्री के व्यक्तित्व को ही आधार बनाकर चुनाव लड़ा जाता है। चुनावों में वोट प्रधानमन्त्री को मिलते हैं किसी दल को नहीं। दल चाहे कितना भी अच्छा क्यों न हो, अच्छे व्यक्तित्व की उपलब्धता के बिना दल को सत्ता प्राप्त नहीं हो सकता। दल का नेता होने के नाते प्रधानमन्त्री को यह पद प्राप्त होता है। सामान्यतः दल को बहुमत के कारण ही उससे नेतृत्व मिलता है। 1960 के चुनावों में मुकाबला दलों के बीच न होकर निक्सन तथा कीथ के बीच था। मतदाता को यही पता होता है कि कौन सा व्यक्ति प्रधानमन्त्री बनेगा, इसी बात का ध्यान में रखकर ही वे उस दल को वोट देते हैं। एक बार प्रधानमन्त्री बन जाने पर उसे दल द्वारा नेतृत्व से वंचित करना कठिन होता है। मुनरो ने कहा है कि सभी व्यक्ति यह जानते हैं कि प्रधानमन्त्री कहां रहता है, लेकिन यह कोई नहीं जानता कि मन्त्री कहां रहते हैं। दल के नेता के रूप में प्रधानमन्त्री के प्रमुख कार्य-दल का नेतृत्व, मार्गदर्शन, नियन्त्रण तथा नियमण करना होते हैं।

(4) राष्ट्र का नेता (Leader of the Nation) :- प्रधानमन्त्री राष्ट्र का प्रतीक होता है। समस्त जनता उससे काफी उम्मीद रखती है और चुनावों में उसका समर्थन करती है। प्रधानमन्त्री का व्यक्तित्व दल व राष्ट्र का व्यक्तित्व होता है। संकटकाल में जनता प्रधानमन्त्री की तरफ देखती है। अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में वह देश का प्रतिनिधित्व करता है। राष्ट्र के नेता के रूप में अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों पर वही हस्ताक्षर करता है।

(5) सम्राट तथा मन्त्रिमण्डल के बीच कड़ी (Link betwteen the Soverign and the Cabinet) :- प्रधानमन्त्री राजा तथा मन्त्रीमण्डल के बीच एक कड़ी का काम करता है। सम्राट और मन्त्रिमण्डल के बीच पत्र-व्यवहार उसके माध्यम से होता है। वह मन्त्रिमण्डल के निर्णयों से राजा को अवगत कराता है। इसी तरह वह राजा के विचारों को मन्त्रिमण्डल के बीच रखता है। इस तरह यह राजा और मन्त्रिमण्डल के शासकीय नीतियों एवं निर्णयों का आदान प्रदान करता रहता है।

(6) विदेश नीति का निर्माता (Maker of Foreign Policy) :- प्रधानमन्त्री का विदेश नीति के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान होता है। यद्यपि विदेश विभाग एक मन्त्री के अधीन होता है, लेकिन विदेशी मन्त्री प्रधानमन्त्री की सलाह के बिना कोई स्वतन्त्र निर्णय नहीं ले सकता। विदेश नीति सम्बन्धी समस्त घोषणाएं प्रधानमन्त्री ही करता है। विदेश मन्त्री तथा विदेश मन्त्रालय दोनों पर प्रधानमन्त्री का पूर्ण नियन्त्रण रहता है। अपने कार्यकाल में प्रधानमन्त्री चम्बरलन स्वयं विदेश नीति के निर्माता रहे है। विदेश नीति में बदलाव भी प्रधानमन्त्री की सलाह के बिना नहीं किया जा सकता। विदेश नीति के संचालन सम्बन्धी समस्त गतिविधियों पर प्रधानमन्त्री का पूरा नियन्त्रण रहता है और अन्तर्राष्ट्रीय सन्धियां कराती उसी के द्वारा हस्तान्तरित होते हैं।

(7) नियुक्तियों तथा उपाधियों सम्बन्धी शक्ति (*Powers Regarding Appointments and Patron*[illegible]) महत्वपूर्ण पदों पर जितनी भी नियुक्तियां होती हैं, वे प्रधानमन्त्री की सलाह पर राजा द्वारा [illegible] में प्रधानमन्त्री ही वास्तविक कार्यपालक होता है। राजा प्रधानमन्त्री के इस अधिकार को कोई चुनौती नहीं दे सकता। बिशपों, न्यायधीशों, उपनिवेशों के राज्यपालों, राजदूतों, बोर्ड के सदस्यों आदि की नियुक्तियां इसी के द्वारा की जाती है, राजा तो उन पर केवल अपनी सहमति की मुहर लगाता है। इसी तरह प्रधानमन्त्री को उपाधियां देने का भी अधिकार है। राजा कोई भी उपाधि प्रधानमन्त्री की सलाह के बिना किसी को नहीं दे सकता। पीयर नियुक्त करना तथा सैनिक उपाधियों व पदक देने का कार्य राजा प्रधानमन्त्री की सलाह पर ही करता है।

(8) राजा का सलाहकार (Advisor of the King) :- प्रधानमन्त्री राजा का मुख्य परामर्शदाता होता है। राजा अपने विशेषाधिकारों का प्रयोग प्रधानमन्त्री की सलाह पर ही करता है। संसद का सत्र बुलाने, स्थगित करने या संसद को भंग करने का कार्य राजा प्रधानमन्त्री की सलाह पर ही करता है। राष्ट्रीय संकट के समय राजा प्रधानमन्त्री से ही विचार-विमर्श करता है। शाही परिवार के सदस्यों के विवाह व तलाक सम्बन्धी समस्याओं पर भी [illegible] मन्त्री से ही सलाह लेता है। युद्ध या आर्थिक संकट के समय राजा प्रधानमन्त्री की सलाह से ही निर्णय लेता है। [illegible] के प्रकार की शक्तियों का प्रयोग सम्राट द्वारा प्रधानमन्त्री की सलाह से ही किया जाता है।

(9) अन्य कार्य (Miscellaneous Functions) :- उपरोक्त कार्यों के अतिरिक्त भी प्रधानमन्त्री कुछ [illegible] कार्य करता है

(I) प्रधानमन्त्री राष्ट्रमण्डलीय देशों से अच्छे सम्बन्ध स्थापित करता है।

(II) प्रधानमन्त्री वित्त पर पूरा नियन्त्रण रखता है।

(III) प्रधानमन्त्री मन्त्रिमण्डल की समितियों का गठन करता है।

(IV) प्रधानमन्त्री विभिन्न मन्त्रियों, विभागों व शासकीय नीतियों में समन्वय कायम रखता है।

(V) प्रधानमन्त्री लोक सदन का विघटन कर सकता है।

(VI) प्रधानमन्त्री को आपातकालीन निर्णय लेने का अधिकार है।

उपरोक्त विवेचन के बाद कहा जा सकता है कि देश का वास्तविक शासक होने के साथ-साथ प्रधानमन्त्री ही विदेश नीति पर भी अपना पूर्ण नियन्त्रण रखता है। अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में वह राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करता [illegible] महत्वपूर्ण समझौतों व समझौतों पर हस्ताक्षर करता है। देश के महत्वपूर्ण पदों पर होने वाली नियुक्तियों पर उसका पूर्ण अधिकार है। राष्ट्रीय संकट के समय जनता की निगाहें उसकी तरफ ही लगी रहती हैं। मन्त्रिमण्डल के निर्माण, पुनर्गठन तथा विघटन तक समस्त प्रक्रियाओं पर उसका ही नियन्त्रण रहता है। वह राष्ट्र, दल व लोकसदन का नेता होता है। प्रधानमन्त्री का व्यक्तित्व देश का व्यक्तित्व होता है। राजा द्वारा प्रयुक्त समस्त शक्तियां व विशेषाधिकार प्रधानमन्त्री की इच्छा से ही व्यवहारिक बनते हैं। सत्य तो यह है कि ब्रिटिश प्रधानमन्त्री जैसा शक्तिशाली पद व व्यक्तित्व विश्व में अन्य और कोई नहीं है। इसी कारण कुछ विद्वानों ने उसे ब्रिटिश राजतन्त्र, सरकार व शासन की आधारशिला माना है।

ब्रिटिश प्रधानमन्त्री की स्थिति

(Position of British Prime Minister)

ब्रिटिश प्रधानमन्त्री के कार्य व शक्तियों पर विचार करने के बाद यह तथ्य उभरता है कि प्रधानमन्त्री की शक्तियां अपार व

असीमित हैं। कुछ विद्वान ब्रिटिश प्रधानमन्त्री को अधिनायक मानते हैं। अनका विचार है कि जो शक्तियां व अधिकार ब्रिटिश प्रधानमन्त्री के पास हैं, वे अमरिकन राष्ट्रपति के पास भी नहीं हैं। सम्राट की समस्त शक्तियां प्रधानमन्त्री की ही शक्तियां हैं जिनका प्रयोग वह अपने मन्त्रीमण्डल के साथ मिलकर स्वेच्छा से करता है। यदि कोई मन्त्री उसकी बात को अस्वीकार करता है तो उस मन्त्री को उसके पद से हटा दिया जाता है या उसका त्यागपत्र मांग लिया जाता है। ऐसे में प्रधानमन्त्री के ऊपर तानाशाही का आरोप लगाना एक स्वाभाविक सी बात है। लेकिन प्रधानमन्त्री को जो शक्तियां प्राप्त हैं, वे संविधान और परम्पराओं की देन हैं। ब्रिटेन में स्वस्थ राजनीतिक परम्पराओं का विकास होने के कारण प्रायः इस पद का ठीक ही प्रयोग हुआ है। इसी कारण कुछ विद्वान ब्रिटिश प्रधानमन्त्री की शासन व प्रशासन में भूमिका की प्रशंसा करते हैं। लार्ड मार्ले ने कहा है-"प्रधानमन्त्री ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल रूपी मेहराब का मुख्य पत्थर है जिस पर सारा ढांचा टिका हुआ है।" जेनिंग्स का मानना है-"प्रधानमन्त्री ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल के निर्माण, उसके कार्य तथा उसको भंग करने का केन्द्र बिन्दु है।" ग्लेडस्टोन का कहना है-"प्रधानमन्त्री ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल रूपी भवन की आधारशिला है" रम्जे म्यूर ने लिखा है-"प्रधानमन्त्री मन्त्रिमण्डल रूपी जहाज का कप्तान है।" प्रधानमन्त्री के बारे में यह भी कहा जाता है कि ब्रिटिश प्रधानमन्त्री सितारों में चन्द्रमा ही नहीं, बल्कि सूर्य है जिसके चारों तरफ अन्य नक्षत्र घूमते हैं।"

ब्रिटिश प्रधानमन्त्री प्रथमों में प्रथम हैं। मन्त्रिमण्डल के अध्यक्ष, राजा के सलाहकार, राष्ट्र के नेता, विदेश नीति के निर्माता, शासन के प्रमुख, दल के नेता, लोकसभा के नेता आदि के रूप में प्रधानमन्त्री की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है। फाइनर ने लिखा है-"प्रधानमन्त्री की सर्वोच्चता इस बात से प्रकट होती है कि वह मन्त्रिमण्डल का अध्यक्ष, संसद का नेता, सामान्य नीति से सम्बन्धित विषयों पर सम्राट से विचार विमर्श की कड़ी, देश में दल का सर्वमान्य नेता तथा सर्वोच्च राजनीतिक शक्ति का मूर्तिमानरूप है।" लास्की ने कहा है कि प्रधानमन्त्री की स्थिति दलीय स्थिति से जुड़ी हुई है। राष्ट्रीय दल का नेता बने रहने और कामन सदन में बहुमत का समर्थन प्राप्त रहने तक ही वह राष्ट्रीय महत्व का व्यक्ति माना जाता है। जैसे ही वह अपना बहुमत का विश्वास खो देता है, उसकी स्थिति मृतप्रायः हो जाती है। जेनिंग्स ने कहा कहा है कि प्रधानमन्त्री की स्थिति उसके व्यक्तित्व और दलीय निष्ठा पर निर्भर है। यदि इन बातों पर ध्यान दिया जाए तो प्रधानमन्त्री की स्थिति उसके पद, उसकी दलीय स्थिति, लोक सदन में बहुमत, व्यक्तित्व, राजनीतिक सूझ-बूझ आदि बातों पर निर्भर है। 1940 में चेम्बरलेन तथा 1957 में ईडन को मन्त्रिमण्डल के असंतोष के कारण त्याग-पत्र देना पड़ा था। 1987 में कामन सदन के चुनावों में प्रधानमन्त्री थैचर की जीत उनके व्यक्तिगत प्रभाव का परिणाम थी। इसी तरह 1997 के चुनाव में टोनी ब्लेयर की जीत भी उसके व्यक्तिगत प्रभाव के कारण ही हुई थी।

ब्रिटिश प्रधानमन्त्री के बारे में निष्कर्ष तौर पर यही कहा जा सकता है कि वह कोई तानाशाह नहीं है। वह तो ब्रिटिश शासन का वास्तविक कार्यपालक है जिसे संविधान व परम्परा ने इतनी सर्वोच्च शक्तियां दी हैं। ब्रिटेन के इतिहास का अवलोकन करने से यह तथ्य उभरता है कि आज तक किसी भी प्रधानमन्त्री ने अपनी असीमित शक्तियों का गलत प्रयोग नहीं किया है। सत्य तो यही है कि वह देश का वैधानिक शासक है जो संविधानिक मर्यादाओं के तहत कार्य करता है। उसकी स्थिति काफी सर्वोच्च व सम्मानजनक है। इसी कारण उसे ब्रिटिश सविधान, शासन व सरकार की धुरी कहा जाता है।

क्या ब्रिटिश प्रधानमन्त्री एक तानाशाह बन सकता है ?

(Can the British Prime Minister become a Dictator ?)

आज ब्रिटिश प्रधानमन्त्री के अधिकार व शक्तियों की असीमितता को निरंकुश बताकर उसकी तानाशाही की बात करना आम बात हो गई है। ब्रिटिश संविधान और राजनीतिक परम्परा ने प्रधानमन्त्री व मन्त्रिमण्डल के पद को इतनी शक्तियां प्रदान की गई हैं कि ब्रिटिश प्रधानमन्त्री व मन्त्रिमण्डल की तानाशाही की बात की जाती है तो कोई गलत भी नहीं है। यद्यपि ध्यान से देखा जाए तो ब्रिटिश प्रधानमन्त्री को जो शक्तियां प्राप्त हैं वे दलीय निष्ठा, मन्त्रिमण्डलीय एकता व सहयोग द्वारा ही पोषित होती हैं। आज प्रधानमन्त्री पर राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय शक्तियों का इतना बोझ है कि यह अपार शक्तियों के बिना देश-विदेश की नीति का न तो निर्माण कर सकता है और न ही उसका सफल संचालन कर सकता है। आज संचार साधनों की भूमिका ने जनमत को इतना महत्वपूर्ण बना दिया है कि कोई भी शासक जनमत का विरोध नहीं सह सकता। प्रधानमन्त्री की सामाजिक व्यक्तित्व उसे तानाशाह नहीं बनने दे सकता। ब्रिटिश राजतन्त्र का इतिहास इस बात का गवाह है कि जब कभी किसी शासक ने राजतन्त्र को निरंकुशतन्त्र बनाने का प्रयास किया, उसे जनता ने क्रान्ति से रौंद डाला। 1688 की शानदार क्रान्ति इसका

सर्वोत्तम उदाहरण है। इस क्रान्ति ने राजा की बजाय संसदीय सर्वोच्चता के सिद्धान्त की स्थापना की। ब्रिटिश राजतन्त्र की स्वस्थ राजनीतिक परम्परा ने आज तक इस पद को मर्यादाशील बनाए रखा। जो शासक जनता की इच्छा पर खरा न उतरा तो उसने जन-विरोध के चलते या तो स्वयं त्यागपत्र दे दिया या जनता ने उसको पैरों तले रौंद डाला। प्रधानमन्त्री पर राजनीतिक दल का नियन्त्रण, विरोधी दलों की जागरूकता, कामन सदन का नियन्त्रण, नियमित चुनाव, स्वतन्त्र जनसंचार के साधन, दबाव समूह, जागरूक जनमत आदि ऐसे नियन्त्रक का काम करते हैं कि कोई भी प्रधानमन्त्री तानाशाह बननेकी कल्पना तक भी नहीं कर सकता। फाइनर ने लिखा है-"ब्रिटिश प्रधानमन्त्री सीज़र नहीं है। वह ऐसा देवता भी नहीं है कि उसे चुनौती न दी जा सके। उसके विचार ही आदेश नहीं होते। वह सदैव दया पर निर्भर करता है। उसकी अवधि उसके विचारों द्वारा की गई लाभदायक सेवा-पर्यन्त है। किसी भी क्षण कोई विरोधी उसको अपदस्थ कर सकता है।" 1911 से चेम्बरलेन, 1958 में ईडन तथा 1963 में मैकमिलन को मन्त्रिमण्डल के असंतोष के कारण अपना पद छोड़ना पड़ा था। इसलिए कोई भी प्रधानमन्त्री अपने मन्त्रियों व जनता को नाराज करके अपने पद पर नहीं रह सकता। यदि ऐसा सत्य है तो वह कभी तानाशाह भी नहीं बन सकता।

संयुक्त राज्य अमेरिका में कार्यपालिका का ढांचा

(Executive Structure in U.S.A.)

अमेरिका में संसदीय शासन-प्रणाली के स्थान पर अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली को अपनाया गया है। अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली की यह विशेषता होती है कि वहां नाममात्र और वास्तविक कार्यपालिका में भेद नहीं किया जाता। अमेरिका में यह प्रणाली शक्तियों के पृथक्करण सिद्धान्त का परिणाम है। अमेरिका में कार्यपालिका और विधायिका में इसी सिद्धान्त के कारण स्वतन्त्र व पृथक सम्बन्ध पाया जाता है। अमेरिकन राष्ट्रपति कार्यपालिका का अध्यक्ष होने के नाते विश्व का सर्वाधिक शक्तिशाली पदाधिकारी है। कुछ विद्वानों ने उसे संयुक्त राज्य अमेरिका की राजनीतिक प्रणाली का आधार अथवा केन्द्र बिन्दु कहा है। अमेरिका की महत्वपूर्ण स्थिति के बारे में मुनरो ने लिखा है-"वह इतनी शक्तियों का स्वामी है, जितना लोकतन्त्र राज्य में कोई दूसरा नहीं है।" सिडनी ने उसे संघीय सरकार की शक्ति का केन्द्र तथा राष्ट्रीय एकता का प्रतीक कहा है। अमेरिका का राष्ट्रपति ब्रिटिश सम्राट की तरह नाममात्र का कार्यपालक न होकर वास्तविक शक्तियों का स्वामी है। अमेरिका की दश विदेश की नीति पर उसका पूरा नियन्त्रण है। अमेरिकन शासन प्रणाली की समस्त कार्यकारी शक्तियां उसी में निहित हैं और वह कांग्रस (विधायिका) के नियन्त्रण से मुक्त है।

राष्ट्रपति पद के लिए योग्यताएं

(Presidential Qualifications)

अमेरिका में 1787 के फिलाडेल्फिया सम्मेलन में उसके पद, निर्वाचन तथा अवधि सम्बन्धी समस्त प्रावधानों पर विचार-विमर्श हुआ था जो बाद में संशोधित की जाती रही हैं। अमेरिका के संविधान के अनुच्छेद 2, भाग-1 के अन्तर्गत राष्ट्रपति के पद हेतु निम्नलिखित योग्यताएं निर्धारित की गई हैं :-

(1) वह संयुक्त राज्य अमेरिका का जन्मजात नागरिक हो।

(2) उसकी आयु कम से कम 35 वर्ष हो।

(3) वह 14 वर्ष से अमरीका में रह रहा हो।

(4) उसमें मतदाता बनने की समस्त योग्यताएं हों।

(5) वह केन्द्र या राज्य-स्तर पर किसी लाभ के पद पर कार्यरत न हो।

(6) वह गोरा, पुरुष, ईसाई धर्म के प्रति निष्ठावान, प्रोटेस्टेन्ट धर्मावलम्बी, स्वतन्त्र विचारों वाला भी हो।

(7) वह किसी महत्वपूर्ण उच्च राजनीतिक पद पर रह चुका हो।

(8) वह पागल या दिवालिया न हो।

राष्ट्रपति का वेतन व भत्ते

(Salary and Allowances of President)

अमेरिका के संविधान में राष्ट्रपति के वेतन व भत्तों का कोई उल्लेख नहीं है। अनुच्छेद 2 की धारा-1 में केवल यह कहा गया है कि राष्ट्रपति को उसकी सेवाओं के लिए क्षतिपूर्ति या प्रतिकार भत्ता दिया जायेगा। राष्ट्रपति के वेतन व भत्ते कांग्रेस ही निश्चित करती है जो उसके कार्यकाल में घटाए या बढ़ाए नहीं जा सकते। वर्तमान समय में अमेरिकन राष्ट्रपति को 2,00,000 डालर वेतन मिलता है जिस पर कर लगता है। इसके अतिरिक्त उसे 50000 डालर करमुक्त भत्ता भी मिलता है। उसकी कूटनीतिक यात्रा, मनोरंजन, व्हाइट हाऊस की व्यवस्था का खर्च भी सरकार ही वहन करती है। उसे संचित निधि से 50,00,000 डालर व्यय करने का भी अधिकार दिया जाता है। उसे रहने के लिए मकान, कारें, दो लड़ाकू जहाज आदि की सुविधाएं भी दी जाती हैं।

राष्ट्रपति का कार्यकाल

(Tenure of the President)

अमेरिकन राष्ट्रपति का कार्यकाल 4 वर्ष है और वह अपने पद पर पुनर्निर्वाचित भी हो सकता है। स्थापित परम्परा के अनुसार कोई भी राष्ट्रपति दो बार से अधिक राष्ट्रपति का चुनाव नहीं लड सकता। 1940 में फ्रैंकलिन रुजवेल्ट ने इस परम्परा का उल्लंघन किया तो 1951 में 22वां संविधान संशोधन करके यह व्यवस्था कर दी कि कोई भी राष्ट्रपति दो से अधिक बार चुनाव नहीं लड सकता। अमेरिकन संविधान में यह भी व्यवस्था है कि राष्ट्रपति की मृत्यु हो जाने पर तत्काल चुनाव करने की बजाय उप-राष्ट्रपति को ही राष्ट्रपति के दायित्वों का निर्वहन करना होगा। यदि राष्ट्रपति स्वयं त्यागपत्र दे दे या उसको महाभियोग द्वारा पदच्युत कर दिया जाए तो भी उसकी जगह उप-राष्ट्रपति ही कार्य करेगा। यदि उपराष्ट्रपति राष्ट्रपति का पद संभालने में असमर्थ हो तो उसके स्थान पर प्रतिनिधि सभा के अध्यक्ष या स्पीकर को राष्ट्रपति का दायित्व निभाना पड़ेगा।

राष्ट्रपति की पदच्युति

(Removal of President)

अमेरिकन राष्ट्रपति को महाभियोग लगाकर निर्धारित कार्यकाल से पहले भी हटाया जा सकता है अमरिकन सेविधान में राष्ट्रपति पर देशद्रोह, घूस-खोरी, अनैतिकता या कोई अन्य गम्भीर आरोप लगाकर उसे उसके पद से हटाया जा सकता है। राष्ट्रपति पर महाभियोग की शुरुआत प्रतिनिधि सदन 2/3 बहुमत के आधार पर करता है और उसकी सुनवाई सीनेट करती है। उस समय सीनेट की अध्यक्षता सर्वोच्च न्यायालय का मुख्य न्यायधीश करता है। 2/3 बहुमत से यदि सीनेट में महाभियोग की प्रक्रिया पास हो जाए तो राष्ट्रपति को अपना पद छोड़ना पड़ता है। वाटरगेट कांड में राष्ट्रपति निक्सन ने महाभियोग से पहले ही अपना त्यागपत्र दे दिया था।

राष्ट्रपति की उन्मुक्तियां

(Immunities of President)

अमेरिका राष्ट्रपति को अपने पद पर रहते हुए अनेक उन्मुक्तियां प्राप्त हैं। महाभियोग को छोड़कर उसके विरुद्ध न्यायपालिका या व्यवस्थापिका द्वारा कोई कार्यवाही नहीं की जा सकती। उसे किसी भी अपराध के लिए गिरफ्तार नहीं किया जा सकता। उस पर न्यायालय की मानहानि का कोई केस नहीं चल सकता। महाभियोग द्वारा पदच्युत किसी भी राष्ट्रपति पर उन अपराधों के लिए कोई मुकदमा नहीं चलाया जा सकता जो उसने राष्ट्रपति के पद पर रहते हुए किए हों। राष्ट्रपति को किसी मुकदमे में न्यायालय गवाह के रूप में भी नहीं बुला सकता।

राष्ट्रपति का निर्वाचन

(Election of the President)

राष्ट्रपति की निर्वाचन सम्बन्धी प्रक्रिया पर 1787 में पहली बार विचार-विमर्श हुआ। 1787 में फिलाडेल्फिया सम्मेलन में कुछ सदस्यों ने तो राष्ट्रपति को प्रत्यक्ष चुनाव प्रणाली के आधार पर निर्वाचन का सुझाव दिया तथा कुछ ने इसे कांग्रेस द्वारा निर्वाचित

करने का समर्थन किया। काफी वाद-विवाद के बाद संविधान-निर्माताओं ने दोनों के बीच का रास्ता निकाल लिया। संविधान के अनुच्छेद 2 में राष्ट्रपति के निर्वाचन की व्यवस्था की गई है। राष्ट्रपति की निर्वाचन प्रक्रिया के बारे में भी इस अनुच्छेद में विस्तारपूर्वक दिया गया है। वर्तमान समय में राष्ट्रपति का चुनाव अप्रत्यक्ष तरीके से निर्वाचक मण्डल द्वारा ही किया जाता है जो 1787 के फिलाडेल्फिया सम्मेलन के उपबन्धों के मिला-जुला रूप है।

निर्वाचक मण्डल में निर्वाचक-गण राज्यों द्वारा नियुक्त किये होते हैं। प्रत्येक राज्य के निर्वाचकों की संख्या कांग्रेस के दोनों सदनों में राज्य के प्रतिनिधियों के बराबर होती है। अर्थात प्रत्येक राज्य उतने ही निर्वाचक भेजता है जितने कांग्रेस के दोनों सदनों में उसके प्रतिनिधि होते हैं। इन निर्वाचकों की नियुक्ति प्रत्येक राज्य के विधानमण्डल द्वारा निर्धारित रीति से होती है। वर्तमान में सभी अमेरिकन राज्यों में निर्वाचक मण्डल के सदस्यों का चुनाव प्रत्यक्ष रूप से जनता द्वारा होता है। इस निर्वाचन में वयस्क मताधिकार का ही प्रयोग किया जाता है। वर्तमान में इस निर्वाचक मण्डल में 538 सदस्य हैं जो 435 तो प्रतिनिधि सदन तथा 1020 सीनेट से हैं। निर्वाचकों के लिए कांग्रेस के किसी एक सदन का सदस्य होना अनिवार्य है। निर्वाचकों का चुनाव गुप्त मतदान प्रक्रिया के तहत होता है।

राष्ट्रपति के चुनाव में एक विशेष प्रक्रिया अपनाई जाती है। सबसे पहले राजनीतिक दल अपने-अपने दल से राष्ट्रपति के पद हेतु उम्मीदवार खड़े करते हैं और अपना चुनाव प्रचार शुरु करते हैं। उसके बाद निर्वाचक मण्डल का चुनाव होता है। यद्यपि निर्वाचक-मण्डल के चुनाव में ही यह बात उजागर हो जाती है कि अगला राष्ट्रपति कौन होगा। परन्तु संवैधानिक विधि को क्रियान्वित करने के लिए चुनाव-मण्डल के सदस्य दिसम्बर के दूसरे बुधवार राष्ट्रपति के चुनाव में अपने-अपने प्रत्याशियों को वोट देते हैं। मतदान प्रक्रिया पूर्ण होने पर सभी मतपेटियों को अमेरिका की राजधानी वाशिंगटन ले जाया जाता है जहां 6 जनवरी को सीनेट का अध्यक्ष उन मतपेटियों को कांग्रेस के दोनों सदनों की उपस्थिति में खोलता है और मतगणना करवाता है। जिस उम्मीदवार को मतों का स्पष्ट बहुमत प्राप्त हो जाता है, उसे निर्वाचित कर लिया जाता है। यदि चुनाव में किसी भी प्रत्याशी को भी स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं होता है तो प्रतिनिधि सदन ऊपर वाले तीन प्रत्याशियों में से किसी एक को राष्ट्रपति बना सकता है। इस स्थिति में प्रतिनिधि सदन 2/3 बहुमत से निर्णय लेता है। इस स्थिति में प्रत्येक राज्य का केवल एक ही मत माना जाता है। इस स्थिति में 51 राज्यों में से 33 राज्यों का समर्थन प्राप्त व्यक्ति ही राष्ट्रपति बनता है। 1800 में जब राष्ट्रपति थामस जेफर्सन और ऐरन बार को बराबर-बराबर मत प्रापत हुए थे तो प्रतिनिधि सदन में मतदान करके जेफर्सन को ही राष्ट्रपति बनाया था। अमेरिकन संविधान की स्थापित परम्परा व नियमों के तहत नए राष्ट्रपति को 20 जनवरी को बाद दोपहर शपथ दिलाई जाती है। यह शपथ सर्वोच्च न्यायालय का मुख्य न्यायधीश दिलवाता है। शपथ लेते समय राष्ट्रपति अपने पद और संविधान के प्रति निष्ठावान रहने की बात स्वीकारता है।

निर्वाचन प्रणाली का मूल्यांकन

(Evaluation of Election System)

यदि अमेरिका की निर्वाचन प्रणाली का गहराई से विश्लेषण किया जाए तो यह बात उभरती है कि आज अमेरिका के राष्ट्रपति के चुनाव की पद्धति में सिद्धान्त और व्यवहार का अन्तर है। सिद्धान्त में तो यह चुनाव अप्रत्यक्ष है, लेकिन व्यवहार में यह चुनाव दल प्रणाली के विकास के कारण प्रत्यक्ष हो गया है। इसमें निर्वाचक मण्डल के सदस्यों की स्थिति मशीनी मानव जैसी हो गई है। राष्ट्रपति के चुनाव में निर्वाचक मण्डल के सदस्य अपने-अपने राजनीतिक दलों के आकाओं की ही इच्छा का पालन करते हैं। वास्तव में वे दलीय तानाशाही का शिकार हो जाते हैं। इस तरह गरिमायुक्त निर्वाचन पद्धति का स्थान लोकप्रिय निर्वाचक पद्धति ने ले लिया है। अब राष्ट्रपति का चुनाव काफी महंगा हो गया है। इसमें आम व्यक्ति चुनाव नहीं लड सकता। अमेरिकन राष्ट्रपति के चुनाव की प्रणाली को अनेक विद्वानों ने खर्चीली, प्रत्यक्ष, अलोकतांत्रिक तथा दलीय निरंकुशता का शिकार माना है। जस्टिस जैकसन का कहना है कि निर्वाचक मण्डल अपनी स्वतन्त्र इच्छा से मतदान न करके अपने दल के आदेशानुसार ही मतदान करता है। लास्की ने कहा है कि आज राष्ट्रपति के निर्वाचकों की स्थिति एक कठपुतली की तरह हो गई है। इसी तरह के विचार आग तथा रे ने भी दिए हैं। इसी कारण आज राष्ट्रपतिका चुनाव प्रत्यक्ष रूप से मतदाताओं द्वारा कराए जाने की मांग उठाई जाती है। कुछ विद्वानों का कहना है कि राष्ट्रपति को चुनने वाले निर्वाचक-मण्डल के सदस्यों का चुनाव राज्य की अपेक्षा जिले के आधार पर ही किया जाना चाहिए। लेकिन कुछ ऐसे भी विद्वान हैं जो आंशिक सुधारों के साथ अमेरिकन राष्ट्रपति के निर्वाचन की प्रणाली को ज्यों का त्यों बनाए रखने के पक्ष में हैं। सत्य तो यह है कि जब तक जनमत वर्तमान चुनाव-प्रणाली के प्रति आश्वस्त है, उसमें सुधार की आवश्यकता है।

अमेरिकन राष्ट्रपति की शक्तियां, कार्य व भूमिका

(Powers, Functions and Role of the American President)

अमेरिकन राष्ट्रपति महान शक्तियों का स्वामी है। उसे ये शक्तियां संविधान, न्यायिक निर्णयों, कांग्रेस के अधिनियमों तथा परम्पराओं व प्रथाओं से मिली है। ऑग का कहना है कि अमेरिकन राष्ट्रपति दुनिया का सबसे बड़ा शासक है।। फरगूसन तथा हैनरी ने कहा है कि अमेरिक राष्ट्रपति दुनिया का सबसे बड़ा शासक है। फरगूसन तथा हैनरी ने कहा है कि अमेरिका का राष्ट्रपति लोकतन्त्रीय राष्ट्रों द्वारा बनाए गए पदों में सबसे शक्तिशाली पद है। वह राज्य का प्रधान, प्रशासन का सर्वोच्च अधिकारी तथा विदेश नीति का प्रमुख वक्ता है। समय और परिस्थिति ने उसकी शक्तियों में अपार वृद्धि की है। उसकी प्रमुख शक्तियां व कार्य निम्नलिखित हैं :-

(I) कार्यपालक शक्तियां (Executive Powers):- अमेरिकन राष्ट्रपति वास्तविक कार्यपालक होता है। संविधान के अनुच्छेद 2 की धारा 3 में उसकी कार्यपालिका सम्बन्धी शक्तियों व अधिकारों का उल्लेख किया गया है। राष्ट्र का प्रमुख शासक होने के नाते संघीय सरकार के प्रशासन सम्बन्धी कार्यों के लिए वही उत्तरदायी है। राष्ट्रपति की प्रमुख कार्यपालक शक्तियां निम्नलिखित हैं :-

(1) राष्ट्रपति व्यवस्थापिका द्वारा बनाए गए कानून को लागू करता है तथा देश में शांति व्यवस्था कायम करता है। यह देखना राष्ट्रपति का प्रमुख कर्तव्य है कि कानून का देश में समुचित पालन हो रहा है या नहीं। राष्ट्रपति को यह अधिकार है कि वह देश में कानून-व्यवस्था को मजबूत बनाए रखने के लिए दण्ड-शक्ति का प्रयोग कर सकता है।

(2) देश के महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्तियां करने का अधिकार भी राष्ट्रपति के पास है। उच्च पदों पर नियुक्तियां करते समय वह सीनेट की अनुमति लेता है, लेकिन कम महत्व के पदों पर वह स्वेच्छा से नियुक्तियां कर सकता है। विदेशों में राजदूतों, वाणिज्य दूतों, सर्वोच्च न्यायालय के न्यायधीशों, सुरक्षा समिति के अध्यक्ष, सर्वोच्च परिषद के सदस्य आदि की नियुक्ति वह सीनूट की स्वीकृति से ही कर सकता है। राष्ट्रपति को सीनेट के अधिवेशन की अनुपस्थिति में अन्तरिक नियुक्तियां करने का भी अधिकार है। इन नियुक्तियों पर भी राष्ट्रपति को सीनेट का अधिवेशन शुरु होते ही स्वीकृति लेनी पडती है। सीनेट अपनी शालीनता तथा सौहार्दता के कारण प्रायः राष्ट्रपति द्वारा की गई नियुक्तियों पर अपनी सहमति दे ही देती है।

(3) जिस तरह राष्ट्रपति को नियुक्तियां करने का अधिकार है, उसी तरह उसे पद-च्युति का भी अधिकार प्राप्त है। इसके लिए उसे सीनेट की अनुमति लेने की आवश्यकता नहीं है। राष्ट्रपति अपने इस अधिकार का प्रयोग न्यायधीशों, विभिन्न आयोगों के सदस्यों या अन्य उन अधिकारियों को हटाने के लिए नहीं कर सकता जो विशेष नियमों के तहत हटाए जा सकते हैं।

(4) विदेश नीति का निर्माण भी राष्ट्रपति ही करता है। विदेशों में भेजे जाने वाले राजदूतों व प्रतिनिधियों को नियुक्त करने का अधिकार भी उसी के पास है। वह विदेशों में सन्धियों व समझौते पर हस्ताक्षर करने का अधिकार भी रखता है। यद्यपि उसे इन पर सीनेट की स्वीकृति लेनी पड़ती है।

(5) राष्ट्रपति तीनों सेनाओं का सर्वोच्च सेनापति होता है। वह सभी सैनिक पदों पर नियुक्तियां करता है और सेना के बजट को कांग्रेस के सामने पेश करता है। युद्ध काल में राष्ट्रपति को सेनाओं को आदेश देने तथा सैनिक अधिकारियों का पदमुक्त करने का अधिकार होता है। युद्ध की घोषण करते समय उसे सीनेट की अनुमति लेनी पड़ती है, लेकिन युद्ध बन्द करते समय उसे सीनेट की अनुमति की कोई आवश्यकता नहीं होती।

(6) प्रमुख प्रशासक होने के नाते राष्ट्रपति को विभिन्न विभागों का पुनगर्ठन तथा उनके कार्यों का निरीक्षण करने का अधिकार है। उसे शासन के संचालन के लिए नियम व उपनियम बनाने तथा अध्यादेश जारी करने की शक्ति भी प्राप्त है।

(7) राष्ट्रपति के पास राष्ट्रीय संकट के समय संकटकालीन शक्तियों का प्रयोग करने का भी अधिकार है।

(8) राष्ट्रपति को क्षमा देने का भी अधिकार प्राप्त है।

(9) कुछ मामलों में राष्ट्रपति को स्व-विवेकी शक्तियों का प्रयोग करने का भी अधिकार है।

(10) राष्ट्रपति को प्रशासन को कुशलतापूर्वक चलाने के लिए मन्त्रिमण्डल का गठन भी कर सकता है। यद्यपि संविधान में इसका कोई उल्लेख नहीं है।

(11) विदेशों से व्यापारिक समझौते करना, विदेशी राज्यों व सरकारों को मान्यता देना भी राष्ट्रपति की कार्यपालक शक्तियों का ही भाग है।

(II) विधायी शक्तियां (Legislative Powers) :- यद्यपि अमेरिका में शक्तियों के पृथक्करण सिद्धान्त के चलते राष्ट्रपति को कोई विधायी शक्ति नहीं सौंपी गई है, लेकिन व्यवहार में राष्ट्रपति विधायिका सम्बन्धी कार्य भी करता है। अमेरिका में 'नियन्त्रण और संतुलन के सिद्धान्त' के कारण राष्ट्रपति को कानून-निर्माण के क्षेत्र में भी हस्तक्षेप करने का अधिकार दिया गया है। इसी कारण उसे प्रधान विधायक कहा जाने लगा है। राष्ट्रपति की प्रमुख विधायी शक्तियां निम्नलिखित हैं :-

(1) राष्ट्रपति संकटकाल के दौरान कांग्रेस का विशेष अधिवेशन बुला सकता है।

(2) राष्ट्रपति प्रशासकीय आदेश जारी कर सकता है और प्रशासन को सुचारू ढंग से चलाने के लिए कुछ नियमों-उपनियमों का निर्माण भी कर सकता है। इसे प्रदत्त व्यवस्थापन की शक्ति कहा जा सकता है।

(3) राष्ट्रपति किसी विधेयक को अस्थायी तौर पर निलम्बित कर सकता है। किसी विधेयक को अस्थायी तौर पर निलम्बित कर सकता है। किसी विधेयक के पूर्ण निलम्बन का अधिकार राष्ट्रपति के पास नहीं है।

(4) राष्ट्रपति को कांग्रेस के पास सन्देश भेजने का भी अधिकार है।

(5) जब संसद का अधिवेशन अन्तिम स्थिति में हो अर्थात दस दिन से कम रह गए हों तो जब कोई विधेयक राष्ट्रपति के पास अनुमोदन के लिए आ जाए तो उस विधेयक को अस्वीकृत करके राष्ट्रपति उस विधेयक को हमेशा के लिए समाप्त कर सकता है। यह उसका जेबी निषेधाधिकार कहलाता है।

(III) वित्तीय शक्तियां (Financial Powers) :- यद्यपि वित्तीय क्षेत्र में कांग्रेस को ही अधिकार प्राप्त हैं, लेकिन व्यवहार में राष्ट्रपति तथा कांग्रेस के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध पाया जाता है। बजट के सम्बन्ध में नीति-निर्धारण करते समय विधायिका को कार्यपालिका की ही मदद लेनी पड़ती है। 1921 के 'बजट एवं अकाउंटिंग एक्ट' ने राष्ट्रपति को बजट का व्यावसायिक प्रबन्धक बना दिया है। कांग्रेस को राष्ट्रीय वित्त के बारे में आंकड़े राष्ट्रपति ही देता है। वही आगामी वर्ष के लिए नियोजित याजना और नए करों को प्रस्तावित करता है। सेना के बजट को कांग्रेस से राष्ट्रपति ही पास करवाता है। संक्षेप में राष्ट्रीय बजट राष्ट्रपति के ही मार्गदर्शन में तैयार होता है और कांग्रेस उसका अनुमोदन करती है।

(IV) न्यायिक शक्तियां (Judicial Powers) :- अमेरिकन राष्ट्रपति के पास न्यायिक शक्तियां भी हैं। प्रधान प्रशासनाधिकारी होने के नाते उसे अपराधी को क्षमा करने या उसके प्राणदण्ड को स्थगित करने का विशेषाधिकार प्राप्त है। लेकिन वह राज्य के कानूनों का उल्लंघन करने वाले तथा महाभियोग की प्रक्रिया से दण्डित व्यक्ति को क्षमा नहीं कर सकता। राष्ट्रपति ऐसे अपराधियों को भी सामूहिक क्षमादान दे सकता है जिन्हें व्यक्तिगत रूप में दण्डित न कर संघीय कानून को भंग करने के अपराध में एक साथ दण्ड दिया गया हो। लेकिन इस कार्य को वह न्याय विभाग की सिफारिश पर ही कर सकता है।

(V) संकटकालीन शक्तियां (Emergency Powers) :- युद्ध, आंतरिक अशान्ति अथवा आर्थिक संकट से उत्पन्न राष्ट्रीय संकटों के समय राष्ट्रपति अपार शक्तियों का मालिक हो जाता है। जब तक संकटकालीन रहता है, तब तक राष्ट्रपति की हर बात को कांग्रेस समर्थन करती है। संकटकाल के दौरान राष्ट्रपति मौलिक अधिकारों में भी कटौती करवा सकता है। गृह-युद्ध में राष्ट्रपति लिंकन ने अमेरिका में गृह-युद्ध के दौरान ऐसा ही किया था। प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान राष्ट्रपति रुजवेल्ट ने युद्धकालीन शक्तियों का खुला प्रयोग किया था। 1933 के आर्थिक संकट क समय भी अमेरिका के राष्ट्रपति ने असीमित आपातकालीन शक्तियों का खुला प्रयोग किया था।

(VI) दल का नेता (Leader of the Party) :- अमेरिकन राष्ट्रपति अपने दल का नेता, मार्गदर्शक तथा व्याख्याकार होता है। यद्यपि संविधान निर्माताओं ने यह कोशिश की थी कि राष्ट्रपति को दलगत राजनीति से दूर रखा जाए, लेकिन कालांतर में राष्ट्रपति को दलीय निष्ठा से दूर रखना असम्भव हो गया। सभी राजनीतिक दल महत्वपूर्ण नीतियों और निर्णयों पर अपने नेता के रूप में राष्ट्रपति की ही सलाह लेते हैं। लेकिन अमेरिका के राष्ट्रपति को अपने दल पर उतना नियन्त्रण नहीं है जितना ब्रिटिश प्रधानमन्त्री का है। फिर भी राष्ट्रपति को दल का सर्वोच्च प्रतिनिधि माना जाता है जिसकी तरफ सम्पूर्ण राष्ट्र की आंख लगी रहती है।

(VII) राष्ट्र का नेता (Leader of the Nation) :- अमेरिकन राष्ट्रपति अपने दल का ही नहीं बल्कि अपने देश का भी नेता होता है। वह अमेरिका का प्रथम नागरिक होता है और उसे राष्ट्रीय एकता का प्रतीक माना जाता है। वह विदेशों में अपने राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करता है। वह सर्वोच्च प्रशासक होने के नाते राष्ट्रीय हित के लिए हमेशा तत्पर रहता है। जनता शान्ति व संकट की घड़ी में राष्ट्रपति की तरफ ही देखती है। हाल में ईराक तथा अफगानिस्तान में की गई सैनिक कार्यवाहियों ने अमेरिका की जनता में राष्ट्रपति पद का गौरव व सम्मान बढ़ाया है। राष्ट्रपति को ही देश-विदेश की नीति का निर्धारक तथा देश का भाग्य विधाता माना जाता है। वह राष्ट्रीय जीवन की प्राणदायिनी शक्ति है जिससे जनता में राष्ट्रीयता की भावना का संचार होता है।

अमेरिकन राष्ट्रपति की स्थिति

(Position of American President)

यदि अमेरिकन राष्ट्रपति की शक्तियों पर ध्यान किया जाए तो वह महान शक्तियों का स्वामी प्रतीत होता है। उसका राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में विशिष्ट स्थान है। उसकी आवाज जनता की आवाज होती है। वह दलीय एकता व राष्ट्र का प्रतीक होता है। कार्यपालक होने के साथ-साथ वह एक अच्छा व्यवस्थापक भी है। आपातकाल में तो उसको इतनी अधिक शक्तियां व अधिकार प्राप्त हो जाते हैं कि वह तानाशाह बन सकता है। वाशिंगटन, कनेडी, विल्सन, रुजवैल्ट, लिंकन, बिल क्लिंटन तथा जार्ज-बुश आदि राष्ट्रपतियों की भूमिकाओं ने राष्ट्रपति के पद को गौरव का प्रतीक बना दिया है।

कुछ विद्वानों का कथन है कि अमेरिकन राष्ट्रपति जंजीरों में जकड़ा हुआ दानव है या ऐसा दानव है जिसके पैर चिकनी मिट्टी के हैं। कुछ विद्वानों ने उसे तानाशाह कहा है। लेकिन सत्य तो यह है कि इन बातों में कोई विशेष दम नहीं है। संकटकाल में तो राष्ट्रपति की शक्तियां विशेष हो सकती हैं, लेकिन अमेरिका में ऐसे बहुत कम उदाहरण मिलते हैं, जब राष्ट्रपति ने अपने पद व शक्तियों का दुरुपयोग किया हो। राष्ट्रपति पर निरोध व संतुलन के सिद्धान्त का काफी नियन्त्रण रहता है। जिस तरह कार्यपालिका विधायिका पर नियन्त्रण रखती है, उसी तरह विधायिका कार्यपालिका पर भी नियन्त्रक का काम करती है। राष्ट्रपति की संवैधानिक स्थिति, न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति, राजनीतिक दलों व दबाव समूहों की राजनीति, जनमत, कांग्रेस, राजनीतिक परम्परायें आदि राष्ट्रपति को तानाशाह बनाने से रोकते हैं। शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त के चलते अमेरिकन राष्ट्रपति की तानाशाही की बात करना मूर्खता है। राष्ट्रपति नियुक्तियों के मामलों में भी कांग्रेस की सहमति का विरोध नहीं कर सकता। राष्ट्रपति युद्ध की घोषणा, विदेश नीति का निर्माण, वित्तीय मामलों आदि में स्वतन्त्र नहीं है। लास्की ने कहा है-"चाहे अमेरिका की कार्यपालिका की शक्तियों में कितनी भी वृद्धि क्यों न हुई हो, वह तानाशाही के आस-पास भी नहीं है।" सर हेनरी मेन का कहना है कि "अमेरिकन राष्ट्रपति शासन करता है, राज्य नहीं करता।" अपनी शक्तियों का प्रयोग करते समय राष्ट्रपति सीनेट की अनुमति लेता है। राष्ट्रीय संकट के समय भी वह सीनेट की इच्छा का तिरस्कार नहीं कर सकता। यद्यपि आधुनिक युग में जन सम्पर्क के साधनों की प्रभावकारी भूमिका ने उसे शक्तिशाली बना दिया है, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि वह तानाशाह बन सकता है। उसके बारे में इस कथन के पीछे कि "अमेरिकन राष्ट्रपति वह दानव है जिसके पांव चिकनी मिट्टी के हैं" यह निहितार्थ है कि राष्ट्रपति के कार्य व शक्तियों पर असीमित प्रतिबन्ध हैं जो संविधान, कांग्रेस, जनमत आदि के रूप में हैं। अतः अमेरिकन राष्ट्रपति की स्थिति महान तो कही जा सकती है, लेकिन उसे तानाशाह का नाम देना अनुचित है।

अमेरिका का उपराष्ट्रपति

(Vice President of America)

संयुक्त राज्य अमेरिका की शासन व्यवस्था में उप-राष्ट्रपति का भी महत्वपूर्ण स्थान है। इसका महत्व इसी बात में है कि यह राष्ट्रपति के रिक्त स्थान की पूर्ति करता है। इसलिए कुछ विद्वानों ने उप-राष्ट्रपति का अल्पकालिक महत्व माना है। राष्ट्रपति की मृत्यु या पदच्युति की अवस्था में उपराष्ट्रपति ही राष्ट्रपति के दायित्वों का निर्वहन करता है। उप-राष्ट्रपति के निर्वाचन की भी वही विधि और प्रक्रिया है जो राष्ट्रपति के निर्वाचन की है। राष्ट्रपति के निर्वाचक दो वोट देते हैं - एक तो राष्ट्रपति को और दूसरा उप-राष्ट्रपति को। यद्यपि संविधान में राष्ट्रपति और उप-राष्ट्रपति के लिए अलग अलग प्रत्याशी खड़े होने की बात का कोई उल्लेख नहीं था, लेकिन 1804 में 12 वां संविधान संशोधन करके इसके लिए अलग-अलग प्रत्याशियों का होना

आवश्यक कर दिया। प्रारम्भ में यह अवस्था थी कि राष्ट्रपति के चुनाव में दूसरे स्थान पर रहने वाले प्रत्याशी को उप-राष्ट्रपति बना दिया जाता था, लेकिन 1800 में जैफर्सन तथा कर को समान मत मिलने पर यह असुविधा हुई कि किसे राष्ट्रपति बनाया जाये और किसे उप-राष्ट्रपति। तभी से 12वां संशोधन करके उप-राष्ट्रपति के पद हेतु भी वही योग्यताएं निर्धारित की गई जो राष्ट्रपति के पद हेतु हैं। यदि चुनाव में किसी प्रत्याशी को जीतने के लिए पूर्ण बहुमत न मिले तो सीनेट सर्वाधिक मत प्राप्त करने वाले दो प्रत्याशियों में से उप-राष्ट्रपति का चुनाव करती है। अमेरिकन उपराष्ट्रपति पद का प्रत्याशी होने के लिए यह आवश्यक है कि राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति एक ही राज्य के न हों। यदि राष्ट्रपति पूर्व का है तो उप-राष्ट्रपति पश्चिम का होना चाहिए। इसी तरह राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति दोनों एक ही दलीय कक्ष से न हों। उपराष्ट्रपति का कार्यकाल 4 वर्ष है और उसे 35000 डालर वेतन तथा 10000 डालर भत्ते के रूप में मिलते हैं।

उपराष्ट्रपति प्रायः दो ही प्रमुख कार्य करता है। एक तो वह राष्ट्रपति का पद किसी भी कारण रिक्त होने पर उसका कार्यभार सम्भालता है। दूसरा, वह सीनेट के अध्यक्ष के रूप में भी कार्य करता है। परन्तु सीनेट में वह निर्णायक मत ही दे सकता है, मतदान में भाग नहीं ले सकता। 1949 के बाद से उप-राष्ट्रपति राष्ट्रपति के सहायक के रूप में कार्य करता है और वह राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद का सदस्य भी होता है। राष्ट्रपति आइजन होवर के समय से यह पद अधिक सशक्त हुआ है। राष्ट्रपति रुजवेल्ट तो उप-राष्ट्रपति को मन्त्रिमण्डल की बैठकों में भी बुलाता था। 1954 में यह घोषणा की गई कि जब भी राष्ट्रपति राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद की बैठकों से अनुपस्थित रहेगा तो उपराष्ट्रपति ही इसका सभापतित्व करेगा। इस तरह धीरे धीरे उप-राष्ट्रपति के पद का महत्व बढ़ता रहा है। वाटरगेट कांड के बाद राष्ट्रपति निक्सन द्वारा त्याग-पत्र दिए जाने पर उप-राष्ट्रपति जेराल्ड फोर्ड ने राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी। राष्ट्रपति आजइनहावर ने उप-राष्ट्रपति निकसन को कई बार विदेशी दौरों पर भी भेजा था। रीगन ने भी इस पद को प्रभावशाली और गौरवपूर्ण बनाने का प्रयास किया था। उप-राष्ट्रपति को हटाने का तरीका भी महाभियोग ही है।

यद्यपि उप-राष्ट्रपति का पद कुछ विशेष परिस्थितियों में महत्वपूर्ण पद माना जाता है, लेकिन अनेक विचारकों ने इस पद को अनावश्यक तथा अनुपयुक्त बताया है। बेंजामिन फ्रंकलिन ने इस पद के धारक को खोखला गौरव कहा है। रुजवेल्ट तथा ड्राफ्ट आदि ने इस पद को समाप्त करने की वकालत की थी। इसकी महत्वहीनता के बारे में थॉमस मार्शल ने लिखा है-"दो भाई थे। एक समुन्द्र में डूब गया और दूसरा उप-राष्ट्रपति बन गया। फिर दोनों की आवाज सुनाई दी।" कुछ विद्वानों ने इस पद को राजनीतिक कब्रिस्तान की संज्ञा दी है जिसमें अनेक होनहार राजनीतिज्ञ दलदल में फंसकर रह जाते हैं।

अमेरिकन राष्ट्रपति और ब्रिटेन के सम्राट की तुलना

(Comparison Between the American President and the King of England)

ब्रिटेन में राजा वास्तविक कार्यपालक अध्यक्ष है, जबकि अमेरिका में राष्ट्रपति मुख्य कार्यपालक अध्यक्ष है। ब्रिटेन में संसदीय प्रणाली है जबकि अमेरिका में अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली है। इन दोनों प्रणालियों में पाया जाने वाला प्रकृति व कार्यप्रणाली से सम्बन्धित अन्तर ही राष्ट्रपति तथा सम्राट के बीच तुलना का आधार प्रस्तुत करता है। लास्की ने कहा है कि ब्रिटेन के राजा और अमेरिका के राष्ट्रपति की तुलना करने पर पता चलता है कि अमेरिका का राष्ट्रपति ब्रिटेन के सम्राट से अधिक भी है और कम भी है। ब्रोमन ने लिखा है कि "अमेरिका के राष्ट्रपति में ब्रिटिश सम्राट और प्रधानमन्त्री दोनों ही पद समन्वित हैं।" दोनों की तुलना करने पर पता चलता है कि राजा और अमेरिकन राष्ट्रपति के बीच कुछ समान व असमान लक्षण प्रकट होते हैं।

राजा और राष्ट्रपति में समानताएं

(Similarities between the King and the President)

ब्रिटेन के सम्राट और अमेरिका के राष्ट्रपति में निम्नलिखित समानताएं हैं :-

(1) दोनों अपने अपने राज्यों के प्रधान हैं।

(2) दोनों को वैधानिक क्षेत्र में भी कुछ समानताएं हैं। ब्रिटेन का सम्राट संसद का अधिवेशन बुला सकता है तो अमेरिका का राष्ट्रपति भी कांग्रेस का विशेष अधिवेशन बुला सकता है।

(3) दोनों द्वारा औपचारिक स्वीकृति प्रदान करने पर ही कोई विधेयक कानून बनता है।

(4) दोनों अपनी सेनाओं के सेनापति हैं।

(5) दोनों को समान न्यायिक शक्तियां प्राप्त हैं। दोनों अपराधी की सजा माफ करने, घटाने तथा स्थगन का अधिकार रखते हैं।

(6) दोनों विदेशों से आए कूटनीतिक अधिकारियों को मान्यता प्रदान करते हैं और विदेशों में भेजे जाने वाले राजदूतों की नियुक्ति करते हैं।

(7) दोनों को कुछ विशेषाधिकार व उन्मुक्तियां प्राप्त हैं।

(8) देश के महत्वपूर्ण पदों पर की जाने वाली नियुक्तियां दोनों के नाम से ही होती हैं।

राजा और राष्ट्रपति में असमानताएं

(Dissimilarities between the King and the President)

ब्रिटेन के सम्राट और अमेरिका के राष्ट्रपति के बीच कुछ समानताएं होते हुए भी कुछ अन्तर हैं :-

(1) अमेरिका का राष्ट्रपति वास्तविक कार्यपालक है, जबकि ब्रिटेन का सम्राट नाममात्र का कार्यपालक है।

(2) अमेरिका का राष्ट्रपति चुना जाता है, जबकि सम्राट का पद वंशानुगत है।

(3) अमेरिका के राष्ट्रपति का कार्यकाल 4 वर्ष है, जबकि सम्राट का कार्यकाल अनिश्चित है।

(4) अमेरिका के राष्ट्रपति का अपने मन्त्रिमण्डल पर पूर्ण नियन्त्रण है, जबकि ब्रिटेन में मन्त्रिमण्डल पर राजा की बजाय प्रधानमन्त्री का ही नियन्त्रण रहता है।

(5) अमेरिका के राष्ट्रपति के पास पाकेट वीटो की शक्ति है, जबकि सम्राट के पास ऐसी कोई शक्ति नहीं है।

(6) अमेरिका के राष्ट्रपति की बजट निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। ब्यूरो ऑफ बजट पर उसका पूर्ण नियन्त्रण रहता है। ब्रिटेन के सम्राट की बजट निर्माण में कोई प्रभावकारी भूमिका नहीं है।

(7) अमेरिका का राष्ट्रपति देश-विदेश की नीति का प्रमुख प्रवक्ता होता है। ब्रिटेन में यह शक्ति सम्राट की बजाय प्रधानमन्त्री के पास होती है।

(8) अमेरिका का राष्ट्रपति दलगत राजनीति का शिकार है, जबकि सम्राट दलगत राजनीति से प्रायः दूर ही रहता है।

उपरोक्त विवेचन के बाद कहा जा सकता है कि अमेरिका का राष्ट्रपति कुछ मामलों में तो सम्राट से अधिक है और कुछ में कम। ब्रिटिश सम्राट के प्रति जनता के हृदय में जो श्रद्धा की भावना है वह अमेरिका के राष्ट्रपति के प्रति नहीं है। ब्रिटिश सम्राट की शान-शौकत, मर्यादा तथा प्रभाव अमेरिकी राष्ट्रपति के लिए एक स्वप्न मात्र है। लेकिन फिर भी ब्रिटिश सम्राट के लिए यह कहा जाता है कि वह शासन का मुखिया होते हुए भी शासन नहीं करता। इसके विपरीत अमेरिका का राष्ट्रपति शासन का अध्यक्ष और शासनकर्ता दोनों है। सत्य तो यह है कि चाहे शक्तियां अमेरिका के राष्ट्रपति की अधिक हों, लेकिन सम्मान तो ब्रिटिश सम्राट का ही अधिक है।

अमेरिका के राष्ट्रपति और ब्रिटिश प्रधानमन्त्री में तुलना

(Comparison between the American President and the British Prime Minister)

पश्चिमी लोकतन्त्र के देश होते हुए भी अमेरिका और ब्रिटेन की शासन-प्रणालियों में दिन-रात का अन्तर है। जहां अमेरिका ने अध्यक्षात्मक शासन-प्रणाली अपनाई है तो वहीं ब्रिटेन ने संसदात्मक व्यवस्था को अपनाया है। जहां अमेरिका का राष्ट्रपति वास्तविक कार्यपालक है, वहीं यह शक्ति ब्रिटेन प्रधानमन्त्री को प्राप्त है। दोनों के पदों में संवैधानिक अन्तर होते हुए भी कुछ समानताएं भी हैं। लास्की ने अपनी पुस्तक 'Parliamentary Government in England' में लिखा है-"संयुक्त राज्य अमेरिका का राष्ट्रपति कुछ बातों में सम्राट से बढ़कर है तो कुछ में कम।" रेम्जे म्योर ने लिखा है-"ब्रिटिश प्रधानमन्त्री की शक्तियां इतनी व्यापक हैं जितनी विश्व के किसी अन्य संवैधानिक शासक को प्राप्त नहीं; यहां तक अमेरिकन राष्ट्रपति को भी नहीं।" इसी तरह के विचार अन्य विद्वानों ने भी दिए हैं। कुछ अमेरिकन राष्ट्रपति को शक्तिशाली मानते हैं तो कुछ ब्रिटिश प्रधानमन्त्री को। इस बात का पता तो तुलनात्मक आधार पर ही लगाया जा सकता है कि किसकी स्थिति क्या है।

राष्ट्रपति और प्रधानमन्त्री में समानताएं

(Similarities between the President and Prime Minister)

अमेरिका के राष्ट्रपति और ब्रिटेन के प्रधानमन्त्री में समानताएं निम्नलिखित हैं :-

(1) दोनों ही अपने राज्य के वास्तविक शासक हैं, क्योंकि दोनों के पास वास्तविक कार्यपालक शक्तियां हैं।

(2) दोनों ही शासन के सम्बन्ध में जनता के प्रति उत्तरदायी होते हैं।

(3) दोनों ही आपातकालीन स्थिति में असीमित शक्तियों का प्रयोग कर सकते हैं।

(4) दोनों ही अपनी-अपनी विदेश नीति के प्रमुख प्रवक्ता होते हैं।

(5) दोनों ही बहुमत प्राप्त दल के नेता होते हैं।

(6) दोनों ही दल के साथ-साथ अपने-अपने राष्ट्र के नेता भी होते हैं और अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों, समझोतों आदि में अपने-अपने देश का प्रतिनिधित्व करते हैं।

(7) दोनों ही अपने-अपने देश की प्रतिष्ठा के सूचक होते हैं।

राष्ट्रपति और प्रधानमन्त्री में असमानताएं

(Differences between the President and Prime Minister

राष्ट्रपति और प्रधानमन्त्री में अनेक समानताएं होते हुए भी कुछ असमानताएं हैं जो निम्नलिखित हैं :

(1) राष्ट्रपति का चुनाव अप्रत्यक्ष विधि से निर्वाचक मण्उल द्वारा किया जाता है जो वास्तव में जनता की सीधी पसन्द का ही परिणाम है जबकि प्रधानमन्त्री की नियुक्ति औपचारिक तौर पर सम्राट द्वारा की जाती है।

(2) अमेरिका का राष्ट्रपति राज्य व सरकार का प्रधान होता है। ब्रिटेन का प्रधानमन्त्री केवल सरकार का प्रधान होता है।

(3) राष्ट्रपति का कार्यकाल निश्चित होता है। उसकी पदावधि चार वर्ष है। वह पुनः चुनाव भी लड़ सकता है। निश्चित अवधि से पहले इसे केवल महाभियोग की प्रक्रिया द्वारा ही हटाया जाता है। परन्तु महाभियोग की पद्धति अति कठिन है। जबकि प्रधानमन्त्री का कार्यकाल अनिश्चित होता है। कामन सदन अविश्वास प्रस्ताव द्वारा किसी भी समय प्रधानमन्त्री को हटा सकता है।

(4) राष्ट्रपति मन्त्रिमण्डल का स्वामी होता है। मन्त्रिमण्डल के निर्माण और इसकी कार्यविधि पर राष्ट्रपति का पूर्ण नियन्त्रण है। मन्त्रिमण्डल की सलाह मानना या न मानना राष्ट्रपति की इच्छा है। ब्रिटिश प्रधानमन्त्री मन्त्रिमण्डल का नेता अवश्य होता है, परन्तु उसका मालिक नहीं। उसे अपने मन्त्रियों का सहयोग प्राप्त करना पड़ता है। बड़े-बड़े निर्णय वह मन्त्रियों के सहयोग व सलाह से करता है।

(5) अमेरिका का राष्ट्रपति कांग्रेस के बराबर महत्व रखता है। वह कांग्रेस के प्रतिनिधि सदन को समय से पहले भंग नहीं कर सकता। इसके विपरीत प्रधानमन्त्री संसद का नेता होता है। आवश्यकता पड़ने पर वह समय से पहले कामन सदन (House of Commons) को भंग कर सकता है। यदि कामन सदन प्रधानमन्त्री के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव पास कर दे तो प्रधानमन्त्री त्यागपत्र देने के स्थान पर कामन सदन को भंग करके चुनाव करा सकता है। अतः निम्न सदन को भंग करने के मामले में ब्रिटिश प्रधानमन्त्री राष्ट्रपति से अधिक शक्तिशाली है।

(6) अमेरिका में सर्वोच्च न्यायालय (Supreme Court) राष्ट्रपति पर नियन्त्रण का कार्य करता है। वह राष्ट्रपति के आदेशों, कार्यों को न्यायिक पुनः निरीक्षण द्वारा अवैध घोषित कर सकता है। ब्रिटेन में संसद की सर्वोच्चता के कारण प्रधानमन्त्री न्यायालों के नियन्त्रण से पूर्ण रूप से स्वतन्त्र है। ब्रिटेन में न्यायालयों के पास न्यायिक पुनः निरीक्षण की कोई शक्ति नहीं है।

(7) राष्ट्रपति और उसका सचिव अपने किसी भी कार्य के लिए कांग्रेस के प्रति उत्तरदायी नहीं होते, जबकि प्रधानमन्त्री अपने मंत्रीमण्डल सहित संसद के प्रति उत्तरदायी होता है।

(8) संघीय प्रणाली होने के कारण राष्ट्रपति को राज्यों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं होता जबकि ब्रिटेन के प्रधानमन्त्री की शक्तियों पर इस प्रकार का कोई प्रतिबन्ध नहीं है।

(9) अमेरिकी राष्ट्रपति को विशेषाधिकार प्राप्त हैं। वह कांग्रेस द्वारा पारित किसी भी प्रस्ताव पर अपने विशेषाधिकार का प्रयोग कर उसे स्वीकृति देने से इन्कार कर सकता है। प्रधानमन्त्री के पास इस प्रकार का कोई विशेषाधिकार नहीं है।

(10) राष्ट्रपति की आपातकालीन शक्तियों पर अन्य मन्त्रियों का कोई अंकुश नहीं होता। प्रधानमन्त्री की आपातकालीन शक्तियां वास्तव में मन्त्रिमण्डल की ही शक्तियां होती हैं।

(11) शक्ति पृथक्करण के कारण विधि निर्माण के क्षेत्र में अमेरिका के राष्ट्रपति की शक्तियां बहुत सीमित हैं। जबकि ब्रिटिश प्रधानमन्त्री बहुमत दल का नेता होने के कारण सक्रिय भूमिका निभाता है।

(12) दल के साथ सम्बन्ध में ब्रिटिश प्रधानमन्त्री की स्थिति अमेरिकन राष्ट्रपति से अधिक अच्छी है। प्रधानमन्त्री अपने दल का वास्तविक रूप में नेता होता है। अमेरिका में दलीय संगठन ढीला-ढाला होने के कारण राष्ट्रपति को यह स्थिति प्राप्त नहीं है।

(13) राष्ट्रपति और प्रधानमन्त्री दोनों ही समन्वयकारी कार्य करते हैं। लेकिन इस सम्बन्ध में प्रधानमन्त्री का क्षेत्र बहुत सीमित है जबकि राष्ट्रपति विस्तृत क्षेत्र में समन्वयकारी कार्य करते हैं।

(14) वित्तीय क्षेत्र में ब्रिटिश प्रधानमन्त्री को अमेरिका के राष्ट्रपति से अधिक शक्तियां प्राप्त हैं।

(15) विधानपालिका से सम्बन्ध संदर्भ में दोनों की स्थिति काफी भिन्न है। इंग्लैण्ड में संसदीय शासन प्रणाली होने के कारण प्रधानमन्त्री और उसके मन्त्री विधानपालिका अर्थात संसद के सदस्य होते हैं और उसके प्रति उत्तरदायी होते हैं जबकि अमेरिका में अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली और शक्तियों के पृथक्कीरण के सिद्धान्त के कारण कार्यपालिका (राष्ट्रपति) विधानपालिका से पूर्णतया भिन्न होती है। दोनों में घनिष्ट सम्बन्ध नहीं होता।

उपरोक्त विवेचन के बाद कहा जा सकता है कि ब्रिटिश प्रधानमन्त्री और अमेरिकन राष्ट्रपति में काफी असाम्य है। विधि निर्माण एवं वित्तीय व्यवस्था के क्षेत्र में ब्रिटिश प्रधानमन्त्री अमेरिका के राष्ट्रपति से अधिक शक्तिशाली है, किन्तु प्रशासनिक एवं कार्यपालिका सम्बन्धी विषयों में अमेरिकन राष्ट्रपति की स्थिति अधिक सर्वोच्च है। यद्यपि अमेरिका का राष्ट्रपति अपनी शक्तियों का प्रयोग स्वतन्त्रतापूर्वक करने की बजाय सीनेट की अनुमति से ही करता है, फिर भी हमें उसकी स्थिति ब्रिटिश प्रधानमन्त्री से कम नहीं आंकनी चाहिए। शक्तियों के प्रयोग में अधिक शक्तिशाली होते हुए भी ब्रिटिश प्रधानमन्त्री पर जनमत, लोकसदन, परम्पराओं आदि का कुछ न कुछ दबाव अवश्य बना रहता है। आधुनिक युग में न तो अमेरिका का राष्ट्रपति तानाशाह बन सकता है और न ही ब्रिटिश प्रधानमन्त्री। दोनों की स्थिति व शक्तियों का प्रयोग उनके व्यक्तित्व, उनकी कार्यदक्षता तथा बदलती परिस्थितियों पर ही निर्भर है। दोनों के पद अपने-अपने देश की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक परम्पराओं के अनुकूल व राष्ट्रीय चरित्र को दर्शाने वाले हैं। व्यवहार में दोनों में कुछ साम्य होते हुए भी असमानताएं ही अधिक हैं।

अमेरिकन मन्त्रिमण्डल

(American Cabinet)

ब्रिटेन तथा भारत की तरह अमेरिका में भी मन्त्रिमण्डल नामक संस्था है, लेकिन दोनों की स्थिति में दिन-रात का अन्तर है। अमेरिका के संविधान में भारत व ब्रिटेन की तरह किसी मन्त्रिमण्डल जैसी संस्था का कोई उल्लेख नहीं है। केवल अमेरिकन संविधान के अनुच्छेद 2 में यह लिखा गया है कि "राष्ट्रपति सरकार के विविध प्रशासकीय विभागों के प्रधान पदाधिकारियों के साथ सम्बन्ध है।" यह व्यवस्था करते समय संविधान-निर्माताओं को विश्वास था कि सीनेट के सदस्य राष्ट्रपति के सलाहकार के रूप में कार्य करेंगे। इस विचार का कारण यह था कि उस सीनेट में केवल 26 सदस्य थे। लेकिन संविधान के विश्लेषकों की यह बात निरर्थक साबित हुई, जब सीनेट ने राष्ट्रपति की इच्छाओं का तिरस्कार किया और राष्ट्रपति ने सलाह लेने के लिए अपने विश्वास-पात्र अधिकारियों को नियुक्त कर लिया। ये परामर्शदाता अधिकारी ही कालांतर में मन्त्रिमण्डल के सदस्य बन गए और परामर्शदात्री संस्था मन्त्रिमण्डल नामक संस्था में बदल गई। 1793 के बाद परामर्शदात्री संस्था को मन्त्रिमण्डल ही कहा जाने लगा। इस तरह मन्त्रिमण्डल नामक संस्था का जन्म हुआ। टैफ्ट का कहना है "अमेरिकन मन्त्रिमण्डल किसी

संविधानिक कानून की उपज नहीं है, बल्कि राष्ट्रपति की इच्छा का उत्पादन है।" यह कोई ऐसी संस्था नहीं है जिसका कोई कानूनी आधार हो। यह तो केवल प्रथागत है। यदि राष्ट्रपति चाहे तो मन्त्रिमण्डल का गठन कर सकता है, न चाहे तो इसकी कोई जरूरत नहीं है। फिर भी इसकी महत्वपूर्ण स्थिति व भूमिका ने इसे सरकार का आवश्यक अंग बना दिया है।

मन्त्रिमण्डल का संगठन

(Organisation of Cabinet)

अमेरिकन राष्ट्रपति को मन्त्रिमण्डल का गठन करने का पूरा अधिकार है। वर्तमान समय में अमेरिका में अनेक विभाग हैं जिनके प्रधान मन्त्रिमण्डल के सदस्य होते हैं। ये विभाग हैं-राज्य विभाग, कोष विभाग, युद्ध विभाग, नौ-सेना विभाग, न्याय विभाग, डाक विभाग, आन्तरिक विभाग, कृषि विभाग, वाणिज्य विभाग तथा श्रम विभाग। 1947 के बाद युद्ध और नौ-सेना विभाग को प्रतिरक्षा विभाग कहा जाता है। इन प्रशासकीय विभागों के प्रधानों की नियुक्ति राष्ट्रपति करता है, परन्तु नियुक्ति पर उसे सीनेट की अनुमति लेनी पड़ती है। ब्रिटेन की तरह अमेरिका में यह आवश्यक नहीं है कि सभी सदस्य एक ही राजनीतिक दल के हों। रुजवेल्ट ने युद्ध मन्त्री के पद पर विरोधी दल के व्यक्ति को ही नियुक्त किया था। इसी तरह हार्डिंज, कैनेडी तथा कूलिंस ने भी किया था। जिस तरह नियुक्ति का अधिकार राष्ट्रपति को है, उसी तरह पदच्युति का भी अधिकार राष्ट्रपति को है, लेकिन उस पर सीनेट की अनुमति लेने की कोई आवश्यकता नहीं होती। कांग्रेस को महाभियोग लगाकर उन्हें हटाने का अधिकार है।

वेतन व भत्ते (Salary and Allowances) :- संसदीय कानूनों के अनुसार प्रत्येक मन्त्री को 15000 डालर वार्षिक वेतन मिलता है तथा अन्य भत्ते भी दिए जाते हैं।

मन्त्रिमण्डल की बैठकें (Sittings of the Cabinet) :- अमेरिका में मन्त्रिमण्डल की बैठकें प्राय: सप्ताह शुक्रवार के दिन होती है। मन्त्रिमण्डल की बैठक बुलाने का अधिकार राष्ट्रपति के पास है। विशेष परिस्थितियों में मन्त्रिमण्डल की बैठकें कभी भी बुलाई जा सकती है। बैठकों की समस्त कार्यवाही गुप्त रखी जाती है।

मन्त्रिमण्डल के कार्य (Functions of Cabinet) :- अमेरिका का मन्त्रिमण्उल ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल की तरह शक्तिशाली नहीं है। उसके केवल दो ही प्रमुख कार्य हैं :-

(I) परामर्श सम्बन्धी।

(II) प्रशासन सम्बन्धी।

जब राष्ट्रपति मन्त्रिमण्डल की बैठक बुलाता है तो उसमें किसी भी विषय पर व्यापक विचार-विमर्श होता है। विचार-विमर्श की प्रक्रिया पर राष्ट्रपति का पूरा नियन्त्रण रहता है। मन्त्रिमण्डल की सलाह पर अमल करना या न करना राष्ट्रपति की व्यक्तिगत इच्छा है। इसमें राष्ट्रपति सामूहिक निर्णय का कोई प्रयास न करके परामर्श तक ही सीमित रहता है। जिस तरह राष्ट्रपति मन्त्रिमण्डल से सलाह करता है उससे अधिक मन्त्री अपने अन्तर्गत अपने वाले विभाग की अच्छी तरह देखभाल करता है। प्रत्यक विभाग का एक मन्त्री होता है जो विभाग के समस्त कार्यों पर अपना नियन्त्रण रखता है। मन्त्रिमण्डल का अध्यक्ष होने के नाते राष्ट्रपति को प्रशासकीय आदेश जारी करने का अधिकार है।

अमेरिकन मन्त्रिमण्डल की वास्तविक स्थिति

(Actual Position of American Cabinet)

अमेरिकन मन्त्रिमण्डल सलाहकारों की एक समिति मात्र है जिसे आलोचकों ने पाकशाला मन्त्रिमण्डल, राष्ट्रपति की छाया आदि नामों से भी नवाजा है। यद्यपि मन्त्रिमण्डल के सदस्यों की नियुक्ति राष्ट्रपति करता है, लेकिन उसे सीनेट की स्वीकृति भी लेनी पड़ती है। लेकिन मन्त्रियों की पदच्युति में राष्ट्रपति को सीनेट की अनुमति की कोई जरूरत नहीं होती। इसलिए मन्त्रिमण्डल का अस्तित्व राष्ट्रपति और सीनेट की इच्छा पर ही निर्भर है। मन्त्रिमण्डल में राष्ट्रपति को एकमात्र स्वतन्त्र शक्तियों का स्रोत है। इसलिए मन्त्रिमण्डल के मन्त्रियों की इच्छा के स्थान पर राष्ट्रपति की इच्छा का ही शासन होता है। लास्की ने लिखा है-"अमेरिकी मन्त्रिमण्डल यूरोप के प्रतिनिधि शासन के आधार पर स्थापित मन्त्रिमण्डल से बिल्कुल भिन्न है।" संविधान के अनुसार अमेरिकन मन्त्रिमण्डल के सदस्य ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल के सदस्यों की तरह राष्ट्रपति के समकक्ष या सहयोगी नहीं है। वे केवल राष्ट्रपति के अनुचर हैं। राष्ट्रपति ही पूर्ण अधिनायक है तथा मन्त्रिमण्डल की सम्पूर्ण शक्ति का स्रोत है। अमेरिका

में मन्त्रिमण्डल के सदस्य न तो कांग्रेस के सदस्य होते हैं और न ही उसकी बैठकों में भाग लेते हैं। इसलिए कांग्रेस का मन्त्रिमण्डल पर कोई अंकुश नहीं है। इसी कारण अमेरिकन मन्त्रिमण्डल में आज तक न तो टीम भावना जन्म ले पाई है और सामूहिक उत्तरदायित्व के अभाव ने एकता की भावना को पूरी तरह नष्ट कर दिया है। इसी तरह अमेरिकन मन्त्रिमण्डल के सदस्यों में आत्मनिर्भरता तथा आत्मगौरव की भावना भी नहीं उभर सकी है। सार रूप में कहा जा सकता है कि अमेरिकन मन्त्रिमण्डल की स्थिति राष्ट्रपति की दया पर निर्भर है। उसके पास ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल जैसी शक्तिशाली स्थिति नहीं है।

अमेरिकन मन्त्रिमण्डल और ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल में तुलना

Comparison Betwteen the American Cabinet and the British Cabinet)

यदि ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल की भूमिका पर विचार किया जाए तो वह अमेरिकन मन्त्रिमण्डल की तुलना में काफी शक्तिशाली प्रतीत होता है। इन दोनों के बीच समानता तनिक भी नहीं है। दोनों में निम्नलिखित अन्तर हैं :-

(1) अमेरिकी मन्त्रिमण्डल सिर्फ सलाहकारों का एक निकाय है। उसकी सलाह को मानना या न मानना राष्ट्रपति की इच्छा है। परन्तु ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल वास्तविक कार्यपालिका है न कि एकमात्र सलाहकारी संस्था। शासन की नीति मन्त्रिमण्डल द्वारा ही निश्चित की जाती है।

(2) ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल का प्रत्येक सदस्य अनिवार्य रूप से संसद का सदस्य होता है और यदि वह नहीं होता तो 6 महीने के अन्दर उसे संसद की सदस्यता ग्रहण करनी पड़ती है या त्यागपत्र देना पड़ता है। इसके विपरीत अमेरिका में मन्त्रिगण न तो कांग्रेस के सदस्य होते हैं और न ही उसकी बैठकों या कार्यवाही में भाग लेते हैं।

(3) ब्रिटेन में मन्त्रिमण्डल के सदस्यों की नियुक्ति सम्राट द्वारा होती है। लेकिन यह मात्र औपचारिकता है। व्यवहार में मन्त्रिमण्डल का निर्माण प्रधानमन्त्री द्वारा किया जाता है। यही स्थिति मन्त्रियों की पदच्युति के सम्बन्ध में है, जबकि अमेरिका में मन्त्रिमण्डल की नियुक्ति तथा पदच्युति का औपचारिक तथा अनौपचारिक अधिकार पूर्णतया राष्ट्रपति के हाथ में है।

(4) ब्रिटिश प्रधानमन्त्री के मन्त्रिमण्डल के सदस्य उसके सहयोगी Collegue) तथा समकक्ष (Equal) हैं। मन्त्रिमण्डल में प्रधानमन्त्री की स्थिति समकक्षों में प्रथम (First among equals) या छोटे मोटे तारों के बीच चन्द्रमा (Moon among Lessers Stars) की भांति है। जबकि राष्ट्रपति के मन्त्रिमण्डल के सदस्य उसके दास (Servants) की भांति है। वे राष्ट्रपति के हाथ में खिलौना है। इसलिए अमेरिकी मन्त्रिमण्डल को परामर्श का मन्त्रिमण्डल कहा गया है।

(5) अमेरिका में मन्त्रियों का कार्यकाल राष्ट्रपति पर निर्भर करता है। राष्ट्रपति जब चाहे उन्हें हटा सकता है। परन्तु ब्रिटेन में मन्त्रिमण्डल का कार्यकाल कामन सदन पर निर्भर करता है।

(6) ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त पर कार्य करता है। मन्त्रिमण्डल एक टीम के समान होता है। जिसके सदस्य सामूहिक रूप से संसद के प्रति उत्तरदायी होते हैं, जबकि अमेरिका में मन्त्री राष्ट्रपति के प्रति उत्तरदायी होते हैं। व्यक्तिगत रूप से न कि सामूहिक रूप से।

(7) ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल में केवल एक राजनीतिक दल से सम्बन्ध रखने वाले सदस्य होते हैं। उनके राजनीतिक विचारों में एकता होती है। केवल संकट के समय में ही मिश्रित सरकार बनाई जाती है। इसके विपरीत अमेरिका में राजनीतिक विचारों में एकता के स्थान पर भिन्नता होती है। कई बार राष्ट्रपति दूसरी पार्टी के सदस्यों को भी अपने मन्त्रिमण्डल में शामिल कर लेता है।

(8) ब्रिटेन में संसदीय शासन प्रणाली होने के कारण मन्त्रिमण्डल व संसद में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। मन्त्रिमण्डल के सदस्य संसद के सदस्य होते हैं और उसी के प्रति उत्तरदायी होते हैं। दूसरी ओर अमेरिका में अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली होने के कारण मन्त्रिमण्डल विधानपालिका से पूर्णतया भिन्न है। वह न तो कांग्रेस की कार्यवाही में भाग लेती है और न ही बिल पेश करती है।

(9) ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल को वैधानिक मान्यता प्राप्त नहीं है, जबकि अमेरिकन मन्त्रिमण्डल को 1967 में पारित 25 वें संविधान संशोधन में संवैधानिक आधार प्राप्त हो गया है।

(10) ब्रिटेन में मन्त्री पद को राजनीतिक जीवन की चरम सफलता माना जाता है, लेकिन अमेरिका में इसे राजनीतिक जीवन से अवकाश समझा जाता है।

उपरोक्त विवेचन के बाद कहा जा सकता है कि ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल अमेरिका के मन्त्रिमण्डल से अधिक शक्तिशाली है। ब्रिटेन में जहां मन्त्री का पद राजनीतिक जीवन की सफलता माना जाता है, वहीं अमेरिका में मन्त्री पद के प्रति कोई आकर्षण नहीं है। इसलिए अमेरिकन मन्त्रिमण्डल की तुलना में ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल अधिक शक्तियों का स्वामी है।

चीन में कार्यपालिका का ढांचा

(Executive Structure in China)

आधुनिक युग में राष्ट्रीय सरकार के तीन महत्वपूर्ण अंगों में से कार्यपालिका सबसे महत्वपूर्ण अंग है। कार्यपालिका उस धुरी के समान है जिसके चारों ओर राज्य का वास्तविक प्रशासन यन्त्र घूमता है। इसके अन्तर्गत राज्य के प्रधान, प्रधानमन्त्री, मन्त्रिमण्डल, विभागों के प्रधान आदि को शामिल किया जाता है। चीन में न तो संयुक्त राज्य अमेरिका की भांति अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली को अपनाया गया है और न ही भारत की भांति संसदीय शासन प्रणाली को। चीन में राज्य का अध्यक्ष राष्ट्रपति होता है। लेकिन उसकी शक्तियां भारतीय राष्ट्रपति की अपेक्षा व्यापक है। शासन की अध्यक्ष प्रधानमन्त्री है। जो राज्य परिषद का अध्यक्ष होता है तथा राज्य परिषद चीन की सर्वोच्च प्रशासनिक संस्था है। राज्य परिषद को चीन की केन्द्रीय सरकार का शक्ति पुंज माना जाता है।

चीन की राजनीतिक व्यवस्था का विश्लेषण करने से पता चलता है कि 1954 के प्रथम संविधान में राष्ट्रीय कार्यपालिका के दो प्रमुख अंग थे। एक राज्याध्यक्ष-अन्य संसदीय देशों की भांति चीन का राष्ट्राध्यक्ष राष्ट्रपति होता था। दूसरा राज्य-परिषद यह चीनी गणराज्य की मन्त्रिपरिषद के रूप में कार्य करती थी। 1975 में दूसरे संविधान के अनुसार 'राष्ट्राध्यक्ष' के पद को समाप्त कर दिया गया और उसके कार्य व शक्तियां साम्यवादी दल की केन्द्रिय समिति और राष्ट्रीय जन कांग्रेस को सौंप दिए गए। राज्य परिषद को बरकरार रखा गया। लेकिन 1975 के संविधान के अनुच्छेद-19 के तहत इसे केन्द्रिय जन सरकार' (General People's Government) का नाम दिया गया। वर्तमान 1982 के चौथे संविधान में पुनः राष्ट्राध्यक्ष पद की व्यवस्था की गई और राज्य परिषद को चीन की केन्द्रिय सरकार के प्रशासन का केन्द्र बिन्दु माना गया।

चीनी गणतन्त्र का राष्ट्रपति

(President of the People's Republic of China)

चीन में आंशिक रूप से संदीय शासन प्रणाली को अपनाया गया है जिसमें दोहरी कार्यपालिका होती है। एक में नाममात्र की और दूसरी वास्तविक। राष्ट्रपति भारत की भांति चीनी गणतन्त्र का नाममात्र अध्यक्ष (Titular Head) होता है। चीन का प्रथम संविधान जिसे 1954 में अपनाया गया, में अध्यक्ष पद की व्यवस्था की गई और Mao-Tse-Tung को प्रथम राष्ट्रपति बनाया गया, जिसने राष्ट्रपति पद के साथ-साथ साम्यवादी दल के महासचिव का भी कार्यभार सम्भाला। 1975 के संविधान द्वारा राष्ट्रपति पद को समाप्त कर दिया गया। 1978 के संविधान में भी राष्ट्रपति और उप-राष्ट्रपति पद की कोई व्यवस्था नहीं की गई। परन्तु दिसम्बर 1982 के संविधान के अनुच्छेद-79 में चीनी गणराज्य के राष्ट्रपति और उप-राष्ट्रपति पद की व्यवस्था की गई और छठी राष्ट्रीय कांग्रेस ने जून 1983 से बुजुर्ग प्रतिष्ठित नेता ली जिआनियन (Li-Xianian), 1988 में General Yang Shangkn तथा 2003 में Hu-Jintao को चीनी गणतन्त्र का छठा राष्ट्रपति चुना गया।

राष्ट्रपति पद सम्बन्धी सामान्य व्यवस्थाएं

(General Provisions Concerning the Office of the President)

राष्ट्रपति का चुनाव (**Election of the President**) :- चीनी संविधान के अनुच्छेद-79 के तहत चीनी गणतन्त्र के राष्ट्रपति का चुनाव चीन की राष्ट्रीय जन कांग्रेस द्वारा किया जाता है।

कार्यकाल (**Tenure**) :- चीनी गणतन्त्र के वर्तमान संविधान के अनुसार राष्ट्रपति का कार्यकाल 5 वर्ष है जबकि इससे पूर्व 1954 के संविधान द्वारा यह अवधि चार वर्ष थी। लेकिन 5 वर्षों से पहले भी राष्ट्रपति का पद निम्नलिखित कारणों से रिक्त हो सकता है :-

(i) यदि वह स्वयं त्यागपत्र दे दे।

(ii) उसकी मृत्यु हो जाए।

(iii) Article-63 के अनुसार राष्ट्रीय जन कांग्रेस राष्ट्रपति को समय से पहले हटा सकती है।

योग्यताएं (Qualifications) :- चीन के राष्ट्रपति पद का चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवार के लिए निम्नलिखित योग्यताएं होनी आवश्यक हैं :-

(1) वह चीन का जन्मजात नागरिक हो।

(2) उसकी आयु 45 वर्ष या उससे अधिक हो।

(3) उसे चीन के राजनीतिक अधिकार प्राप्त हो। (विशेषकर मत देने व चुनाव लड़ने का)।

उपर्युक्त योग्यताओं के अलावा इस बात को भी ध्यान में रखा जाता है कि इस पद के लिए चुनाव लड़ने वाला उम्मीदवार देशभक्त, चरित्रवान, दल का वरिष्ठ व प्रतिष्ठित नेता हो। माओ-त्से-तुंग, लिऊ-शाओ-ची, ली जियानियन आदि ऐसे राष्ट्रपति थे जिन्होंने इस पद की गरिमा को चार चांद लगाए।

पुनः चुनाव (Re-Election) :- चीनी संविधान में राष्ट्रपति को पुनः चुनाव लड़ने का अधिकार दिया गया है। लेकिन यह भी व्यवस्था की गई है कि कोई भी व्यक्ति दो से अधिक बार इस पद पर नहीं रह सकता। अतः कोई भी राष्ट्रपति 10 वर्ष तक इस पद पर सुशोभित रह सकता है।

राष्ट्रपति पद का उत्तराधिकारी (Succession to the Presidency) :- चीनी संविधान के अनुच्छेद-84 के अनुसार यह व्यवस्था की गई है कि यदि चीनी राष्ट्रपति का पद किसी कारण रिक्त हो जाता है तो उप-राष्ट्रपति शेष समय के लिए देश का राष्ट्रपति बन जाएगा। यदि राष्ट्रपति और उप-राष्ट्रपति दोनों के पद रिक्त हों तो राष्ट्रीय जन कांग्रेस एक नए राष्ट्रपति और एक नए उप-राष्ट्रपति का चुनाव करेगी। जब तक इन दोनों अधिकारियों का चुनाव नहीं हो जाता तब तक राष्ट्रीय जन कांग्रेस की स्थाई समिति का अध्यक्ष चीन के राष्ट्रपति के रूप में कार्य करेगा। अनुच्छेद-83 के अनुसार राष्ट्रपति और उप-राष्ट्रपति जब तक अपने-अपने पद पर कार्य करते रहेंगे तब तक नये राष्ट्रपति और उप-राष्ट्रपति का चुनाव नहीं हो जाता।

बर्खास्तगी (Removal) :- यदि राष्ट्रपति अपने पद और इससे सम्बन्धित कार्यों या शक्तियों का उचित प्रयोग नहीं करता तो संविधान के अनुसार उसे समय से पहले भी हटाया जा सकता है। अनुच्छेद-63 में यह व्यवस्था है कि राष्ट्रीय जन कांग्रेस निर्धारित विधि द्वारा राष्ट्रपति को समय से पहले हटा सकती है।

राष्ट्रपति के कार्य या शक्तियां

(Functions and Powers of President)

चीनी गणराज्य के राष्ट्रपति के कार्यों व शक्तियों का वर्णन संविधान के अनुच्छेद 80 और 81 में किया गया है। संविधान के अनुसार उसे व्यापक कार्यकारी शक्तियां सौंपी गई हैं। लेकिन इन शक्तियों का प्रयोग वह भारत के राष्ट्रपति की भांति अपनी इच्छा से नहीं करता। संविधान के अनुसार राष्ट्रपति को अपनी शक्तियों का प्रयोग या तो राष्ट्रीय जन कांग्रेस या उसकी स्थाई समिति (Standing Committee) के निर्णयों के अनुसार करना पड़ता है। राष्ट्रपति की कुछ महत्वपूर्ण शक्तियों का वर्णन निम्नलिखित है :-

(1) **प्रशासकीय कार्य (Administrative Function) :-** चीनी राष्ट्रपति को राष्ट्र का अध्यक्ष होने के नाते महत्वपूर्ण प्रशासनिक कार्य सौंपे गए हैं। लेकिन भारत के राष्ट्रपति की भांति वह नाममात्र का प्रधान (Nominal Head) है और उसके प्रशासकीय अधिकारों का वास्तविक प्रयोग प्रधानमन्त्री (Premier) तथा उसके सहयोगी दल के प्रेजिडियम की इच्छा के अनुसार करते हैं। कहने को तो देश का समस्त प्रशासन उसी के नाम से चलाया जाता है। देश का सर्वोच्च शासक होने के नाते वह नियम अधिनियम भी बना सकता है। लेकिन व्यवहार में स्थिति इससे भिन्न है। वह केवल संवैधानिक प्रधान है, लेकिन समस्त प्रशासन की बागडोर प्रधानमन्त्री के हाथ में रहती है।

(2) **नियुक्तियां करने की शक्ति (Powers of making Appointments) :-** संविधान के अनुसार देश के महत्वपूर्ण पदों पर आसीन अधिकारियों की नियुक्ति चीनी गणराज्य के राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। राष्ट्रपति प्रधानमन्त्री (Premier), उप-प्रधानमन्त्री

(Vice-Premier) मन्त्रियों तथा आयोगों की अध्यक्षों, राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद के उपाध्यक्ष व अन्य सदस्यो को निर्धारित विधि द्वारा नियुक्ति करता है। राज्य परिषद के महासचिव की नियुक्ति भी राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। राष्ट्रपति की यह स्थिति मात्र संवधानिक है, जबकि व्यवहार में इन शक्तियों का प्रयोग वह अपनी इच्छा से नहीं अपितु साम्यवादी दल के प्रजिडियम की इच्छानुसार करता है।

(3) हटाने की शक्ति (Powers of Removal) :- चीनी राष्ट्रपति द्वारा जो नियुक्तियां की जाती हैं, उन नियुक्त अधिकारियों को पदच्युत करने की शक्ति भी उसे प्राप्त है। वह प्रधानमन्त्री, उप-प्रधानमन्त्री, आयोगों के अध्यक्षों, मन्त्रियों, राज्य परिषद के महासचिव, राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद के उपाध्यक्ष व अन्य सदस्यों को पदच्युत कर सकता है।

(4) सैनिक शक्तियां (Military Powers) :- चीनी गणराज्य का अध्यक्ष भारत के राष्ट्रपति की भांति सेना का सर्वोच्च अधिकारी होता है। समस्त सेनाओं (जल, थल, वायुसेना) का संचालन करना, उन्हें आदेश देने का राष्ट्रपति को पूर्ण अधिकार है। वह राष्ट्राध्यक्ष के साथ-साथ राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद का भी अध्यक्ष होता है। इसका उपाध्यक्ष और अन्य सदस्यों का चुनाव भी राष्ट्रपति द्वारा किया जाता है। वह समस्त देश या उसके किसी भाग में सैनिक शासन लागू कर सकता है। वह अपने सैन्य सम्बन्धी विचारों को राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद में रखकर अन्य सदस्यों को प्रभावित कर सकता है।

(5) कूटनीतिक शक्तियां (Diplomatic Power) :- राष्ट्रपति को विदेशी मामलों में भी व्यापक अधिकार प्राप्त हैं। राष्ट्र का सर्वोच्च अधिकारी होने के नाते अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में वह अपने देश का प्रतिनिधित्व करता है। चीन के राजदूतों को विदेशों में भेजना, वापस बुलाना और विदेशों से चीन में आने वाले राजदूतों को स्वीकार करना, उनके प्रमाण-पत्रों का निरीक्षण करना आदि राष्ट्रपति के कार्य हैं। वह किसी भी देश से युद्ध की घोषणा कर सकता है और किसी भी देश से युद्ध की घोषणा कर सकता है।

(6) सूचना प्राप्त करने की शक्ति (Power to get Information) :- राष्ट्र का सर्वोच्च पदाधिकारी होने के नाते उसे देश के समस्त विषयों की सूचना प्राप्त करने का अधिकार है। वह प्रधानमन्त्री द्वारा शासन से सम्बन्धित कोई भी सूचना प्राप्त कर सकता है तथा सूचना से अवगत करना प्रधानमन्त्री के लिए अनिवार्य है।

(7) निरीक्षणात्मक शक्तिया (Powers relating to Supervision) :- चीन के संविधान में राष्ट्रपति की निरीक्षणात्मक शक्तियों का उल्लेख किया गया है। वह सर्वोच्च राज्य सम्मेलन का अध्यक्ष होता है और सम्मेलन में वह अपनी इच्छानुसार कुछ सदस्यों को नियुक्त कर सकता है। सम्मेलन के महत्वपूर्ण विषयों में वह अपनी राय जाहिर करता है और सम्मेलन द्वारा लिए गए निर्णय को राष्ट्रीय जन कांग्रेस के पास भेजता है। चीन के गणराज्य के उपाध्यक्ष के चुने जाने से पूर्व उसकी शक्तियों को प्रयोग का अधिकार भी अध्यक्ष को दिया गया है।

(8) विविध शक्तियां (Miscellaneous Powers) :- चीनी गणराज्य का राष्ट्रपति निम्नलिखित विविध प्रकार के कार्य भी करता है। जैसे :-

(i) वह किसी भी व्यक्ति को क्षमादान दे सकता है।

(ii) उसे राज्यादेशों, उपाधियों एवं पदवियों के वितरण का भी अधिकार हे।

(iii) इनके अलावा अन्य सम्मानसूचक उपाधियां भी उसी द्वारा प्रदान की जाती है।

(9) स्वैच्छिक शक्तियां (Discreationary Powers) :- राष्ट्रपति की स्वैच्छिक शक्तियों से अभिप्राय: उन शक्तियों से है जिनका प्रयोग वह स्वयं अपनी इच्छा से करता है। ये शक्तियां निम्नलिखित हैं :-

(i) चीन में भेजे जाने वाले अन्य देशों के राजदूतों को स्वीकार करना या न करना।

(ii) चीन के प्रधानमन्त्री पद के लिए नियुक्त किए जाने वाले व्यक्ति की नामजदगी करना। राष्ट्रपति द्वारा नामजद किए गए व्यक्तियों में से ही राष्ट्रीय जन कांग्रेस प्रधानमन्त्री का चुनाव करती है।

राष्ट्रपति की स्थिति

(Position of the President)

चीन में आंशिक रूप से संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया गया है जिसके अनुसार देश के सर्वोच्च अधिकारी को नाममात्र

का अध्यक्ष बनाया गया है। संविधान द्वारा उसे जो शक्तियां प्रदान की गई हैं उनका प्रयोग वह स्वयं अपनी इच्छा से नहीं अपितु राष्ट्रीय जन कांग्रेस या इसकी स्थायी समिति के परामर्श से करता है। इसके अतिरिक्त राज्य परिषद (State Council) जो प्रशासन की नीति बनाती है और प्रशासन चलाती है, को अध्यक्ष के प्रति नहीं अपितु राष्ट्रीय जन कांग्रेस के प्रति उत्तरदायी बनाया गया है। इसी कारण संवैधानिक आलोचक यह विचार प्रकट करते हैं कि चलन का राष्ट्रपति देश का नाममात्र अध्यक्ष (Titular Head) ही प्रतीत होता है, लेकिन फिर भी यह अवश्य कहा जा सकता है कि उसकी स्थिति पूर्व सर्वोच्च सोवियत की प्रेजिडियम के अध्यक्ष की स्थिति से अधिक महत्वपूर्ण और शक्तिशाली है। इस सम्बन्ध में पीटर एच०एस०टांग ने लिखा है कि "इसप्रकार उसकी स्थिति पूर्व सर्वोच्च सोवियत के प्रजिडियम के अध्यक्ष के रूप में जो नाममात्र और अवैतनिक अध्यक्ष था, भिन्न है।" लेकिन व्यवहार में स्थिति यह है कि वह साम्यवादी दल के शीर्ष नेताओं में से चुना जाता है जिससे राज्य नीति निर्माण में भी उसका काफी प्रभाव होता है। लेकिन यह शक्ति उसे व्यवहारतः और अवैधानिक रूप से प्राप्त है। उसकी स्थिति काफी हद तक उसके व्यक्तित्व पर निर्भर करती है। महान व्यक्तित्व के व्यक्ति इस पद पर अपनी महान भूमिका निभा सकते हैं। इसके अतिरिक्त साम्यवादी दल का जनरल सचिव (General Secretary) और केन्द्रिय सैनिक आयोग का प्रधान होने के कारण उसकी वास्तविक स्थिति और भी शक्तिशाली हो सकती है। जैसे राष्ट्रपति जियांग जेमिन (Jiang Zemin) को 16 मार्च 1998 को फिर से चीन का राष्ट्रपति चुना गया जो साम्यवादी दल का जनरल सचिव और केन्द्रिय सैनिक आयोग का भी प्रधान था। उसकी भूमिका राजनीति में सक्रिय रही। वर्तमान राष्ट्रपति Hu-Tintau साम्यवादी दल का जनरल सचिव भी है। इससे भी यह आशा की जाती है कि यह राजनीति में सक्रिय एवं महत्वपूर्ण भूमिका अभिनीत करेगा। संक्षेप में राष्ट्रपति की स्थिति के संदर्भ में कहा जा सकता है कि चीनी संविधान ने राष्ट्रपति को एक संवैधानिक मुखिया ही बनाया है। भारत के राष्ट्रपति की भांति काफ़ी हद तक उसकी स्थिति उसके व्यक्तित्व, साम्यवादी दल पर नियन्त्रण व प्रभाव पर निर्भर है, जिनके द्वारा राष्ट्रपति प्रभावशाली महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

चीन का उपराष्ट्रपति

(Vice-President of China)

चीन का चौथा संविधान (1982) भारत तथा अमेरिका की भांति उप-राष्ट्रपति पद की व्यवस्था करता है। संविधान के अनुच्छेद-79 क अनुसार चीन में एक राष्ट्रपति व एक उप-राष्ट्रपति होगा। जब राष्ट्रपति का पद किसी कारण रिक्त हो जाता है तो उप-राष्ट्रपति ही शेष समय के लिए राष्ट्रपति पद पर कार्य करेगा। इस समय Zeng Dinghong चीन के उप-राष्ट्रपति हैं। इससे पूर्व राष्ट्रपति Hu-Zintao चीन के राष्ट्रपति थे।

उप-राष्ट्रपति पद सम्बन्धी सामान्य व्यवस्थाएं

(General Provisions Concerning the Office of the Vice-President)

उप-राष्ट्रपति का चुनाव (Election of Vice-Preseident) :- चीनी राष्ट्रपति के भांति उप-राष्ट्रपति का चुनाव भी चीन की राष्ट्रीय जन कांग्रेस (National People's Congress) द्वारा किया जाता है।

कार्यकाल (Tenure) :- चीन के उप-राष्ट्रपति का कार्यकाल वर्तमान संविधान के अनुसार 5 वर्ष है। लेकिन कुछ विशेष परिस्थितियों में उसका पद समय से पहले भी रिक्त हो सकता है जैसे-

(i) यदि वह स्वयं त्यागपत्र दे।

(ii) उसकी मृत्यु हो जाए।

(iii) राष्ट्रीय जन कांग्रेस भी उप-राष्ट्रपति को निर्धरित विधि द्वारा समय से पहले हटा सकती है।

योग्यताएं (Qualifications) :- चीन के उप-राष्ट्रपति पद का चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवार के लिए निम्न योग्यताओं का होना अनिवार्य है :-

(i) वह चीनी नागरिक हो।

(ii) उसकी आयु कम से कम 45 वर्ष या इससे ऊपर हो।

(iii) उसे मत देने और चुनाव लड़ने का अधिकार प्राप्त हो।

उप-राष्ट्रपति की भूमिका

(Role of Vice-Preseident)

चीन के संविधान द्वारा उप-राष्ट्रपति को भारतीय उप-राष्ट्रपति की भांति कोई विशेष शक्तियां नहीं दी गई हैं। संविधान क अनुच्छेद-82 में यह व्यवस्था है कि उप-राष्ट्रपति का कार्य राष्ट्रपति की सहायता करना है तथा वह उन शक्तियों का प्रयोग करेगा जो उसे राष्ट्रपति द्वारा सौंपी जायेंगी। संविधान के अनुच्छेद-84 में यह व्यवस्था है कि यदि राष्ट्रपति का पद निश्चित कार्यकाल की समाप्ति से पहले किसी कारण से रिक्त हो जाता है तो उप-राष्ट्रपति देश के राष्ट्रपति का पद संभालेगा। अत: संविधान के अन्तर्गत अनुच्छेद 82 व 84 के कार्यों के अतिरिक्त उप-राष्ट्रपति को कोई कार्य प्राप्त नहीं है। आज की बदलती हुई परिस्थितियों में विशेषकर 1990 के दशक के बाद उप-राष्ट्रपति की संवैधानिक भूमिका में कुछ परिवर्तन अवश्य आया है। उप-राष्ट्रपति साम्यवादी दल का महत्वपूर्ण और प्रभावशाली नेता होने के कारण शासन कार्यों में प्रभावशाली भूमिका अभिनीत कर सकता है। 16 मार्च 1998 को Hu-Jintao को तथा 2003 को Zeng Dinghong को उप-राष्ट्रपति राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया गया।

चीन की केन्द्रीय कार्यपालिका : राज्य परिषद

(Central Executive of China : The State Council)

चीन के 1954 के प्रथम संविधान द्वारा केन्द्रीय कार्यपालिका के दो प्रमुख अंग थे (i) राष्ट्राध्यक्ष (ii) राज्य परिषद। 1975 के संविधान द्वारा राष्ट्राध्यक्ष के पद को समाप्त कर दिया गया। लेकिन राजा राज्य परिषद को बरकरार रखा गया। 1982 के नवीन संविधान द्वारा भी इसे प्रमुख केन्द्रिय प्रशासनिक संस्था के रूप में स्वीकार किया गया। संविधान के अनुच्छेद-85 के तहत यह व्यवस्था की गई कि "राज्य परिषद चीनी गणतन्त्र की केन्द्रीय सरकार है तथा राज्य सत्ता के सर्वोच्च अंग की कार्यकारी संस्था है। राज्य परिषद राज्य प्रशासन का सर्वोच्च अंग है।" राज्य परिषद कुछ सीमा तक सोवियत संघ की मन्त्रिपरिषद (Council of Ministers) के स्वरूप से मिलती-जुलती है।

राज्य परिषद की रचना

(Composition of the State Council)

संविधान के अनुच्छेद 86 के अनुसार राज्य परिषद में एक प्रधानमन्त्री कुछ उप-प्रधानमन्त्री (Vice-Premier) मन्त्रिमण्डल के कार्यभारी (Incharges) मन्त्री आयोगों (Commissions) के कार्यभारी मंत्री, महालेखा परीक्षक (Auditor General) तथा महासचिव (Secretary General) होते हैं। संविधान के अनुसार उप-प्रधानमन्त्रियों और अन्य मन्त्रियों की संख्या निश्चित नहीं की गई है। इन्हें निर्धारित करने का अधिकार राष्ट्रीय जन कांग्रेस को दिया गया है। राज्य परिषद में एक प्रधानमन्त्री 3-4 उप-प्रधानमन्त्री लगभग 30 मंत्रीगण एवं 8 आयोगों के अध्यक्ष शामिल होते हैं।

नियुक्ति (Appointment) :- अनुच्छेद-62 के तहत यह व्यवस्था की गई है कि चीन के प्रधानमन्त्री का निर्णय चीनी राष्ट्रपति द्वारा गिए गए मनोनयन के आधार पर राष्ट्रीय लोक कांग्रेस करेगी। राज्य परिषद के मन्त्रियों तथा अन्य सदस्यों की नियुक्ति का निर्णय चीन के प्रधानमन्त्री द्वारा किए गए मनोनयन के आधार पर राष्ट्रीय कांग्रेस करती है। वास्तव में राज्य परिषद में ऐसे व्यक्तियों को ही लिया जाता है जिनकी सिफारिश चीन के साम्यवादी दल की केन्द्रीय समिति करती है। यहां यह बात ध्यान देने योग्य है कि जब राष्ट्रीय लोक कांग्रेस का अधिवेशन न हो रहा हो तो राष्ट्रीय जन कांग्रेस की स्थाई समिति प्रधानमन्त्री के परामर्शानुसार किसी व्यक्ति को राज्य परिषद का सदस्य नियुक्त कर सकती है।

कार्यकाल (Tenure) :- चीन के संविधान द्वारा राज्य परिषद का कार्यकाल राष्ट्रीय लोक कांग्रेस की भांति 5 वर्ष निश्चित किया गया है। लेकिन इस समयावधि से पहले भी निम्न कारणी से यह पद रिक्त हो सकता है :-

(i) किसी सदस्य की मृत्यु पर।

(ii) स्वयं त्याग पत्र द्वारा।

(iii) Article-63 के तहत राष्ट्रीय जन कांग्रेस राज्य परिषद के सदस्यों को पदच्युत कर सकती है।

राज्य परिषद का अध्यक्ष (Chairman of the State Council) :- संविधान के अनुच्छेद 88 में यह व्यवस्था की गई है कि "प्रधानमन्त्री राज्य परिषद के कार्यों का निर्देशन करेगा और उप-प्रधानमन्त्री उसके कार्य में उसकी सहायता करेंगे।" इस प्रकार राज्य परिषद का अध्यक्ष प्रधानमन्त्री होता है।

राज्य परिषद का उत्तरदायित्व (Accountability of State Council) :- संविधान के अनुच्छेद 92 के तहत "राज्य परिषद राष्ट्रीय जन कांग्रेस के प्रति उत्तरदायी है। लेकिन जब राष्ट्रीय लोक कांग्रेस का अधिवेशन न हो रहा हो तो उस समय राज्य परिषद लोक कांग्रेस की स्थायी समिति के प्रति उत्तरदायी होती है।"

यद्यपि संवैधानिक दृष्टि से राज्य परिषद को राष्ट्रीय लोक कांग्रेस के प्रति उत्तरदायी बनाया गया है। परन्तु प्रशासन के प्रत्येक क्षेत्र में सम्यवादी दल (Communist Party) का प्रभुत्व होने के कारण इस उत्तरदायित्व का कोई व्यवहारिक महत्व नहीं रहता।

अधिवेशन (Session) :- राज्य परिषद की बैठकों को प्रधानमन्त्री आवश्यकतानुसार बुलाता है और वही इसकी बैठकों की अध्यक्षता करता है। प्रधानमन्त्री की उपस्थिति में सबसे वरिष्ठ उप-प्रधानमन्त्री इसके अधिवेशन की अध्यक्षता करता है। सामान्यतः इसके सभी सदस्यों की एक साथ बैठक नहीं होती। परन्तु प्रधानमन्त्री के अधीन उप-प्रधानमन्त्री प्रायः मिलते रहते हैं।

राज्य-परिषद की शक्तियां

(Powers of the State-Council)

1982 के संविधान के अनुच्छेद 89 में राज्य परिषद के कार्यों का वर्णन किया गया है जिनका वर्णन निम्नलिखित है :-

(1) कानूनों का निर्माण राष्ट्रीय लोक कांग्रेस करती है। परन्तु कानूनों के निर्माण सम्बन्धी सुझाव राज्य परिषद राष्ट्रीय लोक कांग्रेस अथवा इसकी स्थाई समिति को पेश करती है।

(2) समस्त प्रशासन को चलाने हेतु कुछ स्थानीय अंग (Local Organs) स्थापित किए गए हैं। उन अंगों के कार्यों पर राजा परिषद अथवा सामूहिक नियन्त्रण रखती है।

(3) राष्ट्र के सामाजिक व आर्थिक विकास के लिए योजना तैयार करना, उसे लागू करना, ग्रामीण व शहरी विकास का निर्देशन करना राज्य परिषद के मुख्य कर्तव्य हैं।

(4) कानून, संविधान एवं आदेशों के अनुसार प्रशासकीय योजनाएं तैयार करना, निर्णय लेना, आदेश जारी करना और उनको लागू करना राज्य परिघन की मुख्य शक्ति है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि राज्य परिषद कानून व संविधान के अनुसार अपनी प्रशासकीय योजनाओं को लागू करती है और इस गन्तव्य हेतु आवश्यक निर्देश जारी करती है।

(5) विभिन्न आयोगों, मन्त्रालयों के कार्यों व दायित्वों को निर्धारित करना एवं उन्हें एकीकृत नेतृत्व प्रदान करना।

(6) राज्य परिषद राष्ट्रीय आर्थिक योजना और बजट तैयार करती है और इनको राष्ट्रीय जन कांग्रेस की स्वीकृति मिलने के पश्चात व्यवहारिक रूप में लागू करती है।

(7) शिक्षा, विज्ञान, संस्कृति, सार्वजनिक स्वास्थ्य और परिवार नियोजन का निर्देशन एवं प्रबन्ध करती है।

(8) राष्ट्रीय प्रतिरक्षा के निर्माण का निर्देशन व प्रबन्ध करती है।

(9) विदेशों में रहने वाले, चीनी नागरिकों के कानूनी अधिकारों व हितों की रक्षा करती है।

(10) विभिन्न आयोगों की अनुचित आज्ञाओं, नियमों एवं निर्देशों को संशोधित या रद्द करती है।

(11) राज्य प्रशासन की स्थानीय संस्थाओं के अनुचित निर्णयों, आज्ञाओं एवं नियमों को संशोधित या रद्द करती है।

(12) सीधे केन्द्र सरकार के अधीन देश के विभिन्न भागों में मार्शल ला लागू करने का निर्णय लेती है।

(13) राष्ट्रीयताओं से सम्बन्धित मामलों का प्रबन्धन करती है तथा अल्पसंख्यक राष्ट्रीयताओं के समान अधिकारों की रक्षा करती है।

(14) देश के भौगोलिक विभागों के विभाजन पर निर्माण की पुष्टि करती है।

(15) नागरिक मामलों, न्यायिक प्रशासन, सार्वजनिक सुरक्षा आदि का निर्देशन व प्रबन्ध करती है।

(16) राष्ट्रीय जन कांग्रेस व स्थायी समिति को कानून व अन्य मामलों से सम्बन्धित प्रस्ताव भेजती है।

(17) वैदेशिक एवं आन्तरिक व्यापार का नियन्त्रण करती है।

(18) स्वायत शासन प्राप्त क्षेत्रों, स्वाधीन काउण्टियों तथा नगरपालिकाओं आदि की सीमाओं और उनकी स्थितियों को निश्चित करती है।

(19) प्रशासनिक अंगों के आकार को निर्धारित करना, प्रशासनिक अधिकारियों को कानून के अधीन नियुक्त, पदच्युत एवं प्रशिक्षित करती है।

(20) अन्य ऐसे सभी कार्यों एवं शक्तियों का संपादन करना जो राष्ट्रीय जन कांग्रेस या स्थायी समिति द्वारा राज्य परिषद को सौंपे गए हैं।

राज्य परिषद की स्थिति

(Position of the State Council)

चीनी राज्य परिषद शासन का एक महत्वपूर्ण निकाय है। यह जनवादी चीन की कार्यपालिका का सर्वोच्च अंग है। इसके द्वारा जारी किए गए आदेशों व निर्णयों का महत्व जनवादी कांग्रेस अथवा स्थायी समिति द्वारा बनाए गए कानूनों से किसी भी तरह से कम नहीं हैं। लेकिन व्यवहार में राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस का ही प्रभुत्व होता है। इसका प्रमुख कारण यह है कि राज्य परिषद के अधिकांश सदस्य साम्यवादी दल की राजनीतिक समिति के भी सदस्य होते हैं। राज्य परिषद का सदस्य बनने के लिए जनवादी कांग्रेस का सदस्य होना जरूरी नहीं है। सत्य तो यह है कि राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस तथा राज्य परिषद दोनों पर ही साम्यवादी दल का नियन्त्रण होता है। प्रशासन सम्बन्धी सभी महत्वपूर्ण विषयों पर पहले साम्यवादी दल की केन्द्रीय समिति में विचार-विमर्श होता है और बाद में राष्ट्रीय परिषद में विचार किया जाता है। इसके अतिरिक्त प्रशासन में राज्य परिषद का नियन्त्रण भी नाममात्र का होता है, क्योंकि प्रशासनिक संगठन साम्यवादी दल की पहुंच के अन्तर्गत आता है। चीन की राजनीतिक व्यवस्था लोकतान्त्रिक केन्द्रवाद के सिद्धान्त पर आधारित है जिसमें लोकतन्त्र की अपेक्षा दलीय केन्द्रीयकरण की मात्रा अधिक है। राज्य परिषद को वह गौरव और अधिकार प्राप्त नहीं हैं जो ब्रिटेन, भारत तथा अन्य संसदीय देशों के मन्त्रिपरिषदों को प्राप्त है। जो अधिकार 1954 में इसे प्राप्त थे, अब नहीं रहे। सत्य तो यह है कि अब राज्य परिषद जन-कांग्रेस का कार्यकारी निकाय नहीं है और न ही चीनी जनवादी गणतन्त्र का सर्वोच्च निकाय।

चीनी प्रधानमन्त्री

(Prime Minister of China)

चीनी प्रधानमन्त्री का पद ब्रिटिश और भारतीय प्रधानमन्त्री की तुलना में काफी दुर्बल है। चीनी प्रधानमन्त्री राज्य परिषद का अध्यक्ष होता है। 1982 के संविधान के अन्तर्गत प्रधानमन्त्री का चुनाव गणराज्य के राष्ट्रपति की सिफारिश पर राष्ट्रीय जन-कांग्रेस द्वारा होता है। प्रधानमन्त्री के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह राष्ट्रीय जन-कांग्रेस का सदस्य हो। प्रधानमन्त्री की बर्खास्तगी का अधिकार भी राष्ट्रीय जन-कांग्रेस को ही है। इसलिए प्रधानमन्त्री का कार्यकाल राष्ट्रीय जनकांग्रेस की कृपा पर ही निर्भर है। लेकिन व्यवहार में राष्ट्रीय जन कांग्रेस पर साम्यवादी दल की केन्द्रीय समिति की अनुशंसा के बिना न तो प्रधानमन्त्री की नियुक्ति कर सकती है और न ही उसे हटा सकती है।

प्रधानमन्त्री का कार्य राज्य-परिषद की बैठकों को बुलाना है। प्रधानमन्त्री ही राज्य परिषद की बैठकों की अध्यक्षता करता ह तथा इसके कार्य का संचालन करता है। प्रधानमन्त्री की अनुपस्थिति में यह कार्य सबसे वरिष्ठ उप-प्रधानमन्त्री ही करता हे। प्रधानमन्त्री अपनी इच्छानुसार किसी भी मन्त्री को उसके पद से नहीं हटा सकता है। यह अधिकार तो राष्ट्रीय जन-कांग्रेस को है जो साम्यवादी दल की राष्ट्रीय समिति की इच्छा से ही ऐसा करती है। इसलिए चीनी प्रधानमन्त्री को वे अधिकार भी नहीं हैं जो ब्रिटेन और भारत में प्रधानमन्त्री को हैं। इससे स्पष्ट है कि चीनी प्रधानमन्त्री कोई कार्यकारी अधिकारी न होकर सर्वोच्च प्रशासनिक अधिकारी है जो राष्ट्रीय जन-कांग्रेस की इच्छानुसार ही कार्य करता है।

चीनी जनवादी गणतन्त्र में मन्त्रिपरिषद की स्थिति भी भारत व ब्रिटेन जैसी नहीं है। चीन में प्रधानमन्त्री का चुनाव न केवल राष्ट्रीय जन कांग्रेस द्वारा होता है बल्कि उसके लिए राज्य के अध्यक्ष की अनुमति लेना भी जरूरी करने और उसकी बैठकों का ही अधिकार है। संसदात्मक शासन व्यवस्थावादी अन्य देशों के प्रधानमन्त्रियों के प्रतिकूल उसे शासक दल का सर्वोच्च नेता होने का भी अधिकार नहीं है। चीनी प्रधानमन्त्री की स्थिति केवल इसी कारण शक्तिशाली हो सकती है कि वह साम्यवादी

दल का महत्वपूर्ण नेता होता है। कई बार प्रधानमन्त्री की स्थिति उसके व्यक्तित्व और कार्यशैली पर भी निर्भर करती है। 19.9 से 1976 तक चाऊ-एन-लाई का प्रधानमन्त्री पर पर बने रहना इस बात का प्रमाण है कि साम्यवादी दल का महत्वपूर्ण व्यक्ति या सदस्य होने के नाते उसकी स्थिति काफी शक्तिशाली है। कई विद्वानों ने उसे अंतरंग मन्त्रिमण्डल (Inner Cabinet) की संज्ञा दी है। लेकिन इसका यह अर्थ कदापि नहीं हो सकता कि चीनी प्रधानमन्त्री की स्थिति भारत व ब्रिटेन के प्रधानमन्त्री जैसी है। वास्तविकता तो यह है कि व्यवहार में चीनी प्रधानमन्त्री की स्थिति अधिक शक्तिशाली नहीं है। उसे तो हमेशा साम्यवादी दल की केन्द्रीय समिति की कृपा का पात्र बनना ही पड़ता है अन्यथा वह अधिक दिन तक अपने पद पर टिक नहीं सकता।

स्विट्जरलैण्ड में कार्यपालिका का ढांचा

(Executive Structure in Switzerland)

स्विस कार्यपालिका का ढांचा न तो संसदीय है और न ही अध्यक्षात्मक। स्विस कार्यपालिका का ढांचा संसदीय तथा अध्यक्षात्मक दोनों शासन प्रणालियों के गुणों को मिलाकर तैयार किया गया है और उन समस्त दोषों से बचने का प्रयास किया गया है जो ब्रिटेन और अमेरिका की कार्यपालिका में है। स्विस कार्यपालिका का ढांचा इस तरह है कि सरकार की कार्यपालक शक्तियां ब्रिटेन तथा अमेरिका की तरह किसी एक व्यक्ति में निहित न करके सात सदस्यों की एक परिषद को सौंपी गई है जिसे संघीय परिषद कहा जाता है। इसी कारण राजनीतिक विद्वान स्विस कार्यपालिका को मण्डलात्मक, बहुल या मिश्रित कार्यपालिका की संज्ञा देते हैं। इसका तात्पर्य यही निकलता है कि स्विस कार्यपालिका अपने आप में विचित्र है। कोडिंग ने लिखा है-"स्विस कार्यपालिका अनोखी संस्था है।" अन्य विद्वान भी यही मानते हैं कि स्विस संघीय कार्यपालिका अनूठी तथा अनुपम संस्था है। इस कार्यपालिका की अनूठी विशेषता यही है कि यह न तो संसदात्मक है और न ही अध्यक्षात्मक। इसकी प्रमुख विशेषताएं इसका मण्डलात्मक होना, दलगत राजनीति से विहीन, स्थायित्व का गुण, मत-स्वतन्त्रता, नेतृत्व-विहीन, कार्यपालिका का विधानपालिका की सेविका होना तथा सामाजिक उत्तरदायित्व का अभाव है।

संघीय परिषद

(The Federal Council)

रचना (Composition) :- संविधान की धारा-92 के अनुसार "स्विस राज्य मण्डल के सर्वोच्च निर्देशन तथा कार्यपालिका शक्ति 7 सदस्यों की एक संघीय परिषद द्वारा प्रयुक्त की जाती है।" अतः स्विस संविधान के अन्तर्गत एकल कार्यपालिका को न अपना कर बहुल कार्यपालिका (Plural Executive) को अपनाया गया है जिसमें राष्ट्र की कार्यकारी शक्तियां सात सदस्यों की संघीय परिषद को सौंपी गई हैं।

निर्वाचन पद्धति (Method of Election) :- 1848 के संविधान के अनुसार संघीय परिषद के सदस्यों का निर्वाचन संघीय सभा के दोनों सदनों की संयुक्त बैठक में किया जाता है। पार्षदों का जनता द्वारा प्रत्यक्ष निर्वाचन का प्रस्ताव भी कई बार आया है। लेकिन लोक निर्णय ने उसे अस्वीकृत कर दिया है।

कार्यकाल (Tenure) :- संविधान के अनुच्छेद-96 के अन्तर्गत संघीय परिषद के सदस्य चार वर्ष के लिए चुने जाते हैं। 1931 से पहले इसकी अवधि तीन वर्ष थी। लेकिन 1931 में इनके कार्यकाल को 3 वर्ष से बढ़ाकर 4 वर्ष कर दिया। व्यवहार में संघीय परिषद के सदस्य तब तक अपने पद पर रहते हैं जितना व्यवस्थापन विभाग के निम्न सदन राष्ट्रीय सभा (National Assembly) का कार्यकाल होता है। यदि सदन अपने कार्यकाल से पहले भंग हो जाता है तो संघीय परिषद भी समाप्त हो जाती है। उसके नव निर्वाचन होने पर संघीय परिषद का पुनर्निर्वाचन किया जाता है।

पुनः निर्वाचन (Re-Election) :- यद्यपि संघीय परिषद के सदस्यों का कार्यकाल चार वर्ष है, परन्तु इनके सदस्यों का बार-बार पुनर्निर्वाचन होता रहता है। फलस्वरूप उसका औसत कार्यकाल दस वर्ष हो जाता है। लेकिन ऐसे भी अनेक पार्षद हुए हैं जिन्होंने काफी लम्बे समय तक इस पद का उपयोग किया है। जैसे-डा० जीसट मारा 28 वर्षों तक, फिलिप एटर 23 वर्षों तक, कार्ल कौबलेट 14 वर्ष तक इस पद पर रहे हैं।

योग्यताएं (Qualifications) :- संविधान की धारा-96 के अन्तर्गत संघीय परिषद का सदस्य बनने के लिए निम्नलिखित योग्यताओं का होना अनिवार्य है :-

(1) वह स्विस नागरिक हो।

(2) उसमें वे सभी योग्यताएं हों जो राष्ट्रीय सभा का सदस्य बनने के लिए अनिवार्य हैं।

(3) 1914 के एक कानून द्वारा यह प्रतिबन्ध लगाया गया कि दो निकट सम्बन्धी संघीय परिषद के सदस्य नहीं हो सकते हैं।

अनुच्छेद-97 के अनुसार यह प्रतिबन्ध लगाया गया है कि संघीय परिषद के सदस्य राज्यमण्डल या किसी कैन्टन के अन्तर्गत अन्य कोई पद ग्रहण नहीं कर सकते और न ही कोई अन्य व्यवसाय कर सकते हैं। इन योग्यताओं के अतिरिक्त शासक को योग्य, अनुभवी, निपुण, श्रेष्ठ, मानसिक शक्ति, बुद्धि चैतन्य, व्यवहार कुशल, शांत स्वभाव आदि गुणों से सम्पन्न होना चाहिए। इस सम्बन्ध में कोडिंग का कहना है कि "स्विटजरलैण्ड में पद ग्रहण करने के लिए किसी व्यक्ति में विनम्रता का गुण होना आवश्यक है। व्यक्तिगत गुणों तथा सेवा के फलस्वरूप ही संघीय परिषद की सदस्यता को प्राप्त कर सकता है।"

वेतन और भत्ते (Salary and Allowances) :- संघीय परिषद के सदस्य को संघीय निधि से 41,000 फ्रेंक (Francs) वार्षिक वेतन मिलता है। 55 वर्ष की आयु के बाद 10 वर्षों तक पार्षद रह चुके व्यक्ति को निवृत्ति वेतन (Pension) दिया जाता है। जो उनके वेतन का 40 से लेकर 60% तक होता है। इसके अतिरिक्त परिषद के प्रधान को विशेष भत्ते के रूप में 3000 फ्रांक (Francs) दिए जाते हैं। परिषद को मिलने वाले वेतन पर केवल वरन कैण्टन की सरकार को ही कर लगाने का अधिकार है।

संघीय परिषद के सदस्यों के विशेषाधिकार (Special Previliges of Members of the Federal Council) :- संघीय परिषद के सदस्यों को बहुत सी सुविधाएं और विशषाधिकार प्राप्त हैं जो संघीय सदस्यों को दी जाती हैं। संघीय परिषद के सदस्य के रूप में वे अनिवार्य सैनिक सेवा से मुक्त रहते हैं और उनके विरुद्ध किसी भी प्रकार की न्यायालीय कार्यवाही नहीं की जा सकती। उसके विरुद्ध किसी भी प्रकार का फौजदारी अभियोग नहीं चलाया जा सकता। यदि संघीय परिषद स्वय ऐसा करने का अधिकार दे और उस सदस्य को विशेष अधिकारों से मुक्त कर दे।

संघीय परिषद का प्रधान (President of the Federal Council) :- संघीय परिषद का एक प्रधान और एक उप-प्रधान होता है। इनका चुनाव संघीय परिषद के सात सदस्यों में से संघीय सभा द्वारा दोनों सदनों की संयुक्त बैठक में एक वर्ष के लिए किया जाता है। इसके प्रधान को राष्ट्रपति तथा उप-प्रधान को उप-राष्ट्रपति कहते हैं।

अधिवेशन और गणपूर्ति (Session and Quorum) :- साधारणतया संघीय परिषद के बैठकें सप्ताह मे दो बार होती हैं। उसकी कार्यवाही गुप्त होती है। गणपूर्ति के लिए चार सदस्यों की उपस्थिति अनिवार्य है। निर्णय बहुमत से होता है। कोई भी सदस्य बिना परिषद की आज्ञा के बैठक से अनुपस्थित नहीं रह सकता। परिषद के अध्यक्ष को निर्णायक मत देने का अधिकार है। संघीय चांसलर (Federal Chancellor) जो विधान सभा व संघीय परिषद कार्यालय का अध्यक्ष होता है। संघीय परिषद क सचिव के रूप में संघीय परिषद की बैठकों में उपस्थित रहता है। चांसलर के बदले कोई उप-चांसलर भी इसके कार्यों को कर सकता है।

प्रशासकीय विभाग (Administrative Department) :- स्विस प्रशासन को सात विभागों में बांटा गया है। प्रत्येक विभाग का अध्यक्ष संघीय परिषद का सदस्य होता है। सात प्रशासकीय विभाग, जिनका विभाजन फ्रांस की भांति कार्यपालिका विनिक्रम से हुआ है :-

1. Political Department.
2. Department of Interior.
3. Department of Justice and Police.
4. Military Department
5. Department of Finance and Customs.
6. Department of Public Economy.
7. Post of Railway Department.

संघीय परिषद के अधिकार एवं कार्य

(Powers and Functions of the Federal Council)

सघीय परिषद की शक्तियों एवं कार्यों का वर्णन विस्तार सहित संविधान के अनुच्छेद-102 में किया गया है। इसके कार्य

मुख्यतया प्रशासनिक हैं। लेकिन अनुच्छेद-95 के अनुसार इसे 'सर्वोच्च निर्देशिका तथा कार्यपालिका शक्ति भी प्राप्त हैं। (Power of the Supreme Directiv and Executive Authority) इस प्रकार प्रशासनिक शक्तियों के अलावा इसे कुछ महत्वपूर्ण कार्यकारी, विधायिनी, वित्तीय व न्यायिक शक्तियां भी प्राप्त हैं जिनका वर्णन निम्नखित है :-

कार्यपालिका शक्तियां (Executive Powers) :-

संघीय परिषद की कार्यकारी शक्तियां निम्नलिखित हैं :-

(i) नियुक्तियां करने का अधिकार (Powers of Appointment) :- संघीय परिषद उन समस्त पदाधिकारियों की नियुक्ति करती है जिन पदों पर निर्वाचन द्वारा नियुक्ति नहीं की जाती या जिनकी नियुक्ति व्यवस्थापन विभाग के दोनों सदनों के संयुक्त अधिवेशन में की जाने की व्यवस्था नहीं है।

(ii) बजट तैयार करना (To Prepare the Budget) :- संघीय परिषद के जिस सदस्य के अधिकार में राजकीय वित्त तथा आयात एवं निर्यात विभाग (Department of Finance and Customs) होता है। वह प्रतिवर्ष आय व्यय का बजट तैयार करता है। उसे व्यवस्थापिका के दोनों सदनों के समक्ष प्रस्तुत करके पास करवाता है और पास होने पर उसके अनुसार वह राज्य के करों को वसूल करने और वसूल किए गए धन के व्यय की व्यवस्था करता है।

(iii) देश में शान्ति और सुव्यवस्था की स्थापना (To Establish Peace in the Country) :- संघीय परिषद देश में शान्ति और व्यवस्था बनाए रखने के लिए सेना का संगठन और पुलिस की व्यवस्था करती है।

(iv) विधियों का पालन करवाना (To Enforce Law) :- संघीय परिवार, व्यवस्थापन विभाग द्वारा निर्मित विधियों का पालन करवाती है। इसके लिए वह आवश्यक निर्देश या नियम भी बना सकती है।

(v) कैण्टनों के संविधान की सुरक्षा (To Safeguard the Constitution of the Contons) :- संघीय परिषद कैण्टनों के संविधानों की सुरक्षा करती है और आवश्यकतानुसार उनमें संशोधन की भी व्यवस्था करती है।

(vi) कार्यों की वार्षिक रिपोर्ट तैयार करना (To Prepare the Annual Report of Activities) :- संघीय परिषद अपने आन्तरिक और बाह्य क्षेत्र में किए गए समस्त कार्यों की वार्षिक रिपोर्ट तैयार करती है और उसे व्यवस्थापन के दोनों सदनों के सामने पेश करती है।

(vii) विदेशों से सम्बन्धों की स्थापना (To Establish Relations with Foreign Countries) :- संघीय परिषद राष्ट्र के वैदेशिक मामलों को संचालित करती है। वह समय-समय पर अन्य देशों के साथ सन्धियां, समझौते करती है।

वैधानिक शक्तियां

(Legislative Powers)

संघीय परिषद की विधि निर्माण में भी महत्वपूर्ण भूमिका है। अनुच्छेद-102(4) के तहत "यह संघीय सभा में कानूनों के प्रारूप प्रस्तुत करती है तथा परिषदों या कैन्टनों द्वारा प्रस्तुत प्रस्तावों पर प्रारम्भिक प्रतिवेदन देती है।" इसके सदस्य विधानमण्डल के सदस्य नहीं होते, लेकिन वे किसी भी सदन की बैठक में भाग ले सकते हैं। अपने विचार, सुझाव, प्रस्ताव रख सकते हैं, वाद-विवाद में भाग ले सकते हैं। संघीय परिषद स्वेच्छा से या विधानसभा के निर्देश से विधेयक भी प्रेषित कर सकती है। वह सभा में प्रस्तुत होने वाले विधेयकों का परीक्षण करती है और संवैधानिक दृष्टि से उन्हें त्रुटिरहित बनाती है। प्रत्येक नया विधायन संघीय परिषद से प्रारम्भ होता है। संघीय परिषद विधेयक का प्रारूप ही तैयार नहीं करती अपितु बाद के उपक्रमों में भी वह सभा को नेतृत्व प्रदान करती है। इसका भार परिषद के एक सदस्य को सौंप दिया जाता है। जो विधायक समिति से विचार विमर्श करता है, उसकी बैठकों में भाग लेता है तथा उसे परामर्श देता है। संघीय परिषद के तत्वाधान में विधानमण्डल द्वारा पारित सभी विधेयक छपते हैं तथा इसके आदेश से निर्धारित तिथि से व्यवहार में लाए जाते हैं। इस संदर्भ में प्रो० रैपर्ड का कथन है कि यह "सर्वाधिक उत्तरदायी तथा भावपूर्ण कार्य विधानमण्डल का नहीं बल्कि कार्यपालिका का है।" संघीय परिषद सभा की समितियों, कार्यवाही और निर्णयों को भी प्रभावित करती है। संघीय सभा अपने कानूनों की व्याख्या अथवा स्पष्टीकरण हेतु संघीय परिषद को विनियम बनाने का अधिकार देती है। अतः संघीय परिषद प्रतिवर्ष विनियम तथा अधिनियम प्रसारित का प्रत्यक्ष रूप से विधि निर्माण में भाग लेती है।

वित्तीय शक्तियां

(Financial Powers)

संविधान में स्पष्ट है कि संघीय परिषद "राज्यमण्डल के वित्त का प्रशासन करती है। बजट तैयार करती है तथा आय व्यय का खाता रखती है।" संघीय परिषद, सघीय सभा की स्वीकृति से राजस्व एकत्र करती है। तत्पश्चात् वह एकत्रित राजस्व के व्यय का अधिक्षण करती है।

संकटकालीन शक्तियां

(Emergency Powers)

स्विस संविधान कार्यपालिका को संकटकाल में कोई विशेष अधिकार प्रदान नहीं करता। लेकिन आन्तरिक या अन्तराष्ट्रीय स्थिति से उत्पन्न संकटकालीन (Emergency) से संघीय सभा ने सदा परिषद को पूर्ण अधिकार सौंप दिया है। उदाहरण स्वरूप [illegible] 1853 और 1870 ई० में देश की तटस्थता के रक्षार्थ 1914 तथा 1939 ई० में विश्व युद्ध के समय राष्ट्र की तटस्थता, स्वतन्त्रता तथा आर्थिक हितों की रक्षा हेतु और 1930 में आर्थिक संकट का सामना करने के लिए संघीय परिषद को 'पूर्णाधिकार सौंप गये।

न्यायिक शक्तियां

(Judicial Powers)

संघीय परिषद को कुछ न्यायिक शक्तियां भी प्राप्त हैं। वह कुछ विशेष प्रकार की अन्तर्राष्ट्रीय संघीय तथा संविधान की [illegible] धाराओं जैसे- 183 (शुल्क रहित सैनिक अस्त्र-शस्त्र) 51 (जिसूट धार्मिक समुदाय) 53 (कब्रिस्तान) आदि के अन्तर्गत [illegible] विवादों के सम्बन्ध में की गई अपीलों पर निर्णय देती है। अन्य देशों की कार्यपालिका की भांति उसे क्षमादान (Pardon) का अधिकार प्राप्त नहीं है।

निष्कर्ष रूप में लावेल ने इस संदर्भ में लिखा है कि "संघीय परिषद की मुख्य शक्ति स्रोत कहा जा सकता है और निश्चित रूप में यह राष्ट्रीय सरकार का सन्तुलन चक्र है।"

स्विस राज्य मण्डल का राष्ट्रपति

(President of the Swiss Confederation)

निर्वाचन (Election) :- संघ की मन्त्रिपरिषद का सभापति राष्ट्रपति कहलाता है। इसका निर्वाचन प्रतिवर्ष संघीय सभा दोनों सदनों की संयुक्त बैठक में करती है। संविधान द्वारा राष्ट्रपति पद के लिए किसी विशेष योग्यता का वर्णन नहीं किया गया है। उम्मीदवार को केवल संघीय परिषद का सदस्य होना आवश्यक है। इसमें ज्येष्ठता के सिद्धान्त का पालन किया जाता है।

कार्यकाल (Tenure) :- स्विस राष्ट्रपति का कार्यकाल एक वर्ष होता है। अवकाश ग्रहण करने वाला राष्ट्रपति पुनः उसी वर्ष न तो राष्ट्रपति बन सकता है और न ही उप-राष्ट्रपति। संविधान में यह स्पष्ट किया गया है कि अवकाश ग्रहण करने वाला राष्ट्रपति पुनः उससे अगले वर्ष न तो राष्ट्रपति होगा और न ही उपराष्ट्रपति। लेकिन एक वर्ष के अवकाश के उपरान्त वह पुनः निर्वाचित हो सकता है।

वेतन और भत्ते (Salary and Allowances) :- राष्ट्रपति को संघीय परिषद के अन्य सदस्यों के समान ही वेतन मिलता है। उसे संघीय निधि से 41000 Francs वार्षिक वेतन मिलता है और 3000 Francs प्रतिमाह अतिरिक्त भत्ते के रूप में मिलता है, जो अन्य सदस्यों को नहीं मिलता। इस अतिरिक्त भत्ते को वह आमोद-प्रमोद, मेहमानवाजी पर खर्च करता है।

राष्ट्रपति के कार्य

(Functions of the President)

स्विस राष्ट्रपति का पद भी संघीय परिषद की भांति नया और अनोखा है। इसमें ब्रिटिश प्रधानमन्त्री और सम्राट दोनों के पदों को शामिल किया गया है। वह राज्य का प्रधान होने के साथ-साथ शासन का प्रधान भी है। लेकिन उसकी तुलना न तो ब्रिटिश

प्रधानमन्त्री से की जा सकती है और न ही ब्रिटिश सम्राट से। ब्रिटिश प्रधानमन्त्री को उससे अधिक शक्तियां प्राप्त हैं तथा ब्रिटिश सम्राट को उससे अधिक गौरव व सम्मान प्राप्त है। उसका पद शक्तिहीन है। राष्ट्र के अध्यक्ष के रूप में वह कुछ रस्मी कार्यों का संचालन करता है। जैसे :-

(1) वह संघीय परिषद का अध्यक्ष होने के नाते उसकी बैठकों की अध्यक्षता करता है।

(2) ग्रन्थि (Tie) की दशा में (एक समान वोट होने पर) वह निर्णायक मत (Casting Vote) देता है।

(3) राष्ट्रपति प्रशासन के सात विभागों में से किसी एक विभाग का संचालन करता है। मुख्यतया राजनीतिक विभाग का। इसके साथ-साथ वह अन्य विभागों का सामान्य निरीक्षण (General Supervision) करता है।

(4) संकट काल में संघीय परिषद द्वारा उसे समस्त अधिकारों को हस्तांतरण तथा परिषद के अनुमोदन को उसका कार्य संचालन करता है।

(5) महत्वपूर्ण राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय अवसरों और उत्सवों में वह राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करता है।

(6) विधायिका द्वारा पारित विधेयकों पर राष्ट्रपति हस्ताक्षर करता है। लेकिन इस सम्बन्ध में उसे भारत और अमेरिका के राष्ट्रपति की भांति निषेधाधिकार (Veto Power) प्राप्त नहीं है।

(7) वह संघीय परिषद के अन्य सदस्यों के कार्यों का निरीक्षण करता है किन्तु वह किसी भी सदस्य को अपनी बात मनवाने के लिए बाध्य नहीं कर सकता।

(8) वह विदेशी राष्ट्रों के मुखियों, राजदूतों को स्वीकार करता है, उनका स्वागत करता है। विदेशी राजदूतों का मान-पत्र (Credentials) स्वीकार करता है।

(9) यद्यपि संवैधानिक दृष्टि से राष्ट्रपति को अधिक अधिकार प्राप्त नहीं है। लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से अनेक अधिकारों का प्रयोग कर सकता है। साधारणतया उसके अधिकार क्षेत्र में वैदेशिक विभाग होता है। (Foreign Department) और वह देश की विदेश नीति का कर्णधार होने के नाते संघ के अन्य विभागों पर अपना प्रभाव डाल सकता है।

(10) राष्ट्रपति अपने दल का महत्वपूर्ण नेता और राष्ट्र का प्रमुख अधिकारी होने के नाते संघीय परिषद के अन्य सदस्यों की अपेक्षा जनता की श्रद्धा और सम्मान का पात्र रहता है।

(11) वह राष्ट्र का प्रमुख प्रवक्ता होता है।

स्विस राष्ट्रपति की स्थिति

(Position of Swiss President)

स्विस राष्ट्रपति की स्थिति के सम्बन्ध में रैवर्ड ने लिखा है कि "प्रधान के पद की कोई विशेष राष्ट्रीय महता नहीं है। उसका न कोई विशेष अधिकार है और न ही विशेष प्रभाव।" उसे न तो संघीय परिषद के सदस्यों को नियुक्त करने का और न ही उन्हें अपदस्थ करने का अधिकार है। उसके सभी अधिकार उसके अन्य साथियों के समान है। किसी भी स्थिति में उसकी स्थिति संघीय परिषद के अन्य सदस्यों से उच्च नहीं है। वह न तो राष्ट्र का प्रमुख प्रशासक है, न समकक्षों में प्रथम (Primus inter Pares) है और न ही उसका उत्तरदायित्व अन्य पार्षदों से अधिक है। अन्य सदस्यों के मेल-मिलाप के बिना वह कोई कार्य नहीं कर सकता। उसका पद न तो अमेरिकी राष्ट्रपति की तरह शक्तिशाली है और न ही भारत के राष्ट्रपति या ब्रिटेन के सम्राट की भांति आदर व सम्मान वाला है। वह आदर और प्रभाव दोनों से वंचित है। लॉवेल ने राष्ट्रपति की स्थिति का सार इन शब्दों में व्यक्त किया है "राष्ट्रपति साधारण रूप से राष्ट्र की कार्यपालिका समिति का अध्यक्ष होता है इस कारण वह यह जानने का प्रयत्न करता है कि उसके साथी क्या कर रहे है और राज्य के नाममात्र के अध्यक्ष के रूप में औपचारिक कार्यों को पूरा करता है।" परन्तु लॉवेल के कथन में पूर्णतया सत्यता नहीं है। राष्ट्रपति का पद स्विस शासन में सर्वोच्च पद है। राष्ट्रपति के रूप में वह समस्त राष्ट्र का प्रतीक होता है। राष्ट्रीय उत्सवों और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के समारोहों में उसे विशेष सम्मान व स्थान प्राप्त होता है।

उपरोक्त विवेचन के बाद कहा जा सकता है कि स्विस कार्यपालिका ब्रिटेन की तरह न तो संसदात्मक है और न ही अमेरिका की तरह अध्यक्षात्मक वस्तुतः यह दोनों कार्यपालिकों के गुणों का अनूठा मिश्रण है। स्विस कार्यपालिका का अध्यक्ष अधिक

शक्तिशाली नहीं है। वह न तो राष्ट्र का प्रमुख प्रशासक है और न ही समकक्षों में प्रथम है। स्विस कार्यपालिका में स्थायित्व तो है, लेकिन इसमें सामाजिक उत्तरदायित्व का नितान्त अभाव है। इसका प्रमुख गुण यह है कि यह स्थायित्व और दलगत राजनीति से परे है।

--- o ----

अध्याय-8

संविधानिक ढांचा — न्यायपालिका

(Constitutional Structure - Judiciary)

कार्यपालिका अपने आधुनिक रूप में सभ्य समाज की एक महत्वपूर्ण खोज है। आज समाज में प्रत्येक नागरिक यह आशा करता है कि उसके साथ मनमानी नहीं की जाएगी। ऐसी सुरक्षा की भावना प्रदान करने के लिए उसे केवल स्वतन्त्र व निष्पक्ष न्यायपालिका ही विश्वस्त कर सकती है। आज नागरिक स्वतन्त्रओं व अधिकारों की रक्षा के लिए न्यायपालिका के संरक्षण की अत्यधिक आवश्यकता महसूस करते हुए सभी लोकतन्त्रीय देशों के साथ-साथ तानाशाही देशों में भी न्यायपालिका की स्थाना की गई है चाहे वह नाममात्र की ही क्यों न हो। आज न्यायपालिका सरकार का वह आवश्यक अंग बन चुका है जो कार्यपालिका तथा विधायिका के अतिक्रमण पर रोक तो लगाता ही है, साथ में नागरिक स्वतन्त्रताओं व अधिकारों की गारन्टी भी देता है। न्यायपालिका के पास ही वह शक्ति है जो कार्यपालिका तथा विधायिका को संविधान की मर्यादाओं का अतिक्रमण करने से रोकती है। निष्पक्ष व स्वतन्त्र न्यायपालिका ही विधि का शासन स्थापित करके राजनीतिक समाज की कार्यकुशलता में वृद्धि करती है और निरंकुश शक्ति पर प्रतिबन्ध लगाती है। इसी कारण आज इसे संविधान और संविधानवाद दोनों की रक्षक माना जाता है।

न्यायपालिका का अर्थ एवं परिभाषा

(Meaning and Definition of Judiciary)

साधारण अर्थ में न्यायपालिका सरकार का वह अंग है जो संविधान की व्याख्या करता है और कानून का उल्लंघन करने वालों को दण्ड देता है। यह उन व्यक्तियों का समूह भी है जिन्हें न्याय करने का अधिकार प्राप्त है। यह राजनीतिक प्रक्रिया का वह अंग है जो राजनीतिक शक्ति के अत्यधिक केन्द्रीयकरण और जनतन्त्र की धांधलियों से नागरिक स्वतन्त्रताओं व अधिकारों की रक्षा करता है। कुछ विद्वानों ने न्यायपालिका को परिभाषित करते हुए कहा है :-

(1) वाल्टन एच० हेमिल्टन के अनुसार-"न्यायिक प्रक्रिया न्यायधीशों के द्वारा झगड़ों का निर्णय करने की मानसिक प्रविधि है।"

(2) लास्की के अनुसार-"न्यायपालिका अधिकारियों का ऐसा समूह है, जिसका कार्य, राज्य के किसी कानून विशेष के उल्लंघन की शिकायत, जो विभिन्न नागरिकों व राज्य के बीच एक दूसरे के खिलाफ होती है, का समाधान व फैसला करना है।"

(3) गॉले के अनुसार-"न्यायपालिका सरकार का वह अंग है जिसका कार्य अधिकारों का निश्चय और उन पर निर्णय देना, अपराधियों को दण्ड देना तथा निर्बलों की अत्याचार से रक्षा करना है।

(4) ब्राइस के अनुसार-"न्यायपालिका किसी सरकार की उत्तमता को जांचने की कसौटी है।"

इस प्रकार कहा जा सकता है कि न्यायपालिका सरकार का ऐसा अंग है जो सरकार की निरंकुशता से नागरिकों को बचाता है, कानून की व्याख्या करता है और गलत कार्य करने वालों को दण्ड देता है। गार्नर ने इसे सभ्य समाज का मेरुदण्ड कहा है।

न्यायपालिका का संगठन (Organisation of Judiciary) :- प्रत्येक देश में एक सर्वोच्च न्यायालय तथा उसके अधीन अनेक राज्य व जिला न्यायालय होते हैं। इस त्रिस्तरीय व्यवस्था के बाद भी देश की सम्पूर्ण न्यायतन्त्र एकरूपता ही दिखाता है।

न्यायपालिका संविधान का ही अपना आदर्श मानती है और उसके मूल्यों को बनाए रखने तथा प्राप्त करने में नागरिकों व सरकार को पूरा सहयोग देती है। दीवानी तथा फौजदारी अभियोगों के लिए अलग-अलग न्यायालय होते हैं। न्यायपालिका की संरचना पिरामिड की तरह होती है जो ऊपर से नीचे की तरफ खुलती जाती है। जैसे-जैसे प्रादेशिक स्तर से केन्द्रीय स्तर की तरफ कदम रखे जाते हैं, वैसे-वैसे यह संख्या कम होती जाती है। राजनीतिक व्यवस्था की प्रकृति में अन्तर आने पर न्यायपालिका की प्रकृति भी बदल जाती है। प्रत्येक देश में न्यायिक संगठन तो लगभग एक जैसा ही होता है, लेकिन राजनीतिक व्यवस्था की प्रकृति के अनुसार उनकी कार्यप्रणाली में अवश्य अन्तर आ जाता है। भारत में तो सामान्य न्यायालय ही हैं, लेकिन फ्रांस में प्रशासकीय व सामान्य दोनों प्रकार के न्यायालय हैं। भारत में लोक न्यायालयों का नया रूप उभरा है। भारत तथा अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय पुनरावलोकन की शक्ति से युक्त है, जबकि अन्य देशों में इसका अभाव है। प्रत्येक देश में सैनिक न्यायालय भी हैं जो स्वतन्त्र क्षेत्राधिकार रखते हैं। आजकी भारत में त्वरित अदालतों की भी व्यवस्था की जा रही है ताकि नागरिकों को जल्दी न्याय प्राप्त हो सके। भारत में केन्द्र स्तर पर तो सर्वोच्च न्यायालय है जो सारे भारत के लिए है। प्रान्तों के अपने अलग-अलग न्यायालय हैं। प्रान्तों के अन्दर जिला स्तर पर भी जिला न्यायालयों की व्यवस्था की गई है। दीवानी और फौजदारी मुकद्दमों के लिए अलग-अलग न्यायालय हैं। अमेरिका में भी न्यायपालिका की भारत की तरह ही त्रिस्तरीय व्यवस्था है।

न्यायधीशों की नियुक्ति एवं कार्यकाल (Appointment and Tenure of Judges) :- प्रत्येक देश में न्यायधीशों की नियुक्ति के तरीके व कार्यकाल भिन्न-भिन्न हैं। न्यायधीशों की नियुक्ति कार्यपालिका द्वारा, व्यवस्थापिका द्वारा व जनता द्वारा, किसी भी तरीके से हो सकती है। प्रायः न्यायधीशों को कार्यपालिका द्वारा निर्वाचित करने पर जोर दिया जाता है। इसके अन्तर्गत न्यायधीशों की योग्यता व सेवाकाल को ध्यान में रखा जाता है। भारत में यही पद्धति प्रचलित है। लेकिन इसमें प्रमुख दोष यह है कि इसमें राजनीतिक दलबन्दी का शिकार न्यायपालिका हो सकती है। अमेरिका में भी यही प्रणाली प्रचलित है। वहा पर न्यायधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति ही करता है। अमेरिका के कुछ राज्यों में न्यायधीश विधानमण्डल द्वारा भी चुने जाते हैं। रूस में भी सुप्रीम सोवियत निम्न न्यायालयों को छोड़कर शेष सभी न्यायालयों में न्यायधीशों की नियुक्ति निश्चित काल के लिए करती है। इस व्यवस्था में भी दलीय गुटबन्दी का दोष है। यह व्यवस्था भी कार्यपालिका द्वारा नियुक्ति की तरह ही है। स्विट्जरलैण्ड में न्यायधीशों का चुनाव जनता द्वारा ही किया जाता है। आजकल भारत जैसे लोकतन्त्रीय देश में न्यायिक लोक सेवा से भी पदोन्नति या चयन द्वारा न्यायधीशों की नियुक्ति होने लगी है। यह प्रणाली नियुक्ति की सर्वोच्च प्रणाली मानी जाती है। न्यायधीशों को समय से पहले हटाने के लिए महाभियोग की व्यवस्था भी अनेक देशों के संविधानों में की गई है। भारत, अमेरिका, इंग्लैण्ड तथा कनाडा में न्यायधीशों का कार्यकाल उनके सदाचार व संविधानिक प्रावधानों पर निर्भर है।

न्यायपालिका के कार्य

(Functions of Judiciary)

न्यायपालिका किसी भी सरकार का प्रकाश स्तम्भ है। राजनीतिक व्यवस्था की प्रकृति ही इसके कार्यों की नियामक होती है। संघात्मक शासन-प्रणालियों में तो यह संतुलक का काम करती है। कानून व संविधान की व्याख्याकार होने के नाते यह नागरिक स्वतन्त्रता व अधिकारों का सुरक्षा कवच मानी जाती है। लार्ड ब्राइस ने इसे अच्छे शासन की कसौटी कहा है। गार्नर ने भी कहा है कि यदि न्याय विभाग न हो तो सभ्य समाज का निर्माण नहीं हो सकता। न्यायपालिका आधुनिक सभ्य समाज का आधार स्तम्भ है। न्यायपालिका ही हमें सरकार की निरंकुशता से बचाती है। किसी भी देश में न्यायपालिका के निम्नलिखित कार्य हो सकते हैं :-

(1) न्याय करना (To judge) :- न्यायपालिका का प्रमुख कार्य न्याय करना है। जो व्यक्ति कानूनों का उल्लंघन करता है उसे कार्यपालिका द्वारा पकड़कर न्यायालयों के सामने पेश किया जाता है। न्यायपालिका फौजदारी और दीवानी दोनों प्रकार के मुकद्दमों में न्याय करती है। दीवानी झगड़े प्रायः नागरिकों के बीच में होते हैं, जबकि फौजदारी मुकद्दमों में एक तरफ सरकार तथा दूसरी तरफ नागरिक होते हैं। गवाही के आधार पर न्यायपालिका सभी झगड़ों में कानून के अनुसार अपराधी को उचित दण्ड देती है और प्रभावित व्यक्ति के साथ न्याय करती है।

(2) कानून की व्याख्या करना (To interpret Laws) :- न्यायपालिका कार्यपालिका तथा विधायिका द्वारा बनाए गए कानूनों की व्याख्या करती है। कई बार कानून अस्पष्ट व संविधान के विरुद्ध होते हैं। उनकी व्याख्या किए बिना उनको लागू करने का अर्थ होगा मानव अधिकार व स्वतन्त्रताओं पर कुठाराघात। न्यायपालिका ही सर्वोच्च शक्ति की स्वामी होने

के नाते ऐसे कानूनों का अन्तिम व्याख्याकार होती है। भारत तथा अमेरिका में न्यायपालिका को यह अधिकार प्राप्त है कि यदि कोई कानून स्पष्ट न हो तो न्यायधीश अपनी बुद्धि, विवेक और नैतिकता के आधार पर निर्णय दे। न्यायालयों द्वारा कानूनों के स्पष्टीकरण के लिए दी गई व्याख्याएं सामान्य कानूनों की तरह ही महत्वपूर्ण होती हैं। निर्णयमूलक कानून के रूप में ये कानून भी संविधान का अंग बन जाते हैं।

(3) संविधान की रक्षा करना (To protect the Constitution) :- संविधान की प्रमुख संरक्षक भी न्यायपालिका ही होती है। संविधान की मर्यादा और पवित्रता को बनाए रखने के लिए वह विधायिका तथा कार्यपालिका तथा निर्मित कानूनों को संविधान के विरुद्ध होने पर असंवैधानिक घोषित कर सकती है। भारत तथा अमेरिका में न्यायपालिका को न्यायिक पुनरावलोकन का अधिकार प्राप्त है। इसके तहत वह संविधान की निष्पक्षता व प्रभावशीलता को बनाए रखने के लिए असंवैधानिक निर्णयों को पलट देती है। अतः न्यायपालिका संविधान की रक्षक भी है।

(4) नागरिक अधिकारों व स्वतन्त्रताओं की रक्षा (To protect the rights and liberties of citizens) :- प्रत्येक देश में न्यायपालिका ही नागरिक स्वतन्त्रता व अधिकारों की रक्षक मानी जाती है। न्यायपालिका इनकी रक्षा के लिए सरकार की निरंकुशता को रोकती है और किसी भी नागरिक या संस्था द्वारा मौलिक अधिकारों को हानि पहुंचाने के प्रयास में दण्डित करती है। इनकी सुरक्षा के लिए वह न्यायादेश भी जारी कर सकती है। यदि किसी व्यक्ति के अधिकारों व स्वतन्त्रता को कोई हानि पहुंचती है तो वह न्यायपालिका की शरण ले सकता है। मौलिक अधिकारों व स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए न्यायपालिका कार्यपालिका तथा विधायिका द्वारा निर्मित कानूनों को भी अवैध घोषित करने का अधिकार रखती है। अतः न्यायपालिका नागरिक स्वतन्त्रता व अधिकारों का सुरक्षा कवच है।

(5) संघ की संरक्षक (Guardian of Federation) :- संघात्मक शासन प्रणाली वाले देशों में केन्द्र व राज्यों में शक्तियों का विभाजन होने के कारण उनके शक्तियों के प्रयोग तथा व्याख्या को लेकर आपसी झगड़े होने की संभावना अधिक होती है। इन झगड़ों का निपटारा न्यायपालिका ही करती है। शक्ति विभाजन की उचित व्याख्या संविधान के अन्तर्गत न्यायपालिका ही करती है और राज्य व केन्द्र को अपने अधिकार क्षेत्र का अतिक्रमण करने से रोकती है। इस तरह वह संघ की संरक्षक भी मानी जाती है। संघात्मक शासन प्रणाली वाले देशों में न्यायपालिका की केन्द्र व राज्यों के विवादों को सुलझाने में महत्वपूर्ण भूमिका है।

(6) सलाहकारी कार्य (Advisory Functions) :- कई देशों में न्यायपालिका सरकार को परामर्श भी देती है। लेकिन न्यायपालिका की सलाह मानना या न मानना सरकार की इच्छा पर निर्भर करता है। इसके लिए न्यायपालिका सरकार को बाध्य नहीं कर सकती। इंग्लैण्ड में सलाहकारी भूमिका ने न्यायपालिका का अधिक सम्मान बढ़ाया है। भारत में भी राष्ट्रपति ने कई मामलों में सर्वोच्च न्यायालय की सलाह ली है। रामजन्म भूमि-बाबरी मस्जिद विवाद पर केन्द्र सरकार ने कई बार सर्वोच्च न्यायालय की ही सलाह ली है। कनाडा, आस्ट्रेलिया, स्वीडन, पनामा आदि में भी न्यायपालिका की सलाह ली है।

(7) राजनीतिक व्यवस्था को स्थायित्व व शांति कायम रखना (Stability of Political System and to maintain Peace) :- राजनीतिक व्यवस्था में विघटनकारी ताकतों के विरुद्ध न्यायपालिका ही कड़ा रुख अपनाती है। जो व्यक्ति या संस्था राजनीतिक व्यवस्था के स्थायित्व से छेड़छाड़ करता है, वह देशद्रोह का अपराधी माना जाता है। सरकार का तीसरा अंग होने के नाते राजनीतिक स्थायित्व को कायम रखने का प्रमुख उत्तरदायित्व न्यायपालिका का ही बनता है। न्यायपालिका ही सरकार के कार्यों को औचित्यता प्रदान करके सरकार के प्रति जनता का विश्वास कायम रखती है। इसके लिए न्यायपालिका, विधायिका व कार्यपालिका के कानूनों की जांच-परख करती रहती है। न्यायिक सक्रियतावाद के माध्यम से आज न्यायपालिका जनहित के कार्य भी करने लगी है। इससे राजनीतिक स्थायित्व में वृद्धि होना स्वाभाविक ही है। राजनीतिक स्वामित्व के लिए देश में शांति कायम रखने में न्यायपालिका ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसके लिए वह पुलिस व सेना तक की मदद लेती है। कानून का शासन लागू रखने के लिए न्यायपालिका अपराधी को उसके आराध के अनुसार ही दण्ड देती है। अतः राजनीतिक व्यवस्था में स्थायित्व तथा समाज में शान्ति कायम रखने में भी न्यायपालिका महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।

(8) प्रशासकीय कार्य (Administrative Functions) :- न्यायपालिका को अपना प्रशासन चलाने के लिए अधीनस्थ

कर्मचारी वर्ग की भी आवश्यकता पड़ती है। इसके लिए वह स्थानीय पदाधिकारियों और अधीनसरि कर्मचारियों की नियुक्ति करती है जो प्रशासन में न्यायपालिका का सहयोग करते हैं और सभी आवश्यक कागजात व अभिलेख सुरक्षित रखते हैं ताकि आवश्यकता पड़ने पर उन्हें कार्यपालिका को उपलब्ध कराया जा सके।

(9) अन्य कार्य (Other Functions) :- उपरोक्त कार्यों के अतिरिक्त भी न्यायपालिका अनेक दूसरे महत्वपूर्ण कार्य भी करती है। सार्वजनिक सम्पत्ति के प्रन्यासियों (Trustees) को नियुक्त करना, अल्पसंख्यकों के संरक्षकों को नियुक्त करना, वसीयतनामे तैयार करना, मृतक व्यक्तियों की सम्पत्ति का प्रबन्ध करना, नागरिक विवाह की अनुमति देना, विवाह विच्छेद की अनुमति देना, शस्त्र लाईसेंस जारी करना, निर्वाचन सम्बन्धी अपीलें सुनना, उच्च अधिकारियों को शपथ दिलवाना आदि कार्य भी न्यायपालिका द्वारा ही सम्पन्न किए जाते हैं।

उपरोक्त विवेचन के बाद कहा जा सकता है कि न्यायपालिका नागरिक अधिकारों व स्वतन्त्रता का रक्षक है। संविधान को व्याख्याकार होने के नाते वह सरकार के अन्य दो अंगों पर नियन्त्रण रखने का प्रभावी साधन भी है। न्यायिक पुनरावलोकन द्वारा न्यायपालिका ने जो शक्ति अर्जित की है, उससे उसका जनहितकारी स्वरूप उभरा है। आज न्यायिक सक्रियतावाद के द्वारा न्यायपालिका करोड़ों व्यक्तियों के दिल की धड़कन बन गई है। भारत में न्यायपालिका राजनीतिक शक्ति से त्रास्त लोगों के लिए प्रकाश पुंज का कार्य करती है। अनेक राष्ट्रीय स्तर की समस्याओं पर सरकारें न्यायपालिका से ही सलाह करती है ताकि संविधान व कानून की मर्यादा का उल्लंघन न हो और देश में शांति कायम रहे। ब्राइस का यह कथन सर्वथा सही है कि न्यायपालिका ही शासन की उत्तमता जांचने की कसौटी है। आज न्यायपालिका को समाज में जो स्थान प्राप्त है, वह कार्यपालिका या विधायिका को नहीं। आज केवलमात्र जनता के लिए दुःख की घड़ी में न्याय प्राप्त करने के लिए न्यायपालिका ही एकमात्र आशा की किरण है।

न्यायपालिका की स्वतन्त्रता
(Independence of Judiciary)

न्यायपालिका राजनीतिक प्रक्रिया का एक ऐसा अंग है जो सरकार का राजनीतिक शक्ति के दुरुपयोग से नागरिक स्वतन्त्रता व अधिकारों को बचाता है। इसी कारण स्वयं न्यायपालिका का भी निष्पक्ष व स्वतन्त्र रहना आवश्यक है ताकि उसके कारण जनता को कोई कष्ट न हो और नागरिक स्वतन्त्रता व अधिकारों की रक्षा के काम में उसे कोई बाधा न आएं न्यायपालिका की स्वतन्त्रता लोकतन्त्र की सफलता का मूलाधार है। संघात्मक तथा अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली वाले देशों के साथ-साथ एकात्मक सरकारों या तानाशाही शासन व्यवस्था वाले राज्यों में भी न्यायपालिका की स्वतन्त्रता बहुत आवश्यक है। हैमिल्टन ने लिखा है-"किसी भी देश का कानून कितना ही अच्छा क्यों न हो, एक स्वतन्त्रत और निष्पक्ष न्याय विभाग के बिना प्राणहीन है।" संघीय शासन प्रणालियों में तो न्यायपालिका की स्वतन्त्रता का महत्व और भी अधिक होता है। केन्द्र व राज्यों के झगडे निष्पक्ष व स्वतन्त्रत न्यायपालिका ही सही ढंग से सुलझा सकती है। गार्नर ने न्यायपालिका की स्वतन्त्रता को आवश्यक बताते हुए लिखा है-"यदि न्यायधीशों में प्रतिभा, सत्यता ओर निर्णय देने की स्वतन्त्रता न हो तो कार्यपालिका का समस्त ढांचा खोखला प्रतीत होगा और ऊंचे लक्ष्य की सिद्धि नहीं होगी लिसके लिए उसका निर्माण किया गया है।" इसी कारण राजनीतिक व्यवस्था के स्थायित्व और देश में शांति कायम रखने के लिए न्यायपालिका का स्वतन्त्रत व निष्पक्ष होना जरूरी है।

न्यायपालिका की स्वतन्त्रता का अर्थ
(Meaning of the Independence of Judiciary)

न्यायपालिका की स्वतन्त्रता से हमारा तात्पर्य है कि न्यायधीश अपना निर्णय देते समय अपने विवेक से काम लें और बाहरी दबावों से मुक्त रहें। अर्थात कार्यपालिका तथा विधायिका के हस्तक्षेप से मुक्त रहें। सी०एफ० स्ट्रांग ने न्यायपालिका की स्वतन्त्रता को परिभाषित करते हुए लिखा है-"न्यायपालिका की स्वतन्त्रता का अर्थ है कि न्यायधीशों में भ्रष्टाचार नहीं होना चाहिए और उन पर विधानमण्डल तथा कार्यकारिणी का नियन्त्रण नहीं होना चाहिए।" न्यायपालिका की स्वतन्त्रता ही न्यायिक निष्पक्षता का आधार है। इस प्रकार न्यायपालिका की स्वतन्त्रता का अर्थ-न्यायधीशों को कानूनों की व्याख्या करने में और न्याय करने में अपने विवेक का निर्णय प्रयोग करने, व्यवस्थापिका और कार्यपालिका के प्रभावों व शक्तियों से, राजनीतिक दलों व अन्य किसी प्रकार के राजनीतिक या गैर-राजनीतिक संगठन तथा समूह या व्यक्ति विशेष के प्रभाव से बचना है।

न्यायपालिका की स्वतन्त्रता स्थापित करने के तरीके

(Methods to establish the Independence of Judicuary)

न्यायपालिका की स्वतन्त्रता के लिए अनेक देशों में अलग-अलग साधन अपनाए जाते हैं। आज लोकतन्त्रीय देशों में विशेष तौर पर कुछ ऐसे तरीके अपनाए गए हैं कि न्यापालिका की स्वतन्त्रता या तो स्थापित हो चुकी है या स्थापित होने की दिशा में अग्रसर है। न्यायपालिका की स्वतन्त्रता निम्न बातों पर निर्भर है :-

(1) न्यायधीशों की नियुक्ति के तरीके (Mode of Appointment of Judges) :- न्यायपालिका की स्वतन्त्रता इस बात परभी निर्भर करती है कि न्यायधीशों की नियुक्ति किस आधार पर की जाती है। आज प्रायः इसके लिए चार तरीके प्रचलित हैं :- (i) कार्यपालिका द्वारा नियुक्ति (ii) विधायिका द्वारा चुनाव (iii) जनता द्वारा चुनाव (iv) न्यायिक लोकसेवा आयोग द्वारा परीक्षा प्रणाली के माध्यम से नियुक्ति। इन तरीकों में कार्यपालिका तथा विधायिका द्वारा नियुक्ति करने से न्यायधीश राजनीतिक रूप से तटस्थ नहीं रह सकते। जनता द्वारा नियुक्ति करने से भी कई बार चालाक राजनीतिज्ञ भी जनता को झांसा देकर न्यायपालिका में पहुंच सकते हैं। भारत में न्यायधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति योग्यता के आधार पर ही करता है। लेकिन न्यायधीशों की नियुक्ति यदि योग्यता के आधार पर न्यायिक लोक सेवा आयोग के माध्यम से की जाए तो न्यायधीशों के स्वतन्त्र व निष्पक्ष रहने के आसार सबसे अधिक हो सकते हैं। भारत में राष्ट्र०पति सर्वोच्च न्यायालयों के न्यायधीशों की नियुक्ति मुख्य न्यायधीश की सलाह से ही वरिष्ठता व योग्यता के आधार पर करता है। उच्च न्यायालयों के न्यायधीशों की नियुक्ति भी वह मुख्य न्यायधीश की सलाह से ही करता है। इस तरह न्यायधीशों की नियुक्ति योग्यता के आधार पर मुख्य कार्यपालक या न्यायिक लोक सेवा आयोग द्वारा करने से ही न्यायपालिका स्वतन्त्र रह सकती है।

(2) न्यायधीशों की कार्यविधि (The Judicial Tenure) :- न्यायपालिका की स्वतन्त्रता न्यायधीशों के सेवाकाल पर भी निर्भर करती है। छोटा सेवाकाल न्यायधीशों को लालच के गर्त में धकेल सकता है। इसलिए उनकी सेवा अवधि लम्बी होनी चाहिएं लम्बे सेवाकाल में न्यायधीशों को अपने कार्य का अनुभव भी हो जाता है और उन्हें नौकरी की सुरक्षा की गारन्टी भी मिल जाती है तथा उनके भ्रष्टाचार की ओर उन्मुख होने के आसार कम हो जाते हैं। इसी कारण भारत में न्यायधीशों को नौकरशाहों की तरह स्थायी आधार पर निश्चित समय के लिए लम्बे काल तक नियुक्त किया जाता है। भारत में सर्वोच्च न्यायालय के न्यायधीश 65 वर्ष तक उच्च न्यायालय के न्यायधीश 62 वर्ष तक अपने पद पर रहते हैं। इंग्लैण्ड में कदाचार से बचे रहने पर जीवन पर्यन्त वे अपने पद पर बने रहते हैं।

(3) न्यायधीशों की पदच्युति (Removal of Judges) :- न्यायपालिका की स्वतन्त्रता न्यायधीशों को पद से हटाने की व्यवस्था पर भी निर्भर करती है। भारत, अमेरिका तथा इंग्लैण्ड में न्यायधीशों को दुराचार का महाभियोग लगाकर ही हटाया जा सकता है। यह प्रक्रिया इतनी कठिन है कि सामान्य परिस्थितियों में इसका प्रयोग करना असम्भव है। इस कठिन प्रक्रिया के कारण वहां पर न्यायपालिका की स्वतन्त्रता मजबूत हुई है। भारत में न्यायधीशों को तभी हटाया जा सकता है, जब संसद के दोनों सदन कदाचार का अभियोग पास करके राष्ट्रपति को लिखित रूप में न्यायधीश को हटाने की मांग करे।

(4) न्यायिक व्यवहार (Judicial Behaviour) :- जिस देश में न्यायधीश निष्पक्ष, योग्य, विद्वान, सद्चरित्र और गुणवान हैं, वहां पर न्यायपालिका की स्वतन्त्रता की स्थापना आसानी से हो सकती है। निष्पक्ष न्यायिक व्यवहार ही न्यायपालिका के आधार को मजबूत बना सकता है। जिस देश में न्यायिक व्यवहार जनता का उत्पीड़क व वर्ग विशेष के हितों का पोषक हो, उससे निष्पक्षता व स्वतन्त्रता की आशा करना बेकार है।

(5) न्यायधीशों का चिंतन व अन्य सुविधाएं (Salaries and Other Facilities of Judges) :- न्यायपालिका की स्वतन्त्रता व निष्पक्षता के लिए यह भी आवश्यक है कि न्यायधीशों को पद की गरिमा के अनुसार जीवन यापन करने के लिए अच्छा वेतन व भत्ते मिले। भारत में न्यायधीशों को अच्छा वेतन, भत्ते व सुविधायें इसी कारण दी जाती हैं ताकि वे निष्पक्ष व स्वतन्त्र ढंग से अपना कार्य करते रहें। रिटायरमैंट के बाद उन्हें पैंशन भी दी जाती है और उनको वकालत करने पर भी प्रतिवन्ध है।

(6) न्यायपालिका का कार्यपालिका तथा विधायिका से पृथक्करण (Separation of Judiciary from Executive and

Legislature) :- न्यायपालिका को स्वतन्त्रता प्रदान करने के लिए उसे कार्यपालिका तथा विधायिका के हस्तक्षेप से मुक्त रखना भी जरूरी है। साथ में राजनीतिक शक्ति का विभाजन भी बहुत आवश्यक है। यदि सारी शासन शक्ति एक व्यक्ति या संस्था के हाथों में होगी तो न्याय की हतया होगी, क्योंकि समस्त शक्तियों का स्वामी होने के नाते कोई भी व्यक्ति या संस्था पथभ्रष्ट हो सकती है। इसी कारण अमेरिका में शक्तियों के पृथक्करण का सिद्धान्त अपनाकर न्यायपालिका को कार्यपालिका तथा विधायिका के नियन्त्रण से मुक्त रखा गया है। भारत में भी न्यायपालिका कई तरह से स्वतन्त्र ही है। उस पर कार्यपालिका तथा विधायिका का कोई नियन्त्रण नहीं है।

(7) न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति (Power of Judicial Review) :- न्यायपालिका को स्वतन्त्र बनाए रखने के लिए उसके पास न्यायिक समीक्षा की शक्ति भी होनी चाहिए। भारत तथा अमेरिका में अपनी इसी शक्ति के कारण न्यायपालिका, कार्यपालिका तथा विधायिका के संविधान विपरीत कानूनों को जो नागरिक स्वतन्त्रताओं का हनन करते हैं, अवैध घोषित कर सकती है। न्यायपालिका ने अपनी इस शक्ति का कई बार प्रयोग किया हैं इसी कारण आज न्यायिक सर्वोच्चता का सिद्धान्त कायम हो चुका है।

उपरोक्त विवेचन के बाद कहा जा सकता है कि न्यायपालिका की स्वतन्त्रता के लिए न्यायधीशों के नियुक्ति के तरीके पारदर्शी व योग्यता प्रणाली पर आधारित होने चाहिए। उनका कार्यकाल लम्बा हो और उन्हें अच्छा वेतन व सुविधाएं प्रदान की जाएं। उसे निष्पक्ष बनाए रखने के लिए कार्यपालिका तथा विधायिका के हस्तक्षेप से मुक्त रखा जाए। उनको हटाने का तरीका इतना जटिल हो कि न्यायपालिका की स्वतन्त्रता पर कोई आंच न आ सके। लेकिन ये सब बातें लोकतन्त्र में ही सम्भव हैं, तानाशाही देशों में नहीं। कहने को तो आज पाकिस्तान जैसे देश भी स्वतन्त्र व निष्पक्ष न्यायपालिका की दुहाई देते हैं, लेकिन मानव अधिकारों की जो दुर्दशा वहां है, अन्यत्र कम ही हैं। न्यायपालिका की स्वतन्त्रता का विचार तो जनतन्त्रीय वातावरण में ही अधिक फल-फूल सकता है, क्योंकि इन देशों में न्यायपालिका न्यायिक अवमानना पर कड़ी सजा दे सकती है। इन देशों का संवैधानिक ढांचा ही स्वयं न्यायपालिका को स्वतन्त्र बना देता है। इसी कारण न्यायपालिका की स्वतन्त्रता का विचार लोकतन्त्रीय शासन प्रणाली की एक सच्चाई है, साम्यवादी या निरंकुश शासन प्रणालियों का नहीं।

ब्रिटिश न्याय-व्यवस्था

(The British Judicial System)

ब्रिटिश न्याय व्यवस्था विश्व में न्याय-व्यवस्था का सर्वोत्तम उदाहरण प्रस्तुत करती है। ब्रिटिश न्याय व्यवस्था का विकास भी राजतन्त्र तथा जनवादी राजतन्त्र के विकास के साथ ही हुआ है। ब्रिटिश न्याय प्रणाली में सामान्य कानून और संवैधानिक कानून में कोई अन्तर नहीं है। इसका प्रमुख कारण यह है कि वहां का कानून विकसित कानून के रूप में है जो परम्पराओं पर आधारित होने के साथ-साथ ब्रिटिश लोक जीवन से भी बंधा हुआ है। इसी कारण ब्रिटेन में सरकार का शासन न होकर कानून का शासन है जो समस्त राजनीतिक समाज को क्रियाशीलता प्रदान करता है। ब्रिटेन के लोगों के लिए कानून ही संविधान है और यही सरकार व शासन है।

ब्रिटिश न्याय व्यवस्था का संगठन

(Organisation of the British Judicial System)

आधुनिक ब्रिटेन की न्याय-व्यवस्था 1870 के बाद के अधिनियमों द्वारा विनियमित है। इससे पहले न्यायपालिका के कार्यक्षेत्र अस्पष्ट थे। 1873 तथा 1879 में ब्रिटिश संसद ने न्यायपालिका के कार्य क्षेत्र को स्पष्ट करने के लिए तथा देश की समस्त न्याय-व्यवस्था को एक सूत्र में बांधने के लिए 'जुडिकेचर अधिनियम' पास किए। आज ब्रिटेन में दो तरह के न्यायालय हैं :-

(I) फौजदारी न्यायालय (Criminal Courts)

(II) दीवानी न्यायालय (Civil Courts)

(I) फौजदारी न्यायालय :- इस न्यायालय में उन मामलों का निपटारा होता है जो सार्वजनिक कानून का उल्लंघन करने से सम्बन्धित होते हैं। ब्रिटिश न्यायदस्था में इस न्यायालय के निम्न स्तर पर जस्टिस ऑफ पीस न्यायालय है। यह न्यायालय छोटे मुकद्दमें सुनता है। यह अपराधी को 14 दिन की सजा दे सकता है या 20 शिलिंग जुर्माना भी लगा सकता है। इसके बाद पैटी सैशनल कोर्टस हैं। यह चोरी करने या किसी को चोट पहुंचाने के मुकद्दमों की सुनवाई करती है।

यह अपराधी की 6 महीने की कैद तथा 100 पौंड तक जुर्माना अदा करने का आदेश दे सकती है। तीसरे स्थान पर कोर्ट ऑफ कवार्टर सैशन है। इसमें जस्टिस ऑफ पीस तथा पैटी सैशनल कोर्टस के निर्णयों के विरुद्ध अपील की जाती है। इस न्यायालय में मुकद्दमों का निपटारा जूरी व्यवस्था के माध्यम से होता है। इसके बाद कोर्ट ऑफ असाइजेज है जो उच्च न्यायालय का ही एक भाग है। यह न्यायालय गम्भीर मामलों जैसे हत्या, डकैती, भ्रष्टाचार तथा राजद्रोह जैसे मुकद्दमे सुनता है। देशद्रोह के मुकद्दमे भी इसी न्यायालय में आते हैं। इसके बाद पांचवें स्थान पर कोर्ट ऑफ क्रिमिनल अपील है। इसमें कोर्ट ऑफ क्वार्टर सैशन तथा कोर्टस ऑफ असाइजेज के निर्णयों के विरुद्ध अपील सुनी जाती है। यह न्यायालय कानून का व्याख्याकार होता है और इसका निर्णय अन्तिम होता है। इसके बाद सबसे सर्वोच्च शिखर पर हाऊस ऑफ लार्डस है। फौजदारी मुकद्दमों की अन्तिम अपील लार्ड सभा सुनती है जो फौजदारी तथा दीवानी दोनों तरह के मुकद्दमों की सुनवाई कर सकती है।

(II) दीवानी न्यायालय :- इस न्यायालय में नागरिकों के आपसी झगड़ों का निपटारा होता है जो सम्पत्ति, जमीन-जायदाद आदि को लेकर उत्पन्न होते हैं। इस न्यायालय में सबसे निम्न स्तर पर काऊन्टी न्यायालय है। प्रत्येक काऊन्टी को 60 सर्किट में बांटा गया है और प्रत्येक सर्किट में एक न्यायधीश की नियुक्ति की जाती है। इस न्यायालय में 750 पौंड तक की धनराशि ओर जमीन जायदाद चाहे वह कितनी ही मूल्यवान क्यों न हो, के मुकद्दमें आते हैं। इसके बाद सुप्रीम कोर्ट ऑफ जुडीकेयर है। इसे दो भागों - हाई कोर्ट ऑफ जस्टिस तथा कोर्ट ऑफ अपील में बांटा गया है। हाई कोर्ट ऑफ जस्टिस में काउन्टी न्यायालय की अपीलें सुनी जाती हैं। इस न्यायालय के न्यायधीश लार्ड चान्सलर की सलाह से क्राउन द्वारा नियुक्त किये जाते हैं। इस न्यायालय में 500 रुपए तक की धनराशि के मुकद्दमे सीधे जाये जा सकते हैं। इस न्यायालय को तीन भागों - किंग अथवा कवीन्स बैंच डिविजन, चांसरी डिविजन तथा प्रोवेट, डायवोर्स तथा एडमिरैलिटी डिविजन में बांटा गया है। कोर्ट ऑफ जुडीकेचर का दूसरा भाग कोर्ट ऑफ अपील है। इसमें काऊन्टी न्यायालय तथा हाई कोर्ट ऑफ जस्टिस न्यायालयों के विरुद्ध अपीलें सुनी जाती हैं। इस न्यायालय को कानून की व्याख्या करने का अधिकार है। दीवानी न्यायालयों में सबसे ऊपर हाऊस ऑफ लार्डस भी है जो कोर्ट ऑफ अपील के विरुद्ध भी अपील सुन सकती है।

उपरोक्त न्यायालयों के अतिरिक्त भी ब्रिटेन में धार्मिक न्यायालय, प्राइज न्यायालय तथा प्रिवि-परिषद की न्यायिक समिति के रूप में भी विशेष न्यायालय हैं।

ब्रिटिश न्याय व्यवस्था की विशेषताएं

(Features of British Judicial System)

ब्रिटिश न्यायय-व्यवस्था अपनी निष्पक्षता व कार्यकुशलता के लिए विश्व में जानी जाती है। इसी कारण स्वयं ब्रिटिश जनता भी अपनी न्याय-प्रणाली पर गर्व महसूस करती है। इस न्याय-प्रणाली की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं :-

(1) विधि का शासन (Rule of Law) :- ब्रिटिश न्याय प्रणाली की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता कानून का शासन है। ब्रिटेन में कानून ही सर्वोच्च है और जनता व शासक दोनों उसका सम्मान करते हैं। कानून का शासन ही राज्य व नागरिकों के पारस्परिक सम्बन्धों का निर्धारण करता है और शासन व्यवस्था को सुचारू ढंग से चलाता है। ब्रिटेन में कानून के सामने सब समान हैं और किसी को भी उसका अतिक्रमण करने की अनुमति नहीं है।

(2) न्यायपालिका की स्वतन्त्रता (Independence of Judiciary) :- ब्रिटिश न्याय प्रणाली अपनी स्वतन्त्रता व निष्पक्षता के लिए सम्पूर्ण विश्व में प्रसिद्ध है। ब्रिटेन में न्यायधीशों को स्वतन्त्र व निष्पक्ष बनाए रखने के लिए न्यायधीशों की नियुक्ति योग्यता एवं अनुभव के आधार पर लार्ड चान्सलर द्वारा की जाती है। इन न्यायधीशों का कार्यकाल काफी लम्बा है। इन्हें केवल कदाचार का आरोप लगाकर ही हटाया जा सकता है। इन्हें अच्छा वेतन व भत्ते दिये जाते हैं जो संचित निधि (Consolidated Fund) पर भारित होते हैं। पद की सुरक्षा के कारण सभी न्यायधीश निष्पक्ष व स्वतन्त्र होकर कार्य करते है। इसी कारण न्यायपालिका स्वतन्त्र बनी रहती है।

(3) जूरी व्यवस्था (The Jury System) :- ब्रिटेन में न्यायपालिका का सम्मान बढ़ाने में जूरी प्रथा का महत्वपूर्ण योगदान है। जूरी व्यवस्था के अन्तर्गत जनमत और मानवता का पूरा ध्यान रखा जाता है। ब्रिटेन में जूरी ने नागरिक स्वतन्त्रताओं व अधिकारों की रक्षा के लिए कठोर व असंगत कानूनों पर रोक लगाई है। जूरी में कम से कम 10 सदस्य होते हैं जो

समाज के प्रतिष्ठित व अनुभवी व्यक्ति होते हैं जिसका लाभ जनता को मिलता रहा है।

(4) एकरूपता का अभाव (Lack of Uniformity) :- ब्रिटेन में न्याय व्यवस्था का ढांचा सभी जगह समान नहीं है। इंग्लैण्ड तथा वेल्स के न्यायालयों का संगठन तो एक समान है, जबकि स्काटलैण्ड तथा उत्तरी आयरलेण्ड में यह ढांचा अलग-अलग तरह का है।

(5) प्रशासकीय न्यायालय का अभाव (Lack of Administrative Court) :- ब्रिटेन में फ्रांस की तरह प्रशासकीय न्यायालय नहीं हैं। जब राज्य व नागरिकों में कोई विवाद उत्पन्न होता है तो केस साधारण न्यायालय में ही आता है।

(6) विकेन्द्रित न्याय व्यवस्था (Decentralized Judicial System) :- ब्रिटेन में सर्किट न्यायालय हैं जो जगह-जगह जाकर मुकद्दमों की सुनवाई करते हैं। इससे न्याय-व्यवस्था विकेन्द्रित हो गई है और न्याय-प्रणाली जन आकांक्षाओं पर खरी उतरती है। चलते-फिरते न्यायालयों ने ब्रिटिश न्यायपालिका को विकेन्द्रित बना दिया है जो भारत की लोक अदालतों के कार्य-व्यवहार से मेल खाती है।

(7) न्यायिक पुनरावलोकन का अभाव (Lack of Judicial Review) :- न्यायिक पुनरावलोकन न्यायपालिका की वह शक्ति है जिसका प्रयोग वह विधायिका तथा कार्यपालिका द्वारा निर्मित कानून की संवैधानिकता जांचती है। ब्रिटेन में न्यायपालिका के पास यह शक्ति नहीं है कि वह किसी संसदीय कानून की वैधानिकता जांच सके। ब्रिटिश न्यायपालिका को किसी भी कानून को अवैध घोषित करने का अधिकार प्राप्त नहीं है चाहे वह कितना भी असंवैधानिक क्यों न हो।

(8) दो तरह के वकील (Two Types of Lawyers) :- ब्रिटेन में दो तरह के वकील हैं। प्रथम श्रेणी उन वकीलों की है जो कानून के बारे में सलाह देते हैं। इन्हें सोलिसिटर (Solicitors) कहा जाता है। ये अपने कार्यालय में ही रहते हैं और केस तैयार करते हैं। केस लड़ने का अधिकार इनके पास नहीं होता। यह कार्य तो दूसरी तरह के वकील करते हैं जिन्हें बैरिस्टर कहा जाता है।

(9) सरल न्याय प्रणाली (Simple Judicial System) :- ब्रिटिश न्याय-प्रणाली काफी सरल है। न्यायिक कार्य पद्धति सम्बन्धी किसी भी बाधा को न्यायधीश स्वयं ही दूर कर देते हैं और निर्णय शीघ्र देते हैं। न्यायिक-प्रक्रिया से सम्बन्धित नियमों का निर्माण एक विशेष समिति करती है जिसमें लार्ड या चांसलर, कुछ मुख्य न्यायधीश तथा वकील शामिल होते हैं। ब्रिटेन में प्रत्येक केस की सुनवाई खुले न्यायालयों में होती है। केस का फैसला निश्चित नियमों के आधार पर किया जाता है और अभियुक्त को अपने बचाव का पूरा मौका दिया जाता है। ब्रिटिश न्याय प्रणाली में जुरी-प्रथा, खुला न्यायालय आदि ने न्याय को प्रवीण व सरल बना दिया है।

(10) गरीबों के लिए निःशुल्क कानूनी सहायता का प्रावधान (Provision of Free Legal Aid to poors) :- ब्रिटेन में 1949 के 'Legal Aid and Advice Act' के अनुसार गरीब तथा असहाय व्यक्ति को निःशुल्क कानूनी सहायता प्रदान की जाती है। स्काटलैण्ड के लिए भी एक अलग अधिनियम बनाया गया है। ब्रिटिश समाज के आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग इस व्यवस्था का लाभ उठा सकते हैं।

(11) ब्रिटेन में साधारण कानून और संवैधानिक कानून में कोई अन्तर नहीं है।

(12) ब्रिटिश न्यायपालिका जनता के अधिकारों व स्वतन्त्रता की रक्षक है। यह कार्य वह कानून के शासन की स्थापना करके करती है।

(13) मुकद्दमे की सुनवाई सार्वजनिक होती है।

(14) ब्रिटिश न्यायपालिका निर्दोष को दण्ड नहीं देती। सन्देह के आधार पर वह किसी भी अति से बचती है।

(15) ब्रिटेन में दीवानी तथा फौजदारी (दो तरह के) न्यायालय हैं जो एक पिरामिड की तरह हाऊस ऑफ लार्ड में आकर सिमट जाते हैं; क्योंकि हाऊस ऑफ लार्डस दीवानी तथा फौजदारी दोनों तरह के न्याय करती है।

ब्रिटिश न्याय-व्यवस्था का मूल्यांकन

(Evaluation of the British Judicial System)

ब्रिटिश न्यायपालिका अपनी स्वतन्त्रता एवं निष्पक्षता के लिए सम्पूर्ण विश्व में प्रसिद्ध है। ब्रिटेन में लिखित संविधान के अभाव

में भी न्यायपालिका नागरिक अधिकारों व स्वतन्त्रताओं की प्रहरी रही है। ब्रिटेन में कानून का शासन होने के कारण किसी भी व्यक्ति व सरकार को कानून का अतिक्रमण करने की आज्ञा नहीं है। ब्रिटेन में न्याय सरल है व मुकद्दमे की कार्यवाही सार्वजनिक होती है। प्रतिवादी को अपने बचाव का पूरा मौका मिलता है। गरीब के लिए निःशुल्क न्याय की व्यवस्था है। ब्रिटिश न्यायिक व्यवहार सभ्य व शिष्ट है। ब्रिटेन में न्याय के विकेन्द्रीकरण ने जनता का मन मोह लिया है।

उपरोक्त विवेचन से ऐसा प्रतीत होता है कि ब्रिटिश न्याय-व्यवस्था में कोई दोष नहीं है। आलोचकों का कहना है कि ब्रिटेन में साधारण कानून व संवैधानिक कानून के बीच अन्तर न होने पर न्यायिक कार्यकुशलता पर असर पड़ता है। इसी तरह प्रशासकीय कानून का अभाव भी नौकरशाही को निरंकुश बना सकता है। इसी तरह एकरूपता का दोष तथा जटिल न्यायिक संगठन भी आम व्यक्ति के लिए ब्रिटिश न्याय व्यवस्था का बहुत बड़ा दोष है। सबसे बड़ा दोष न्यायिक पुनरावलोकन की कमी है। इस व्यवस्था के बिना ब्रिटेन में कानून के शासन की बात करना बेईमानी है, क्योंकि न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति या व्यवस्था से सरकार को अपनी भूल सुधारने का अवसर मिलता है और वह व्यवहार में कभी भी निरंकुश नहीं बन सकती। भारत तथा अमेरिका में न्यायिक पुनरावलोकन का जो लाभ राज्य व नागरिकों को मिला है, अन्य कहीं नहीं प्राप्त हुआ है। आलोचकों का मानना है कि गरीबों के लिए निःशुल्क न्याय की बात करना एक धोखा है। ब्रिटेन में कानून के शसन की आड़ में कई बार न्यायपालिका ने गलत व्याख्याएं दी हैं। कुछ विचारकों का मानना है कि ब्रिटेन में न्यायिक समीक्षा की कमी को न्यायधीशों ने कानून की गलत व्याख्या करके पूरा किया है। लास्की का कहना है-"ब्रिटिश न्यायधीशों का आधुनिक प्रशासन के प्रति दृष्टिकोण शत्रुतापूर्ण है। वे कानून की व्याख्या इस प्रकार करते हैं, मानो वे ही कानून के स्वामी हों न कि सम्प्रभु विधानमण्डल।" लेकिन इसका अर्थ यह भी नहीं है कि ब्रिटिश न्याय व्यवस्था अपना आधार खो चुकी है। सत्य तो यह है कि ब्रिटिश न्याय व्यवस्था आज भी संविधानवाद से विहीन राष्ट्रों के लिए एक प्रेरणा स्रोत हैं। कानून के शासन के रूप में ब्रिटिश न्याय व्यवस्था की देन आज भी एक अमर विचार है।

कानून का शासन
(Rule of Law)

कानून का शासन ब्रिटिश राजनीतिक व्यवस्था की उपज है। आधुनिक समय में लोकतन्त्रीय आस्थाओं, नागरिकों के अधिकारों व स्वतन्त्रताओं की रक्षा करने के लिए कानून के शासन से बढ़कर कोई अन्य विकल्प नहीं है। कानून का शासन इस मान्यता पर आधारित है कि कानून के सामने सब समान हैं। यह मान्यता राजनीतिक शक्ति को निरंकुश बनाने से रोकती है और समाज में सुव्यवस्था भी बनाए रखने में मदद करती है। कानून का शासन सुशासन का आधार है। यह शासन सरकार की स्वेच्छाचारिता को रोककर जनकल्याण में वृद्धि करता है। यह शासन परम्पराओं पर भी आधारित हो सकता है और संविधानिक उपबन्धों पर भी। इंग्लैण्ड में बिना मौलिक अधिकारों और न्यायिक पुनर्निरीक्षण (Judicial Review) के भी नागरिकों के अधिकार और स्वतन्त्रताएं कानून के शासन के कारण ही सुरक्षित हैं। कानून का शासन सभ्य राजनीतिक समाज की पहचान है। आज भारत, ब्रिटेन, अमेरिका तथा अन्य सभी सभ्य देशों में कानून के शासन का विशेष सम्मान किया जाता है। यद्यपि एक सिद्धान्त के रूप में यह इंग्लैण्ड की देन है, क्योंकि वहां पर इस विचार का प्रतिपादन सर्वप्रथम डायसी ने किया था। कानून के शासन का सिद्धान्त आज भी सभ्य देशों में प्रतिष्ठात्मक स्थान को प्राप्त है। इसका प्रमुख कारण इसका न्यायसंगत होना है। कानून का शासन समानता के उस सिद्धान्त पर आधारित है जो सामाजिक न्याय की मांग है। इसी कारण आज भी कानून का शासन एक महत्वपूर्ण विचार है जो संविधान और संविधानवाद दोनों के दिलों की धड़कन बना हुआ है।

कानून के शासन का अर्थ
(Meaning of Rule of Law)

कानून का शासन कानून की अवधारणा पर आधारित है। कानून सम्प्रभु का आदेश होता है जो सभी को मान्य होता है, क्योंकि वह सामाजिक न्याय की भावना पर आधारित होता है। इसी कारण सभी लोग कानून की आज्ञा का पालन करते हैं। जिस राजनीतिक समाज में कानून को उचित महत्व दिया जाता है वहीं पर कानून के शासन की स्थापना हो जाती है। कानून के शासन का अर्थ है किसी देश में कानून ही सर्वोच्च है और कानून के ऊपर कोई नहीं है। इसका अर्थ यह भी है कि सरकार की समस्त शक्तियां कानून द्वारा सीमित हैं और जनता पर कानून का शासन है न कि किसी स्वेच्छापूर्ण इच्छा का। कानून के शासन के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए कुछ विद्वानों ने इसे निम्न प्रकार से परिभाषित किया है :-

(1) वेड़ और फिलिप्स ने कानून के शासन को परिभाषित करते हुए कहा है-"सरकार की शक्तियों का प्रयोग कानून की मर्यादा के अनुसार होता है, न कि शासन की स्वेच्छाचारी इच्छा के कारण, कानून का शासन कहलाता है।"

(2) लार्ड ह्यूवर्ट ऑफ बरी के अनुसार-"कानून के शासन का अर्थ है केवल निरंकुशता के स्थान पर कानून की श्रेष्ठता तथा सर्वोच्चता।"

(3) ऑग के अनुसार-"कानून के शासन के अधीन राज्य की तरफ से कानूनी विधि तथा कानूनी शक्ति के अतिरिक्त अन्य किसी तरीके से उत्तरदायित्व सौंपे जाते हैं, न कि सम्पत्ति में हस्तक्षेप किया जाता है और न ही व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का ह्रास किया जाता है।"

साधारण रूप में कानून के शासन का अर्थ होता है-संवैधानिक सरकार जो अपनी शक्ति का प्रयोग स्वेच्छाचारिता के स्थान पर कानून के अनुसार करती है।

कानून के शासन की उत्पत्ति और विकास

(Origin and Development of Rule of Law)

कानून के शासन के बीज अप्रत्यक्ष रूप से हमें प्लेटो और अरस्तु के समय से ही मिलते हैं। लॉक ने भी सरकार को प्रतिनिधि रूप में सीमित करने की वकालत की थी। लेकिन एक व्यवस्थित विचार के रूप में इस सिद्धान्त का सर्वप्रथम प्रयोग डॉयसी ने ही किया है। डॉयसी इंग्लैण्ड का निवासी था। वही इसका प्रमाणित व्याख्याकार है। 1689 में इंग्लैण्ड की संसद ने 'बिल ऑफ राइट्स' (Bill of Rights) पास किया। इसके परिणामस्वरूप इंग्लैण्ड में संसदीय सर्वोच्चता तथा कानून के शासन की सर्वोच्चता का जन्म हुआ। इस प्रकार एक व्यवस्थित सिद्धान्त के रूप में यह इंग्लैण्ड की ही देन है। धीरे-धीरे वहां पर इस सिद्धान्त को महत्व प्राप्त होने लगा। बिना संविधान के भी इंग्लैण्ड में कानून ही शासन को अन्य देशों की तुलना में आज भी एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है, जिसे ब्रिटिश सरकार की आधारशिला माना जाता है। वेड और फिलिप्स का कहना है कि कानून का शासन मध्य युग से ही ब्रिटिश संविधान का प्रमुख नियम रहा है, जो प्रशासन में कार्यपालिका की स्वेच्छाचारिता रोकता है। इंग्लैण्ड में कानून का राज्य है और कानून का पूरा सम्मान किया जाता है। भारत और अमेरिका में भी इस सिद्धान्त का अपनाया गया है। भारत व अमेरिका में कानूनों का बहुत सम्मान है। किसी भी व्यक्ति और सरकार को कानून की मर्यादा भंग करने का अधिकार प्राप्त नहीं है। भारतीय संविधान में दी गई नागरिकों की स्वतन्त्रताओं व अधिकारों की रक्षा कानून के शासन के द्वारा ही की जाती है। भारत में कोई ऐसा कानून नहीं बनाया गया है जो नागरिकों की स्वतन्त्रताओं को सीमित करने वाला हो और सुव्यवस्था को हानि पहुंचाने वाला हो। स्वतन्त्रता के बाद भारत में कानून द्वारा स्थापित पद्धति के द्वारा ही शासन चलाया जा रहा है। इसी तरह अमेरिका में भी कानूनों का बड़ा सम्मान है। आज भारत, अमेरिका तथा अन्य देशों में कानून के शासन को विशेष महत्व दिया जाता है। कानून की दृष्टि में शासक व शासित दोनों समान माने जाते हैं। समान अपराध के लिए समान दण्ड का प्रावधान कानून के शासन की श्रेष्ठता को सिद्ध करता है।

कानून के शासन की विशेषताएं

(Features of Rule of Law)

कानून के शासन की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं :-

(1) कानून का शासन कानून की सर्वोच्चता के सिद्धान्त पर आधारित है। इसमें कानून को बहुत अधिक महत्व दिया जाता है, क्योंकि कानून को सर्वोच्चता प्राप्त होती है।

(2) कानून का शासन सामाजिक न्याय की स्थापना करता है।

(3) कानून का शासन राजनीतिक समानता की स्थापना भी करता है।

(4) कानून का शासन नागरिक अधिकारों व स्वतन्त्रताओं की रक्षा करता है।

(5) कानून का शासन सरकार की निरंकुशता को रोकता है तथा संविधानिक सरकार की स्थापना करता है।

(6) कानून का शासन राजनीतिक व्यवस्था में सुव्यवस्था बनाए रखता है।

(7) कानून का शासन प्रशासन में नौकरशाही की स्वेच्छाचारिता रोकता है।

(8) कानून का शासन राजनीतिक विकास का मार्ग प्रशस्त करता है।

(9) कानून का शासन संविधानिक आदर्शों व मूल्यों की रक्षा करता है और इनकी प्राप्ति में सरकार की सहायता करता है।

(10) कानून का शासन न्याय प्रणाली को चुस्त-दुरुस्त बनाता है व न्यायपालिका की कार्यक्षमता में वृद्धि करता है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि कानून का शासन सरकार की निरंकुशता पर रोक लगाकर नागरिकों के अधिकारों व स्वतन्त्रताओं की रक्षा करता है। कानून के शासन से बढ़कर सामाजिक न्याय की स्थापना का कोई अन्य विकल्प नहीं हो सकता। अतः सरकार को संविधानिक बनाने में कानून का शासन बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

कानून के शासन पर डॉयसी के विचार

(Dicey's Views on Rule of Law)

डॉयसी कानून के शासन का प्रमाणित व्याख्याकार है। उससे पहले कानून के शासन की स्पष्ट व्याख्या नहीं की थी। उन्होंने कानून के शासन की व्याख्या तीन प्रकार से की है :-

(i) कानून ही सर्वोच्च है (Law is Supreme) :- डॉयसी के अनुसार "साधारण कानून ही सर्वोच्च है और उस पर किसी स्वेच्छाचारी शक्ति का प्रभाव नहीं पड़ता। इंग्लैण्ड में किसी भी व्यक्ति को निरंकुश और स्वेच्छाचारी शक्ति प्राप्त नहीं है। अंग्रेज कानून और केवल कानून द्वारा ही संचालित होते हैं। किसी भी व्यक्ति को कानून तोड़ने का ही दण्ड मिलता है और किसी कारण से नहीं।" इसका अर्थ यह है कि इंग्लैण्ड में कानून ही सर्वोच्च है। कानून द्वारा सीमित सरकार की परम्परा का निर्वहन करना ही इंग्लैण्ड के कानून का लक्ष्य है। बिना कानून के उल्लंघन के किसी को कोई दण्ड नहीं दिया जा सकता। कानून की अवज्ञा करने पर दण्ड देने का अधिकार केवल न्यायपालिका को ही है, कार्यपालिका को नहीं। अपराध साबित हुए बिना किसी व्यक्ति को न तो सम्पत्ति से बेदखल किया जा सकता है और न ही उसे दण्ड दिया जा सकता है। वहां पर मुकद्दमा भी सार्वजनिक रूप से चलता है ताकि जनता सम्पूर्ण कार्यवाही को देख सके। अपराधी को अपने आपको निर्दोष साबित करने का पूर्ण अधिकार होता है। मुकद्दमे की कार्यवाही के बाद दोष साबित होने पर सजा से बचने का कोई प्रावधान नहीं है। किसी भी अन्य संस्था को अपराधी की सजा कम करने या माफ करने का अधिकार नहीं है। अपराधी को सजा कानून की परिधि में अपराध की गम्भीरता को देखते हुए ही दी जाती है। इस प्रकार इंग्लैण्ड में कानून का शासन सरकार की बजाय कानून की सर्वोच्चता स्थापित करता है ताकि सरकार की परम्परागत स्वविवेकी और तानाशाही शक्तियों का अन्त किया जा सके। अतः कानून के शासन का प्रथम अर्थ है कि कानून ही सर्वोच्च है, उससे ऊपर कोई नहीं हो सकता।

II) कानून के सामने सब समान हैं (All people are equal before law) :- कानून के शासन का दूसरा अर्थ है-कानून के समक्ष समानता। डॉयसी का कहना है-"कोई भी व्यक्ति कानून से ऊपर नहीं है बल्कि प्रत्येक व्यक्ति यदि उसकी पदवी या स्थिति कितनी भी बड़ी या महान हो इस देश के शासन के सामान्य कानून को मानने के लिए बाध्य है तथा देश के सामान्य न्यायालय के अधिकार क्षेत्र की परिधि में आता है। जो कानून एक के लिए है वह सबके लिए है।" डॉयसी का कहना है कि सरकारी कर्मचारी या अन्य शासकीय अधिकार और स्वयं राजा भी कानून के अधीन है। उस पर आम नागरिकों की तरह मुकद्दमा चलाया जा सकता है। डॉयसी ने लिखा है-"हमारे प्रधानमन्त्री से लेकर साधारण सिपाही या कर संग्रहकर्ता तक सभी साधारण नागरिकों की तरह ही अपने गैर-कानूनी कार्यों के लिए कानून के सामने समान से उत्तरदायी है।" कानून सबको समान दृष्टि को देखता है। इंग्लैण्ड में सभी नागरिकों पर मुकद्दमें साधारण न्यायालयों में ही चलाए जाते हैं अर्थात इंग्लैण्ड में प्रशासकीय न्यायालय नहीं है। इंग्लैण्ड में मुकद्दमा सरकारी कर्मचारियों के विरुद्ध फ्रांस की तरह प्रशासकीय न्यायालयों में नहीं चलाया जाता बल्कि साधारण न्यायालयों में चलाया जाता है। एक प्रभावशाली व्यक्ति को भी समान अपराध के लिए वही सजा मिलती है जो साधारण व्यक्ति को उसी अपराध के लिए मिलती है। अर्थात इंग्लैण्ड में समान अपराध के लिए समान सजा का नियम सभी पर लागू होता है।

(III) संविधान सामान्य कानून की देन है (Constitution is the result of Ordinary Law) :- कानून के शासन का तीसरा अर्थ है-"संविधान के सामान्य सिद्धान्त उन न्यायिक निर्णयों का प्रतिफल है जिनके द्वारा न्यायालयों के सामने लाए गए

मुकदमों में सामान्य न्यागरिकों के अधिकार व स्वतन्त्रताएं नियिचत की गई हैं।" इसका अर्थ यह है कि इंग्लैण्ड का संविधान अलिखित होने के कारण नागरिकों के अधिकारों व स्वतन्त्रताओं की व्याख्या करने में असमर्थ है। इसलिए नागरिक स्वतन्त्रताओं व अधिकारों का वर्णन भारत के संविधान की तरह न होकर न्यायिक निर्णयों पर आश्रित है। डॉयसी ने इंग्लैण्ड की न्याय-प्रक्रिया को विश्व में सर्वोच्च माना है और उसे ही नागरिक अधिकारों का उद्‌गम स्रोत बताया है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि डॉयसी ने कानून के शासन की विस्तार से व्याख्या की है। उसकी दृष्टि में कानून ही सर्वोच्च है। कानून से ऊपर कोई नहीं है। कानून के सामने छोटा-बड़ा प्रत्येक व्यक्ति समान है। कानून का शासन नागरिक अधिकारों का स्रोत भी है। इंग्लैण्ड में लिखित संविधान का अभाव होने के कारण वहां पर सरकार की शक्तियों को मर्यादित करने और न्यायिक निर्णयों के द्वारा नागरिक स्वतन्त्रताओं को विकसित करने में कानून के शासन का महत्व अधिक हो जाता है।

कानून के शासन की आलोचना

(Criticisms of Rule of Law)

डॉयसी ने जिस समय 1885 में अपनी पुस्तक 'The Law and the Constitution' में 'कानून के शासन' की व्याख्या की थी, उस समय इंग्लैण्ड में व्यक्तिवाद का बहुत अधिक प्रभाव था। व्यक्तिवाद के अनुसार राज्य के प्राथमिक कार्य कानून को लागू करना, शान्ति की स्थापना करना, प्रतिरक्षा तथा विदेशी सम्बन्ध स्थापित करना है। डॉयसी स्वयं व्यक्तिवादी था। उसका विचार था कि स्वेच्छाचारी शक्तियां या निरंकुश शासन की व्यक्ति की स्वतन्त्रता पर कुठाराघात कह सकता है। इसी कारण उसने कानून के शासन का सिद्धान्त दिया ताकि व्यक्ति की स्वतन्त्रता की रक्षा की जा सके। लेकिन आज कानून के शासन का अर्थ डॉयसी की व्याख्या के आगे निकल चुका है। यद्यपि कानून का शासन इंग्लैण्ड में आज भी प्रचलित है, लेकिन यह अपना प्राचीन रूप खो चुका है। 19वीं सदी के बाद इंग्लैण्ड की शासन व्यवस्था में जो परिवर्तन हुए उन्होंने कानून के शासन को सीमित कर दिया है। आज भारत व अमेरिका में कानून के शासन का वह रूप नहीं रह गया है जो पहले था। उदारीकरण के इस युग में कानूनी निरंकुशता की आज्ञा नहीं दी जा सकती। शासन-व्यवस्था को चुस्त व दुरुस्त बनाने के लिए आज विश्व के अनेक देशों में त्वरित न्याय को महत्व दिया जाता है। न्याय में देरी करने का अर्थ है-न्याय से वंचित करना। इसलिए आज देश को कानून के शासन के सहारे नहीं छोड़ा जा सकता। विदेशी सम्बन्धों का विस्तार होने के कारण कानून के शासन का अर्थ बदल चुका है। आज इंग्लैण्ड में भी कानून के शासन पर अनेक सीमाएं लग चुकी हैं।

कानून के शासन की सीमाएं

(Limitations of Rule of Law)

आज बदलते परिवेश व राष्ट्रीय आवश्यकताओं के अनुरूप कानून के शासन का अर्थ भी बदल गया है। आज कानून के शासन को चुनौती देने वाली व्यवस्थाएं जन्म ले चुकी हैं। डॉयसी ने कानून के शासन के सिद्धान्त का प्रतिपादन करते समय इन सीमाओं पर ध्यान ही नहीं दिया था। इसी कारण आज कानून के शासन का डॉयसी द्वारा बताया गया अर्थ कुछ अप्रासांगिक सा होने लगा है। इसके कुछ अपवाद या सीमाएं निम्नलिखित हैं :-

(1) प्रदत्त व्यवस्थापन (Delegated Legislation) :- डॉयसी ने कानून का अर्थ साधारण रूप में लिया था। उसकी दृष्टि से कानून से अभिप्राय संसदीय कानूनों से था। आज सरकार के इतने कार्य बढ़ गये हैं कि सभी के लिए पूर्ण कानून बनाना असम्भव है। विधायिका के पास कार्यभार की अधिकता के कारण आज कुछ मामलों में कानून बनाने का अधिकार कार्यपालिका के पास भी आ गया है। आज कानूनों को विस्तृत व व्यापक रूप कार्यपालिका ही देती है। जो कानून पहले संसद बनाती थी, आज कार्यपालिका बनाती है। यही व्यवस्था प्रदत्त व्यवस्थापन कहलाती है। इस प्रकार कानून संसद के हाथों से निकलकर कार्यपालिका के पास आ चुका है।

(2) प्रशासकीय न्याय व कानून (Administrative Justice and Law) :- प्रशासकीय न्याय कानून के शासन का विरोधी है, परन्तु आज प्रत्येक देश में प्रशासकीय कानून किसी न किसी रूप में विद्यमान हैं। आज इंग्लैण्ड में भी भी विभागों को अपने कर्मचारियों के मामलों में निर्णय लेने का अधिकार है और न्याय करने का भी अधिकार प्राप्त है। इन निर्णयों के विरुद्ध किसी न्यायालय में अपील नहीं की जा सकती। आज किसी विभाग को अपने कर्मचारियों के विरुद्ध कार्यवाही करने व सजा देने की पूरी छूट है। इसके लिए उसे किसी के सामने पूरी जानकारी देने की आवश्यकता नहीं है। उदाहरण

के लिए गृह विभाग को किसी व्यक्ति को पासपोर्ट जारी करने या न करने के मामले में किसी के सामने स्पष्टीकरण देने की जरूरत नहीं है। इस प्रकार प्रशासकीय कानून व न्याय की उत्पत्ति से कानून के शासन का परम्परागत अर्थ अनुपयुक्त हो चुका है।

(3) विशेषाधिकार व उन्मुक्तियां (**Privileges and Immunities**) :- आज अनेक देशों में राजनीतिक प्रतिनिधियों व कर्मचारियों को विशेषाधिकार व उन्मुक्तियां प्राप्त हैं। आज ब्रिटेन के राजा या रानी को कुछ विशेषाधिकार व उन्मुक्तियों प्राप्त हैं। उस पर कानून की सीमाएं नहीं लगाई जा सकती हैं। इंग्लैण्ड में 1893 और 1939 के 'Public Authorities Act' के अनुसार किसी कर्मचारी पर 6 महीने के बाद 6 महीने पहले किए गए अपराध के लिए कोई मुकद्दमा नहीं चलाया जा सकता। विदेशों में भेजे जाने वाले राजदूतों व विदेश विभाग के कर्मचारियों को भी कुछ विशेषाधिकार व उन्मुक्तियां प्राप्त हैं। अपने गलत कार्यों के लिए विशेषाधिकार प्राप्त व्यक्तियों पर मुकद्दमा विशेष परिस्थितियों में ही चलाया जा सकता है। इंग्लैण्ड में न्यायधीशों को भी अपने कार्यों के मामलों में उन्मुक्तियां प्राप्त हैं। यदि राजदूत या विदेशी शासनक विदेशी धरती पर कोई अपराध कर दे तो उसे उसके देश वापिस भेजा जा सकता है, मुकद्दमा नहीं चलाया जा सकता। इसी तरह इंग्लैण्ड में पासपोर्ट जारी करना या न करना राजा का विशेषाधिकार है। भारत के राष्ट्रपति को न्यायालयों द्वारा दी गई सजा को कम करने या माफ करने का अधिकार है। इस निर्णय के विरुद्ध किसी न्यायालय में अपील नहीं की जा सकती है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि विशेषाधिकार और उन्मुक्तियां कानून के शासन का प्रमुख अपवाद हैं।

(4) सैनिक कानून (**Military Laws**) :- आज अनेक देशों में सैनिक व्यवस्था को पूर्णतयः स्वतन्त्र दर्जा दिया गया है। सेना के अपने न्यायालय व बोर्ड होते हैं जो सैनिकों द्वारा किए गए अपराधों की जाँच करते हैं व सजा देते हैं। सैनिक न्यायालयों के नियमों के विरुद्ध किसी तरह की अपील साधारण न्यायालयों में कहीं भी नहीं की जा सकती है। भारत में सैनिक न्यायालयों को अलग व स्वतन्त्र दर्जा प्राप्त है। इस तरह के प्रावधान पाकिस्तान, बंगलादेश, श्रीलंका, अमेरिका आदि देशों में भी है। इस व्यवस्था ने कानून के शासन के सिद्धान्त को अप्रासांगिक बना दिया है। सैनिकों पर सेवा के दौरान सैनिक कानून लागू होते हैं, साधारण कानून नहीं। इस कानूनों को संविदा कानून कहा जाता है।

(5) मौलिक अधिकार (**Fundamental Rights**) :- डॉयसी का यह कहना गलत है कि इंग्लैण्ड में नागरिकों को अधिकार व स्वतन्त्रताएं कानूनी निर्णयों से प्राप्त हुए हैं। वहां पर कई अधिकार तो मेगनाकार्टा तथा 'बिल ऑफ राईटज' द्वारा प्राप्त किए हैं और इनकी रक्षा कानून के शासन की बजाय प्रत्यक्षीकरण कानून द्वारा की जाती है। इस प्रकार इंग्लैण्ड में तो यह सिद्धान्त सीमित हुआ है, लेकिन लिखित संविधानों वाले देशों में बिल्कुल अमान्य है। भारत, अमेरिका आदि देशों में नागरिक अधिकारों व स्वतन्त्रताओं का जन्म संविधानिक प्रावधानों की देन है, न कि न्यायिक निर्णयों की।

(6) इंग्लैण्ड में कानून के शासन के अपवाद (**Exceptions of Rule of Law in England**) :- इंग्लैण्ड में कानून के शासन का सिद्धान्त ट्रेड यूनियन तथा सामाजिक संस्थाओं के मामले में लागू नहीं होता। 1906 के 'Trade Dispute Act' के अनुसार यदि कोई मजदूर संघ व अन्य सामाजिक संघ अपने सदस्यों को हानि पहुंचाता है तो उसके विरुद्ध न्यायालय में नहीं जाया जा सकता। ये संस्थाएं कानून से ऊपर हैं। इंग्लैण्ड में 'Trade Board Act' तथा 'Public Health Act' के मामलों में भी न्यायिक प्रक्रिया प्रशासकीय है। वहां न्यायधीशों व राजदूतों को भी सामान्य कानून से छूट है। राजा को कुछ विशेषाधिकार व उन्मुक्तियां प्राप्त हैं। राजा पर मुकद्दमा साधारण न्यायालय में नहीं चलाया जा सकता है। 1936 के 'Public Order Act' के तहत पुलिस को देश में शांति बनाए रखने के लिए सार्वजनिक जुलूस को रोकने का पूर्ण अधिकार है। लार्ड चैम्बरलेन को फिल्मों व नाटकों को सैंसर करने का अधिकार है। उसके निर्णय के विरुद्ध किसी न्यायालय में अपील नहीं की जा सकती। इसी तरह आज इंग्लैण्ड में अनेक परिवर्तनों ने कानून के शासन का अर्थ सीमित कर दिया है। न्यायधीश भी अपने क्षेत्र में स्वतन्त्र अनुत्तरदायी हैं।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि डॉयसी ने यह कभी अनुभव नहीं किया कि इंग्लैण्ड व अन्य देशों में एक ऐसा वर्ग भी होता है जिसे विशेषाधिकार और उन्मुक्तियां प्राप्त होती हैं। विदेशी मामलों में कानून का शासन कार्य नहीं कर सकता। आज इंग्लैण्ड में इतने प्रशासकीय व राजनीतिक परिवर्तन हो चुके हैं जिन्होंने कानून के शासन का परम्परागत अर्थ सीमित कर दिया है। आज इंग्लैण्ड में प्रशासकीय न्याय व कानून का विकास हो चुका है। प्रदत्त व्यवस्थापन की व्यवस्था ने इस सिद्धान्त का कार्यक्षेत्र सीमित कर दिया है। लेकिन यह कहना सर्वथा गलत है कि इंग्लैण्ड में कानून का शासन नहीं है। आज कानून के शासन का सिद्धान्त कम या आंशिक रूप से विश्व के अन्य सभ्य देशों में कार्य कर रहा है। यद्यपि नवीन निरंकुशता ने इस सिद्धान्त को

सीमित अवश्य किया है, लेकिन समाप्त नहीं। आज भी अनेक सरकारी विभाग सामान्य कानूनों के ही अधीन है। भारत में तो सैनिक मामलों को छोड़कर शेष सभी मामलों में कानूनी प्रक्रिया का प्रयोग वैध माना जाता है। आज आवश्यकता कानून के शासन के अर्थ को नए सिरे से परिभाषित करने की है। आज भी कानून का शासन अनेक संविधानिक व्यवस्थाओं में महत्वपूर्ण सिद्धान्त के रूप में कार्य करके नागरिक अधिकारों व स्वतन्त्रताओं का रक्षक बना हुआ है। अतः कानून के शासन का सिद्धान्त डॉयसी की राजनीति विज्ञान को एक महत्वपूर्ण व शाश्वत् देन है तथा ब्रिटिश राजनीतिक जीवन का एक अभिन्न अंग है।

संयुक्त राज्य अमेरिका की न्याय-व्यवस्था

(Judicial System of U.S.A.)

किसी भी संघात्मक शासन प्रणाली वाले देश में निष्पक्ष व स्वतन्त्र न्यायपालिका का होना बहुत जरूरी है। अमेरिका में भी संघात्मक शासन प्रणाली अपनाने के कारण एक ऐसी स्वतन्त्र व निष्पक्ष न्यायपालिका की व्यवस्था की गई है जो केन्द्र व इकाइयों के विवादों को सुलझाने के साथ कार्यपालिका तथा विधायिका के असंवैधानिक कार्यों पर भी रोक लगाती है। अमेरिका में एक ऐसी संघीय न्यायपालिका है जो संघ व राज्यों के न्यायालयों के कार्य व्यवहार को एकरूपता प्रदान करती है। अमेरिकन न्यायपालिका सरकार के अन्य दोनों अंगों पर न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति द्वारा संतुलन कायम रखती है। इसी कारण जेम्स बेक ने अमेरिकन सर्वोच्च न्यायालय को सम्पूर्ण अमेरिकन शासन व्यवस्था का संतुलन चक्र कहा है। अमेरिकन सर्वोच्च न्यायालय की प्रभावकारी भूमिका ने आज आम जनता का विश्वास जीतकर स्वयं को मानव अधिकारों का संरक्षक बना लिया है। सर्वोच्च न्यायालय की न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति ने कार्यपालिका तथा विधायिका के निरंकुश व्यवहार पर रोक लगाकर न्यायिक सर्वोच्चता का सिद्धान्त पेश किया है। वस्तुतः आज न्यायपालिका में जनता की आस्था बढ़ी है और न्यायिक सक्रियतावाद ने उसे गतिशील बनाया है।

अमेरिका की संघीय न्यायपालिका का संगठन

(Organisation of the Federal Judiciary of America)

अमेरिकन संविधान के अनुच्छेद 3 में कहा गया है कि "संयुक्त राज्य की न्यायिक शक्ति एक सर्वोच्च न्यायालय और उन नीचे के न्यायालयों में निहित होगी जिनकी स्थापना व प्रतिष्ठा कांग्रेस विधि द्वारा समय-समय पर करेगी।" इस धारा ने न्यायपालिका को सरकार के अन्य दो अंगों के समक्ष बना दिया है। इसमें सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना आदेशित (Mandatory) है तथा निम्न न्यायालयों की स्थापना का उत्तरदायित्व कांग्रेस पर छोड़ दिया गया है। अमेरिका में संघीय व्यवस्था होने के कारण दोहरी न्याय प्रणाली को अपनाया गया है। वहां प्रत्येक राज्य का अपना अलग संविधान व सर्वोच्च न्यायालय भी है। संघीय स्तर पर सर्वोच्च न्यायालय के अतिरिक्त अपीलीय व जिला न्यायालय भी हैं। अमेरिकन संघीय न्याय व्यवस्था का संगठन एक पिरामिड की तरह है। 1789 के न्यायिक अधिनियम के अनुसार अमेरिका में दो तरह के संघीय न्यायालय हैं-(i) संवैधानिक तथा (ii) कानूनी। संवैधानिक न्यायालय (Constitutional Courts) वे हैं जिनकी स्थापना संविधान की धारा 3 के अन्तर्गत की गई है। इसके विपरीत कानूनी न्यायालय (Legislative Courts) वे हैं जिनकी स्थापना आवश्यकतानुसार कांग्रेस द्वारा की जाती रही है। इन न्यायालयों का प्रमुख कार्य उन कानूनों को लागू करने में सरकार की सहायता करना है जिन्हें कांग्रेस द्वारा अपनी प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करके बनाया गया है। इनमें सैनिक अपीलीय न्यायालय, कर न्यायालय, सीमा शुल्क न्यायालय, दावों का न्यायालय, आयात-निर्यात तथा पेटेण्ट्स अपीलीय न्यायालय आदि शामिल हैं।

संवैधानिक न्यायालयों में वे न्यायालय हैं जो संविधान का निर्माण करने के साथ ही अस्तित्व में रहे हैं। इन न्यायालयों में सबसे निम्न स्तर पर जिला न्यायालय हैं। प्रत्येक जिले में एक न्यायालय भी हो सकता है और दो या तीन जिलों में एक जिला न्यायालय भी हो सकता है। अमेरिका में इन न्यायालयों को दीवानी या फौजदारी दोनों प्रकार के अभियोग सुनने का अधिकार प्राप्त है। अपील के अभियोग इनके ही क्षेत्राधिकार से बाहर हैं। इन न्यायालयों में न्यायाधीशों की नियुक्ति महान्यायवादी की सलाह से राष्ट्रपति करती है। इसके न्यायधीशों को 95000 डालर वार्षिक वेतन मिलता है। इनकी कार्य अवधि उनके सदाचार पर आधारित है। इन न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है। इसके बाद संवैधानिक न्यायालय की दूसरी श्रेणी अपीलीय सर्किट न्यायालयों की है। इन न्यायालयों को प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार की बजाय अपीलीय क्षेत्राधिकार ही प्राप्त है। इस न्यायालय के न्यायधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति के द्वारा सीनेट की स्वीकृति से की जाती है और इनकी कार्यावधि भी इनके सदाचार पर आधारित है। इसके न्यायधीशों को भी वही वेतन मिलता है जो जिला न्यायालयों के

न्यायधीशों को मिलता है। इन न्यायालयों के पास जिला न्यायालयों से अपीलें आती हैं। अमेरिका में संवैधानिक न्यायालयों की सर्वोच्च श्रेणी सर्वोच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय की है जो संघीय न्यायपालिका का महत्वपूर्ण भाग है।

सर्वोच्च न्यायालय : रचना, क्षेत्राधिकार व कार्य

(Supreme Court : Composition, Jurisdiction and Functions)

अमेरिकन न्याय व्यवस्था में सर्वोच्च शिखर पर सर्वोच्च न्यायालय है। अमेरिक संविधान के अनुच्छेद 3 में इस न्यायालय को संघीय न्यायपालिका का सर्वोच्च अंग बताया गया है। इस न्यायालय की स्थापना 1789 के न्यायिक अधिनियम के तहत हुई थी। आज इसे संयुक्त राज्य अमेरिका की सरकार का तीसरा अंग कहा जाता है। अमेरिका में संविधान की सर्वोच्चता होने के कारण इसे संविधान की व्याख्या करने का अधिकार प्राप्त है और इसे न्यायिक समीक्षा की शक्ति द्वारा कार्यपालिका तथा विधायिका पर भी नियन्त्रण की शक्ति प्राप्त है। आज सर्वोच्च न्यायालय की प्रभावकारी भूमिका ने न्यायधीशों को ही संविधान का निर्माता बना दिया है।

सर्वोच्च न्यायालय की रचना (Composition of the Supreme Court) :- अमेरिका के संविधान में सर्वोच्च न्यायालय के संगठन का अधिकार कांग्रेस को प्राप्त है। इसके न्यायधीशों की संख्या समय-समय पर बदलती रही है। 1789 में सर्वोच्च न्यायालय में एक मुख्य न्यायधीश तथा 5 अन्य न्यायधीश थे। आज इनकी संख्या 9 है जिसमें एक मुख्य न्यायधीश तथा 8 अन्य न्यायधीश शामिल हैं।

न्यायधीशों की नियुक्ति (Appointment of the Judges) :- सर्वोच्च न्यायालय के न्यायधीशों की नियुक्ति सीनेट की अनुमति से राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। लेकिन न्यायधीशों की नियुक्ति करते समय राष्ट्रपति को उनके क्षेत्रीय, धार्मिक तथा राजनीतिक विचारों का भी ध्यान रखना पड़ता है। यदि सीनेट चाहे तो राष्ट्रपति द्वारा की गई नियुक्तियों की पुष्टि करने से इन्कार भी कर सकती है। 1970 में राष्ट्रपति निक्सन द्वारा की गई न्यायधीश हेराल्ड कार्सवेल की नियुक्ति को सीनेट ने अस्वीकार कर दिया था।

न्यायधीशों की योग्यताएं (Qualifications of the Judges) :- अमेरिकन संविधान इस बारे में मौन है कि सर्वोच्च न्यायालय के न्यायधीशों को नियुक्त करते समय किन-किन योग्यताओं का ध्यान रखा जाए। न्यायधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति ही करता है, लेकिन वह सीनेट की स्वीकृति जरूर लेता है। सीनेट की स्वीकृति से राष्ट्रपति किसी भी व्यक्ति को न्यायधीश बना सकता है। लेकिन आज अमेरिका में ऐसी न्यायिक परम्परा का विकास हो चुका है कि राष्ट्रपति न्यायधीशों की नियुक्ति करते समय उनके अनुभव व योग्यता को ध्यान में रखता है। वर्तमान में अमेरिकन सर्वोच्च न्यायालय के न्यायधीश ख्याति प्राप्त वकील, कानून के प्राध्यापक, सार्वजनिक या सामाजिक व्यक्ति, प्रशासकीय अभिकरणों के परामर्शदाता आदि रह चुके होते हैं।

न्यायधीशों का कार्यकाल व पदच्युति (Tenure and Removal of the Judges) :- अमेरिका के संविधान में न्यायधीशों के कार्यकाल की कोई व्यवस्था नहीं है। संविधान में तो केवल इतना ही लिखा है कि न्यायधीश 'सदाचार पर्यन्त' अपने पद पर रह सकते हैं। यदि न्यायधीशों के विरुद्ध कदाचार का अभियोग पारित हो जाए तो उनकी पदच्युति किसी भी समय हो सकती है। न्यायधीशों को पद से हटाने के लिए प्रतिनिधि सभा द्वारा प्रस्ताव लाया जाता है और सीनेट उसकी जांच पड़ताल करती है। यदि सीनेट 2/3 से दोषारोपण प्रस्ताव पास कर देती है तो न्यायधीश की पदच्युति हो जाती है।

वेतन तथा भत्ते (Salary and Allowances) :- अमेरिकन संविधान में न्यायधीशों के वेतन तथा भत्तों का कोई उल्लेख नहीं है। न्यायधीशों के वेतन तभा भत्तों का निर्धारण कांग्रेस द्वारा ही किया जाता है। वर्तमान में सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायधीश का वेतन 1,71,500 डालर तथा अन्य न्यायधीशों का वेतन 1,64,100 डालर प्रतिवर्ष है। इस वेतन पर आयकर भी लगता है। स्वयं त्यागपत्र देने या रिटायर होने की स्थिति में उनके द्वारा कम से कम 10 वर्ष की सेवा किए जाने के कारण जीवन भर पूरा वेतन मिलता है। कांग्रेस न्यायधीशों की नियुक्ति के समय ही उनको दी जाने वाली सुविधाओं का निर्धारण कर देती है जो उनके कार्यकाल में बढ़ाई जा सकती है, उन्हें किसी भी कीमत पर घटाया नहीं जा सकता।

सर्वोच्च न्यायालय के अधिवेशन व गणपूर्ति (Sessions and Quorum) :- सर्वोच्च न्यायालय का अधिवेशन वर्ष में केवल एक बार ही होता है। यह अक्तूबर के पहले सोमवार से जून के प्रथम सप्ताह तक चलता है। इसके बाद ग्रीष्मावकाश हो जाता है। आवश्यकतानुसार मुख्य न्यायधीश द्वारा विशेष अधिवेशन भी बुलाए जा सकते हैं। सर्वोच्च न्यायालय में अधिवेशन के लिए गणपूर्ति 6 है। इसमें प्रत्येक फैसला बहुमत के आधार पर होता है।

सर्वोच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार, शक्तियां व कार्य

(Jurisdiction, Powers and Functions of the Supreme Court)

सर्वोच्च न्यायालय के प्रमुख क्षेत्राधिकार व कार्य निम्नलिखित हैं :-

(1) प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार (Original Jurisdiction) :- सर्वोच्च न्यायालय के प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत वे मुकद्दमें आते हैं जो सीधे सर्वोच्च न्यायालय में ले जाए जा सकते हैं। इसमें निम्नलिखित विवाद शामिल हैं :-

(i) राजदूतों, वाणिज्य दूतों, राजनीतिक प्रतिनिधियों तथा सार्वजनिक सचिवों से सम्बन्धित विवाद सर्वोच्च न्यायालय के प्राथमिक क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत आते हैं।

(ii) ऐसे विवाद जिनमें एक तरफ केन्द्र सरकार तथा दूसरी तरफ एक या अधिक राज्य सरकारें हों, दो या दो से अधिक राज्य सरकारों के बीच विवाद हो, एक तरफ राज्य सरकार तथा दूसरी तरफ नागरिकों के बीच विवाद, सर्वोच्च न्यायालय के प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत शामिल हैं।

(iii) नौ-अधिकरण सम्बन्धी विवाद भी सर्वोच्च न्यायालय के प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत आते हैं।

(iv) अन्तर्राष्ट्रीय सन्धियों व समझौतों, अन्तर्राष्ट्रीय कानून व संविधान सम्बन्धी विवाद भी सर्वोच्च न्यायालय के प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत शामिल हैं।

सर्वोच्च न्यायालय के प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत प्रायः बहुत ही कम मुकद्दमे आते हैं।

(2) अपीलीय क्षेत्राधिकार (Appellate Jurisdiction) :- सर्वोच्च न्यायालय को उन मुकदमों को छोड़कर जो उसके प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत आते हैं, अपीलीय क्षेत्राधिकार प्राप्त है। सर्वोच्च न्यायालय के अपीलीय क्षेत्राधिकार में परिवर्तन करने का अधिकार कांग्रेस के पास है। इस क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय किसी भी मुकद्दमे की उत्प्रेक्षण लेख (Writ of Certiorari) द्वारा निम्न न्यायालयों से अपने पास मंगवाकर उसकी अपील सुन सकता है। ऐसा वह केवल उसकी संवैधानिकता को जांचने के लिए ही कर सकता है। सर्वोच्च न्यायालय किसी सन्धि की व्याख्या करने के लिए भी ऐसा कर सकता है। इसके अन्तर्गत निम्नलिखित अपीलें शामिल हैं :- राज्य के न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध अपीलें, जिला न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध अपीलें तथा सर्किट अपीलीय न्यायालयों के विरुद्ध अपीलें। राज्य न्यायालयों के विरुद्ध अपील तभी सुनी जा सकती हैं, जब राज्य के उच्च न्यायालय ने संघीय कानूनों तथा सन्धियों को असंवैधानिक घोषित कर दिया हो तथा संघीय न्यायालय द्वारा राज्य के किसी ऐसे कानून को संघीय संविधान कानून या सन्धि के विरुद्ध घोषित कर दिया जाए जिसे राज्य के न्यायालय ने वैध करार दिया हो। इसी तरह यदि जिला न्यायालय द्वारा संघीय कानून को असंवैधानिक घोषित किए जाने पर तथा सर्किट अपीलीय न्यायालय के निर्णयों को संवैधानिक व्याख्या देने के लिए संघीय न्यायालय अपीलीय क्षेत्राधिकार रखता है।

(3) संविधान का व्याख्याकार (Interpreter of the Constitution) :- अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय के पास न्यायिक पुनरावलोकन की ऐसी शक्ति है जिसका प्रयोग करके वह कार्यपालिका तथा विधायिका द्वारा निर्मित किसी भी कानून को संवैधानिकता परख सकता है। यदि कोई कानून संविधान के मूल कानून के विरुद्ध हो तो वह उसे असंवैधानिक या अवैध घोषित कर सकता है। इस बारे में सर्वोच्च न्यायालय यह देखता है कि क्या वह कानून 'कानूनी की उचित प्रक्रिया' द्वारा बनाया गया है और क्या अमुक संस्था को वह कानून बनाने की शक्ति है भी या नहीं। अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय ने इस शक्ति का कई बार प्रयोग किया है। उसने विधायिका तथा कार्यपालिका द्वारा निर्मित ऐसे कई कानूनों को रद्द किया है जो संविधान की आत्मा के विरुद्ध थे। अतः सर्वोच्च न्यायालय को संविधान की व्याख्या करने का भी अधिकार प्राप्त है।

(4) संविधान का संरक्षक तथा अभिभावक (Protector and Guardian of the Constitution) :- अमेरिका का सर्वोच्च न्यायालय जनता के अधिकारों, स्वतन्त्रताओं तथा संविधान का रक्षक एवं संघीय व्यवस्था का अभिभावक है। उसे निर्देश, आदेश, परमादेश, प्रतिषेध, अधिकार प्रच्छा आदि जारी करने को अधिकार है। ऐसा करके वह नागरिकों के अधिकारों व स्वतन्त्रताओं का संरक्षक बन जाता है। वह किसी भी व्यक्ति को नागरिक स्वतन्त्रताओं व अधिकारों का अतिक्रमण करने की अनुमति नहीं दे सकता। अमेरिकन संविधान में 'कानून की उचित प्रक्रिया' का अनुपालन किए बिना किसी भी

व्यक्ति को उसके मौलिक अधिकारों से वंचित नहीं किया जा सकता। अतः सर्वोच्च न्यायालय नागरिक अधिकारों का संरक्षक व संविधान का अभिभावक है।

(5) कानून निर्माण में भूमिका (Role in Law Making) :- अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय को संविधान की व्याख्या करने का पूरा अधिकार है। कई बार उसके सामने सरकार द्वारा स्पष्टीकरण सम्बन्धी कई केस आते हैं। वह अस्पष्ट बातों को स्पष्ट करता है और ये नियम ही कालान्तर में स्थायित्व प्राप्त करके संविधान का अभिन्न अंग बन जाते हैं। न्यायधीशों द्वारा दिए गए निर्णय भी संविधान का एक महत्वपूर्ण भाग माने जाते हैं। उनका महत्व भी मूल कानून जैसा ही होता है। जेम्स बैक ने कहा है-"सर्वोच्च न्यायालय केवल एक न्यायालय मात्र ही नहीं है, बल्कि यह एक सतत संविधान निर्मात्री सभा भी है।" इसी कारण लास्की ने सर्वोच्च न्यायालय को अमेरिकन कांग्रेस का 'तीसरा सदन' कहा है।

(6) अन्य कार्य व शक्तियां (Miscellaneous Functions and Powers) :- उपरोक्त शक्तियों व अधिकारों के अतिरिक्त भी सर्वोच्च न्यायालय को कुछ अन्य महत्वपूर्ण अधिकार व शक्तियां प्राप्त हैं। उसे निम्न श्रेणी के कर्मचारियों - जैसे संदेशवाहक, स्टेनोग्राफर आदि की नियुक्ति करने का भी अधिकार प्राप्त है। वह दीवानी एवं फौजदारी कार्यविधियों का निर्देशन करता है और अपनी आज्ञाओं को लागू करता है। इस कार्य को वह आदेश (Writ) के माध्यम से पूरा करता है। लेकिन सर्वोच्च न्यायालय के बारे में यह बात दुर्भाग्यपूर्ण है कि उसे परामर्श देने का अधिकार प्राप्त नहीं है।

अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय की स्थिति

(Position of the American Supreme Court)

उपरोक्त व्याख्या से यह स्पष्ट हो जाता है कि अमेरिकन शासन प्रणाली में सर्वोच्च न्यायालय की स्थिति काफी महत्वपूर्ण है और वह संविधान की व्याख्या व नागरिक अधिकारों के संरक्षक के रूप में है। सी०एफ० स्ट्रांग ने लिखा है-"संयुक्त राज्य अमेरिका में संविधान सर्वोच्च है, विधानमण्डल नहीं और इस तथ्य से न्यायपालिका को एक ऐसी शक्ति प्राप्त हो जाती है जिससे वह कार्यपालिका तथा विधायिका के समान बन जाता है।" अमेरिकन सर्वोच्च न्यायालय की न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति ने उसे सरकार के अन्य दोनों अंगों से सर्वोच्च बना दिया है। सर्वोच्च न्यायालय जब चाहे कांग्रेस द्वारा निर्मित विधियों और राष्ट्रपति द्वारा निर्धारित नीति को संविधान के प्रतिकूल घोषित कर सकता है। सर्वोच्च न्यायालय को ऐसे लेख जारी करने का एकमात्र अधिकार है जो संविधान की मूल आत्मा व नागरिक अधिकारों के पहरेदार हैं। 1930-32 में राष्ट्रपति रुजवेल्ट द्वारा 'न्यू डील' कार्यक्रम के अन्तर्गत 30 कानूनों में से 12 कानूनों को असंवैधानिक घोषित किया था, क्योंकि उनसे नागरिक अधिकारों तथा संविधान के मूल ढांचे का अतिक्रमण होता था। सर्वोच्च न्यायालय ही वह संतुलन चक्र है जो सरकार के समस्त अंगों में संतुलन कायम रखता है। इसे जो शक्ति प्राप्त है वह अन्य किसी न्यायालय को नहीं है। इसी कारण न्यायधीश ह्युज ने लिखा है-"हम संविधान के अधीन हैं, परन्तु संविधान वह है जो न्यायधीश कहते हैं।" सर्वोच्च न्यायालय को न्यायधीश फ्रैंकफरटर ने तो संविधान ही कह दिया है। लास्की ने से कांग्रेस का तीसरा सदन कहा है। अतः सर्वोच्च न्यायालय की स्थिति सर्वोच्च है।

अमेरिका में न्यायिक पुनरावलोकन

(Judicial Review in America)

न्यायिक पुनरावलोकन का सिद्धान्त लिखित संविधान वाले देशों में संवैधानिक शासन की अनिवार्य शर्त माना जाता है। अधिकतर लोकतन्त्रीय देशों में लिखित संविधान के साथ-साथ संघात्मक शासन प्रणाली का अपनाया जाना भी एक महत्वपूर्ण बात है। अमेरिका में भी संघात्मक शासन प्रणाली अपनाई गई है। केन्द्र तथा इकाईयों में तालमेल रखने के लिए शक्तियों के पृथक्करण के बावजूद भी संविधान की सर्वोच्चता कायम रखी गई है और संविधान की व्याख्या करने का अधिकार सर्वोच्च न्यायालय को प्राप्त है। इसी अधिकार का प्रयोग करते समय सर्वोच्च न्यायालय न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति का अधिकारी बन गया है। यद्यपि संविधान में स्पष्ट रूप से किसी भी अनुच्छेद में न्यायिक पुनरावलोकन की कोई व्यवस्था नहीं है, फिर भी न्यायधीशों की योग्यता व संविधान की व्याख्या की शक्ति ने सर्वोच्च न्यायालय को न्यायिक पुनरावलोकन का अधिकार प्रदान किया है।

न्यायिक पुनरावलोकन क्या है ?

(What is Judicial Review ?)

न्यायिक पुनरावलोकन को न्यायिक समीक्षा तथा न्यायिक पुनर्निरीक्षण भी कहा जाता है। साधारण अर्थ में यह न्यायपालिका की वह शक्ति है जिसकी सहायता से सर्वोच्च न्यायालय कार्यपालिका तथा विधायिका के उन कानूनों तथा आदेशों को अवैध घोषित कर सकती है जो संविधान के मूल ढांचे या आदर्शों के विपरीत हो। अमेरिका का सर्वोच्च न्यायालय इस शक्ति के अधीन संविधान की व्याख्या करता है और कांग्रेस तथा राज्यों की व्यवस्थापिकाओं के कानूनों एवं अन्य प्रशासकीय आदेशों की वैधानिकता एवं अवैधानिकता का निर्णय करता है। सर्वोच्च न्यायालय के इस निर्णय के विरुद्ध कहीं भी कोई अपील नहीं की जा सकती।

अमेरिका के न्यायधीश मारबरी मार्शल ने इसे परिभाषित करते हुए कहा है कि "यह सर्वोच्च न्यायालय की ऐसी शक्ति है जिनमें यह किसी कानूनी या सरकारी कार्य को असंवैधानिक घोषित कर सकती है जिसे यह देश की मूल विधि या संविधान के विपरीत समझती है।"

मुनरो ने न्यायिक पुनरावलोकन को परिभाषित करते हुए कहा है-"न्यायिक पुनरावलोकन वह शक्ति है जिसके अन्तर्गत कांग्रेस द्वारा पारित किसी कानून या राज्य के संविधान की किसी व्यवस्था या कानून के सम्बन्ध में यह निर्णय लिया जाता है कि वह संयुक्त राज्य के संविधान के अनुकूल है या नहीं।"

एम०वी० पॉयली के अनुसार-"न्यायिक समीक्षा सर्वोच्च न्यायालय की वह क्षमता है जिससे वह व्यवस्थापन कार्यों की वैधानिकता या अवैधानिकता को घोषित करती है।"

अमेरिका में न्यायिक पुनरावलोकन की उत्पत्ति व विकास

(Origin and Development of Judicial Review in America)

अमेरिका के संविधान में कहीं भी स्पष्ट रूप से इसका कोई उल्लेख नहीं है। लेकिन व्यवहार में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा संविधान की सर्वोच्चता को बरकरार रखते हुए जो निर्णय दिए हैं, उन्हीं से इसका आभास होता है कि अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय के पास न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति है। यद्यपि अप्रत्यक्ष तौर पर अमेरिका के संविधान में इसका उल्लेख अवश्य मिलता है। संविधान के अनुच्छेद 3 के भाग 2 में कहा गया है-"इस संविधान या अमेरिका के कानूनों के अन्तर्गत या उनके प्राधिकार के अधीन की जाने वाली सन्धियों के अधीन, न्यायिक शक्ति विधि और सभ्यता के सभी मामलों तक व्याप्त होगी।" वास्तव में न्यायिक पुनरावलोकन की व्यवस्था अमेरिकन संविधान में न होकर संविधान की प्रकृति में ही निहित है। एल्सवर्थ ने इसकी पुष्टि करते हुए कहा है कि "यदि संयुक्त राज्य अमेरिका में राज्य का शासन अपनी शक्तियों की सीमाओं का अतिक्रमण करे तो वह अनियमित है तथा संघीय न्यायधीश जो निष्पक्षता बनाए रखने के लिए स्वतन्त्र होने चाहिए, उसे अनियमित घोषित करेंगे। अमेरिका में न्यायालयों को यह शक्ति वहां की संघात्मक प्रणाली के कारण प्राप्त हुई है। न्यायिक पुनरावलोकन ही अमेरिका के संविधान को व्यवहारिक बनाता है, इसी कारण वहां पर न्यायिक पुनरावलोकन की व्यवस्था का निरन्तर विकास हुआ है। यद्यपि कार्यपालिका न्यायपालिका के आदेश को मानने के लिए बाध्य नहीं है, लेकिन फिर भी कर्तव्य के रूप में प्रायः न्यायिक पुनरावलोकन का वहां सम्मान हुआ है। अमेरिका में संविधान की धारा 4 भी अप्रत्यक्ष रूप से न्यायिक पुनरावलोकन की व्यवस्था करती है। इस अनुच्छेद में भी संविधान को देश का सर्वोच्च व आधारभूत कानून माना गया है। इससे न्यायालयों को असंविधानिक कानूनों को अवैध ठहराने की शक्ति प्राप्त हुई है। बीयर्ड ने इसी धारा की पुष्टि करते हुए फिलाडेल्फिया सम्मेलन में न्यायपालिका की न्यायिक पुनर्निरीक्षण की शक्ति का समर्थन किया था। उन्होंने राज्य व संघीय दोनों न्यायालयों द्वारा प्रशासन के द्वारा शक्तियों के अतिक्रमण की स्थिति में इस शक्ति का प्रयोग करने की वकालत की थी। संविधान के अनुच्छेद 6 में भी अमेरिकन संविधान की सर्वोच्चता तथा सर्वोच्च न्यायालय को संरक्षक माना गया है। इसमें लिखा है-"यह संविधान तथा अमेरिका के सभी कानून एवं उनके अनुसार की गई सभी सन्धियां अमेरिका का सर्वोच्च कानून होगा और न्यायधीश इस बात से बंधे हुए होंगे। किसी भी राज्य के संविधान तथा कानून यदि संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान के विरुद्ध कोई बात होगी तो वह अवैध मानी जाएगी।"

अमेरिका में न्यायिक व्यवहार के अन्तर्गत न्यायिक पुनरावलोकन की उत्पत्ति 1803 में मारबरी बनाम मेडिसन नामक विवाद से

मानी जाती है। इस विवाद में ही सर्वप्रथम न्यायधीश मार्शल ने इस शक्ति का प्रयोग किया था। उसने 1803 में मारबरी बनाम मेडिसन के केस में अपना प्रसिद्ध ऐतिहासिक निर्णय सुनाते हुए कहा था-"न्यायिक पुनर्निरीक्षण न्यायालयों द्वारा अपने सामने पेश विधायी कानूनों तथा कार्यपालिका अथवा प्रशासकीय कार्यों का वह निरीक्षण है जिसके द्वारा यह निश्चित किया जाता है कि क्या ये एक लिखित संविधान द्वारा निषिद्ध किए गए हैं अथवा उन्होंने अपनी शक्ति से बढ़कर कार्य किया है या नहीं।" मार्शल ने विस्तार से इस केस में व्याख्या करते हुए कहा है कि वह संविधान जो सरकार के ढांचे की व्याख्या करता है, स्वयं एक कानून है और देश का सर्वोच्च कानून है। न्यायधीश जिन्हें संविधान तथा कानून की रक्षा करने की शपथ ली होती है, संविधान और कानून में झगड़ा उत्पन्न होने की स्थिति में कांग्रेस के शासन को अवैध घोषित करने का अधिकार न्यायपालिका के पास है। इस टिप्पणी से अमेरिका में काफी वाद-विवाद हुआ और आखिरकार बहुमत ने इसे स्वीकृत कर लिया। यहीं से न्यायिक पुनरावलोकन की परम्परा की शुरुआत मानी जाती है। उसके बाद 1819 में मैंकुलाक बनाम मेरीलेंड के केस में तथा 1824 में गिब्बन बनाम औगडेन के केस में न्यायधीश मार्शल ने न्यायिक समीक्षा की शक्ति को फिर परिभाषित किया। उसके बाद 1857 में न्यायधीश रोजन बी० टॉनी ने स्कॉट बनाम स्टैनफोर्ड के मामले में कांग्रेस द्वारा बनाए गए एक अधिनियम को अवैध घोषित किया। इस न्यायिक सक्रियता से 1932 में राष्ट्रपति और न्यायपालिका में काफी विवाद छिड़ गया। 1933 में 'National Recovery Act' को न्यायालय द्वारा असंविधानिक करार दिए जाने के बाद राष्ट्रपति रुजवेल्ट ने न्यायपालिका के बारे में आपेक्ष करना शुरु कर दिया। 1933 में सर्वोच्च न्यायालय ने 'राष्ट्रीय औद्योगिक पुनर्व्यवस्था अधिनियम' को उस सीमा तक अवैध घोषित किया था जहां तक इसका सम्बन्ध राज्य के उद्योगों से था। इससे न्यायिक पुनरावलोकन के बारे में इस सिद्धान्त की नींव पड़ गई कि सर्वोच्च न्यायालय किसी विधेयक या अधिनियम को आंशिक रूप में भी अवैध घोषित कर सकता है। यद्यपि न्यायपालिका राजनीतिक विवादों में इस शक्ति का प्रयोग करने से बचती है, लेकिन 1962 में सर्वोच्च न्यायालय को बेकर बनाम कार के मामले में राज्य के निर्वाचन सम्बन्धी कानूनों को अवैध घोषित किया था। 1790 से लेकर अब तक सर्वोच्च न्यायालय सैंकड़ों ऐसे कानूनों को अवैध घोषित कर चुका है, जिनका निर्माण विधायिका या कार्यपालिका द्वारा किया गया और वे संविधान के मूल ढांचे के विपरीत जाते हुए प्रतीत हुए। लेकिन 1970 के बाद सर्वोच्च न्यायालय के व्यवहार में काफी परिवर्तन आया है। अब वह कम ही मामलों में इस शक्ति का प्रयोग करता है।

न्यायिक पुनरावलोकन का प्रभाव

(Impact of Judicial Review)

अमेरिका में न्यायिक समीक्षा की शक्ति का वहां के राजनीतिक जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा है। आज इसका वहां की राजनीतिक व्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान है। आज वहां पर न्यायिक पुनर्निरीक्षण के द्वारा ही संविधान की व्याख्या की जाती है, कांग्रेस तथा राज्यों की व्यवस्थापिकाओं के कानूनों तथा प्रशासकीय कानूनों को वैधानिकता-अवैधानिकता की जांच की जाती है। इस शक्ति के कारण न्यायालय व्यवस्थापन की शक्ति बन चुका है। इस शक्ति ने संविधान को देश का सर्वोच्च कानून बना दिया है। न्यायिक पुनरावलोकन पे वहां के पुलिस अधिकारों को सर्वाधिक प्रभावित किया है। आज पुलिस अधिकारों में सार्वजनिक सुरक्षा, जन-कल्याण, स्वास्थ्य, नैतिकता आदि विषयों का भी समावेश हो चुका है। अपनी इस शक्ति के कारण आज सर्वोच्च न्यायालय राजनीतिक व्यवस्था का एक आधार-स्तम्भ तथा कांग्रेस का तीसरा सदन माना जाता है। आज बदलते परिवेश में भी न्यायपालिका अपनी इस शक्ति के कारण अपनी स्वतन्त्रता व निष्पक्षता को कायम रखने की दिशा में कार्यरत है। लेकिन कई बार न्यायपालिका ने इस शक्ति का गलत प्रयोग कर जनता की सहानुभूति भी खोई है। 1933 से 1936 तक आर्थिक संकट के समय सरकार द्वारा बनाए गए नए कानूनों में से अधिकांश को असंवैधानिक घोषित करके न्यायपालिका ने अपनी इस शक्ति का दुरुपयोग किया है। लेकिन 1937 के बाद सर्वोच्च न्यायालय ने अपनी कमियों में सुधार करके इस शक्ति का व्यापक सोच-विचार करके ही क्रियान्वयन करने की नीति को अमल में लाया है। आज सर्वोच्च न्यायालय अपनी इस शक्ति का प्रयोग मर्यादित तरीके से करने की नीति अपना रहा है।

न्यायिक पुनरावलोकन की आलोचना

(Criticisms of Judicial Review)

अमेरिका में न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति को आलोचना के निम्न आधार हैं :-

(1) सर्वोच्च न्यायालय ने कई बार वैध व उचित कानूनों को भी अवैध ठहराया है। 1933 में आर्थिक संकट के समय पास

किए गए औचित्यपूर्ण कानूनों को अवैध ठहराना सर्वथा गलत था।

(2) न्यायिक पुनरावलोकन न्यायिक निरंकुशता को जन्म देता है।

(3) न्यायिक पुनरावलोकन प्रजातन्त्रीय सिद्धान्तों के विपरीत है। प्रजातन्त्र में कानूनों की वैधता भी जन प्रतिनिधियों द्वारा ही जांची जानी चाहिए, क्योंकि उनका कानून निर्माण में गहरा सम्बन्ध होता है।

(4) इस शक्ति का अमेरिका के संविधान में उल्लेख नहीं है। इसलिए न्यायालयों द्वारा इसका प्रयोग अपने आप में असंविधानिक है।

(5) इससे विधानमण्डल द्वारा कानून निर्माण में प्रायः लापरवाही बरती जाती है। उसे पता होता है कि यदि कानून गलत बन भी गया तो न्यायालय उसे सुधार देगा।

(6) इससे न केवल कानून ही रद्द होता है, बल्कि नीति को भी नुकसान पहुंचता है। नीति-निर्माण करना सरकार का कार्य है न कि न्यायालयों का।

(7) यह बहुमत की निरंकुशता पर आधारित है। इसमें किसी कानून को अवैध घोषित करने के लिए न्यायधीशों का बहुमत होना जरूरी है। उदाहरण के लिए यदि किसी कानून की वैधता जांचने के लिए 10 न्यायधीशों का पैनल बैठता है तो उनमें से 6 के बहुमत से कानून वैध या अवैध माना जाता है। शेष 4 की राय का कोई महत्व नहीं है। इसमें एक मत से कानून को अवैध घोषित किया जाना लोकतन्त्रीय आस्थाओं पर करारा प्रहार है। अतः यह अल्पमत के हितों का विरोधी है।

(8) इससे राजनीतिक वाद-विवादों को बढ़ावा मिलता है।

(9) इससे कार्यपालिका, विधायिका व न्यायपालिका में गतिरोध उत्पन्न होता है। अच्छे शासन के लिए इन तीनों में तालमेल होना बहुत ही आवश्यक है।

कहा जा सकता है कि आज सर्वोच्च न्यायालय अमेरिका में नीति-निर्माता बन गया है। वह कानूनों की व्याख्या की बजाय उनकी औचित्यता की जांच करने लगा है। इसने कई महत्वपूर्ण निर्णयों को प्रभावित करके राजनीतिक विवादों को जन्म दिया है। तीसरे सदन के रूप में उभरकर इसने न्यायिक निरंकुशता को जन्म दिया है। इसलिए ह्युज का यह कथन सही है कि "संविधान वह है जो न्यायधीश कहते हैं।" लेकिन अनेक विवादों से घिरे रहने के बाद भी आज अमेरिका में न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति का विकास जारी है। यह संविधान के चौथे स्तम्भ तथा कांग्रेस के तीसरे सदन के रूप में अपना स्थान बना चुका है। अमेरिका के संविधान को व्यवहारिक बनाने में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका है। फाइनर ने इसे अमेरिकन संविधान की सर्वाधिक मौलिक देन कहा है। अतः अमेरिका में न्यायिक पुनरावलोकन का भविष्य उज्ज्वल है।

स्विस न्यायपालिका

(Swiss Judiciary)

स्विस न्यायपालिका संघात्मक शासन का प्रमुख अंग है, लेकिन फिर भी उसका महत्व उतना नहीं है जितना अमेरिका की न्यायपालिका या भारत की न्यायपालिका का है। स्विस न्यायपालिका के पास न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति भी नहीं है। स्विस न्यायालय अनुच्छेद 113 के अन्तर्गत संघीय व्यवस्थापिका या कार्यपालिका द्वारा निर्मित कानून को मान्यता देने पर विवश है। स्विट्जरलैण्ड में कानून की सर्वोच्चता के स्थान पर जन-सम्प्रभुता की सर्वोच्चता का सिद्धान्त अपनाए जाने के कारण जनमत संग्रह द्वारा किसी भी कानून को बनाया भी जा सकता है और बिगाड़ा भी जा सकता है। इसलिए स्विस न्यायपालिका को जनतांत्रिक बनाया गया है और वर्तमान में 1874 में निर्मित स्विस संविधान इस भावना को बेखूबी निभा रहा है।

स्विस न्यायपालिका का संगठन

(Organisation of the Swiss Judiciary)

स्विट्जरलैण्ड में समस्त संघीय क्षेत्र के लिए एक ही न्यायालय है। इस न्यायालय को संघीय न्यायालय कहा जाता है। यह देश का सर्वोच्च न्यायालय है। इसके अतिरिक्त संघीय स्तर पर अन्य कोई न्यायालय नहीं है। इस न्यायालय में 26-26 न्यायधीश तथा 11-13 उप-न्यायधीश हैं। यह न्यायालय चार विभागों में बंटा हुआ है। इसके दो विभाग दीवानी झगड़ों का निपटारा करते

हैं, तीसरा सार्वजनिक या सामान्य कानून सम्बन्धी झगड़ों का हल करता है और चौथा दीवालियों तथा ऋणों से सम्बन्धित केसों पर विचार करता है। इसी तरह फौजदारी झगड़ों का निपटान करने के लिए भी संघीय न्यायालय को फरियाद विभाग, फौजदारी विभाग, संघीय दण्ड विभाग तथा संविधानिक चार विभागों में बांटा गया है। फौजदारी केसों का निपटारा करते समय जूरियों की मदद ली जाती है। इन जूरियों का चुनाव जनता द्वारा 6 वर्ष के लिए किया जाता है।

संघीय न्यायालय के न्यायधीशों की नियुक्ति (Appointment of the Judges of the Federal Court) :- स्विट्जरलैंड में न्यायपालिका का संगठन सर्वाधिक प्रजातन्त्रीय है। इसके न्यायधीशों की नियुक्ति संघीय सभा द्वारा की जाती है जो स्विस की सर्वोच्च व्यवस्थापिका है। इसमें संघीय व्यवस्थापिका के दोनों सदन मिलकर कार्य करते हैं।

न्यायधीशों की योग्यताएं (Qualifications of the Judges) :- स्विस संविधान में न्यायधीशों की किसी निश्चित योग्यता का उल्लेख नहीं है। संविधान में तो केवल यह लिखा गया है कि संघीय न्यायालय के न्यायधीश स्विस नागरिक हों तथा उनमें सघीय सभा का सदस्य बनने की योग्यता हो। इसके अतिरिक्त स्विस न्यायधीशों की नियुक्ति करते समय यह ध्यान रखा जाता है कि तीनों राजकीय भाषाओं, मुख्य राजनीतिक दलों एवं कैथोलिक तथा प्रोटेस्टेन्ट दोनों धर्मों को भी न्यायपालिका में उचित प्रतिनिधित्व मिले। स्विस न्यायधीशों की नियुक्ति करते समय उनकी योग्यता व अनुभव का भी ध्यान रखा जाता है।

न्यायधीशों के वेतन व भत्ते (Salary and Allowances of the Judges) :- स्विस न्यायपालिका के न्यायधीशों का वेतन निर्धारित करने का अधिकार संघीय सभा को दिया गया है। वर्तमान में संघीय न्यायपालिका के न्यायधीशों को 53,000 फ्रेंक प्रतिवर्ष वेतन मिलता है। न्यायपालिका के अध्यक्ष को 36,000 फ्रेंक अतिरिक्त भत्ता भी मिलता है। उप-न्यायधीशों को केवल दैनिक भत्ता ही मिलता है। सेवानिवृत्ति पद 60 वर्ष के बाद न्यायधीशों को पेन्शन भी मिलती है।

न्यायधीशों का कार्यकाल (Tenure of the Judges) :- स्विस संविधान में न्यायधीशों का कार्यकाल 6 वर्ष निश्चित किया गया है। न्यायधीशों का पुनर्निर्वाचन भी हो सकता है। स्विस संवैधानिक परम्परा के अनुसार अब बार-बार न्यायधीशों का निर्वाचन होने से न्यायधीशों का कार्यकाल स्थाई व लम्बा हो गया है।

संघीय न्यायालय का स्थान (Place of the Federal Court) :- संघीय न्यायालय का स्थान वांड (Vand) कैन्टन की राजधानी लोजान नगर में है।

संघीय न्यायालय के कार्य व शक्तियां

(Functions of Powers and the Federal Court)

1874 के स्विस संविधान में संघीय न्यायालय की प्रमुख शक्तियां व कार्य निम्नलिखित निर्धारित किए हैं :-

(1) दीवानी क्षेत्राधिकार (Civil Jurisdiction) :- जिस संविधान की धारा 110 के अन्तर्गत स्विस न्यायपालिका को प्रारम्भिक दीवानी विवादों का हल करने की शक्ति प्रदान की गई है। इसके अन्तर्गत संघ सरकार तथा कैन्टनों के बीच विवाद, संघ सरकार तथा किसी साधारण नागरिक या निगम के बीच 4000 फ्रेंक से अधिक राशि का विवाद, कैन्टनों के बीच आपसी विवाद, किसी एक कैन्टन तथा आम नागरिक व निगम के बीच 4000 से अधिक धनराशि का विवाद तथा नागरिकता सम्बन्धी तथा कैन्टनों व कम्यूनों के बीच विवाद शामिल हैं। इसी तरह संविधान की धारा 111 के अनुसार भी यदि वादी और प्रतिवादी सहमत हों तो 10000 फ्रेंक से अधिक की राशि का विवाद भी अपील के रूप में संघीय न्यायालय में ले जाया जा सकता है। संघीय न्यायालय को कैन्टनों के न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध भी अपील सुनने का अधिकार है। इस तरह संघीय न्यायालय दीवानी सम्बन्धी झगड़ों में प्रारम्भिक तथा अपीलीय दोनों अधिकार रखता है।

(2) फौजदारी क्षेत्राधिकार (Criminal Jurisdiction) :- स्विस संविधान की धारा 112 में संघीय न्यायालय को फौजदारी मुकद्दमें सुनने का अधिकार भी प्रदान किया गया है। इसके अन्तर्गत संघ के विरुद्ध राजद्रोह, संघीय अधिकारियों के विरुद्ध विद्रोह, हिंसा सम्बन्धी अभियोग, अन्तर्राष्ट्रीय कानून के विरुद्ध अपराध, राजनीतिक अपराध व दुराचार के अभियोग जिनके लिए संघीय सेना की आवश्यकता पड़ी हो तथा ऐसे विषयों से सम्बन्धित विवाद जो कैन्टनों की सरकारों द्वारा संघीय सभा की स्वीकृति लेकर संघीय न्यायालय के पास भेजे हैं, शामिल है। इस बारे में भी संघीय न्यायालय को प्रारम्भिक तथा अपीलीय दोनों क्षेत्राधिकार प्राप्त हैं।

(3) संवैधानिक क्षेत्राधिकार (Constitutional Jurisdiction) :- स्विस न्यायपालिका को न्यायिक समीक्षा की शक्ति प्राप्त न होने पर भी वह कुछ संवैधानिक कार्य भी करती है। संघीय न्यायालय संघीय अधिकारियों व कैन्टनों के अधिकारियों

के बीच विवादों, कैन्टनों द्वारा पारित ऐसे नियमों जो संघ के कानून के विरुद्ध हों, नागरिक अधिकारों के अतिक्रमण के विरुद्ध अपीलों तथा अन्तर्राष्ट्रीय सन्धि व समझौतों से सम्बन्धित विवादों को हल करने का अधिकार भी रखता है।

(4) प्रशासनिक क्षेत्राधिकार (Administrative Jurisdiction) :- 1914 में संविधानिक संशोधन द्वारा संघ के प्रशासनिक न्यायालय की स्थापना की गई, लेकिन 1925 तथा 1928 के संघीय सभा के कानूनों ने संघीय प्रशासनिक न्यायालय की अधिकांश शक्तियां संघीय न्यायालय को हस्तांतरित कर दी। इसलिए स्विस में प्रशासनिक न्यायालय संघीय न्यायालय के ही भाग बनकर रह गए हैं। संघीय न्यायालय प्रशासनिक अभियोगों, सरकारी कर्मचारी या नौकरशाही की कानूनी क्षमता सम्बन्धी विवादों, रेल प्रशासन सम्बन्धी विवादों आदि पर भी विचार कर सकता है।

संघीय न्यायालय की स्थिति

(Position of the Federal Court)

यद्यपि स्विस न्यायपालिका को दीवानी तथा फौजदारी मुकद्दमों में प्रारम्भिक व अपीलीय दोनों क्षेत्राधिकार प्राप्त हैं, लेकिन स्विस न्यायालयों से स्वतन्त्रता व निष्पक्षता की आशा करना बेकार है। न्यायधीशों की नियुक्ति, वेतन, कार्यकाल आदि की समस्त व्यवस्थाएं संघीय सभा के हाथों में है। संघीय सभा जब चाहे न्यायधीशों को हटा सकती है। स्विट्जरलैण्ड में कहने को तो प्रशासनिक न्यायालय है, लेकिन उनकी शक्तियों का प्रयोग संघीय न्यायालय ही करता है। सबसे बड़ी बुरी बात यह है कि स्विस न्यायपालिका को विधायिका तथा कार्यपालिका द्वारा निर्मित कानूनों की संवैधानिकता जांचने की शक्ति भी नहीं है। स्विस न्यायपालिका में न्यायधीशों की संख्या इतनी कम है कि न्यायिक व्यवहार की कार्यकुशलता पर विपरीत असर पड़ता है। न्यायधीशों का कम कार्यकाल तथा जनता को न्यायधीशों को वापिस बुलाने का अधिकार न्यायपालिका पर ऐसा निरंकुश प्रतिबन्ध है कि न्यायधीश स्वतन्त्र व निष्पक्ष रहकर कार्य कर ही नही सकते। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि स्विस न्यायपालिका की कोई प्रासंगिकता नहीं है। सत्य तो यह है कि स्विस न्यायपालिका ने न्यायिक पुनरावलोकन के अभाव व विधायिका के दबाव में रहकर भी जनसम्प्रभुत्ता को व्यावहारिक रूप देने का कार्य किया है। सिद्धान्त में तो स्विस न्यायपालिका की स्थिति चाहे कम महत्व की हो, लेकिन व्यवहारिक तौर पर स्विस न्यायपालिका की प्रगतिशील भूमिका की उपेक्षा करना गलत है।

चीन में न्यायपालिका

(Judiciary in China)

चीन एक साम्यवादी देश है। सोवियत संघ की तरह उसमें भी शक्तियों के पृथक्करण तथा विकेन्द्रीकरण की बजाय केन्द्रीयकरण पर जोर दिया गया है। चीन में शासन की वास्तविक शक्तियां साम्यवादी दल में ही निहित हैं। साम्यवादी देश होने के नाते न्यायपालिका को भी सरकार के स्वतन्त्र अंग के रूप में मान्यता न देकर साम्यवाद के लक्ष्यों की पूर्ति व प्राप्ति के साधन के रूप में ही न्यायपालिका को मान्यता मिली हुई है। पीटर एस० एच० टांग ने लिखा है कि "चीनी न्यायपालिका का उद्देश्य नई व्यवस्था की स्थापना करना है।" शासन के अन्य अंगों की तरह न्यायपालिका का उद्देश्य भी नागरिकों में अपने देश के प्रति भक्ति भाव पैदा करना तथा समाजवाद के सिद्धान्त की शिक्षा देना है। चीनी न्यायपालिका को स्विस न्यायपालिका की तरह न्यायिक समीक्षा का अधिकार भी प्राप्त नहीं है। वहां तो न्यायपालिका की भूमिका क्रांतिकारी समाज के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए बनाई गई नीतियों को कार्य रूप देने वाले यन्त्र के रूप में ही है। चीन में संविधान की व्याख्या का अधिकार न्यायपालिका के पास न होकर राष्ट्रीय जन कांग्रेस व उसकी स्थायी समिति के पास है जो अन्त में साम्यवादी दल के प्रति वचनबद्ध होती हैं। सिद्धान्त में तो चीनी न्यायपालिका स्वतन्त्र व निष्पक्ष है, लेकिन व्यवहार में वह साम्यवादी दल के कठोर नियन्त्रण में है। वस्तुतः चीन में न्यायपालिका पाश्चात्य न्यायपालिका से भिन्न है और उसका उद्देश्य जनता के लिए न्याय करने की बजाय साम्यवादी व्यवस्था की रक्षा करना तथा साम्यवाद के शत्रुओं का नाश करना है।

चीन में न्यायपालिका का संगठन

(Organisation of the Judiciary in China)

चीन में न्यायपालिका सरकार का एक भाग न होकर नियमित प्रशासन का ही एक अंग है जो राष्ट्रीय जनकांग्रेस तथा

जन-प्रतिनिधियों के नियन्त्रण में ही कार्य करती है। 1982 के चीनी संविधान के अनुच्छेद 123 में लिखा है कि चीनी गणतन्त्र के लोक न्यायालय राज्य के न्यायिक अंग हैं। अनुच्छेद 124 में यह व्यवस्था है कि चीन में न्यायिक शक्ति का प्रयोग सर्वोच्च जन न्यायालय, स्थानीय जन न्यायालयों तथा विशेष न्यायालयों द्वारा किया जाता है। चीनी न्यायपालिका का संगठन भी सोवियत संघ के न्यायिक संगठन से मेल खाता है। चीन में न्यायपालिका के दो भाग (i) जन-न्यायालय तथा (ii) जन-प्रोकयूरेटर हैं। ये दोनों भाग कांग्रेस के प्रति उत्तरदायी हैं।

(i) जन-न्यायालय (People's Courts) :- जन-न्यायालयों में सबसे ऊपर के स्तर पर सर्वोच्च न्यायालय हैं। संविधान के अनुच्छेद 42 के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय जनवादी चीन का उच्चतम न्यायिक संगठन है। इसमें एक अध्यक्ष, कुछ उपाध्यक्ष, विभिन्न विभागों के मुख्य न्यायधीश एवं सहायक मुख्य न्यायधीश तथा कुछ अन्य न्यायधीश शामिल होते हैं। सर्वोच्च न्यायालय का अध्यक्ष राष्ट्रीय जन कांग्रेस की स्थायी समिति द्वारा नियुक्त किये जाते हैं। सर्वोच्च न्यायालय के अध्यक्ष व अन्य न्यायधीशों को पदच्युत करने का अधिकार भी राष्ट्रीय जन कांग्रेस व उसकी स्थायी समिति के पास है। सर्वोच्च जन न्यायालय के अध्यक्ष का कार्यकाल राष्ट्रीय जन कांग्रेस के कार्यकाल पर निर्भर करता है। अध्यक्ष को दो से अधिक बार इस पद के लिए चुना जाना वर्जित है। सामान्य तौर पर संविधान की मर्यादा का निर्वहन करते हुए अध्यक्ष को 5 वर्ष के लिए ही चुना जाता है। अध्यक्ष व अन्य न्यायधीश अपने कार्यों के लिए राष्ट्रीय जन कांग्रेस के प्रति ही जवाबदेह हैं। इस न्यायालय के प्रमुख कार्य अधीनस्थ न्यायालयों पर नियन्त्रण व निरीक्षण रखना है। इसे प्रारम्भिक तथा अपीलीय दोनों क्षेत्राधिकार प्राप्त हैं। इस न्यायालय के भी दो भाग - दीवानी तथा फौजदारी हैं। चीनी संविधान की धारा 127 में सर्वोच्च न्यायालय की शक्तियों के बारे में लिखा हुआ है-"सर्वोच्च जन-न्यायालय सबसे बड़ा न्यायालय है। यह विभिन्न स्तरीय स्थानीय जन-न्यायालयों और विशेष जन-न्यायालयों पर निगरानी रखता है।"

जन-न्यायालयों की दूसरी श्रेणी स्थानीय जन-न्यायालयों की है जो सर्वोच्च न्यायालय के अधीन कार्य करते हैं। स्थानीय जन-न्यायालय भी तीन प्रकार के हैं - उच्च जन-न्यायालय, मध्य जन-न्यायालय तथा प्रारम्भिक न्यायालय। इनमें से अन्य जन न्यायालयों के न्यायधीशों या प्रमुख व उप-प्रमुख की नियुक्ति व पदच्युति प्रान्त की जन कांग्रेस कर सकती है। यह न्यायालय प्रत्येक प्रान्त में एक ही होता है और यह दीवानी तथा फौजदारी विभागों में बंटा होता है। यह अपने क्षेत्राधिकार में पड़ने वाले मुकद्दमों के विरुद्ध अपील सुन सकता है। इसके बाद मध्य जन-न्यायालय हैं जिनकी स्थापना प्रान्तों, स्वशासित क्षेत्रों, केन्द्रीय शासन के अधीन नगरपालिकों, प्रांतीय नगरपालिकों आदि में की जाती है। ये न्यायालय उच्च न्यायालय के अधीन कार्य करते हैं। इन न्यायालयों में एक अध्यक्ष, उपाध्यक्ष व अन्य न्यायधीश होते हैं। इन न्यायालयों में भी दीवानी तथा फौजदारी दोनों केस आते हैं। यह न्यायालय प्रारम्भिक जन न्यायालयों के विरुद्ध अपील सुन सकता है। इसे प्रारम्भिक न्यायालयों द्वारा स्थानान्तरित मुकद्दमों के बारे में तथा अपने क्षेत्राधिकार में आने वाले मुकद्दमों के बारे में प्रारम्भिक तथा अपीलीय क्षेत्राधिकार प्राप्त हैं। स्थानीय जन-न्यायालयों की सबसे निम्न श्रेणी प्रारम्भिक न्यायालयों की है। इसमें भी एक अध्यक्ष, उपाध्यक्ष तथा अन्य न्यायधीश होते हैं। ये न्यायालय सभी काऊंटी, स्वशासित काऊंटी नगरपालिका और जिलों में स्थापित किए जाते हैं और ये अपने स्तर की जन कांग्रेस के प्रति उत्तरदायी होते हैं। इन्हें भी दीवानी तथा फौजदारी मुकद्दमें सुनने का अधिकार है। चीन में जन-न्यायालयों की एक विशिष्ट श्रेणी भी है। इसके अन्तर्गत सैनिक न्यायालय, रेलवे न्यायालय, यातायात न्यायालय, जल परिवहन न्यायालय शामिल हैं। इन न्यायालयों का संगठन गणराज्य की राष्ट्रीय जन कांग्रेस द्वारा निश्चित किया जाता है। इन न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है।

(ii) जन-प्रोक्यूरेटर अथवा न्यायवादी (People's Procurator) :- चीन में जन-प्रोक्यूरेटर या जन-समाहर्ताओं की भी व्यवस्था है। जन-प्रोक्यूरेटरों की व्यवस्था सोवियत संघ के संविधान के आधार पर की गई है। समस्त देश के लिए एक प्रोक्यूरेटर होता है और उसके अधीन अनेक प्रोक्यूरेटर होते हैं। सर्वोच्च जन प्रोक्यूरेटर का चयन राष्ट्रीय जन कांग्रेस द्वारा 5 वर्ष के लिए समिति करती है। इसी तरह उनकी पदच्युति भी की जाती है। स्थानीय जन प्रोक्यूरेटरों की नियुक्ति उसी स्तर की जन कांग्रेस करती है और वे उसी के प्रति उत्तरदायी होते हैं। चीनी प्रोक्यूरेटर व्यवस्था का अन्तिम स्तर विशेष जन-प्रोक्यूरेटरों का है। चीनी न्याय व्यवस्था में सभी स्तर के प्रोक्यूरेटरों व विशेष महत्व हैं।

जन-प्रोक्यूरेटरों के कार्य (Functions of the People's Procurators) :- चीन में जन-प्रोक्यूरेटर सभी सरकारी अंगों व न्यायालयों को कानून के अनुसार कार्य करने का निर्देश देते हैं। संविधान के अनुच्छेद 43 में सर्वोच्च जन-प्रोक्यूरेटर

का प्रमुख कार्य यह देखना बताया है कि राज्य परिषद के विभिन्न विभागों, विभिन्न स्तर के स्थानीय निकायों, राज्य कर्मचारियों तथा नागरिकों द्वारा संविधान एवं अन्य कानूनों का समुचित पालन किया जा रहा है या नहीं। इसी तरह के उत्तरदायित्व स्थानीय व विशेष जन-प्रोक्यूरेटरों को सौंपे गए हैं। प्रोक्यूरेटर जनरल तथा उसके अधीन प्रोक्यूरेटरों को अपने से अधीनस्थ अधिकारियों व नागरिकों द्वारा संविधान की पालना सुनिश्चित की जाती है। उन्हें किसी भी राजकीय अंग या सरकारी कर्मचारी के विरुद्ध अपील सुनने का अधिकार है। ये उन सभी अपराधों और मामलों की जांच करते हैं जिनका सम्बन्ध साम्यवाद विरोधी तत्वों से होता है। ये अपराधी की सन्देह के आधार पर बन्दी बनाने का आदेश दे सकते हैं। ये न्यायालयों के निर्णयों की संवैधानिकता को परख सकते हैं और गलत निर्णयों के विरुद्ध अपील भी कर सकते हैं। लेकिन व्यवहार में न्यायपालिका का यह अंग भी साम्यवादी दल के कठोर नियन्त्रण में ही है। वास्तव में चीनी प्रोक्यूरेटरवादी व्यवस्था भी सोवियत प्रोक्यूरेटरालयों की तरह साम्यवादी तानाशाही को निर्देशित करने वाले यन्त्र हैं। फिर भी शासन का अभिन्न अंग होने के नाते चीनी समाज में उनका महत्वपूर्ण स्थान है, परन्तु उतना नहीं जितना सोवियत प्रोक्यूरेटरों को है।

चीनी न्यायपालिकों के कार्य

(Functions of theChinese Judiciary)

चीन में न्यायिक सिद्धान्त और व्यवहार में काफी अन्तर है। चीनी न्यायपालिका को प्रारम्भिक तथा अपीलीय दोनों क्षेत्राधिकार प्राप्त हैं। परन्तु व्यवहार में न्यायपालिका साम्यवादी हितों का पोषण ही करती हैं। सिद्धान्त तौर पर चीनी न्यायपालिका के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं :-

(1) फौजदारी व दीवानी झगड़ों का निपटारा करना।

(2) अपराधियों को सजा देना।

(3) जनवादी प्रजातन्त्रीय प्रणाली के हितों की सुरक्षा करना।

(4) विवादों का निराकरण करना।

(5) सार्वजनिक सम्पति की सुरक्षा करनां

(6) नागरिक अधिकारों व स्वतन्त्रताओं की सुरक्षा करनां

(7) सार्वजनिक शान्ति की व्यवस्था करना।

(8) समाजवादी कार्यक्रमों को लागू करना तथा उन्हें स्थायित्व प्रदान करना।

चीन में न्यायपालिका को जो अधिकार व शक्तियां सिद्धान्त तौर पर प्राप्त हैं, वे किसी भी प्रजातन्त्रीय देश से कम नहीं हैं। लेकिन दुर्भाग्य की बात यह है कि न्यायिक व्यवहार के सिद्धान्त और व्यवहार की वास्तविकता कुछ और ही है।

चीनी न्यायपालिका की विशेषताएं

(Features of Chinese Judiciary)

चीनी न्यायपालिका की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं :-

(1) चीनी न्यायपालिका सरकार या शासन का स्वतन्त्र अंग न होकर नियमित प्रशासन का ही एक भाग है और उस पर भी साम्यवादी दल का कठोर नियन्त्रण रहता है।

(2) चीनी न्यायालयों को न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति प्राप्त नहीं है। उसे भारत तथा अमेरिका की तरह विधायिका व कार्यपालिका द्वारा निर्मित कानूनों की संवैधानिकता जांचने का अधिकार नहीं है।

(3) सभी न्यायालयों के न्यायधीश व अध्यक्ष सम्बन्धित स्तर की जन-कांग्रेसों द्वारा नियुक्त पदच्युत किए जाते हैं। अर्थात न्यायालयों पर जन कांग्रेस का नियन्त्रण रहता है। अतः चीन में न्यायपालिका का जनतांत्रीकरण किया गया है।

(4) चीन में न्यायपालिका का लक्ष्य समाजवादी क्रान्ति की रक्षा व उसको स्थायित्व प्रदान करना है।

(5) चीन में न्यायपालिका की प्रकृति राजनीतिक है, वैधानिक नहीं।

(6) चीन में न्यायालयों की कार्यविधि बहुत आसान व खुली है। केवल विशेष अपराधों में ही कार्यवाही गुप्त रखी जाती है।

(7) चीन में न्यायधीशों की योग्यता का अभाव है। चीन में साम्यवादी दल के समर्थक व्यक्ति ही न्यायपालिका में नियुक्त किया जाते हैं।

(8) चीन में एक संगठित न्याय प्रणाली है। देश में एकल न्यायपालिका है और सभी न्यायालय सर्वोच्च न्यायालय के मार्ग-दर्शन में ही कार्य करते हैं।

(9) चीन में न्यायधीशों का कार्यकाल निश्चित नहीं है। न्यायधीशों का कार्यकाल राष्ट्रीय जन कांग्रेस व प्रांतीय जनकांग्रेसों के कार्यकाल पर निर्भर है और अन्त में साम्यवादी दल की इच्छा पर निर्भर है।

(10) चीनी न्यायपालिका स्वतन्त्र व निष्पक्ष नहीं है, क्योंकि वह साम्यवाद विरोधियों को कुचलने के लिए साम्यवादी दल के कठोर नियन्त्रण में कार्य करती है।

(11) चीन में मुकद्दमों की सुनवाई खुली होती है और उसमें आम नागरिक भी सुनवाई के समय उपस्थित रह सकता है।

(12) चीन में सामूहिक दण्ड की भी व्यवस्था है। प्रायः अपराधियों को सार्वजनिक स्थान पर सामूहिक दण्ड दिया जाता है।

(13) चीनी न्यायपालिका में सर्वोच्चता व कानून के शासन का अभाव है। चीन में संवैधानिक कानून के स्थान पर साम्यवादी सहयोग देने वाली संस्था है।

(14) चीन में जन-निर्धारकों की नियुक्ति भी की जाती है जो केवल मुकद्दमें की सुनवाई के समय ही कार्य करते हैं। प्रत्येक केस की सुनवाई प्रायः एक न्यायधीश या दो जन-निर्धारकों द्वारा की जाती है और समस्त निर्णय बहुमत से लिये जाते हैं।

(15) चीन में निजी वकीलों का अभाव है। कोई भी अभियुक्त सरकार द्वारा जनमत तैयार की गई सूची में से किसी भी व्यक्ति को अपना वकील नियुक्त करने को बाध्य होता है।

(16) चीन में किसी भी व्यक्ति को न्यायालय की कार्यवाही के दौरान अपनी राष्ट्रीयता की भाषा प्रयोग करने का अधिकार है। यदि कोई अभियुक्त क्षेत्रीय भाषा से अनभिज्ञ हो तो वह दुभाषिए का सहारा ले सकता है।

(17) चीन की न्यायपालिका सुधारक न्याय पर आधारित है। वहां अराजनीतिक अपराधों के लिए कठोर दण्ड देने की बजाय अपराधी को भूल सुधार का मौका दिया जाता है, लेकिन राजद्रोह, भ्रष्टाचार व समाजवादी क्रान्ति विरोधी कार्यों के लिए मृत्यु-दण्ड का भी प्रावधान है।

(18) चीन में प्रशासकीय न्यायालय भी नहीं हैं।

चीनी न्याय-व्यवस्था का मूल्यांकन
(Evaluation of Chinese Judicial System)

यदि चीन की न्यायिक-प्रणाली का गहराई से अवलोकन किया जाए तो वह रूस की न्याय-व्यवस्था से मिलती-जुलती है। साम्यवादी देश होने के नाते चीन में भी न्यायपालिका का संगठन लगभग उसी तरह का है जैसा रूस में रहा है। चीनी न्यायपालिका का उद्देश्य नागरिक स्वतन्त्रताओं व अधिकारों का संरक्षण करना न होकर सर्वहारा के शत्रुओं का विनाश और साम्यवाद की नीतियों व कार्यक्रमों का क्रियान्वयन करना है। चीन में कानून के शासन की जगह कानून के सामने समानता का सिद्धान्त अवश्य अपनाया गया है, मुकद्दमों की सुनवाई भी खुली होती है और प्रतिवादी को अपने बचाव का पुरा अवसर भी दिया जाता है, लेकिन फिर भी न्यायिक समीक्षा की शक्ति का अभाव, न्यायधीशों का राजनीतिक होना, विधायिका के प्रति उनका उत्तरदायित्व, न्यायिक स्वतन्त्रता का अभाव आदि दोषों के कारण न्यायपालिका को वह सम्मान प्राप्त नहीं है जो भारत तथा अमेरिका में है।

अध्याय-9

राजनीतिक संस्कृति

(Political Culture)

आधुनिक तुलनात्मक राजनीतिक विश्लेषण के क्षेत्र में राजनीतिक संस्कृति की अवधारणा राजनीति विज्ञान के क्षेत्र में बिल्कुल नई संकल्पना है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद राजनीतिक विश्लेषकों ने यह पता लगाने का प्रयास किया कि समान राजनीतिक संरचनात्मक ढांचे वाली राजनीतिक व्यवस्था के व्यवहार में अन्तर क्यों आ जाता है तथा राजनीतिक विकास की दिशाएं भी अलग-अलग क्यों हो जाती है ? इसके लिए राजनीतिक विश्लेषकों ने भारत, फ्रांस, अमेरिका, ब्रिटेन, पाकिस्तान, घाना, मिश्र आदि विकसित व विकासशील देशों की राजनीतिक व्यवस्थाओं को तुलनात्मक अध्ययन शुरु किया और अन्त में चौंकाने वाले निष्कर्ष निकाले। राजनीतिक विश्लेषकों ने राज-व्यवस्थाओं का जिस निष्ठा व गहराई के साथ अवलोकन किया, उसी के कारण यह तथ्य उभरकर हमारे सामने आया कि राजनीतिक विकास के विभिन्न दिशाओं में जाने का कारण इन देशों की राजनीतिक संस्कृति का स्वरूप है। पराधीन राजनीतिक संस्कृति के कारण विकासशील देशों का राजनीतिक विकास राजनीतिक व्यवस्था के मार्ग में बाधा बन रहा है, जबकि विकसित व सहभागी राजनीतिक संस्कृति विकसित देशों में राजनीतिक विकास को राजनीतिक विकास के अनुकूल बना रही है। इस प्रकार धीरे-धीरे राजनीतिक संस्कृति की अवधारणा राजनीति विज्ञान की लोकप्रिय अवधारणा बन गई और राजनीतिक विकास के समाजवैज्ञानिक पहलुओं का आधार भी। इसी कारण लुसियन पाई ने लिखा है-"प्रत्येक विशिष्ट समाज में एक सीमित और स्पष्ट राजनीतिक संस्कृति होती है जो राजनीतिक प्रक्रिया को अर्थ, स्वरूप और ढांचा प्रदान करती है।" कुछ ही समय में राजनीति विज्ञान में पारसन्स, मैनहीन, सिडनी वर्मा, लुसिपन पाई, ऑमण्ड, बीर, उलम आदि विद्वानों ने राजनीतिक संस्कृति को राजनीति विज्ञान में तुलनात्मक विश्लेषण का मेरुदण्ड बना दिया। आज राजनीतिक संस्कृति ही एकमात्र ऐसी अवधारणा है जो राजनीति विज्ञान में तुलनात्मक अध्ययन का विकसित दृष्टिकोण प्रस्तुत करने में सक्षम है। इसी कारण इस अवधारणा का विकसित दृष्टिकोण प्रस्तुत करने में सक्षम है। इसी कारण इस अवधारणा का महत्व दिन-प्रतिदिन बढ़ रहा है।

राजनीतिक संस्कृति का अर्थ व परिभाषा

(Meaning and Definition of Political Culture)

राजनीतिक संस्कृति की अवधारणा, संस्कृति के विचार पर आधारित है। संस्कृति में किसी देश के लोगों के व्यवहार, मान्यताएं, विश्वास, घृणा, स्वामिभक्ति, साहित्य, परम्पराएं, कला-कौशल, सामाजिक मूल्य, नैतिकता आदि बातें शामिल होती हैं। ग्राहम वालास के अनुसार-"संस्कृति विचारों, मूल्यों और उद्देश्यों का संमूह है।" इसी तरह राजनीतिक विद्वानों ने राजनीतिक संस्कृति को राजनीतिक समाज के मूल्यों, विचारों व आदर्शों का समूह कहा है। इस अवधारणा को सबसे पहले ऑमण्ड ने 1956 में प्रयुक्त किया था। सामान्य तौर पर राजनीतिक संस्कृति का राज्य के अन्दर बसने वाले लोगों की उन सामूहिक अन्तर्भावनाओं का नास है जिन्हें राजनीतिक व्यवस्था की प्रतिक्रियाओं के रूप में व्यक्त किया जाता है। इसे विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से निम्न तरह से परिभाषित किया है :-

(1) लुशियन पाई के अनुसार-"राजनीतिक संस्कृति उन अभिवृत्तियों, विश्वासों तथा मनोभावों का सेट या समुच्चय है, जो राजनीतिक प्रक्रिया को अर्थ व सुव्यवस्था प्रदान करता है। वह राजव्यवस्था में व्यवहार को नियन्त्रित करने वाली अन्तर्निहित पूर्वधारणाओं तथा नियमों की भी व्याख्या करता है।"

(2) ऑमण्ड व पॉवेल के अनुसार-"राजनीतिक संस्कृति किसी भी राजनीतिक प्रणाली के सदस्यों में राजनीति के प्रति

व्यक्तियों के व्यवहारों तथा अभिमुखीकरण की पद्धति है।"

(3) फाईनर के अनुसार, "राजनीतिक संस्कृति मुख्यतः शासकों, राजनीतिक संस्थाओं तथा प्रक्रियाओं की वैधता से सम्बन्धित है।"

(4) ए०आर० बाल के अनुसार-"राजनीतिक संस्कृति उन अभिवृत्तियों और विश्वासों, भावनाओं और समाज के मूल्यों से मिलकर बनती है जिनका सम्बन्ध राजनीतिक पद्धति तथा राजनीतिक प्रश्नों से रहता है।"

(5) पारसन्स के अनुसार-"राजनीतिक संस्कृति का सम्बन्ध राजनीतिक उद्देश्यों के प्रति किया गया अनुकूलन है।"

(6) राय मैक्रीडस के अनुसार-"राजनीतिक संस्कृति का अर्थ एक मानव-समूह के द्वारा स्वीकृत सामान्य लक्ष्यों और समान्य नियमों से होता है।"

(7) सिडनी वर्बा के अनुसार-"राजनीतिक संस्कृति में अनुभववादी विश्वासों, अभिव्यक्तात्मक प्रतीकों और मूल्यों को वह व्यवस्था शामिल है जो उस दशा को परिभाषित करती है जिसमें राजनीतिक क्रिया सम्पन्न होती है।"

(8) नेटल के अनुसार-"राजनीतिक संस्कृति का अर्थ राज्यसत्ता से सम्बन्धित ज्ञान मूल्यांकन और संचारण के प्रतिमान या प्रतिमानों से है।"

(9) डेविज व लेविस के अनुसार-"राजनीतिक संस्कृति किसी निर्दिष्ट समाज के अन्दर राजनीतिक कार्यों प्रति अभिमुखीकरण की पद्धति है।"

(10) रोवे के अनुसार-"राजनीतिक संस्कृति व्यक्तिगत मूल्यों, विश्वासों तथा संवेगात्मक अभिवृत्तियों का प्रतिमान है।"

(11) राज एवं डोगन के अनुसार-"राजनीतिक संस्कृति की अवधारणा ऐसे मूल्यों, विश्वासों और मनोभावों को संक्षेप में व्यक्त करने की सुविधाजनक रीति है, जो राजनीतिक जीवन को अर्थ प्रदान करती है।"

(12) बीयर व उलन के अनुसार-"समाज की सामान्य संस्कृति के कई पहलुओं का सम्बन्ध इस बात से होता है कि सरकार किस प्रकार चलाई जानी चाहिये ओर इसे क्या करने की कोशिश करनी चाहिये। संस्कृति के इस क्षेत्र को हम राजनीतिक संस्कृति कहते हैं।"

इस प्रकार उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर निष्कर्ष निकलता है कि राजनीतिक संस्कृति, राजनीतिक व्यवस्था के प्रति लोगों की अभिवृति व रुचि है जो राजनीतिक विश्वास की भावना पर आधारित है।

राजनीतिक संस्कृति के संघटक

(Components of Political Culture)

राजनीतिक संस्कृति राजनीतिक समाज के लोगों की राजनीतिक व्यवस्था के प्रति अभिरुचियों, मूल्यों व विश्वासों पर आधारित है। राजनीतिक संस्कृति में आत्मपरकता का गुण होने के कारण यह व्यक्तिगत अभिविन्यास या अनुकूल का हिस्सा होती है। यह अनुकूलन ज्ञानात्मक, भावनात्मक तथा मूल्यात्मक होता है। ज्ञानात्मक अनुकूल का सम्बन्ध लोगों की राजनीतिक व्यवस्था के प्रति जानकारी से, भावनात्मक अनुकूलन का सम्बन्ध लोगों का राजनीतिक व्यवस्था के प्रति लगाव से तथा मूल्यांकन अनुकूलन का सम्बन्ध लोगों के द्वारा राजनीतिक व्यवस्था के मूल्यों व निर्णयों से होता है। इस अनुकूलन की दृष्टि से राजनीतिक व्यवस्था के तीन घटक होते हैं-मूल्य, विश्वास और संवेदात्मक अभिवृत्तियाँ। प्रत्येक देश की राजनीतिक संस्कृति का निर्माण इन्हीं घटकों से होता है। इन घटकों की अनुक्रिया ही किसी राजनीतिक व्यवस्था को सामान्य या विशिष्टता की तरह ले जाती है। इसी कारण राजनीतिक संस्कृति को राजनीतिक व्यवस्था का प्रकृति का नियात्मक कहा जाता है। राजनीतिक संस्कृति के घटकों का मूल्यांकन करके ही राजनीतिक संस्कृति की प्रकृति का भी निर्धारण किया जा सकता है। ये घटक निम्नलिखित हैं :-

(1) मूल्य अभिवृत्तियां (Value Preferences) :- प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था में राजनीतिक बातों में रुचि रखने वाले सदस्य व्यवस्था के मूल्यों से अवश्य प्रभावित होते हैं। ये अभिवृत्तियां राजनीतिक समाज के सार्वजनिक लक्ष्यों से सम्बन्धित विश्वास व आस्थाएं होती हैं। प्रत्येक राजनीतिक समाज में कुछ राजनीतिक मूल्य होते हैं, जैसे एक निश्चित अवधि के बाद निर्वाचन होने चाहिए; जनता का विश्वास खो देने पर सरकार को अपना पद छोड़ देना चाहिए, किसी व्यक्ति को

कानून [illegible] नहीं मिलना चाहिये। लेकिन यह आवश्यक नहीं है कि सभी लोगों की रुचि इन मूल्यों मे समान हो। किसी की रुचि तो सामाजिक न्याय व समानता में हो सकती है, किसी की रुचि राजनीतिक स्थिरता में हो सकती है तथा किसी की कानून के शासन में हो सकती है। इसलिए राजनीतिक संस्कृति के आधार पर राजनीतिक व्यवस्थाओं की कार्यप्रणाली या व्यवहार में भिन्नता का कारण मूल्य अभिरुचियों में पाया जाने वाला अन्तर है। जब जनता तथा शासक वर्ग की मूल्य अभिवृत्तियां असमान हो जाती हैं तो राजनीतिक व्यवस्था पर संकट के बादल छा जाते हैं।

(2) विश्वास अभिवृत्तियां (Belief Preferences) :- जनता की राजनीतिक व्यवस्था के प्रति विश्वास की अभिवृत्तियां राजनीतिक मूल्यों से घनिष्ठ सम्बन्ध रखती है। इसके अन्तर्गत दो अभिरुचियां हैं कि लोगों का राजनीतिक व्यवस्था के प्रति विश्वास की मात्रा तथा प्रकृति क्या है। किसी व्यक्ति को वोट डालने में विश्वास हो सकता है तथा किसी का नहीं। इस विश्वास के आधार पर ही शासक व शासित को पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित होते हैं। इसी विश्वास में अन्तर आ जाने पर राजनीतिक संस्कृतियों में मात्रात्मक अन्तर आ जाता है और जनता का राजनीतिक व्यवस्था के प्रति विश्वास का स्वरूप भी बदल जाता है। इसी से राजनीतिक व्यवस्था का संचालन प्रभावित होता है। अतः राजनीतिक विश्वास ही राजनीतिक संस्कृति के माध्यम से राजनीतिक व्यवस्था का नियात्मक व संचालन बना रहता है।

(3) संवेदनात्मक अभिवृत्तियां (Sentimental Preferences) :- इसका सम्बन्ध लोगों की राजनीतिक व्यवस्था के प्रति मनोवृत्तियों या मनोभावों से होता है। किसी व्यक्ति को तो अपने देश या व्यवस्था पर गर्व हो सकता है तो किसी को घृणा भी हो सकती है। किसी देश में दबाव समूहों को हेय दृष्टि से देखा जाता है तो किसी देश में उसका सम्मान किया जाता है। 1971 में पाकिस्तान का विभाजन संवेदनात्मक मनोवृत्ति का ही परिणाम था। 1947 में भारत-पाक [illegible] में ही ऐसा कारण था, ब्रिटेन में लोगों का संसदीय शासन प्रणाली में विश्वास है और वे उसको सम्मान की दृष्टि से देखते हैं, जबकि भारत में संसदीय शासन प्रणाली के प्रति लोगों का दृष्टिकोण अधिक अच्छा नहीं है। इसका प्रमुख कारण संवेदनात्मक अभिवृत्तियों में पाया जाने वाला अन्तर ही है।

इस प्रकार उपरोक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि राजनीतिक संस्कृति के घटकों में पाया जाने वाला अन्तर राजनीतिक संस्कृति में मात्रात्मक भेद पैदा करता है और यही भेद आगे चलकर राजनीतिक व्यवहार की भिन्नता के रूप में प्रकट होता है।

राजनीतिक संस्कृति की प्रकृति व विशेषतायें

(Nature and features of Political Culture)

राजनीतिक संस्कृति एक विकासशील व गत्यात्मक अवधारणा है। इसकी प्रकृति परिवर्तनशील तथा विकासोन्मुखी होती है। [illegible] इसका निर्माण ऐतिहासिक विकास की पृष्ठभूमि में होता है। राजनीतिक व्यवहार और राजनीतिक संस्कृति का आपस में गहरा सम्बन्ध है। इससे व्यक्ति और समूह के राजनीतिक आचरण का बोध होता है। यह प्रगतिशील और समन्वयकारी होने के कारण रूढ़िवादी समाज की सांस्कृतिक विरासत होती है। यह राजनीतिक व्यवस्था के प्रति व्यक्ति अथवा सम्पूर्ण समाज का सकारात्मक आग्रह है। यह राजनीतिक व्यवस्था को प्रभावित करने वाले दबाव समूह व राजनीतिक दलों की गतिविधियों से भी काफी प्रभावित होती रहती है। इसके ऊपर कुछ आन्तरिक तथा बाह्य शक्तियों का भी प्रभाव पड़ता है। राजनीतिक संस्कृति का मौलिक स्वभाव इसकी गतिशीलता है, जड़ता नहीं। एक राजनीतिक संस्कृति कई उप-संस्कृतियों को भी समेटे रखती है। इसे राजनीतिक एकता के प्रतीक के रूप में भी देखा जाता है। इसके अनेक रूप होते हैं और यह राजनीतिक व्यवहार को अंगीकार करने में सक्षम होती है। राजनीतिक संस्कृति की इस प्रकृति को इसकी विशेषताओं में भी देखा जा सकता है। इसकी प्रमुख विशेषतायें निम्नलिखित हैं :-

(1) राजनीतिक संस्कृति एक व्यक्तिपरक धारणा है, क्योंकि इसमें लोगों के विचारों, विश्वासों व मूल्यों का अध्ययन किया जाता है।

(2) राजनीतिक संस्कृति एक व्यापक धारणा है, क्योंकि यह राजनीतिक व्यवहार के अनेक तत्वों को अपने में समेटे रहती है।

(3) राजनीतिक संस्कृति सामान्य संस्कृति का ही एक अंश होती है, क्योंकि इसमें लोगों के राजनीतिक मूल्य व विश्वास ही शामिल होते हैं।

(4) राजनीतिक संस्कृति का स्वरूप प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था में अलग-अलग होता है, क्योंकि राजनीतिक संस्कृति के घटकों को प्रत्येक देश में अन्तर पाया जाता है।

(5) राजनीतिक संस्कृति एक अमूर्त नैतिक अवधारणा है।

(6) राजनीतिक संस्कृति एक गत्यात्मक व परिवर्तनशील अवधारणा है।

(7) राजनीतिक संस्कृति व राजनीतिक विकास में गहरा सम्बन्ध होता है।

(8) राजनीतिक संस्कृति राजनीतिक समाजीकरण व आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को भी प्रभावित करती है। अड़ियल प्रकार की राजनीतिक संस्कृति राजनीतिक आधुनिकीकरण, समाजीकरण व विकास का मार्ग अवरुद्ध कर देती है।

(9) भूगोल, परम्पराएं, इतिहास, आदर्श, जीवन मूल्य, जलवायु, सामाजिक तथा आर्थिक तत्व, राष्ट्रीय प्रतीक आदि तत्व राजनीतिक संस्कृति के निर्माण में योगदान देते हैं।

(10) राजनीतिक संस्कृति जन-सामान्य के राजनीतिक व्यवहार को प्रभावित करती है।

राजनीतिक संस्कृति के प्रकार

(Types of Political Culture)

राजनीतिक संस्कृति में पाई जाने वाली मात्रात्मक विभिन्नताएं अपने अनेक रूपों का परिचय स्वयं ही दे देती हैं। प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था में लोगों का राजनीतिक व्यवस्था के प्रति लगाव, विश्वास व मूल्य अलग अलग ढंग का होता है। कहीं पर तो राजनीतिक व्यवस्था के प्रति गहरा लगाव रखते है और राजनीतिक प्रक्रिया में सक्रिय सहभागिता रखते हैं तो कहीं पर इसका सर्वथा अभाव पाया जाता है। राजनीतिक समाज के सदस्यों की राजनीतिक सहभागिता ही प्रायः राजनीतिक संस्कृति की प्रकृति का निर्धारण करती है। निरन्तरता या सातत्य की दृष्टि से राजनीतिक संस्कृति परम्परागत व आधुनिक दो प्रकार की हो सकती हैं। जहां परम्परा व आधुनिकता में संघर्ष चलता रहता है वहां पर राजनीतिक संस्कृति का नवीन रूप भी अस्तित्व में आ जाता है जिसे मिश्रित संस्कृति कहा जा सकता है। विचारवादियों की दृष्टि में राजनीतिक संस्कृति प्रजातंत्रीय, साम्यवादी, समाजवादी व एकतन्त्रवादी हो सकती है। भौगोलिक आधार पर यह - पर्वतीय, मैदानी, सामुद्रिक, आकाशीय तथा ध्रुवीय हो सकती है। विश्व में पूंजीवादी, सर्वहारा, काली, पीली या श्वेत संस्कृतियों का भी इतिहास में वर्णन मिलता है। एकरूपता की दृष्टि से इसे संकुचित, प्रजाभावी तथा सहभागी संस्कृति में बंट जाता है। इस विभाजन का आधार लोगों का राजनीतिक व्यवस्था के प्रति अभिमुखीकरण माना जाता है। एस०ई०फाइनर ने राज-संस्कृति को प्रौढ़, विकसित, निम्न तथा पूर्व-फ्रांसीसी क्रान्ति सम-न्यूनतम स्तरीय चार भागों में बांटा है। ऑमण्ड ने भी राजव्यवस्थाओं में जनसहभागिता के सन्दर्भ में इसे तीन भागों में बांटा है। उसने आगे राजनीतिक संस्कृति के तीन अन्य प्रकार भी बताये हैं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि राजनीतिक संस्कृति विभिन्न आधारों पर अनेक प्रकार की होती है। राजनीतिक संस्कृति के प्रमुख रूप निम्नलिखित हो सकते हैं :-

(1) संख्या व शक्ति के आधार पर

इस आधार पर राजनीतिक संस्कृति के दो भेद माने जाते हैं :-

(i) अभिजनात्मक संस्कृति (Elitist Culture) :- यह संस्कृति इस मान्यता का परिणाम है कि प्रत्येक शासन में गिने-चुने लोग ही सत्ता के वास्तविक धारक होते हैं और उनका राजनीतिक व्यवस्था तथा लोगों की जीवन शैली पर व्यापक प्रभाव होता है। भारत में नेहरु व गांधी जी ने जिस संस्कृति को जन्म दिया वह अभिजनात्मक होते हुए भी उसके अधिक थी। यह संस्कृति समाज में विशिष्ट वर्ग के हितों की पोषक होने के साथ-साथ जनसामान्य के प्रति अपना दृष्टिकोण ईमानदारी का बनाए रखती है।

(ii) जनसंस्कृति (Mass-Culture) :- यह संस्कृति लोकतन्त्रीय आस्थाओं को समेटे हुए है। यह जन-आस्था एवं रचनात्मक वृत्तियों का द्योतक है। इसमें राजनीतिक प्रक्रिया में जनसाधारण की उपेक्षा नहीं की जा सकती और प्रत्येक स्तर पर जनता की भावनाओं का ख्याल रखा जाता है। विकसित देशों में यह अधिक-संस्कृति के साथ ही मिलकर चलती है। विकासशील देशों में इस प्रकार की संस्कृति का अधिक प्रचलन बढ़ रहा है।

(2) निरन्तरता व सातत्व की दृष्टि से

इस आधार पर राजनीतिक संस्कृति को तीन भागों में बांटा जा सकता है :-

(i) परम्परागत राजनीतिक संस्कृति (Traditional Political Culture)

(ii) आधुनिक राजनीतिक संस्कृति (Modern Political Culture)

(iii) मिश्रित राजनीतिक संस्कृति (Mixed Political Culture)

परम्परावादी संस्कृति का सम्बन्ध जन सामान्य से होता है, जबकि आधुनिक राजनीतिक संस्कृति का सम्बन्ध विशिष्ट वर्गीय शासकों से होता है। ब्रिटेन तथा भारत में मिश्रित संस्कृति पाई जाती है। क्योंकि यहां पर परम्परा व आधुनिकता का सुन्दर मिश्रण है। ब्रिटेन में कुलीनतन्त्रीय राजनीतिक ढांचे का तादात्म्य ऐसे सामाजिक व आर्थिक ढांचे के साथ किया गया ह कि उसमें विशिष्ट वर्ग व जनसाधारण दोनों के हितों का पोषण हो जाता है। विकासशील देशों में इसी प्रकार की संस्कृति ह। सर्वाधिकारवादी देशों में विशिष्ट वर्गीय हितों की पोषक आधुनिक व परम्परावादी दोनों संस्कृतियां पाई जाती हैं। आमण्ड-कालमैन का मानना है कि सभी राजनीतिक समाजों में राजनीतिक संस्कृति का मिश्रित रूप ही पाया जाता है।

(3) राजनीतिक सहभागिता के आधार पर

इस आधार पर वर्गीकरण करने वाले प्रमुख विद्वान ऑमण्ड व वर्बा हैं। उनका कहना है कि प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था में जनता सहभागिता चाहती है। लेकिन सभी व्यवस्थाओं में पूर्ण व सक्रिय सहभागिता का होना आवश्यक नहीं है। इसलिए इस आधार पर कि जनसहभागिता का स्तर क्या है। लोग राजनीति के प्रति उदासीन हैं या सक्रिय, इस आधार पर राजनीतिक संस्कृति को शुद्ध रूप में तीन भागों में बांटा जाता है :-

(i) संकीर्ण-राजनीतिक संस्कृति (Parochial Political Culture) :- इस प्रकार की राजनीतिक संस्कृति कम विकसित तथा परम्परागत राजनीतिक समाजों में पाई जाती है। इसका प्रमुख कारण यह होता है कि इस समाजों में कम विशेषीकरण के कारण सभी भूमिकाएं शासन वर्ग द्वारा ही अदार की जाती हैं। इसमें जनता राजनीति के प्रति प्रायः उदासीन ही रहती हैं। राजनीतिक नेता ही धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक भूमिकाओं का एक साथ निर्वहन करते हैं। इसमें जनता की तरफ से राजनीति के प्रति कोई मांग या निवेश नहीं होता और न ही निर्गतों की तरफ उसका ध्यान रहता है।

(ii) पराधीन-राजनीतिक संस्कृति (Subject-Political Culture) :- इस प्रकार की राजनीतिक संस्कृति का जन्म उन समाजों में भी होता है, जहां जनता राजनीति के प्रति अर्कमण्य रहती हे और वह शासकीय आदेशों को विवशतावश चुपचाप सहन करती है और उनका पालन करती रहती है। यह राजनीतिक संस्कृति आश्रित उपनिवेशों में ही विद्यमान थी। इस प्रकार की संस्कृति में जनता निवेषों से दूर रहती है, लेकिन निर्गतों पर यह ध्यान रखती है। इस संस्कृति मे लोगों का राजनीतिक अभिमुखीकरण व्यवस्था से लेने के स्तर पर ही सक्रिय होता है। सार रूप में इससे जनता की राजनीतिक सक्रियता प्रायः सीमित प्रकृति की होती है। कई बार इस प्रकार की संस्कृति निर्गतों के परिणामो के रूप में महान आन्दोलनों की जनक भी बन जाती है। इस संस्कृति को प्रजामूलक संस्कृति भी कहा जाता है।

(iii) सहभागी-राजनीतिक संस्कृति (Parltcipant-Political Culture) :- इस प्रकार की राजनीतिक संस्कृति उन समाजो में पाई जाती है, जहां जनता को राजनीतिक सहभागिता के पूरे अवसर प्राप्त किये जाते हैं। इस संस्कृति में जनता निवेशा व निर्गतों पर समान नजर रखती है। इस प्रकार की संस्कृति विकसित देशों में पाई जाती है। इसमें लोगों का राजनीतिक व्यवस्था के प्रति लगाव व विश्वास उच्च स्तर का बना रहता है। इसमें जनता अपने अधिकारों व कर्तव्यों के प्रति जागरूक बनी रहती है। इसे प्रजातन्त्रीय राजनीतिक संस्कृति भी कहा जाता है।

उपरोक्त शुद्ध रूपों के अतिरिक्त भी मिश्रित रूप में ऑमण्ड व वर्बा ने राजनीतिक संस्कृति को तीन भागों में बांटा है

(i) संकीर्ण-पराधीन राजनीतिक संस्कृति।

(ii) पराधीन-सहभागी राजनीतिक संस्कृति।

(iii) संकीर्ण-सहभागी राजनीतिक संस्कृति।

(i) संकीर्ण-पराधीन राजनीतिक संस्कृति (Parochial-Subject Political Culture) :- यह संस्कृति मिश्रित प्रकृति की होती है। इसमें दोनों प्रकार की राजनीतिक संस्कृतियों की विशेषतायें पाई जाती हैं। इसमें दोनों प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं। कुछ व्यक्ति तो राजनीति के प्रति लगाव रखते हैं और कुछ दूर रहते हैं।

(ii) पराधीन-सहभागी राजनीतिक संस्कृति (Subject-Participant Political Culture) :- यह संस्कृति पराधीन राजनीतिक संस्कृति तथा सहभागी राजनीतिक संस्कृति के गुणों से परिपूर्ण रहती है। यह संस्कृति इन समाजों में पाई जाती है जहां लोगों का राजनीतिक व्यवस्था के प्रति लगाव होता है। इसमें कुछ लोग ऐसे भी होते हैं, जो केवल निवेशों और निर्गतों के प्रति ही रुचि रखते हैं। इस संस्कृति का उदय राजनीतिक व्यवस्था में जनसहभागिता की वृद्धि की शुरुआत के साथ हुआ।

(iii) संकीर्ण-सहभागी राजनीतिक संस्कृति (Parochial Participant Political Culture) :- इस प्रकार की संस्कृति में शासक वर्ग ही जनता को प्रभावित नहीं करता बल्कि जनता भी शासकीय नीतियों को प्रभावित करती है। इसमें जनइच्छा का पूरा सम्मान किया जाता है। यह संस्कृति संकीर्ण व सहभागी राजनीतिक सरकृति दोनों की विशेषतायें समेटे रहती हैं।

(4) गुणात्मक स्वरूप के आधार

एस०ई० फाइनर ने अपनी पुस्तक 'The Man on Horse Back' में राजनीतिक संस्कृति के चार प्रकार बताये हैं :-

(i) प्रौढ या परिपक्व राजनीतिक संस्कृति।

(ii) विकसित राजनीतिक संस्कृति।

(iii) निम्न राजनीतिक संस्कृति।

(iv) पूर्व-फ्रांसीसी क्रान्ति-सम अल्पस्तरीय राजनीतिक संस्कृति।

(i) प्रोढ़ राजनीतिक संस्कृति (Mature Political Culture) :- यह संस्कृति ब्रिटेन, आस्ट्रेलिया तथा नीदरलैण्ड में पाई जाती है। इसमें राजनीतिक सर्वसम्मति व संगठन की मात्रा बहुत ऊँची होती है। इसमें सैनिक शक्ति का प्रयोग करने से परहेज किया जाता है। इसके अन्तर्गत शासन की सर्वोच्च सत्ता पर नागरिक सरकार का ही अधिकार रहता है। यह संस्कृति राजनीतिक स्थिरता वाले देशों में ही पाई जाती है।

(ii) विकसित राजनीतिक संस्कृति (Developed Political Culture) :- यह संस्कृति मिस्त्र, अल्जीरिया और क्यूबा जैसे देशों में पाई जाती है। इस प्रकार की राजनीतिक संस्कृति राजनीतिक स्थिरता के साथ-साथ सैनिक खतरों में भी भयभीत रहती है। ऐसे परिवेश में आम जनता को शक्ति का भय दिखाकर शान्त करने का प्रयास किया जाता है, लेकिन क्रान्ति या तख्तापलट की सम्भावनायें सदा ही बनी रहती हैं। इसमें नागरिक सरकार पर संकट के बादल मंडराते रहते हैं।

(iii) निम्न राजनीतिक संस्कृति (Low Political Culture) :- यह संस्कृति उन राजनीतिक समाजों में पाई जाती है, जहाँ लोकमत सशक्त नहीं होता। इसी कारण इसमें जन-विरोध की भावना का अभाव पाया जाता है। इसकी संस्कृति वाले देशों में राजनीतिक संस्थाएं बहुत ही कमजोर स्थिति में रहती हैं। इसमें जनता सुशासन की कामना तो रखती है, लेकिन उनका यह स्वप्न पूरा नहीं होता। इस व्यवस्था में लोकतन्त्रीय आस्थाओं पर सैनिक तानाशाही का शिकंजा कसा रहता है। जनाधार के बंटे होने के कारण यह संस्कृति सदैव पराधीन व निम्न कोटि की ही बनी रहती है। यह राजनीतिक संस्कृति वियतनाम, सीरिया, ब्रह्मा, इन्डोनेशिया, पाकिस्तान आदि देशों में पाई जाती है।

(iv) पूर्व-फ्रांसीसी क्रांति-सम अल्पस्तरीय राजनीतिक संस्कृति (Like Pre-French Revolutions Minimal Political Culture) :- यह संस्कृति उन देशों में पाई जाती है, जहां सरकार जनता के विचारों की मनकानी अवहेलना कर सकती है। फ्रांसीसी क्रान्ति से पहले फ्रांस में यह संस्कृति विद्यमान थी। आज इस संस्कृति के लिये कोई स्थान नहीं है।

(5) शासन व्यवस्था जनित संवेगों के आधार

इस आधार पर ऑमण्ड ने राष्ट्रों की राजनीतिक व्यवस्था, भौगोलिक प्रणाली, विकासशील प्रवृत्ति आदि के आधार पर राजनीतिक संस्कृति को चार भागों में बांटा है :-

(i) आंग्ल-अमेरिकी राजनीतिक व्यवस्था।

(ii) महाद्वीपीय यूरोपीय राजनीतिक व्यवस्था।

(iii) अपश्चिमी एवं आंशिक रूप से पूर्ण-औद्योगिक राजनीतिक व्यवस्था।

(iv) सर्वाधिकारवादी राजनीतिक व्यवस्था।

(i) आंग्ल-अमेरिकी राजनीतिक व्यवस्था (Anglo-American Political Culture) :- यह संस्कृति ब्रिटेन और अमेरिका में पाई जाती है। इसमें राजनीतिक साध्यों व साधनों पर आम सहमति पाई जाती है। आदिकालीन वर्तमान धर्मनिरपेक्ष मान्यताओं का सुन्दर मूल होता है। इस संस्कृति से सम्बन्धित देशों में वैयक्तिक मान्यताओं का सुन्दर मेल होता है। इस संस्कृति से सम्बन्धित देशों में वैयक्तिक स्वतन्त्रता, अधिकार व सुरक्षा को विशेष महत्व दिया जाता है। इसमें समाज का स्वरूप बहुलवादी होता है। इसमें सत्तावादी शासन की सम्भावनाएं कम होती हैं और यहाँ पर भूमिकाओं का स्थायित्व भी रहता है। इसमें विशेषीकरण तथा विभेदीकरण का गुण भी पाया जाता है।

(ii) महाद्वीपीय-यूरोपीय राजनीतिक व्यवस्था (Continental European Political Culture) :- यह राजनीतिक संस्कृति फ्रांस, इटली, स्वीडन, नार्वे, जर्मनी आदि कम विकसित पश्चिमी देशों में पाई जाती है। इस राजनीतिक संस्कृति में न तो जनता अपने नेताओं के प्रति पूर्ण आश्वस्त होती है और न ही नेतागण अपने लोगों पर पूर्ण रूप से निर्भर रहते हैं। इस प्रकार की संस्कृति में जनता की बजाय राजनीतिक प्रक्रिया में दबाव समूहों की भूमिका अधिक रहती है। इस प्रकार की संस्कृति कई उप-संस्कृतियों को भी जन्म देती है।

(iii) अपश्चिमी एवं आंशिक रूप से पूर्व-औद्योगिक राजनीतिक व्यवस्था (Non-Western or Partially Pre-Industrial Political System) :- इस प्रकार की राजनीतिक संस्कृति पूर्व उपनिवेशों व औद्योगिक रूप से पिछड़े देशों में देखने को मिलती है। विकासशील देशों की राजनीतिक संस्कृति इसी प्रकार की राजनीतिक संस्कृति है। जो व्यवस्थाएं इस प्रकार की राजनीतिक संस्कृति से युक्त होती है, वहां सदैव अस्थिरता का माहौल बना रहता है। इस प्रकार की संस्कृतियां चुनावों के समय व्यापक व क्रान्तिकारी राजनीतिक उथल-पुथल का संकेत देती हैं। इस प्रकार की संस्कृति चुनावों के समय करिश्माई नेतृत्व में प्रभावित होती रहती हैं। इस संस्कृति में शासक वर्ग की इच्छा को जनता पर थोप दिया जाता है। ऐसी संस्कृति परम्परागत व आधुनिकता के दौर से गुजर रहे समाजों में पाई जाती है। एशिया व अफ्रीका के सभी विकासशील देश इसकी श्रेणी में आते हैं। भारत में भी यही राजनीतिक संस्कृति है।

(iv) सर्वाधिकारवादी राजनीतिक व्यवस्थाएं (Totalitarian Political System) :- इस प्रकार की व्यवस्था में शासन प्रणाली पर एक ही दल का प्रभुत्व रहने के कारण राजनीतिक संस्कृति की एकता परिलक्षित होती है। इसमें शक्ति के आधार पर सत्ता व शासन को औचित्यपूर्ण बनाए रखा जाता है। इसमें नौकरशाही का महत्व बहुत अधिक बढ़ जाता है। इसमें जनसहभागिता के नाम पर जनता के साथ धोखा किया जाता है। इसमें अधिकारों की अपेक्षा कर्तव्यों पर अधिक ध्यान दिया जाता है। इस प्रकार की संस्कृति चीन व अन्य साम्यवादी देशों में पाई जाती है।

इस प्रकार उपरोक्त विवेचन के बाद कहा जा सकता है कि विभिन्न आधारों पर राजनीतिक संस्कृति अनेक प्रकार की होती है। उपरोक्त वर्गीकरण के अतिरिक्त भी कुछ विद्वानों द्वारा राजनीतिक संस्कृति के कुछ अन्य रूप भी बताये हैं। उन्होंने पंथ-निरपेक्ष, नागरिक, सैद्धान्तिक, समरूप, खण्डित आदि राजनीतिक संस्कृतियों का भी वर्णन किया है। लेकिन ये सब भी उपरोक्त विवरण के अन्तर्गत ही घुलकर रह जाते हैं। इनके पृथक विवेचन की कोई आवश्यकता नहीं है। यह बात तो सच है कि प्रत्येक देश किसी न किसी प्रकार की राजनीतिक संस्कृति से जुड़ा हुआ है। किसी भी देश में राजनीतिक संस्कृति का विशुद्ध रूप देखना कठिन है। आज सभी राजव्यवस्थाओं में राजनीतिक संस्कृति के साथ-साथ उप-राजनीतिक संस्कृतियां भी उभर रही हैं। अतः आमण्ड-कोलमैन का कथन सही है कि आज विश्व में राज-व्यवस्थाओं में राजनीतिक संस्कृति का मिश्रित रूप ही पाया जाता है।

नागरिक संस्कृति की अवधारणा
(Concept of Civic Culture)

आज का युग लोकतन्त्रीय-कल्याणकारी राज्यों का युग है, लोकतन्त्र का उदारवादी स्वरूप आधुनिक लोकतन्त्र की प्रमुख

विशेषता एवं सच्चाई है, जिससे बचने का जोखिम किसी भी राजनीतिक व्यवस्था को खतरे में डाल सकता है। आज आवश्यकता इस बात की है कि जनता की शासन-प्रक्रिया में अधिक से अधिक भागीदारी सुनिश्चित हो। आज जनसंचार के साधनों तथा बदलते विश्व परिवेश ने सभी देशों को इस बात के प्रति आगाह कर दिया है कि वे नागरिक संस्कृति से उदासीन न रहें। आंग्ल-अमेरिका व्यवस्था में कुछ सीमा तक नागरिक संस्कृति का ही प्रतिबिम्ब है। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता, जन-कल्याण, सुरक्षा आदि तत्व नागरिक संस्कृति के निर्माण का आधार है। इस प्रकार की संस्कृति साध्यों और साधनों में मतैक्य स्थापित कर सकती है। जिन देशों में नागरिक अपने अधिकार व कर्तव्यों के प्रति जागरूक हैं, वहां इस प्रकार की संस्कृति का निर्माण आसानी से हो सकता है। इस प्रकार की राजनीतिक संस्कृति में भागीदारी और सहनशीलता का स्तर काफी ऊँचा होता है। इसमें निर्णयकारी संरचनाएं ही निर्णयों की प्रभावकारिता के लिए उत्तरदायी होती है। इस प्रकार की राजनीतिक संस्कृति न तो शासक वर्ग को मनमानी करने की अनुमति देती है और न ही उस मनमानी को सहन किया जा सकता है। इस प्रकार की संस्कृति ब्रिटेन तथा अमेरिका में विकसित हो चुकी है और आज विश्व के अन्य देशों में भी इसके विकसित होने की आवश्यकता है।

नागरिक संस्कृति का अर्थ

(Meaning of Civic Culture)

साधारण अर्थों में उदारवादी लोकतन्त्र की स्थापना करने वाली राजनीतिक संस्कृति को नागरिक संस्कृति कहा जाता है। इस प्रकार की संस्कृति में संकुचित, पराधीन तथा सहभागी सभी राजनीतिक संस्कृतियों के लक्षण पाये जाते हैं। इसलिए इन तीनों के लक्षणों से युक्त संस्कृति ही नागरिक संस्कृति कहलाती है। ऑमण्ड तथा सिडनी वर्बा ने नागरिक संस्कृति को परिभाषित करते हुए कहा है, "उदार लोकतन्त्र को संभालने में उपयुक्त एवं लोकतन्त्रीय आस्थाओं को रखने व लोकतन्त्रीय मूल्यों का दिग्दर्शन कराने व उन्हें महता प्रदान करने वाली संस्कृति नागरिक संस्कृति कहलाती है।"

नागरिक संस्कृति की व्याख्या

(Explanation of Civic Culture)

अनेक विद्वानों ने नागरिक संस्कृति पर अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हुए निष्कर्ष प्रस्तुत किया है कि आज तेजी से परिवर्तनशील अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था एवं समाज में आवश्यकता इस बात की है कि एक आदर्श नागरिक संस्कृति का निर्माण किया जाये। उनका मानना है कि नागरिक संस्कृति शासन की क्षमता एवं राजनीतिक प्रक्रिया में नागरिकों की सहभागिता के बीच सामंजस्य स्थापित करके हीं निर्मित की जा सकती है। इसकी स्थापना से नागरिकों में अधिकार व कर्तव्य बोध का ज्ञान होने के कारण उनकी राजनीतिक प्रक्रिया के प्रति उदासीनता व सक्रियता में सामंजस्य स्थापित हो सकता है। इसलिये इसकी स्थापना के लिए यह आवश्यक है कि नागरिकों को जनहित के मामलों में अधिक जागरूकता व सक्रियता बनाये रखनी चाहिये ताकि शासक वर्ग की निरंकुशता पर रोक लगाई जा सके व जनहित के प्रति राजनीतिक नेतृत्व को उत्तरदायित्व से युक्त अनाया जा सके। यद्यपि इसके निर्माण में कुछ बाधाओं का उत्पन्न होना भी स्वाभाविक ही है। लेकिन लोकतन्त्रीय शासन व्यवस्था में लोगों की समर्थनकारी भावना और राष्ट्रीय निष्ठा के कारण इस पर काफी सीमा तक काबू पाया जा सकता है, क्योंकि लोकतन्त्र में ऐसा सामंजस्य व संतुलन थोड़ी बहुत मात्रा में अवश्य पाया जाता है। इसकी स्थापना के लिए केवल इतना ही जरूरी है कि नागरिक समुदाय के राजनीतिक विवाद और मूल्य, राजनीतिक समानता और सहभागिता के सिद्धान्तों के अनुकूल ही हो। जन सहमति पर आधारित सरकार द्वारा जनहित में कार्य करके शासक और शासित में सामंजस्यपूर्ण सम्बन्धों की स्थापना के ध्येय के द्वारा इस कार्य को आसान बनाया जा सकता है। इसकी स्थापना के साथ ही नागरिक शासन का जन्म होगा और सभी लोग नागरिक शासन में सहभागिता के उत्तरदायित्व का निर्वहन करेंगे और तानाशाही या बलात् राज्य की बलात् परिवर्तन द्वारा स्थिति क्षीण हो जायेगी तथा एक आदर्श नागरिक समाज की स्थापना होगी जो अपने पूर्ववर्ती समाजों में व्यापक आधार लिए हुए होगा जिसमें सभी की इच्छाओं का सम्मान किया जायेगा।

राजनीतिक संस्कृति के निर्धारक तत्व

(Determinants of Political Culture)

प्रत्येक देश की राजनीतिक संस्कृति अलग प्रकार की होती है। इसका प्रमुख कारण इसके निर्धारक तत्वों में मिलने वाला अन्तर

होता है। राजनीतिक संस्कृति का सामान्य संस्कृति से भी घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है। इसी कारण सामान्य संस्कृति के निर्धारक तत्व राजनीतिक संस्कृति को भी प्रभावित करते हैं। ये निर्धारक तत्व ही राजनीतिक संस्कृति की प्रकृति के निर्धारक होते हैं। ये तत्व निम्नलिखित हो सकते हैं :-

(1) इतिहास (History) :- किसी भी राजनीतिक व्यवस्था की राजनीतिक संस्कृति की जड़ें इतिहास के अन्दर गडी होती हैं। राजनीतिक व्यवस्था और संस्कृति अतीत से अपना नाता कभी नहीं तोड़ सकती। साम्यवादी क्रान्तियां भी रूस और चीन में अतीत के अनुभवों को भुला नहीं सकी हैं। ब्रिटेन में अतीत व आधुनिकता का सुन्दर मेल है। वहां पर कुलीनतन्त्र आस्थाओं का लोकतन्त्रीय आस्थाओं के साथ सुन्दर समन्वय देखने को मिलता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। उसके पीछे मूल कारण राजनीतिक संस्कृतियों का परम्पराओं से जुड़ा रहना है। फ्रांस में 1789 की क्रांति के बाद अतीत से छुटकारा पाने का जो खतरा उठाया गया था, उसने 1958 तक फ्रांस की राजनीतिक व्यवस्था को अस्थिर बनाये रखा। आज भारत की राजनीतिक संस्कृति पर 1857 की क्रान्ति तथा आगामी स्वतन्त्रता आन्दोलन व भारत पाक-विभाजन की घटनाओं का प्रभाव है। 1689 के बिल ऑफ राईटस तथा 1865 के गृह युद्ध का ब्रिटेन और अमेरिका की राजसंस्कृति पर प्रभाव पड़ा है। इसी कारण कहा जाता है कि इतिहास जड़ है और राजनीति उसका फल। भारत, चीन तथा श्रीलंका की स्वाधीनता के समय में कम अन्तर होने के बाद भी इन देशों की राजनीतिक संस्कृतियों में काफी अन्तर है। इसका प्रमुख कारण इतिहासिक घटनाओं में पाया जाने वाला अन्तर ही है।

(2) भूगोल (Geography) :- भौगोलिक स्थिति भी किसी देश की राजनीतिक संस्कृति को प्रभावित करता है। राष्ट्र के अस्तित्व के लिए विभिन्नताओं में एकता होना अनिवार्य होता है। भौगोलिक दृष्टि से सुरक्षित व विकसित राष्ट्र छोटे-मोटे उत्पातों को आसानी से झेल लेते हैं। एक द्वीप होने के कारण ब्रिटेन आज तक विदेशी आक्रमणों से सुरक्षित रहा है। पश्चिमी जर्मनी भी भौगोलिक दृष्टि से रूस तथा अमेरिका के बीच स्थित होने के कारण दोनों के अन्तर्राष्ट्रीय गठबन्धनों के निर्देशन के कारण एक संघीय गणतन्त्र बना रहा। यदि इस स्थिति में कोई भी परिवर्तन किया जाता तो उसका प्रभाव अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति को खतरे में डाल सकता था। 1947 के बाद भारत व पाक की भौगोलिक दूरी ने भी दोनों देशों में अलग प्रकार की राज-संस्कृतियों को जन्म दिया। भौगोलिक दृष्टि से सुरक्षित व सम्पन्न देशों की राजनीतिक संस्कृतिक अधिक उन्नत व विकासोन्मुखी रही है। नेपाल व भूटान की विशेष भौगोलिक स्थिति ने आज उन्हें विशिष्ट प्रकार की राजनीतिक संस्कृतियां दी हैं जो भारत व चीन से सर्वथा भिन्न है।

(3) सामाजिक तथा आर्थिक विकास (Social and Economic Development) :- राजनीतिक संस्कृति का विकास भी सामाजिक व आर्थिक विकास के सापेक्ष होता है। जिस देश में सामाजिक समरसता या एकता का गुण पाया जाता है, वहां की राजनीतिक संस्कृति भी प्रवाहमान व सहज होती है। वाहं पर राजनीतिक अस्थिरता आना असम्भव होता है। इसी तरह आर्थिक विकास के पर्याप्त अवसर भी राजनीतिक व्यवस्था को सशक्त बनाकर संस्कृति को भी विशेष तरह की बना देते हैं। सामाजिक तथा आर्थिक विषमताओं से युक्त राजनीतिक समाज की संस्कृति विकसित देशों की राजनीतिक संस्कृति से अलग प्रकार की बनती है। इसी तरह औद्योगिक समाज में संचार साधनों के विकास तथा शक्षिक स्तर में वृद्धि से गुटों व समूहों की नीति-निर्माण में सहभागिता बढ़ जाती है, जबकि कृषक समाज या ग्रामीण समाज राजनीतिक अभिमुखीकरण से दूर रहने के कारण अलग तरह की राजनीतिक संस्कृति को जन्म देता है। सामाजिक तथा आर्थिक विषमताओं वाला समाज उप-संस्कृतियों को जन्म देकर राजनीतिक व्यवस्था तथा राजनीतिक संस्कृति दोनों के लिए संकट पैदा करता है।

(4) विचारधाराएं (Ideologies) :- राजनीतिक विचारधाराएं भी राजनीतिक संस्कृति को निर्धारित करने वाली होती हैं। विकासशील देशों में तो विचारधाराओं के अनुकूल राजनीतिक संस्कृति का निर्माण किया जाने लगा है। भारत में गांधी व नेहरु की विचारधारा का भी उतना ही प्रभाव है, जितना सुभाष व तिलक की विचारधारा का। इसी कारण भारत की राजनीतिक संस्कृति में मिश्रितपन पाया जाता है। जर्मनी में नाजीवादी, चीन में साम्यवादी, इटली में फासीवादी, अमेरिका तथा ब्रिटेन में उदारवादी विचारधाराओं का वहां की राजनीतिक संस्कृति के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान है। इटली व जर्मनी में आज भी राजनीतिक संस्कृति में फासीवादी व नाजीवादी तत्व परिलक्षित होते हैं। अतः विचारधारा भी राजनीतिक संस्कृति की प्रमुख निर्धारक हैं।

(5) सामान्य संस्कृति (General Culture) :- राजनीतिक संस्कृति सामान्य संस्कृति पर ही आधारित होती है। सामान्य

संस्कृति का प्रमुख नियामक तत्व माना जाता है। राजनीतिक संस्कृति को सामान्य संस्कृति से अलग नहीं किया जा सकता। सामान्य संस्कृति को ही राजनीतिक संस्कृति का नैतिक तथा स्थाई आधार माना जाता है। विकासशील देशों में पैदा होने वाली राजनीतिक अस्थिरता का प्रमुख कारण राजनीतिक संस्कृति का सामान्य संस्कृति से अलगाव है। विकासशील देशों की राजनीतिक संस्कृति सामान्य संस्कृति के लौकिकीकरण से दूर रहने के कारण ही विकसित देशों की राजनीतिक संस्कृति से भिन्न है। संस्कृति का लौकिकीकरण ही वह गुण है जो राजनीतिक व्यवस्था के प्रति लोगों की राजनीतिक जागरुकता बढ़ाता है और राजनीतिक व्यवस्था को स्थिरता प्रदान करता है।

(6) राष्ट्रीय प्रतीक (National Symbols) :- जिस देश में लोगों का राष्ट्रीय प्रतीकों - राष्ट्रीय गान व गीत, राष्ट्रीय ध्वज, राष्ट्रीय त्यौहार, राष्ट्रीय स्मारक, राष्ट्रभाषा, राष्ट्रीय विरासत आदि के प्रति गहरा लगाव होगा, वहां की राजनीतिक संस्कृति भी उच्च-स्तरीय होगी। इससे राजनीतिक संस्कृति में एकता का गुण पैदा होगा जो राजनीतिक स्थिरता में सहायक होगा। इसके विपरीत जिस देश में राष्ट्रीय प्रतीकों का सम्मान नहीं होगा, वहां की राजनीतिक संस्कृति निम्न कोटि की ही रहेगी। जापान, जर्मनी, चीन, अमेरिका तथा ब्रिटेन में राष्ट्रीय प्रतीकों के सम्मान के कारण ही वहां की राजनीतिक संस्कृति उन्नत किस्म की है। भारत में राष्ट्रीय प्रतीकों का अपेक्षित सम्मान न होने के कारण राजनीतिक संस्कृति का उतना विकास नहीं हो सका है जितना होना चाहिय था।

(7) धर्म (Religion) :- जिस देश की राजनीति में धर्म का अधिक प्रभाव होता है, वहां की राजनीतिक संस्कृति में भी सहिष्णुता का गुण आ जाता है। वैटिकन सिटी, नेपाल व इस्लामिक देशों में धर्म का अधिक प्रभाव होने के कारण उसका राजनीति व राजनीतिक संस्कृति दोनों पर अधिक प्रभाव है। भारत में भी अहिंसा जैसे गुणों का राजनीतिक संस्कृति में प्रकटीकरण है।

(8) राजनीतिक स्थिरता (Political Stability) :- राजनीतिक स्थिरता के परिवेश में ही उन्नत प्रकार की राजनीतिक संस्कृति का निर्माण हो सकता है। विकासशील देशों में राजनीतिक अस्थिरता के कारण ही यहां पर राजनीतिक संस्कृति अधिक उच्च कोटि की नहीं बन पाई है। राजनीतिक स्थिरता ही किसी राजनीतिक व्यवस्था व राजनीतिक संस्कृति दोनों को नई पहचान देती है। ऐप्टर का कहना है कि "राजनीतिक संस्कृति में उच्च समरूपता राजनीतिक स्थायित्व के कारण ही होती है।"

इस प्रकार कहा जा सकता है कि राजनीतिक संस्कृति के आधार को मजबूत बनाने वाले तथा राजनीतिक संस्कृति का निर्माण व निर्धारण करने वाले तत्व इतिहास, भूगोल, सामाजिक-आर्थिक विकास, धर्म, राजनीतिक स्थिरता, राष्ट्रीय प्रतीक, विचारधारायें आदि हैं। इसमें लोगों की अभिवृत्तियों का भी विशेष स्थान होता है। लोगों का सक्रिय राजनीतिक अभिमुखीकरण ही राजनीतिक व्यवस्था तथा राजनीतिक संस्कृति दोनों को नया रूप देता है। सामान्य संस्कृति से अलग होकर राजनीतिक संस्कृति का वांछित विकास नहीं हो सकता। अतः निष्कर्ष तौर पर कहा जा सकता है कि राजनीतिक संस्कृति के अनेक निर्धारक तत्व हैं जो राजनीतिक व्यवस्थाओं की प्रकृति का निर्धारण करते हैं।

राजनीतिक संस्कृति के आयाम
(Dimensions of Political Culture)

सांस्कृतिक संस्कृति का स्वरूप बहुआयामी होता है। इसकी स्वयं की गतिशील प्रकृति तथा इसके निर्धारक तत्वों के प्रभाव से इसमें सतत् परिवर्तन होते रहते हैं। प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था की अलग ही राजनीतिक संस्कृति होती है। सिडनी वर्बा का मानना है कि राजनीतिक संस्कृति के आयाम राजनीतिक व्यवस्था के चारों ओर घूमते हैं। ये आयाम प्रमुख रूप से चार हैं :-

(1) राष्ट्रीय पहचान या अभिज्ञान (National Identity) :- राष्ट्रीय अभिज्ञान एक ऐसा विश्वास है जो राजनीतिक व्यवस्था को एकता के सूत्र में बाँधता है। यह ऐसा धागा है जो राजनीतिक संस्कृति के विभिन्न तत्वों को आपस में एक माला की तरह पिरोए रखता है। इसका अर्थ लोगों के विश्वासों से इस बात से है कि किस सीमा तक वे स्वयं को राष्ट्र-राज्य का अंग मानते हैं। राष्ट्रीय अभिज्ञान, राजनीतिक संस्कृति का प्रमुख आयाम होता है। इसी से राजनीतिक व्यवहार में विशिष्टता का गुण आता है। यह अभिजन वर्ग की गतिविधियों की वैधता का आधार है। यह व्यक्ति का राष्ट्र के साथ तादात्म्य की भावना का विकास करके राष्ट्रीयनिर्माण में एक निर्णायक भूतिका निभाता है। राष्ट्रीयता की भावना का होना

राजनीतिक संस्कृति को सजीव तथा सक्रिय बनाता है। लेकिन संचार साधनों के दूर समाज में अभिजन वर्ग के बुद्धिजीवियों की समाज को परिवर्तित करने की इच्छा के अभाव में राष्ट्रीय एकता का अभाव राजनीतिक व्यवस्था के लिए कोई खतरा नहीं हो सकता। विकासशील देशों में राष्ट्रीय अभिज्ञान में पाई जाने वाली कमी यहां पर राजनीतिक अस्थिरता का खतरा पैदा कर रही है। यद्यपि राष्ट्रीय एकात्म्य अपने पूर्ण रूप में कभी नहीं पहुंच सकता है क्योंकि समाज के विभिन्न हितों व मतों में भिन्नता होते हुए भी यह आवश्यक माना जाता है कि राजनीतिक व्यवस्था के अधिकांश सदस्य संकीर्णता से ऊपर अवश्य उठें। इस तादात्मकता के महत्वपूर्ण व दूरगामी परिणाम निकलते हैं। इसके अभाव में राजनीतिक संस्कृति की एकता व राजनीतिक स्थायित्व दोनों को खतरा उत्पन्न हो जाता है और विभिन्न उप-संस्कृतियों का जन्म होने लगता है। तथा समाज में अराजकता की स्थिति पैदा हो जाती है। अतः जब तक लोगों में राष्ट्रीयता की भावना का जन्म नहीं होगा और उनमें तादात्म्य की भावना जन्म नहीं लेगी, तब तक राष्ट्र व राजनीतिक संस्कृति को विशेष पहचान मिलना असम्भव है।

(2) साथी नागरिकों के साथ ऐकमेकता या तादात्म्य (**Identification with Fellow Citizens**) :- राजनीतिक संस्कृति का यह आयाम समाज में पारस्परिक विश्वास की भावना जागृत करता है।। इससे समाज में विघटनकारी प्रवृत्तियों पर अंकुश लगता है। राष्ट्रीय एकता पर राष्ट्र के निर्माणकारी तत्वों में राष्ट्रीय तादात्म्य तभी सम्भव है जब नागरिकों में व्यक्तिगत स्तर पर ऐकमेकता हो। राष्ट्रीय हित के मामलों में यह एकता देखने को मिलती है, क्योंकि इस समय लोग संकीर्ण स्वार्थों से ऊपर उठकर काम करने लगते हैं। यह तादात्म्य इस बात पर आधारित है कि राजनीतिक व्यवस्था के लोग एक दूसरे के प्रति तथा राजनीतिक नेतृत्व कैसा विश्वास व विचार रखते हैं। यदि नागरिकों में आपस में विभिन्नताओं के होते हुए भी एकता की भावना है तो राजनीतिक संस्कृति का विखण्डन नहीं होगा। नागरिको की एकरूपता राष्ट्र की एकता को मजबूत करती है। लेकिन यह तादात्म्य स्वैच्छिक होना चाहिये, सर्वाधिकारवादी देशों की तरह लादा हुआ नहीं। इस तादात्म्य के कारण समाज में विषमताओं के रहते हुए भी राजनीतिक सक्रियता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। जिस राजनीतिक व्यवस्था में लोगों का नेताओं पर से विश्वास उठ जाता है और शासक तथा शासितों में विरोध की स्थिति उत्पन्न हो जाती है तो लोकतन्त्रीय आस्थाओं का पतन होना शुरु हो जाता है। विकासशील देशों में ऊपर से लादी गयी एकरूपता भी लोकतन्त्रीय आस्थाओं की रक्षा नहीं कर सकी, जबकि ब्रिटेन तथा अमेरिका में से लोकतन्त्रीय आस्थाएं तेजी से अपने पैर जमा रही हैं। अतः लोगों का राजनीतिक व्यवस्था, नेतृत्व में विश्वास रहना जरूरी है ताकि शासन में एकरूपता का गुण बनाए रखा जा सके औ राजनीतिक व्यवस्था व संस्कृति को पतन से बचाया जा सके।

(3) शासन निर्गतों के प्रति विश्वास (**Faith in Govt. Outputs**) :- सरकार के प्रति लोगों के विचारों का निर्माण इस बात पर निर्भर है कि सरकार लोगों के लिए क्या करती है। हर व्यक्ति सरकार से जनहित के कार्यों की अपेक्षा रखता है। इसलिए सरकार के कार्य ऐसे होने चाहिए कि जनता की आस्था सरकार में बढ़े और राजनीतिक सहभागिता व सक्रियता के स्तर में भी वृद्धि हो। जनता को यह लगना चाहिये कि शासन के निर्गत सम्पूर्ण समाज के हितों के पोषक हैं, वर्ग-विशेष के हितों के नहीं, इसलिए सरकार के व्यवस्थापन, कार्यपालन तथा न्यायकारी कार्य यजन-आकांक्षाओं के अनुकूल ही होने चाहिए। शासन-निर्गतों के प्रति विश्वास ही प्रथम दोनों आयामों को ठोसता प्रदान करता है। लोगों का सरकार के कार्यों के प्रति विश्वास ही राजनीतिक संस्कृति को दरार से बचाता है और राष्ट्रीय एकता में वृद्धि करता है।

(4) निर्णय प्रक्रिया में विश्वास (**Faith in Process of Decision Making**) :- प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था में निर्णय प्रक्रिया में गिने चुने लोगों की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। लोकतन्त्रीय देशों में तो ये निर्णयकर्ता जनता द्वारा ही भेजे जाते हैं और जनता के प्रति ही उत्तरदायी भी होते हैं। इसलिए सरकार की निर्णय-प्रक्रिया बहुमत के साथ-साथ अल्पसंख्यक वर्ग के हितों के अनुकूल भी होनी चाहिए, क्योंकि वह तो सारे समाज के लिए ही होती है। सर्वाधिकारवादी देशों में अनिच्छापूर्वक लोगों द्वारा राजनीतिक निर्णयों को स्वीकार करने के कारण वहां की राजनीतिक संस्कृति शरणशील होती है। इसलिए निर्णय-प्रक्रिया में जनता की सहभागिता को बढ़ाकर या बनाए रखकर ही राजनीतिक संस्कृति को गतिशील व स्थायी बनाया जा सकता है।

ब्रिटेन की राजनीतिक संस्कृति
(Political Culture of Britain)

किसी भी देश की राजनीतिक संस्कृति के निर्माण में वहां की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक परिस्थितियों का विशेष योगदान होता है। विभिन्न देशों की राजनीतिक संस्कृति में पाये जाने वाले अन्तर का प्रमुख कारण विभिन्न देशों की जनता के राजनीतिक विश्वास, राजनीतिक मूल्य तथा लोगों की प्रभावी राजनीतिक अनुक्रियाएं हैं। ब्रिटेन की राजनीतिक संस्कृति भी इसी कारण से अन्य देशों से भिन्न है। ब्रिटेन की राजनीतिक संस्कृति से हमारा अभिप्राय ब्रिटिश लोगों की राजनीतिक संस्थाओं, संरचनाओं तथा प्रक्रियाओं के प्रति विश्वासों, अभिवृतियों, भावनाओं और मूल्यों से है। ब्रिटिश राजनीतिक संस्कृति को स्पष्ट रूप में समझने के लिए इसके तत्वों का अध्ययन करना जरूरी है।

ब्रिटिश राजनीतिक संस्कृति के तत्व
(Elements of the British Political Culture)

ब्रिटिश राजनीतिक संस्कृति के प्रमुख तत्व निम्नलिखित हैं :-

(i) ब्रिटिश लोगों के राजनीतिक विश्वास (Political Beliefs of the British People) :- ब्रिटिश जनता की प्रजातन्त्र के प्रति गहरी निष्ठा है। इसी कारण वहां 1688 की क्रान्ति द्वारा संसदीय सर्वोच्चता कायम की गई। ब्रिटिश संदीय प्रणाली आज विश्व के प्रजातन्त्रीय देशों के सामने एक उदाहरण बन चुकी है। विश्व में अनेक देशों ने ब्रिटिश संसदीय व्यवस्था को अपनाया है। आज ब्रिटेन की जनता की संसदीय प्रजातन्त्र, प्रेस की आजादी, नागरिक अधिकार व स्वतन्त्रताओं, विधि के शासन, निष्पक्ष व स्वतन्त्र न्यायपालिका, संवैधानिक राजतन्त्र आदि में गहरी आस्था है जिसे हटाना मुश्किल है। इसी विश्वास के कारण ब्रिटेन में राजतन्त्र के होते हुए भी प्रजातन्त्रीय सिद्धान्तों की स्थापना हो सकी है।

(ii) ब्रिटिश जनता के राजनीतिक मूल्य (Political Values of the British People) :- ब्रिटिश लोगों के राजनीतिक मूल्य न्याय, स्वतन्त्रता, समता तथा भ्रातृत्व हैं। जब कभी भी इन पर आंच आई, ब्रिटिश जनता ने क्रान्ति का बिगुल बजाकर निरंकुश व तानाशाही शासकों का तख्ता पलट दिया या शासकों को अपने राजनीतिक मूल्यों के हक में खड़े होने को बाध्य कर दिया। 1215 में मैगना कार्टा एक्ट जनता की जागरूकता का परिचायक है। जनता ने राजा जॉन की निरंकुशता के विरुद्ध ग्रेट कौंसिल के माध्यम से राजा को इस एक्ट पर हस्ताक्षर करने के लिए बाध्य कर दिया था। ऐसा ही कार्य जनता ने स्टुअर्ट काल में किया था। स्टुअर्ट काल में सम्राट बनाम संसद की सम्प्रभुता का प्रश्न पैदा हो गया। जनता ने संसद के समर्थन में 1688 की शानदार क्रान्ति की ओर राजा की सत्ता को सीमित कर दिया। इस क्रान्ति की सफलता ने ब्रिटेन में सीमित राजतन्त्र की नींव डाली। तब से लेकर आज तक भी ब्रिटिश जनता न्याय, स्वतन्त्रता, समानता तथा भ्रातृत्व के लिए लड़ती रही है। इन्हीं मूल्यों की रक्षा के प्रति जनता की जागरूकता ने ब्रिटिश राजतन्त्र को प्रजातन्त्रीय राजतन्त्र या सीमित राजतन्त्र में बदल दिया है।

(iii) ब्रिटिश जनता की प्रभावी अनुक्रियाएं (Effective Responses of the British People) :- ब्रिटिश लोगों का अपने देश की राजनीति, राजनीतिक व्यवस्था तथा राजनेताओं या नेतृत्व के प्रति अनुकूल रवैया रहा है। राजनीतिक चेतना व जागरूकता का उच्च स्तर होने के कारण ब्रिटिश जनता ने परिपक्व राजनीतिक संस्कृकित का निर्माण किया है। ब्रिटिश जनता के अनुकूल मनोभावों तथा राजनीतिक जागरूकता के कारण ही वाहं लोकतन्त्र और राजतन्त्र साथ-साथ पोषित हो रहे हैं। इसी कारण वहां संसदीय शासन प्रणाली और सीमित राजतन्त्र दोनों एक साथ सफल हैं।

ब्रिटिश राजनीतिक संस्कृति के निर्धारक तत्व
(Determinants of the British Political Culture)

किसी भी देश की राजनीतिक संस्कृति के निर्माण में इतिहास, सामाजिक संरचना, भूगोल, विचारधारा आर्थिक परिस्थितियों आदि का विशेष योगदान होता है। ब्रिटेन भी इसका अपवाद नहीं है। ब्रिटिश राजनीतिक संस्कृति के निर्धारक तत्व निम्नलिखित हैं :-

(1) इतिहास (History) :- किसी भी देश की राजनीतिक संस्कृति के निर्माण में इतिहास की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

ब्रिटिश राजनीतिक संस्कृति पर भी इतिहास का व्यापक प्रभाव पड़ा है। ब्रिटिश राजतन्त्र का इतिहास काफी पुराना है। यह एंग्लो सैकसन युग से शुरु होता है। उस काल में सम्राट की शक्तियां असीमित थी। उस समाज में राजा को सलाह देने के लिए विटैनगोमोट नामक सभा थी जिसका स्थान 1066 में राजा विलियम प्रथम के काल में ग्रेट कौंसिल ने ले लिया। इस कौंसिल ने राजा को 1215 ई० में मैगनाकार्टा एक्ट पर हस्ताक्षर करने के लिए मजबूर किया। इससे राजा की शक्तियां सीमित हो गई और संसद या जनता की स्वतन्त्रताओं में वृद्धि की गई। इसके बाद जेम्स द्वितीय की निरंकुश सत्ता को उखाड़ फैंकने के लिए जनता ने 1688 में क्रान्ति की और इसमें जनता सफल रही। शानदार क्रान्ति की सफलता के बाद सीमित राजतन्त्र और संवदीय सर्वोच्चता के सिद्धान्त की स्थापना हुई। ये दोनों सिद्धान्त आज भी ब्रिटिश राजनीतिक संस्कृति के आधार हैं। इसके बाद 1911 तथा 1949 में संसद अधिनियमों ने कॉमन सदन को शक्तिशाली बना दिया और व्यस्क मताधिकार का सार्वभौमिकरण कर दिया गा। इससे स्पष्ट है कि ब्रिटिश राजतन्त्र का इतिहास ब्रिटिश राजनीतिक संस्कृति के विकास की गाथा समेटे हुए है।

(2) सामाजिक संरचना (Social Structure) :- ब्रिटेन में विभिन्न वर्गों व जातियों में स्पष्ट विभाजन नहीं है। औद्यागिक क्रान्ति के बाद ब्रिटेन में तीन सामाजिक वर्गों का अस्तित्व रहा है। ये वर्ग हैं - पूंजीपति वर्ग (उच्च वर्ग), मध्यम वर्ग जैसे इंजिनियर, मैनेजर आदि तथा श्रमिक वर्ग (निम्न वर्ग)। ब्रिटेन के श्रमिकों का जीवन स्तर भारत के मध्यम वर्ग की तुलना में अच्छा है। इसका प्रमुख कारण ब्रिटिश जनता का शिक्षित व जागरूक होना है। ब्रिटिश लोगों में राष्ट्रीयता की जो भावना पाई जाती है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। यद्यपि ब्रिटेन- इंग्लैण्ड, वेल्स, स्कॉटलैण्ड और उत्तरी आयरलैण्ड चार भागों में बंटा हुआ है, लेकिन फिर भी ब्रिटिश लोगों में जातीय एकता की भावना है। वहां किसान वर्ग संगठित नहीं हैं, लेकिन वहां पर उनके हितों की रक्षा करने वाले राजनीतिक दल तथा हित समूह संगठित हैं। समाज में स्त्रियों को भी पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त हैं। इसी कारण ब्रिटिश राजनीतिक संस्कृति एक परिपक्व राजनीतिक संस्कृति बन गई है।

(3) ब्रिटिश जनता का स्वभाव (Nature of the British People) :- ब्रिटिश जनता स्वभाव से अनुदारवादी या रूढ़िवादी है। ब्रिटेनवासी रूढ़िवादी स्वभाव के हैं। वे क्रान्तिकारी परिवर्तनों की बजाय क्रमिक सुधार करके परिवर्तन लाने में विश्वास करते हैं। उनका परम्पराओं, प्राचीन संस्थाओं और नेताओं के प्रति असीम श्रद्धा व विश्वास है। ब्रिटिश जनता सैद्धान्तिक मतभेदों की बजाय व्यवहारिकता को महत्व देती है। उनकी चेष्टा शासन के प्रति विद्रोह करने की न होकर सहयोग की रहती है। इसी अनुदारवादी प्रकृति के कारण ब्रिटेन में आज भी सम्राट का पद, लार्ड सदन आदि संस्थाएं विद्यमान हैं।

(4) धार्मिक विश्वास (Religious Faith) :- प्रारम्भ में तो ब्रिटेन में धर्म व राजनीति का तालमेल था। 18वीं सदी में धर्म के आधार पर ब्रिटिश राजतन्त्र में दो गुटों का उदय हुआ। चर्च और सम्राट के पक्ष में बोलने वाला गुट टोरी तथा विरुद्ध बोलने वाला गुट ह्विग था। लेकिन आगे चलकर धर्म का राजनीति पर प्रभाव कम होता गया। जनता ने धर्म के बारे में स्वतन्त्र चिन्तन के साथ सोचना शुरु कर किया तो वहां धर्म-निरपेक्ष दृष्टिकोण का आगमन हुआ। आज ब्रिटिश जनता धर्म में विश्वास तो करती है, लेकिन राजनीति के सन्दर्भ में वह अपना धर्म-निरर्पेक्ष दृष्टिकोण ही रखती है। धर्म के नाम पर राजनीति करने वाले दल व दबाव समूह ब्रिटेन में नाममात्र के हैं। इंसी कारण ब्रिटेन की राजनीति में साम्प्रदायिकता का अवगुण नहीं है।

(5) जनसम्पर्क के साधन (Means of Mass Media) :- ब्रिटेन में जन सम्पर्क के साधनों पर सरकारी नियन्त्रण नहीं है। वहा जनता को जागरूक बनाने में इन जनसम्पर्क के साधनों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। ब्रिटेन में जनसम्पर्क के साधनों की स्वतन्त्रता बरकरार रखने के लिए प्रेस कौंसिल नाम की संस्था कार्यरत है। जनसम्पर्क के साधनों की प्रभावकारी व सकारात्मक भूमिका ने ब्रिटिश लोगों को सकारात्मक सोच दी है। इसी कारण ब्रिटिश जनता ने सदैव राजनीतिक मूल्या की रक्षा के लिए संघर्ष किया है।

ब्रिटिश राजनीतिक संस्कृति की विशेषतायें

(Features of the British Political Culture)

उपरोक्त विवेचन के आधार पर हम ब्रिटिश राजनीतिक संस्कृति की प्रकृति का अध्ययन करने के बाद उनकी निम्नलिखित विशेषताओं पर पहुंचते हैं :-

(1) ब्रिटेन में बहुमूल्यधारी राजनीतिक संस्कृति है। वहां न्याय, समानता, स्वतन्त्रता तथा भ्रातृत्व के राजनीतिक मूल्य आपस

में इतने घनिष्ठ रूप में जुड़े रहते हैं कि उन्हें प्राप्त करने के बारे में राजनीतिक साध्य व साधनों में आम सहमति पाई जाती है।

(2) ब्रिटेन में राजनीतिक एक खेल की तरह है जिसमें कई खिलाड़ी भाग लेते हैं। लेकिन उनमें प्रतिस्पर्धा कभी भी युद्ध का अखाड़ा नहीं बनती। अर्थात् वहां चुनावी हिंसा का अभाव रहता है।

(3) ब्रिटेन में कई तरह के हित व दबाव समूह हैं जो हितवादी राजनीतिक संस्कृति को जन्म देते हैं। वहां राजनीतिक दलों के साथ हितवादी संगठनों की सांठ-गांठ रहती है। इसी कारण वहां शासक व शोषितों में, निर्वाचक व निर्वाचितों में सौदेबाजी की प्रक्रिया शुरु हो जाती है।

(4) ब्रिटेन में सत्ता तथा प्रभाव का विकेन्द्रीकरण होता है। विधि संस्थाओं पर जनसंचार और सार्वजनिक शिक्षा के माध्यमों से नियन्त्रयण रखकर सत्तावादी शासन या निरंकुश शासन की संभावनाओं का अन्त कर दिया गया है।

(5) ब्रिटिश जनता क्रमिक व सहज विकास में विश्वास करती है।

(6) ब्रिटेनवासी सत्ता के प्रति सम्मान का भाव रखते हैं।

(7) ब्रिटेन में संसदीय प्रजातन्त्र के प्रति जनता की गहरी आस्था है। इसकी रक्षा के लिए ब्रिटिश जनता कुछ भी कर सकती है।

(8) ब्रिटिश राजनीति मतैक्य पर आधारित है। उसकी प्रवृत्ति समझौतावादी है।

(9) ब्रिटिश राजनीतिक संस्कृति में सामन्तवादी व्यवस्था के तत्व पाये जाते हैं, क्योंकि वहां आज भी राजतन्त्रीय संस्थाओं का सम्मान किया जाता है। राजा का पद और लार्ड सभा का अस्तित्व ब्रिटिश राजनीतिक संस्कृति को सामन्तवादी बना देते हैं।

(10) ब्रिटिश राजनीतिक संस्कृति राजनीतिक भ्रष्टाचार व वोट की राजनीति से अछूती है। वहां दल-बदल जैसी कोई बुराई नहीं है।

(11) ब्रिटेन में द्वि-दलीय प्रणाली की प्रथा का आदर किया जाता है। प्रारम्भ से लेकर आज तक ब्रिटिश जनता ने दो ही दलों को स्वीकारा है।

(12) ब्रिटेन में राजनीतिक का अपराधीकरण नहीं है। धर्म व जाति के प्रभाव से भी राजनीति दूर है।

(13) ब्रिटिश राजनीतिक संस्कृति परिपक्व उत्तरदायी दृष्टिकोण पर आधारित है।

(14) ब्रिटिश जनता कानून के शासन में विश्वास करती है।

(15) ब्रिटिश जनता परम्पराओं व प्रथाओं का पूरा सम्मान करती है। वह परम्परागत संस्थाओं के प्रति सम्मान की भावना रखती है और उन्हें बनाए रखना चाहती है। इसी कारण वहां परम्परा तथा आधुनिकता का सुन्दर मेल है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि ब्रिटिश राजनीतिक संस्कृति एक परिपक्व राजनीतिक संस्कृति है। इसमें परम्परा व आधुनिकता का सुन्दर मिश्रण है।

अमेरिकन राजनीतिक संस्कृति

(American Political Culture)

अमेरिका अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली वाला एक देश है। वहां पर ब्रिटेन की तरह राजतन्त्र का कोई औचित्य नहीं है। इसी कारण यूरोपीय संस्कृति वाला देश होने के बावजूद भी वहां की राजनीतिक संस्कृति ब्रिटेन से कुछ बातों में पृथक हैं अमेरिका की जनता की राजनीतिक संस्थाओं, संरचनाओं तथा प्रक्रियाओं के प्रति धारणाएं व आस्थाएं ही वहां की राजनीतिक संस्कृति का निर्माण करती हैं। अमेरिकन जनता के राजनीतिक सस्थाओं, संरचनाओं व प्रक्रियाओं के प्रति विश्वास, अभिवृत्तियां, भावनायें तथा मूल्य ही वहां की राजनीतिक संस्कृति है। अमेरिकन राजनीतिक संस्कृति को उसके निर्माणकारी तत्वों की सहायता से ही समझा जा सकता है।

अमेरिकन राजनीतिक संस्कृति के तत्व

(Elements of American Political Cultural)

अमेरिकन राजनीतिक संस्कृति के प्रमुख तत्व निम्नलिखित हैं :-

(i) राजनीतिक विश्वास (Political Belief) :- अमेरिकन लोगों का प्रजातन्त्रीय सिद्धान्तों के प्रति गहरा लगाव है। लोकतन्त्र ही अमेरिकन जनता के लिए पूज्यनीय है। ब्रिटेन की तरह वहां राजतन्त्र के साथ-साथ प्रजातन्त्र का विकास नहीं हुआ है। वहां तो प्रारम्भ से ही जनता लोकतन्त्रीय आदर्शों के प्रति लगाव रखती रही है। इसी कारण वहां लोकतन्त्र का सिद्धान्त प्रचलित है। वहां अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली को अपनाया गया है। विश्व के अनेक देशों ने इस शासन प्रणाली से काफी कुछ ग्रहण किया है। अमेरिका में गणतन्त्रीय व्यवस्था के प्रति भी जनता की आस्था है। इसके अतिरिक्त अमेरिकन जनता जन-सम्प्रभुता, शक्ति-पृथक्करण तथा निरोध व संतुलन का सिद्धान्त, न्यायपालिका की सर्वोच्चता तथा न्यायिक पुनरावलोकन की व्यवस्था, कानून की उचित प्रक्रिया, संवैधानिक शासन आदि बातों में भी अटूट विश्वास रखती है। ये राजनीतिक विश्वास ही उसकी राजनीतिक संस्कृति को विशेष प्रकार का बनाते हैं।

(ii) राजनीतिक मूल्य (Political Values) :- अमेरिकन जनता के अपने कुछ राजनीतिक मूल्य हैं जिनकी रक्षा के लिए वे अपना सब कुछ बलिदान करने को तैयार हो जाते हैं। ये राजनीतिक मूल्य समानता, न्याय, स्वतन्त्रता तथा सम्पत्ति का अधिकार है। इन राजनीतिक मूल्यों की रक्षा के लिए अमेरिकबन लोगों ने स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष करके अपने को इन मूल्यों से जोड़े रखा है। स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए ही अमेरिका में शक्ति-पृथक्करण का सिद्धान्त अपनाया गया है। इसी कारण वहां स्वतन्त्र व निष्पक्ष न्यायपालिका की व्यवस्था करके उसे विधायिका तथा कार्यपालिका के नियन्त्रण से मुक्त रखा गया है। कार्यपालिका तथा विधायिका को सीमित रखने के लिए वहां विरोध व संतुलन का सिद्धान्त अपनाया गया है। इस तरह के कई अन्य उपायों द्वारा अमेरिका के लोगों के राजनीतिक मूल्यों का सुरक्षित किया गया है।

(iii) नागरिकों की प्रभावी अनुक्रियाएं (Effective Responses of the Citizens) :- अमेरिकन लोगों के अपनी राजनीतिक व्यवस्था, राजनीति तथ राजनीतिक नेतृत्व के प्रति अनुकूल मनोभाव पाये जाते हैं। अमेरिका में जनता में राजनीतिक चेतना व जागरूकता का उच्च स्तर उन्हें अनुकूल मनोभावों का संचार करता है। जनता की राजनीतिक जागरूकता वहां के लोगों में राजनीतिक अधिकारों व स्वतन्त्रताओं में स्पट रूप से देखने को मिलती है। उनकी जागरूक प्रवृत्ति ही उन्हे राजनीतिक मूल्यों की रक्षा के लिए वचनबद्ध करती है और उनका संवैधानिक आदर्शों के प्रति विश्वास बना रहता है।

अमेरिकन राजनीतिक संस्कृति के निर्धारक

(Determinants of the American Political Culture)

अमेरिका की राजनीतिक संस्कृति वहां के इतिहास, सामाजिक व आर्थिक संरचना, राजनीतिक दृष्टिकोण, जनसंचार के साधन आदि से प्रभावित होती है और इन्हीं से निर्मित भी होती है। अमेरिकन राजनीतिक संस्कृति के प्रमुख निर्धारक तत्व निम्नलिखित हैं :-

(1) इतिहास (History) :- किसी भी देश की राजनीतिक संस्कृति का प्रमुख निर्धारक इतिहास होता है। अमेरिका भी इसका अपवाद नहीं है। अमेरिकन राजनीतिक संस्कृति की जड़ें इतिहास की गहराईयों में छिपी है। प्रारम्भ में अमेरिका पर ब्रिटिश सरकार का नियन्त्रण था। 1776 तक अमेरिका 13 राज्यों में बंटा रहा और ब्रिटिश सरकार ने उनके प्रति कठोर नीति अपनाए रखी। 1763 में जब ब्रिटिश सरकार ने अमेरिका जनता पर कर लगाये तो जनता ने कहा कि 'बिना प्रतिनिधित्व के कर नहीं'। जनता की जागरूकता के कारण 4 जुलाई 1776 को अमेरिकन स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी गई और अमेरिकन परिसंघ का निर्माण हुआ। इस परिसंघ की कमजोरियों को दूर करने हेतु शक्तिशाली केन्द्र सरकार के पक्ष में 25 मई 1787 को फिलाडेल्फिया सम्मेलन हुआ और नया संविधान लागू हो गया। इस संविधान में नागरिक अधिकारों की व्यवस्था न होने पर भी जनता ने बाद में संविधान संशोधन द्वारा अपने इन अधिकारों को पा ही लिया। उसके बाद 1865 में अमेरिका से रंगभेद की नीति व दास प्रथा को बनाकर समाप्त किया गया। इसके बाद 14 वें संविधान संशोधन में 'कानून के सामने समानता' का सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया। 1920 में स्त्रियों को मताधिकार देकर अमेरिकन राजनीतिक संस्कृति के विकास में नया अध्याय जोड़ दिया गया। इस तरह राजनीति संस्कृति का निर्माण व

विकास ऐतिहासिक विकास की कहानी है।

(2) सामाजिक व आर्थिक संरचना (Social and Economic Structure) :- किसी भी देश की राजनीतिक संस्कृति का निर्धारण वहां की सामाजिक व आर्थिक संरचनाओं से भी होता है। संयुक्त राज्य अमेरिका की राजनीतिक संस्कृति को विशिष्टा प्रदान करने में वहां की सामाजिक व आर्थिक संस्थाओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। अमेरिका में विभिन्न राष्ट्रीयता, जातियां व धर्म हैं। यहां की अधिकांश जनसंख्या अप्रवासी है। विभिन्न देशों से गए हुए लोगों ने यहां की संस्कृति को अपना लिया है। जनता को हर तरह से धार्मिक स्वतन्त्रता प्राप्त है। वहां की सरकार धर्म निरपेक्ष दृष्टिकोण का समर्थन करती है। वहां की जनता विभिन्न धर्मों में विश्वास रखती है। ब्रिटेन की तुलना में अमेरिका में जातीय वैरभाव अधिक है। वहां प्रारम्भ से ही रंगभेद की नीति का प्रचलन रहा है और वह नीति कानूनन तो दम तोड़ चुकी है, लेकिन व्यवहार में आज भी विद्यमान है। आज अमेरिका में भारतीयों तथा दक्षिणी अफ्रीकी मूल के लोगों के प्रति घृणा का वातावरण है। इसी कारण अमेरिका में नस्लवादी राजनीतिक संस्कृति का निर्माण हुआ है। 1920 के बाद स्त्री मताधिकार की व्यवस्था द्वारा आज अमेरिकन समाज में स्त्री का जो स्थान है, वह विश्व में कहीं भी नहीं है, अमेरिकन जनता विभिन्न उद्योगों में कार्यशील है। वहां की अर्थ-व्यवस्था उद्योग प्रधान है। वहां किसान वर्ग का भी समाज में विशेष स्थान है। अपने अधिकारों की रक्षा के लिए वहां समाज का प्रत्येक वर्ग किसी न किसी दल से जुड़ा रहता है। राजनीति में दबाव व हित समूहों की विशेष भूमिका है। इसी कारण अमेरिका में राजनीतिक दलों के साथ हित-समूहों की सांठ-गांठ रहती है। अमेरिकन समाज के बुद्धिजीवी वर्ग ने अमेरिकन राजनीतिक संस्कृति को विशेष ध्यान दिलाने के लिए महत्वपूर्ण कार्य किया है। जनमत का निर्माण बुद्धिजीवी वर्ग ही करता है।

(3) अमेरिकन जनता का स्वभाव (Nature of the American People) :- अमेरिकन जनता ब्रिटिश जनता की तरह रूढ़िवादी नहीं है। उनका स्वभाव आशावादी है। वे स्वतन्त्रता तथा समानता से गहरा लगाव रखते हैं। वे संवैधानिक साधनों द्वारा लोकतन्त्र का विकास करना पसंद करते हैं। ब्रिटिश लोगों की तरह उनका भी पुरानी संस्थाओं व परम्पराओं में गहरा विश्वास है। इसी कारण वहां बहुत ही कम संविधान संशोधन हुए हैं। वहां की जनता बहुमत के शासन में विश्वास करती है। अमेरिकन जनता की दृष्टि में सर्वोच्च सत्ता व शक्ति जनता के पास है। वहां की जनता में राजनीतिक चेतना का उच्च स्तर योग्य नेतृत्व का ही चुनाव करता है। इसी कारण वहां कभी भी तानाशाही शासन-व्यवस्था का उदय नहीं हो सका। परन्तु अमरिकन लोगों का दृष्टिकोण विदेशी लोगों के प्रति घृणा का ही रहा है। वे साम्यवादी देशों का कट्टर विरोध करते हैं। एसा ही दृष्टिकोण वे भारतीयों तथा अफ्रीकी जनता के प्रति रखते हैं।

(4) जन सम्पर्क के साधन (Means of Mass Media) :- अमेरिका में जन सम्पर्क के साधनों को स्वतन्त्रता दी गई है। जनता रेडियो, समाचार पत्रों, टेलीविजन तथा इन्टरनेट द्वारा राजनीतिक जानकारी ग्राह्य करती है। वहां प्रेस की स्वतन्त्रता है। जनता को सरकार की आलोचना करने का अधिकार दिया गया है। जन सम्पर्क के साधनों का प्रभावकारी भूमिका ने जनमत को जागरूक व शिक्षित किया है। जनमत के दबाव के कारण ही राष्ट्रपति निकसन को वाटरगेट कांड में त्यागपत्र देना पड़ा था। मोनिका लेविसंकी मामले में बिल क्लिंटन की भी नींद हराम हो गई थी। इस तरह राजनीतिक संस्कृति के निर्माण में जनसम्पर्क के साधन भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अमेरिकन राजनीतिक संस्कृति का निर्माण इतिहास, अमेरिकन लोगों के स्वभाव, उनकी सामाजिक व आर्थिक स्थिति, जनसम्पर्क के साधनों के द्वारा होता है। यदि अमेरिकन राजनीतिक संस्कृति की ब्रिटिश राजनीतिक संस्कृति से तुलना की जाये तो अमेरिकन राजनीतिक संस्कृतिक बाहरी राष्ट्रीयताओं को कम आत्मसात् करने वाली है। वहां की जनता का अप्रवासी लोगों के प्रति घृणा का ही व्यवहार रहा है। इसी कारण अमेरिकन राजनीतिक संस्कृति कम परिपक्व है।

अमेरिकन राजनीतिक संस्कृति की विशेषतायें

(Features of the Political Culture of America)

अमेरिकन राजनीतिक संस्कृति की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं :-

(1) अमेरिकन राजनीतिक संस्कृति बहुमूल्यधारी है। अमेरिकन जनता को स्वतन्त्रता तथा समानता जैसे राजनीतिक मूल्यों के प्रति इतना गहरा लगाव है कि वे उनकी रक्षा के लिए राजनीतिक साध्यों व साधनों में सहमति कायम कर ही लेते हैं।

(2) अमेरिकन जनता राजनीति को एक खेल की तरह मानती है। इस खेल में समस्त भूमिका राजनीतिक दल ही अदा करते हैं।

(3) अमेरिका में राजनीतिक दलों की प्रतिस्पर्धा केवल प्रतिस्पर्धा ही रहती है, लड़ाई का मैदान नहीं। अर्थात् अमेरिका में चुनावी हिंसा का अभाव ही रहता है। आज तक किसी भी चुनाव में शांति भंग नहीं हुई है।

(4) अमेरिकन राजनीतिक प्रक्रिया का संचालन सौदेबाजी द्वारा होता है। इस कार्य में राजनीतिक दलों, दबाव समूहों व सत्ताधारकों में आपसी राजनीतिक सौदेबाजी होती है। अमेरिका में दबाव समूहों की जो राजनीतिक भूमिका है, वह अन्यत्र कहीं नहीं है। निर्णय-निर्माण की प्रक्रिया पर दबाव समूहों का पूरा प्रभाव देखने को मिलता है।

(5) अमेरिकन राजनीतिक समाज बहुलवादी समाज है। लेकिन उनमें ब्रिटिश राजनीतिक संस्कृति की तरह विभिन्न राष्ट्रीयताओं के आत्मसात् करने की प्रवृति नहीं है। वहां जाति, धर्म व राष्ट्रीयता के आधार पर गोरे-काले, देशी-विदेशी, प्रवासी-अप्रवासी का भेद किया जाता है। इसी कारण अमेरिकन राजनीतिक संस्कृति को नस्लवादी व संकीर्ण संस्कृति की संज्ञा दी जाती है।

(6) अमेरिकन राजनीति में सत्ता तथा प्रभाव का विसरण पाया जाता है। वहां शक्तियों के विकेन्द्रीयकरण व शक्ति-पृथक्करण के सिद्धान्त का प्रचलन है। जन संचार के साधनों की प्रभावी भूमिका ने सरकार के विभिन्न अंगों की निरंकुशता को रोके रखा है। साथ में निरोध व संतुलन के सिद्धान्त ने अमेरिका में सत्तावादी राजनीतिक संस्कृति को विकसित नहीं होने दिया है।

(7) अमेरिकन लोगों का अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली, सीमित सरकार, कानून की उचित प्रक्रिया, जनसम्प्रभुता, संवैधानिक शासन, न्यायपालिका की सर्वोच्चता आदि में गहरा विश्वास है। इसी आधार पर वे लोकतन्त्रीय आदर्शों को प्राप्त करना चाहते हैं।

(8) अमेरिकन जनता भी परम्परागत संस्थाओं को बनाये रखने के समर्थक है। लेकिन साथ में ही वह परिवर्तन के प्रति आशावादी दृष्टिकोण बनाए रखती है। इसी कारण वहां की राजनीतिक संस्कृति में परम्पराओं व आधुनिकता का मिश्रण पाया जाता है।

(9) अमेरिकन राजनीतिक संस्कृति में परिपक्व व संकीर्ण राजनीतिक संस्कृति दोनों के गुण हैं। संकीर्ण राजनीति संस्कृति के रूप में अमेरिकन राजनीतिक संस्कृति नस्लवादी संस्कृति है। वह सामन्तवादी तत्वों को भी समेटे हुए है, क्योंकि अमेरिकन लोग अपनी नस्ल के लोगों के लिए अप्रवासी जनता से राजा या सामन्त जैसा व्यवहार करवाना चाहते हं। वे गोरे व काले में अन्तर करते हैं। इसमें अन्य राष्ट्रीयताओं को आत्मसात् करने की प्रवृत्ति नहीं है। परिपक्व राजनीतिक संस्कृति का आभास अमेरिकन जनता की राजनीतिक चेतना व जागरूकता से होता है। वहां जनमत के दबाव के चलते सरकार अपनी मनमानी नहीं कर सकती। जनमत के विरुद्ध जाने का साहस किसी में नहीं है। जनमत के दबाव के कारण ही वाटरगेट कांड में राष्ट्रपति निक्सन को त्यागपत्र देना पड़ा था।

(10) अमेरिकन जनता द्वि-दलीय प्रणाली को ही स्वीकार करती है। अमेरिका में प्रारम्भ से लेकर आज तक जनता ने दो दलों को ही स्वीकार किया है। परन्तु अमेरिका की दलीय प्रणाली में दलगत भावना का दोष अवश्य पाया जाता है।

इस प्रकार निष्कर्ष तौर पर कहा जा सकता है कि अमेरिकन राजनीतिक संस्कृति एक यूरोपीय राजनीतिक संस्कृति है। उसमें लोकतन्त्रीय आदर्शों के प्रति सम्मान की भावना पाई जाती है। लेकिन अमेरिकन लोगों का अप्रवासी जनता के प्रति घृणास्पद् स्वभाव उसकी संस्कृति को संकीर्ण बना देता है। इससे अमेरिकन राजनीतिक संस्कृति में अमेरिकन रजानीतिक संस्कृति ब्रिटिश राजनीतिक संस्कृति की तरह बहुमूल्यधारी अवश्य है।

चीन की राजनीतिक संस्कृति

(Political Culture of China)

चीन एक साम्यवादी देश है। इसकी विश्व राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका है। माओ-'त्से-तुंग के स्वप्न का साकार रूप चीन, ब्रिटेन, भारत तथा अमेरिका से कई मामलों में अलग भी है। इसका सबसे पहला स्पष्टीकरण चीनी राजनीतिक संस्कृति तथा

अन्य देशों की राजनीतिक संस्कृति में पाया जाने वाला अन्तर ही देता है। चीन की राजनीतिक संस्कृति पाश्चात्य जगत से राजनीतिक संस्कृतियों से भिन्न व विशिष्ट है। इसकी राजनीतिक संस्कृति नैतिक मानदण्डों या नैतिक आदर्शों पर आधारित है। यह चीन के महान संत कन्फयूशियस के आदर्शों का साकार रूप है। कन्फयूशियस ने समाज को नैतिक गुणों के आधार पर चलाने का सिद्धान्त प्रस्तुत किया था जो बाद में चीनी राजनीतिक समाज का महत्वपूर्ण अंग बन गया। यद्यपि चीन में 1949 की साम्यवादी क्रान्ति ने नैतिकता के स्थान पर भौतिकता को ही राजनीतिक संस्कृति को आधार बना दिया लेकिन फिर भी चीन राजनीतिक संस्कृति कुछ न कुछ आदर्श तो रखती ही है।

चीनी राजनीतिक संस्कृति के तत्व

(Elements of the Political Culture of China)

चीनी राजनीतिक संस्कृति का निर्माण करने वाले प्रमुख तत्व निम्नलिखित हैं :-

(i) चीनी जनता के आनुभाविक विश्वास (Empirical Beliefs of the Chinese People) :- किसी भी राजनीतिक व्यवस्था, राजनीतिक संरचनाओं व राजनीतिक प्रक्रियाओं के प्रति विश्वास या निष्ठा की भावना ही राजनीतिक या आनुभाविक विश्वास कहलाता है। प्राचीन काल में चीनी जनता को राजतन्त्रीय या आनुभाविक विश्वास कहलाता है। प्राचीन काल में चीनी जनता को राजतन्त्रीय सिद्धान्तों में विश्वास था। चीन में लम्बे समय तक राजतन्त्र का ही बोलबाला रहा, लेकिन 1949 के बाद चीन में साम्यवादी क्रान्ति हुई और वहां साम्यवादी शासन व सरकार स्थापित हुई। धीरे-धीरे जनता की साम्यवादी सरकार के कार्यक्रमों व नीतियों में आस्था बढ़ती गई और वह आस्था आज भी है, क्योंकि चीन में आज भी साम्यवादी शासन हैं जनता को यह विश्वास आज भी है कि उनकी व देश की समस्याओं का समाधान साम्यवादी सरकार ही कर सकती है।

(ii) चीनी जनता के राजनीतिक मूल्य (Political Values of the Chinese People) :- राजनीतिक मूल्यों से अभिप्राय जनता द्वारा देश व समाज के लिए मूल्यों की प्राथमिकता से है। चीन की जनता राजनीतिक स्वतन्त्रता की अपेक्षा आर्थिक व सामाजिक समानता को प्राथमिकता देती है। इसी कारण चीन में निजि सम्पत्ति का अधिकार प्रतिबन्धों से युक्त है और वहां सहकारी नीतियों को लागू किया गया है ताकि आर्थिक व सामाजिक विषमताएं कम हो जायें। चीनियों की दृष्टि में राजनीतिक लोकतन्त्र, आर्थिक व सामाजिक लोकतन्त्र के अभाव में एक धोखा है जिसे वे कभी सहन नहीं कर सकते। उसका संविधान और कानून में विश्वास तो है, लेकिन सामाजिक कल्याण के एक साधन के रूप में। इसी कारण वहां स्वतन्त्र न्यायपालिका की कोई व्यवस्था नहीं है। उनकी अभिरुचि शक्ति-पृथक्करण के सिद्धान्त की बजाय लोकतन्त्रीय केन्द्रीयकरण में अधिक रही है और आज भी है।

(ii) चीनी जनता की प्रभावी अनुक्रियाएं (Effective Responses of the Chinese People) :- चीनी लोगों का अपनी राजनीतिक संस्थाओं, संरचनाओं व प्रक्रियाओं के प्रति अनुकूल रवैया या मनोभाव है। चीन के लोग अपनी प्राचीन सभ्यता, संस्कृति, राष्ट्रीय प्रतीकों आदि पर गर्व महसूस करते हैं। चीनीयों की दृष्टि से साम्यवादी शासन-व्यवस्था व उसके सहयोग के लिए कार्यरत् सभी तरह की संरचनाएं व संस्थाएं सम्मान की पात्र हैं। उनका यह विश्वास है कि साम्यवादी शासन प्रणाली ही उनकी समस्याओं का सर्वमान्य हल प्रस्तुत कर सकती है।

चीनी राजनीतिक संस्कृति के निर्धारक

(Determinants of the Chinese Political Culture)

चीन की राजनीतिक संस्कृति के प्रमुख निर्धारक तत्व निम्नलिखित हैं :-

(i) इतिहास (History) :- चीनी राजनीतिक संस्कृति का विकास इतिहास की गति के साथ हुआ है। वर्तमान चीनी राजनीतिक संस्कृति की जड़ें उसके गौरवमय अतीत में है। ऐतिहासिक दृष्टि से चीनी सभ्यता विश्व की सर्वाधिक प्राचीन व समृद्ध सभ्यता है। चीनी राजनीतिक जीवन की शुरुआत 2852 ई० पू० से शुरु होती है। आरम्भ में चीन पर सामन्तवादी शासकों का शासन था। 2200 ई० पू० में चीन में हसिया वंश के शासकों ने सामन्तों को कुचल कर एक शक्तिशाली राज्य की स्थापना की। हसिया वंश के बाद चीन में शॉग वंश की स्थापना हुई जिसने 1122 ई० पू० तक शासन किया। उसके बाद 1122 ई० पू० से 225 ई० पू० तक चीन में चाऊ वंश की स्थापना हुई। उसके बाद चीन में 'शीह हुआंग टी नामक

शासक का शासन स्थापित हुआ। उसके बाद 220 ई० से 900 ई० तक तांग वंश, 900 ई० से 1279 तक शुंग वंश, उसके बाद 1644 तक चीन पर मिंग वंश का शासन रहा। इस समय चीन में राजतन्त्र चरम सीमा पर था। जनता राजा को असीम श्रद्धा का पात्र मानती थी। राजा को सामन्तों द्वारा सलाह दी जाती थी। लेकिन मंगोलों के आक्रमण ने 16वीं सदी में राजनीतिक अस्थिरता का माहौल पैदा कर दिया। 17वीं सदी के आरम्भ में चीन में मंचू वंश की स्थापना हुई जो 1912 तक रहा। इस दौरान भी राज की निरंकुशता का बोलबाला रहा। 19वीं सदी में अफीम युद्धों ने चीन में साम्राज्यवादियों को आमन्त्रित किया और चीन साम्राज्यवादियों के पाश में जकड़ गया। 1895 ई० में कोरया के प्रश्न को लेकर जापान और चीन में युद्ध हुआ जिसमें चीन की हार हुई। धीरे-धीरे चीन में साम्राज्यवाद का प्रभाव बढ़ता गया। 1911 में मंचू वंश के शासन का अन्त करने के लिए सुनयात सेन ने क्रान्ति का बिगुल बजाया। इस क्रान्ति की सफलता ने चीन में प्रथम गणतन्त्र की स्थापना की। 1917 की रूसी क्रान्ति तथा प्रथम विश्वयुद्ध का प्रभाव चीन पर भी पड़ा। चीन में 1921 में साम्यवादी दल की स्थापना हुई और 1949 की क्रान्ति के बाद चीन में साम्यवादी सत्ता स्थापित हो गई। इस तरह चीन में निरंकुश राजतंत्र का विकास नए प्रकार के निरंकुश शासनतन्त्र में बदलता गया और अन्त में साम्यवादी शासन ही जनता में लोकप्रिय हो गया, जो आज भी है। इसी कारण चीनी जनता साम्यवादी दल के प्रति ही अधिक निष्ठावान है।

(ii) सामाजिक-आर्थिक संरचना (Socio-Economic Structure) :- किसी भी देश की सामाजिक व आर्थिक संरचना का वहां की राजनीतिक संस्कृति पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। चीन भी इसका अपवाद नहीं है। चीन एक बहुराष्ट्रीय समाज है जिसमें 56 राष्ट्रीयताएं रहती हैं। परन्तु वहां सभी राष्ट्रीयताएं समान हैं। किसी के साथ कोई भेदभाव नहीं है। इसी कारण वहां की राजनीतिक संस्कृति में अन्य राष्ट्रीयताओं को आत्मसात् करने का गुण है। वहां जनता को अपनी-अपनी संस्कृति व रीति-रिवाज बनाए रखने की स्वतन्त्रता है। विभिन्न साधनो द्वारा चीनी जनता को शिक्षित बनाया गया है। यहां के बुद्धिजीवी वर्ग का झुकाव साम्यवाद की तरफ ही है। वहां स्त्रियों को समान अधिकार प्राप्त है। चीन में अल्पसंख्यक जातियों के प्रति साम्यवादी दल का उदारवादी नियन्त्रण है। सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान अल्पसंख्यक वर्ग का अहित अवश्य हुआ था। परन्तु आज चीन ने जनता को धार्मिक स्वतन्त्रता भी प्राप्त है और धर्म के प्रति सरकार का दृष्टिकोण सन्देह व अविश्वास का है। चीन में आर्थिक ढांचा भी सहकारी है। चीनी सहकारी आर्थिक ढांचे का ध्येय यही है कि जनता में आर्थिक असमानता कम हो लोगों को आर्थिक व सामाजिक न्याय प्राप्त हो। सत्य तो यही है कि आज चीन का सामाजिक-आर्थिक ढांचा वह नहीं है जो 1949 में था। आज चीन में हर क्षेत्र में उदारवाद के लक्षण प्रकट होने लगे हैं और उदारवादी साम्यवाद विकसित हो रहा है।

चीनी राजनीतिक संस्कृति की विशेषतायें

(Features of the Political Culture of China)

चीनी राजनीतिक संस्कृति की प्रमुख विशेषतायें निम्नलिखित हैं :-

(1) चीनी राजनीतिक संस्कृति में सर्वसत्ताधिकारवाद का लक्षण पाया जाता है। चीन में सरकार व समाज की हर गतिविधि साम्यवादी दल के नियन्त्रण में ही रहती है।

(2) चीन में लोकतन्त्रीय विकेन्द्रीकरण की बजाय लोकतन्त्रीय केन्द्रवाद का सिद्धान्त प्रचलित है।

(3) चीन में राजनीतिक सत्ता का औचित्य कृत्रिम साधनों से तैयार किया जाता है। इसके लिये संचार साधनों और हिंसात्मक साधनों पर केन्द्रीय नियन्त्रण स्थापित किया जाता है।

(4) चीन में सत्ता का सर्वकेन्द्रण है जो प्राधिकार या सत्ता व शासन के विकेन्द्रीकरण को नकारता है। चीन में शक्ति-पृथक्करण का सिद्धान्त अमान्य हैं।

(5) चीन में एकदलीय शासन के प्रति जनता का विश्वास है। वहां की जनता साम्यवादी दल के प्रति पूरी निष्ठावान रहती है।

(6) चीन में राजनीतिक लोकतन्त्र की बजाय आर्थिक व सामाजिक लोकतन्त्र को प्राथमिकता दी जाती है।

(7) चीनी राजनीतिक संस्कृति एक अति विकसित राजनीतिक संस्कृति है जिसमें विभिन्न चीनी राष्ट्रीयताओं को आत्मसात् कर लिया है।

(8) चीनी राजनीतिक संस्कृति चीनी राजनीतिक व सांस्कृतिक क्रान्ति का प्रतिफल है जिसका विकास माओ ने किया है।

(9) चीन में राजनीतिक संरचनाओं व भूमिकाओं का विभेदीकरण नहीं पाया जाता।

(10) चीनी राजनीतिक संस्कृति में करिश्माई नेतृत्व के गुण भी हैं। चीन में माओ को आज भी देव तुल्य समझकर पूजा जाता है।

इस प्रकार हम निष्कर्ष तौर पर कह सकते हैं कि चीन में जनता साम्यवादी दल की नीतियों कार्यक्रमों के प्रति पूरी निष्ठा रखती है। वहां के लोगों के जीवन का हर पहलु साम्यवादी दल के कठोर नियन्त्रण में रहता है। वहां जनसम्पर्क के साधनों पर भी सरकार का नियन्त्रण है। चीनी राजनीतिक समाज का लगाव राजनीतिक लोकतन्त्र की बजाय सामाजिक व आर्थिक लोकतन्त्र से है। चीन में सिद्धान्त में तो लोकतन्त्रीय आदर्शों की दुहाई दी जाती है, लेकिन व्यवहार में वहां सर्वसत्ताधिकारवादी राजनीतिक सस्कृति के लक्षण ही प्रकट होते हैं। वहां नागरिक स्वतन्त्रताओ व अधिकारों के नाम पर कर्तव्यों पर अधिक बल दिया जाता है। वहां की राजनीतिक संस्कृति में करिमाई नेतृत्व का मिलने वाला गुण चीनी राजनीतिक संस्कृतिक को अतिविशिष्ट बना देता है। विभिन्न राष्ट्रीयताओं को आत्मसात् करने में सक्षम चीनी राजनीतिक संस्कृति वास्तव में समभागी व विकसित राजनीतिक संस्कृति है जो अन्य सर्वसत्ताधिकारवादी राजनीतिक व्यवस्था वाले देशों की राजनीतिक संस्कृति से अधिक परिपक्व है।

स्विस राजनीतिक संस्कृति
(Swiss Political Culture)

स्विट्जरलैण्ड एक तटस्थ व शांतिप्रिय देश है। इसे प्रत्यक्ष लोकतन्त्र का घर कहा जाता है। यह विश्व का सर्वाधिक प्राचीन गणतन्त्रीय लोकतन्त्र है। यहां की राजनीतिक संस्कृति भी अनूठापन लिए हुए है। यहां की जनता का राजनीतिक संस्थाओं, राजनीतिक व्यवस्था तथा राजनीतिक संस्थाओं व प्रक्रियाओं से गहरा लगाव है। इनका राजनीतिक विश्वास व राजनीतिक मूल्यों के प्रति जागरुकता का उच्च स्तर ही स्विस राजनीतिक संस्कृति को विशिष्टता प्रदान करता है।

स्विस राजनीतिक संस्कृति के तत्व
(Elements of the Swiss Political Culture)

स्विस राजनीतिक संस्कृति के प्रमुख तत्व निम्नलिखित हैं :-

(i) स्विस जनता का राजनीतिक विश्वास (Political Belief of the Swiss People) :- राजनीतिक विश्वास से अभिप्राय स्वि लोगों की अपने देश की राजनीतिक व्यवस्था, संरचनाओं, प्रक्रियाओं तथा संस्थाओं के बारे में विश्वास की भावना से है। स्विस जनता लोकतन्त्र में गहरी आस्था रखती है। उसकी गणतन्त्र में भी पूरी आस्था है। वह ब्रिटेन तथा अमेरिका दोनों की शासन प्रणाली के गुणों को आत्मसात् कर लेती है। इसी कारण वह अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली के साथ-साथ संसदात्मक शासन प्रणाली में विश्वास व्यक्त करती है। स्विस जनता जनमत या जनता की सम्प्रभुता, संवैधानिक शासन, तटस्थता की नीति, बहुल कार्यपालिका, प्रशासकीय कानून आदि में गहरी आस्था है।

(ii) स्विस जनता के राजनीतिक मूल्य (Political Values of the Swiss People) :- अन्य देशों की तरह स्विस जनता के भी अपने राजनीतिक मूल्य हैं जिनकी रक्षा के लिए वह बड़े-से-बड़ा बलिदान करने को तैयार हो जाती है। ये राजनीतिक मूल्य स्वतन्त्रता, न्याय, समानता आदि हैं। फ्रांसीसी क्रान्ति के बाद स्विट्जरलैण्ड में भी इन राजनीतिक मूल्यों की रक्षा के लिए स्विस जनता ने आन्दोलन किया था। ये राजनीतिक मूल्य आज भी स्विस जनता को बहुत प्रिय हैं। इन राजनीतिक मूल्यो की रक्षा के लिए स्विस जनता के पास जनमत संग्रह रूपी प्रभावकारी अस्त्र है।

(iii) स्विस जनता की प्रभावी अनुक्रियाएं (Effective Responses of the Swiss People) :- स्विस जनता जागरूक है। उसके अपने नेताओं तथा राजनीतिक व्यवस्था के प्रति अनुकूल मनोभाव हैं। स्विस जनता को अपनी परम्पराओं व राजनीतिक मूल्यों से गहरा लगाव है। इसी कारण स्विट्जरलैण्ड में विकसित राजनीतिक संस्कृति का विकास हुआ है।

स्विस राजनीतिक संस्कृति के निर्धारक
(Determinants of the Swiss Political Culture)

स्विस राजनीतिक संस्कृति के निर्धारक तत्व निम्नलिखित हैं :-

(i) इतिहास (History) :- अन्य देशों की तरह स्विस राजनीतिक संस्कृति की जड़ें भी इतिहास में गड़ी हुई हैं। स्विस

संघात्मक प्रणाली व गणतन्त्रीय आस्था लम्बे ऐतिहासिक विकास का ही प्रतिफल है। प्रारम्भ में स्विस जनता ने 1291 में एक स्थायी संघ का निर्माण किया था। उसके बाद 1789 में फ्रांसीसी क्रान्ति के समय स्विट्जरलैण्ड में 13 राज्यों का एक स्वतन्त्र संघ बना जो अधिक प्रभावकारी सिद्ध न हो सका। नेपोलियन के आक्रमणों ने स्विट्जरलैण्ड में एकात्मक संविधान की स्थापना करके गणतन्त्रीय व्यवस्था को हानि पहुंचाई। नेपोलियन ने स्विट्जरलैण्ड में केन्द्रीयकृत प्रशासनिक व्यवस्था को जन्म दिया। इससे स्विस जनता आक्रोशित हो गई और वहां विद्रोह उठ खड़ा हुआ। इसके परिणामस्वरूप नेपोलियन ने कैण्टनों की स्वतन्त्रता को स्वीकार करना पड़ा और 1803 के मध्यस्थता अधिनियम के तहत स्विट्जरलैण्ड को पुनः एक संघात्मक राज्य बना दिया गया। नेपोलियन के अन्त के बाद 1814 में स्विट्जरलैण्ड ने नया संविधान बनाया। इस संविधान में कैण्टनों के शासन को उसी रूप में बनाए रखने की अनुमति दी गई जो पूर्ववर्ती संविधान में थी। 1815 के पेरिस समझौते के रूप में यह नव-निर्मित संविधान स्वीकार कर लिया गया। इसके बाद 1830 तक स्विट्जरलण्ड में शान्ति और समृद्धि रही, परन्तु उदारवादी भावना और लोकतन्त्र की प्रगति अवश्य बाधित हुई। 1830 में फ्रांसीसी क्रान्ति के प्रारम्भ होते ही स्विट्जरलैण्ड में भी उदारवादी क्रान्ति का बिगुल बज उठा। इसके कारण देश के लोकतन्त्रीय सिद्धान्तों के आधार पर कैण्टनों के संविधानों में परिवर्तन करने के लिए एक आन्दोलन शुरु हुआ। स्विस डाइट या राज्य परिषद ने तत्कालीन धार्मिक मतभेदों को दूर करने का प्रयास नहीं किया और 1845 में कैथालिक बहुमत वाले कैण्टनों ने अपना अलग संघ बना लिया। इसके बाद स्विट्जरलैण्ड में गृह-युद्ध की शुरुआत हो गई। इस गृह युद्ध में राष्ट्रीयता के तत्वों की विजय हुई और 1848 में नया संविधान बनाया गया जिसे जनता ने स्वीकार कर लिया। इसके बाद 1874 में स्विस संविधान में संशोधन करके उसकी संघात्मकता को बरकरार रखा गया। इससे स्पष्ट है कि स्विस जनता का संघ शासन व गणतन्त्रीय व्यवस्था के प्रति लगाव प्रारम्भ से ही रहा है और आज भी है।

(ii) *सामाजिक-आर्थिक संरथा (Socio-Economic Structure)* :- स्विस समाज विभिन्न भाषा व धर्मावलम्बी लोगों का समाज है। वहां भाषा व धर्म के प्रति स्वतन्त्र दृष्टिकोण अपनाया गया है। वहां कोई राजभाषा नहीं है। ऊपर से देखने पर तो स्विस समाज में एकता के तत्व दिखाई नहीं देते, लेकिन व्यवहार में वहां राष्ट्रीय एकता के तत्व मौजूद हैं। वहां जनता को धार्मिक स्वतन्त्र प्राप्त है। लोगों में आपसी जातीय बैरभाव नहीं है। अधिक जनता शिक्षित है व स्त्रियों को समाज में समान अधिकार प्राप्त हैं। स्विस जनता आर्थिक रूप से समृद्ध है। इसी कारण वहां राजनीति का व्यवसायीकरण नहीं हुआ है। इसी कारण वहां सत्ता के लिए अनुचित स्पर्धा नहीं है। वहां आर्थिक असमानता की नितान्त कमी है। इसी सामाजिक व आर्थिक समानता की भावना ने स्विस जनता को एकता के सूत्र में बांधे रखा है।

स्विस राजनीतिक संस्कृति की विशेषतायें

(Features of the Swiss Political Culture)

स्विस राजनीतिक संस्कृति की प्रमुख विशेषतायें निम्नलिखित हैं :-

(1) स्विट्जरलैण्ड में भारत, ब्रिटेन तथा अमेरिका की तरह ही बहुमूल्यधारी राजनीतिक संस्कृति पाई जाती है। स्विस जनता न्याय, स्वतन्त्रता तथा समानता जैसे राजनीतिक मूल्यों के प्रति जागरूक है।

(2) स्विट्जरलैण्ड में गणतन्त्रीय व्यवस्था तथा बहुल कार्यपालिका में जनता की गहरी आस्था है।

(3) स्विट्जरलैण्ड में प्रजातन्त्रीय सिद्धान्तों का पूरा सम्मान किया जाता है। इसी कारण वहा जनमत संग्रह द्वारा जनता को सम्प्रभु बनाया गया है।

(4) स्विस जनता अध्यक्षात्मक व संसदीय दोनों शासन प्रणालियों को एक साथ मान्यता देती है। स्ट्रांग ने लिखा है स्विसार में स्विस व्यवस्थापिका के दोनों सदनों के कार्यों में कोई मतभेद नहीं है।

(5) स्विट्जरलैण्ड में बहुदलीय प्रणाली का विकास हुआ है, लेकिन राजनीतिक दलों में सत्ता के लिए वहां संघर्ष नहीं है और न ही दलगत राजनीति के प्रति जनता का लगाव है।

(6) स्विस जनता व सरकार अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में तटस्थता की नीति अपनाती है।

(7) स्विट्जरलैण्ड में शक्ति-पृथक्करण का सिद्धान्त नहीं अपनाया गया है।

(8) स्विट्जरलैण्ड में करिश्माई नेतृत्व का अभाव है।

(9) स्विट्जरलैण्ड में चुनावी हिंसा व वोट की राजनीति नहीं है अर्थात् वहां राजनीति का अपराधीकरण नहीं है।

(10) स्विस राजनीतिक संस्कृति अधिक परिपक्व व विकसित संस्कृति है।

(11) स्विस राजनीतिक संस्कृति गतिशील संस्कृति है जो नए तत्वों को अपने में समाहित करती रहती है। पहले की तुलना में इसका स्वरूप आज अधिक उदारवादी है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि स्विस राजनीतिक संस्कृति भी ब्रिटेन व अमेरिका की तरह बहुमूल्यवादी राजनीतिक संस्कृति है। राजनीति के प्रति धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण अपनाने के कारण यह अधिक उदारवादी तथा परिपक्व है। वस्तुतः यह प्रजातन्त्रीय सिद्धान्तों का साकार रूप ही है।

अध्याय-10

राजनीतिक दल और दल-प्रणालियां

(Political Parties and Party Systems)

दल-प्रणाली किसी भी शासन-व्यवस्था का आवश्यक अंग है। दलीय व्यवस्था ही वह ताना-बाना है जिसके चारों ओर राजनीतिक व्यवस्था गति करती है। लोकतन्त्र और तानाशाही शासन व्यवस्था वाले देशों में राजनीतिक दलों का बराबर महत्व है। लोकतन्त्रीय देशों में जहां राजनीतिक दल जनइच्छा की अभिव्यक्ति का साधन हैं, वहीं तानाशाही देशों में वे शासक वर्ग के हितों का सम्पादन करने वाले प्रभावशाली यन्त्र हैं। साम्यवादी देशों में भी दली-प्रणाली का उतना ही महत्व है, जितना भारत व अमेरिका जैसे लोकतन्त्रीय देशों में है। साम्यवादी देशों में तो व्यवहार में राजनीतिक दल ही सब कुछ है। कोई भी व्यक्ति या संस्था दल के कठोर अनुशासन अधिक कठोर न होते हुए भी राजनीतिक दलों का प्रजातन्त्रीय स्वरूप जनता के लिए एक लोकप्रिय व्यवस्था है। मुनरो ने तो स्वतन्त्र राजनीतिक दलों के शासन को ही लोकतन्त्रीय शासन कहा है। आज लोकतन्त्र और राजनीतिक दल एक दूसरे के पर्याय बन चुके हैं। ये सरकार व जनता के बीच कड़ी का कार्य करने के साथ-साथ राजनीतिक व्यवस्था रूपी मोटर को चलाते हैं। राजनीतिक व्यवस्था में दलों के बढ़ते महत्व के कारण इन्हें राजनीतिक व्यवस्था की धुरी कहा जाता है। सत्य तो यह है कि राजनीतिक दलों के बिना राजनीतिक प्रक्रिया को गति नहीं मिल सकती। अतः राजनीतिक दल ही लोकतन्त्र व साम्यवादी दोनों शासन-प्रणालियों का आधार है।

राजनीतिक दल का अर्थ और परिभाषा

(Meaning and Definition of Political Party)

साधारण शब्दों में राजनीतिक दल एक ऐसा संगठन है जो सम्पूर्ण देश या समाज के व्यापक हित के संदर्भ में अपने सेवार्थियों के हितों को बढ़ावा देने के लिए निश्चित सिद्धान्तों, नीतियों और कार्यक्रम का समर्थन करता है और इन्हें कार्यान्वित करने के उद्देश्य से राजनीतिक शक्ति प्राप्त करना चाहता है। राजनीतिक दल को अनेक विद्वानों ने निम्न प्रकार से परिभाषित किया है :-

(1) मसलदान के अनुसार-"एक राजनीतिक दल उस स्वेच्छिक समूह को कहते हैं जो कुछ समान्य राजनीतिक व सामाजिक सिद्धान्तों के आधार पर तथा कुछ सामान्य लक्ष्यों और आदर्शों की पूर्ति के लिए शासन चलाने का प्रयत्न करता है तथा अपने सदस्यों को सत्तारूढ़ करने की चेष्टा करता है और उसके लिए चुनाव तथा अन्य साधनों का भी प्रयोग करता है।"

(2) फ्रेडरिक के अनुसार-"एक राजनितिक दल उन व्यक्तियों का समूह है जो अपने नेताओं के लिए शासकीय नियन्त्रण प्राप्त करने अथवा उसे बनाए रखने के उद्देश्यों से स्थायी रूप से संगठित होते हैं और आगे अनुशासित रहकर लाभ प्राप्त करने के प्रयास करते हैं।"

(3) बर्क के अनुसार-"राजनीतक दल मनुष्यों का एक समूह है जो कुछ निश्चित सिद्धान्तों के आधार पर जिनमें वे सहमत हैं, अपने सामूहिक प्रयत्नों से राष्ट्रीय हितों को आगे बढ़ाने के लिए एकता में बंधे होते हैं।"

(4) मैकाइवर के अनुसार-"राजनीतिक दल वह समुदाय है जिसका संगठन किसी भी विशेष सिद्धान्त या नीति के समर्थन के लिए हुआ और वह संविधानिक साधनों द्वारा सरकार बनाने के लिए इस सिद्धान्त या नीति का सहारा लेता हो।"

(5) गिलक्राइस्ट के अनुसार-"राजनीतिक दल व्यक्तियों के उस समुदाय को कहते हैं जिसके सदस्यों के राजनीतिक विचार एक से होते हैं और जो एक राजनीतिक इकाई की तरह कार्य करके सरकार पर नियन्त्रण करने की चेष्टा करते हैं।"

(6) मैक्स वेबर के अनुसार-"राजनीति दल स्वेच्छा से बनाया हुआ वह संगठन है जो शासन शक्ति को अपने हाथ में लेना चाहता है और इसको हस्तगत करने के लिए प्रचार तथा आन्दोलन का सहारा लेता है। इस शासन शक्ति को हाथ में लेने के पीछे एक ही उद्देश्य हो सकता है जो या तो वस्तुनिष्ठ लक्ष्य की प्राप्ति है या व्यक्तिगत स्वार्थ या दोनों हैं।"

(7) गैटल के अनुसार-"राजनीतिक दल नागरिकों का वह समुदाय है जो एक राजनीतिक इकाई के रूप में कार्य करता है और अपने मतदान की शक्ति का प्रयोग करके सरकार को नियन्त्रित करना तथा अपनी सामान्य नीति की पूर्ति करना चाहता है।"

(8) लीकॉक के अनुसार-"राजनीतिक दल संगठित नागरिकों के उस समुदाय को कहते हैं जो एक जगह मिलकर एक राजनीतिक इकाई के रूप में कार्य करते हैं। उनके विचार सार्वजनिक प्रश्नों पर एक जैसे होते हैं और वे सामान्य उद्देश्य की पूर्ति के लिए मतदान की शक्ति का प्रयोग करके सरकार पर अपना आधिपत्य स्थापित करना चाहते हैं।"

(9) रेने तथा केन्डल के अनुसार-"राजनीतिक दल संगठित स्वायत्त समूह हैं जो सरकार की नीतियों एवं कर्मचारियों पर अन्ततः नियन्त्रण प्राप्त करने की आशा में चुनाव में उम्मीदवारों का नामांकन करता है और चुनाव लड़ता है।"

(10) राबर्ट सी० बोन के अनुसार-"राजनीतिक दल व्यक्तियों का ऐसा संगठन है जो अपने उद्देश्यों को सरकार पर औपचारिक नियन्त्रण प्राप्त करके, समाज में मूल्यों के आधिकारिक वितरण में प्राथमिकता के प्रकरण बनाकर, प्राप्त करता है।"

(11) पालोम्बरा के अनुसार-"राजनीतिक दल एक औपचारिक संगठन है जिसका स्व-चेतन व प्रमुख उद्देश्य ऐसे व्यक्तियों को सार्वजनिक पदों पर पहुंचाना तथा उन पर नियन्त्रण बनाए रखना है जो अकेले या किसी से मिलकर शासनतन्त्र पर अपना नियन्त्रण करेंगे।"

(12) कोलमेन के अनुसार-"राजनीतिक दल वे समुदाय हैं जो औपचारिक रूप से इस उद्देश्य से संगठित होते हैं कि उन्हें वास्तविक अथवा सम्भावित सम्प्रभु राज्य सरकार की नीति और उसके सेवीवर्ग के ऊपर वैधानिक नियन्त्रण प्राप्त करना और बनाए रखना है, चाहे अकेले या मिलकर या वैसे ही अन्य समुदायों के साथ चुनाव प्रतियोगिता करके।"

इस प्रकार राजनीतिक दल के बारे में अनेक विद्वानों ने अलग-अलग परिभाषाएं दी हैं जो राजनीतिक दल के सिद्धान्त, संगठन, कार्यक्रम, प्रकृति आदि पर प्रकाश डालती हैं। पालोम्बरा तथा राबर्ट सी० बोन ने राजनीतिक दल की जो यथार्थ परिभाषाएं दी हैं, वे राजनीतिक दल के संगभ्ठन, कार्यक्रम तथा प्रकृति को पूरी तरह परिभाषित करती हैं।

राजनीतिक दल की विशेषताएं

(Features of Political Party)

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर राजनीतिक दल की निम्नलिखित विशेषताएं दृष्टिगोचर होती हैं :-

(1) राजनीतिक दल विशिष्ट सिद्धान्तों के आधार पर संगठित व्यक्तियों का समूह है।

(2) राजनीतिक दल बहुत सारे व्यक्तियों का स्थायी संगठन है।

(3) राजनीतिक दल अपने सदस्यों के हितों को ध्यान में रखते हुए समाज के व्यापक हित को बढ़ावा देना चाहता है।

(4) राजनीतिक दल के सदस्यों में सामान्य लक्ष्यों व सिद्धान्तों पर आम सहमति पाई जाती है।

(5) राजनीतिक दल का कार्यक्रम स्पष्ट होता है।

(6) राजनीतिक दल अपने सिद्धान्तों, नीतियों व कार्यक्रम को कार्यान्वित करने के लिए राजनीतिक शक्ति प्राप्त करना चाहता है।

(7) राजनीतिक दल राजनीतिक सत्ता प्राप्त करने के लिए चुनावों में भाग लेता है।

(8) राजनीतिक दल अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए शान्तिपूर्ण तथा संविधान व कई बार असंविधानिक साधन भी अपनाता है।

(9) राजनीतिक दल राजनीतिक सत्ता की प्राप्ति के बाद अपने सिद्धान्तों को व्यवहारिक रूप देना शुरु कर देता है।

राजनीतिक दलों की उत्पत्ति व विकास

(Origin and Growth of Political Parties)

राजनीतिक दल की उत्पत्ति के बारे में अनेक मत प्रचलित हैं। पीटर मकर्ल ने इसे संस्थागत ढांचे से जोड़ा है। उसका कहना है कि राजनीतिक दल की उत्पत्ति संस्थागत परिवेश में ही हुई है। राजनीतिक व्यवस्था में विशेष प्रकार की संस्थागत संरचनाओं का निर्माण ही दल व्यवस्था का विकास कर देता है। ला पालोम्बारा एवं वीनर के अनुसार ऐतिहासिक संकटों से निपटने के लिए ही दलों का जन्म हुआ है। आधुनिक युग में अनेक विद्वानों ने राजनीतिक दलों का सम्बन्ध औद्योगिक क्रान्ति से जोड़ा है। कार्ल मार्क्स तथा लेनिन की ऐसी ही धारणा है कि दल औद्योगिक क्रान्ति की उत्पत्ति है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि राजनीतिक दलों की उत्पत्ति के अनेक कारण भी हो सकते हैं और एक कारण भी। लोकतन्त्रीय तथा तानाशाही देशों में दलों की उत्पत्ति के कारण कभी समान नहीं हो सकते। इन देशों में इनकी उत्पत्ति के आधार एक दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं।

कुछ राजनीतिक विद्वानों का मानना है कि राजनीतिक दलों के बीच प्राचीन काल में भी विद्यमान थे। लेकिन दलीय व्यवस्था को व्यस्थित करने का श्रेय ब्रिटेन को ही जाता है। इंग्लैण्ड में गृहयुद्ध का प्रारम्भ ही दलों द्वारा हुआ था। उस समय दलों का स्वरूप गुटीय था। उनके कार्य करने के तरीके असभ्य थे। कैवेलियर्स राजवंश के तथा राउण्डहैड्स संसद के अधिकारों के समर्थक दल थे। बाद में इन दलों को ही क्रमशः टोरी और व्हिग (Torry and Whig) कहा गया। कालान्तर में ये दोनों दल क्रमशः उदार (Liberal) तथा अनुदार (Conservative) बन गए। इंग्लैण्ड में श्रमिक दल का उदय तो औद्योगिक क्रान्ति का परिणाम है। अमेरिका में भी राजनीतिक दलों की उत्पत्ति संविधान निर्माताओं की इच्छा के विपरीत हुई है। फिलाडेल्फिया सम्मेलन के दौरान ही प्रतिनिधिगण संघवादी ओर संघ विरोधी दो भागों में बंटने लगे थे। धीरे-धीरे अमेरिका में भी दल प्रणाली विकसित होती गई और रिपब्लिकन तथा डैमोक्रेटिक दलों का जन्म हो गया, जो आज भी कार्य कर रहे हैं। लेनिन के समय से पूर्व ही सोवियत संघ में भी साम्यवादी दल का उद्‌भव हो चुका था जो आज विश्व के कई देशों में कार्य कर रहा है। चीन में साम्यवादी दल आज सफलतापूर्वक कार्य कर रहा है। फ्रांस, भारत, स्विस, कनाडा, जापान आदि सभी देशों में आज राजनीतिक दल कार्यरत् हैं। कहीं पर एकदलीय प्रणाली है, कहीं पर द्विदलीय तो कहीं पर बहुदलीय प्रणाली है। आज स्विट्जरलैण्ड तथा भारत में बहुदलीय प्रणाली है, अमेरिका तथा ब्रिटेन में द्विदलीय है तथा चीन में एकदलीय प्रणाली है।

राजनीतिक दलों के कार्य व भूमिका

(Functions and Role of Political Parties)

प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था में राजनीतिक दलों का पाया जाना तथा दलीय व्ययवस्था के माध्यम से राजनीतिक व्यवस्था का गतिशील होना एक आम बात है। यद्यपि सर्वसत्ताधिकारवादी और निरंकुश राजनीति व्यवस्थाओं में दलीय प्रणाली उतनी सफल नहीं रहती, जितनी लोकतन्त्रीय या ससदीय शासन प्रणाली वाले देशों में रहती है। बाहर से देखने पर तो लोकतंन्त्रीय तथा तानाशाही शासन व्यवस्थाओं में दलों के कार्य समान प्रतीत होते हैं, लेकिन गहराई से अवलोकन करने पर, तानाशाही देशों में राजनीतिक दलों द्वारा किए जाने वाले कार्य व भूमिका में लोकतन्त्रीय देशों की तलना में काफी अन्तर आ जाता है। इसलिए न्यमैन ने सर्वाधिकारवादी और लोकतन्त्रीय देशों में राजनीतिक दलों के कार्य व भूमिका में अन्तर किया है।

(I) तानाशाही देशों में राजनीतिक दलों के कार्य व भूमिका

(Functions and Role of Political Parties in Authoritarian Countries)

न्युमैन का मानना है कि बाहर से तो राजनीतिक दल तानाशाही तथा लोकतन्त्रीय शासन व्यवस्थाओं में समान कार्य करते प्रतीत होते हैं लेकिन व्यंवहारिक स्थिति कुछ अलग ही होती है। अधिनायकवादी देशों में केवल एक ही राजनीतिक दल होता है, इसी कारण उन देशों की शासन व्यवस्था, दलीय व्यवस्था के आधार पर एक दलीय शासन प्रणाली ही कहलाती है। अधिनायकवादी देशों में दल जीवन के सभी क्षेत्रों पर अपना पूर्ण नियन्त्रण रखता है। शासन पर भी दल का ही प्रभाव रहता है और सभी कानूनों, आदेशों तथा नीतियों के पीछे दल का ही हाथ होता है। शासन के सभी अंग दल के नियन्त्रण में ही रहते हैं। दल नेताओं और जनता के बीच कड़ी का तो काम करता है, लेकिन उसके माध्यम ये नेतागण अपने कार्यों का प्रशंसात्मक विवरण तथा निर्देश जनता तक पहुंचाते हैं और जनता से हर हालत तें अपने आदेशों का पालन दल के माध्यम करवाना चाहते हैं। इस

व्यवस्था में अन्य दल को पनपने का कोई अवसर नहीं रहता। राजनीतिक दल का ही यह कार्य होता है कि वह अपने विरोधी को शक्ति प्रयोग से नष्ट कर दे। राजनीतिक दल की तानाशाही देशों में यह प्रजातन्त्र विरोधी भूमिका लोकतन्त्र के लिए एक खतरे की घंटी मानी जाती है।

न्युमैन द्वारा तानाशाही देशों में राजनीतिक दलों द्वारा किए गए कार्यों को प्रजातन्त्रीय देशों की तुलना में अलग मानना अधिक तर्कसंगत नहीं हो सकता। लेकिन फिर भी अध्ययन की दृष्टि से सर्वाधिकारवादी देशों में राजनीतिक दलों के कार्यों को समझना ही पड़ता है। सर्वाधिकारवादी देशों में राजनीतिक दलों के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हो सकते हैं :-

(1) जनता की इच्छा पर राजनीतिक दल का कठोर नियन्त्रण।

(2) जनता पर शासकीय इच्छा का भार लादना।

(3) जनता व सरकार के बीच कड़ी का कार्य करना।

(4) नेताओं का चुनाव करना।

(5) विरोधियों को कुचलना।

(6) संचार व सूचना तन्त्र पर दल का कठोर नियन्त्रण।

यदि वास्तव में सर्वाधिकावादी देशों में दलों के कार्यों का अवलोकन किया जाए तो ये लोकतन्त्रीय शासन व्यवस्थाओं के विपरीत ही जान पडते हैं। राजनीतिक दलों की इन देशों में भूमिका देखने में तो चाहे प्रजातन्त्रीय हो, लेकिन व्यवहार में कदापि नहीं हो सकती। व्यवहार में तो राजनीतिक दल जनता की बजाय शासक-वर्ग के हितों का ही पोषण करते हैं।

(II) लोकतन्त्र में राजनीतिक दलों की भूमिका व कार्य

(Role and Function of Political Parties in Democracy)

लोकतन्त्र में राजनीतिक दलों की भूमिका व कार्यों पर अनेक विद्वानों ने व्यापक चर्चा की है। राबर्ट सी० बोन के अनुसार राजनीतिक दल लोकतन्त्रीय देशों में-संगठन, मांगों में संशोधन, नेताओं की भर्ती, सत्ता का वैधीकरण, नीति का निर्धारण, शासनव उत्तरदायित्व तथा आधुनिकता जैसे कार्यों को पूरा करते हैं। ला पालोम्बारा ने भी नेताओं की भर्ती, सामाजीकरण, सरकार बनाना, संघटन, सौदेबाजी तथा एकीकरण को राजनीतिक दलों के कार्य बताया है। पीटर एच० मर्कल ने भी लगभग वही कार्य गिनाए हैं जो राबर्ट सी० बोर्न तथा पालोम्बारा ने बताए हैं। न्युमैन ने राजनीतिक दलों के कार्यों पर अपने विचारों को तानाशाही देशों की तुलना में अलग आधार दिया है। उसकी दृष्टि में राजनीतिक दलों के कार्य-(i) जनमत को संगठित करना (ii) जनमत को शिक्षित बनाना (iii) जनता और सरकार को जोड़ना तथा (iv) नेतृत्व को चुनना, बताए हैं। यदि इन सभी विद्वानों के विचारों का अध्ययन किया जाए, तो सभी विद्वानों के विचार लगभग समानार्थी हैं। इन सभी के विचारों का संयुक्तिकरण करने से राजनीतिक दलों के प्रजातन्त्र में कार्य व भूमिकाएं निम्नलिखित हैं।

(1) जनमत तैयार करना (To mould Public Opinion) :- लोकतन्त्रीय देशों में राजनीतिक दल ही जनमत का निर्माण करते हैं। साधारण जनता को तो देश की समस्यांओं का ज्ञान नहीं होता, जिस कारण वे इन समस्याओं के बारे में ठीक तरह सोच नहीं सकते। राजनीतिक दल उन समस्याओं का स्पष्टीकरण करके जनता को अपने पक्ष में करने के प्रयास करते रहते हैं। इससे जनता धीरे-धीरे संगठित होकर मजबूत जनमत का निर्माण कर देती है। इस प्रकार जनमत के निर्माण में राजनीतिक दलों की ही महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

(2) जनता की राजनीतिक शिक्षा देना (To Impart Political Education to the Citizens) :- प्रजातन्त्र में राजनीतिक दल लोगों में रजानीतिक चेतना के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसके लिए वे जनता को राजनीतिक रूप से शिक्षित करने का प्रयास करते हैं। सभाओं, अधिवेशनों, पत्र-पत्रिकाओं आदि के माध्यम से वे जनता से देश की समस्याओं की जानकारी देते रहते हैं और अपने पक्ष में जनता को लाने के लिए जोरदार अभियान चलाते हैं। चुनावों के समय वे अपना घोषणापत्र लेकर जनता के बीच में जाते हैं। इससे जनता को राजनीतिक समस्याओं का ज्ञान भी हो जाता है और राजनीतिक दलों की नीतियों और कार्यक्रमों का ज्ञान भी प्राप्त हो जाता है। इस तरह जनता राजनीतिक रूप से शिक्षित हो जाती हैं।

(3) सार्वजनिक नीतियों के निर्माण में जनता का नेतृत्व (Leadership of Public in formulation of Public Policies) :- साधारण जनता को देश की समस्याओं का अधिक ज्ञान नहीं होता है। वह जटिल राजनीतिक समस्याओं को समझने में असमर्थ होती है। राजनीतिक दल उन समस्याओं का सरलीकरण करके जनता के सामने पेश करते हैं और वाद-विवाद, जनसभाओं, समाचार-पत्रों आदि के द्वारा समस्याओं के बारे में जनता को परिचित रखते हैं। इसी कारण राजनीतिक दलों को 'विचारों का दलाल' भी कहा जाता है। इस प्रकार सार्वजनिक नीतियों के निर्माण में जनता का नेतृत्व राजनीतिक दल ही करते हैं। इससे आम जनता सरकार की नीतियों के सम्बन्ध में बनाई गई योजनाओं में भागीदार बन जाती है और नीति पर जनस्वीकृति भी प्राप्त हो जाती है। अन्त में राजनीतिक दल ही जनस्वीकृति प्राप्त करके नीति-निर्माण में भागीदार बन जाते हैं।

(4) जनता तथा सरकार के बीच कड़ी का कार्य करना (To serve as a link between the people and the Government) :- राजनीतिक दल जनता और सरकार के मध्य एक कड़ी का काम करते हैं। जिस दल की सरकार होती है, वह जनता में सरकार की नीति का प्रचार करता है और जनता को सरकार के साथ सहयोग करने की अपील भी करता है। राजनीतिक दल निर्वाचक समूह हो जानकारी देने, प्रशिक्षित करने और सक्रिय बनाने का कार्य करते हैं जिससे जनता में सरकार की नीतियों के प्रति जागरूकता पैदा होती है। इसके लिए वे जनसम्पर्क के साधनों का प्रयोग भी करते हैं। उनका तो एक ही ध्येय होता है, जनता और सरकार के बीच में खाई को पाटना। वे नीतियों के बारे में जनता को ज्ञान देने के साथ-साथ जनता की भावनाएं और सरकार तक पहुंचाते हैं और उन्हें दूर करवाने का प्रयास भी करते है। एकात्मक सरकार में प्रादेशिक समस्याओं का ज्ञान सरकार को कराने में राजनीतिक दल ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इस तरह राजनीतिक दलों द्वारा ही सूचनाओं का आदान-प्रदान जनता और सरकार के बीच में किया जाता है। अतः राजनीतिक दल सरकार और जनता को जोड़ने वाली महत्वपूर्ण कड़ी है।

(5) चुनाव लड़ना व सरकार बनाना (To fight election and to form Government) :- लोकतन्त्र में जनता अपने प्रतिनिधियों के आधार पर ही शासन करती है। लोकतन्त्र में चुनावों का बहुत महत्व होता है। राजनीतिक दल चुनावों में अपने उम्मीदवार खड़े करते हैं और चुनाव जीतने के लिए तरह-तरह के हथकंडे अपनाते हैं। चुनावों में जीतकर उनका एक ही ध्येय होता है-सत्ता व शासन पर नियन्त्रण। जिस दल को चुनावों में बहुमत प्राप्त होता है, वही सरकार बनाता है और जनता के साथ किए गए वायदें को पूरा करने के लिए व्यावहारिक कार्यक्रम प्रस्तुत करता है।

(6) सरकार की आलोचना करना (To oppose the Government) :- लोकतन्त्र में आलोचना का बहुत महत्व होता है। सर्वाधिकारवादी देशों में तो आलोचना का अधिकार बिल्कुल नहीं होता है।। अध्यक्षात्मक सरकार में भी कार्यपालिका का निश्चित कार्यकाल होने के कारण विरोधी दल प्राय आलोचना से दूर ही रहता है। सरकार की आलोचना का प्रखर रूप संसदीय शासन प्रणालियों में देखने को मिलता है। संसदीय शासन प्रणाली में एक दल तो सरकार चलाता है और दूसरा सरकार की नीतियों पर नजर रखता है ताकि गलत कार्य करने की दशा में सरकार की आलोचना की जा सके। भारत में विरोधी दल का बड़ा सम्मान किया जाता है। विरोधी दल की आलोचना रचनात्मक होने के कारण सत्तारूढ दल जनता के प्रति अपने उत्तरदायित्व का सदा ध्यान रखता है। संसदीय सरकार में कार्यपालिका का विधानमण्डल के प्रति उत्तरदायी होना विरोधी दल को महत्वपूर्ण बना देता है। यदि अविश्वास का मत पारित हो जाए तो सत्तारूढ़ सरकार का स्थान विरोधी दल भी ले सकता है। इसलिए विरोधी दल की उपस्थिति लोकतन्त्र को मजबूत आधार प्रदान करती है तथा इससे सरकार की निरंकुशता पर रोक लग जाती है।

(7) राजनीतिक नेताओं की भर्ती व चयन (Recruitment and Selection of Leaders) :- राजनीतिक दल एक ऐसा संगठन होता है जो अपने लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए अपने पदाधिकारियों, नेताओं व सदस्यों की भर्ती व चयन भी करता है। निश्चित समय के बाद राजनीतिक दलों के संगठनात्मक चुनाव होते हैं जिनमें योग्य व्यक्तियों को संगठन में भर्ती करके कुछ संगठनात्मक कर्तव्य सौंपे जाते हैं। वे नेतागण ही आगे चुनावों में जीतकर सरकार बनाते हैं।

(8) सत्ता का वैधीकरण (Liegitimization of Authority) :- लोकतन्त्र में नियत समय के बाद चुनाव होते रहते हैं। चुनाव ही सत्ता के वैधीकरण का प्रमुख साधन है। इस वैधीकरण को राजनीतिक दल अमली जामा पहनाते हैं। चुनावों में राजनीतिक दलों के माध्यम से सत्ता के वैधीकरण की परीक्षा हो जाती है। निरंकुश शासन व्यवस्थाओं में भी चुनावों का दिखावा सत्ता के वैधीकरण का ही प्रयास होता है। सत्ता का वैधीकरण ही राजनीतिक व्यवस्था की स्थिरता व विकास

का प्रमुख साधन होता है।

(9) समाज का एकीकरण (Integration of Society) :- प्रत्येक समाज में अनेक हित समूह होते हैं जो अनेक वर्गों का प्रतिनिधित्व करते हैं। हित समूहों से राजनीतिक दलों का गहरा सम्बन्ध होता है। समाज के विभिन्न वर्गों की मांगें हित समूहों द्वारा या प्रत्यक्ष रूप से राजनीतिक दलों के पास पहुंचती रहती है। यदि इन मांगों की अनदेखी कर दल जाए तो समाज में विघटन की स्थिति पैदा हो सकती है ओर राजनीतिक व्यवस्था को भी अस्थायित्व का खरा उत्पन्न हो सकता है। हित समूहों द्वारा सांठ-गांठ करके राजनीतिक दल ही समाज के विभिन्न वर्गों के हितों को एक सूत्र में बंधे रहने का प्रयास भी करते हैं। राजनीतिक दलों की यह भूमिका राजनीतिक व्यवस्था की सुरक्षा नली मानी जाती है। हितों का समूहीकरण करके सामाजिक और सांस्कृतिक विकास में राजनीतिक दलों ने अनेक अवसरो पर भारतीय लोकतन्त्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। सार रूप में तो यह कहना गलत नहीं है कि राजनीतिक दल जनता को जनता से जोडते हैं जो समाज की एकता का मूल मन्त्र है।

(10) सरकार के विभिन्न अंगों में समन्वय करना (To create harmony among different organs of Government) :- लोकतन्त्र में कार्यपालिका तथा विधायिका के बीच में तालमेल रखना भी राजनीतिक दल महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। अमेरिका में अध्यक्षात्मक सरकार में शक्तियों के विभाजन क खतरे से जनता को, कार्यपालिका तथा विधायिका को निकट लाकर, बचाने में राजनीतिक दलों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। संसदीय सरकार में तो राजनीतिक दलों की समन्वयकारी भूमिका और अधिक होती है। बहुमत रहने के कारण विधायिका और कार्यपालिका पर एक ही दल का नियन्त्रण बना रहने के कारण समन्वय कायम करने में राजनीतिक दल को अधिक सुविधा रहती है। संघात्मक शासन में यही कार्य केन्द्र और राज्य या इकाइयों में तालमेल रखने के लिए राजनीतिक दलों द्वारा ही किया जाता है।

(11) आधुनिकीकरण के उपकरण (Tools of Modernization) :- राजनीतिक दल राजनीतिक व्यवस्था की परम्परागत शक्तियों को आधुनिकीकरण क साथ जोडने का भी महत्वपूर्ण कार्य करते हैं। विकासशील और विकसित देशों में राजनीतिक दल एक संयोजक का काम करते हैं। समाज के मूल्यों में आए बदलाव के प्रति राजनीतिक दल पूरी तरह सचेत होते हैं। परम्परागत मूल्यों को बनाए रखकर भी आधुनिकीकरण की दिशा में राजनीतिक समाज को ले जाने में महत्वपूर्ण कार्य करते हैं।

(12) सामाजिक कल्याण (Social Welfare) :- आधुनिक युग में राजनीतिक पक्ष सामाजिक कल्याण में भी अहम् भूमिका निभाते हैं। देश में अकाल, युद्ध, महामारी आदि की समस्याओं से निजात दिलाने के लिए विभिन्न राजनीतिक दल सहायता कार्यक्रम भी चलाते हैं। राजनीतिक दल गरीबी, निरक्षरता, अज्ञानता, दहेज प्रथा जैसी सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध भी आन्दोलन करते रहते हैं। भारत में राजनीतिक दलों द्वारा समाज-कल्याण की भूमिका अन्य देशों से आगे है। भारत में गुजरात के कच्छ क्षेत्र में आए भूकम्प के समय, सूरत शहर में प्लेग के समय, राजनीतिक दलों ने प्रभावग्रस्त इलाकों का दौरा करके अपनी देख-रेख में अनेक सहायता कार्यक्रम चलाए थे। इस प्रकार के कार्य अन्य देशों में भी राजनीतिक दलों द्वारा किए जाते रहे हैं।

उपरोक्त विवेचन के बाद कहा जा सकता है कि राजनीतिकदल लोकतन्त्र की रीड़ की हड्डी है। राजनीतिक दलों के बिना न तो लोकतन्त्र का संचालन सम्भव है और न ही जनता के हितों की सुरक्षा। लोकतन्त्र के साथ-साथ प्रत्येक राजनीतिक समाज में दलों की भूमिका काफी महत्व की होती है। राजनीतिक व्यवस्था को गति देने तथा समाज को आधुनिक बनाने में राजनीतिक दलों का ही योगदान है। इसी कारण आज दलीय व्यवस्था अधिक लोकप्रियता प्राप्त करती जा रही है। लोकतन्त्रीय शासन को तो दलीय शासन की संज्ञा दी जाने लगी है। जनमत का निर्माण करने तथा राजनीतिक चेतना को जागृत करने में राजनीतिक दलों की जो भूमिका है, वह अन्य किसी साधन में सम्भव नहीं है। सत्य तो यह है कि राजनीतिक दलों के बिना न तो लोकतन्त्र की ही कल्पना की जा सकती है और न ही सरकार की। अतः लोकहित के लिए राजनीतिक दल ही आधुनिक समय में एकमात्र साधन है और जनता और सरकार को जोडने वाली कड़ी है।

दलीय-व्यवस्थाओं का वर्गीकरण
(Classification of Party Systems)

आधुनिक समय में दल-व्यवस्थाओं का राजनीतिक समाज में महत्वपूर्ण स्थान है। विश्व का शायद ही कोई ऐसा देश हो जहा

दल नहीं है। विश्व के सभी देशों में किसी न किसी रूप में दलीय प्रणाली अवश्य विद्यमान है। राजनीतिक व्यवस्था के स्वरूप व संरचना तथा रजानीतिक दलों की प्रकृति, उद्देश्यों, संरचना आदि के आधार पर विश्व में अनेक दलीय-प्रणालियां विद्यमान हैं। अनेक विद्वानों ने राजनीतिक दलों की विशेषताओं, दलों के पारस्परिक सम्बन्ध, दल का इतिहास, राजनीतिक व्यवस्था की संरचना, सामाजिक संरचना व संस्कृति, दलों की विचारधारा, दलों की संख्या, दलों के संगठन आदि के आधार पर दलीय व्यवस्थाओं का अनेक भागों में वर्गीकरण किया है। एलेन बाल ने दलीय-व्यवस्थाओं को (i) अस्पष्ट द्विदलीय पद्धति या (ii) सुस्पष्ट द्विदलीय पद्धतियां (iii) कार्यवाहक बहुदलीय पद्धतियां (iv) अस्थिर बहु-दलीय पद्धतियां (v) प्रभावी दल पद्धतियां (vi) एकदलीय पद्धतियां तथा (vii) सर्वाधिकारी एक दलीय पद्धतियां, सात भागों में बांटा है। आमण्ड ने दलीय व्यवस्था को सत्तावादी, गैर-सत्तावादी, प्रतिस्पर्धात्मक दो दलीय तथा प्रतिस्पर्धात्मक बहुदलीय में बांटा है। लॉ पालोम्बरा तथा वीनर ने दल प्रणालियों को प्रतियोगी तथा अप्रतियोगी दल प्रणालियां दो भागों में बांटा है। जैम्स जप ने दलीय व्यवस्था को (i) अस्पष्ट द्विदलीय (ii) स्पष्ट द्विदलीय (iii) बहुदलीय (iv) वर्चस्ववादी (v) उदार एक-दलीय (vi) संकीर्ण एक दलीय (vii) सर्वाधिकारवादी व्यवस्थाओं में बांटा है। आज अनेक विद्वानों ने दलों की संख्या के आधार पर भी दलीय-व्यवस्थाओं को तीन भागों में बांटकर उनके उपवर्गों के अन्तर्गत उपरोक्त सभी दल-व्यवस्थाओं को समेट दिया है। आज भी मोरिस डुवेरजर के त्रिस्तरीय वर्गीकरण को ही प्रमुख स्थान प्राप्त है। इस त्रिस्तरीय वर्गीकरण में दलों की संख्या के आधार पर दलीय-व्यवस्थाओं को निम्नलिखित तीन भागों बांटा गया है :-

(1) एकदलीय प्रणाली (Single Party System)

(2) द्विदलीय प्रणाली (Bi-Party System)

(3) बहु-दलीय प्रणाली (Multi-Party System)

(1) एकदलीय प्रणाली

(Single Party System)

एकदलीय प्रणाली ऐसी राजनीतिक व्यवस्था है जिसमें शासन का सूत्र एक ही राजनीतिक दल के हाथों में रहे। कर्टिस ने इसको परिभाषित करते हुए कहा है-"एकदलीय पद्धति की यह विशेषता है कि इसमें सत्तारूढ़ दल का या तो सभी अन्य गुटों पर प्रभुत्व होता है जो सभी राजनीतिक विरोधों को अपने में समा लेने का प्रयास करता है, या वह बहुत ही अतिवादी स्थिति में उन सभी विरोधी गुटों का दमन कर देता है जिन्हें प्रतिक्रान्तिकारी या शासन के प्रति तोड़फोड़ करने वाला दल समझा जाता है, क्योंकि उनमें राष्ट्रीय इच्छा को विभाजित करने वाली शक्तियां होती हैं।" इस व्यवस्था के अन्तर्गत केवल एक ही दल को कार्य करने की अनुमति प्राप्त होती है और सरकार पर उसी का वर्चस्व लम्बे समय तक भी बना रह सकता है। यह व्यवस्था सर्वाधिकारवादी और लोकतन्त्रीय दो प्रकार की होती है। भारत में 1967 तक लोकतन्त्रीय व्यवस्था का प्रचलन रहा। अन्य दलों के होते हुए भी वहां पर केन्द्र सरकार स्वतन्त्रता के बाद 1967 तक कांग्रेस की ही रही। इस प्रकार की दल व्यवस्थाएं भारत, जापान, मैक्सिको, कीनिया, ब्राजील आदि देशों में है। इसके विपरीत सर्वाधिकारवादी एक-दलीय व्यवस्थाएं इटली, जर्मनी, पुर्तगाल, चीन, सोवियत संघ, पोलैण्ड, हंगरी, वियतनाम, उत्तरी कोरिया, क्यूबा, पूर्वी जर्मनी, बुलगारिया, चैकोस्लोवाकिया, अल्बानिया, स्पेन आदि देशों में रही है और कुछ में तो अब भी विद्यमान है।

एकदलीय प्रणाली के गुण (Merits of Single Party System) :- इस प्रणाली में निम्नलिखित गुण पाए जाते हैं :

(1) विभिन्न दलों में संघर्ष के अभाव में यह राष्ट्रीय एकता को कायम रखती है, क्योंकि सभी नागरिक एक ही विचारधारा से बंधे रहते हैं।

(2) एक ही दल की कार्यपालिका तथा मन्त्रीमण्डल होने के कारण यह स्थायी सरकार की जनक है।

(3) किसी दूसरे दल के प्रभाव के बिना इसमें सुदृढ़ व मजबूत शासन की स्थापना होती है।

(4) लम्बे समय तक एक ही सरकार के रहने के कारण इसमें दीर्घकालीन योजनाओं को लागू करना सम्भव है।

(5) सरकार के सदस्यों में पारस्परिक विरोध न होने के कारण शासन के निर्णय शीघ्रता से लिए जाते हैं जिससे शासन में दक्षता आती है।

(6) यह गुटबन्दी की कमियों से सर्वथा दूर है।

एकदलीय प्रणाली के दोष (Demerits of Single Party System) :- एक दलीय प्रणाली पर निम्नलिखित आरोप लगाए जाते हैं :-

(1) यह प्रणाली नागरिकों की स्वतन्त्रता का हनन करने वाली होने के कारण अलोकतांत्रिक है।

(2) यह प्रणाली निरंकुशता की जनक है।

(3) इसमें सभी वर्गों को प्रतिनिधित्व नहीं मिल सकता।

(4) इसमें मनुष्यों के व्यक्तित्व का विकास नहीं हो सकता।

(5) यह लोगों को राजनीतिक शिक्षा देने में असमर्थ है।

(6) इसमें विरोधी दल की सकारात्मक भूमिका की अनुपस्थिति है।

(7) इसमें चुनाव एक मात्र ढोंग है।

(8) यह बहुमत पर आधारित प्रणाली नहीं है।

उपरोक्त विवेचन के बाद कहा जा सकता है कि एकदलीय प्रणाली एक तरह से तानाशाही शासन व्यवस्था की ही परिचायक है। जिन देशों में यह विद्यमान हे, वहां नागरिकों की स्वतन्त्रता का हनन हो रहा है, अधिकारों के नाम पर नागरिकों पर कर्तव्य थोपे जा रहे हैं। इस प्रणाली की तानाशाही ने ही सोवियत संघ को बिखेर दिया था। तानाशाही के बल पर शासन को चलाना और वैधता बनाए रखने का प्रयास कदापि सफल नहीं हो सकता। जिस देश में जनतन्त्रीय भावनाओं के साथ खिलवाड़ किया जाता है, वहां पर थोड़ी सी भी ढील मिल जाने पर जनता उस शासन का तख्ता ही पलट देती है। निरन्तर शक्ति बनाए रखना ही इस शासन प्रणाली के अस्तित्व का एक मात्र आधार है। विश्व में चीन ही एकमात्र ऐसा देश है जहां यह प्रणाली लम्बे समय से कार्य कर रही है। आज आइवरी कोस्ट, केन्या, मलावी, जाम्बिया, लाइबेरिया, गिनी, सोवियत संघ, घाना आदि देशों में इस शासन प्रणाली के विनाश का उदाहरण हमारे सामने यह तर्क प्रस्तुत करता है कि जनसहभागिता के अभाव में एकदलीय प्रणालियां अधिक दिन तक चलने वाली नहीं हैं, देर-सवेर इनका अन्त अवश्यम्भावी है।

(II) द्वि-दलीय प्रणाली

(Bi-Party System)

द्वि-दलीय राजनीतिक व्यवस्था एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें शासन का सूत्र दो दलों के हाथ में रहता है। ये दोनों राजनीतिक दल इतने सशक्त होते हैं कि किसी तीसरे दल को सत्ता में नहीं आने देते। इन दो दलों के अतिरिक्त अन्य दलों के अतिरिक्त अन्य दलों की राजनीतिक व्यवस्था के सर्वोत्तम उदाहरण हैं। ब्रिटेन में लम्बे समय से कंजर्वेटिव पार्टी तथा लेबर पार्टी ही कार्यरत हैं। इसी तरह अमेरिका में लम्बे समय से ही दो दलों - डैमोक्रेटिक तथा रिपब्लिकन का वर्चस्व है। इंग्लैण्ड में साम्यवादी दल तथा उदारवादी दल भी हैं, लेकिन उनका कोई महत्व नहीं है। अमेरिका और ब्रिटेन में इन दो दलों को छोड़कर कभी किसी अन्य दल को सरकार बनाने का अवसर नहीं मिला है। इनमें से एक दल तो सत्तारूढ़ रहता है, जबकि दूसरा दल अल्पमत में होने के कारण विरोधी दल की भूमिका अदा करता है। राजनीतिक शक्ति का द्वि-दलीय विभाजन होने के कारण ही इसे द्वि-दलीय प्रणाली कहा जाता है। बेल्जियम, आयरलैण्ड तथा लकजमबर्ग, पश्चिमी जर्मनी, कनाडा आदि देशों में भी द्वि-दलीय व्यवस्थाएं ही प्रचलित हैं।

द्वि-दलीय प्रणाली के गुण (Merits of Bi-Party System) :- इस प्रणाली के निम्नलिखित गुण हैं :-

(1) इसमें सरकार स्थिर होती है, क्योंकि इसमें मन्त्रिमण्डल और विधानमण्डल दोनों में एक ही दल का बहुमत होता है। कठोर दलीय अनुशासन के कारण न तो मन्त्रिमण्डल के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव पास किया जा सकता है और न ही समय पूर्व चुनाव कराए जा सकते हैं।

(2) इसमें सरकार बहुमत पर आधारित होने के कारण अधिक दृढ़ या शक्तिशाली होती है। इसी कारण अपनी नीति को भी आसानी से लागू कर सकती है। बिलों पर वाद-विवाद करते समय मन्त्रिमण्डल को बहुमत के कारण अधिक कठिनाई से बिल पास करवाने नहीं पड़ते। प्रत्येक बिल सरलता से पास हो जाता है।

(3) इसमें स्थायी सरकार होने के कारण दीर्घकालीन योजनाएं लागू की जा सकती हैं और नीति को भी प्रभावी रखा जा

सकता है।

(4) इसमें सरकार अच्छे या बुरे शासन के लिए पूर्ण रूप से उत्तरदायी ठहराया जा सकता है, क्योंकि मन्त्रीमण्डल में एक ही दल के सदस्य होते हैं। अतः यह प्रणाली उत्तरदायी सरकार को जन्म देती है।

(5) यह जनमत की भावना पर आधारित प्रणाली है। इसमें जनता प्रत्यक्ष रूप से सरकार का चुनाव करती है। जनता की इच्छा के अनुसार ही कोई राजनीतिक दल सत्तारूढ़ होता है।

(6) स्पष्ट बहुमत के कारण इसमें सरकार बनाना आसान होता है। इसी कारण यह बहुदलीय प्रणाली की तरह भ्रष्ट तरीकों से सरकार बनाने के दोषों से परे है।

(7) जनता को राजनीतिक शिक्षा भी मिलती है।

(8) इसमें संगठित विरोधी दल होता है जो सरकार की रचनात्मक आलोचना करके सरकार को जनता की इच्छा का ध्यान दिलाता रहता है। इससे सरकार जन-इच्छा के प्रति जागरूक बनी रहती है।

(9) इसमें निरंकुशता की भावना नहीं है। शासन का संचालन जनतन्त्रीय भावनाओं को ध्यान में रखकर ही किया जाता है।

द्वि-दलीय प्रणाली के दोष (Demerits of Bi-Party System) :- यद्यपि द्वि-दलीय प्रणाली स्थायी और उत्तरदायी सरकार की स्थापना करती है, लेकिन फिर भी इस प्रणाली की आलोचना की जाती है। इसकी आलोचना का आधार निम्नलिखित अवगुण हैं :-

(1) इसमें मन्त्रिमण्डल की तानाशाही की स्थापना हो जाती है, क्योंकि विधानमण्डल में मन्त्रिमण्डल का बहुमत रहने के कारण हर बिल को पास कराने में सुविधा रहती है।

(2) इसमें विधामण्डल मन्त्रिमण्डल के हाथों का खिलौना बनकर रह जाता है, क्योंकि बहुमत के नशे में मन्त्रिमण्डल विधानमण्डल पर हर अनुचित व उचित दबाव डाल सकता है।

(3) इसमें मतदाताओं की स्वतन्त्रता सीमित हो जाती है, क्योंकि उनके सामने दो ही दल होते हैं, जिनमें से एक को ही वे चुन सकते हैं।

(4) इसमें सभी वर्गों को उचित प्रतिनिधित्व नहीं मिलता, क्योंकि जटिल सामाजिक संरचना में जन-प्रतिनिधित्व के लिए कई दलों का होना आवश्यक होता है।

(5) इससे सारा देश दो परस्पर विरोधी गुटों या विचारधाराओं में बंट जाता है, जिससे राष्ट्रीय एकता को खतरा उत्पन्न हो सकता है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि इस प्रणाली में निर्वाचकों की स्वतन्त्रता सीमित हो जाती है और संसद की स्थिति मन्त्रिमण्डल के हाथों में एक खिलौने जैसी हो जाती है। लेकिन फिर भी यह प्रणाली सर्वोत्तम मानी जाती है। संसदीय व अध्यक्षात्मक सरकारों की सफलता के लिए इसका होना बहुत आवश्यक है। स्थिर प्रशासन व उत्तरदायी सरकार के रूप में आज यह प्रणाली अमेरिका और ब्रिटेन में सफलतापूर्वक कार्य कर रही है। अतः निःसंदेह रूप से यह प्रणाली बहुत ही महत्वपूर्ण है।

(III) बहुदलीय प्रणाली

(Multi-Party System)

जिस देश में दो से अधिक राजनीतिक दल ऐसी स्थिति में हों कि चुनाव में उनमें से किसी को स्पष्ट बहुमत न मिल पाए, वहां बहुदलीय प्रणाली मिलती है। इसमें सरकार एक दल की भी बन सकती है और कई दलों को मिलाकर सांझा सरकार भी बन सकती है। सांझा सरकार बनने का प्रमुख कारण यह होता है कि इसमें किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं होता, क्योंकि वोट विभिन्न हितों का प्रतिनिधित्व करने वाली पार्टियों में वितरीत हो जाते हैं। ऐसी दल प्रणाली विश्व के अनेक देशों में पाई जाती है। भारत इसका सर्वोत्तम उदाहरण है। यह दल प्रणाली स्थायी और अस्थायी दो तरह की होती है। स्थायी बहुदलीय प्रणाली वह है जिसमें अनेक दल सत्ता के लिए संघर्ष तो करते हैं, लेकिन उनका ध्येय सरकार चलाने के साथ-साथ यह भी रहता है कि राजनीतिक व्यवस्था में अस्थिरता न आए। स्विटजरलैण्ड में ऐसी ही प्रणाली है। वहां पर सोशल डैमोक्रेटस, रेडिकल डैमोक्रेटस, लिब्रल डैमोक्रेटस और साम्यवादी दल राजनीतिक विघटन की स्थिति पैदा किए बिना ही सत्ता प्राप्ति का

संघर्ष करते हैं। इसके विपरीत अस्थायी बहुदलीय प्रणाली में राजनीतिक अस्थिरता की राजनीतिक दलों को कोई चिन्ता नहीं होती है, उनका लक्ष्य तो सत्ता प्राप्त करना है। भारत तथा फ्रांस में ऐसी ही प्रणालियां हैं।

बहुदलीय प्रणाली के गुण (Merits of Multi-Party System) :- बहुदलीय प्रणाली में निम्नलिखित गुण पाए जाते हैं :-

(1) इसमें सभी वर्गों को प्रतिनिधित्व मिल जाता है, क्योंकि विभिन्न वर्गों के हितों का प्रतिनिधित्व करने वाले अनेक राजनीतिक दल राजनीतिक व्यवस्था में विद्यमान रहते हैं।

(2) इसमें जन-साधारण को विचारों की स्वतन्त्रता प्राप्त होती है और राष्ट्र दो विरोधी गुटों या विचारधाराओं में नहीं बंटता।

(3) इसमें मतदाताओं को चुनाव की स्वतन्त्रता रहती है। वे किसी एक दल को अच्छा मानकर उसका समर्थन कर सकते हैं।

(4) इसमें मन्त्रिमण्डल की तानाशाही स्थापित नहीं होती, क्योंकि कई बार कई दल मिलाकर ही सरकार बनती है, जिसका संसद में मिला जुला ही बहुमत रहता है।

(5) इसमें विधानमण्डल मन्त्रिमण्डल के हाथों का खिलौना नहीं बनता, क्योंकि इसमें मन्त्रिमण्डल को विधानमण्डल में एक दल के बहुमत पर निर्भर न रहकर विधानमण्डल के ही बहुमत पर निर्भर रहना पड़ता है।

(6) इसमें सरकार जनता के प्रति उत्तरदायी होती है। यदि सरकार जनहित विरोधी कार्य करती है तो वह समय से पूर्व भी हट सकती है।

(7) इसमें स्थानीय स्वशासन की भावना का विकास होता है।

(8) इस प्रणाली का स्वरूप प्रजातांत्रिक है।

(9) इसमें राष्ट्रीय सरकार की परिकल्पना सम्भव है।

बहुदलीय प्रणाली के दोष (Demerits of Multi-Party System) :- इस प्रणाली में निम्नलिखित अवगुण पाये जाते हैं :-

(1) इसमें सरकार कई दलों से मिलकर बनी होने के कारण निर्बल और अस्थायी होती है, जो किसी भी समय टूट सकती है।

(2) इसमें सरकार दीर्घकालीन योजनाओं को लागू नहीं कर सकती और न ही दृढ़ नीतियों का निर्माण करके उन्हें लागू कर सकती है।

(3) इसमें सरकार का निर्माण करने में काफी मुसीबतें आती हैं। सरकार बनाने के लिए विभिन्न राजनीतिक दलों में जो सौदेबाजी होती है, वह राजनीतिक भ्रष्टाचार का ही उन्नत रूप है।

(4) इसमें दल-बदली को बढ़ावा मिलता है और अनुशासनहीनता बढ़ती है।

(5) इसमें प्रायः संगठित विरोधी दल का अभाव रहता है।

(6) इसमे विभिन्न दलों के सदस्यों को मिलाकर मन्त्रिमण्डल का निर्माण होता है जो दक्ष शासन का निर्माण नहीं कर सकता।

(7) इसमें शासनाध्यक्ष या प्रधानमन्त्री की स्थिति बहुत कमजोर होती है। किसी एक दल द्वारा समर्थन वापिस ले लेने पर सरकार गिर जाती है।

(8) सांझा-सरकार होने के कारण इसमें उत्तरदायित्व का अभाव पाया जाता है।

(9) यह अवसरवादिता और सिद्धान्तहीनता की जनक है।

(10) यह अस्थिर सरकार की जनक होने के कारण देश पर चुनावी बोझ लादने वाली है।

उपरोक्त विवेचन के बाद कहा जा सकता है कि बहुदलीय प्रणाली किसी भी देश में अधिक सफल नहीं रही है। निर्बल व अनुत्तरदायी सरकार के रूप में इसकी निरन्तर आलोचना होती रही है। इसमें कभी भी स्थिर सरकारों का निर्माण नहीं हुआ है। यद्यपि भारत में वर्तमान वाजपेयी सरकार ने अपना पूरा कार्यकाल निकाला है। सांझी-सरकार होते हुए भी ऐसी स्थिरता देना अपने आप में एक अनूठा उदाहरण है। लेकिन फ्रांस में 1870 से 1914 तक 88 सरकारों का निर्माण हुआ। बहुदलीय प्रणाली का इतिहास बताता है कि सांझा सरकारें कभी अधिक सफल नहीं रही हैं। ऐसे अवसर बहुत ही कम आए हैं जब बहुदलीय

प्रणाली में किसी एक दल को स्पष्ट बहुमत मिलने पर सरकार बनाई गई हो। भारत में 1967 तक ही बहुदलीय प्रणाली अधिक सफल रही है। आज कम ही देश हैं जहां बहुदलीय प्रणाली के अन्तर्गत स्थिर सरकारों का निर्माण हुआ है। यदि बहुदलीय प्रणाली के दोषों में से कुछ का भी निवारण कर दिया जाए तो यह प्रणाली स्थिर सरकारों के मार्ग पर चल सकती है। भारतीय संसद ने हाल ही में दल-बदल विरोधी कानून पास करके निर्धारित अवधि तक किसी भी विधायक को विधानमण्डल में दूसरे दल का प्रतिनिधित्व करने पर रोक लगा दी है। इससे सांझा सरकार का आधार मजबूत होने के प्रबल आधार हैं और बहुदलीय प्रणाली की सफलता के भी। लेकिन वर्तमान में तो यह अस्थिर सरकारों की जनक ही है।

दल-प्रणाली का मूल्यांकन

(Evaluation of Party System)

दलीय-व्यवस्था का उपरोक्त विवरण इस बात की तरफ हमारा ध्यान आकृष्ट करता है कि प्रजातन्त्रीय देशों में तो दल-प्रणाली का स्वरूप लोकतन्त्रीय है, लेकिन सर्वाधिकारवादी देशों में राजनीतिक दल अलोकतान्त्रिक तरीके से काम करते प्रतीत होते हैं। कुछ विद्वानों ने तो लोकतन्त्र सहित सभी रजानीतिक व्यवस्थाओं के संचालन के लिए राजनीतिक दलों के महत्व पर विचार किया है। मुनरो ने तो दलीय शासन को ही लोकतन्त्रीय शासन कहा है। मार्क्सवादियों की दृष्टि में दलीय प्रजातन्त्र विकृत प्रजातन्त्र है। सर्वोदयी विचारधारा दल-विहीन प्रजातन्त्र की बात करती है। इस तरह दल-प्रणाली राजनीतिज्ञों की आलोचना व प्रसंशा का बराबर पात्र रही है। दल-प्रणाली प्रसशां उसके अन्तर्निहित गुणों के आधार पर की जाती है और आलोचना उसके दोषों के आधार पर।

दल-प्रणाली के गुण

(Merits of Party System)

दल प्रणाली में निम्नलिखित गुण पाए जाते हैं :-

(1) लोकतन्त्र की रक्षक (Safeguard for Democracy) :- लोकतन्त्र में दलों का बहुत महत्व होता है। जनता को राजनीतिक शिक्षा देने व उनमें राजनीतिक चेतना का विकास करने, जनता को सार्वजनिक नीति के निर्माण में भागीदार बनाने, जनमत का निर्माण करने, चुनाव लड़ने, सरकार बनाने तथा विपक्षी दल के रूप में सरकार की आलोचना करने का कार्य लोकतन्त्र में राजनीतिक दल ही करते हैं। यदि राजनीतिक दल न हों तो यह पता लगाना कठिन हो जाएगा कि किस व्यक्ति को विधानमण्डल में बहुमत प्राप्त है। यदि बहुमत का पता न होगा तो राष्ट्रपति सरकार बनाने के लिए किसी आमन्त्रित करेगा। इसलिए लोकतन्त्र के मूल सूत्र की दृष्टि से कार्य करने के लिए सरकार को राजनीतिक दलों की ही सहायता लेनी पड़ती है। लीकॉक का कथन सही है-"लोकतन्त्र और दल प्रणाली में कोई विरोध नहीं है, वरन् उसी से लोकतन्त्र सम्भव है।" अतः सरकार को व्यवहारिक रूप देकर लोकतन्त्र की रक्षा राजनीतिक दल ही करते हैं।

(2) दृढ़ सरकार की स्थापना में सहायक (Helpful in the establishment of strong Government) :- राजनीतिक दल मतदाताओं को संगठित करके चुनावों में बहुमत प्राप्त करके सरकार बनाते हैं। जिस दल की सरकार होती है, वह सदा बहुमत बनाए रखने की लिए जन-भावना का ख्याल रखता है। जब सरकार को पता होता है कि उसे विधानमण्डल में बहुमत प्राप्त है तो वह निर्भय होकर नीतियों का निर्माण करके उन्हें लागू कर सकती है। यदि जनमत बिखरा हुआ हो और उसे संगठित करने वाले राजनीतिक दल न तों तो सरकार बनाना और चलाना दोनों कठिन होता है। दलीय अनुशासन की सुदृढ़ सरकार का आधार है। राजनीतिक दल ही सरकार को शक्ति प्रदान करते हैं और उसकी वैधता की परीक्षा चुनावों में करा देते हैं। वास्तव में राजनीतिक दल ही जनमत को संगठित करके स्थिर सरकार को जन्म देत हैं।

(3) जनमत का निर्माण (To mould Public Opinion) :- लोकतन्त्र में बहुमत का शासन होता ह। इसलिए जनमत को संगठित करना बहुत जरूरी होता है। इस संगठित जनमत का निर्माण करने में राजनीतिक दल ही बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसके लिए वे जनता के बीच में विभिन्न कार्यक्रम लेकर जाते हैं। पत्र-पत्रिकायें छपवाते हैं, नए नेताओं की भर्ती करते हैं, कर्मठ सदस्यों को संगठन में लेते हैं, विचार-गोष्ठियों का आयोजन करते हैं; सरकार की नीतियों से जनता को परिचित करवाते हैं और सरकार की गलत नीतियों पर आलोचना करने के लिए जनमत की सहायता लेते हैं। इस तरह वे बिखरी हुई जनता को सामान्य सिद्धान्त पर सहमति के निकट लाकर रख देते हैं।

(4) सरकार पर नियन्त्रण (Control over Government) :- लोकतन्त्रीय देशों में राजनीतिक दलों का भविष्य लोकमत पर टिका होता है। इसलिए वे सरकार की समस्त गतिविधियों पर नजर रखते हैं। विरोधी दल के रूप दल ही सरकार की निरंकुशता रोकते हैं। सरकार की गलत नीतियों की आलोचना करके वे सरकार को चेता देते हैं और सरकार को मनमानी नहीं करने देते हैं। संसद सत्र के दौरान राजनीतिक दलों के द्वारा ही सरकार की गलत नीतियों पर हंगामा किया जाता है और उनमें बदलाव लाने के लिए बाध्य भी कर दिया जाता है। भारत में सांझा-सरकार होने के कारण इस नियन्त्रण में कुछ कमी अवश्य आ जाती है, क्योंकि संगठित विरोधी दल का प्रायः अभाव ही रहता है। लेकिन यह बात तो सत्य है कि लोकतन्त्र में प्रत्येक राजनीतिक दल जनता के भावी कोप से बचने के लिए जन विरोधी कार्यों से दूर ही रहता है।

(5) जनता को राजनीतिक शिक्षा देकर, राजनीतिक चेतना पैदा करना (To Create Political Consciousness by imparting political education to the people) :- राजनीतिक दल जनता की उदासीनता दूर करके उसमें सरकार के प्रति रुचि पैदा करते हैं। इसके लिए जनता के बीच में जाते हैं और आम जनता का ध्यान राष्ट्रीय समस्याओं की तरफ खींचते हैं। सरकार की नीति पर जन-सहमति प्राप्त करने के लिए वे नीति पर आने तर्क रखते हैं। चुनावी प्रचार के द्वारा राजनीतिक दल आम जनता को भी राजनीति में जोड़ लेते हैं। इससे लोगों में देश की समस्याओं के प्रति चिन्ता उत्पन्न होती है और राजनीतिक चेतना का विकास होता है।

(6) जनता और सरकार के बीच कड़ी कार्य करना (As a link between the People and the Government) :- राजनीतिक दल जनमत और सरकार को जोड़ते हैं। सत्तारूढ़ दल जनता को अपने पक्ष में करने के लिए अपनी नीतियों की प्रसंशा करता है और जनता को सरकार का सहयोग करने की अपील करता है। अपनी नीतियों को जनता तक पहुंचाने के साथ-साथ जनता की समस्याओं को भी सरकार तक पहुंचाते हैं और दूर करवाने के प्रयास भी करते हैं। एकात्मक सरकार में केन्द्रीय सरकार को प्रादेशिक समस्याओं से राजनीतिक दल ही परिचित कराते हैं। इस तरह राजनीतिक दल ही जनता और सरकार को जोड़ते हैं।

(7) राष्ट्रीय एकता की भावना पैदा करना (To create the spirit of National Unity) :- लावेल का कहना है कि राजनीतिक दल विचारों के व्यापारी हैं। एक दल में अनेक धर्मों, भाषाओं, वर्गों, जातियों के लोग होते हैं। साथ रहकर कार्य करने से उनमें आपसी एकता बढ़ती है और पारस्परिक द्वेष की भावना का अन्त होता है। जो दल आर्थिक और राजनीतिक आधार पर बने होते हैं उनमें राष्ट्रीय एकता उत्पन्न करने की शक्ति बहुत ज्यादा होती है। समान राजनीतिक और आर्थिक समस्याओं को लेकर आन्दोलन करने से राष्ट्रीय एकता मजबूत होती है।

(8) सामाजिक और आर्थिक सुधार (Social and Economic Reforms) :- राजनीतिक दल राजनीतिक समस्याओं के साथ-साथ सामाजिक व आर्थिक समस्याओं के सुधार के प्रयास भी करते हैं। राजनीतिक दलों का ध्येय आधुनिकीकरण को क्रियान्वित करना होता है। इसके लिए वे परम्परागत मूल्यों को छोड़ने का प्रयास करना चाहते हैं और प्रचलित गलत रीति-रिवाजों को समाप्त करना चाहते हैं। भारत में छुआछूत के विरुद्ध कांग्रेस ने ही जोरदार आवाज उठाई थी। जाति-प्रथा, जमींदारी प्रथा, दहेज प्रथा, नारी शिक्षा, नारी की स्वतन्त्रता आदि समस्याओं पर राजनीतिक दलों ने ही आन्दोलन चलाए हैं।

(9) कार्यपालिका तथा विधायिका में सहयोग पैदा करना (To create harmony between Legislature and Executive) :- गिलक्राइस्ट का कहना है कि "दलीय-व्यवस्था ने ही अमेरिकन संविधान की जटिलता को तोड़ा है।" इसका तात्पर्य यह है कि अमेरिका में शक्ति पृथक्करण के कारण कार्यपालिका और विधायिका स्वतन्त्र शक्तियों की स्वामी होने के कारण अपने क्षेत्रों में सर्वोच्च हैं। इससे प्रशासनिक एकरूपता का ह्रास होता है। अमेरिका में कार्यपालिका और विधायिका को साथ चलकर कार्य करने के लिए राजनीतिक दलों ने ही तैयार किया है। दलों को समन्वयकारी भूमिका सरकार की सफलता के लिए आवश्यक मानी जाती है। कार्यपालिका और विधायिका का आपसी सहयोग ही अच्छे शासन का आधार है। संसदीय सरकार में एक दल का विधायिका व मन्त्रीमण्डल में बहुमत रहने पर सरकार ठीक कार्य करती रहती है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि दल व्यवस्था के कारण ही नागरिकों में राजनीतिक चेतना का विकास होता है; शासन में लोचशीलता आती है; अच्छे कानूनों का निर्माण होता है; जनता की इच्छा का संचालन होता है; राष्ट्रीय एकता में वृद्धि होती है; सामाजिक-आर्थिक विकास होता है; सभी वर्गों को शासन में प्रतिनिधित्व होता है और सरकार निरंकुश होने से बची रहती

है। सार रूप में यह कहना गलत नहीं होगा कि दल-पद्धति ही सच्चे लोकतन्त्रीय शासन का मेरुदण्ड है।

दल-प्रणाली के दोष

(Demerits of Party System)

दल प्रणाली के बारे में अनेक आलोचकों ने निम्नलिखित आपत्ति उठाई है :-

(1) दल प्रणाली समाज को विभिन्न वर्गों व गुटों में बांटकर राष्ट्रीय एकता को भंग करती है। इससे देश भक्ति की भावना कम होने लगती है।

(2) दल प्रणाली लोगों को दलीय-स्वार्थों से बांधकर राष्ट्रीय हितों को नुकसान पहुंचाती है।

(3) कठोर दलीय अनुशासन व्यक्ति की स्वतन्त्रता को कुचल देता है।

(4) राजनीतिक दल भ्रष्टाचार के वाहक हैं। बहुमत हासिल करके सरकार बनाने के चक्कर में जनता को तरह तरह के प्रलोभन देकर वोट खरीदे जाते हैं। इससे समाज में नैतिकता का पतन होता है।

(5) बहुदलीय प्रणाली के कारण राजनीतिक अस्थिरता पैदा होती है और संकटकाल में भी सरकार दृढ़ निर्णय नहीं ले पाती, क्योंकि विरोधी दल प्रायः टकराव की स्थिति में ही रहते हैं।

(6) राजनीतिक दल समाज में साम्प्रदायिकता का जहर फैलाते हैं।

(7) राजनीतिक दल देश व समाज का संकीर्ण क्षेत्रीय विभाजन कर देते हैं। क्षेत्रवाद ही राष्ट्रीय एकता के मार्ग में सबसे बड़ा खतरा होता है।

(8) विरोधी दल आलोचना में ही अधिक समय नष्ट करते हैं, इससे जनहित की हानि होती है। कई बार तो वे जनता को इस कदर गुमराह कर देते हैं कि उससे समाज के विघटन की स्थिति पैदा हो जाती है।

(9) चुनाव जीतने के बाद राजनीतिक दल नागरिक हितों की बलि दे देते हैं। उनकी सर्वोच्च प्राथमिका तो अपने सदस्यों को खुश करने की होती है।

(10) दल-प्रणाली में आम जनता की बजाय पूंजीपति वर्ग का ही अधिक फायदा होता है। सरकार पूंजीपति वर्ग की कठपुतली की तरह ही कार्य करती है।

(11) दल-पद्धति योग्य व ईमानदार व्यक्तियों को शासन से दूर कर देती है। बहुदलीय व्यवस्था में तो प्रायः धूर्त व्यक्ति ही सत्ता में पहुंचते हैं।

(12) इससे समाज में अवसरवादिता, लालचीपन, बेईमानी, घूसखोरी जैसे अनैतिक साधनों को अधिक शक्ति मिलने लगती हैं, क्योंकि राजनीतिक दल अनैतिकता के सबसे बड़े पोषक होते हैं।

उपरोक्त विवेचन के बाद कहा जा सकता है कि दल-प्रणाली में अनेक दोष हैं, लेकिन फिर भी दलों को समाज से समाप्त करना न तो सम्भव है और न ही उचित। आज सम्पूर्ण राजनीतिक व्यवस्था का ताना-बाना दल-प्रणाली पर ही आधारित है। दलों के बिना न तो देश का भला हो सकता है और न समाज का। आज आवश्यकता इस बात की है कि दलीय व्यवस्था के दोषों को दूर किया जाए। इसके लिए जनता का जागरूक होना और सरकार का दल-व्यवस्था के दोषों को हटाने के प्रति वचनबद्ध होना जरूरी है। आज दल हमारे समाज का आवश्यक अंग बन चुके हैं। यह बात भी सही है कि सभी देशों में दल प्रणाली दोषयुक्त नहीं है। अमेरिका तथा ब्रिटेन में दल-व्यवस्था का आधार काफी मजबूत है, क्योंकि वहां की जनता और सरकार इसको सफल बनाने के लिए वचनबद्ध है। भारत में दलीय-प्रणाली ने समाज को जो हानि पहुंचाई है, उसको देखकर जनता को राजनीतिक दलों से घृणा होने लगी है। भ्रष्टाचार के वाहक इन राजनीतिक दलों के लिए देश-हित एक तुच्छ वस्तु है। आज दलीय-व्यवस्था की दोषपूर्ण व्यवस्था पर देश-हित में प्रतिबन्ध लगाना अपरिहार्य है। लेकिन दल-विहीन प्रजातन्त्र की धारणा न तो सम्भव है और न ही उचित। दल समाज का अभिन्न अंग है, इसलिए इसके दोषों को दूर करके इसे समाज में बनाए रखना ही उचित है। यदि दलीय व्यवस्था के कुछ दोषों का निवारण करके इसे नए रूप में स्वीकार कर लिया जाए तो इनकी राजनीतिक प्रासंगिकता का कोई सानी नहीं हो सकता।

ब्रिटिश दल-प्रणाली
(The British Party-System)

ब्रिटिश राजतन्त्र को प्रजातन्त्रीय राजतन्त्र की दिशा में जोड़ने का प्रमुख कार्य राजनीतिक दलों द्वारा ही सम्पन्न हुआ है। आज ब्रिटिश शासन-प्रणाली में राजनीतिक दल इतनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहे हैं कि उनके बिना ब्रिटिश प्रजातन्त्र एक कदम भी आगे नहीं चल सकता। इसी कारण आज अनेक राजनीतिक विद्वान दल-व्यवस्था को ब्रिटिश राजनीतिक जीवन की आधारशिला मानते हैं। जेनिंग्स का कहना है-"ब्रिटिश शासन राजनीतिक दलों से ही प्रारम्भ होता है और राजनीतिक दलों में ही लुप्त हो जाता है।" ब्रिटेन में राजनीतिक दलों की महत्वपूर्ण स्थिति संसदीय शासन प्रणाली के कारण ही है क्योंकि संसदीय सरकार दलों के बिना नहीं चल सकती। संसदीय सरकार में विरोधी दल का अस्तित्व संसदीय शासन को नए आयाम प्रदान करता है। इसी कारण आज भी ब्रिटेन में दल-प्रणाली का महत्व बरकरार है।

ब्रिटेन में राजनीतिक दलों की उत्पत्ति व विकास
(Origin and Development of Political Parties in Britain)

ब्रिटेन में राजनीतिक दलों की उत्पत्ति व विकास का इतिहास राजतन्त्र के विकास के साथ जुड़ा हुआ है। ब्रिटिश राजतन्त्र के इतिहास में एक ऐसा युग भी है, जब सत्ता पर निरंकुश शासकों का कब्जा था। उस समय दलों की उत्पत्ति की कल्पना नहीं की जा सकती। पन्द्रहवीं सदी में ब्रिटिश राजतन्त्र का इतिहास गृहयुद्धों का इतिहास है। इन गृहयुद्धों का प्रमुख कारण राजसत्ता हासिल करना था। ब्रिटैन के इतिहास में सबसे महत्वपूर्ण गृहयुद्ध गुलाबों का युद्ध दलों की उत्पत्ति का प्रथम प्रयास माना जाता है। इस दौरान लैन्केस्टर तथा यार्क कुल के समर्थकों ने अपने अलग गुट बना लिए। इनमें लैन्केस्टर गुट के समर्थक लाल गुलाब को धारण करते थे जकि यार्क गुट के समर्थक सफेद गुलाब के समर्थक लाल गुलाब को धारण रखते थे। सत्ता के लिए लम्बे समय तक इन दोनों गुटों में चलने वाला युद्ध गुलाबों का युद्ध कहलाता है। इन दोनों गुटों को ब्रिटेन के सर्वाधिक प्राचीन दल माना जाता है। आगे चलकर राजनीतिक दलों की उत्पत्ति के वास्तविक संकेत स्टुअर्ट काल में दिखाई दिये। इस काल में राजा और संसद समर्थकों के बीच संघर्ष हुआ। जनता द्वारा राजा के विरुद्ध किया गया यह प्रथम संघर्ष था। इस संघर्ष में भाग लेने वाले राजा के समर्थक कैवेलियर कहलाए तथा संसद के समर्थक राउण्डहेड के नाम से जाने गए। इसके बाद 1688 की शानदार क्रान्ति में ब्रिटेन में दो या राजनीतिक दलों को जन्म दिया। जो लोग राजा के समर्थक थे, वे टोरी कहलाए तथा उन्होंने कवैलियर्स की परम्पराओं का ही निवर्हन किया। संसद का समर्थन करने वाले ह्विग कहलाए। जिन्होंने राउण्डहैंडस के मार्ग का ही अनुसरण किया। कालान्तर में इन दोनों दलों का स्थान अनुदार दल तथा उदार दल ने ले लिया। टोरी से अनुदार दल (Conservative Party) तथा ह्विग से उदार दल (Liberal Party) का जन्म हुआ। उदार दल 1874 तक सत्ता में रहा और 1900 तक सत्ता पर अनुदारवादियों का कब्जा रहा। 1832, 1867 तथा 1864 के सुधार अधिनियमों ने मताधिकार को उदार बना दिया जिसके परिणामस्वरूप एक नया श्रमिक दल (labour Party) उभर आया। धीरे-धीरे इस दल की भी शासन में भागीदारी हुई और उदार दल का महत्व कम होने लगा। 1924 में ब्रिटेन में प्रथम बार श्रमिक दल की सरकार बनी और उसने धीरे-धीरे उदारवादी दल का स्थान ले लिया। आज ब्रिटेन में दो ही प्रमुख दल हैं :- अनुदारवादी दल (Conservative Party) तथा श्रमिक दल (Labour Party)।

ब्रिटेन के प्रमुख राजनीतिक दल : संगठन व कार्यक्रम
(Major Political Parties of Britain : Organisation and Programmes)

(I) अनुदारवादी दल (Conservative Party) :- इस दल की उत्पत्ति टोरी दल से हुई है। यह दल क्रान्तिकारी और आमूल परिवर्तनों का विरोधी है। इसका संगठन शक्तिशाली व सुदृढ़ है। इसको संसदीय संगठन में लोक सदन में वे शामिल सभी सदस्य हैं जो इस दल के सदस्य है। इस दल का सर्वोपरि नेता ही दलीय नेता है। उसका संसद के बाहर व अन्दर दोनों जगह दल के सदस्यों पर पूरा नियन्त्रण रहता है। जब यह दल विरोधी दल का कार्य करता है तो यह नेता या दल का नेता ही छाया मन्त्रिमण्डल का निर्माण करता है। इसकी एक कार्यकारिणी समिति भी होती है। इसमें एक दल सचेतक भी होता है जो सदस्यों को अनुशासन में रखता है। लार्ड सदन में इस दल की स्थिति अधिक महत्वपूर्ण नहीं है। इस दल का सार्वजनिक संगठन ही संसदीय संगठन का आधार है। इसके सार्वजनिक संगठन में निर्वाचन क्षेत्रीय संघ सबसे निम्न इकाई है। उसके बाद प्रान्तीय

परिषद, प्रान्तीय परिषद के बाद राष्ट्रीय संगठन होता है। स्थानीय स्तर से लेकर राष्ट्रीय स्तर तक इस दल पर अध्यक्ष का ही पूरा नियन्त्रण रहता है। इसकी एक केन्द्रीय समिति या परिषद भी होती है जो दल को पदाधिकारियों का चुनाव करती है और कार्यकारिणी समिति के प्रतिवेदन पर विचार करती है। दल के संसदीय तथा प्रमुख संगठनों के कार्यकर्ता कार्यकारिणी समिति के सदस्य होते हैं। इसके अतिरिक्त इस दल का एक सामान्य उद्देश्य समिति तथा कई राष्ट्रीय समितियां भी होती हैं। दल की प्रमुख स्थानीय इकाई निर्वाचन क्षेत्रीय संघ है जो अपने क्षेत्र में दल के समर्थकों, सिद्धान्तों तथा सदस्यों का विकास अपनी कार्यकारिणी समिति के द्वारा करता है। इसके ऊपर प्रान्तीय परिषद है जो केन्द्र व स्थानीय क्षेत्र के बीच की कडी है। इंग्लैण्ड तथा वेल्स को प्रांतीय संगठन के आधार पर 12 भागों में बांटा गया है। इस संगठन पर राष्ट्रीय संगठन की केन्द्रीय परिषद का पूरा नियन्त्रण रहता है। दल के प्रत्येक संगठनात्मक स्तर पर दल का पदाधिकारी व समितियां होती हैं जिससे दलीय एकता व अनुशासन केन्द्रीयकरण के मार्ग पर चलता है। दल का लन्दन में स्थित एक केन्द्रीय कार्यालय है। इसी आधार पर प्रान्तीय कार्यालयों का गठन भी होता है। प्रत्येक स्तर पर कार्यालय संगठन के लिए एक प्रधान संचालक होता है। दलीय संगठन के बारे में सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि यह दल एक नेता के अधीन रहकर एक अनुशासनबद्ध तरीके से कार्य करता है।

दलीय कार्यक्रम या उद्देश्य :- यह दल क्रान्तिकारी परिवर्तनों का विरोधी है। इसका मुख्य झुकाव प्रथाओं, परम्परागत संस्थाओं और विचारधाराओं के संरक्षण की तरफ है। यह पूंजीवाद तथा उग्र-राष्ट्रीयता का समर्थक है। यह दल ब्रिटिश ताज के विशेषाधिकारों, राष्ट्रीय एकता, शक्तिशाली नौकरशाही, पूंजीपति वर्ग तथा कुलीन वर्ग का पक्षधर है। यह उत्पादन के साधनों के राष्ट्रीयकरण का प्रबल विरोध करता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि यह दल प्रगति-विरोधी है। यह कोई भी परिवर्तन सावधानीपूर्वक करने का पक्षधर है, आंख बन्द करके परिवर्तनों का नहीं। यह ब्रिटेन को महान शक्ति बनाने का स्वप्न संजोए हुए है। शीत युद्ध में इसने संयुक्त राज्य अमेरिका का समर्थन किया है। यह NATO सन्धि का प्रबल समर्थक है। इस दल के प्रमुख नेता चर्चिल, एन्थोनी, मैकमिलन तथा मारग्रेट थैचर रहे हैं। आज यह दल यूरोपीय एकीकरण तथा आतंकवाद का मुकाबला करने का प्रबल पक्षधर है। अब यह दल भारत-ब्रिटेन सम्बन्धों में सुधार की वकालत करने लगा है।

(II) श्रमिक दल (Labour Party) :- इस दल की स्थापना 1906 में ट्रेड यूनियन कांग्रेस से हुई है। प्रारम्भ में मार्क्सवादी भी इस दल के सदस्य थे, लेकिन बाद में वे इससे अलग हो गए। इस दल में 70 प्रतिशत सदस्य श्रमिक वर्ग में है। अपने सिद्धान्तों व कार्यक्रमों के कारण यह दल ब्रिटेन में काफी लोकप्रिय है। इस दल के संगठन में दलीय नेता की स्थिति अनुदार दल के नेता की स्थिति से कुछ भिन्न है। उसे स्वतन्त्र निर्णय लेने की बजाय दलीय सम्मेलन तथा कार्यकारिणी समिति के मार्ग-दर्शन में ही कार्य करना पडता है। इसके संसदीय संगठन में कुछ विशेष समितियां व प्रादेशिक समितियां भी हैं। विरोधी दल के रूप में यह दल एक कार्यसमिति का गठन करता है। इसके संसदीय संगठन में कुछ अनौपचारिक समूह भी शामिल होते हैं। इनमें श्रमिक संघीय समूह तथा वामपंथी समूह शामिल हैं। इसके सार्वजनिक संगठन में सबसे ऊपर एक दलीय सम्मेलन होता है जो दल के कार्य का निर्देशन व नियन्त्रण करता है। उसके बाद एक कार्यकारिणी समिति होती है जिसके द्वारा केन्द्रीय कार्यालय का संचालन व नीति निर्धारण का कार्य किया जाता है। इसका मुख्यालय अनुदार दल के केन्द्रीय कार्यालय की तरह ही होता है। मुख्यालय में एक महासचिव होता है जिसकी नियुक्ति राष्ट्रीय कार्यकारिणी समिति द्वारा की जाती है। इसके बाद इसकी क्षेत्रीय परिषदें होती हैं जो क्षेत्र विशेष में कार्य करती हैं। संगठन के सबसे निम्न स्तर पर निर्वाचन क्षेत्रीय परिषद होती है जिनमें युवा समाजवादी, स्थानीय श्रमिक संघ आदि शामिल होते हैं। इसके संगठन में दल के नेता की नियुक्ति दलीय सम्मेलन में की जाती है।

दलीय कार्यक्रम या उद्देश्य :- ब्रिटेन का श्रमिक दल लोकतन्त्रीय समाजवाद का पक्षधर है। यह क्रान्ति की बजाय सुधार की बात करता है। यह किसी भी सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन के लिए संवैधानिक मार्ग अपनाने का पक्ष लेता है। इस दल की नीतियां व कार्यक्रम सिद्धान्तवादी न होकर यथार्थवादी हैं। यह सामाजिक समानता का पक्षधर है। वह सबके लिए समान शिक्षा, समान सम्पत्ति तथा समान राजनीतिक, आर्थिक व सामाजिक अवसरों का पक्षधर है। यह पूंजीवादी ढांचे का लोकतन्त्रात्मक तरीके से बदलना चाहता है। यह विदेशी सम्बन्धों में साम्राज्यवाद का विरोधी और विश्व शान्ति का समर्थक है। इसकी संयुक्त राष्ट्र संघ में अटूट आस्था है। फाईनर ने लिखा है कि "ब्रिटिश श्रमिक दल दास कैपिटल की बजाय बाइबिल से अधिक प्रभावित हैं।" यह दल ऐसे किसी भी परिवर्तन का विरोधी है जो समाज में अन्याय व अत्याचार को जन्म देता हो। यह विश्व में परमाणु हथियारों के विरुद्ध है। ब्रिटेन को सामरिक दृष्टि से सुरक्षित बनाने के लिए यह सीमित सैनिक व्यय का पक्षधर है। 1997 में

ब्रिटेन में इसी दल की सरकार बनी और इस सरकार ने राष्ट्रीयकरण की बजाय समाजीकरण पर बल दिया है। इस दल के लोकप्रिय नेता टोनी ब्लेयर हैं। 1924 में इस दल की प्रथम सरकार बनी थी। उसके बाद 1946 से 1950, 1964 से 1970 तथा 1974 से 1979 तक इसी दल की सरकारें रही। 18 वर्षा के लम्बे अन्तराल के बाद जब 1997 में टोनी ब्लेयर प्रधानमन्त्री बने तो इस दल ने अपनी नीतियों व कार्यक्रमों को ईमानदारी व निष्पक्षता के साथ लागू किया।

(III) अन्य दल (Miscellaneous Parties) :- उपरोक्त दोनों दलों को छोड़कर ब्रिटेन में कुछ अन्य दल भी हैं। इनमें प्रमुख रूप से उदार दल (Liberal Party) सोशल डेमोक्रेटिक दल, साम्यवादी दल, फाासिस्ट दल, नेशनल फ्रंट और सोशलिस्ट वर्कर्स दल शामिल हैं। इनमें उदार दल का तो ब्रिटेन में लम्बे समय तक प्रभाव रहा, लेकिन श्रमिक दल की उत्पत्ति के साथ यह दल अपना प्रभाव खो बैठा और इसकी नीतियां व कार्यक्रम श्रमिक दल के सिद्धान्तों का एक भाग बन गए। आज ब्रिटेन में उदारवादी दल को छोढ़कर शेष किसी भी छोटे दल का प्रभाव नहीं है। वास्तविक स्थिति तो यह है कि यह दल भी अब निकट भविष्य में सरकार बनाने के दायरे से काफी दूर है।

ब्रिटिश दलीय-व्यवस्था की विशेषताएं

(Features of British Party System)

ब्रिटिश दलीय-प्रणाली की निम्नलिखित विशेषताएं हैं :-

(1) द्वि-दलीय प्रणाली (Two Party System) :- ब्रिटैन में भी अमेरिका की तरह दो-दलीय शासन प्रणाली है। ब्रिटेन में प्रारम्भ में दो दल टोरी तथा ह्विग थे। कालान्तर में उनका स्थान क्रमशः अनुदार दल तथा उदार दल ने ले लिया। बाद में श्रमिक दल के जन्म लेते ही उदारवादी दल शासन को दूर हटता चला गया और उसके स्थान की पूर्ति श्रमिक दल ने की। आज वहां लम्बे समय से अनुदारवादी दल तथा श्रमिक दल की ही सरकार गठित होती आ रही है। उदारवादी तथा अन्य दलों के होते हुए भी वहां प्रमुख रूप से दो ही दल सत्ता का सुख भोग रहे हैं। यही द्वि-दलीय प्रणाली ब्रिटेन की संसदीय सरकार व शासन की सफलता का प्रमुख कारण है।

(2) दलीय अनुशासन (Party Discipline) :- ब्रिटेन में राजनीतिक दलों के सदस्य कठोर दलीय अनुशासन में रहकर कार्य करते हैं। दल के नेता का अपने सदस्यों पर पूर्ण नियन्त्रण रहता है। वहां कोई भी सदस्य दलीय अनुशासन भंग नहीं कर सकता। यदि कोई ऐसा करता है तो उसका राजनीतिक जीवन समाप्त हो जाता है। वहां दल का नेता इस बात का फैसला करता है कि किस विधेयक के पक्ष में मतदान करना है या किसके विपक्ष में। वहां संसद के अधिवेशन के दौरान दलीय सचेतक (Party Whip) मौजूद रहते हैं। कोई भी सदस्य अपने दल के सचेतक की आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकता। यदि कोई ऐसा करता है तो उसे दल से निकाल दिया जाता है।

(3) केन्द्रीयकृत दलीय संगठन (Centralised Party Organisation) :- ब्रिटेन में दलीय ढांचा नीचे से ऊपर तक इस आधार पर संगठित होता है कि अन्त में वह एक जगह पर आकर मिल जाता है। दलीय एकता का पाया जाना ही केन्द्रीयकृत ढांचे की पहचान है। वहां दल के नेताओं का सम्पूर्ण दलीय संगठन पर पूरा नियन्त्रण बना रहता है। ब्रिटैन की दल-प्रणाली का राष्ट्रीय संगठन सदैव क्रियाशील रहता है और उसका स्थान हमेशा राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं पर लगा रहता है। इसी कारण वहां प्रजातन्त्र सफलतापूर्वक कार्य कर रहा है।

(4) सुसंगठित विरोधी दल (Well Organised Opposition) :- ब्रिटेन में विपक्ष का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। वहां विरोधी दल दलीय व्यवस्था का आवश्यक व अपरिहार्य अंग माना जाता है। विपक्षी दल की सत्तारूढ़ दल को जनता के प्रति उत्तरदायी बनाने में रचनात्मक भूमिका रहती है। विरोधी दल भी सत्तारूढ़ दल की तरह अपना मन्त्रिमण्डल गठित करता है जिसे छाया मन्त्रिमण्डल कहा जाता है। इसका प्रमुख कार्य सत्तारूढ़ दल की नीतियों पर नजर रखना है। इस दल का अपना संगठन, सचेतक व वैकल्पिक प्रधानमन्त्री होता है जो अपने दल के सदस्यों को नियन्त्रित रखने के साथ-साथ निन्दा प्रस्ताव व अविश्वास प्रस्ताव को लेकर सरकार का ध्यान आकृष्ट करता है। यह दल सत्तारूढ़ दल की निरंकुशता पर रोक का काम करता है।

(5) लूट-प्रथा का अभाव (Lack of Spoil System) :- ब्रिटेन में अमेरिका की तरह लूट प्रथा नहीं है। वहां पर सरकारें बदलती रहती हैं, लेकिन नौकरशाही वहीं रहती है जो पहले थी। ब्रिटेन में स्थायी लोक सेवा की परम्परा है। अतः वहं अमेरिका की तरह सरकार बदलते ही पुराने लोक सेवकों को हटाकर उनके स्थान पर सरकार के चहेतों को बिठाने की

प्रथा नहीं है।

(6) वर्ग, प्रकृति एवं सैद्धान्तिक मतभेद *(Class, Nature and Ideological Differences)* :- ब्रिटेन में राजनीतिक दल विभिन्न आर्थिक वर्गों पर आधारित है। श्रमि दल मजदूरों का प्रतिनिधि है और वह मध्यम वर्ग से भी समर्थन की आशा राता है। उसका ध्येय पूंजीपति वर्ग को कमजोर बनाना है। इसके विपरीत अनुदार दल धनिक व कुलीन वर्गों का प्रतिनिधि है। इन दलों के मतभेद सैद्धान्तिक हैं। मजदूर दल समाजवाद का पोषक है तो अनुदार दल निजी उद्योगों का समर्थक है। सैद्धान्तिक आधारों पर टिकी होने के कारण ब्रिटिश दलीय व्यवस्था अमेरिका तथा भारत की तुलना में अधिक लोकप्रिय है।

(7) नेता का महत्व (Importance of the Leader) :- ब्रिटिश दलीय प्रणाली में दल का नेता, दल की शक्ति व दल का प्रतीक होता है। उसका व्यक्तित्व दल का व्यक्तित्व होता है। वहां मतदाता किसी उम्मीदवार को वोट देने की बजाय भावी प्रधानमन्त्री को वोट देते हैं दलीय नेता का सम्पूर्ण दल पर पूरा नियन्त्रण रहता है। उसकी आलोचना करने का अर्थ है अपना राजनीतिक जीवन दांव पर लगाना। अतः ब्रिटिश दलीय नेता की स्थिति अमेरिकन दलीय नेता के अधिक शक्तिशाली व महत्वपूर्ण है।

(8) दल साहचर्य (Party Brotherhood) :- ब्रिटेन में प्रत्येक राजनीतिक दल का अपना गौरवमय अतीत है। इससे वहा दलीय एकता मजबूत हुई है। सभी सदस्य आपस में एकता की भावना के आधार पर बंधे रहकर कार्य करते रहते हैं। प्रत्येक राजनीतिक दल का अपना एक संविधान होता है जो दल को विशिष्ट व्यक्तित्व प्रदान करता है तथा दलीय एकता की भावना दल को संगठित व अनुशासित रखती है। इसी कारण ब्रिटेन में दल-बदल की घटनाएं कम होती हैं।

(9) निरन्तर कार्यशीलता (Continuous Activeness) :- ब्रिटेन में राजनीतिक दल निरन्तर कार्यशील रहते हैं। वहां पर राजनीतिक दल अमेरिका की तरह केवल चुनावी अवसरों पर ही हलचल में अपने की बजाय पूरे वर्ष गतिशील रहते हैं। ब्रिटेन में पूरे वर्ष दल शोध कार्य करने, साहित्य तैयार करने, सभाएं बुलाने, स्थानीय संगठन को मजबूत बनाने तथा जनमत को शिक्षित बनाने में लगे रहते हैं। उन्हें सदा यह भय रहता है कि किसी भी समय अविश्वास का प्रस्ताव होते ही नए चुनावों का सामना करना पड़ता है। इसलिए वहां जनता को अपनी तरफ आकर्षित करने के लिए विरोधी दल तथा सत्तारूढ़ दल दोनों सक्रिय रहते हैं।

(10) संकटकाल में राष्ट्रीय सरकार का गठन (National Government in Emergency) :- ब्रिटेन में संकट के समय दोनों राजनीतिक दल एक मंच पर आकर राष्ट्रीय सरकार का गठन करते हैं। उस समय दोनों दलों की विचारधारा राष्ट्रीय हित के एक बिन्दु पर आकर ठहर जाती है। ब्रिटेन में 1940 में चर्चिल ने शाखा सरकार का गठन किया था ताकि द्वितीय विश्व युद्ध की भीष्म परिस्थितियों का सामना किया जा सकें

(11) उदारवादी प्रकृति (Liberal Trend) :- ब्रिटेन में राजनीतिक दलों की प्रकृति अधिक उग्रवादी नहीं रही है। दोनों दलों ने चुनावों के बाद अधिक कठोर नीतियां नहीं बनाई हैं। श्रमिक दल ने कभी भी ऐसी नीति नहीं बनाई जिससे पूंजीपतियों की हानि हो और इसी तरह अनुदार दल ने भी श्रमिक हितों पर चोट करने वाली नीति से स्वयं को दूर ही रखा है। न्यूमैन ने लिखा है-"रूढ़िवादियों को श्रमिकों का ध्यान रखना होता है और श्रमिकों को पूंजीपतियों की पूर्णतया उपेक्षा नहीं करनी होती है।" दोनों दल सत्ता प्राप्त करने के लिए भी समझौतावादी मार्ग को ही अपनाते हैं। ब्रिटेन में सत्तारूढ दल कभी भी चुनावों में या चुनावों के बाद हानि पहुंचाने की नहीं सोचता। इसी कारण आज तक ब्रिटेन में चुनावों में कभी हिंसा नहीं हुई। इसका प्रमुख कारण राजनीतिक दलों की उदारवादी प्रकृति या स्वभाव का होना है।

उपरोक्त विवेचन के बाद कहा जा सकता है कि ब्रिटिश दलीय व्यवस्था का झुकाव केन्द्रीयकरण की तरफ है। वहां पर दल के सदस्य कठोर दलीय अनुशासन में रहते हैं और दलीय एकता का परिचय देते हैं। वहां पर आज तक स्वस्थ दलीय-परम्पराओं का ही विकास हुआ है। ब्रिटेन में राजनीतिक दलों में विभिन्न वर्गों के प्रतिनिधि और दलों की प्रकृति समझौतावादी है। वहां पर विरोधी दल को जो सम्मान प्राप्त है, वह अन्य किसी भी देश में प्राप्त नहीं है। दलों के सैद्धान्तिक आधार अलग-अलग होते हुए भी वे राष्ट्रीय हित की दृष्टि से एक बिन्दु पर आकर ही मिल जाते हैं। वहां दलीय नेता को जो सम्मान प्राप्त है, वह अमेरिका में नहीं है। अमेरिकन दलीय व्यवस्था जैसी लूट प्रणाली भी वहां नहीं है। सत्य तो यह है कि स्वस्थ दलीय परम्पराओं ने ब्रिटिश दलीय प्रणाली को जनप्रिय बनाया है।

अमेरिकन दल प्रणाली

(American Party System)

अमेरिका की स्वतन्त्रता के समय संविधान निर्माताओं द्वारा राजनीतिक दलों की घोर उपेक्षा ही कालांतर में वहां की शासन व्यवस्था का आधार बन गई। अमेरिकन संविधान निर्माताओं का ध्येय दलीय आतंक से अमेरिकन शासन व्यवस्था को मुक्त रखना था। इसके लिए उन्होंने राजनीतिक प्रणाली को इस तरह सुसंगठित किया कि राजनीतिक दलों की आवश्यकता ही न पड़े। स्वतन्त्र अमेरिका के प्रथम राष्ट्रपति जार्ज वाशिंगटन ने एक बार कहा था-"मैं समस्त जनता का हूँ, जनता के एक भाग का नहीं।" इसके पीछे उनका यही उद्देश्य था कि जनता को राजनीतिक दलों की कमी महसूस न हो और उनका दल-विहीन प्रजातन्त्र में विश्वास कायम रहे। लेकिन वे भी राजनीतिक दलों के बढ़ते वेग को रोकने में नाकाम रहे। यद्यपि अमेरिका में इस बात के काफी प्रयास हुए कि राजनीतिक दलों का विकास न हो, लेकिन फिर भी धीरे-धीरे वहां दलीय व्यवस्था का विकास होता गया। हैमिल्टन तथा जैफरसन के कार्यकाल में दलीय व्यवस्था का जवान अपने संगठित रूप में उभरा और अमेरिका में दलीय व्यवस्था की नींव पड़ी। वही दलीय व्यवस्था आज अमेरिकन शासन प्रणाली का आधार है और इसका महत्व वैधानिक संस्थाओं से भी अधिक है। इसी कारण मुनरो ने कहा है-"अमेरिकन संविधान निर्माताओं ने जिस शिला को अस्वीकृत व तिरस्कृत किया था, वही शिक्षा आज अमेरिकन शासन-पद्धति का प्रमुख कोना बन गई है।" इस बात में काफी दम है कि राजनीतिक दल ही आज अमेरिकन पद्धति का आधार या रीढ़ की हड्डी है।

संयुक्त राज्य अमेरिका में राजनीतिक दलों की उत्पत्ति व विकास

(Origin and Development of Political Partie in America)

अमेरिका में दलीय-व्यवस्था के बीज फिलाडेल्फिया सम्मेलन (1789) में ही देखने को मिलते हैं। इस सम्मेलन में भाग लेने वाले प्रतिनिधि संघवादी और संघ-विरोधी दो गुटों में बंट गए थे। अमेरिका के प्रथम राष्ट्रपति के रूप में शपथ लेते ही जार्ज वाशिंगटन ने संघवादी हैमिल्टन तथा संघ-विरोधी जैफर्सन को अपने मन्त्रिमण्डल में स्थान दिया था। इन दोनों नेताओं ने दलीय-व्यवस्था के विकास के प्रयास किए और वाशिंगटन का कार्यकाल पूरा होने तक अमेरिका में राजनीतिक दल संगठित रूप में जन्म ले चुके थे। इसका आभास राष्ट्रपति जार्ज वाशिंगटन के द्वारा अपने विदाई भाषण के अवसर पर दिए गए वक्तव्यों से होता है। वाशिंगटन ने कहा था "राजनीतिक दलों की भावना आधारविहीन द्वेषों तथा झूठी भावनाओं को उकसाती है, समाज के एक भाग को दूसरे भाग के प्रति शत्रुता के लिए उभारती है तथा समय-समय पर विद्रोह एवं दंगों का कारण बनती है।" इससे स्पष्ट है कि वाशिंगटन के समय में ही दल प्रणाली जन्म ले चुकी थी। वाशिंगटन के दूसरे शासन काल में संघ-विरोधी नेता जैफरसन ने त्यागपत्र देकर अपना नया दल 'लोकतन्त्रात्मक गणतन्त्रीय दल (Democratic Republican Party) का गठन किया। 1796 में राष्ट्रपति के चुनाव में जैफरसन की नेतृत्व वाला गुट हार गया और संघवादी जॉन एडम राष्ट्रपति भवन (White House) में पहुंचे। फिर 1800 में जैफरसन जॉन एडम राष्ट्रपति बने और उनका लोकतन्त्रात्मक गणतीन्त्रीय दल विकसित होता रहा। इस दल का नेतृत्व 1824 तक रहा। जेफरसन समर्थक दल के विकास ने 1815 तक संघवादियों का पूरी तरह सफाया कर दिया और अन्ततोगत्वा संघवादी नष्ट हो गए। 1824 में 'लोकतन्त्रात्मक गणतन्त्रीय दल' में फूट हो गई और यह दो भागों में बंट गया। इसमें लोकतन्त्रात्मक दल (Democratic Party) का नेतृत्व जैकसन ने तथा राष्ट्रीय गणतन्त्रात्मक दल (National Republic Party) का नेतृत्व हेनरी क्ले ने किया। 1828 में राष्ट्रीय गणतन्त्रात्मक दल ह्विग (Whig) में बदल गया तथा 1856 में इसका नामकरण 'रिपब्लिकन' दल से हुआ। इस तरह अमेरिका में Republican Party तथा Democratic Party के रूप में दो दलीय प्रणाली के विकास हुआ। ये दोनों दल आज भी अमेरिका के प्रमुख राजनीतिक दल हैं। समय-समय पर इन्हीं दलों के हाथ में सत्ता रही है। आज तक अमेरिका में हैमिल्टन, वेब्स्टर, मैक-किनले, इलिज, आइजनहावर, निकसन, फोर्ड, रीगन तथा बुश ने तो रिपब्लिक पार्टी का नेतृत्व किया है और जैफर्सन, जैकसन, रुजवेल्ट, केनेडी, कार्टर तथा बिल क्लिंटन ने डेमोक्रेटिक पार्टी का नेतृत्व किया है। वर्तमान में जार्ज बुश अमेरिका के राष्ट्रपति हैं जो Republican Party से हैं।

अमेरिका के प्रमुख राजनीतिक दल : कार्यक्रम व संगठन

(Major Political Parties of America : Programmes and Organisation)

अमेरिका में दो ही प्रमुख राजनीतिक दल हैं जिन्हें Democratic Party तथा Republican Party के नाम से जाना जाता है। यद्यपि

अमेरिका में समय-समय पर अन्य छोटे-छोटे राजनीतिक दल भी उभरते रहे हैं; लेकिन उनका कोई भी नेता आज तक राष्ट्रपति पद पर सुशोभित नहीं हो सका है। अमेरिका में 1890 में 'Political Party' तथा 1912 में 'Progressive Party' तथा Socialist Labour Party से मिलकर Socialist Party की नींव भी पड़ी। इसके अलावा अमेरिका में साम्यवादी दल (Communist Party) भी है, लेकिन वहां Republican Party तथा Democratic Party को छोड़कर किसी का राजनीति में प्रभाव नहीं है। इन दलों का संक्षिप्त वर्णन निम्नलिखित प्रकार से है :-

(I) रिपब्लिकन दल (Republican Party) :- इस दल के संस्थापक हैमिल्टन हैं। प्रारम्भ में इस दल को संघवादी दल कहा जाता था। 1824 तक इस दल का तो सफाया हो गया और उसका स्थान जैफरसन द्वारा संगठित लोकतन्त्रीय गणतन्त्रीय दल' के विभाजन के बाद अस्तित्व में आने वाले हेनरी क्ले के नेतृत्व वाले दल National Republican Party ने ले लिया। इसे बाद में ह्विग' कहा गया और 1850 में इसको Republican Party कहा जाने लगा। इस दल के सर्वप्रथम राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन (1860) बने। राष्ट्रपति क्लीवलैंड को छोड़कर 1860 से 1913 तक यही दल सत्ता में रहा, उसके बाद 1952 से 1960 तक इस दल से राष्ट्रपति आइजनहॉवर थे। 1969 में निक्सन, 1974 में फोर्ड, 1980 तथा 1984 में राष्ट्रपति रीगन इसी दल से थे। वर्तमान में 2000 से 2004 तक राष्ट्रपति जार्ज बुश इस पार्टी के नेतृत्व में ही अमेरिका के राष्ट्रपति के रूप में देश की बागडोर संभाल रहे हैं।

दलीय कार्यक्रम (Party Programmes) :- प्रारम्भ में यह दल शक्तिशाली संघीय सरकार का समर्थक था। यह दल संरक्षित व्यापार, उपनिवेशों की स्थापना, व्यापारिक जहाजों को आर्थिक मदद देने, दासता का उन्मूलन करने तथा काले लोगों को मताधिकार दिलाने का प्रबल समर्थक था। 1952 में इस दल ने देश में फैले हुए भ्रष्टाचार, अक्षमता तथा अकर्मण्यता की आलोचना की। आज इस दल के प्रमुख कार्यक्रम में निजी उद्योगों तथा संघ सरकार का समर्थन, राज्य में जाति विभेद का अन्त, सयुक्त राष्ट्र संघ का समर्थन, साम्यवाद का विरोध, सम्यवाद समर्थकों को सरकारी पदों से हटाना, उत्तर अटलांटिक सन्धि का समर्थन, पिछड़े देशों की आर्थिक सहायता, विश्व से आतंकवाद का सफाया करना आदि शामिल हैं। इसी नीति पर चलते हुए 2003 में राष्ट्रपति बुश ने अफगानिस्तान में सैनिक कार्यवाही की और ईराक के राष्ट्रपति सद्दाम हुसैन को सत्ता से हटाकर बाद में उसे बन्दी भी बना लिया ताकि विश्व में पैर जमाए हुए आतंक के दानव से निपटा जा सके।

(II) डेमोक्रेटिक दल (Democratic Party) :- प्रारम्भ में यह दल संघ-विरोधी दल के नाम से जाना जाता था। 1796 से पहले राष्ट्रपति वाशिंगटन के नेतृत्व में रहते हुए जैफरसन ने इस दल का नामकरण डेमोक्रेटिक रिपब्लिकन दल रख लिया था। 1800 में इस दल से प्रथम राष्ट्रपति जैफरसन चुनकर सत्ता में पहुंचे। 1821 तक इसी दल ने अमेरिका के शासन की बागडोर अपने हाथ में रखी। 1824 से 1826 के समय को छोड़कर अमेरिका के शासन पर 1840 तक इस दल का कब्जा रहा। 1884 तक इस दल का कोई भी नेता राष्ट्रपति पद को सुशोभित नहीं कर सका। 1884 में रष्ट्पति क्लीवलैण्ड इस दल से चुनकर राष्ट्रपति भवन पहुंचे। उसके बाद 1913 से 1921 तक इस दल से वुडरो विल्सन अमेरिका के राष्ट्रपति रहे। 1933 से 1945 तक राष्ट्रपति रुजवेल्ट, 1945 से 1953 तक राष्ट्रपति ट्रमैन, 1961 से 1963 तथा 1963 से 1969 तक जॉनसन इसी दल से राष्ट्रपति रहे। 1976 में कार्टर तथा 1992 व 1996 में बिल क्लिंटन इसी दल से अमेरिका के राष्ट्रपति चुने गए।

दलीय कार्यक्रम (Party Programmes) :- प्रारम्भ से ही यह दल भी संसदीय सरकार की शक्ति में वृद्धि, साम्राज्यवाद, सरक्षित व्यापार एवं जहाजों के लिए अनुदान देने तथा दासता के उन्मूलन का विरोधी रहा है। 19वीं सदी में इसने कृषक हितों का पोषण किया और 1933 में राष्ट्रपति रुजवेल्ट के नेतृत्व में 'New Deal' कार्यक्रम पेश करके इसने आर्थिक क्षेत्र में राज्य के हस्तक्षेप का समर्थन किया। 1952 में इस दल ने सोवियत साम्राज्य से सुरक्षा के लिए यूरोपीय देशों की सामूहिक नीति का अनुगमन किया। आज इस दल के प्रमुख कार्यक्रम व नीतियां संघीय सरकार को शक्तिशाली बनाना अर्थात् देश के सभी राज्यों के बीच मजबूत संगठन, संयुक्त राष्ट्र संघ का समर्थन, सैनिक तैयारी, श्रमिकों के लिए बीमा और सामाजिक सुरक्षा, उत्पादकों तथा श्रमिकों के हितों में आयकर की नीति, उद्योगों का राष्ट्रीयकरण आदि हैं। अब इस दल की साम्यवाद विरोधी नीति में कुछ उदारवादी रुख झलकने लगा है।

यदि रिपब्लिकन दल तथा डेमोक्रेटिक दल के कार्यक्रमों व नीतियों की समीक्षा की जाए तो सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह उभरता है कि दोनों दलों में कोई महत्वपूर्ण सैद्धान्तिक मतभेद नहीं हैं, दोनों ही दल साम्यवाद विरोधी तथा पूंजीवाद समर्थक हैं। दोनों संयुक्त राष्ट्र संघ की विचारधारा का समान समर्थन करते हैं और विश्व के आतंकवाद का सफाया करने की बराबर वकालत करते हैं। जोर्डन का यह मत सही है-"जहां तक सिद्धान्तों का सम्बन्ध है, रिपब्लिकन दल और डेमोक्रेटिक दलों में कोई मतभेद

नहीं है।" दोनों दल अमेरिका को विश्व की सबसे महान सैनिक शक्ति बनाने का स्वप्न संजोए हुए है और इसी दिशा में प्रयासरत् हैं। इसके लिए वे विश्व में नए प्रकार का साम्राज्यवाद फैला रहे हैं।

दलीय संगठन

(Party Organisation)

अमेरिका में दोनों दलों का संगठन समान है। यह संगठन केन्द्रीय, राज्य तथा स्थानीय स्तर पर अलग-अलग है। इसका प्रमुख ब्यौरा इस प्रकार है :-

(I) केन्द्रीय अथवा राष्ट्रीय स्तर पर संगठन :- केन्द्रीय स्तर पर दल का सर्वोच्च अंग राष्ट्रीय सम्मेलन है। इसमें राज्यों के निर्वाचित प्रतिनिधि हैं। इसे राष्ट्रपति तथा उप-राष्ट्रपति पद के लिए उम्मीदवार मनोनीत करने, चुनाव के लिए दलीय कार्यक्रम निर्धारित करने, मूलभूत संगठन व दलीय विधान को नियन्त्रित करने का अधिकार होता है। इसके बाद एक राष्ट्रीय समिति होती है जो दल के समस्त कार्य संचालन की कार्यकारिणी समिति है। इसमें प्रत्येक राज्य और क्षेत्र के दो प्रतिनिधि होते हैं। इस समिति के सदस्य राष्ट्रीय सम्मेलन के लिए राज्यों से निर्वाचित प्रतिनिधि मण्डलों द्वारा चुने जाते हैं। यह समिति अपनी दो सहायक कार्यकारिणी समितियों का भी निर्माण करती है। इस समितियों के कार्य राष्ट्रीय सम्मेलन बुलाना, दल के व्यय के लिए कोष-एकत्रित करना, राज्य के प्रतिनिधियों की संख्या निर्धारित करना आदि हैं। डेमोक्रेटिक दल की राष्ट्रीय समिति में 108 तथा रिपब्लिक दल की समिति में 147 सदस्य हैं। इसके बाद राष्ट्रीय स्तर पर दलीय संगठन का एक राष्ट्रीय अध्यक्ष भी होता है जिसे 4 वर्ष के लिए समिति तथा प्रस्तावित व्यक्ति को राष्ट्रपति चुनता है। इसका प्रमुख कार्य राष्ट्रपति पद के निर्वाचन के अभियान को संचालित करना होता है। इसके बाद राष्ट्रीय स्तर पर एक राष्ट्रीय समिति सचिवालय भी होता है। इसका प्रमुख कार्य नेताओं द्वारा दिए जाने वाले भाषणों को तैयार करना, दल के लिए धन एकत्रित करना तथा उसका हिसाब-किताब रखना है।

(II) राज्य स्तर पर संगठन :- राज्य स्तर भी दोनों दलों का संगठन समान है। इस स्तर पर दोनों दलों की एक-एक केन्द्रीय समिति है जिसका आकार और निर्माण सभी राज्यों में अलग-अलग है। इस समिति में राज्य की काउण्टी समितियों के चेयरमैन होते हैं। इस समिति का प्रमुख कार्य राज्य के दलीय संगठनों पर नियन्त्रण रखना, धन एकत्रित करना तथा छोटे पदों के लिए दलीय उम्मीदवारों का नामांकन करना है। इस समिति की भी एक कार्यकारिणी समिति तथा एक वित्त सचिव होता है।

(III) स्थानीय स्तर पर संगठन :- स्थानीय स्तर पर दलीय संगठन की सबसे छोटी इकाई प्रिसिंकट समिति है। इसके नेता को समिति अधिकारी कहा जाता है। शहरी क्षेत्रों में वार्ड-समितियां होती हैं जो शहरी मतदाताओं के कार्य का संचालन करती है। इसके बाद काउण्टी संगठन हैं जो अपने से नीचे की इकाइयों को कार्यों का निरीक्षण व नियन्त्रण करती है। इन्हें जिला समिति भी कहा जाता है। प्रत्येक जिले में प्रत्येक दल की एक समिति अवश्य है।

अमेरिकन दल प्रणाली की विशेषताएं

(Features of American Party System)

अमेरिकन दल प्रणाली की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं :-

(1) द्वि-दलीय प्रणाली (Two Party System) :- अमेरिका में ब्रिटेन की तरह दो दलों का ही प्रमुख है। यद्यपि वहां कुछ छोटे दल भी उभरे हैं, लेकिन उनका कोई विशेष महत्व नहीं है। प्रारम्भ से लेकर अब तक अमेरिका में डेमोक्रेटिक दल तथा रिपब्लिक दल का ही बार-बार शासन वहां है। इन दलों को छोड़कर अन्य किसी भी दल को आज तक अमेरिकन शासन प्रणाली में भागीदारी निभाने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ है। अतः अमेरिका में दल प्रणाली द्वि-दलीय है।

(2) सैद्धान्तिक मतभेद का अभाव (Lack of Ideological Differences) :- अमेरिका के दोनों दलों की नीतियां व विचारधाराएं समान हैं। उनके सैद्धान्तिक आधार समता का गुण रखते हैं। अमेरिका के दोनों बड़े दल लोकतन्त्र, मौलिक स्वतन्त्रताओं, व्यक्तिगत सम्पत्ति से युक्त राष्ट्र संघ तथा विश्व शान्ति का समर्थन करते हैं। दोनों दल साम्यवाद विरोधी हैं। दोनों की नीतियां विश्व में आतंकवाद का सफाया करने की हैं। दोनों विश्व में नव-साम्राज्यवाद फैलाने के पक्षधर

हैं। दोनों दलों में अनुदार तथा प्रगतिशील तत्व भी पाए जाते हैं। किसी महत्वपूर्ण राजनीतिक प्रश्न पर दोनों दलों के अनुदार तथा प्रगतिशील सदस्य संगठित हो जाते हैं। इसी कारण ब्राइस ने लिखा है-"अमेरिका में दो महान राजनीतिक दल दो खाली बोतलों के समान हैं जिनमें प्रत्येक पर अलग-अलग शराब का लेबल लगा हुआ है, परन्तु हैं दोनों खाली।" इसी तरह फाईनर ने अमेरिका में केवल एक ही दल रिपब्लिकन-कम-डेमोक्रेटिक माना है। इसके पीछे यही कारण है कि कुछ आम बातों पर विभिन्न वैचारिक मतभेदों के चलते हुए भी आज तक अमेरिका के दलों में कोई विशिष्ट वैचारिक अन्तर देखने को नहीं मिला है। सरकार बदल जाती हैं, फिर भी नीतियां वहीं रहती हैं।

(3) परम्पराओं व प्रथाओं पर आधारित (Based on Conventions and Customs) :- अमेरिकन संविधान-निर्माता दल-प्रणाली के दोषों से अच्छी तरह परिचित थे, इसलिए उन्होंने संविधान के अन्तर्गत कहीं भी दलीय-व्यवस्था का जिक्र नहीं किया। इसलिए अमेरिकन दलीय प्रणाली संवैधानिक व्यवस्था नहीं है। यह तो ब्रिटेन की तरह परम्पराओं व प्रथाओं पर आधारित है। अमेरिक संविधान निर्माताओं द्वारा तिरस्कृत दल-प्रणाली संविधान निर्माण के एक दशक बाद ही स्थापित हो गई थी और उसने 19 वीं सदी के आरम्भ में राष्ट्रपति के चुनाव में अपने कारनामे दिखाने शुरु कर दिये थे। ब्राईस का कहना है कि "दल का संगठन संविधान द्वारा स्थापित कानूनी सरकार के साथ-साथ एक दूसरी ही सरकार बना हुआ है जिसका संविधान में कहीं उल्लेख नहीं है।" जिस दल-प्रणाली का संविधान में कोई जिक्र नहीं था, आज वह परम्पराओं व प्रथाओं के द्वारा पोषित होकर अमेरिकन शासन प्रणाली की एक वास्तविकता बन चुकी है।

(4) लूट प्रणाली की पोषक (Supporter of Spoil System) :- अमेरिकन दल-प्रणाली लूट-प्रणाली की पोषक है। अमेरिका में चुनाव के बाद राष्ट्रपति द्वारा पद ग्रहण करते ही पूर्व कार्यपालिका द्वारा नियुक्त लोकसेवा के पदाधिकारियों को हटाने की मुहिम छिड़ जाती है और उन पदों पर नई कार्यपालिका द्वारा अपने समर्थकों को बिठाने की कवायद शुरु हो जाती है। उसे लूट-प्रणाली के नाम से जाना जाता है। इस प्रणाली का व्यापक पैमाने पर प्रयोग राष्ट्रपति जैकसन ने 1828 में किया था। उसने पहले से कार्य कर रहे 700 अधिकारियों व कर्मचारियों को पदमुक्त करके उनके स्थान पर अपने समर्थकों को बिठा दिया था। इस प्रणाली के दुष्प्रभावों के दृष्टिगत 1883 में अमेरिकन कांग्रेस ने 'पेण्डलटन अधिनियम' पारित किया और लूट-प्रणाली पर कुछ सीमाएं लग गई। अब राष्ट्रपति इस प्रणाली का प्रयोग करके 10% से अधिक पद नहीं भर सकता। शेष पदों पर नियुक्तियां संघ लोक सेवा आयोग ही करता है।

(5) दबाव समूह व हित समूहों का प्रभाव (The Influence of Pressure and Interest Groups) :- आज विश्व मे सर्वाधिक दबाव व हित समूह अमेरिका में हैं। इन समूहों की राजनीतिक दलों के साथ सांठ-गांठ रहती है। चुनावों में इनके द्वारा राजनीतिक दलों की हर तरह से मदद की जाती है। चुनाव का अधिकतर खर्च सभी हित समूह ही वहन करते हैं। चुनावों के बाद कांग्रेस में प्रस्तुत विधेयकों को राजनीतिक दलों के माध्यम से दबाव समूह अपनी इच्छानुसार पास करवाते हैं। इनका राजनीतिक दलों के कार्यक्रमों व नीतियों पर आखिर तक पूरा दबाव बना रहता है। विभिन्न प्रचार साधनों के माध्यम से जनमत पर अपना प्रभाव बढ़ाकर हित समूह सरकार व राजनीतिक दलों दोनों को प्रभावित करने की चेष्टा करते रहते हैं।

(6) एकता व अनुशासन का अभाव (Lack of Unity and Discipline) :- अमेरिका में राजनीतिक दलों में कठोर दलीय अनुशासन व आपसी एकता का अभाव पाया जाता है। किसी राजनीतिक प्रश्न पर दोनों दलों में समान विचार रखने वाले सदस्य एक साथ मिलकर कार्य करते हैं। सत्तारूढ़ दल के सदस्य अपनी ही सरकार की आलोचना करने से भी नहीं चूकते। कई बार कांग्रेस में दलीय भावना से ऊपर उठकर राष्ट्रहित में मतदान किया जाता है। दल के भीतर ही कई गुट पाए जाते हैं। दलीय अनुशासन कायम रखने की कोई शक्ति राष्ट्रीय समितियों के पास नहीं है। राष्ट्रीय समितियां स्वयं ही दल के प्रभावशाली सदस्यों के हाथों की कठपुतलियां बनकर कार्य करती हैं तो वे अनुशासन के लिए कठोर कदम कैसे उठा पाएंगी। लास्की ने दलीय अनुशासन के अभाव के बारे में कहा है कि "केवल चुनावों के समय तो वे राष्ट्रीय दल हैं, अन्यथा प्रभावशाली स्थानीय संस्थाएं हैं।" अतः अमेरिका में दलों में आपसी एकता व कठोर अनुशासन का अभाव है।

(7) जनता के प्रति उत्तरदायित्व का अभाव (Lack of Responsibility towards People) :- अमेरिका में राजनीतिक दल जनता के प्रति उत्तरदायित्व का वहन नहीं करते हैं। चुनावों के बाद प्रायः राजनीतिक दल अपने चुनावी वायदों से मुकर जाते हैं और जनमत की उपेक्षा करते हैं। विरोधी दल तो चुनाव के बाद चुप बैठकर कांग्रेस की कार्यवाही का आनन्द

लेता है। उसे इस बात से कोई सरोकार नहीं है कि सत्तारूढ़ दल क्या कर रहा है। कई बार दोनों दलों में आपसी मतभेद इतने अधिक गहरे हो जाते हैं कि जन-उत्तरदायित्व के सिद्धान्त से काफी दूर चले जाते हैं।

(8) प्राथमिक सदस्यता का अभाव (Lack of Primary Membership) :- अमेरिका में भारत तथा ब्रिटेन की तरह राजनीतिक दलों ने प्राथमिक सदस्यता के नियम नहीं बनाए हैं। काई व्यक्ति अपनी इच्छानुसार किसी भी दल का सदस्य बन सकता है। इसके लिए उसे न तो चन्दा देना पड़ता है और न ही कोई सदस्यता फार्म भरना पड़ता है। वे किसी भी समय पार्टी छोड़ सकते हैं।

(9) प्रगतिशील विचारों का अभाव (Lack of Progressive Ideals) :- अमेरिकन राजनीतिक दल समय के अनुसार स्वयं को परिवर्तित करने में असफल रहे है। अमेरिका में दलीय संगठन आज भी वही हैं जो 200 वर्ष पहले था। पार्टी के राष्ट्रीय सम्मेलन चुनाव के दौरान ही बुलाए जाते हैं। चार वर्ष के लम्बे अन्तराल के बाद ऐसी व्यवस्था अन्य किसी भी देश में नहीं है। सम्मेलन में किसी विषय पर अधिक गम्भीरता से विचार नहीं होता। इसी कारण वहां पर पार्टी के नेता तथा राष्ट्रपति अपनी इच्छाओं को दल पर लादने में सफल रहते हैं।

(10) क्षेत्रवाद का प्रभाव (Influence of Localism) :- अमेरिका में दलीय-प्रणाली क्षेत्रवाद से प्रभावित है। वहां पर स्थानीय हितों को पर्याप्त महत्व दिया जाता है चाहे वहां दलों का संगठन केन्द्रीयकृत हो या विकेन्द्रीकृत। दलों का राष्ट्रीय संगठन नहीं के समान है। वहां पर स्थानीय संगठन अधिक मजबूत है। यह संगठन ही राजनीतिक दलों की शक्ति व प्रभाव का आधार है। दलों के सम्मेलन में स्थानीय हितों को राष्ट्रीय हितों से पहले रखा जाता है। इसी कारण अमेरिकन दल-प्रणाली स्थानीय हितों से प्रभावित रहती है।

(11) मूल नीति का अभाव (Lack of Fundamental Policy) :- अमेरिकन राजनीतिक दलों के पास प्रमाणित नीतियां व कार्यक्रम नहीं हैं। चुनावों के समय राजनीतिक दलों द्वारा प्रकाशित किए जाने वाले घोषणापत्र अस्पष्ट होते हैं और चुनाव के बाद सरकार उन घोषणाओं के विपरीत चलने को स्वतन्त्र होती हैं और उस पर जनमत का कोई प्रभाव नहीं रहता।

(12) वर्गीय मतभेद (Group Differences) :- संयुक्त राज्य अमेरिका में राजनीतिक दलों में सैद्धान्तिक मतभेद न होकर वर्गीय मतभेद ही पाए जाते हैं। वहां राजनीतिक दलों में विचारधारा के स्थान पर परम्परा एवं भौगोलिक प्रभाव का आधार अधिक है। वहां राजनीतिक दलों को अपनाते समय कोई भी व्यक्ति यह सोचता है कि उस दल में उसकी जाति, धर्म या परिवार की क्या स्थिति है। अमेरिका में राजनीतिक दलों पर आर्थिक रूप से समृद्ध वर्ग के लोगों का ही प्रभुत्व बना रहता है। इसी कारण अमेरिकी राजनीतिक दलों को दबाव समूहों के गुट माना जाता है, सिद्धान्तों के समूह नहीं।

अमेरिकन दल प्रणाली का मूल्यांकन

(Evaluation of American Party System)

अमेरिका की दल प्रणाली का विश्लेषण करने से यह बात उजागर होती है कि अमेरिका में कठोर दलीय अनुशासन के अभाव के कारण राजनीतिक दलों के सदस्य दल के कार्यक्रम व नीतियों को उत्तरदायित्वपूर्ण ढंग से पूरे करने के प्रयास नहीं करते। अमेरिका में क्षेत्रवाद का प्रभाव, स्पष्ट नीतियों व कार्यक्रमों का अभाव आदि बातें अमेरिकी राजनीतिक दलों को एक स्वार्थपूर्ण व्यक्तियों का समूह बना देती है। वहां पर सबसे खतरनाक प्रश्न लूट-प्रणाली है जो दलीय-व्यवस्था की निष्पक्षता को चुनौती देती है। इसके बावजूद भी यह कहना गलत होगा कि अमेरिकन दलीय-व्यवस्था महत्वहीन है। सत्य तो यह है कि द्वि-दलीय प्रणाली अमेरिका के राजनीतिक जीवन में इस कद्र समा चुकी है कि इसे बहुदलीय बनाने में कोई औचित्य दिखाई नहीं देता। लम्बे समय से अमेरिका में द्वि-दलीय प्रणाली सफलता से कार्य कर रही है तो इसके दोषों का कोई आलोचनात्मक आधार महत्वहीन हो जाता है।

अमेरिकन तथा ब्रिटिश दल-प्रणालियों में तुलना

(Comparison Between American and British Party-System)

यद्यपि देखने में तो अमेरिकन तथा ब्रिटिश दल-प्रणालियां एक जैसी हैं, लेकिन व्यवहार में उनमें वैसा ही अन्तर है जैसा अध्यक्षीय शासन प्रणाली तथा संसदीय शासन-प्रणाली में होता है। इसका प्रमुख कारण दोनों देशों की आर्थिक स्थिति, संवैधानिक परम्पराओं तथा शासन की प्रकृति में पाया जाने वाला अन्तर है। फिर भी दोनों में कुछ समानताएं भी अवश्य देखने को मिल

ही जाती हैं, लेकिन वे सैद्धान्तिक ही हैं, व्यवहारिक नहीं हैं।

समानताएं (Similarities) :- संयुक्त राज्य अमेरिका तथा ग्रेट ब्रिटेन की दलीय-प्रणाली में निम्नलिखित समानताएं दृष्टिगोचर होती हैं :-

(1) दोनों ही देशों में द्वि-दलीय प्रणाली है। यद्यपि वहां पर अन्य छोटे दल भी हैं, लेकिन उनकी राजनीति में कोई अहम् भूमिका नहीं रही है। अमेरिका में रिपब्लिकन दल तथा डेमोक्रेटिक दल का शासन पर प्रभाव है तो ब्रिटेन में श्रमिक दल तथा अनुदार दल के हाथ में ही आज तक शासन की बागडोर रही है। इन दो दलों के अतिरिक्त आज तक न तो अमेरिका में और न ही ब्रिटेन में किसी अन्य दल ने सत्ता का सुख नहीं भोगा है।

(2) दोनों ही देशों की दल-व्यवस्था परम्पराओं और प्रथाओं के विकास का परिणाम है। संविधान में कहीं भी दलीय-व्यवस्था का उल्लेख नहीं है।

(3) दोनों देशों की दल-प्रणाली का दलीय संगठन एक पिरामिड की तरह है। यह संगठन राष्ट्रीय, राज्यीय तथा स्थानीय स्तर तक विभिन्न पद-सोपानों में संगठित है।

असमानताएं (Dissimilarities) :- यद्यपि दोनों में कुछ समानताएं भी हैं, लेकिन अन्तर अधिक है। दोनों देशा में राजनीतिक दलों के कार्य, उद्देश्य व साधन अलग अलग हैं। पॉवेल ने कहा है-"संयुक्त राज्य अमेरिका के राजनीतिक दल उद्देश्य एवं स्वरूप की दृष्टि से इंग्लैण्ड तथा अधिकांश अन्य देशों में अलग हैं।" दोनों देशों की दल प्रणालियो में निम्नलिखित अन्तर हे :-

(1) मौलिक सिद्धान्तों के आधार पर अन्तर :- अमेरिकन राजनीतिक दलों के सैद्धान्तिक उद्देश्य व कार्यक्रम एक समान हैं। डेमोक्रेटिक दल तथा रिपब्लिक दल की नीतियों व कार्यक्रमों में कोई मतभेद नहीं हैं। ब्राईस ने दोनों दलों की तुलना ऐसी दो खाली बोतलों से की है जिनमें अलग-अलग पेय के लेबल लगे हुए हैं। इसी तरह एसरसन तथा जार्डन ने भी अपनी-अपनी व्याख्याएं प्रस्तुत की हैं। एमरसन का कहना है कि "अमेरिकी दल परिस्थितियों के दल हैं, सिद्धान्तों क नहीं।" जार्डन ने कहा है कि "जहां तक सिद्धान्तों का सम्बन्ध है दोनों में मौलिक भेद नहीं है। वे दो बधिया किए हुए सुअरों की तरह है जिनमें एक मोटा है एवं उसके दोनों पैर नांद में हैं, दूसरा पतला, व्याकुल पशु है जो अपने लिए खुली जगह पाने के लिए अपनी पूरी शक्ति लगा रहा है।" इसके विपरीत ब्रिटेन में श्रमिक दल तथा अनुदार दल की नीतियों व कार्यक्रमों में दिन-रात का अन्तर है। जहां चुनाव के बाद अमेरिका को विरोधी दल चुप बैठकर सरकार के पक्ष में कार्य करता है, वहीं ब्रिटेन का विपक्षी दल सत्तारूढ़ दल पर कीचड़ उछालता रहता है। इसका प्रमुख कारण दोनों की नीतियों व कार्यक्रमों में पाया जाने वाला वैचारिक अन्तर है। ब्रिटेन में सैद्धान्तिक रूप से दोनों दलों में वैचारिक असमानताएं पर्याप्त मात्रा में हैं। वुडवर्थ ने लिखा है-"ब्रिटेन के दल एक दूसरे पर कीचड उछालते हुए एक ही मार्ग पर एक ही गन्तव्य स्थान की तरफ जा रहे होते हैं।" जहां अनुदार दल अनुदारवाद का समर्थक है, वहीं श्रमिक दल उदारवाद का समर्थन करता है।

(2) दलीय अनुशासन के आधार पर अन्तर :- अमेरिका में राजनीतिक दलों में दलीय अनुशासन का अभाव है। कांग्रेस में कई बार सत्तारूढ़ दल के सदस्य भी अपने नेता के विरुद्ध मत देते हैं। कांग्रेस अधिवेशन में दोनो दलों में समान विचारधारा वाले सदस्यों के अलग गुट बन जाते हैं, लेकिन ब्रिटेन में ऐसा नहीं है। दोनों दलों के सदस्यों को कठोर दलीय अनुशासन में रहना पड़ता है। वहां दल-बदल जैसी घटनाएं कम ही होती हैं। ब्रिटेन में दल-सचेतकों (party Whips) का सम्मान किया जाता है और सभी सदस्य अपने-अपने नेतृत्व में पूर्ण आस्था बनाए रखते हैं।

(3) दलीय संगठन की प्रकृति के आधार पर अन्तर :- अमेरिका में राजनीतिक दलों का संगठन कमजोर है व स्थानीयता की भावना में ओत-प्रोत है। वहां राजनीतिक दलों के राष्ट्रीय संसद केवल राष्ट्रपति के चुनावो के समय ही उजागर होता है। वहां दलीय संगठन स्थानीयता पर आधारित हैं। वहां स्थानीय नेताओं को राष्ट्रीय संगठन का आधार माना जाता है। इसी कारण वहां दलीय अनुशासन की कमी है। इसके विपरीत ब्रिटेन में राजनीतिक दलों का संगठन राष्ट्रीयता के आधार पर है। वहां स्थानीय हितों की बजाय राष्ट्रीय हितों को पहल दी जाती है। दल की समस्त नीतियां व कार्यक्रम राष्ट्रीय सन्दर्भ में ही निर्धारित किए जाते हैं। दल की स्थानीय इकाइयों को केन्द्रीय निर्देशन में चलना पडता है, जबकि अमेरिका में विपरीत स्थिति है। तात्पर्य यह है कि ब्रिटेन में दलीय प्रणाली की प्रकृति केन्द्रीयकरण की पोषक है, वहीं अमेरिकन दल प्रणाली विकेन्द्रीयकरण की तरफ झुकी हुई है।

(4) दलीय सक्रियता के आधार पर अन्तर :- अमेरिका में राजनीतिक दल राष्ट्रपति चुनाव के समय ही सक्रिय होता है, शेष सारा समय वे चुपचाप रहकर सत्तारूढ़ दल का ही समर्थन करते हैं। कभी-कभार एकाध विषय पर वे विपरीत टिप्पणी भी दे देते हैं। लेकिन ब्रिटेन में राजनीतिक दल हमेशा सक्रिय रहते हैं। वहां किसी भी समय लोक सदन को भंग किए जाने का खतरा बना रहता है। इसके विपरीत अमेरिका में मन्त्रिमण्डल के अभाव व शक्ति पृथक्करण के कारण ऐसा सम्भव नहीं है। शायद इसी कारण वहां के दल निष्क्रिय रहते हैं। वहां विरोधी दल भी सत्तारूढ़ दल की ही नीतियों का समर्थन करता रहता है।

(5) दल के नेता की स्थिति के आधार पर अन्तर :- अमेरिका में दल के नेता की स्थिति इतनी महत्वपूर्ण नहीं है कि दल के सदस्य उसके आदेशों को आंख बन्द करके पालना में लगे रहें।वहां पर दलीय नेता के आदेशों को कई बार मानने से इन्कार भी कर दिया जाता है। दलीय नेता के आदेशों का पालन न करने का सीधा अर्थ दलीय अनुशासन का अभाव है। दलीय नेता की बात न मानने पर वहां किसी सदस्य के विरुद्ध कोई अनुशासनात्मक कार्यवाही नहीं हो सकती। इसके विपरीत ब्रिटेन में दलीय नेता की स्थिति बहुत महत्वपूर्ण है। दलीय नेता ही दल का प्रमुख प्रवक्ता होता है। उसके विरुद्ध कोई भी सदस्य बोलने की हिम्मत नहीं कर सकता। यदि वह ऐसा नहीं करता है तो उसे दल से निकाल दिया जाता है। यही भय दलीय नेता को महत्वपूर्ण स्थिति प्रदान करता है। दलीय नेता का विरोध करने का सीधा अर्थ है-अपने राजनीतिक जीवन की हत्या।

(6) जन-उत्तरदायित्व के आधार पर अन्तर :- अमेरिका में राजनीतिक दलों के घोषणापत्र अस्पष्ट प्रकृति के होते हैं और चुनावों के बाद जनता से किए गए वायदों से मुकरना आम बात हो गई है। वहां यह आवश्यक नहीं है कि सत्तारूढ़ दल अपने वायदों को पूरा करे। इसके विपरीत ब्रिटेन में राजनीतिक दल जनता से प्राप्त आदेश का सम्मान करते हैं और चुनावों के समय जनता से किए गए वायदों को पूरा करने के प्रयास भी करते हैं।

(7) दल का शासन पर प्रभाव के आधार पर अन्तर :- अमेरिका में मतदाता दल को वोट इस आधार पर नहीं देते कि कांग्रेस में उस दल की विजय दल की नीति को लागू करने की गारन्टी है। इसके विपरीत ब्रिटेन में जनता किसी दल एक निश्चित जनादेश इस आधार पर प्रदान करती है कि वह दल सत्तारूढ़ होकर जनादेश का पालन करेगा। अमेरिका में दल की नीति शासन की नीति नहीं हो सकती, जबकि ब्रिटेन में दल की नीति सरकार की नीति होती है। इसलिए अमेरिका की तुलना में ब्रिटेन में दल का शासन पड़ता है।

(8) दबाव समूहों की क्रियाशीलता का राजनीतिक दलों पर प्रभाव :- अमेरिका में राजनीतिक दलों पर हित व दबाव समूहों का अधिक प्रभाव रहता है। वहां राजनीतिक दल दबाव समूहों के बिना एक कदम भी नहीं चल सकते। आज विश्व में जितना प्रभाव दबाव समूहों का अमेरिकन राजनीतिक दलों पर है अन्यत्र नहीं है। इसके विपरीत ब्रिटेन में हित व दबाव समूहों का राजनीतिक दलों पर बहुत ही कम मात्रा में प्रभाव है।

(9) लूट-प्रणाली के आधार पर अन्तर :- अमेरिका में लूट-प्रणाली प्रचलित है। आज भी अमेरिका में महत्वपूर्ण पदों को राष्ट्रपति उन पर अपने चहेतों को बिठाकर भरता है। इसके विपरीत ब्रिटैन में ऐसा नहीं है। वहां सरकार बदलने पर प्रशासनिक अधिकारियों को पद-विमुक्त होने का कोई भय नहीं है। वहां स्थायी नौकरशाही है। इसके विपरीत अमेरिका में नई सरकार के गठन के बाद पहले से कार्य कर रहे लोक सेवकों को हटने का भय सताता रहता है। इसका प्रमुख कारण लूट-प्रणाली (Spoil System) है।

अतः उपरोक्त विवेचन के बाद कहा जा सकता है कि अमेरिका की दल प्रणाली ब्रिटेन की दल प्रणाली की तुलना में अधिक दोषग्रस्त है। जहां अमेरिका में दलीय अनुशासन का अभाव, लूट प्रथा, दलीय संगठन की कमजोर स्थिति, जन-उत्तरदायित्व का अभाव, हित व दबाव समूहों से प्रभावित तथा दलीय नेता की कमजोर स्थिति से ग्रस्त है, वहीं ब्रिटिश दलीय व्यवस्था इन दोषों से मुक्त है। लेकिन अनेक दोषों के बावजूद आज भी अमेरिकन दल प्रणाली ब्रिटेन की तरह ही सफलतापूर्वक कार्य कर रही है। यही सन्तोषजनक स्थिति है जो अमेरिकन दल प्रणाली को लोकप्रिय बनाती है।

स्विस दल-प्रणाली

(Swiss Party System)

स्विट्जरलैण्ड विश्व को सबसे प्राचीन लोकतन्त्र का घर है। लोकतन्त्र में राजनीतिक दलों का बहुत महत्व होता है। परन्तु

स्विट्जरलैण्ड में राजनीतिक दलों की वह स्थिति नहीं है जो ब्रिटेन, भारत तथा अमेरिका में है। जनमत संग्रह के बढ़ते महत्व ने राजनीतिक दलों की स्विट्जरलैण्ड में भूमिका को समेटकर रख दिया है। वहां की शासन व्यवस्था में राजनीतिक दलों की महत्वपूर्ण भूमिका नहीं है। स्विस राजनीतिक दलों की चुनाव में हार या जीत से कोई फर्क नहीं पड़ता। वहां पर दलीय संघर्ष व दलीय भावना बहुत ही कम है। वहां किसी भी राजनीतिक पार्टी के नियमपूर्वक चन्दा देने वाले सदस्य नहीं हैं और न ही दलीय नीति का प्रचार व नियन्त्रण रखने वाली कोई केन्द्रीय संस्था है। इसी कारण स्विस दलीय व्यवस्था को अति दुर्बल दलीय-व्यवस्था कहा जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका की तरह स्विस दलों का प्रमुख कार्य जनमत को संगठित तथा जागृत करना, राजनीतिक विषयों को परिभाषित करना और विभिन्न प्रशासकीय अंगों के लिए प्रत्याशी खड़े करना है। सत्य तो यह है कि स्विस दलीय संगठन भी अमेरिकन दलीय संगठन की तरह ढीला-ढाला है और दलों की भूमिका दबाव समूहों जितनी प्रभावकारी है।

स्विस राजनीतिक दलों की उत्पत्ति व विकास

(Origin of the Swiss Political Parties)

स्विस राजनीतिक दलों का इतिहास स्विस संघ से भी पुराना है। स्विट्जरलैण्ड में सबसे प्रथम दल उदार दल (Liberal Party) है। जिसकी उत्पत्ति बुद्धिजीवियों, श्रमिकों और किसानों के बीच हुए 1815 के समझौते के परिणामस्वरूप हुई। इस दल का प्राथमिक उद्देश्य सामन्तों का विरोध करना था। इस दल के प्रयासों के कारण 1830 में बहुत सारे कन्टनों को राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त हुई। 1832 में इस दल का विभाजन हो गया और दल में क्रान्तिकारी विचार रखने वाले सदस्यों ने क्रान्तिकारी दल (Redical Party) का गठन कर लिया। यह दल उस समय स्विस संघ के स्थान पर एक शक्तिशाली लोकतांत्रिक राष्ट्रीय राज्य व केन्द्र सरकार की स्थापना का समर्थक था ताकि स्विस नागरिकों को राजनीतिक व नागरिक अधिकार प्राप्त हो सकें। इसके बाद 1845 में उदार दल और क्रान्तिकारी दल का विरोध करने के लिए एक नया दल उभरा जिसे 'कैथोलिक अनुदार दल' कहा जाता है। इस दल को सात कैथोलिक धर्म वाले कैण्टनों का समर्थन प्राप्त था। 1845 में ही इन सातों कैण्टनों ने अपना अलग संघ बनाया जिसे साउण्डरबन्द कहा जाता है। 1847 में कैथोलिक दल के समर्थकों ने खुला विद्रोह कर दिया जिससे स्विट्रजरलैण्ड में गृह-युद्ध (Civil war) की शुरुआत हो गई। इस गृह युद्ध में उदार दल तथा क्रान्तिकारी दल की विजय हुई; लेकिन कुछ समय बाद उदार दल तथा क्रान्तिकारी दल में भी आपसी मतभेद बढ़ गए। क्रान्तिकारी दल द्वारा किए गए नए सुधारों का उदार दल ने तो विरोध किया, लेकिन जनता ने समर्थन किया। इसी जनसमर्थन के आधार पर क्रान्तिकारी दल ने 1874 में समस्त स्विस संविधान में संशोधन कर डाला। इस दल का स्विस शासन पर 1890 तक शासन रहा और 1890 में ही स्विट्जरलैण्ड में समाजवादी दल (Socialist Party) का उदय हुआ। 1891 के चुनावों में इस दल ने अनुदारवादी दल के साथ मिलकर सांझी-सरकार का गठन किया।

1918 में क्रान्तिकारी दल का विभाजन हो गया और इसके असंतुष्ट सदस्यों ने नई पार्टी का गठन किया जिसे कृषक दल कहा जाता है। 1919 में एक जनमत संग्रह द्वारा जनता ने विधायिका में प्रतिनिधित्व के लिए आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली स्वीकार कर ली और स्विस दल प्रणाली का स्वरूप बहुदलीय हो गया। इसके बाद स्विट्जरलैण्ड में कई अन्य छोटे-छोटे दलों का उदय भी हुआ। 1935 में कृषक दल में से एक 'स्वतन्त्र दल' का उदय हुआ। 1941 में फिर प्रजातन्त्रवादी दल का उदय हुआ। इनके अतिरिक्त स्विट्जरलैण्ड में साम्यवादी दल तथा मजदूर दल का भी जन्म हुआ। इस तरह धीरे-धीरे स्विस दल-प्रणाली बहुदलीय प्रकृति की हो गई।

स्विट्जरलैण्ड के प्रमुख राजनीतिक दल का संगठन व कार्यक्रम

(Organisation and Programmes of Major Political Parties of Switzerland)

स्विट्जरलैण्ड के प्रमुख राजनीतिक दलों का संगठन व कार्यक्रम इस प्रकार है :-

(1) उदार दल (Liberal Party) :- इस दल की स्थापना 1815 में हुई। 1830 में इस दल के प्रयासों के परिणामस्वरूप ही अधिकांश कैन्टनों को राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त हुई। 1874 के स्विस संविधान के निर्माण में इस दल ने क्रान्तिकारी दल के साथ मिलकर कार्य किया। इस दल का प्रभाव 1890 तक रहा और धीरे धीरे इसके प्रभाव में कमी आती गई। आज यह एक प्रभावशाली दल है। यह दल परम्परागत उदारवाद तथा अहस्तक्षेपवादी नीति का पोषक है। इसकी प्रमुख

नीति समाजवाद तथा प्रत्यक्ष संघीय करों का विरोध करने की है और इसके अधिकांश सदस्य व नेता प्रोटेस्टेन्टस धर्मावलम्बी हैं।

(2) कैथोलिक अनुदार दल (Catholic Conservative Party) :- इस दल की स्थापना उदार दल तथा क्रान्तिकारी दल के विरोध स्वरूप हुई। कैथोलिक धर्म में विश्वास करने वाले सात कैन्टनों ने 1845 में एक साउण्डरबन्द नामक संघ बनाया। 1847 में इस दल में शामिल कैन्टनों ने खुला विद्रोह कर दिया और उस विद्रोह में इस दल की हार हुई। इस युद्ध में क्रान्तिकारी तथा उदार दल की विजय हुई। 1848 में इस दल ने नवीन स्विस संविधान के निर्माण का विरोध किया। 1890 तक इस दल की भूमिका विरोधी दल के रूप में रही है, लेकिन 1890 के बाद इस दल का स्विस शासन में प्रभाव बढ़ा है। 1890 में इस दल ने उदार दल क साथ मिलकर प्रथम बार सरकार बनाई। तभी से लेकर आज तक यह दल स्विस राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहा है। ग्रामीण कैन्टनों में कैथोलिक चर्च के प्रभाव को स्थिर रखने के लिए यह दल कैन्टनों के अधिकारों का समर्थन तथा संघीय शक्ति के केन्द्रीयकरण का विरोध करता रहा है। इस दल का प्रयास हमेशा चर्च के अधिकारों की रक्षा करने का रहा है। यह पारिवारिक मामलों, शिक्षा, व्यक्तिगत सम्पत्ति तथा व्यक्ति की स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्धों व हस्तक्षेप की नीति का विरोधी है।

(3) क्रान्तिकारी दल (Radical Party) :- इस दल की स्थापना 1832 में हुई। अपनी स्थापना से पहले यह उदार का ही हिस्सा था। इस दल ने उदार दल के साथ मिलकर 1848 के स्विस संविधान का निर्माण किया था। इस दल का स्विस राजनीति पर 1918 तक प्रभाव रहा। 1874 के संविधान निर्माण में भी इसी महत्वपूर्ण भूमिका रही। यद्यपि सामाजिक जनतन्त्र तथा समाजवादी दल के अभ्युदय ने इस दल की प्रतिष्ठा को ठेस पहुंचाई है, लेकिन आज भी इस दल को स्विस राजनीतिक में महत्वपूर्ण सम्मान व स्थान दोनों प्राप्त हैं। यह दल न तो अधिक अनुदार है और न ही अधिक प्रगतिशील है। यह मध्यम मार्ग पर चलता है। यह संघीय सरकार को शक्तिशाली बनाने की भी वकालत करता है और कन्टनों के अधिकारों को भी एकदम कम करने का विरोधी है। यह दल राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए सैनिक संगठन की स्थापना पर बल देती है और विदेशी सम्बन्धों में तटस्थता की नीति अपनाए रखने पर जोर देता है। यह आर्थिक क्षेत्र में सरकार के सीमित हस्तक्षेप तथा सीमित सम्पत्ति के अधिकार का पक्षधर है।

(4) समाजवादी प्रजातान्त्रिक दल (Socialist Demicratic Party) :- इस दल की स्थापना 1890 में हुई। इस दल की स्थापना क्रान्तिकारी दल के कुछ सदस्यों ने मिलकर की। प्रारम्भ में यह मार्क्सवाद का समर्थक था, लेकिन अब यह विकासवादी समाजवाद का समर्थन करता है। यह दल सभी उद्योगों का राष्ट्रीयकरण और सभी व्यक्तिगत एकाधिकारों पर सामूहिक अधिकार चाहता है। यह श्रमिकों के लिए अधिक वेतन तथा सामाजिक सुरक्षा व बेकारी में सहायता, सभी को रोजगार देने, स्त्रियों को मताधिकार देने और संघीय परिषद के प्रत्यक्ष निर्वाचन की वकालत करता है। यह श्रमिकों के द्वारा संगठित वार्ता करके अपनी दशा सुधारने तथा वार्ता असफल हो जाने पर राज्य के हस्तक्षेप का समर्थक है। यह दल संयुक्त राष्ट्र संघ में स्विट्जरलैण्ड की सदस्यता, मिश्रित अर्थव्यवस्था व जन सहयोग का पक्षपाती है। आज स्विट्जरलैण्ड में यह दल ही सर्वाधिक सुदृढ़ व संगठित दल है।

(5) कृषक दल (Agrarian Party) :- 1918 में क्रान्तिकारी दल के पुन-विभाजन के परिणामस्वरूप कृषक, श्रमिक तथा मध्यवर्गीय दल (FAC) का जन्म हुआ। इस दल का संक्षिप्त नाम कृषक दल है। इस दल का प्रमुख उद्देश्य किसानों, कारीगरों तथा मध्यवर्गीय जनता की दशा में सुधार लाना है। यह दल कहने की बजाय करने पर अधिक बल देता है। इसके अतिरिक्त यह दल प्रबल राष्ट्रीय सुरक्षा, महान केन्द्रीयकरण, विशाल संघीय आर्थिक सहायता, अनाज के उत्पादन को प्रोत्साहन, सरकार द्वारा कृषि उत्पादों का मूल्य निर्धारण करने का प्रबल समर्थक है।

(6) अन्य दल (Other Parties) :- स्विट्जरलैण्ड में साम्यवादी दल, स्वतन्त्र दल, प्रजातन्त्रवादी दल, युवक कृषक दल भी हैं, लेकिन उनका प्रभाव अधिक नहीं है। साम्यवादी दल का आधुनिक श्रमिक दल है। यह दल बड़े व्यापारी का केन्द्रीयकरण, वृद्धावस्था का बीमा, स्त्री मताधिकार श्रमिक कानूनों का निर्माण, सामाजिक सुरक्षा के नियमों का निर्माण आदि बातों की वकालत करता है। इसके अतिरिक्त स्वतन्त्र दल (1935) आर्थिक क्षेत्र में राज्य के हस्तक्षेप का विरोधी है। इसके साथ ही स्विट्जरलैण्ड में कृषक दल से अलग हुआ युवक कृषक दल तथा द्वितीय विश्व के समय जन्म लेने वाला डेमोक्रेटिक दल भी हैं जिनकी स्विस राजनीति में प्रभावी भूमिका नहीं है।

दलीय संगठन (Party Organisation) :- स्विट्जरलैण्ड में चार प्रमुख दल - क्रान्तिकारी दल, कैथोलिक अनुदार दल,

समाजवादी प्रजातान्त्रिक दल तथा कृषक दल हैं। इन दलों का संगठन अत्यधिक शिथिल व अव्यवस्थित हैं। कुछ बड़े दलों के राष्ट्रीय स्तर पर तो संगठन हैं, लेकिन कैन्टनों तथा कम्यूनों के स्तर पर दलीय संगठनों की उपेक्षा की गई है। इन स्तरों पर छोटे-छोटे दलीय गुट ही कार्य करते हैं। इसी कारण स्विस राजनीतिक दलों को राजनीतिक टोलियों का संघ कहा जाता है। फिर भी स्विस दलीय-संगठन को तीन अंगों में बांटकर दलीय संगठन की औपचारिकता पूरी की गई है। दलीय संगठन के ये तीन अंग - डायट, केन्द्रीय समिति तथा कार्यकारिणी समिति हैं। डायट दल की सर्वोच्च सभा है और इसकी बैठक या सम्मेलन वर्ष में एक बार होता है। इसमें दल के समस्त कैंन्टनों से प्रतिनिधि भाग लेते हैं। इस सम्मेलन में दल की विगत वर्ष की विधियों के विषय में रिपोर्ट पेश की जाती है तथा वार्षिक बजट, समकालीन समस्याओं के लेखे-जोखे पर विचार होता है। इसी सम्मेलन में भविष्य की नीतियों पर निर्णय लिया जाता है। इसके अतिरिक्त दलीय संगठन के अगले स्तर पर केन्द्रीय समिति होती है जिसका निर्वाचन डायट द्वारा होता है। केन्द्रीय समिति का आकार बढ़ जाने पर छोटी कार्यकारिणी समिति का भी निर्वाचन कर लिया जाता है। इसके अतिरिक्त दल में डायट, केन्द्रीय समिति व कार्यकारिणी समिति में अध्यक्ष, उपाध्यक्ष व कोषाध्यक्ष भी होते हैं जिनका निर्वाचन दलीय संगठन के नियमों के अनुसार होता है।

स्विस दल-प्रणाली की विशेषताएं

(Features of Swiss Party System)

स्विस दल प्रणाली की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं :-

(1) बहुदलीय-प्रणाली (Multi Party System) :- स्विट्जरलैण्ड में ब्रिटेन तथा अमेरिका की तरह द्वि-दलीय प्रणाली न होकर भारत की तरह बहुदलीय प्रणाली है। वहां चार प्रमुख बड़े दल तथा कई छोटे दल हैं।

(2) मूल मतभेदों का अभाव (Lack of Basic Differences) :- स्विट्जरलैण्ड में राजनीतिक दलों में परस्पर सहयोग की भावना पाई जाती है। सभी दल प्राथमिक बातों में एकमत हैं और छोटे-मोटे मतभेदों से मुक्त दलों में राजनीतिक खींचा-तानी नहीं है। दलों में धर्म, नसल, भाषा आदि के आधार पर झगड़े नहीं होते। उनमें आपसी विषमता, विरोध तथा घृणा की भावना नहीं है। इसी कारण कुछ लोग स्विस दलीय व्यवस्था को निर्दलीय कहते हैं।

(3) विरोधी दल का अभाव (Absence of Opposition) :- स्विट्जरलैण्ड में हमेशा सांझा-सरकार बनती है जिसमें विभिन्न राजनीतिक दलों के प्रतिनिधि शामिल होते हैं। समस्त दलों को उनकी राजनीतिक शक्ति के अनुपात में प्रतिनिधित्व दिया जाता है जिसके कारण वहां दल-बदल की समस्या का समाधान हो जाता है। इसी कारण वहां पर कोई भी दल विरोधी दल की भूमिका अदा करने के लिए सरकार से बाहर नहीं रहता। कार्यपालिका तथा विधायिका में समस्त निर्णय सर्वसम्मति से लिए जाते हैं।

(4) शक्तिशाली केन्द्रीय संगठन का अभाव (Lack of Poweful Centralised Organisation) :- स्विस दलों के संगठन में वह केन्द्रीयकरण सुदृढ़ता तथा एकता नहीं पाई जाती जो ब्रिटेन तथा अमेरिका में पाया जाता है। दलों का संगठन काफी ढीला-ढाला है। इन दलों की कोई ठोस विचारधारा नहीं है। कैन्टनों तथा कम्यूनों के स्तर पर किसी भी राजनीतिक दल के नियमित संगठन नहीं हैं।

(5) दलगत भावना का अभाव (Lack of Party-Feeling) :- स्विट्जरलैण्ड में अमेरिका तथा अन्य यूरोपीय देशों जैसी विषम एवं कटु दलबन्दी नहीं है। इसका प्रमुख कारण यह है कि दलों का कोई राजनीतिक महत्व नहीं है। जनमत संग्रह की व्यवस्था अर्थात् प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र के सिद्धान्त ने वहां दलीय भावना को रोक रखा है।

(6) संविधानेत्तर विकास (Post-Constitutional Development) :- ब्रिटेन तथा अमेरिका की तरह स्विट्जरलैण्ड में भी संविधान के अन्तर्गत राजनीति दलों को कोई जगह नहीं दी गई है। ब्रिटेन तथा अमेरिका की तरह स्विस राजनीतिक दलों का भी विकास हुआ है, लेकिन 1919 में स्विट्जरलैण्ड में आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के अपनाए जाने से अप्रत्यक्ष रूप से राजनीतिक दल संविधान में स्थान प्राप्त करने में कामयाब हो गए हैं।

(7) करिश्माई नेतृत्व का अभाव (Lack of Cosmetic Leadeship) :- स्विस दल प्रणाली में करिश्माई नेतृत्व का गुण नहीं है। वहां भारत तथा ब्रिटेन की तरह आज तक कोई ऐसा नेता नहीं हुआ जिसका समस्त दल पर एकछत्र नियन्त्रण हो।

(8) धर्म-निरपेक्ष दृष्टिकोण (Secular Outlook) :- स्विट्जरलैण्ड में कैथोलिक अनुदार दल को छोड़कर शेष सभी दलों का

संगठन सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक सिद्धान्तों के आधार पर हुआ है। स्विस जनता के साथ-साथ राजनीतिक दल भी धर्म-निरपेक्ष दृष्टिकोण का पोषण कर रही है। इसी कारण स्विट्जरलैण्ड में विभिन्न धर्मों, जातियों व वर्गों के होते हुए भी आज तक राष्ट्रीय एकता व अखण्डता को कोई आंच नहीं आई है।

(9) जागरूक मतदाता (Aware Voters) :- स्विस मतदाता काफी जागरूक हैं। वे प्रायः राजनीतिक गतिविधियों से दूर रहकर भी चुनाव के समय दल को वोट न देकर व्यक्ति विशेष के गुणों के आधार पर ही मतदान करते हैं। मतदाताओं की मानसिक परिपक्वता ने राजनीतिक दलों को भी परिपक्व बना दिया है।

(10) अल्पव्ययी राजनीति (Less Expensive Politics) :- स्विट्जरलैण्ड में चुनावों के समय दल जो खर्च करते हैं, वह अन्य देशों की तुलना में काफी कम हैं। स्विस दलों के चुनाव के तरीके औचित्यपूर्ण होते हैं। वे अनावश्यक खर्च से बचते हैं और राजनीतिक जीवन में शुद्धता व नैतिक मूल्यों का ध्यान रखते हैं।

(11) विदेश नीति पर निष्पक्ष दृष्टिकोण :- स्विट्जरलैण्ड में सभी राजनीतिक दल विदेशी सम्बन्धों में निष्पक्ष व तटस्थ दृष्टिकोण बनाए रखने का समर्थन करते हैं। इसी कारण आज तक स्विस जनता को युद्ध का तांडव नहीं देखने को मिला है। इसी कारण स्विस सरकार का सैनिक प्रतिरक्षा पर भी खर्च नहीं होता और आज स्विट्जरलैण्ड की गिनती धनी देशों में होती है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि स्विस दल-प्रणाली में कुछ दोष भी जाए जाते हैं और गुण भी। फिर भी स्विस दल प्रणाली की सफलता का राज यही है कि वहां दल प्रणाली के दोषों को स्विस जनता के उत्कृष्ट चरित्र व देश-प्रेम, पारस्परिक सहिष्णुता, दलों की सुदृढ़ आर्थिक स्थिति, जनमत संग्रह की व्यवस्था, राष्ट्र का छोटा आकार, संघीय परिषद की निर्दलीय प्रकृति आदि ने दलीय कुप्रभावों को सीमित कर दिया है और आज भी स्विस दलीय प्रणाली विश्व में प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र को सफलता की तरफ ले जा रही है।

चीनी दल-प्रणाली

(Chinese Party-System)

साम्यवादी या सर्वसत्ताधिकारवादी देशों में भी राजनीतिक दलों का उतना ही महत्व है जितना प्रजातांत्रिक देशों में है। लेकिन साम्यवादी देशों की शासन-प्रणाली का संचालन एकमात्र साम्यवादी दल द्वारा ही किया जाता है। यद्यपि वहां पर अन्य राजनीतिक दल भी हो सकते हैं, लेकिन उन्हें भी साम्यवादी दल के मार्गदर्शन में साम्यवादी दल की नीतियों व कार्यक्रमों का ही संचालन करना पड़ता है। साम्यवादी देशों में दल-प्रणाली की प्रमुख विशेषता उसका संवैधानिक होना है। चीन में भी यही व्यवस्था है। वहां साम्यवादी दल एकमात्र शासन व समाज का पथ-प्रदर्शक व निर्देशक है। उसे अपने विरुद्ध किसी भी व्यक्ति, संस्था या समूह द्वारा की गई असहमति पूर्ण रूप से अमान्य है। चीनी साम्यवादी दल ही सर्वोच्च सम्प्रभु है। चीनी सविधान में साम्यवादी दल को ही देश के नेतृत्व का केन्द्र तथा चीनी शासन प्रणाली का हृदय स्वीकार किया गया है। चीन में साम्यवादी दल का एकमात्र सम्प्रभुत्ता 1949 से चली आ रही है और इसी कारण चीन में एक-दलीय प्रणाली है।

चीन में राजनीतिक दलों की उत्पत्ति व विकास

(Origin and Growth of the Political Parties in China)

चीन में साम्यवादी शासन की स्थापना से पहले चीन में डेमोक्रेटिक लीग, कोओमिन्तांग की क्रान्तिकारी समिति, किसान मजदूर दल, प्रजातांत्रिक चिह-कुंग दल व जनतांत्रिक पुर्ननिर्माण संघ आदि सात छोटे राजनीतिक दल थे। इनमें से अधिकतर दल आज भी हैं, लेकिन उनकी भूमिका साम्यवादी दल की सहायता करने वाले दलों के रूप में भी मान्य है। इन्हें साम्यवादी दल की सुरक्षा नली कहा जाता है।

साम्यवादी दल ही चीन का प्रमुख व एकमात्र राजनीतिक दल है। चीन में 1920 में एक चीनी प्राध्यापक, चेन-ट्यू-स्नू ने मार्क्सवाद के प्रचार व प्रसार के लिए एक संस्था की स्थापना की। इस संस्था को ही 1921 में साम्यवादी दल का रूप दे दिया गया। इसी वर्ष इस दल का प्रथम महासम्मेलन संघाई में हुआ। चेन-ट्यू-स्नू को साम्यवादी दल का प्रथम महासचिव नियुक्त किया गया। चीन के क्रान्तिकारी आन्दोलन को गति देने के लिए 1924 में इस दल ने कोमिन्तांग के साथ समझौता किया। लेकिन 1927 में यह दल कोमिन्तांग से अलग हो गया। दोनों में सत्ता प्राप्ति के लिए संघर्ष चलता रहा। 1937 में जापानी आक्रमण के

समय साम्यवादी दल फिर से कोमिन्तांग के साथ मिल गया और युद्ध के बाद फिर से दोनों अलग हो गए। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद माओ-त्से-तुंग का साम्यवादी दल पर पूरा नियन्त्रण हो गया। कोमिन्तांग के साथ सत्ता संघर्ष में माओ-त्से-तुंग के साम्यवादी दल की विजय हुई और समस्त चीन पर साम्यवादी दल का एकाधिकार हो गया। 1949 से लेकर आज तक साम्यवादी दल ही चीन में शासन का एकाधिकारी रहा है।

साम्यवादी दल का संगठन

(Organisation of the Communist Party)

चीनी साम्यवादी दल का विश्व सबसे बड़ा दल है। वर्तमान समय में यह 8 करोड़ से भी अधिक सदस्यता रखता है। इस दल का संगठन 'लोकतान्त्रिक केन्द्रवाद' (Democratic Centralism) के सिद्धान्त के आधार पर हुआ है। इसका अर्थ है कि इसमें निम्न स्तर के दलीय संगठन, उच्च स्तर के दलीय संगठनों का अप्रत्यक्ष पद्धति के आधार पर निर्वाचन करते हैं। साम्यवादी दल का संगठन सोवियत साम्यवादी दल के संगठन से मिलता-जुलता है। इसका संगठन पिरामिड की तरह है। नीचे से लेकर ऊपर तक सभी अंग शृंखलाबद्ध हैं। इस पिरामिड में निम्न स्तर पर स्थानीय दल कांग्रेस है तथा शीर्ष पर राष्ट्रीय दल कांग्रेस है। दल के सबसे निकाय को सैल (Cell) कहा जाता है। सैल के ऊपर जिला समिति, जिला समिति के ऊपर क्षेत्रीय समिति तथा उसके ऊपर प्रान्तीय समिति होती है। सबसे ऊपर राष्ट्रीय कांग्रेस हैं। साम्यवादी दल में अध्यक्ष के स्थान पर महासचिव का प्रावधान है।

साम्यवादी दल का प्रारम्भिक निकाय सैल (Cell) है। दल के कुछ सदस्य मिलकर किसी भी कृषि फार्म, औद्योगिक संस्थान, सरकारी कार्यालय, शिक्षा संस्थान व जन कम्यून से प्रारम्भिक निकायों का गठन कर सकते हैं। कई बार अधिक सदस्य होने पर उच्चतर दलीय संगठन की अनुमति से प्रारम्भ दलीय समितियों का भी गठन किया जा सकता है। दलीय संविधान के अनुच्छेद 32 के अनुसार प्रारम्भिक निकाओं को प्रमुख कार्य-दल के सिद्धान्तों, नीतियों व निर्णयों का प्रचार करना, जनता के सामने आदर्श प्रस्तुत करना, दलीय समस्याओं में एकता बनाए रखना, दल के सदस्यों को माओवाद की शिक्षा देना, दल के सदस्यों के अधिकारों की रक्षा करना, जनमत को तैयार करना, नए सदस्य बनाना तथा सदस्यता शुल्क देना, दलीय अनुशासन बनाए रखना, क्रांतिकारी भावना का विकास करना तथा आत्म-आलोचना की शक्ति का विकास करना हैं। इसके बाद जिला, प्रदेश तथा प्रान्तीय स्तरों पर स्थानीय दलीय कांग्रेस होती है। प्रत्येक स्थानीय कांग्रेस दलीय समिति, स्थायी समिति तथा स्थानीय सचिवालय के सदस्यों की नियुक्ति करती है। 1982 के दलीय संविधान के अनुच्छेद 25 में स्थानीय दलीय कांग्रेस की प्रमुख शक्तियां - अपने स्तर की दलीय समितियों के प्रतिवेदनों पर विचार करना, दलीय समितियों तथा अनुशासन आयोगों की नियुक्ति करना तथा दलीय सलाहकार-समिति की नियुक्ति करना है। इसके बाद दल के संगठन में राष्ट्रीय कांग्रेस का स्थान सर्वोच्च है। इसकी बैठक 5 वर्ष में एक बार अवश्य होती है। इसका अधिवेशन केन्द्रीय समिति द्वारा बुलाया जाता है। विशेष परिस्थितियों में यह अधिवेशन कभी भी बुलाया जा सकता है। राष्ट्रीय कांग्रेस के सदस्यों की संख्या तथा चुनाव का तरीका केन्द्रीय समिति द्वारा निर्धारित किया जाता है। दलीय संविधान के अनुच्छेद 19 में राष्ट्रीय कांग्रेस की शक्तियां व कार्य-केन्द्रीय समिति के प्रतिवेदनों पर विचार करना, दल से सम्बन्धित सभी महत्वपूर्ण विषयों पर विचार करना, दलीय संविधान में परिवर्तन, केन्द्रीय समिति का चुनाव करना, केन्द्रीय परामर्शदात्री तथा अनुशासन आयोग के सदस्यों का चुनाव व उनके प्रतिवेदनों पर विचार करना हैं।

साम्यवादी दल के केन्द्रीय निकायों में दलीय केन्द्रीय समिति का सर्वाधिक प्रमुख स्थान है। इसके सदस्यों का चुनाव राष्ट्रीय दल कांग्रेस द्वारा होता है। इस समिति का चुनाव 5 वर्ष के लिए होता है। यह दल की संचालक शक्ति है। यह समिति राष्ट्रीय दल कांग्रेस के प्रतिनिधियों की संख्या का निर्धारण व उनकी नियुक्ति करती है। यह समिति के अध्यक्ष, केन्द्रीय पोलिट ब्यूरो तथा केन्द्रीय सचिवालय का भी निर्वाचन करती है। इसके बाद साम्यवादी दल का छोटा निकाय पोलिट ब्यूरो है जो एक कार्यकारी निकाय है। यह दल की केन्द्रीय समिति के अधिवेशन को आमन्त्रित करता है। यह केन्द्रीय समिति की अनुपस्थिति में उसके कार्यों को पूरा करता है। यह अपने निर्णय केन्द्रीय समिति के पास भेजता है। इसकी सदस्य संख्या 50 है, जबकि केन्द्रीय समिति में 196 सदस्य हैं। इस दृष्टि से यह केन्द्रीय समिति का छोटा व सहायक रूप है। इसके बाद स्थायी समिति (Standing Committee) का स्थान है। यह समस्त दल का मस्तिष्क है। इसमें राष्ट्रीय स्तर के गणमान्य नेता होते हैं। यह समिति राष्ट्रीय नीति निर्माण में सर्वोपरि है। इसके अलावा साम्यवादी दल में सचिवालय है जो दल के विभिन्न कार्यों का सम्पादन

करता है। इसके अतिरिक्त कुछ सहायक सगठन व छोटे राजनीतिक दल भी हैं जो साम्यवादी दल के ही अधीन रहकर कार्य करते हैं। इनमें 'नव प्रजातन्त्र संघ' रेड गार्डस' कम्युनिस्ट यूथ लीग, आदि सहायक संगठन हैं। इसके अतिरिक्त कोमित्तांग की उग्र समिति, चिह कूंग दल, कृषक एवं श्रमिक दल, डेमोक्रेटिक लीग ऑफ चायना आदि राजनीतिक दल भी चीनी साम्यवादी दल की सुरक्षा नली के रूप में कार्य करते हैं।

चीनी दलीय-प्रणाली की विशेषताएं

(Features of Chinese Party System)

चीन में 1949 से आज तक एक ही राजनीतिक दल है। यह दल जनवादी चीन की राजनीतिक व्यवस्था में दल, सरकार तथा देश का स्वरूप लिए हुए है। यह दल चीनी शासन व समाज का सर्वोपरि सम्प्रभु है। इस दल की विशेषताएं ही चीनी दल की विशेषताएं हैं। ये विशेषताएं निम्नलिखित हैं :-

(1) एक दलीय व्यवस्था (The Single Party System) :- चीन की स्वतन्त्रता से लेकर आज तक वहां एक ही दल का शासन रहा है। यह दल साम्यवादी दल ही है। यद्यपि चीन में बहुदलीय पद्धति को मान्यता दी गई है और वहां कई छोटे-छोटे राजनीतिक दल भी हैं। लेकिन सभी अन्य दल साम्यवादी दल के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं और उसके मार्गदर्शन में साम्यवादी नीतियों व कार्यक्रमों को लागू करने के लिए ही कार्य करते हैं।

(2) प्रजातांत्रिक केन्द्रवाद (Democreatic Centralism) :- चीनी दल प्रणाली में साम्यवादी दल का गठन कुछ निश्चित सिद्धान्तों पर हुआ है। इनमें सबसे प्रमुख सिद्धान्त लोकतन्त्रीय केन्द्रवाद का है। संविधान के अनुच्छेद 5 में लिखा है कि "राष्ट्रीय जन कांग्रेस स्थानीय जन कांग्रेस और राज्य के सभी अंग प्रजातन्त्रीय केन्द्रवाद (Democratic Centralism) का प्रयोग करते हैं। माओ ने अपनी रचना 'On Coalition Govt.' में लिखा है-"चीनी राजनीतिक प्रणाली एक ही साथ प्रजातन्त्रीय और केन्द्रीत है अर्थात् यह प्रजातन्त्र के आधार पर केन्द्रित पथ-प्रदर्शन के अधीन होने के कारण प्रजातांत्रिक है।" इसका तात्पर्य यह है कि इसमें प्रत्येक निम्न स्तर की दल-संस्था अपने उच्च स्तर की दल संस्था का निर्वाचन करती है। इसमें प्रत्येक निम्न संगठन अपने से उच्च संगठन के अधीन होता है ओर दलीय संगठन एक पिरामिड की तरह होता है। सभी अधीनस्थ दलीय संस्थाएं उच्च संस्था के आदेशों के अनुसार ही कार्य करती है अर्थात् उच्च संगठन का निम्न संगठनों पर पूरा नियन्त्रण रहता है।

(3) दलीय सर्वोच्चता (Supremacy of Party) :- चीनी दल प्रणाली में साम्यवादी ही सर्वोच्च है। देश में महत्वपूर्ण पदों पर सभी नियुक्तियां साम्यवादी दल की सिफारिश पर ही होती है। साम्यवादी दल ही देश का वास्तविक शासक होता है। राष्ट्रीय जन कांग्रेस सहित सभी राजनीतिक उसके निर्देशानुसार ही कार्य करती हैं। देश में महत्वपूर्ण पद साम्यवादी दल के नेताओं को प्रदान किये जाते हैं। वहां राष्ट्राध्यक्ष दल की केन्द्रीय समिति का भी अध्यक्ष होता है। 1982 के बाद साम्यवादी दल के अध्यक्ष का पद महासचिव के पद में परिवर्तित हो चुका है। आज साम्यवादी दल ही देश और समाज का अग्रणी है। देश के प्रशासन पर इसी का पूर्ण नियन्त्रण है। अतः चीनी दलीय-प्रणाली में दल ही सर्वोच्च है।

(4) कठोर दलीय अनुशासन (Strict Party Discipline) :- चीन में सोवियत संघ के साम्यवादी दल की तरह मोनालिथिक दल है। मोनालिथिक का अर्थ है-ठोस पत्थर का बना हुआ स्तम्भ। चीन का साम्यवादी दल भी पत्थर के स्तम्भ की तरह कठोर अनुशासन कायम रखता है। दल का स्वरूप पूर्णतया केन्द्रीयकृत तथा एकरूप है। इसमें गुटबन्दी के लिए कोई जगह नहीं है। दल के प्रति बगावत करने वालों को प्राणदण्ड तक दे दिया जाता है। दल में बार-बार शुद्धीकरण की प्रक्रिया की तरह अवसरवादी तथा प्रतिक्रियावादी व्यक्ति को बाहर किया जाता है। उनके लिए दल में कोई जगह नहीं होती। च्यांग चिंग को कठोर दलीय अनुशासन के कारण ही कठोर कारावास की सजा दी गई। इस तरह चीनी दलीय-प्रणाली में साम्यवादी दल कठोर अनुशासन कायम रखता है। वहां अपने हितों की अपेक्षा दल के हितों को प्राथमिकता दी जाती है। हैराल्ड हिन्टन ने कहा है-"दलीय एकता और अनुशासन चीनी साम्यवादी दल की प्रमुख विशेषता है।" अतः चीनी साम्यवादी दल बहुत ही संगठित, अनुशासनबद्ध तथा सुदृढ़ है।

(5) विश्व का सर्वाधिक विशाल साम्यवादी दल (Largest Communist Party of the World) :- चीनी साम्यवादी दल विश्व में सबसे बड़ा साम्यवादी दल है। इस दल की विशाल संख्या चीनी दलीय-प्रणाली को विशिष्टता का गुण प्रदान

करती है। 1945 में साम्यवादी दल की सदस्य संख्या 12 लाख थी जो आज 6 करोड़ है। इतनी विशाल सदस्यता वाला अन्य कोई दल विश्व में नहीं है।

(6) साम्यवादी दल की सदस्यता (**Membership of the Communist Party**) :- साम्यवादी दल एक बन्द या तंगदिल सभा है। इसकी सदस्यता सीमित रखी जाती है ताकि दल में एकता तथा अनुशासन कायम रह सके। इसकी सदस्यता प्राप्त करना आसान काम नहीं है। इसमें कठोर परिश्रम करने वाले तथा कष्टों को सहन करने वाले व्यक्ति ही सदस्यता ग्रहण कर सकते हैं। अर्थात् कर्मठ और विश्वसनीय व्यक्ति ही दल के सदस्य बन सकते हैं। चीनी दलीय संविधान की धारा 1 के अनुसार दल की सदस्यता की प्रमुख शर्त है :- (i) सदस्यता के लिए निश्चित चन्दा देना पडता है। (ii) दल के कार्यक्रम व संविधान को स्वीकार करना पड़ता है। (iii) दल द्वारा दिए गए निर्णयों को आंख बन्द करके स्वीकार करना पड़ता है। (iv) दल की सदस्यता ग्रहण करने वाले व्यक्ति को दलीय संगठन से सम्बन्धित होकर किसी भी स्तर पर कार्य करना पड़ता है। इसके साथ ही उसकी आयु 18 वर्ष होना भी जरूरी है। दल की सदस्यता उसी व्यक्ति को दी जाती है जो आजीवन साम्यवाद की सेवा करने के लिए तैयार हो, स्वार्थ को लोकहित में छोड़ने को तैयार हो, आत्म-आलोचना की शक्ति तथा मार्क्स, लेनिन, माओ तथा स्टॉलिन के सिद्धान्तों में विश्वास रखता हो।

(7) दल का सैद्धान्तिक आधार (**Fundamental Basis of the Party**) :- चीन का साम्यवादी दल मार्क्सवाद-लेनिनवाद के उन सिद्धान्तों पर आधारित है जिनकी व्याख्या माओ-त्से-तुग ने की है। माओ ने अपनी पुस्तक 'New Democracy' में चीनी क्रान्ति को प्रजातांत्रिक तथा साम्यवादी दो भागों में बांटा है। माओ का कहना है कि चीनी क्रांति एक नवीन रीति की क्रांति है जिसका नेतृत्व सर्वहारा वर्ग करेगा। इसके पहले चरण में नवीन प्रजातन्त्रीय समाज तथा सभी क्रान्तिकारी वर्गों की संयुक्त तानाशाही के अधीन राज्य की स्थापना करनी होगी। संयुक्त तानाशाही का अर्थ है-संयुक्त मोर्चे की स्थापना करना। माओ ने इस मोर्चे में श्रमिक, किसान तथा अन्य समान विचारधारा वाले कामगार वर्गों को शामिल करके समाजवाद की स्थापना की बात कही है। चीन का साम्यवादी दल आज भी माओ के ही सिद्धान्तों का अनुसरण करता है। साम्यवादी दल का प्रमुख उद्देश्य, साम्राज्यवाद, सामन्तवाद व नौकरशाही व्यवस्था को समाप्त करना, सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व को सुदृढ़ बनाना, साम्यवादी व्यवस्था की दृढ़ स्थापना एवं उसका विकास करना तथा विश्व में साम्यवादी नीतियों का प्रसार करना है।

चीनी साम्यवादी दल के कार्य व भूमिका

(Functions and role of the Chinese Communist Party)

चीनी साम्यवादी दल समस्त चीनी राष्ट्रीयताओं का विश्वासपात्र प्रतिनिधि है। यह दल मार्क्स, लेनिन और माओ के विचारों का प्रतिनिधि है। इस दल का प्रमुख कार्य शोषक वर्गों का अन्त करके साम्यवादी समाज की स्थापना करना है। इस दल को चीनी क्रान्ति का नियन्त्रक, रक्षक, प्रेरक, आदर्श, शिक्षक, सर्वहारा वर्ग का मार्गदर्शक, माओवाद का प्रचारक तथा चीनी समाज व शासन का वास्तविक प्रतिनिधि माना जाता है। जनवादी चीन की राजनीतिक व्यवस्था में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका है। इस दल का प्रमुख ध्येय साम्यवाद की पूर्ण स्थापना करना है। इसके प्रमुख कार्य व भूमिका निम्न प्रकार से समझी जा सकती है :

(1) यह चीनी क्रान्ति का नियंता व रक्षक है। इसका ध्येय साम्यवादी चीन की आन्तरिक तथा बाहरी शत्रुओं से रक्षा करना है।

(2) यह जनता का प्रेरक, आदर्श व शिक्षक है। इसका प्रमुख कार्य माओवाद की शिक्षा देना है।

(3) यह सभी राजनीतिक दलों व सार्वजनिक संगठनों पर नियन्त्रण रखता है।

(4) यह चीनी समाज के विभिन्न वर्गों से निर्मित प्रजातांत्रिक संयुक्त मोर्चे का नेतृत्व करता है।

(5) यह माओवाद का प्रचारक है। यह चीनी जनता को शिक्षित करता है और राष्ट्रीयता की दृढ़ भावना का विकास करता है।

(6) इस दल का प्रमुख उद्देश्य विश्व से पूंजीवाद का नाश करना तथा वहां साम्यवाद की स्थापना करना है। इसके विश्व के साम्यवादी दलों से सम्बन्ध हैं।

(7) यह देश व समाज का वास्तविक शासक है। देश का सम्पूर्ण प्रशासनिक संगठन इसी के नियन्त्रण में रहकर ही कार्य

करता है। देश की सभी कार्यपालक तथा विधायी संस्थाएं इसी के मार्गदर्शन में कार्य करती हैं। इसके सामने सरकार के सभी अंगों की स्थिति रबड की मुहर की तरह है।

(8) साम्यवादी दल चीन का सर्वोच्च सेनापति है। समस्त सैनिक शक्तियों पर साम्यवादी दल का ही प्रभाव है। चीन की रक्षा परिषद, सेना का प्रधान सेनापति तथा रक्षा मन्त्रालय का अध्यक्ष साम्यवादी दल के ही सदस्य होते हैं।

चीनी साम्यवादी दल की वास्तविक स्थिति

(Actual Position of the Chinese Communist Party)

उपरोक्त विवेचन के बाद कहा जा सकता है कि चीन साम्यवादी दल ही चीनी समाज का रक्षक, शिक्षक, माओवाद का अधिष्ठाता, सर्वोच्च सेनापति तथा सर्वोच्च प्रशासनिक अधिकारी व वास्तविक शासक है। यदि चीनी शासन-प्रणाली का व्यापक अवलोकन किया जाए तो सरकार की समस्त संस्थाएं व अंग साम्यवादी दल की इच्छा का ही संचालन करते हैं। उसका चीनी कार्यपालिका तथा विधायिका पर पूर्ण नियन्त्रण है। न्यायपालिका भी उसकी पहुंच से बाहर नहीं है। चीन में सरकार के सभी अंग व अन्य संस्थाएं चीनी साम्यवादी दल की नीतियों व कार्यक्रमों का ही संचालन करते हैं। लोकतन्त्रीय केन्द्रवाद पर आधारित होने के बावजूद भी यह केन्द्रवाद पर ही अधिक आधारित हैं। आलोचकों तथा राजनीतिक विश्लेषकों का कहना है कि चीन में सर्वहारा वर्ग के अधिनायकवाद की जगह 'साम्यवादी दल का अधिनायकवाद' है। इसी कारण कुछ विद्वान चीन के साम्यवादी दल को अलोकतन्त्रीय संस्था मानते हैं। स्वयं चीनी नेता भी साम्यवादी दल की अलोकतन्त्रात्मक तानाशाही की बात स्वीकार करते हैं। परन्तु इस बात से भी कोई इन्कार नहीं कर सकता कि चीन ने कम समय में साम्यवादी दल के अधिनायकवाद के अन्तर्गत ही महान सामाजिक व आर्थिक प्रगति की है। चीन में साम्यवादी सामाजिक स्थापना करने में इसी दल की महत्वपूर्ण भूमिका है। सत्य तो यह है कि प्रजातन्त्रवादियों की दृष्टि में साम्यवादी दल अधिनायकवादी हो सकता है, लेकिन चीन की परिस्थितियों के सन्दर्भ में वह आज भी चीनी समाज का आराध्य देव है। चीन के सर्वांगीण विकास में उसकी जो महत्वपूर्ण भूमिका रही है, उसे भुलाया नहीं जा सकता।

अध्याय-11

हित व दबाव समूह

(Interest and Pressure Groups)

उदारवादी लोकतन्त्र के विकास के साथ ही हित व दबाव समूहों का जन्म लेना एक महत्वपूर्ण घटना है। लोकन्त्र में विचारों की अभिव्यक्ति की छूट साहचर्य को जन्म देती है। जब परस्पर समान विचारधारा वाले व्यक्ति किसी संगठन का निर्माण करते हैं तो उसके पीछे सामूहिक व व्यक्तिगत हित की भावना काम कर रही होती है। आधुनिक राजनीति समाज में ऐसे हितवादी संगठन अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए सरकार की निर्णय-प्रक्रिया तक को भी प्रभावित कर डालते हैं। आज कोई भी राजनीतिक व्यवस्था इस हितवादी संगठनों की उपेक्षा नहीं कर सकती, क्योंकि ये संगठन ही गैर-राजनीतिक तत्वों को राजनीतिक व्यवस्था में धकेल कर राजनीतक व्यवस्था को गतिशील बनाते हैं। प्रारम्भ में इन हित समूहों का स्वरूप अधिक दबावकारी नहीं होता, लेकिन कालान्तर में ये राजनीतिक प्रक्रिया पर अपना पूरा प्रभाव डालने में सफल हो जाते हैं तो इनको दबाव समूह कहा जाता है। आज विश्व के अधिकांश देशों में समाज के विभिन्न वर्गों का प्रतिनिधित्व करने वाले हित व दबाव समूह हैं। साम्यवादी देशों में भी उदारवाद का प्रभाव बढ़ने से एक सीमा तक जनता को संगठित होने की स्वतन्त्रता प्राप्त हो गई है। भारत, अमेरिका, फ्रांस, ब्रिटेन आदि देशों में दबाव व हित समूह सफलतापूर्वक कार्य कर रहे हैं। आज इन्हें घृणा की दृष्टि से देखने की बजाय एक आवश्यक बुराई के रूप में स्वीकार किया जाने लगा है। फ्रेडरिक ने इन्हें दल के पीछे सक्रिय जन कहा है।

हित व दबाव समूह का अर्थ

(Meaning of Interest and Pressure Groups)

साधारण शब्दों में दबाव समूह लोगों के उस संगठित समूह को कहा जाता है जो अपने सदस्यों के हितों की सिद्धि के लिए सरकार की निर्णयकारिता को प्रभावित करता है। यद्यपि दबाव समूह के लिए कुछ विद्वान हित समूह का भी प्रयोग करते हैं, लेकिन बिना राजनीतिक प्रक्रिया को प्रभावित किए कोई भी हित समूह दबाव समूह नहीं कहला सकता। हित समूह में प्रभावकारिता की शक्ति आ जाने पर ही वह दबाव समूह का रूप लेता है। यही प्रभावकारिता समूह के हितों को प्राप्त करने में मददगार होती है। दबाव गुट को कई विद्वानों ने निम्न प्रकार से प्रभावित किया है :-

(1) हेनरी ए० टर्नर के अनुसार-"दबाव समूह गैर-राजनीतिक संगठन है जो सार्वजनिक नीति को प्रभावित करने का प्रयास करता है।"

(2) मैकाइवर के अनुसार-"दबाव समूह ऐसे संगठित या असंगठित व्यक्तियों का संकलन है जो दबाव के दॉव-पेचों का प्रयोग करता है।"

(3) ओडिगार्ड के अनुसार, "दबाव समूह ऐसे लोगों का औपचारिक संगठन है जिसके एक अथवा अधिक सामान्य उद्देश्य एवं स्वार्थ हों और घटनाक्रम को, विशेष रूप से सार्वजनिक नीति के निर्माण और शासन को इसलिए प्रभावित करने का प्रयास करे कि उनके हितों की रक्षा और वृद्धि हो सके।"

(4) मायरन वीनर के अनुसार, "हित अथवा दबाव समूह ऐसा ऐच्छिक समूह है जो प्रशासकीय ढांचे के बाहर रहकर सरकारी कर्मचारियों के नामांकन अथवा नियुक्ति, सार्वजनिक नीति के निर्माण, उनके प्रशासन और निर्वाचन को प्रभावित करने का प्रयास करता है।"

(5) वी०ओ० की के अनुसार, "दबाव समूह सरकारी नीति को प्रभावित करने के लिए बनाए जाने वाले संगठन हैं।"

(6) डेल के अनुसार, "दबाव समूह राजनीतिक प्रक्रिया के भाग होते हैं और सरकारी नीति की दिशा निर्धारित करने या बदलने का प्रयास करते हैं, लेकिन स्वयं सरकार नहीं बनाना चाहते।"

(7) हिचनर तथा हर्वोल्ड के अनुसार, "दबाव समूह सामान्य उद्देश्यों वाला कोई ऐसा व्यक्तियों का समूह है जो सार्वजनिक नीति को प्रभावित करके राजनीतिक गतिविधियों द्वारा अपने उद्देश्य पूरा करना चाहता है।"

(8) बी० के० गोखले के अनुसार-"दबाव समूह वे निजी समुदाय हैं जो सार्वजनिक नीतियों को प्रभावित करके अपने हितों को बनाए रखना चाहते हैं।"

(9) एस० ई० फाइनर के अनुसार, "दबाव समूह मुख्य रूप में स्वतन्त्र और राजनीतिक दृष्टि से तटस्थ संस्थाएं होती हैं जो सत्तारूढ़ सरकार के राजनीतिक स्वरूप की ओर ध्यान दिए बिना ही राजनीतिक दलों और नौकरशाही के साथ सौदा करती है।"

(10) एच.० जिगलर के अनुसर-"दबाव समूह एक ऐसा संगठित समूह है, जो अपने सदस्य को अनौपचारिक रूप से सरकारी पदों पर नियुक्त किए बिना ही सरकारी निर्णयों को प्रभावित करने की चेष्टा करता है।"

(11) सी०एच० ढिल्लों के अनुसार, "हित समूह ऐसे लोगों का समूह है जिनके उद्देश्य समान होते हैं। जब हित समूह अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सरकार से कुछ चाहने लगते हैं तो, तब वे दबाव समूह कहलाते हैं।"

हित समूह व दबाव समूह में अन्तर

(Difference between Interest Group and Pressure Group)

यद्यपि कुछ विद्वान् हित समूह और दबाव समूह में कोई अन्तर नहीं मानते, लेकिन दोनों में आधारभूत समानताएं होने के बावजूद भी अन्तर है। जब कोई समूह अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए राजनीति को प्रभावित करने को तैयार हो जाता है तो उसे हित समूह कहा जाता है। जब कोई हित समूह अत्यधिक सक्रिय होकर अन्य हित समूहों को पीछे धकेलकर अपने हितों की सिद्धि के लिए सरकार पर अपना दबाव बढ़ा लेता है तो उसे दबाव समूह की संज्ञा दी जाती है। कार्टर और हर्ज ने दबाव समूह और हित समूह में अन्तर बताते हुए लिखा है, "विभिन्न आर्थिक, व्यावसायिक, धार्मिक, नैतिक और अन्य समूहों से परिपूर्ण आधुनिक बहुलवादी समाज के समने अनिवार्य रूप से एक बड़ी समस्या यही है कि इन विभिन्न हितों तथा शासन और राजनीति के बीच में सम्बन्ध कैसे हों। एक स्वतन्त्र समाज में हित समूहों को स्वतन्त्र रूप में संगठित होने की अनुमति होती है और जब ये समूह सरकारी तन्त्र और प्रक्रिया पर प्रभाव डालने का प्रयास करते हैं और इस प्रकार कानूनों, नियमों और प्रशासकीय कार्यों को अपने अनुकूल ढालने की चेष्टा करते हैं तो वे हित समूह, दबाव समूहों में बदल कर सरकार पर दबाव डालने वाले हो जाते हैं।" दबाव समूह और हित समूह में प्रमुख अन्तर निम्नलिखित हैं :-

(1) हित समूह अपनी हित सुरक्षा के लिए अनुनयनी (persuasive) तरीके काम में लाते हैं, अर्थात् वे सरकार से प्रार्थना करते हैं। इसके विपरीत दबाव समूह अपने हितों की पूर्ति के लिए सरकार पर दबाव के तरीके प्रयोग करते हैं।

(2) हित समूह राजनीति से प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं रखते, जबकि दबाव समूह राजनीतिक गतिविधियों से प्रत्यक्ष सम्बन्ध रखते हैं और सदैव राजनीतिक प्रक्रिया को प्रभावित करने की चेरुटा करते रहते हैं।

(3) हित समूहों का सम्बन्ध सामाजिक संरचना व प्रक्रिया से होता है, उनका लक्ष्य तो सदैव सामाजिक गतिशीलता है। इसके विपरीत दबाव समूह राजनीतिक प्रक्रिया को प्रभावित करने का प्रयास करते रहते हैं, क्योंकि यही गुण उन्हें हित समूहों से अलग करता है।

(4) समाज में हित समूह तो अनेक होते हैं, लेकिन दबाव समूह संख्या में कम होते हैं, क्योंकि सभी हित समूह राजनीतिक प्रक्रिया को प्रभावित करने में सक्षम नहीं होते।

(5) हित समूहों का सम्बन्ध सामाजिक गतिशीलता से हे, जबकि दबाव समूहों का सम्बन्ध राजनीतिक व्यवस्था को गतिशील बनाने से है।

(6) हित समूह अपने लक्ष्य में कम सफल रहते हैं, क्योंकि उनके पास प्रभावशीलता का गुण नहीं होता। इसके विपरीत दबाव समूह प्रभावशीलता के गुण के कारण अपने लक्ष्य को आसानी से प्राप्त कर लेते हैं।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि हित समूह और दबाव समूह में कुछ अन्तर हैं, इसलिए दोनों को एक मानना भारी भूल है। लेकिन फिर भी राजनीतिक अध्ययन में इन दोनों का समानार्थी प्रयोग ही होता आया है। आज तक किसी ने भी हित समूह और दबाव समूह को सर्वथा अलग करके अध्ययन करने की चेष्टा नहीं की, इसी कारण इनके समानार्थी प्रयोग की विसंगति जारी है।

दबाव समूह व राजनीतिक दल में अन्तर

(Difference between Prrssure Groups and Political Parties)

किसी भी राजनीतिक व्यवस्था में दबाव समूह और राजनीतिक दल दोनों ही विद्यमान होते हैं। दोनों ही राजनीतिक गतिशीलता में अपनी अहम् भूमिका निभाते हैं। दोनों आपस में भी घनिष्ठ रूप से सम्बन्ध रखते हैं। दबाव समूह राजनीतिक दलों के साथ सहयोग करते हैं और राजनीतिक दल दबाव समूहों के। इसके बावजूद भी दोनों में निम्नलिखित अन्तर हैं :-

(1) राजनीतिक दल समुदाय के बहुत सारे वर्गों के बहुत सारे हितों का प्रतिमनिधित्व करते हैं, यहाँ तक कि वे पूरे राष्ट्र के हितों की चिन्ता करते हैं। इसके विपरीत हित समूहों या दबाव समूहों के उद्देश्य सीमित होते हैं और वे विशेष समूह के हितों की देख-रेख करते हैं।

(2) राजनीतिक दल अपने विशिष्ट हितों को प्राप्त करने के लिए सत्ता प्राप्त करने का प्रयास करते हैं, जबकि दबाव समूह सत्ता प्राप्त करने का सरकार का निर्माण करने की बजाय सरकार को प्रभावित करने तक ही सीमित रहते हैं।

(3) राजनीतिक दलों के संगठन का आधार व्यापक होता है, जबकि दबाव समूह का संगठन सीमित होता है, उसके सदस्यों की संख्या राजनीतिक दल की तुलना में कम होती है।

(4) राजनीति दलों की स्पष्ट राजनीतिक विचारधारा होती है, जबकि दबाव समूह की कोई राजनीतिक विचारधारा का कार्यक्रम नहीं होता। उनका सम्बन्ध तो हितों की प्राप्ति तक ही सीमित रहता है।

(5) राजनीतिक दल चुनावों में अपने प्रत्याशी खडे करते हैं और उनको सफलता दिलाने के लिए हर सम्भव प्रयास करते हैं। इसके विपरीत दबाव समूह चुनावों में अपने प्रत्याशी खड़े नहीं करते, लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से राजनीतिक दलों के प्रत्याशियों की ही मदद करते हैं।

(6) राजनीतिक दल एक राजनीतिक संगठन है, जबकि दबाव समूह गैर-राजनीतिक संगठन है।

(7) राजनीतिक दलों की सदस्यता अनन्य होती है अर्थात् एक व्यक्ति एक ही समय में केवल एक ही राजनीतिक दल का सदस्य बन सकता है, जबकि एक व्यक्ति एक ही समय में अनेक हित या दबाव समूहों का सदस्य हो सकता है।

(8) राजनीतिक दल सरकार के अन्दर तथा बाहर दोनों जगह कार्य करते हैं, जबकि दबाव समूह सरकार के बाहर ही कार्य करते हैं।

(9) राजनीतिक दल दीर्घकालिक लक्ष्य रखते हैं जबकि दबाव समूहों के लक्ष्य अल्पकालिक होते हैं। इसी कारण राजनीतिक दलों की तुलना में उनकी प्रकृति कम स्थायी होती है।

(10) राजनीति दलों का कार्यक्षेत्र व्यापक होता है, जबकि दबाव समूहों का सम्बन्ध मानव जीवन के किसी विशेष पहलू से होता है। इस तरह राजनीतिक दलों की तुलना में दबाव समूहों का कार्यक्षेत्र संकुचित व विशिष्ट होता है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि दबाव समूह और राजनीतिक दलों में काफी अन्तर है। लेकिन फिर भी राजनीतिक समाज में दोनों की भूमिका महत्वपूर्ण है। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं और राजनीतिक व्यवस्था को गतिशील बनाने में समान भागीदार हैं। दबाव समूहों और राजनीतिक दलों में स्पष्ट अन्तर तो विकसित देशों में ही देखने को मिलता है, विकासशील देशों में नहीं, क्योंकि विकासशील देशों में तो दबाव समूह आंतरिक संगठन की दृष्टि से कमजोर हैं।

हित व दबाव समूहों की विशेषताएं

(Features of Interest and Pressure Groups)

उपरोक्त विवेचन से हित व दबाव समूहों की निम्नलिखित विशेषताएं दृष्टिगोचर होती हैं :-

(1) दबाव समूह औपचारिक रूप से संगठित व्यक्ति समूह होते हैं।

(2) दबाव समूह के निर्माण का आधार स्वहित होता है और इसी की प्राप्ति करना इसका ध्येय भी होता है।

(3) दबाव समूह सरकार में भाग नहीं लेते, लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से सरकार की नीतियों को प्रभावित करते हैं।

(4) दबाव समूह सदस्य संख्या, उद्देश्य, चुनाव आदि की दृष्टि से राजनीतिक दल से अलग होता है।

(5) दबाव समूहों का कार्यक्षेत्र राजनीतिक दलों की तुलना में सीमित होता है।

(6) दबाव समूह सरकार पर अपना प्रभाव राजनीतिक दलों के माध्यम से ही डालते हैं।

(7) दबाव समूह सभी प्रकार की राजनीतिक व्यवस्थाओं में पाए जाते हैं। इसी कारण इनकी प्रकृति सर्वव्यापी होती है।

(8) दबाव समूहों की सदस्यता ऐच्छिक होती है। एक व्यक्ति एक समय में अनेक समूहों का सदस्य बन सकता है।

(9) दबाव समूहों का कार्यकाल अनिश्चित होता है।

(10) दबाव समूह गैर-राजनीतिक संगठन होते हैं।

दबाव समूहों के प्रकार

(Types of Pressure Groups)

आज विश्व के सभी देशों में दबाव समूहों की संख्या इतनी अधिक है कि उनका वर्गीकरण करना कठिन हो गया है। इनमें से आकार, उद्देश्य, प्रकृति की दृष्टि से सभी दबाव समूह अलग-अलग भागों में बांटे जा सकते हैं। फ्रेडरिक, राबर्टस सी०बोन, ब्लाण्डल, आमण्ड आदि विद्वानों ने दबाव समूहों को निम्नलिखित तरह से वर्गीकृत किया है :-

(1) ब्लौण्डल का वर्गीकरण (Blondel's Classification) :- ब्लौण्डल ने दबाव समूहों के निर्माण के प्रेरक तत्वों के आधार पर इन्हें दो भागों में बांटा है। यह वर्गीकरण (i) साम्प्रदायिक दबाव समूह (ii) साहचर्य दबाव समूहों के रूप में हैं। ब्लौण्डल का कहना है कि साम्प्रदायिक दबाव समूह सामाजिक सम्बन्धों के आधार पर बनते हैं। इनके निर्माण में परिवार, प्रगति, धर्म, वर्ग आदि तत्वों का महत्वपूर्ण योगदान होता है। ऐसे समूहों की सदस्याता जन्म से ही प्राप्त होती है। ब्लौण्डल ने साम्प्रदायिक दबाव समूहों को भी दो भागों-प्रथागत तथा संस्थागत दबाव समूहों में बांटा है। प्रथागत दबाव समूह प्रथाओं, रीति-रिवाजों व रूढ़ियों पर आधारित होते हैं। भारत में ऐसे ही दबाव समूह हैं। जब एक धर्म व जाति के लोग औपचारिक रूप से संगठित होकर संस्था का निर्माण कर लेते हैं तो उससे संस्थागत दबाव समूहों का जन्म होता है। भारत में जाति व धर्म के आधार पर अनेक दबाव समूह सरकार की नीति को प्रभावित करते हैं। ब्लौण्डल ने दबाव समेह का दूसरा प्रकार साहचर्य दबाव समूह बताया है। इस प्रकार के दबाव समूहों का लक्ष्य विशिष्ट होता है। औद्योगिक विकास के साथ-साथ ऐसे दबाव समूहों की संख्या में भी वृद्धि हुई है। इन समूहों का विशिष्ट लक्ष्य साधन के रूप में राजनीतिक व्यवस्था में इनकी मांगों को प्रवेश कराने में समर्थ होता है। यह दबाव समूह साम्प्रदायिक दबाव समूहों के सदस्यता की प्रेरणा के दृष्टिकोण से अलग होता है। ये दबाव समूह भी साम्प्रदायिक दबाव समूहों की तरह-संरक्षणात्मक व उत्थानात्मक दबाव समूह, दो तरह के होते हैं। संरक्षात्मक दबाव समूह अपने लक्ष्यों के सामान्य हितों की रक्षा करता है, जबकि उत्थानात्मक दबाव समूह विशिष्ट लक्ष्यों के साथ जन्म लेता है। गौर संरक्षण संघ, नारी स्वतन्त्रता संघ इसके प्रमुख उदाहरण हैं। श्रमिक कल्यांण संघ संरक्षात्मक दबाव समूह का, हरिजन सेवक संघ प्रथागत का तथा सेनिक-कल्याण परिषद संस्थात्मक दबाव समूह का प्रमुख उदाहरण है।

(2) ऑमण्ड का वर्गीकरण (Almond's Classification) :- ऑमण्ड ने संरचना और हित संरचना के आधार पर दबाव समूहों को चार भागों-(i) संस्थात्मक (ii) प्रदर्शनात्मक (iii) असमुदायात्मक (iv) समुदायात्मक में बांटा है। ऑमण्ड ने संस्थागत दबाव समूहों में उनको लिया है जो किसी राजनीतिक दल या अन्य संगठन के भीतर कार्य करते हैं। ये दबाव समूह अपने हितों के साथ-साथ अन्य समान हितों वाले वर्गों का भी प्रतिनिधित्व करते हैं। भारत में संसद, नौकरशाही तथा राजनीतिक दलों में ऐसे ही समूह पाए जाते हैं। इनका उद्देश्य सामाजिक और राजनीतिक हितों की पूर्ति करना होता है। ये दबाव समूह विकसित देशों में अधिक पाए जाते हैं। मजबूत संगठन के स्वामी होने के कारण ये हितों का स्पष्टीकरण करने में अधिक सफल रहते हैं। दबाव समूहों का दूसरा प्रकार प्रदर्शनात्मक दबाव समूहों का है। जो भीड़, जलुस, दंगों,

धरनों, हड़तालों आदि के रूप में अचानक ही राजनीतिक व्यवस्था में प्रवेश कर जाते हैं। इन्हें चमत्कारिक दबाव समूह भी कहा जाता है। ये दबाव समूह अस्त-व्यस्त प्रकृति के होते हैं। ये शासनतन्त्र को भयग्रस्त करके अपने हितों की प्राप्ति करने में सफल व असफल दोनों हो सकते हैं। भारत, फ्रांस, इटली आदि देशों में इनका बहुत प्रभाव है। तीसरा वर्ग असमुदायात्मक या असाहचर्य दबाव समूहों का है। इनका जन्म धर्म, रक्त सम्बन्ध, वंशानुगत या हित-सचार आदि तत्वों के आधार पर होता है। ये दबाव समूह धार्मिक नेताओं, विशिष्ट व्यक्तियों आदि द्वारा संगठित व असंगठित होते रहते हैं। इनकी प्रमुख विशेषता यह होती है कि ये हितों के साधन का काम निरन्तर न करके समय-समय पर ही करते हैं. आधुनिक युग में इनका महत्व सीमित है। दबाव समूहों की चौथी प्रकार, समुदायात्मक या साहचर्य दबाव समूहों का है। इस प्रकार के समूह विशेष व्यक्तियों के हितों का प्रतिनिधित्व करने के लिए औपचारिक रूप से संगठित होते हैं। श्रमिक संघ, व्यापारिक संघ इस प्रकार के ही दबाव समूह हैं। इस प्रकार के दबाव समूह नियमों पर आधारित होते हैं और अपने हितों की प्राप्ति के लिए विधि-सम्मत प्रक्रिया अपनाते हैं। भारत व अमेरिका में इस प्रकार के काफी समूह हैं।

(3) राबर्ट सी० बोन का वर्गीकरण (Robert C. Bone's Classification) :- राबर्ट सी० बोन ने दबाव समूहों को प्रकृति व उद्देश्यों की दृष्टि से दो भागों-(i) परिस्थिति-जन्य दबाव समूह (ii) अभिवृति जन्य दबाव समूह में बांटा है। परिस्थिति जन्य दबाव समूहों का उद्देश्य अपने सदस्यों की वर्तमान आर्थिक और सामाजिक अवस्था को सुधारना होता है। इनकी प्रकृति विशिष्ट होती है और ये अपने सदस्यों के हितों के साधने के लिए वैधानिक प्रक्रिया का ही उपयोग करते हैं। इनका ध्येय दीर्घकालीन हितों को प्राप्त करना होता है। दूसरा वर्ग अभिवृति जन्य समूहों का है जो कुछ मूल्यों पर आधारित होते हैं। ये समूह परिस्थिति जन्य समूहों से अलग होते हैं। इनका उद्देश्य सामाजिक परिवर्तन को प्राप्त करना है। इसके लिए ये शांतिपूर्ण तथा क्रांतिकारी दोनों साधनों का प्रयोग करते हैं। ये अपने लक्ष्यों को तेजगति की तकनीकों का प्रयोग करके अल्पकाल में ही प्राप्त करने की क्षमता रखते हैं।

(4) कार्ल फ्रेडरिक का वर्गीकरण (Karl Fredrick's Classification) :- कार्ल फ्रेडरिक ने दबाव समूहों को दो श्रेणियों -सामान्य और विशिष्ट दबाव समूहों में बांटा है। जो दबाव समूह सामान्य लक्ष्यों को लेकर चलते हैं, वे सामान्य दबाव समूह और जिनके हित विशिष्ट प्रकार के होते हैं, वे विशिष्ट दबाव समूह कहलाते हैं।

उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर कहा जा सकता है कि राबर्ट सी० बोन का वर्गीकरण सामान्य होते हुए भी दबाव समूहों की प्रकृति, संगठन, उद्देश्यों तथा कार्यविधि को स्पष्ट करने वाला महत्वपूर्ण वर्गीकरण है। यह वर्गीकरण अन्य की अपेक्षा अधिक सुस्पष्ट है। यह वर्गीकरण अपने आप में कुछ विशेष प्रकार के गुण लिए हुए है। लेकिन इनका अर्थ यह नहीं है कि ऑमण्ड, फ्रेडरिक तथा ब्लौण्डल के वर्गीकरण का कोई महत्व नहीं है। ये सभी वर्गीकरण कुछ न कुछ महत्व अवश्य रखते हैं।

दबाव समूहों के कार्यात्मक तरीके
(Functional Techniques of Pressure Groups)

दबाव समूह अपने हितों की प्राप्ति के लिए प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था में अलग अलग ढंग से कार्य करने के तरीके अपनाते हैं। प्रत्येक दबाव समूह का कार्यात्मक व्यवहार भी अलग अलग होता है, इसी कारण उनके द्वारा प्रयोग किए जाने वाले हित-साधन भी अलग-अलग प्रकार के हो जाते हैं। अपने हितों की प्राप्ति के लिए दबाव समूहों द्वारा प्रायः निम्नलिखित साधन या तकनीकें काम में लायी जाती हैं :-

(1) लॉबिईंग (Lobbying) :- सार्वजनिक नीति को प्रभावित करने के लिए हित व दबाव समूहों के सदस्य विधानमण्डल के विधायकों से सांठ-गांठ करते हैं। यही सांठ-गाठ विधायकों को दबाव समूहों के हित में नीति बनाने को बाध्य कर देती है। वे अपने प्रबल समर्थक विधायकों द्वारा विधानमण्डल में अपने हितों की मांग रखते हैं और मजबूत लॉबी के कारण प्रायः सफल भी हो जाते हैं। अपनी लॉबी मजबूत करने के लिए वे विधायकों को रिश्वत देने से भी नहीं चूकते। अमेरिका में इस प्रकार की मजबूत लॉबी वाले हजारों दबाव समूह हैं जो सरकार द्वारा रजिस्टर्ड भी हैं। वहां पर कानून निर्माण में इस लॉबिइंग प्रक्रिया का व्यापक प्रभाव है। भारत में भी इस प्रकार की लॉबिइंग वाले कुछ आद्योगिक घराने हैं जो नीति-निर्माण की प्रक्रिया को सीधे संसद में ही प्रभावित करते हैं।

(2) जनमत को प्रभावित करना (To influence the Public Opinion) :- दबाव समूह अपना पक्ष मजबूत करने के लिए

जनता से सीधा सम्पर्क बनाए रखते हैं। अपनी वाक्पुटता के बल पर इनके सदस्य जनमानस में अपनी समस्याओं का प्रचार करते हैं ताकि जनता की सहानुभूति भी प्राप्त की जा सके। इसके लिए वे समाचार पत्रों, पत्रिकाओं, रेडियो, टी०वी०, इन्टरनेट, सार्वजनिक सभाएं तथा प्रचार आदि के साधन अपनाते हैं। ये जानते हैं कि जनमत यदि उनके पक्ष में हो गया तो उनके हितों को प्राप्त करने में कोई बाधा नहीं आएगी। लोकतन्त्र में तो जनमत ही एक ऐसा अस्त्र है जो सरकार की नीति को प्रभावित करने की क्षमता रखता है। जनमत को अपने पक्ष में करने के लिए ये प्रतिवर्ष या मासिक रूप में अपनी विशेष रिपोर्ट, पुस्तक, पुस्तिकाएं आदि भी प्रकाशित करवाते रहते हैं।

(3) चुनाव (Elections) :- यद्यपि कोई भी दबाव समूह चुनावों में न तो प्रत्यक्ष रूप से अपने उम्मीदवार खड़े करता है और न ही सरकार में शामिल होने की लालसा रखता है। लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से प्रत्येक दबाव समूह चुनावी प्रक्रिया को प्रभावित करने का प्रयास करता है। सभी दबाव समूह चुनावों के समय अपने सहयोगी राजनीतिक दल को आर्थिक मदद भी देते हैं और चुनाव प्रचार में सहयोगी दलों के प्रत्याशियों के पक्ष में प्रचार भी करते हैं। उनकी सदैव यही इच्छा रहती है कि उनके समर्थक दल ही संसद में जाकर सरकार बनाएं ताकि उनके हितों का पूरा सम्मान हो सके। उनका चुनावी कार्यक्रम पर्दे के पीछे से ही चलता है। उन्हें पता होता है कि यदि किसी दल या उम्मीदवार का खुला समर्थन किया गया तो कालान्तर में उस दल का सरकार में प्रभाव समाप्त होते ही उनको ही अधिक हानि होगी। कई बार तो वे टिकट वितरण में अहम् भूमिका निभाते हैं। उनकी यही इच्छा रहती है कि उनके चहेतों को ही टिकट मिले और वे चुनाव जीतकर सरकार बनाएं। कई बार उनकी यह इच्छा पूर्ण हो जाती है, लेकिन कई बार नहीं। लेकिन दबाव समूह हार नहीं कानते। वे अगले चुनावों के लिए सांठ-गांठ कर लेते हैं। इस तरह यह लुका-छिपी का खेल वे खेलते रहते हैं और अपने हितों को प्राप्त करने का प्रयास जारी रखते हैं।

(4) विधायिका को प्रभावित करना (To influence the Liegislature):- दबाव समूह चुनावों में राजनीतिक दलों की सहायता इसी कारण करते हैं ताकि विधायिका में उनके हितों का सवाल रखने वाले पहुंच जाएं। वे संसदीय दल के व्यक्तियों के नामजद होने से सरकार में पहुंचने तक उनका पूरा ख्याल रखते हैं। विधायिका को प्रभावित करने के तरीके प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था में अलग अलग होते हैं। ब्रिटेन जैसे संसदीय शासन प्रणाली वाले देशों में ये अनुशासित ढंग से कार्य करते हैं। लेकिन अमेरिका में वे शक्तियों के पृथक्करण के कारण विधायिका का पूरा फायदा उठाने में सफल रहते हैं। वहां पर दल के सचेतकों द्वारा विधायकों पर कठोर नियन्त्रण न होने के कारण वे रिश्वत आदि साधनों द्वारा अपना काम आसानी से निकाल लेते हैं। भारत, इटली तथा फ्रांस में ये समूह संसद से बाहर रहकर भी सक्रिय रहते हैं। वे अपने हितों को प्राप्त करने के लिए विधायिका को प्रभावित करने के चक्कर में कई बार तो असंवैधानिक तरीकों का भी प्रयोग कर लेते हैं। ये दबाव समूह विधायिका की समितियों के आसपास ही अधिक केन्द्रित रहते हैं। कई देशों में तो विधायी समितियों पर दबाव समूहों का पूरा प्रभाव है। इस प्रकार दबाव समूह अपने हितों को प्राप्त करने के लिए विधायिका को भी प्रभावित करने का पूरा प्रयास करते रहते हैं।

(5) कार्यपालिका पर दबाव (Pressure on Executive) :- अनेक देशों में दबाव समूह अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए कार्यपालिका तक को भी प्रभावित करने का प्रयास करते हैं। अध्यक्षात्मक में ये राष्ट्रपति के चुनावों में पूरा समर्थन करते हैं और अपना पैसा पानी की तरह बहा देते हैं। अमेरिका के राष्ट्रपति के चुनावों में दबाव समूहों की अहम् सक्रियता रहती है। संसदीय सरकार वाले देशों में भी ये विधायिका के माध्यम से कार्यपालिका को प्रभावित करने के प्रयास करते हैं। इन देशों में उत्तरदायी सरकार होने के कारण चुने हुए विधायकों को स्थगन प्रस्तावों, ध्यानाकर्षण प्रस्तावों, निन्दा प्रस्तावों आदि द्वारा मन्त्रियों को प्रभावित करने पर जोर डालते हैं और यहां तक मजदूर कर देते हैं कि उनके हितों को बढ़ावा देने वाली नीति को ही क्रियान्वित करे। यह स्वाभाविक है कि जो व्यक्ति किसी दबाव समूह की कृपा से ही विधायक बना हो, तो उसकी निष्ठा अवश्य ही उस दबाव समूह के प्रति रहेगी। कार्यपालिका की समितियों पर भी ये अपना नियन्त्रण रखने का प्रयास करते हैं। अपने हितों के लिए दबाव समूह कार्यपालिका से निरन्तर सम्पर्क बनाए रखने का प्रयास करते रहते हैं। यदि शांतिपूर्ण ढंग से दबाव समूह कार्यपालिका पर नियन्त्रण व दबाव न बना सकें तो ये अहिंसात्मक तरीकों का प्रयोग करके सरकार पर दबाव बनाने से भी नहीं चुकते। भारत तें टाटा समूह, बिड़ला समूह, डालमिया समूह और धीरुभाई अम्बानी समूह का कार्यपालिका पर पूरा प्रभाव है। औद्योगिक नीति के निर्माण में इन औद्योगिक घरानों के हितों का ख्याल अवश्य रखा जाता है।

(6) नौकरशाही को प्रभावित करना (To influence the Bureaucracy) :- दबाव समूह अपने हितों के लिए अधिकारीतन्त्र से भी सांठ-गांठ रखते हैं। आज राजनीतिक प्रक्रिया में निर्णयों व नीतियों को गति देने में यह नौकरशाहीतन्त्र से अहम् भूमिका निभाता है। विभिन्न सरकारी विभागों द्वारा नीति-निर्माण के लिए भेजी जाने वाली सूचनाएं इस अधिकारीतन्त्र के हाथों से ही गुजरती हैं। नौकरशाही ही कार्यपालिका व विधायिका को आवश्यक नीति-निर्माण के आंकड़े उपलब्ध कराती है। भारत जैसे देशों में तो नौकरशाही कार्यपालिका के साथ इतनी अधिक उलझी हुई है कि कई बार लोग नौकरशाही को ही कार्यपालिका समझ बैठते हैं। नौकरशाही को अपने वश में करने के लिए दबाव समूह बेइमानी, घूसखोरी, भाई-भतीजावाद जैसे साधनों का प्रयोग भी करते हैं। यद्यपि नौकरशाही पर दबाव समूहों का प्रभाव सभी देशों में बराबर नहीं है। फ्रांस व इटली में एकदलीय व्यवस्था के कारण ये नौकरशाही के साथ ही सांठ-गांठ रखते हैं। इन देशों में दबाव समूह नौकरशाही को खुश करने के लिए साम-दाम-दण्ड-भेद सभी उपायों का सहारा लेते हैं।

(7) न्यायपालिका को प्रभावित करना (To influence the Judiciary) :- दबाव समूह न्यायपालिका को विधायिका तथा कार्यपालिका के माध्यम से प्रभावित करने की बजाय न्यायधीशों की नियुक्ति के समय ही कार्यपालिका पर दबाव बनाना शुरु कर देते हैं। अमेरिका और भारत में कार्यपालिका पर इस तरह का दबाव कई अवसरों पर देखा गया है। न्यायपालिका को दूर से ही प्रभावित करने का अधिक प्रयास रखते हैं, क्योंकि न्यायधीशों का कार्यपालिका तथा विधायिका की तरह चुनाव नहीं होता। अहिंसात्मक साधनों द्वारा न तो न्यायपालिका को प्रभावित करना अपेक्षित है और न ही संविधानिक। इसलिए वे अपने हितों के लिए कार्यपालिका तथा विधायिका द्वारा निर्मित कानूनों को अवैध घोषित करवाने के लिए न्यायपालिका की ही शरण लेते हैं। वे पत्र-पत्रिकाओं में लेख छापकर समाचार-पत्रों में अपने विचार देकर न्यायधीशों के मन को प्रभावित करने के प्रयास भी करते हैं। 1969 में बैंकों के राष्ट्रीयकरण के कानूनों के विरुद्ध दबाव समूहों ने ही न्यायपालिका के पास अपील की थी। भारत में अनेक जनहितकारी याचिकाएं दबाव समूहों ने ही न्यायपालिका में प्रस्तुत की है।

(8) हड़ताल, बन्द और प्रदर्शन (Strike, Bandh and Demonstration) :- दबाव समूह जब अपनी बातें मनवाने मे असफल हो जाते हैं तो वे अहिंसात्मक साधनों का प्रयोग करने से भी नही चुकते। वे हड़ताल करते हैं और आम जीवन को अस्त-व्यस्त कर देते हैं। वे बन्द की घोषणा भी करते हैं। कई बार तो वे हड़ताल में विपक्षी दल के विधायकों व समर्थकों तक को भी शामिल करते हैं। अपनी बात सरकार से मनवाने के लिए वे व्यापक स्तर पर प्रदर्शन भी करते हैं और कई बार मन्त्रियों तक का भी घेराव करते हैं। इन सभी गैर-कानूनी उपायों का प्रयोग करके वे सरकार पर दबाव बनाना चाहते हैं। इन साधनों के सफल रहने पर वे अपने उद्देश्यों में भी कामयाब हो जाते हैं। भारत में इस तरह के साधन दबाव समूहों द्वारा आमतौर पर प्रयोग किये जाते हैं।

(9) प्रचार करना (Progaganda) :- दबाव समूह अपने पक्ष में जनमत को करने के लिए तथा सरकार का ध्यान आकर्षित करने के लिए प्रचार का बहुत सहारा लेते हैं। वे समाचार-पत्रों, रेडियो, टी०वी० आदि संचार साधनों पर अपने विचारों का प्रसारण करवाते रहते हैं। कई बार दबाव समूह पत्र-पत्रिकांए भी छपवाते हैं और जनमत को प्रभावित करने के लिए उन्हें निःशुल्क जनता में वितरित करते हैं। उनका प्रभावशाली प्रचार-तन्त्र शासक-वर्ग को भारी संकटों तक का भी आभास करा देता है। इसी कारण भविष्य में राजनीतिक व्यवस्था को संकट से बचाने के लिए सरकार उनकी बात मान ही लेती है।

(10) अनुनयन (Persuation) :- कई बार दबाव समूह सरकार से सीधी बातचीत भी करते हैं और प्रार्थनापूर्वक अपनी समस्याएं भी रखते हैं। सरकार विशाल जनमत के स्वामी होने के नाते उनकी बात को टालने का जोखिम उठाने से बचने का ही प्रयास करती हैं और प्रायः उनकी मांगें स्वीकार कर ही लेती हैं। इस तरह अनुनयन द्वारा भी दबाव समूह अपने हितों की प्राप्ति के प्रयास करते हैं। यदि इस तरीके से उनकी मांग न मानी जाती है तो वे सीधी कार्यवाही या सादेबाजी के साधनों का प्रयोग करना शुरु कर देते हैं।

(11) गोष्ठियां करना (Conferences) :- अनेक दबाव समूह अपने हितों की प्राप्ति के लिए वाद-विवाद तथा विचार-विमर्श के लिए गोष्ठियों, सेमिनारों, वार्ताओं आदि का आयोजन करके विधायकों तक को भी उनमें बुलाते हैं ताकि अपनी समस्या से उन्हें अवगत कराया जा सके। इससे विधायक व नौकरशाही उनकी मांगों के प्रति जागरूक हो जाती है और नीति-निर्माण करते समय उनकी बातों पर ध्यान देती है। भारत में दबाव समूहों के हितों को लेकर कई बार संसद में

प्रश्नकाल के दौरान काफी नोक-झोंक होती है। जो विधायक दबाव समूहों के अनुग्रहित होते हैं, वे उनकी समस्याओ को संसद-सत्र में जोर-शोर से उठाते हैं।

(12) अन्य साधन (Other Means) :- दबाव समूह सरकारी नीति को अपनी इच्छानुसार ढालने के लिए विधायिका व कार्यपालिका पर कुछ अन्य तरीकों से भी दबाव बनाने का प्रयास करते हैं। भारत में बड़े-बड़े औद्योगिक घराने विधायिका, कार्यपालिका, नौकरशाही आदि के रिश्तेदारों, बच्चों आदि को अपने उद्योगों में उच्च पद पर बैठा देते हैं। कई बार वे विधायकों, कार्यपालकों तथा नौकरशाहों को रिश्वत देने के भी प्रयास करते हैं। वे नौकरशाहों को रिटायरमेन्ट के बाद अपने उद्योगों में उच्च पद देने का वायदा भी करते हैं। इस प्रकार अनेक अनैतिक साधनों से वे सरकारी तन्त्र को प्रभावित करते हैं।

इस तरह उपरोक्त विवेचन के बाद कहा जा सकता है कि दबाव समूह सरकार को प्रभावित करने के लिए नैतिक तथा अनैतिक, हिंसक तथा अहिंसक उचित तथा अनुचित सभी सभी प्रकार की तकनीकें अपनाते हैं। उनका तो सदैव एक ही ध्येय होता है, अपने हितों की प्राप्ति के लिए कार्यपालिका तथा विधायिका पर दबाव। अपने अन्तिम विकल्प के तौर पर वे न्यायपालिका की शरण भी लेते हैं।

दबाव समूहों के निर्धारक

(Determinents of Pressure Groups)

प्रत्येक देश में दबाव समूहों की यह शाश्वत् इच्छा रहती है कि सार्वजनिक नीति को प्रभावित करके अपने लक्ष्य की प्राप्ति की जाए। अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए वे अपनी गतिविधियों का संचालन व समायोजन सरकारों की बाह्य संविधानिक संरचना के अनुसार करने की अपेक्षा, सरकारी तन्त्र के भीतर प्रभावी शक्ति-वितरण की व्यवस्था के अनुसार करते हैं। दबाव समूहों की गतिविधियों का संचालन प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था में इसी कारण ही अलग तरह का होता है और उनके द्वारा प्रयोग किए जाने वाले साधन भी अलग-अलग होते हैं। कई बार तो दबाव समूह एक ही राजनीतिक व्यवस्था में भी अलग-अलग परिस्थितियों में अलग-अलग विधियों का प्रयोग करते हुए पाए जाते हैं। इसलिए यह जानना आवश्यक हो जाता है कि वे ऐसा क्यों करते हैं ? इसी में दबाव समूहों की कार्यविधि के निर्धारकों की समस्या छिपी है। एलेन बाल तथा एकसटीन ने दबाव समूहों की राजनीति का व्यापक विश्लेषण करके उसके निर्धारकों का पता लगाया है। एलेन बाल ने तो दबाव समूहों के निर्धारकों का संक्षिप्त ब्यौरा ही दिया है, जबकि हैरी एकसटीन ने दबाव समूहों के निर्धारकों पर विस्तार से चर्चा की है। कुछ अन्य विद्वानों ने भी दबाव समूह की राजनीति का विश्लेषण करने की बाद इन निर्धारकों का सामान्यीकरण किया है। दबाव समूहों की राजनीति या उनकी प्रभावशीलता को निर्धारित करने वाले प्रमुख तत्व निम्नलिखित हैं :-

(1) राजनीतिक संस्थागत संरचना :- दबाव समूहों का अस्तित्व राजनीतिक व्यवस्था की संस्थागत संरचना से काफी घनिष्ठ सम्बन्ध रखता है। जिस शासन व्यवस्था में नीति-निर्माण और उसे अमली जामा पहनाने का कार्य प्रशासन की केन्द्र शाखा को करना पड़ता है तो वहां कोई भी दबाव समूह राष्ट्रीय स्तर पर भी महत्वपूर्ण शक्तिशाली और सुसंगठित स्थान प्राप्त कर सकता है। जिस देश में शक्तियों का केन्द्रीयकरण होता है, उन एकात्मक शासन व्यवस्था वाले देशों में दबाव समूहों की राजनीति का केन्द्र राजधानी होती है। इसके विपरीत संघात्मक शासन प्रणाली वाले देशों में दबाव समूह प्रादेशिक स्तर पर अधिक सक्रिय रहते हैं। केन्द्र तक तो कम ही दबाव समूह पहुंच पाते हैं। दबाव समूह को यह भी पता होता है कि कौनसी संरचना निर्णय लेने में सक्षम है। इसलिए वे विधायिका या कार्यपालिका की तरफ झुकते हैं। संसदीय शासनप्रणालियों में तो दबाव समूह विधायिका य कार्यपालिका की समितियों तक को भी अपनी पहुंच में ले लेते हैं। जिस देश में विधायिका या कार्यपालिका नौकरशाही पर अधिक आश्रित रहती है तो ये दबाव समूह अपना डेरा नौकरशाही के ही इर्द-गिर्द डाल लेते हैं। उदारवादी लोकतन्त्रों में तो शक्ति विकेन्द्रीयकरण के कारण दबाव समूहों की गतिविधियां अधि तीव्र हो जाती हैं। सर्वसत्ताधिकारवादी शासन-व्यवस्थाओं में दबाव समूह प्रायः सुप्त अवस्था में रहते हैं, क्योंकि यहां पर इन्हें पैर पसारने की अनुमति नहीं होती। इसी कारण अमेरिका और ब्रिटेन में अध्यक्षात्मक व संसदीय शासन प्रजातियों की निर्णयकारी संरचनाओं में पाए जाने वाले अन्तर के कारण दबाव समूहों की प्रकृति में भी अन्तर आ जाता है।

(2) दल पद्धति की संरचना व स्वरूप :- दबाव समूहों की राजनीति पर दल-व्यवस्था का भी गहरा प्रभाव पड़ता है। एक दल पद्धति वाले देशों में दबाव समूह अपना प्रभाव नहीं जमा पाते हैं, क्योंकि इनका प्रभावक्षेत्र तो बहुदलीय व्यवस्था वाले

देशों में ही अधिक विकसित होता है। सर्वाधिकारवादी देशों में एकदलीय व्यवस्था के कारण ही दबाव समूहों को घृणा की दृष्टि से देखा जाता है। लोकतन्त्र से अलग प्रकार की सभी शासन व्यवस्थाओं में केव उसी दबाव समूह को रहने की आज्ञा दी जा सकती है जो सत्तारूढ़ दल का समर्थन करता है। दो दलीय व्यवस्था वाले देशों में भी दबाव समूह को बहुदलीय शासन प्रणाली वाले देशों की तरह स्वतंत्र ढंग से कार्य करने दिया जाता है। यहां पर वे किसी राजनीतिक दल के छिपे हुए समर्थन के अधीन कार्य करते हैं या राजनीतिक तटस्थता का ढोंग करके सत्तारूढ़ दल से अपना सम्बन्ध बनाए रहते हैं। लोकतन्त्रीय शासन प्राली वाली बहुदलीय व्यवस्था के अन्तर्गत ये लुका-छिपी का खेल खेलते हैं। कभी ये किसी दल के साथ रहते हैं तो कभी किसी के। इसी तरह दल संरचना का स्वरूप भी दबाव समूहों का नियामक होता है। दल संरचना की कमजोरियों, अनुशासन का अभाव और दलों के बीच विचारधारा सम्बन्धी स्पष्ट अन्तर का होना भी दबाव समूहों की प्रभावशीलता का कारण बन जाता है। इसी कारण अमेरिका में दबाव समूह अधिक सक्रिय है। प्रतिनिधि सभा के चुनावों में अमेरिकी कांग्रेस के प्रतिनिधि स्थानीय हितों के दबावों में रहती है। लेकिन ब्रिटेन में कठोर दलीय अनुशासन के कारण विधायकों पर दबाव समूहों का अधिक प्रभाव नहीं पड़ने पाता है। बहुदलीय व्यवस्था के अन्तर्गत दलीय अनुशासन का अभाव होने के कारण दबाव समूहों की विधायकों पर पकड़ मजबूत रहती है।

(3) सरकार की नीतियां व गतिविधियां :- दबाव समूहों की क्रियाशीलता सरकार की नीतियों पर ही आधारित होता है। जिस देश में सरकार कल्याणकारी नीतियां अपनाती हैं और सभी वर्गों को शासन में उचित प्रतिनिधित्व देती है तो वहां पर दबाव समूह आसानी से अपनी घुसपैठ कर जाते हैं। यदि सरकार ऐसी नीतियों व गतिविधियों का संचालन करना शुरु कर दे कि लोकतन्त्रीय आस्थाएं ही धूमिल होने लग जाएं, वहां पर दबाव समूहों के पैर नहीं टिक सकते। प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था में यह बात सरकार ही निश्चित करती है कि किसे क्या देना है, किसे प्रतिबन्धित करना है या किसे अधिक सुविधाएं देनी हैं ? इसी तरह दबाव समूहों की कार्यप्रणाली भी सरकार की नीतियों पर ही आधारित होती है। 1947 के समय में और आज के समय में सरकार की नीतियों में आए बदलाव के कारण ही आज दबाव समूह भारत में फल-फूल रहे हैं। आज सरकारें लोक कल्याणकारी नीतियों पर अधिक ध्यान देती है, इसलिए दबाव समूह उदारवादी लोकतन्त्रों में अपनी गतिविधियों को बड़े पैमाने पर संचालित करके अपने हितों को प्राप्त करने में सक्षम है।

(4) सरकार की दबाव समूहों के प्रति अभिवृत्ति या रवैया :- सरकार का दबाव समूहों के प्रति सोच भी दबाव समूहों की प्रभावशीलता की नियामक मानी जाती है। उदार लोकतन्त्रों में समूह व्यवस्था को राजनीतिक व्यवस्था का स्वाभाविक अंग माना जाता है। इसी कारण वहां पर दबाव समूहों की भरमार होती है। सर्व सत्ताधिकारवादी व्यवस्थाओं में सरकारों का रवैया दबाव समूहों के प्रति कठोर होता है। वहां पर केवल वही दबाव समूह पनप सकता है तो सत्तारूढ़ सरकार की नीतियों का समर्थक बना रहे। सरकार विरोधी समूहों को सर्वाधिकारवादी सरकारें किसी भी कीमत पर बर्दाश्त नहीं कर सकती। लोकतन्त्र शासन प्रणाली ही एकमात्र ऐसी शासन प्रणाली है जो दबाव समूहों की गतिविधियों को झेल सकती है। इसी कारण निरंकुश और लोकतंत्रीय सरकारों का दबाव समूहों के प्रति पाया जाने वाला रवैया दबाव समूहों द्वारा सरकार को प्रभावित करने वाले साधनों में भी भिन्नता ला देता है।

(5) राजनीतिक संचारण :- दबाव समूह ही प्रभावशीलता का निर्धारण इस बात से भी होता है कि राजनीतिक व्यवस्था में राजनीतिक संचारण का कितना निषेध है तथा किनी छूट है। कोई राजनीतिक व्यवस्था तो दबाव समूहों की सक्रियता के प्रति सहनशील होती है तो कोई उसे आंशिक तौर पर ही स्वीकार करती है या उनकी सक्रियता को सहन ही नहीं करती। भारतीय शासन व्यवस्था राजनीतिक संचारण की छूट देती है। इसी कारण भारत में असंख्यक दबाव समूह व हित समूह उभरे हैं। कुछ देशों में दबाव समूहों को घृणा की दृष्टि से देखा जाता है, इसी कारण वहां पर राजनीतिक संचारण की छूट इनको प्राप्त नहीं है। चीन तथा जर्मनी में राजनीतिक संचारण की सीमित व्यवस्था होने के कारण वहां पर दबाव समूह अविकसित प्रकृति के हैं।

(6) राजनीतिक व्यवस्था की समूह की मांगों को सहन करने की क्षमता :- प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था में दबाव समूहों की गतिविधियां व मांगें अलग-अलग प्रकार की होती हैं। सभी राजनीतिक व्यवस्थाएं दबाव समूहों की मांगों को पूरा करने में असमर्थ होती हैं। ऐसे में अपनी मांगों को पूरा करवाने के लिए दबाव समूह सरकार पर अनुचित दबाव डालने का प्रयास अवश्य करते हैं। उनकी गतिविधियों से परेशान होकर सरकार उन पर प्रतिबन्ध लगा देती है। 1975 के बाद भारत में अनेक दबाव समूह इस प्रतिबन्ध की श्रेणी में आ गए हैं, क्योंकि ये अपनी मांगें मनवाने के लिए अधिक हिंसक

साधनों का प्रयोग करने लगे हैं। सरकार दबाव समूहों की गतिविधियों को वहीं पर स्वतन्त्र छोड़ सकती है, जहां उनकी मांगें राजनीतिक व्यवस्था की क्षमता के अनुरूप हों।

(7) दबाव समूहों के स्वयं के लक्षण :- एकसटीन का मानना है कि दबाव समूहों के स्वयं के लक्षण भी उनकी प्रभावकारिता के नियामक होते हैं। दबाव समूहों की आर्थिक स्थिति, उनका आकार, सदस्यों की लगन व कर्मठता, संगठन की ठोसता, संगठन की सामाजिक प्रतिष्ठता आदि कारक भी दबाव समूहों की राजनीतिक व्यवस्था में भी प्रभावकारिता का कारण होते हैं। आधुनिक जीवन में आर्थिक शक्ति का बहुत महत्व है। आर्थिक शक्ति ही निर्णय-निर्माताओं को प्रभावित कर सकती है। जो दबाव समूह राजनीतिक दलों को अधिक चन्दे देता है, योग्य सदस्यों को भर्ती करता है, वही प्रशासनिक मशीनरी को अपने बारे में सोचने को विवश कर सकता है। दबाव समूह की सामाजिक प्रतिष्ठता भी अनुकूल जनमत तैयार करने में उसका सहयोग करती है और सरकारी पदाधिकारियों पर प्रभाव भी डालती है। जो दबाव समूह अपने लगनशील सदस्यों के माध्यम से चुनावी कार्यक्रम में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाने में सक्षम होता है, वहीं सरकार के नीति-निर्माण को प्रभावित करने वाली शक्ति बन जाती है।

उपरोक्त विवेचन के बाद कहा जा सकता है कि सरकार की नीति-निर्णय प्रक्रिया की संरचनाएं, दल पद्धति का स्वरूप, सरकार की नीतियां, सरकार की दबाव समूह के प्रति अभिवृति, राजनीतिक संचारण, राजनीतिक व्यवस्था की क्षमता, दबाव समूहों की सामाजिक-आर्थिक व राजनीतिक संस्कृति आदि तत्व दबाव समूहों की राजनीतिक व्यवस्था में प्रभावकारिता के निर्धारक हो सकते हैं। राजनीतिक व्यवस्थाओं की प्रकृति में अन्तर आने के कारण दबाव समूहों की प्रभावकारिता में भी अन्तर आना स्वाभाविक ही है, क्योंकि सभी राजनीतिक व्यवस्थाओं में दबाव समूह अपने हितों के सम्वर्द्धन के समान तरीके नहीं अपना सकते। संसदीय व्यवस्थाओं में तो दबाव समूहों की प्रभावकारिता अधिक से अधिक विकेन्द्रित होती है, जबकि अध्यक्षात्मक में यह केन्द्रित होती है। सर्वसत्ताधिकारवादी राजनीतिक व्यवस्थाओं में दबाव समूहों की प्रभावकारिता सीमित व संकुचित होती है, जबकि लोकतन्त्रीय व्यवस्थाओं में यह अधिक व्यापक और विकेन्द्रित होती है। विकासशील देशों में तो सरकार की नीति-निर्णय प्रक्रिया की संरचना, दल पद्धति का स्वरूप तथा राजनीति संचारण के प्रतिमान अनिश्चित होने के कारण दबाव समूह के निर्धारक भी अस्पष्ट हैं।

दबाव समूहों के कार्य व भूमिका

(Functions and Role of Pressure Groups)

आज प्रत्येक देश की राजनीतिक व्यवस्था में दबाव समूहों का विशेष स्थान है। सभी लोकतन्त्रीय देशों में तो इसका महत्व और अधिक है। पलले तो दबाव समूहों को घृणा की दृष्टि से देखा जाता था, लेकिन आज स्थिति बदल चुकी है। आज दबाव समूह को प्रत्येक राजनीतिक समाज, राजनीतिक क्रियाशीलता के लिए एक आवश्यक बुराई के रूप में स्वीकार करने लगा है। आज नीति-निर्माण की प्रक्रिया पर इनका प्रभाव इतना अधिक बढ़ गया है कि इन्हें अदृश्य साम्राज्य कहा जाने लगा है। सरकार के विधायी कार्यों पर इनके बढ़ते प्रभाव के कारा इन्हें विधानमण्डल के पीछे विधानमण्डल भी कहा जाता है। अपने हितों के सम्वर्द्धन के लिए इनका राजनीतिक दलों से घनिष्ठ रूप से जुड़ा रहने के कारण फ्रेडरिक ने इन्हें 'दल के पीछे सक्रिय जन तक कह दिया है। आज अमेरिका, भारत, इंग्लैण्ड, स्विस, फ्रांस आदि देशों में ये समूह किसी न किसी रूप में राजनीतिक गतिशीलता में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहे हैं। किसी राजनीतिक व्यवस्था में इनकी भूमिका निम्नलिखित कारणों से महत्वपूर्ण हो सकती है :-

(1) लोकतन्त्रीय प्रक्रिया की अभिव्यक्ति :- प्रजातन्त्रीय शासन प्रणालियां ही दबाव समूहों के पोषण के लिए अनुकूल परिस्थितियां प्रदान करती हैं। इन देशों में दबाव समूह अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए जनमत का अधिक सहारा लेते हैं। यहां पर जनमत को तैयार करने के लिए वे विचार-गोष्ठियों, पत्र-पत्रिकाओं, सभाओं आदि का पूरा सहारा लेते हैं। प्रजातन्त्र में अपनी बात मनवाने के लिए यह जरूरी होता है कि जनमत को साथ लेकर चला जाए। इसलिए प्रजातन्त्र में दबाव समूहों द्वारा मजबूत जनमत को तैयार करना लोकतन्त्रीय प्रक्रिया की ही अभिव्यक्ति है। जनमत को शिक्षित करके आंकडें एकत्रित करके, कानून निर्माताओं के पास पहुंचाकर वे अपने लक्ष्यों की प्राप्ति करने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहते हैं। इस प्रकार दबाव समूह लोकतन्त्रीय प्रक्रिया को अभिव्यक्त करने का कार्य करते हैं।

(2) सरकार की निरंकुशता पर रोक :- आधुनिक युग में शक्तियों का झुकाव केन्द्र ती तरफ ज्यादा बढ़ रहा है। आज आर्थिक

विकास की सुरक्षा की आवश्यकता ने शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार के विचार को जन्म दिया है। ऐसे में यह सम्भावना बढ़ जाती है कि सरकार अपनी शक्तियों का निरंकुश प्रयोग भी कर सकती है। परन्तु दबाव समूह किसी न किसी रूप में हर समय सरकारी तन्त्र पर नजर रखते हैं। अपने हितों के संरक्षण की आड में सरकार की निरंकुशता से आज जनता की रक्षा भी करते हैं। जिस देश में अधिकारी-तन्त्र (Bureaucracy) पर दबाव समूहों की दृष्टि हो, वह कभी निरंकुश नहीं बन सकता।

(3) नीति-निर्माण में सहायक :- लोकतन्त्रीय देशों में तो दबाव समूह शासन-तन्त्र के इर्द-गिर्द ही चक्कर काटते रहते हैं। चाहे कार्यपालिका हो या विधायिका शासन-तन्त्र के अंग के रूप में उनकी सदा यह जानने की इच्छा रहती है कि लोगों की आवश्यकताएं क्या हैं ? इन आवश्यकताओं का ज्ञान दबाव समूहों को ही अधिक होता है। इस बारे में सभी आवश्यक सूचनाएं व आंकड़े दबाव दबाव समूह ही सरकार को उपलब्ध कराते हैं। वर्ने ने लिखा है-"समूह ही व्यक्ति-ज्ञान के क्षेत्र में विशेष है जो कानून के निर्माण और क्रियान्वयन के लिए आवश्यक है।" इस प्रकार सरकार गैर-सरकारी स्रोत के रूप में दबाव समूहों से नीति-सम्बन्धी आवश्यक सूचनाऐं प्राप्त कर लेती हैं। इससे विवेकपूर्ण नीति व कानून निर्माण करना सम्भव हो जाता है। यद्यपि दबाव समूहों द्वारा एकत्रित सूचनाएं व आंकड़े उनके स्वयं के हितों से अधिक सरोकार रखते हैं, लेकिन नीति निर्माण में जो महत्व उन आंकड़ों का होता है, वह अन्य स्त्रोतों से एकत्रित किए गए आंकडों का नहीं हो सकता। अतः दबाव समूह सरकार को नीति-सम्बन्धी आवश्यक कच्ची सामग्री उपलब्ध कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

(4) शासन-तन्त्र को प्रभावित करना :- दबाव समूह लोकतन्त्रीय देशों में तो इतने संगठित हो जाते हैं कि वे सरकारी तन्त्र को प्रभावित करने की क्षमता भी रखते हैं। अपने लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए विधायिका, कार्यपालिका तथा नौकरशाही तन्त्र को सार्वजनिक नीति में परिवर्तन लाने के लिए दबाव डालते हैं। बहुदलीय व्यवस्था वाले देशों में ये राजनीतिक दलों के साथ सांठ-गांठ करके अपने हितों में के लिए सरकार पर दबाव बनाए रखते हैं। द्विदलीय प्रणाली वाले देशों में ये मुख्य कार्यपालिका के आसपास की विधायिका के इर्द-गिर्द ही चक्कार लगाते रहते हैं। अमेरिका में इनकी पहुंच राष्ट्रपति तक भी होती है। भारत में दबाव समूह अपने हितों की प्राप्ति के लिए राजनीतिक दलों या विधायकों के माध्यम से हर नीति-निर्णय को प्रभावित करने की चेष्टा करते रहते हैं। अपने हितों के लिए ये न्यायपालिका तक की भी शरण ले लेते हैं। इनका मुख्य लक्ष्य ही अपने हितों के लिए शासन तन्त्र को अपने प्रभाव में रखना है।

(5) समाज के विभिन्न वर्गों के हितों में सामंजस्य :- प्रत्येक समाज में किसान, श्रमिक, व्यापारी, मजदूर, जातीय समुदाय, धार्मिक समुदाय, विद्यार्थी, स्त्रियों आदि के अपने अपेन हित होते हैं, जिनकी प्राप्ति के लिए ये समूह आपस में प्रतियोगिता करते रहते हैं। प्रत्येक समूह एक दूसरे पर नियन्त्रक का कार्य करता है और अपने से विपरीत समूह को इतना शक्तिशाली नहीं होने देता कि वह निजि स्वार्थों का केन्द्र ही बन जाए। इस प्रतियोगी-व्यवस्था में समाज में सन्तुलनकारी प्रकृतियां पनपने लगती हैं और समाज के सभी वर्गों के हितों में सामंजस्य बना रहता है। दबाव समूहों की उपस्थिति समाज में संतुलन के साथ-साथ प्रशासन ओर समाज में भी संतुलन कायम कर देती है। इससे समाज विघटनकारी शक्तियों से निपटने में सक्षम हो जाता है।

(6) जनता व सरकार में कड़ी का काम करना :- दबाव समूह जनता और सरकार को जोड़ने वाली कड़ी है। जनता की मांगों को समूहीकरीण के रूप में दबाव समूह ही सरकार तक पहुंचाते हैं। नीति-निर्माण करते समय दबाव समूहों द्वारा उपलब्ध सूचनाओं पर ही अधिक ध्यान दिया जाता है। इस तरह दबाव समूह जनता व सरकार को जोड़ने का कार्य भी करते हैं।

उपरोक्त विवेचन के बाद कहा जा सकता है कि दबाव समूह सार्वजनिक नीति को प्रभावित करने के लिए अपना महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। आधुनिक समाज में उनके बढ़ते प्रभाव को देखकर कहा जा सकता है कि दबाव समूह ही वास्तविक राजनीतिक दल हैं, जो सरकार और जनता को जोड़ने का कार्य करते हैं। लोगों को राजनीतिक शिक्षा देना, जनमत को तैयार करना, सार्वजनिक नीति को प्रभावित करना, सरकार को जनता की मांगे समूहीकरण के रूप में पेश करना आज राजनीतिक दलों की बजाय दबाव समूहों के कार्य हीं गए हैं। इसी कारण आज कहा जाने लगा है कि दबाव समूह शासकों को बनाने वाले हो गए हे। आज अमेरिका, भरत, ब्रिटेन, स्विट्जरलैंड, फ्रांस, पूर्वी जर्मनी, पौलैंड आदि देशों में कम या अधिक मात्रा में दबाव समूह कार्यरत हैं। अमेरिका में तो इनका विशेष प्रभाव है। वहां पर ये समूह जितने संगठित तरीके से कार्य कर रहे हैं, अन्य

देश में नहीं। इसी कारण अमेरिका के राष्ट्रपति वुडरो विल्सन ने इन समूहों की शक्ति की ओर संकेत करते हुए लिखा है-"संयुक्त राज्य अमेरिका की सरकार एक ऐसा शिशु है जो विशेष हितों की देख-रेख में पला है।" इस प्रकार प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था को गतिशील बनाने में इनकी महत्वपूर्ण भूमिका है।

दबाव समूहों की आलोचना

(Criticism of Pressure Groups)

यद्यपि दबाव समूह प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था को गतिशील बनाने सरकार की निरंकुशता को रोकने, जनता और सरकार में कड़ी का काम करने जैसे महत्वपूर्ण कार्य करते हैं और प्रत्येक राजनीतिक समाज इन्हें आवश्यक बुराई के रूप में स्वीकार भी करने लगा है, लेकिन फिर भी इनकी भूमिका की आलोचना की जाती है। आलोचकों का मत है कि दबाव समूह विशिष्ट हित को लेकर ही सरकार के पास जाते हैं। उनका सामान्य हित से कोई लेना देना नहीं होता । कई बार दबाव समूह हिंसक साधनों का प्रयोग करके राष्ट्रीय सम्पत्ति को हानि पहुंचाते हैं और समाज की एकता व शांति को भंग करने से भी नहीं चूकते। विधायकों को अनैतिक साधनों से प्रभावित करके वे राजनीतिक भ्रष्टाचार को जन्म देते हैं। अपने लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए तो वे न्यायपालिका जैसे पवित्र संगठन को भी नहीं छोड़ते। अपने स्वार्थों के लिए साम-दाम-दण्ड-भेद सभी नीतियों का प्रयोग निर्बाध रूप से करते हैं। अपने अनैतिक कारनामों द्वारा वे समाज में अनैतिकता का प्रसार कर देते हैं। उनकी बढ़ती भूमिका ने राजनीतिक दलों तक की भूमिका व महत्व को भी सीमित कर दिया है। इसलिए समय की यह मांग है कि दबाव समूहों की निरंकुशता की प्रवृत्ति पर रोक लगाई जाए अन्यथा ये समाज और सरकार दोनों के लिए गम्भीर खतरे उत्पन्न कर देंगे।

संयुक्त राज्य अमेरिका में हित व दबाव समूह

(Interest and Pressure Groups in U.S.A.)

हित व दबाव समूह उदारवादी लोकतन्त्र के रूप में अमेरिका की ही देन है। आज अमेरिका में राष्ट्रीय, राज्यीय और स्थानीय स्तर पर इनकी संख्या लाखों में है और उनका जीवन के हर क्षेत्र पर प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इन हित व दबाव समूहों में से कुछ ने स्वयं को रजिस्टर्ड भी करवा रखा है। ये अपने हितों की सिद्धि के लिए हमेशा प्रयासरत् रहते है। अमेरिका में इनकी गतिविधियों को समझे बिना वहां की राजनीतिक पद्धति का समझना कठिन है। 1961 में प्रसिद्ध अमेरिकी राजनीति शास्त्री वी०ओ० की ने कहा था "यदि हमें अमेरिकन राजनीतिक प्रणाली को समझना है तो गैर-राजनीतिक संगठनों की गतिविधियों का अध्ययन करना आवश्यक है।" अमेरिका में ऐसे हजारों हित समूह हैं जो सार्वजनिक सत्ता को प्रभावित करके दबाव समूह का रूप ले लेते हैं। अमेरिका में इनके बढ़ते राजनीतिक प्रभाव के कारण इन्हें संविधान से बाहर कांग्रेस का तीसरा सदन कहा जाने लगा है। इनका प्रभाव क्षेत्रीय स्तर से लेकर राष्ट्रीय स्तर तक होता है और ये अपने हितों की प्राप्ति के लिए सभी प्रकार के हथकंडे अपनाते हैं।

अमेरिका में आज अनेक प्रकार के आर्थिक, व्यवसायिक देशभक्त, सुधारवादी, नागरिक सेवाएं, धार्मिक आदि हित व दबाव समूह हैं। आर्थिक समूहों में Chamber of Commerce of the U.S.A., National Coal Association, Association of American Rail-Roads, American Banker's Association, National Association of Manufacturers आदि शामिल हैं। व्यवसायिक हित समूह विभिन्न व्यावसायिक हितों का प्रतिनिधि करते हैं। इनमें American Medical Association, National Education Association, American Bar Association आदि आते हैं। कृषक हितों का प्रतिनिधित्व करने वाले प्रमुख हित-समूह -American Farms Bureau Federation, National Council of Farm Cooperatives तथा National Farmers Union हैं। इसी तरह श्रमिक वर्ग के हितों का प्रतिनिधित्व-United Mine Workers, American Federation of Labour तथा Congress of Industrial Organisations द्वारा किया जाता है। धार्मिक हित समूहों में-National Council of Churches of Christ in America तथा Catholic Welfare Conference and Group Representing Particular Denominations शामिल हैं। इसके अतिरिक्त National Urban Leagues, American Association of University Women, League of Women Voters, The Veterans of Foreign Wars आदि हित व दबाव समूह हैं जो नागरिकों के विभिन्न हितों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

अमेरिका में इन हित व दबाव समूहों का उभरना एक स्वाभाविक बात नहीं है। कुछ विद्यानों का मानना है कि इनका प्रमुख कारण अमेरिका के राजनीतिक दलों का सुसंगठित व अनुशासनहीन होना है। कई बार तो चुनावों में राष्ट्रपति को कांग्रेस का

पूरा समर्थन भी प्राप्त नहीं होता। ऐसी परिस्थितियों में दबाव समूहों का सक्रिय होना एक आम बात है। इसी तरह चुनावों में कांग्रेस के सदस्य भी दल की बजाय दबाव समूहों की तरफ ही देखते हैं। चुनावों में कांग्रेस के सदस्यों को इन समूहों की तरफ से पूरी मदद मिलती है। इसके बदले वे कांग्रेस की सदस्यों से अपने हित में व्यवस्थापन करने के लिए दबाव डालते हैं। अमेरिका में आज तक ऐसी कोई भी व्यवस्थापन कार्य हित व दबाव समूहों से प्रवाहित हुए बिना नहीं सका है। जो कांग्रेस कार्यकर्ता हित व दबाव समूहों के इर्द-गिर्द रहते हैं, उन्हें चुनावों में काफी फायदा रहता है। चुनावी सहायता के बदले हित समूह अपने चतुर अभिकर्ताओं के माध्यम से लॉबिज का निर्माण करने में पूरी मदद करते हैं। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए लॉबिस्ट समस्त तरह के प्रलोभन भी देते हैं। इसके लिए वे कांग्रेस के सदस्यों पर पत्रों, तारों, टेलीफोनों, व्यक्तिगत सम्बन्धों, रिश्वत आदि द्वारा भी प्रभाव डालकर किसी विधेयक के पक्ष या विपक्ष में मतदान करने का दबाव डालते हैं। अक्सर ये लॉबिस्ट अपने लक्ष्य में कामयाब रहते हैं। जब सीधे मार्ग से हित व दबाव समूहों को कुछ हासिल नहीं होता है तो व प्रचार व गोष्ठियों द्वारा जनमत को अपने पक्ष में करने का प्रयास करते हैं और आवश्यकता पड़ने पर न्यायालय की शरण भी लेते हैं। अन्तिम विकल्प के तार पर वे बन्द, हड़ताल और प्रदर्शन का भी सहारा लेते हैं। सत्य तो यह है कि हित व दबाव समूहों के नेता 'सत्ता के दलालों' जैसा व्यवहार करते हैं।

सारांश रूप में कहा जा सकता है कि अमेरिका के शासन व राजनीति में दबाव व हित समूहों की महत्वपूर्ण भूमिका है। इनकी अदम्य शक्ति की तरफ संकेत करते हुए राष्ट्रपति वुडरो विल्सन ने कहा था-"संयुक्त राज्य अमेरिका की सरकार एक ऐसा शिशु है जो विशेष हितों की देखरेख में बड़ा हुआ है।" राष्ट्रपति कैनेडी ने इनको लोकतन्त्रीय प्रक्रिया का आवश्यक अंग माना है। विभिन्न वर्गों के हितों का प्रतिनिधित्व करने तथा राजनीति को गतिशीलता प्रदान करने में हित व दबाव समूहों की विशेष भूमिका रही है। अमेरिका के शासन व राजनीति में इनका प्रभाव इतना अधिक बढ़ चुका है कि आज इन्हें 'अदृश्य साम्राज्य' कहना गलत नहीं है।

ब्रिटेन में हित व दबाव समूह

(Interest and Pressure Groups in Britain)

ब्रिटेन में हित व दबाव समूह औद्योगिक क्रांति की उपज हैं। औद्योगिक क्रांति के परिणामस्वरूप ब्रिटेन में सर्वप्रथम मजदूर वर्ग की उत्पत्ति के साथ ही श्रमिक हित समूहों का रूप उभरने लगा और सुधार आन्दोलनों ने इसके विकास को गति प्रदान की। यह माना जाता है कि आज ब्रिटेन में 50 प्रतिशत जनता किसी-न-किसी संगठन से जुड़ी हुई है। आज ब्रिटेन में भी अमेरिका की तरह हजारों हित समूह हैं। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद से लेकर आज तक निरन्तर इनकी संख्या में वृद्धि हो रही है और ये दबाव समूह ब्रिटिश संसदीय प्रणाली का स्वाभाविक अंग बन चुके हैं। ये दबाव समूह भी अमेरिका की तरह प्रभावशाली तो नहीं है, लेकिन फिर भी कानून-निर्माण की प्रक्रिया को किसी-न-किसी रूप में प्रभावित अवश्य करते हैं।

प्रारम्भ में ब्रिटेन में Chartist Movement तथा The Anti-Corn Law Legue दो ही दबाव समूह थे। लेकिन द्वितीय विश्व युद्ध के बाद श्रमिक दल के सत्ता सम्भालते ही अनेकों दबाव समूह उभर आए। आज ब्रिटेन में किसान-मजदूरों के हितों का प्रतिनिधित्व करने वाले अनेक हित समूह हैं। इनमें 'National Farmers Union' अर्थात् राष्ट्रीय कृषक संघ किसानों के हितों का वक्ता है और National Union of Mine Workers तथा The Transport and General Workers Union श्रमिक हितों के प्रतिनिधि समूह हैं। Tradd Union Congress मजदूरों के हितों का प्रतिनिधित्व करने वाला सबसे बड़ा संगठन है जो 90 प्रतिशत मजदूरों का प्रतिनिधित्व करता है। ब्रिटेन में कई ऐसे हित समूह भी हैं जो एक साथ कई हितों की पूर्ति करते हैं। उदाहरण के लिए 'सड़क सुधार परिषद' 'Roads Compaign Council' जनता की सुविधा और यातायात कम्पनियों के हितों को एक साथ पूरा करती है। इसके अतिरिक्त ब्रिटेन में 'The British Medical Association, National Union of Teachers, The British Bankers Association, The Federation of British Industries, National Council of Social Service. Association of Metropolitan Authorities, National Education Council, Conservative Society आदि हित व दबाव समूह हैं जो विभिन्न तरीकों से अपने-अपने वर्गों के हितों की प्राप्ति के लिए प्रयासरत् हैं।

अमेरिका की तरह ब्रिटेन में लॉबिइंग व्यवस्था द्वारा दबाव व हित समूह विधायिका पर दबाव तो नहीं बना सकते, लेकिन फिर भी वे अन्य साधनों का प्रयोग करके अपने हितों के संवर्द्धन अवश्य करते हैं। ब्रिटेन में दलीय अनुशासन ने इनकी भूमिका को कुछ सीमित कर रखा है। दबाव समूह राजनीतिक दल से ही अपना सम्बन्ध जोड़कर उसके नेताओं का ध्यान अपनी तरफ

खींचने का प्रयास अवश्य करते हैं। ब्रिटेन में किसी भी बिल को पास करने से पहले संसद समितियां उस बिल से प्रभावित होने वाले वर्गों के हित प्रतिनिधियों से अवश्य विचार-विमर्श करती है। 1947 के कृषि एक्ट के अन्तर्गत आज भी कृषि नीति का निर्माण 'National Farmers Union' से सलाह करके ही किया जाता है। ये दबाव समूह चुनावों में राजनीतिक दलों की हर सम्भव सहायता करते हैं। जनमत को अपने पक्ष में करने के लिए हित व दबाव समूहों द्वारा अनेक प्रयास किए जाते हैं। राजनीतिक दलों से प्रत्यक्ष सम्पर्ग बनाए रखना ही हित व दबाव समूहों द्वारा अधिक श्रेयकर समझा जाता है। इसी कारण आज 'ब्रिटिश उद्योग संघ' तो अनुदारवादी दल से जुड़ा है और 'Trade Union Congress' श्रतिमक दल से जुड़ा है। दबाव समूहों की हलचल राष्ट्रीय स्तर के साथ-साथ क्षेत्रीय या स्थानीय स्तर पर भी देखी जा सकती है।

सारांश रूप में कहा जा सकता है कि ब्रिटेन में भी अमेरिका की तरह ही हित व दबाव समूह अपने-अपने वर्गों का प्रतिनिधित्व करते हैं। लेकिन दोनों देशों में इनके कार्यात्मक व्यवहार के तरीकों में कुछ-न-कुछ अन्तर आ ही जाता है। जहां ब्रिटेन में कठोर दलीय अनुशासन इन्हें विधायिका को प्रभावित करने का कम अवसर प्रदान करता है, वहीं अमेरिका में दलीय अनुशासन का अभाव इन्हें विधायिका के कार्य व्यवहार को प्रभावित करने में सफल बना देता है। फिर भी ब्रिटेन में हित व दबाव समूह किसी-न-किसी रूप में अपने हितों का सम्वर्द्धन कर ही लेते हैं।

स्विट्जरलैण्ड में हित व दबाव समूह

(Interest and Pressure Groups in Switzerland)

स्विट्जरलैण्ड में प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र तथा बहुदलीय प्रणाली ने विभिन्न हित व दबाव समूहों का पोषण किया है। स्विट्जरलैण्ड में बहुदलीय प्रणाली ने अनेकों हित समूहों को जन्म दिया है। अपने राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक विचारों में विभिन्नता रखने वाले राजनीतिक दल अपने विशेष विचारों व हितों का प्रतिनिधित्व हित व दबाव समूहों के माध्यम से ही करते हैं। कई विचारकों का मानना है कि स्विट्जरलैण्ड की बहुदलीय व्यवस्था, संसदात्मक प्रणाली, विधायी प्रक्रिया तथा जनमत संग्रह की व्यवस्था आदि ने ही हित समूहों को प्रोत्साहन दिया है। स्विस विधायकों के वेतन इतने कम हैं कि उन्हें व्यापारिक या औद्योगिक संघों की तरफ झांकना ही पड़ता है। धीरे-धीरे उनका स्थान ये हित समूह ही ले लेते हैं। इसकी पुष्टि इस बात से होती है कि आज भी स्विट्जरलैण्ड में राजनीतिक पद की प्राप्ति उसके व्यावसायिक, खेतीहर और श्रमिक संघों तथा व्यक्तिगत जीवन में सफलता पर निर्भर करती है। स्विट्जरलैण्ड में विधायी प्रक्रिया ने भी हित समूहों को बढ़ावा दिया है। संघीय परिषद नये कानून का निर्माण करते समय उन हित समूहों से परामर्श करती है जिस पर उस कानून का प्रभाव पड़ने की संभावना होती है। संविधान में भी संघीय परिषद तथा हित समूहों के बीच विचार-विमर्श को अनिवार्य बताया गया है। स्विस प्रजातन्त्र में जनमत-संग्रह की व्यवस्था ने तो हित समूहों को पूरा संरक्षण प्रदान किया है। संविधान में स्विस जनता को आरम्भण का अधिकार दिया गया है। इस अधिकार का प्रयोग करते समय जनता हित-समूहों के हितों का ख्याल अवश्य रखती है।

स्विट्जरलैण्ड में अमेरिका व ब्रिटेन की तरह हजारों दबाव समूह नहीं हैं। यहां तो केवल गिने-चुने ही दबाव समूह हैं। इनमें प्रमुख हैं-The Swiss Peasant's Union, The Swiss Federation of Trade Unions, The Swiss Union of Commerce and Industry तथा The Swiss Association of Arts and Crafts। स्विट्जरलैण्ड में दबाव समूहों की प्रकृति व कार्य विधि अन्य देशों से भिन्न है। विधि निर्माण में प्रत्यक्ष भूमिका होने के कारण स्विस राजनीतिक व्यवस्था में जनता द्वारा हित समूहों का महत्व स्वीकार किया गया है।

चीन में हित व दबाव समूह

(Interest and Pressure Groups in China)

चीन एक साम्यवादी देश है और साम्यवादी देशों में एक ही हित को मान्यता दी जाती है, वह है-सर्वहारा का हित। उसे व्यक्त करने का अधिकार केवल साम्यवादी दल को ही प्राप्त होता है। वहां स्वाधीन हित समूहों को पनपने की छूट नहीं होती। वहां हित स्पष्टीकरण की प्रक्रिया में व्यावसायिक साहचर्य (Professional Association), मजदूर संघ, युवा दल सभी मिलकर साम्यवादी दल के सहयोगी और सहायक की भूमिका अदा करते हैं। साम्यवादी शासन के आरम्भिक दौर में तो हित समूहों पर पूरी तरह नियन्त्रण रहा, लेकिन उदारवाद की लहर के बढ़ते प्रभाव ने साम्यवादी देशों को भी हितों की अभिव्यक्ति के द्वार खोलने पर साम्यवादी देशों को मजबूर कर दिया। 1970 के दशक में कुछ देशों में साम्यवादी दल के झण्डे तले हित समूहों

को पनपने का अवसर दिया गया। चीन में भी साम्यवादी झण्डे के तले इन हित समूहों को पनपने का अवसर दिया गया है। लेकिन इन हित समूहों को तकनीकी मुद्दों पर ही मतभेद प्रकट करने की अनुमति है, नीति या विचारधारा के मुद्दे पर नहीं। चीन में कुछ हित संगठन हैं जो साम्यवादी दल के यन्त्र के रूप में कार्य करते हैं। इनमें-All Chinese Association of Trade Unions, All Chinease Association of Co-operative Societies, All Chinese Association of Republican Youths तथा All Chinese Association of Republican Women प्रमुख हैं। ये सभी संगठन साम्यवादी दल के मार्ग-दर्शन में ही कार्य करते हैं। इनका कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। इनमें प्रथम संगठन का कार्य श्रमिक अधिकारों की रक्षा करना तथा उनमें साम्यवादी दल की नीतियों को लोकप्रिय बनाना है, दूसरे का उद्देय सहकारिता आन्दोलन को गति देना, अन्तिम दोनों का उद्देश्य चीनी युवक, युवतियों व महिलाओं में साम्यवादी आदर्शों के प्रति निष्ठा का प्रचार करना है। आधुनिक युग में भी चीन में किसी भी राजनीतिक असहमति की सजा मौत है। व्यवहार में सरकार पर साम्यवादी दल का ही एकाधिकार है। ऐसे में वहां किसी हित समूह को स्वतन्त्र रूप में पनपने की आज्ञा नही दी जा सकती।

अध्याय-12

राज्य व स्थानीय सरकारें

(State and Local Governments)

किसी भी देश के शासन को चलाने के लिए शासन की शक्तियों का विकेन्द्रीयकरण करना आधुनिक युग की महती आवश्यकता है। विशाल जनसंख्या वाले राज्यों में शासन की शक्तियां केन्द्र व राज्य सरकारें के साथ-साथ स्थानीय सरकारों के पास भी होती हैं। भारत तथा अमेरिका में केंन्द्र सरकारों के साथ-साथ राज्य सरकारें भी है जिनकी अपनी विधायिका, कार्यपालिका तथा न्यापालिका हैं। इन सरकारों की अपनी स्वतन्त्र शक्तियां व अधिकार हैं जो उन्हें संविधान द्वारा प्रदत्त हैं। इसके विपरीत ब्रिटेन, स्विट्जरलैण्ड तथा चीन में प्रान्तीय व स्थानीय सरकारें केन्द्र के ही नियन्त्रण में रहकर कार्य करती हैं। ब्रिटेन, अमेरिका तथा स्विट्जरलैण्ड में लोकतन्त्र होने के कारण शक्तियों के विकेन्द्रीकरण का महत्व और अधिक बढ जाता है। चीन में विकेन्द्रीकरण तो है, लेकिन वह लोकतन्त्रीय केन्द्रीयकरण क आधार पर है। वहां की सम्पूर्ण शासन प्रणाली पर व्यवहार में साम्यवादी दल का ही नियन्त्रण है। स्थानीय सरकारें भी इस नियन्त्रण से अछूती नहीं हैं।

स्थानीय स्वशासन का महत्व

(Importance of Local Self Government)

किसी भी देश की शासन व्यवस्था में स्थानीय स्वशासन का बहुत महत्व होता है। लोकतन्त्रीय देशों में जहां जनता ही सम्प्रभु होती है और उसे ही शासन का वास्तविक संचालक माना जाता हे, वहां तो इसका महत्व और भी अधिक बढ़ जाता है। सर्वसाधारण के लिए यह सम्भव नहीं होता कि वह देश की सरकार के प्रत्येक मामले तें रुचि ले। आम व्यक्ति का कार्य प्रायः चुनावों के समय संसद सदस्यों को वोट देने तक ही सीमित रहता है। इसके विपरीत राज्य व स्थानीय सरकारों से उसका लगाव सदा के लिए रहता है। स्थानीय सरकारों से तो व्यक्ति प्रतिदिन जुड़ा रहता है। स्थान विशेष का निवासी होने के कारण उसकी समस्यायें स्थानीय सरकार की समस्यायें हैं। वह अपनी समस्याओं का हल स्थानीय सरकार में ही तलाश करता है और इस कार्य में उसको मदद भी मिलती है। आधुनिक कल्याणकारी राज्यों के दौर में तो स्थानीय स्वशासन का महत्व और अधिक हो गया है। आधुनिक युग लोकतन्त्र का युग इसी आधर पर है कि उसमें स्थानीय स्वशासन का महत्वपूर्ण योगदान है। स्थानीय स्वशासन ही वह पाठशाला है जो राज्य व केन्द्र सरकार के विद्यार्थियों को शिक्षित करती है और उन्हें राजनीतिक व प्रशासनिक प्रशिक्षण देती है। नेहरू जी ने कहा था कि स्थानीय स्वशासन ही लोकतन्त्र की सभी पद्धति का आधार है। लोकतन्त्र ऊपरी स्तर पर तभी सफल हो सकता हे, जब वह निम्न स्तर पर मजबूत हो। स्थानीय समस्याओं को केन्द्र सरकार तक ले जाने और केन्द्र सरकार की कल्याणकारी योजनाओं को विकेन्द्रीकरण का लाभ जनसाधारण तक पहुंचाने में स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं की महत्वपूर्ण भूमिका है। स्थानीय स्वशासन ही वही साधन है जो व्यक्तिगत स्वतन्त्रता, शान्ति तथा विकास की स्थापना करता है। इससे ही नागरिकों में देश के प्रति लगाव व सक्षम की भावना बढ़ती है। लार्ड ब्राइस ने स्थानीय स्वशासन के महत्व पर प्रकाश डालते हुए कहा है-"स्थानीय स्वशासन द्वारा नागरिकों में अपने कार्यों में समस्त रुचि लेने की भावना का जन्म होता है और उसके प्रति कर्तव्य सामूहिक बनते हैं और वे इस बात का विशेष ध्यान रखते हैं कि शासन-व्यवस्था ठीक तरह से चल रही है।" स्थानीय संस्थाओं को लोकतन्त्र का प्रहरी तथा स्वतन्त्र राष्ट्र की शक्ति कहा जाता है।

स्थानीय स्वशासन का अर्थ

(Meaning of Local Self Govt.)

स्थानीय स्वशासन से तात्पर्य ऐसी शासन-प्रणाली से है जिसका संचालन स्थानीय प्रतिनिधियों द्वारा किया जाता है। ये स्थानीय प्रतिनिधि किसी गांव, कस्बे, नगर अथवा महानगर से हो सकते हैं। ये संस्थायें राष्ट्रीय एवं राज्य सरकारों के नियन्त्रण में रहकर ही कार्य काती हैं। इन्हें अपने क्षेत्र में कुछ शासकीय तथा वित्तीय शक्तियां भी प्राप्त होती हैं जिनका निर्धारण केन्द्र व राज्य सरकारें कानून के अन्तर्गत करती हैं। स्थानीय स्वशासन को कुछ विद्वानों ने निम्न प्रकार से परिभाषित किया है :-

(1) एल० गाल्डिंग के अनुसार-"स्थानीय स्वशासन एक स्थान की जनता द्वारा अपने मामलों का स्वयं प्रबन्ध करना है।"

(2) एच०सिजविक के अनुसार-"स्थानीय शासन में कुछ ऐसी अधीनस्थ संस्थाएं होती हैं जिनको निश्चित क्षेत्र में कानून और नियम बनाने का अधिकार प्राप्त होता है।"

(3) ई०एल० हैजलक के अनुसार-"स्थानीय स्वशासन सरकार का वह भाग जिसमें स्थानीय संस्थाओं को कानूनी तौर पर भिन्न-भिन्न कार्य करने की स्वीकृति होती है।"

(4) जॉन जे० कलार्क के अनुसार-"स्थानीय सरकार एक राष्ट्र अथवा राज्य की सरकार का वह भाग होती है जो मुख्य रूप से ऐसे विषयों पर विचार करती है जिनका सम्बन्ध एक विशेष जिले या स्थान के लोगों से होता है।"

इस प्रकार कहा जा सकता है कि स्थानीय स्वशासन एक ऐसी व्यवस्था है जिसके अन्तर्गत किसी विशेष स्थान का शासन वहां के लोगों द्वारा चलाया जाता है और जो स्थानीय साधनों को जुटाकर सार्वजनिक सुविधायें प्रदान करने का प्रबन्ध करते हैं।

ब्रिटेन में राज्य व स्थानीय सरकारें

(State and Local Governments in Britain)

ब्रिटेन में एकात्मक शासन प्रणाली अपनाई गई है, लेकिन फिर भी प्रशासनिक सुविधा की दृष्टि से सम्पूर्ण शासन को प्रान्तों या स्थानीय इकाईयों में बांटा गया है। सभी इकाईयां केन्द्र सरकार के अधीन रहकर ही कार्य करती हैं। सभी इकाईयों की अपनी सरकारें हैं। सरकारों के व्यवस्थापन, कार्यपालिका तथा न्याय-विभाग भी हैं। वास्तव में ब्रिटेन में प्रांतीय सरकारे ही स्थानीय सरकारें हैं। वहां केन्द्र व स्थानीय सरकारों का सीधा सम्बन्ध होता है।

ब्रिटेन में स्थानीय स्वशासन की व्यवस्था ऐंग्लो-सैकसन युग से ही शुरु होती है। स्वायत्त शासन को इस युग की महान देन कहा जाता है। इस युग में स्थानीय अधिकारी शायर्स, हण्ड्रेडस तथा बरो थे जो बाद में काऊण्टी, मैनर तथा म्यूनिसिपेल्टियों में परिवर्तित हो गये। इसी दौरान पैरिशों की स्थापना हो गई और उन्होंने टाऊनशिप्स की जगह ले ली। इस प्रकार इंग्लैण्ड में ये स्थानीय स्वशासन की से संस्थायें काऊंटी, बरो तथा पैरिश 18वीं सदी तक रहीं। काऊंटी का शासन 'जस्टिस ऑफ दी पीस' तथा बरो का शासन फ्रीमैन के हाथ में था। 18वीं सदी में जनता ने औद्योगिक क्रान्ति से प्रभावित होकर शहरों की तरफ प्रस्थान किया। इससे नगरों में स्थानीय संस्थाओं का विकास प्रभावित हुआ और स्थानीय संस्थाओं के पुनर्गठन पर जोर दिया जाने लगा। संसद ने 1835 में 'नगरपालिका निगम कानून' पास किया और उससे बरोज के प्रशासन की व्यवस्था हुई। उसके बाद 1888 में स्थानीय सरकार अधिनियम पास हुआ जिसके द्वारा काऊण्टियों के प्रशासन का संगठन किया गया। 1894 में एक कानून पास हुआ जिसके अनुसार नगरों व गांवों के जिलों का पुनर्गठन हुआ। 1929, 1933 तथा 1936 में स्थानीय संस्थाओं की तरफ अधिक ध्यान दिया जाने लगा और द्वितीय विश्व युद्ध के बाद ब्रिटेन को नागरिक प्रतिरक्षा की दृष्टि से विभिन्न मण्डलों में बांटा गया। 1966 में स्थानीय सुधार के लिए एक शाही आयोग गठित हुआ जिसे रैडक्लिफ माड शाही आयोग के नाम से जाना जाता है। इसने 1969 में अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया और उस प्रतिवेदन के आधार पर 1972 में स्थानीय शासन अधिनियम पारित हुआ। इस अधिनियम ने एक ही साथ काऊण्टियों तथा काऊण्टी जिलों के

लिये एक नवीन दो-स्तरीय प्रबन्ध की व्यवस्था की। यह अधिनियम केवल इंग्लैण्ड के लिए ही है। बाद में वेल्स को भी इसमें शामिल कर लिया गया। स्काटलैण्ड तथा उत्तरी आयरलैण्ड व लन्दन शहर के लिये स्थानीय स्वशासन का संगठन अलग व विशेष तरह का है।

इंग्लैण्ड तथा वेल्स में स्थानीय शासन का संगठन

ब्रिटेन में स्थानीय शासन की प्रमुख संस्थायें निम्नलिखित हैं :-

(I) काउण्टी

(County)

इस समय इंग्लैण्ड में कुल 62 काउण्टियां हैं। ये काउण्टियां ऐतिहासिक और प्रशासकीय दो प्रकार की हैं। ऐतिहासिक काउण्टियां इंग्लैण्ड के वे विभाग हैं जो प्राचीन समय से वहां चले आ रहे हैं। इनकी संख्या 52 हैं। वहां प्रशासन की सुविधा के अनुसार भी काउण्टियों का निर्माण किया गया है, उन्हें प्रशासकीय काउण्टियां कहा जाता है। उनकी संख्या 58 है। इन दोनों काउण्टियों को मिलाकर कुल 62 काउण्टियां हैं। प्रशासकीय काउण्टियों को शहरी जिलों और ग्रामीण जिलों में बांटा जाता है। आज इंग्लैंड में 24 लाख, 57 हजार जनसंख्या वाले लंकाशायर में ऐसा ही विभाजन है। इस समय ब्रिटेन में 522 शहरी जिले तथा 469 ग्रामीण जिले हैं। ग्रामीण जिलों को आगे पैरिशों में बांटा गया है जो स्थानीय स्वशासन की सबसे छोटी इकाई है।

काउण्टी का शासन :- काउण्टी की शासन व्यवस्था चलाने के लिए एक कौंसिल होती है जिसके सदस्यों का चुनाव उस काउण्टी में निवास करने वाले सब व्यस्क स्त्री-पुरुषों द्वारा किया जाता है। वोट का अधिकार सभी व्यस्क स्त्री-पुरुषों को प्राप्त है। कौंसिल के सदस्यों का निर्वाचन 3 वर्ष के लिए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष तरीके से किया जाता है। काउण्टी कौंसिल का चुनाव होने के बाद एल्डरमैनों का चुनाव कौंसिल के सदस्य करत हैं। काउण्टी कौंसिल के कुल सदस्यों का 1/3 एल्डरमैनों के रूप में चुना जाता है। जब कौंसिल के सदस्यों में से कोई भी सदस्य चुन लिया जाता है, उसके रिक्त पद पर फिर से चुनाव होता है। एल्डरमैन काउण्टी के अनुभवी तथा योग्य व्यक्ति होते हैं। उनका चुनाव 6 वर्ष के लिए होता है। आगे ये एल्डरमैन अपने में से एक चेयरमैन का चुनाव करते हैं। चेयरमैन का चुनाव प्रत्येक वर्ष किया जाता है। एल्डरमैन कौंसिल के अधिवेशन की अध्यक्षता करता है और शासन व न्याय के सम्बन्ध में भी कुछ अधिकारों का प्रयोग करता है। यह चेयर शान्ति-न्यायधीश का भी कार्य करता है। काउण्टी के शासनकार्य को सुचारु ढंग से निपटाने के लिए उसका स्थायी कर्मचारी वर्ग भी होता है। इन कर्मचारियों को हटाने व नियुक्त करने का अधिकार कौंसिल के पास ही होता है।

काउण्टी कौंसिल के कार्य (Functions of the County Council) :- काउण्टी कौंसिल के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं :-

(1) काउण्टी की शासन नीति का निर्धारण करना और उसके लिए उप-नियम बनाना।

(2) काउण्टी क्षेत्र में अपने खर्च के लिए कर लगाना।

(3) अपने क्षेत्र में विद्यमान देहाती क्षेत्रों की कौंसिलों के कार्यों का निरीक्षण करना।

(4) बजट बनाना।

(5) केन्द्र से अनुदान प्राप्त करनां

(6) प्राथमिक तथा उच्च शिक्षा की व्यवस्था करना।

(7) सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाओं का विकास करना।

(8) सार्वजनिक भवनों का निर्माण करना व उनकी देखभाल करना।

(9) कृषि का विकास करना।

(10) शहरी व ग्रामीण क्षेत्रों का नियोजन।

(11) काउण्टी के क्षेत्र के लिए राजकर्मचारियों की नियुक्ति करना।

(12) सड़क, पुल व मजदूरों के निवास के लिए मकानों का निर्माण करना।

(13) अनाथालय, पागलखाने व वृद्धावस्था आश्रमों की व्यवस्था करना।

(14) पुलिस व अग्निशमन व्यवस्था करना।

(15) पशुधन की सुरक्षा हेतु पशु-चिकित्सालयों की व्यवस्था करना।

(16) नाप-तोल की प्रणाली को नियन्त्रित रखना।

काउण्टी के विभागों का शासन :-काउण्टी का आकार बड़ा होने के कारण वह अपने उपरोक्त कार्यों का सही निष्पादन नहीं कर सकती। इसके लिए वह अपने शासन-प्रबन्ध को शहरी तथा ग्रामीण जिले स्तर पर विकेन्द्रित करती है। प्रत्येक शहरी व ग्रामीण जिले की अपनी-अपनी परिषद् होती है। ग्रामीण जिले को आगे कई पैरिशों में बांटा जाता है। ये पैरिश ग्रामीण जिले की परिषद का गठन करते हैं। इसी तरह शहरी जिले की परिषद में भी उसके सदस्यों द्वारा एक अध्यक्ष चुना जाता है। काउण्टी का विकेन्द्रीकरण जनसंख्या के अनुपात में किया जाता है। अधिक जनसंख्या वाली काउण्टियां अधिक ग्रामीण व शहरी जिलों में बांटी जाती हैं। इनके कार्य अपने-अपने क्षेत्र में निश्चित रहते हैं। इनका कार्य सफाई, सड़क सुरक्षा, स्वास्थ्य रक्षा व शिक्षा का प्रबन्ध करना है।

(II) बरो

(Borough)

काउण्टी के अन्तर्गत जब किसी शहरी क्षेत्र स्थानीय स्वशासन के बारे में विशेष अधिकार प्रदान कर दिये जाते हैं तो वह बरो कहलाता है। बरो दो प्रकार के होते हैं-(i) काउण्टी बरो तथा (ii) चार्टर्ड बरो। काउन्टी बरो उन नगरों में स्थापित किये जाते हैं जिनकी जनसंख्या 75000 से 10 लाख तक होती है। इनकी कुल संख्या 83 है। चार्टर्ड बरो । हजार की जनसंख्या से लेकर । लाख की जनसंख्या तक वाले नगरों में स्थापित किये जाते हैं। इनकी कुल संख्या 318 है। इसके कार्य भी काउण्टी बरो के समान ही होते हैं। ये प्रशासनिक काउण्टियों का ही एक भाग है, लेकिन इन्हें स्वतन्त्र शक्तियां प्राप्त हैं।

बरो का शासन :- बरो का शासन प्रबन्ध भारत की म्युनिसिपल कमेटियों की तरह है। वहां बरो के शासन प्रबन्ध के लिये एक कौंसिल है। जिसमें जनता द्वारा निर्वाचित कौंसिलर तथा कौंसिल द्वारा निर्वाचित एल्डरमैन हाते हैं। इसके अतिरिक्त कौंसिल का एक चेयरमैन भी होता है जो कौंसिल द्वारा ही चुना जाता है। बरो कौंसिल का अध्यक्ष मेयर कहलाता है। वास्तव में बरो कौंसिल का संगठन भी काउण्टी कौंसिल की तरह ही है। वहां मेयर का पद काफी प्रतिष्ठित है। मेयर बरो कौंसिल की अध्यक्षता करता है और औपचारिक अवसरों पर नगर का प्रतिनिधित्व करता है। बरो कौंसिल के सदस्यों की जनसंख्या पर निर्भर करती है।

बरो कौंसिल के कार्य (**Functions of the Borough Council**) **:-**बरो कौंसिल व्यवस्थापन, वित्तीय व कार्यपालक कार्य करती है। इसे अनेक विषयों पर नियम बनाने का अधिकार प्राप्त होता है। यह कौंसिल अपने क्षेत्र में शिक्षा की देखभाल, सडकों का निर्माण, सफाई, रोशनी, जलापूर्ति, मनोरजंन के साधन, मकानों की व्यवस्था, पुलिस व्यवस्था, आग बुझाने का प्रबन्ध आदि कार्य करती है। यह वार्षिक बजट का निर्माण करती है और नए कर लगाती है और केन्द्र सरकार की अनुमति से अपनी साख के अनुसार ऋण लेती है। काउण्टी की तरह बरो के भी अपने स्थायी कर्मचारी होते हैं, जो बरो की उसके कार्य में मदद करते हैं।

स्कॉटलैण्ड तथा उत्तरी आयरलैण्ड में स्थानीय संगठन

स्काटलैण्ड तथा उत्तरी आयरलैण्ड में स्थानीय स्वशासन का संगठन इंग्लैण्ड तथा वेल्स से अलग है। स्कॉटलैण्ड में

33 काउंटी परिषदें, 201 टाउन परिषदें तथा 176 जिला परिषदें हैं। उत्तरी आयरलैण्ड में काउंटी परिषदें 6, यनान काउण्टी परिषदें 9, शहरी जिला परिषदें 24 और जिला परिषदें 26 हैं। इन सभी संगठनों के कार्य लगभग वही हैं जो इंग्लैण्ड तथा वेल्स में हैं।

लन्दन का शासन प्रबन्ध

(Administration of London)

लन्दन ब्रिटेन के साथ-साथ ब्रिटिश साम्राज्य की राजधानी है। लन्दन शहर को प्रशासनिक सुविधा की दृष्टि से - लन्दन शहर, लन्दन काउण्टी तथा मेट्रोपोलिटन काल तीन भागों में बांटा गया है।

(I) लन्दन शहर का शासन (Administration of London City) :- प्रशासनिक सुविधा की दृष्टि से लन्दन शहर का शासन चलाने के लिए एक लार्ड मेयर तथा तीन परिषदें होती हैं। इस परिषदों के अपने अलग-अलग कार्य हैं। ये सभी परिषदें लार्ड मेयर की अध्यक्षता में रहकर कार्य करती हैं। ये परिषदें हैं (i) कोर्ट ऑफ ऐल्डरमैन (ii) कोर्ट ऑफ कॉमन कौंसिल तथा (iii) कोर्ट ऑफ कॉमन हाल होती हैं। कोर्ट ऑफ ऐल्टरमैन की कुल संख्या 16 होती है और वे आजीवन सदस्य होते हैं। लार्ड मेयर भी इसका सदस्य होता है। यह दलालों को लाइसेंस देने तथा रिकार्ड को सुरक्षित रखने का कार्य करता है। इसी कारण इसका महत्व काफी ज्यादा होता है। इसके बाद कोर्ट ऑफ कामन परिषद होती है जिसमें 100 कौंसिलर तथा 16 ऐल्डरमैन होते हैं। इसके कार्य काउण्टी तथा बरो कौंसिल के समान हैं। इसके बाद कोर्ट ऑफ कॉमन हाल की बारी आती है। लिवरीमैन कम्पनियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। लन्दन वृहत्तर परिषद को लॉर्ड मेयर का पद काफी महत्वपूर्ण होता है। यह तीनों कोर्टों के अधिवेशनों की अध्यक्षता करता है।

(II) लन्दन काउण्टी का शासन (Administration of London County) :- लन्दन काउन्टी एक प्रशासकीय काउण्टी है। इसकी एक कौंसिल भी है। इसकी सदस्य संख्या 124 है। इसके सदस्यों का चुनाव 3 वर्ष के लिये किया जाता है। इसमें 10 ऐल्डरमैन 6 वर्ष के लिये चुने जाते हैं। यह कौंसिल स्वास्थ्य, सड़क, पुल, ट्रामवे, बस सर्विस, रोशनी, गैस, रेलवे आदि से सम्बन्धित कार्य करती है। यह अपना कार्य चलाने के लिये समितियों का गठन करती है और अनेक कर्मचारियों की भी नियुक्ति करती है। कौंसिलर और ऐल्डरमैन मिलकर अपने अध्यक्ष का भी चुनाव करते हैं जो काउण्टी के अधिवेशनों की अध्यक्षता करता है।

(III) मैट्रोपोलिटन लन्दन (Metropolitan London) :- लन्दन शहर के चारों ओर बहुत से उप-नगर विकसित हो गये हैं इन्हें मेट्रोपोलिटन बरो कहा जाता है। इन सभी की अपनी अलग-अलग बरो कौंसिल हैं और इनके सदस्यों का चुनाव भी उसी तरीके से होता है जैसे अन्य बरो कौंसिल के सदस्यों का होता है। ये सदस्य अपने ऐल्डरमैनों तथा चेयरमैन का चुनाव करते हैं। इसके कार्य व शक्तियां अन्य बरो कौंसिलों की तरह ही हैं।

स्थानीय स्वशासन पर केन्द्र का नियन्त्रण व औचित्य

(Control of the Central Govt. over Local Govt. and its Justification)

ब्रिटेन में स्थानीय संस्थाओं पर केन्द्र सरकार का पूरा नियन्त्रण है। स्थानीय संस्थाओं को केन्द्र सरकार से ही अनुदान मिलता है। शिक्षा, स्वास्थ्य, रक्षा, पुलिस आदि का प्रबन्ध करने में यह अनुदान मदद करता है। इस अनुदान पर निगरानी रखने के लिए केन्द्र सरकार निरीक्षक की नियुक्ति करती है। प्रिवि परिषद यह निर्धारित करती है कि किस नगर को चार्टर देकर चार्टर्ड बरो बनाया जाये। यह चार्टर में उन नियमों व उपनियमों की भी व्यवस्था कर देती है निके अनुसार बरो कौंसिल अपना कार्य करेगी। इसी तरह संसद को भी स्थानीय संस्थाओं से सम्बन्धित कार्यों पर निर्णय लेने का पूरा अधिकार है। केन्द्रीय सरकार के कुछ विभाग भी स्थानीय सरकारों पर नियन्त्रण रखते हैं। उदाहरण के लिये ब्रिटेन में गृह-विभाग पुलिस के कार्यों को भी देखभाल करता है। वहां पुलिस सम्बन्धी कार्य तो स्थानीय संस्थायें की करती हैं, लकिन उन पर नियन्त्रण गृह-विभाग का ही रहता है। इसी तरह केन्द्र सरकार शिक्षा, कृषि, स्वास्थ्य आदि से सम्बन्धित नियम बनाकर भी स्थानीय संस्थाओं पर नियन्त्रण रखती है।

यदि केन्द्र सरकार के द्वारा स्थानीय स्वशासन पर नियन्त्रण पर विचार किया जाये तो यह औचित्यपूर्ण ही लगता है। इसका कारण यह है कि स्थानीय स्वशासन के साधन सीमित होते हैं और वह केन्द्र सरकार के अनुदानों पर निर्भर करती है तो केन्द्र सरकार को उस पर नियन्त्रण रखने का पूरा हक है। इसका एक लाभ यह भी है कि स्थानीय संस्थाओं को केन्द्रीय सरकार के अनुभवों का लाभ भी मिल जाता है और स्थानीय संसीायें निरंकुश नही बनने पाती। आज का युग कल्याणकारी राज्यों का युग है। आज स्वास्थ्य, शिक्षा, शान्ति, सुरक्षा आदि कार्यों को निष्पादित करने के लिए स्थानीय सरकार के पास पर्याप्त साधनों का अभाव केन्द्र सरकार ही पूरा करती है। अतः स्थानीय सरकारों पर केन्द्र सरकार का नियन्त्रण उचित ही है।

ब्रिटेन में स्थानीय स्वशासन का महत्त्व

(Importance of Local Govt. in Britain)

ब्रिटेन में स्थानीय स्वशासन का बहुत अधिक महत्व है। स्थानीय स्वशासन की संस्थाएं पर्यावरण सुधार सम्बन्धी कार्य करने, सुरक्षा देने तथा सामाजिक कल्याण के कार्यों का विकास करने में अपना महत्वपूर्ण योगदान देती है। आज के कल्याणकारी राज्यों के युग में तो इन संस्थाओं का महत्व और अधिक हो गया है। जनता के लिये शिक्षा, स्वास्थ्य, यातायात, शिशु कल्याण, वृद्धावस्था आश्रमों, संचार-व्यवस्था, पुलिस सुरक्षा आदि कार्य ब्रिटेन में स्थानीय संस्थाएं ही करती हैं। इस संस्थाओं के बिना कल्याणकारी राज्य लक्ष्य प्राप्त नहीं किया जा सकता। ब्रिटेन में स्थानीय संस्थाएं लोकतन्त्र की प्राथमिक पाठशाला है। ये जनकल्याण के साथ-साथ लोगों को राजनीतिक शिक्षा का पाठ भी पढ़ाती हैं। ब्लैक स्टोन ने तो यहां तक कह दिया है कि ब्रिटेन की स्वतन्त्रता वहां की स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं के कारण ही स्थापित है। अतः ब्रिटेन में प्रजातन्त्र की स्थापना करने, जन-आकांक्षाओं को पूरा करने तथा सामाजिक कल्याण को बढ़ावा देने में वहां की स्थानीय संस्थाओं की भूमिका महत्वपूर्ण है।

अमेरिका में राज्य व स्थानीय सरकारें

(State and Local Govts. in America)

अमेरिकन शासन-प्रणाली एक संघात्मक शासन प्रणाली है। वहां 51 राज्य सरकारों तथा एक केन्द्र सरकार में शासन की शक्तियों का विभाजन किया गया है। लम्बे समय तक अमेरिकन राज्य ब्रिटेन के उपनिवेश रहे और अमेरिकन स्वतन्त्रता की घोषणा से पहले ही उन्होंने अपने-अपने संविधान भी बना लिये थे जो आज भी अमेरिका में राज्यों के अपने-अपने संविधान हैं और सभी राज्यों में विभिन्न तरह की शासन-विधि पाई जाती है। केन्द्र सरकार के लिये राज्य सरकारों का आज काफी महत्व है। राष्ट्रपति के निर्वाचन, कांग्रेस सदस्यों के निर्वाचन तथा मतदाता सूची तैयार करने में राज्य सरकारों की महत्वपूर्ण भूमिका है। यद्यपि सभी राज्य सरकारों की शासन विधि तो समान नहीं है, लेकिन सभी राज्यों के संविधानों में जन-सम्प्रभुता के सिद्धानत, नागरिक समानता, प्रतिनिधि लोकतन्त्र, शक्तियों के पृथक्करण का सिद्धान्त, न्यायिक पुनरावलोकन आदि सिद्धान्तों में आधारभूत समानता पाई जाती है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि अमेरिकन राज्यों के संविधानों में भी रिवस संविधानकी तर जन-निर्देश (Refrendum), आरम्भण (Initiative) और वापस बुलाने (Recall) के प्रावधान भी हैं। सत्य तो यह है कि राज्य सरकारों के बिना न तो अमेरिकन संविधान में कोई संशोधन हो सकता है और न ही केन्द्र सरकार का काम चल सकता है। वास्तव में राज्य सरकार ही वह धुरी है जिसके चारों ओर अमेरिका की समस्त राजनीतिक व्यवस्था घूमती है।

राज्य सरकारों का गठन

(Organisation of State Govts.)

अमेरिका में प्रत्येक राज्य की सरकार के तीन विभाग - कार्यपालिका, विधायिका तथा न्यायपालिका हैं। राज्य की कार्यपालिका के अन्तर्गत राज्यपाल, उप-राज्यपाल, राज्य सचिव, महान्यायवादी, लेखा परीक्षक, कोषाध्यक्ष तथा निरीक्षक होते हैं। व्यवस्थापन विभाग में अधिकतर राज्यों में प्रतिनिधि सभा और सीनेट दो सदन हैं। इसके साथ ही सभी राज्यों के अपने अलग न्यायालय भी हैं।

(1) राज्यों की कार्यपालिका

(Executive of the States)

राज्य सरकारों की कार्यपालक शक्तियां राज्यपाल के पास हैं। राज्य में राज्यपाल की वही स्थिति होती है जो केन्द्र में राष्ट्रपति की होती है। उसकी सहायता के लिये उप-राज्यपाल तथा अन्य उच्च प्रशासनिक अधिकारी भी होते हैं। राज्यपालों की नियुक्ति भी उसी तरह होती है जैसे राष्ट्रपति की होती है। राज्यपालों का चुनाव गुप्त मतदान प्रणाली द्वारा किया जाता है। वह अपने कार्य के लिए व्यवस्थापन-विभाग के प्रति उत्तरदायी नहीं होता। राज्यपाल के पद नियुक्त होने के लिए आयु कम से कम 30 वर्ष होनी चाहिये। इसके साथ ही वह अमेरिका का नागरिक व पांच वर्ष से उस राज्य का निवासी होना चाहिए, जहां से वह निर्वाचित होता है। राज्यपाल का कार्यकाल सभी राज्यों में समान नहीं है। कुछ में यह 2 वर्ष तो कुछ में 4 वर्ष है। राज्यपाल को केवल महाभियोग लगाकर ही हटाया जा सकता है। महाभियोग का प्रस्ताव प्रतिनिधि सभा स्वीकृत करके राज्यों की सीनेट के 2/3 बहुमत और कुछ में 50% बहुमत से हटाया जा सकता है। कुछ राज्यों में राज्यपालों को Recall प्रक्रिया द्वारा भी हटाया जा सकता है। कई बार राज्यपाल की मृत्यु हो जाने या त्यागपत्र देने या पदच्युत हो जाने पर उसका पद उप-राज्यपाल ही ग्रहण कर लेता है। उप-राज्यपाल का कार्य सीनेट की अध्यक्षता करना है और उसकी स्थिति व कार्य अमेरिकन उप-राष्ट्रपति की तरह ही होते हैं। यदि किसी राज्य में उप-राज्यपाल का पद नहीं है तो उस राज्य का राज्य-सचिव राज्यपाल का पद रिक्त होने पर उसे ग्रहण करता है। कई बार नए राज्यपाल का भी चुनाव कर लिया जाता है।

राज्यपाल की शक्तियां

(Powers and Functions of the Governor)

अमेरिका के राज्यों के राज्यपाल केवल संवैधानिक अध्यक्ष ही नहीं होते, बल्कि उनकी शक्तियां व अधिकार काफी महत्वपूर्ण होते हैं। राज्यपाल की शक्तियां व कार्य निम्नलिखित हैं :-

(1) कार्यपालिका शक्तियां (Executive Powers) :- राज्यपाल राज्य का सर्वोच्च प्रशासक होता है। राज्यों के कार्यकारिणी विभाग के कार्य व अधिकार राज्यपाल द्वारा ही सम्पन्न व प्रयुक्त किये जाते हैं। राज्य के कुछ उच्च पदों पर नियुक्तियां भी राज्यपाल करता है। लेकिन कुछ राज्यों के संविधानों में इन पदों की नियुक्ति करने का अधिकार जनता को प्राप्त है। जिन पदों पर राज्यपाल नियुक्तियां करता है, उन पर उसे सीनेट की अनुमति लेनी पड़ती है, वरना वे नियुक्तियां अवैध मानी जाती हैं। राज्यपाल को कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अन्तर्गत अपने द्वारा नियुक्त पदाधिकारियों को पद्च्युत करने का भी अधिकार है। अपने अधीनस्थ सभी अधिकारियों पर उसका पूरा अधिकार है परन्तु वह उन्हें पद्च्युत करते समय सीनेट की ही स्वीकृति से ऐसा कर सकता है। इसके अतिरिक्त वह संघीय या केन्द्र सरकार द्वारा प्रेषित आदेशों को प्रापत करता है और केन्द्र व राज्य सरकार के बीच कड़ी का कार्य भी करता है। जब कभी भी केन्द्र सरकार राज्य का सहयोग चाहती है तो वह संघ सरकार व राज्य सरकार में उचित मेल कराता है और केन्द्र को सहयोग भी देता है।

(2) विधायी शक्तियां (Legislative Powers) :- राज्यपाल के विभिन्न बोर्डों व आयोगों का सदस्य होता है। यद्यपि वह किसी सदन का सदस्य भी नहीं होता, लेकिन फिर भी वह व्यवस्थापन के कार्य को अवश्य प्रभावित करता है। उसे विधानमण्डल में सन्देश भेजने का अधिकार है। नियुक्ति सम्बन्धी अधिकार के द्वारा वह विधानमण्डल को प्रभावित कर सकता है। वह विधानमण्डलों के विशेष निर्वाचन के लिए आदेश दे सकता है। वह विधानमण्डल द्वारा स्वीकृत विधियों से सम्बन्धित पूरक नियम-उपनियम बना सकता है। उसे विधानमण्डल द्वारा पारित किसी भी अधिनियम को पुनर्विचार के लिए भेजने का अधिकार है। उसे अध्यादेश जारी करने तथा राष्ट्रपति की तरह पॉकेट वीटों का भी अधिकार है। वह विधानमण्डल के अधिवेशन में भाषण भी दे सकता है। वह विधेयक के किसी विशेष भाग पर वीटो कर सकता है। राष्ट्रपति की तरह वह लूट प्रणाली द्वारा विधायकों के हितों को लाभ पहुंचाकर व्यवस्थपिका को अपनी इच्छानुसार व्यवस्थापन करने के लिए भी प्रेरित कर सकता है।

(3) वित्तीय शक्तियां (Financial Powers) :- राज्यपाल को वित्तीय शक्तियां भी प्राप्त हैं। राज्यपाल राज्य का बजट तैयार करवाकर उसे राज्य विधानमण्डल के समक्ष प्रस्तुत करता है। उसे बजट के बारे में सम्बन्धित अधिकारियों से आवश्यक जानकारी ग्रहण करने का पूरा अधिकार है। राज्यपाल को व्यय-विनियोग विधेयक सम्बन्धी किसी भी वित्तीय मामले में स्थिति काफी महत्वपूर्ण है।

(4) सैनिक शक्तियां (Military Powers) :- यद्यपि रक्षा सम्बन्धी विषय अब संघीय सरकार के अधीन चले गये हैं, लेकिन फिर भी वह राज्य की सेना तथा राज्य-रक्षक सेना का नाममात्र मुख्य सेनापति है, क्योंकि वास्तविक शक्ति एडजूटेंट जनरल के पास या अन्य किसी सैनिक पदाधिकारी के पास ही होती है। राज्य की सेना के अधिकारी राज्यपाल द्वारा ही नियुक्त किये जाते हैं। राज्यपाल का आन्तरिक सेना पर भी नियन्त्रण रहता है। आवश्यकता पड़ने पर वह इस सेना का प्रयोग कर सकता है।

(5) न्यायिक शक्तियां (Judicial Powers) :- राज्यपाल को क्षमा देने का भी अधिकार है। इस अधिकार का प्रयोग वह एक परामर्शदात्री समिति की सलाह से करता है।

इस तरह कार्यपालक के रूप में राज्यपाल महत्वपूर्ण कार्य करता है। यद्यपि अधिकांश मामलों में उसे सीनेट की अनुमति अवश्य लेनी पड़ती है, लेकिन फिर भी उसके द्वारा प्रशासन के सर्वोच्च अधिकारी के रूप में अदा की जाने वाली भूमिका काफी महत्वपूर्ण है।

(II) राज्यों की व्यवस्थापिका

(Legislature of the States)

अमेरिका में एक राज्य (नेब्रास्क) को छोड़कर शेष सभी में व्यवस्थापिका के दो सदन हैं। केन्द्रीय व्यवस्थापिका की तरह उनके नाम भी प्रतिनिधि सदन (निम्न सदन) तथा सीनेट (उच्च सदन) हैं। दोनों सदनों के निर्वाचन क्षेत्र एक दूसरे से भिन्न होते हैं। प्रत्येक राज्य अनेक काउण्टियों (जिलों) में बंटा होता है। प्रत्येक काउण्टी चाहे उसकी जनसंख्या कितनी भी हो, सीनेट के लिए एक ही सदस्य भेजती है। ये सदस्य व्यस्क मताधिकार के आधार पर आम जनता द्वारा ही चुने जाते हैं। इसके विपरीत प्रतिनिधि सभा के सदस्य जनसंख्या के आधार पर बंटे निर्वाचन क्षेत्रों में से निर्वाचित होकर आते हैं। प्रतिनिधि सभा की सदस्य संख्या सीनेट से अधिक होती है। सीनेट के 1/3 सदस्य प्रत्येक दो वर्ष बाद रिटायर हो जाते हैं। इस तरह सीनेट एक स्थायी सदन बना रहता है। अधिकार की दृष्टि से दोनों सदनों की स्थिति बराबर है। कोई भी विधेयक उस समय तक कानून नहीं बन सकता, जब तक उस पर दोनों सदनों की स्वीकृति न हो जाये। साधरण विधेयक तो किसी भी सदन में पेश किया जा सकता है, लेकिन वित्त-विधेयक तो केवल प्रतिनिधि सदन में ही प्रस्तुत किया जाता है। दोनों सदनों द्वारा पारित विधेयक राज्यपाल के पास स्वीकृति के लिये भेजा जाता है। राज्यपाल उस विधेयक को पुनर्विचार के लिए वापिस भेज सकता है या वीटो भी कर सकता है। यदि पुनर्विचार के लिए विधेयक को दोनो सदन निश्चित बहुमत से फिर से पारित कर देते हैं तो वह विधेयक स्वीकृत काना जाता है और वह कानून का रूप ले लेता है। राज्य विधानमण्डलों को वे सभी शक्तियों प्राप्त हैं जो संघीय सरकार के दायरे से बाहर हैं। राज्य विधानमण्डलों को संविधान में संशोधन का अधिकार भी प्राप्त है, लेकिन उस पर जन-स्वीकृति लेना आवश्यक है। संविधान में संशोधन के लिए सभी राज्यों में प्रयुक्त पद्धति समान नहीं है। कुछ राज्यों में तो 2/3 बहुमत से विधानमण्डल संशोधन कर सकता है, जबकि कुछ में 50 प्रतिशत बहुमत की आवश्यकता होती है। लेकिन उस पर जनता या लोकमत की राय तो लेनी ही पड़ती है।

(III) राज्यों की न्यायपालिका

(Juduciary of the States)

राज्यों के न्यायालय संघीय न्यायालयों से पूरी तरह भिन्न हैं। इनका निर्माण राज्य सरकारों द्वारा किया जाता ह। इन न्यायालयों में राज्यों द्वारा निर्मित कानूनों से सम्बन्धित केस ही आते हैं। कुछ राज्यों में तीन प्रकार के न्यायालय हैं और कुछ में अधिक। इनमें सबसे छोटा न्यायालय जस्टिस ऑफ दी पीस है। इसमें दीवानी तथा फौजदारी दोनों तरह के

मुकद्दमें सुने जाते हैं। इसके बाद काउण्टी न्यायालय तथा म्युनिसिपल न्यायालय हैं। काउण्टी न्यायालय का अधिकार क्षेत्र काउण्टियों (जिलों) में तथा म्युनिसिपिल न्यायालयों का नगरों में होता है। इनमें निम्न न्यायालय के निर्णयों क विरुद्ध अपीलें सुनी जाती हैं। ये न्यायालय भी दीवानी तथा फौजदारी दोनों तरह के मुकद्दमें सुनते हैं। कुछ राज्यों में एक सुपीरियर कोर्ट (Superior Court) भी है जो निम्न न्यायालयों के विरुद्ध अपीलें सुनती हैं। इनमें अधिक धनराशी के मुकद्दमें भी सुने जाते हैं। इसके साथ ही प्रत्येक राज्य में एक सर्वोच्च न्यायालय भी होता है जो निम्न न्यायालय के विरुद्ध अपीलें सुनता है। इसका निर्णय अन्तिम होता है। इसके निर्णय के विरुद्ध संघीय न्यायालयों में भी अपील नहीं की जा सकती। विभिन्न राज्यों में न्यायधीशों की नियुक्ति के तरीके भी अलग-अलग हैं। कुछ राज्यों में न्यायधीशों को जनता चुनती है तथा कुछ में राज्य-विधामनण्डल। सर्वोच्च्य न्यायालय के न्यायधीशों को तो सम्स्त जनता चुनती है, जबकि छोटे न्यायालयों के न्यायधीशों को उस क्षेत्र की जनता चुनती है जहां उनका अधिकार क्षेत्र पड़ता है। न्यायधीशों के कार्यकाल के बारे में भी सभी राज्यों में अलग-अलग व्यवस्थाएं हैं। कुछ राज्यों में तो वे आजीवन इस पर पर रहते हैं, जबकि कुछ में कुछ ही समय के लिये। इसी तरह कुछ राज्यों में तो उन्हें महाभियोग द्वारा हटाया जा सकता है और कुछ में जनता उन्हें 'Recall' की व्यवस्था द्वारा हटा सकती है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि अमेरिका में राज्यों की अपनी स्वतन्त्र सरकारें व संविधान हैं जो अपनी शक्ति व अधिकार अमेरिकन संविधान से प्राप्त करती है। अमेरिका में जो शक्तियां संघीय सरकार के पास नहीं हैं वे राज्य सरकारों के पास हैं। अवशिष्ट शक्तियों का प्रयोग भी राज्य सरकारों ही करती हैं। उनकी राज्य प्रशासन में महत्वपूर्ण भूमिका के कारण उन्हें अमेरिकन राजनीतिक व्यवस्था को घुमाने वाली धुरी कहा जाता है।

अमेरिका में स्थानीय स्वशासन

(Local Self Govt. in America)

विश्व के अन्य देशों की तरह संयुक्त राज्य अमेरिका में भी राज्यों के अधीन स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं का प्रावधान है। ब्रिटेन तथा अमेरिका की स्थानीय संस्थाओं के बारे में आधारभूत अन्तर यह है कि ब्रिटेन में स्थानीय सरकारें केन्द्र सरकार के प्रत्यक्ष नियन्त्रण में हैं, जबकि अमेरिका में उन पर राज्य सरकारों कर नियन्त्रण है। अमेरिका में राज्य सरकारें ही स्थानीय संस्थाओं की प्राणदायिनी शक्ति है, राज्य सरकारें जब चाहे तब इनकी सत्ता का अन्त कर सकती है। परन्तु आधुनिक युग में स्थानीय सरकारें वे शक्ति बन चुकी हैं कि उनके बिना न तो राज्य सरकारें और न ही केन्द्र सरकारें भली-भांति अपने कर्तव्यों का निर्वहन कर सकती हैं। इसी कारण आज अमेरिका में भी स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं का बहुत महत्व है। स्थानीय संस्थाओं की सफलता ही अमेरिका में लोकतन्त्र की सफलता का आधार है।

अमेरिका में स्थानीय संस्थाओं का संगठन

(Organisations of the Local Courts in America)

अमेरिका के सभी राज्यों में स्थानीय सरकारों का संगठन एक जैसा है। न्यू इंग्लैण्ड में स्थानीय संस्थाओं का महत्वपूर्ण इकाई टाऊन है। यह ब्रिटिश पेरिश की तरह है। अमेरिका में टाऊन नगर की बजाय बस्ती को कहा जाता है। टाऊन के सभी नागरिक जिन्हें मताधिकार प्राप्त है, वर्ष में एक बार अवश्य सभा करते हैं और अपनी बस्ती के मामलों को निर्धारण करते हैं। ये टाऊन के कर्मचारियों से भी चुनते हैं तथा एक कौंसिल का भी चुनाव करते हैं ताकि टाऊन की सभा की प्रायः वही स्थिति रहे जो स्विस कम्यून सभा की होती है। इस सभा द्वारा सर्व-साधारण नागरिकों को अपने मामलों का स्वयं निर्णय करने का मौका मिलता है और उन्हें सार्वजनिक कार्यों की वह शिक्षा भी प्राप्त होती है जो उन्हें राजनीति की अगली सीढ़ी तक पहुंचने में मदद करती है। टाऊन के बाद काउण्टियां होती हैं जिनमें कई टाऊन शामिल होते हैं। इनका प्रधान कार्य अपने क्षेत्र में सड़कों की व्यवस्था और न्याय कार्य करना है। काउण्टी के स्थायी कर्मचारी भी होते हैं जिनका चुनाव जनता करती है। काउण्टी के न्यायधीश भी जनता द्वारा ही चुने जाते हैं। अमेरिका के स्थानीय स्वशासन के बारे में यही बात महत्वपूर्ण है कि स्थानीय संस्थाओं का कर्मचारी वर्ग उन्हीं नागरिकों का होता है जो उस स्थान या क्षेत्र के निवासी होते हैं, जहां उन्हें कार्य करना है। उन्हें अपनी

स्थानीय समस्याओं से परिचित होते हैं। अमेरिका में नगरों का शासन म्युनिसिपैलिटियों द्वारा चलाया जाता हे। नगरों में शासन की व्यवस्था राज्यों के शासन की तरह ही है। प्रत्येक नगर की अपनी एक व्यस्थापिका होती है जिसमें कहीं एक तो कहीं दो सदन होते हैं। इसके सदस्यों का कार्यकाल कहीं पर दो वर्ष तो कहीं पर 4 वर्ष होता है। इसके सदस्यों का चुनाव भी व्यस्क मताधिकार के आधार पर किया जाता है। नगार को चुनाव के समय उतने ही निर्वाचन क्षेत्रों में बांट दिया जाता है, जितने सदस्य चुने जाने हैं। प्रत्येक नगर में एक मेयर (Mayor) होता है। मेयर का चुनाव भी राज्यपाल की तरह व्यस्क मताधिकार के आधार पर प्रत्यक्ष तरीके से होता है। नगर का शासन चलाने के लिए एक स्थायी कर्मचारी वर्ग व पदाधिकारी होते हैं। इनका चुनाव जनता, मेयर या व्यवस्थापिका में से किसी एक द्वारा किया जाता है। इसके अतिरिक्त मेयर का पद वैतनिक होता है। व्यवस्थापिका के सदस्यों को भी वेतन मिलता है। व्यस्थापन निभाग नगर के लिये कानूनों व नियमों का निर्माण करता है। इस व्यवस्थापन को वीटो करने का अधिकार मेयर को ही है। इसके अतिरिक्त अमेरिका में स्कूल डिस्ट्रिक्त तथा टाउनशिप जैसी स्थानीय संस्थायें भी हैं।

उपरोक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि अमेरिका में राज्यों की स्थानीय संस्थाएं राज्य सरकारों से ही अपनी शक्ति प्राप्त करती है और उन्हीं की सेवा में अपना जीवन अर्पित कर देती है। कुछ मामलों में इन्हें महत्वपूर्ण स्वतन्त्रता प्रापत होती है और कुछ में ये राज्य-सरकारों के अधीन होती हैं। इनका अपना अलग व्यवस्थापन विभाग भी होता है जो इन्हें महत्वपूर्ण स्थिति प्रदान करता है। इनके द्वारा सम्पादित किये जाने वाले कार्य महत्वपूर्ण हैं, लेकिन ब्रिटिश स्थानीय संस्थाओं की तुलना में उनकी भूमिका व स्थिति कम महत्वपूर्ण ही आंकी जानी चाहिये।

स्विट्जरलैण्ड में राज्य व स्थानीय सरकारें
(State and Local Govts. in Switzerland)

स्विस संघ में 25 कैन्टन हैं, जिनमें से 19 पूर्ण तथा 6 अर्द्ध कैन्टन हैं। ये कैन्टन ही स्विस संघ के राज्य हं। इन सभी कैन्टना की अपनी-अपनी स्वतन्त्र राज्य सरकारें हैं। सभी कैन्टनों की शासन व्यवस्था में भी आपसी असमानताएं हैं। क्षेत्रफल और जनसंख्या की दृष्टि से भी सभी कैन्टनों में समानता के लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं। संघ सरकार में इसी आधार पर राज्य परिषद् के लिये बड़े कैन्टनों को तो 2-2 प्रतिनिधि भेजने का अधिकार है, जबकि अर्द्ध-कैन्टनों को केवल एक-एक प्रतिनिधि ही भेजने का अधिकार है। इसका सीधा अर्थ यह है कि संघीय व्यवस्थापिका (राज्य-परिषद्) में प्रत्येक बड़े कैन्टन को एक मत तथा अर्द्ध-कैन्टन को आधा मत ही प्राप्त होता है। वास्तव में स्विस कैन्टन ही स्विस राजनीति का जीवन केन्द्र है। स्विस जनता राज्य सरकारों तथा स्थानीय सरकारों को अधिक से अधिक लगाव कम्यूनों (स्थानीय सरकारें) से रखती है। इसके बावजूद भी राज्य व स्थानीय सरकारों की आत्मा गणतन्त्रीय ही रहती हैं और सभी निम्न सरकारों संघीय संविधान का पूरा आदर करती हैं।

कैन्टनों की शासन व्यवस्था
(Administration of the Cantons)

स्विट्जरलैण्ड में सभी कैन्टनों का प्रशासनिक ढांचा एक समान नहीं है। आज 5 स्विस कैन्टनों (1 पूर्ण तथा 4 अर्द्ध कैन्टनों) में प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र प्रणाली है। इस व्यवस्था को वहां लैंडसजीमाइंड (Landsgemeinde) कहा जाता है। इस व्यवस्था द्वारा कैन्टनों का शासन चलाया जाता है। इन कैन्टनों के नागरिक प्रतिवर्ष किसी मुख्य स्थान पर एकत्रित होते हैं। इस जनसभा में सभी व्यस्क स्त्री-पुरुष भाग लेंते हैं। यह जनसभा ही वहां की लैंडसजीमाइंड है। यह जनसभा बड़े मर्यादापूर्ण ढंग से सम्पन्न होती है। यह जनसभा (लैंडसजीमाइंड) कैन्टन का प्रशासन चलाने के लिये कार्यकारी परिषद (Executive Council) का चुनाव करती है। इसका मुख्य अध्यक्ष जन-नायक (Landman) भी इसी सभा द्वारा चुना जाता है। लैंडसजीमाइंड के प्रमुख कार्य कैन्टन के संविधान में संशोधान करना, कानून बनाना, कर लगाना, बजट पास करना, कैन्टनों के न्यायधीशों तथा कैन्टनों की संघीय राज्य परिषद में प्रतिनिधियों का निर्वाचन करना, नए पदों का सृजन करना तथा उनका वेतन निर्धारित करना आदि है। इस प्रकार की व्यवस्था प्राचीन भारत, यूनान तथा इटली के नगर राज्यों में लम्बे समय तक रही थी। आज इस प्रकार

की व्यवस्था विश्व के देशों में कहीं अन्यत्र विद्यमान नहीं है। स्विट्जरलैण्ड के कैन्टनों में भी धीरे-धीरे इस प्रणाली का महत्व कम होता जा रहा है।

स्विट्जरलैण्ड के अधिकांश कैन्टनों में प्रतिनिधि प्रजातन्त्र प्रणाली ही अपनाई गई है। इन कैन्टनों में जनता अपनी सत्ता का प्रयोग अपने प्रतिनिधियों के माध्यम से करती है। लेकिन आवश्यकता पड़ने पर जनता जनमत संग्रह व आरम्भन के अधिकार का प्रयोग भी करती है। ऐसे कैन्टनों में 18 पूर्ण तथा 2 अर्द्ध कैन्टन शामिल हैं। इन कैन्टनों की अपनी-अपनी व्यवस्थापिकाएं, कार्यपालिका एवं न्यायपालिकायें हैं। इनकी शासन व्यवस्था को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है :-

(I) व्यवस्थापिका (Legislature) :- स्विस कैन्टनों में व्यवस्थापिकाएं कहीं एक सदनीय हैं तो कहीं द्वि-सदनीय हैं। एक सदनीय व्यवस्थापिका को महापरिषद या कैन्टन परिषद कहा जाता है। इसके सदस्यों की संख्या और उनका कार्यकाल विभिन्न कैन्टनों में अलग-अलग है। इसके सदस्यों की संख्या 50 से 200 तक होती है। इनका कार्यकाल भी 2 से 4 वर्ष तक होता है। व्यवस्थापिका का संगठन जनसंख्या के आधार पर किया जाता है। अधिकांश कैन्टनों में इसका निर्वाचन आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के आधार पर होता है। इसके अधिवेशन वर्ष में दो बार होते हैं। इसके सदस्यों को कम ही वेतन दिया जाता है। इसके प्रमुख कार्य - कानून बनाना, कर लगाना, वार्षिक बजट तैयार करना, संविधान में संशोधन करना आदि हैं। कुछ कैन्टनों में यह कार्यकारिणी का चुनाव भी करती हे।

(II) कार्यपालिका (Executive) :- संघीय कार्यपालिका की तरह प्रत्येक कैन्टन में एक सामूहिक या बहुल कार्यपालिका है। इस कार्यपालिका को राज्य परिषद या लघु परिषद कहा जाता है। इसकी सदस्य संख्या 5 से 11 तक होती है। कुछ कैन्टनों में इन सदस्यों का निर्वाचन जनता ही करती है तो कुछ में ये विधानमण्डल या व्यवस्थापिका द्वारा चुने जाते हैं। ये सदस्य पुनर्निवाचित भी हो सकते हैं। इनका कार्यकाल एक वर्ष से लेकर 5 वर्ष तक होता है। अधिकांश कैन्टनों में यह कार्यकाल 4 वर्ष है। ये सदस्य व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी होते हैं। कार्यपालिका का अपना एक अध्यक्ष और एक उपाध्यक्ष भी होता है। कार्यपालिकाका शासन-कार्य अनेक विभागो में बंटा होता है और प्रत्येक विभाग एक-एक सदस्य के अधीन होता है।। इसके प्रमुख कार्य - कैन्टन में शान्ति एवं व्यवस्था स्थापित करना, विधायिका के निर्णयों को लागू करना, विधायिका की स्वीकृति हेतु विधेयक प्रस्तुत करना हैं।

(III) न्यायपालिका (Judiciary) :- सभी कैन्टनों की अपनी-अपनी अलग न्यायपालिकाएं हैं। इनमें तीन प्रकार के न्यायालय शामिल हैं। सबसे निम्न स्तर पर कम्यून न्यायालय है। उसके बाद जिला न्यायालय तथा सबसे ऊपर कैन्टन न्यायालय (उच्च न्यायालय) है। उच्च न्यायालय में 7 से 13 तक न्यायधीश होते हैं। इसमें दीवानी तथा फौजदारी दोनों तरह के मुकद्दमे सुने जाते हैं। परन्तु उसे न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति प्राप्त नहीं है। इसके अधीन कम्यून (प्रादेशिक) तथा जिला न्यायालय होते हैं। सभी तरह के न्यायधीशों की नियुक्ति व कार्यकाल में भी अन्तर पाया जाता है। न्यायधीशों की नियुक्ति कहीं पर तो जनता करती है तो कहीं पर विधानमण्डल। कैन्टन न्यायालयों के विरुद्ध संघीय-न्यायालय में अपीलें की जा सकती हैं।

स्विट्जरलैण्ड में स्थानीय स्वशासन

(Local Self Govt. in Switzerland)

स्विट्जरलैण्ड में स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं का काफी महत्व है। स्थनीय स्वशासन की दृष्टि से कैन्टनों को जिलों (District) तथा कम्यूनों में बांटा गया है। जिला कैन्टन और कम्यून के बीच की कड़ी है। इसका एक मुख्य अधिकारी होता है जिसकी नियुक्ति जनता करती है। कुछ जिलों में मुख्य अधिकारी की सहायता क लिए एक जिला परिषद भी होती है। ऐसी व्यवस्था केवल बड़े कैन्टनों में ही होती है। अधिकांश कैन्टनों को सीधा कम्यूनों में ही बांटा गया है। वहां कम्यून ही स्थानीय स्वशासन की प्रारम्भिक संस्थायें हैं। आजकल इनकी संख्या 3000 के लगभग है। ये कम्यून शहरी और ग्रामीण दो तरह के हैं। ये अपना शासन स्वयं करते हैं और अपने साथ सम्बन्ध रखने वाले विषयों की व्यवस्था भी स्वयं करते हैं। स्विस नागरिकता प्राप्त करने के लिये कम्यूनों की नागरिकता प्राप्त करना अनिवार्य है। अधिकांश कम्यून ग्रामीण तथा छोटे-छोटे हैं। ये कम्यून

स्थानीय मामलों में स्वतन्त्र होते हैं। छोटे कम्यूनों का मुख्य अंग नगर सभा है जिसमें कम्यून के सभी नागरिक भाग ले सकते हैं। बड़े कम्यूनों में नगर सभा की जगह एक प्रतिनिधि सभा होती है जिसे नगर महापरिषद कहा जाता है। ये दोनों विधायी संस्थाएं हैं। नगर महापरिषद का निर्वाचन भी नागरिकों द्वारा ही किया जाता है। इसके साथ ही कम्यूनों की अपनी अपनी कार्यपालिकायें भी होती हैं। इसके सदस्यों का निर्वाचन नगरसभा या जनता करती है। इसे कम्यून परिषद कहा जाता है। इसका कार्य शासन का संचालन करना है। इसका एक अध्यक्ष भी होता है जिसे नगरपति (City President) कहा जाता है। कम्यून परिषद के प्रत्येक सदस्य को कोई न कोई विभाग सौंपा जाता है। यह परिषद स्थानीय राजकर्मचारियों की नियुक्ति करती है तथा स्थानीय महत्व के प्रश्नों का समाधान करती है। स्विट्जरलैण में बड़े कम्यूनों में ही ऐसी परिषदें हैं। छोटे कम्यूनों में तो सभी व्यस्क नागरिक एकत्रित होकर अपना राजकार्य करते हैं और सार्वजनिक महत्व के प्रश्नों पर विचार करते हैं। वे कानून-निर्माण का कार्य भी करते हैं। स्विट्जरलैण्ड में बड़े नगरों में शासन व्यवस्था भारत व ब्रिटेन की नगरपालिकाओं की तरह है।

स्विट्जरलैण्ड में स्थानीय स्वशासन की ये संस्थाएं महत्वपूर्ण कार्य करती हैं। शिक्षा, पुलिस, पानी का प्रबन्ध, गरीब व अपंग लोगों की सामाजिक सुरक्षा, स्वास्थ्य व सफाई आदि कार्य इन्हीं संस्थाओं द्वारा सम्पन्न किये जाते हैं। शान्ति तथा व्यवस्था बनाये रखने का उत्तरदायित्व भी इन्हीं का होता है। इसी कारण इनकी शक्ति और महत्व में वृद्धि हो जाती है। ब्राइस ने इन संस्थाओं को स्विस जनतन्त्र की सफलता का प्रमुख कारण बताया है और इन्हें प्रारम्भिक राजनीतिक शिक्षालयों की संज्ञा भी दी है। स्थानीय स्वशासन की संस्थाएं ही स्विस नागरिकों को उनके अधिकारों व कर्तव्यों का बोध कराती हैं। अतः स्विस स्थानीय स्वशासन में कम्यूनों का बहुत महत्व है। वहां स्थानीय स्वशासन की संस्थायें ही स्विस प्रजातन्त्र का आधार हैं।

चीन में राज्य व स्थानीय सरकारें

(State and Local Govts. in China)

विशाल जनसंख्या तथा विविध राष्ट्रीयताओं वाले चीन में एकात्मक शासन प्रणाली अपनाई गई है। वहां सिद्धान्त और व्यवहार में दिन-रात का अन्तर है। सिद्धान्त में तो चीन में भी केन्द्र, प्रांतीय व स्थानीय स्तर पर कार्यपालिकाएं, व्यवस्थापिकाएं तथा न्यायपालिकाएं हैं। लेकिन व्यवहार में उनके पास भारत, अमेरिका, ब्रिटेन तथा अन्य लोकतन्त्रीय देशों की तरह इन संस्थाओं को स्वतन्त्र भूमिकाएं अदा करने के अवसर प्राप्त नहीं हैं। चीन में प्रशासन की सुविधा के लिये एकात्मक शासन के बावजूद भी सम्पूर्ण प्रशासन तन्त्र को 29 प्रान्तों, 5 स्वायत प्रदेशों तथा 3 नगरों में बांटा गया है। प्रान्तों की भी अपनी सरकारें हैं और वे भी लगभग वही कार्य करती हैं जो अन्य देशों की सरकारें करती हैं। लेकिन सरकारों की भूमिका के बारे में वहां एक महत्वपूर्ण बात यह है कि उन्हें साम्यवादी दल की नीतियों व कार्यक्रमों को ही अमली जामा पहनाना पड़ता है। उनकी अपनी स्वतन्त्र इच्छा नहीं है। चीन में साम्यवादी दल का देश के सम्पूर्ण शासन-तन्त्र पर वर्चस्व ही चीनी राजनीतिक व्यवस्था व शासन प्रणाली को अनूठापन प्रदान करता है।

चीन में 29 प्रांतीय सरकारें हैं। सभी सरकारों की अपनी-अपनी व्यवस्थापिकाएं, कार्यपालिकाएं व न्यायपालिकाएं हैं। चीनी प्रान्तीय व्यवस्थापिकाएं प्रांतीय जन कांग्रेस कहलाती हैं। ये संस्थाएं राष्ट्रीय जन कांग्रेस के ही नियन्त्रण में कार्य करती हैं। इनके द्वारा उन्हीं शक्तियों का प्रयोग किया जाता है जो राष्ट्रीय जन कांग्रेस इन्हें प्रदान करती हैं। प्रांतीय जनकांग्रेसों के सदस्यों की नियुक्ति जनता द्वारा व्यस्क मताधिकार के आधार पर की जाती हैं। इसका प्रांतीय कार्यपालिका पर पूरा नियन्त्रण रहता है। प्रांतीय कार्यपालिका इसके ही निर्णयों को अमली जामा पहनाती है। प्रांतीय व्यवस्थापिका अपने क्षेत्राधिकार में आने वाले विषयों पर ही कानून बना सकती है। वास्तव में चीन में लोकतन्त्रीय केन्द्रीयकरण का सिद्धान्त अपनाया गया है। इस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक निम्य संस्था अपने से ऊपर के स्तर की संस्था के प्रति उत्तरदायी होती है और आखिर में यह उत्तरदायित्व साम्यवादी दल के पास जाका रुकता है। चीन में न्यायपालिका पर भी समान स्तर की व्यवस्थापिकाओं का नियन्त्रण है। वहां जनसम्प्रभुता के सिद्धान्त को लागू करने के कारण जनकांग्रेस ही शक्तिशाली है। न्यायधीशों की नियुक्ति व पदच्युति का अधिकार भी उसी स्तर की जनकांग्रेसों को दिया गया है।

चीन को स्थानीय स्वशासन की दृष्टि से भी कई काउण्टियों, स्वायत्त काउण्टियों तथा कम्यूनों में बांटा गया है। चीन में शहरों में काउण्टियां व गांवों व नगरों में कम्यून हैं। इनका शासन प्रबन्ध स्थानीय जनकांग्रेसों द्वारा ही चलाया जाता है। इस स्तर पर काम करने वाले कर्मचारियों पर स्थानीय जनकांग्रेसों का ही पूरा नियन्त्रण रहता है। चीन में स्थानीय जन न्यायालयों परभी जनकांग्रेसों का ही पूरा नियन्त्रण रहता है। वहां स्वायत्त नगरों में नगरपालिकायें भी हैं। चीन में स्थानीय स्वशासन की संस्थायें भी स्थानीय जनकांग्रेस के अधीन रहकर कार्य करती हैं। चीन में भी स्थानीय स्वशासन की संस्थाएं कृषि, शिक्षा, स्वास्थ्य, वृद्धावस्था सुरक्षा, सफाई आदि कार्य करती हैं। वहां भी स्थानीय स्वशासन के वही लाभ प्राप्त हुए हैं जो अन्य देशों में होते हैं। परन्तु अन्य देशों की तरह चीन में इन संस्थाओं का कोई स्वतन्त्र व पृथक अस्तित्व नहीं है। वहां स्थानीय संस्थाएं, प्रांतीय सरकारों के प्रति उत्तरदायी हैं और प्रांतीय सरकारें केन्द्र सरकार के प्रति। अन्त में यह उत्तरदायित्व साम्यवादी दल के पास आकर रूक जाता है जो लोकतन्त्रीय केन्द्रवाद के सिद्धान्त का जन्मदाता है।

अध्याय-13

संविधान के सामाजिक-आर्थिक आधार

(Socio-Economic Bases of the Constitution)

किसी भी राजनीतिक व्यवस्था की प्रकृति व उसकी कार्यप्रणाली को अच्छी तरह समझने के लिए हमें उन औपचारिक सस्थाओ तक ही सीमित नहीं रहना चाहिये जो सरकार के कार्यों का निष्पादन करती हैं, बल्कि उस दिशा में भी देखना चाहिये जो मानव व्यवहार के माध्यम से राजनीतिक व्यवस्था के औपचारिक ढांचे को प्रभावित करती है। रिचर्ड रोज ने कहा है-"यदि किसी देश की राजनीतिक व्यवस्था को अध्ययन करना है तो केवल सरकारी संस्थाओं का अध्ययन पर्याप्त नहीं है, क्योंकि सरकारों को व्यक्तियों से पृथक नहीं किया जा सकता। व्यक्ति ही सरकार चलाते हैं और उनकी भूमिका को निर्धारित करने वाला तत्व सामाजिक संरचना है।" इसका तात्पर्य यह है कि किसी भी राजनीतिक प्रणाली को वहां की सामाजिक-आर्थिक प्रणाली के माध्यम से ही समझा जा सकता है। राजनीतिक विश्लेषकों का मानना है कि किसी भी राजनीतिक व्यवस्था का संवैधानिक ढांचा अमुक देश की सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों से ही विशेष तरह का बनता है। किसी भी देश में सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों का उस देश की संविधानिक प्रणाली पर अवश्य प्रभाव पड़ता है। कालानतर में प्रत्येक सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन संविधानिक व्यवस्था का माननीय आधार बन जाता है। ऐसा ही प्रभाव राजनीतिक परिवर्तनों का सामाजिक-आर्थिक ढांचे पर भी पड़ता है। इसलिए किसी भी देश की सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों को समझे बिना उस देश के संविधान व शासन-पद्धति को नहीं समझा जा सकता।

ब्रिटिश संविधान के सामाजिक-आर्थिक आधार

(Socio-Economic Bases of the British Constitution)

ब्रिटिश संविधान ब्रिटिश राजनीतिक प्रणाली को सीमित या संविधानिक राजतन्त्र के रूप में प्रतिष्ठित करता है। ब्रिटिश संविधान के विकास का स्वयं का इतिहास भी काफी लम्बा व उलझा हुआ है। प्रारम्भ में ब्रिटेन में निरंकुश राजतन्त्र का बोलबाला था, लेकिन कालान्तर में वह संवैधानिक या जनतन्त्रीय राजतन्त्र में बदल गया। इसका मूल कारण ब्रिटिश समाज की सामाजिक व आर्थिक प्रणाली को विकसित रूप में ही ढूंढा जा सकता है। राजनीतिक विश्लेषकों का मानना है कि औद्योगिक क्रान्ति ने ब्रिटिश समाज ने आधुनिक चेतना तो प्रदान कर दी, लेकिन वह ब्रिटिश जनता के रूढ़िवादी स्वभाव को नहीं बदल पाई। इसी कारण ब्रिटेन में आज प्रजातन्त्र तथ राजतन्त्र एक साथ पोषित हो रहे हैं। ब्रिटेन में लोकतन्त्र व राजतन्त्र का एक साथ चलना ब्रिटिश राजनीतिक प्रणाली में विशिष्टता का गुण पैदा करता है। राजनीतिक विश्लेषकों ने इसके पीछे निहित तथ्य का पता लगाने के लिये ब्रिटेन की राजनीति व संवैधानिक ढांचे की प्रकृति निश्चित करने वाले सामाजिक-आर्थिक तत्वों में तलाशने की बात कही है।

(I) ब्रिटिश संविधान व राजनीति के सामाजिक आधार

ब्रिटिश सामाजिक व्यवस्था में निरन्तरता, स्थायित्व तथा समजातीयता का गुण पाया जाता है। इसी कारण आज तक वहां पर कोई बड़ी क्रान्ति नहीं हुई है। वहां की भौगोलिक स्थिति ने भी ब्रिटिश राजनीति में राष्ट्रीय एकता की भावना और सर्वमान्य राष्ट्रीय भाषा को विकास में योगदान दिया है। ब्रिटेन की विशेष भौगोलिक स्थिति ने ही इसे विश्व का एक महान औद्योगिक देश बनाया है। ब्रिटेन मे जातीय, धार्मिक, भाषाई या सांस्कृतिक आधार पर आज तक कोई विशेष खून-खराबा नहीं हुआ है। यही अनूठापन ब्रिटिश एकात्मक शासन प्रणाली को सफल बनाता है। वहां एकात्मक शासन प्रणाली, संसदीय सरकार व लोकतन्त्र बनाम राजतन्त्र जैसी संविधानिक व्यवस्थाओं के पीछे प्रमुख सामाजिक आधार निम्नलिखित हैं :-

(1) समजातीय समाज (Homogeneous Society) :- ब्रिटेनवासी जातीय एकता का अनूठा उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। ब्रिटेन की 80% जनसंख्या शहरों में रहती है। वहां का समाज एक औद्योगिक समाज है। वहां ग्रामीण जनसंख्या ने भी कभी अलग वर्ग बनाने पर विचार नहीं किया है। इसका मूल कारण ब्रिटिश जनता के परम्परावादी स्वभाव में ही तलाश जा सकता है। ब्रिटिश जनता शान्ति व सौहार्द में अधिक विश्वास करती है। समाज के सभी वर्गों में जातीय, धार्मिक, भाषाई व सांस्कृतिक आधार पर जो एकता पाई जाती है, वह विश्व के अन्य किसी देश में नहीं है। जातीय एकता ही ब्रिटिश राजनीति को उपद्रवों से दूर रखकर वहां की राजनीति को स्थायित्व का गुण प्रदान करती है क्योंकि यहां भाषा, जाति, धर्म, क्षेत्र आदि के आधार पर संगठित समूह नहीं हैं।

(2) अनुदारवादी समाज (Conservative Society) :- ब्रिटिश जनता का पुरानी संस्थाओं व परम्पराओं को गहरा लगाव है। वे किसी भी क्रान्तिकारी परिवर्तन के पक्ष में नहीं हैं। वे क्रमिक विकास में विश्वास करते हैं और धीरे-धीरे परिवर्तन के पक्षधर हैं। वहां संसदीय सर्वोच्चता का सिद्धान्त सार्वभौमिक मताधिकार का अधिकार, प्रजातन्त्रीय राजतन्त्र का सिद्धान्त सहज व क्रमिक परिवर्तनों का ही परिणाम है। ब्रिटिश जनता ने स्वयं 1789 की फ्रांसीसी क्रान्ति का विरोध किया था, क्योंकि वह तीव्र परिवर्तनों के हमेशा विरुद्ध रही है। इसके पीछे मूल कारण यह है कि ब्रिटिश जनता हमेशा इस बात से डरती रही है कि तीव्र परिवर्तनों से उनकी वर्तमान सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक प्रणाली में अव्यवस्था उत्पन्न न हो जाये। इसी कारण आज राजतन्त्र, कुलीनतन्त्र व प्रजातन्त्र तीनों का मेल ब्रिटिश राजनीतिक समाज का आवश्यक स्वभाव बन चुका है।

(3) माननीय समाज (Deferential Society) :- ब्रिटिश समाज एक माननीय समाज है। उसकी अपने नेताओं, सामन्ती वर्ग, प्राचीन संस्थाओं व परम्पराओं के प्रति असीम श्रद्धा है। ब्रिटेन में साधारण जनता अभावग्रस्त होने पर भी अपने नेताओं व सत्ता के प्रति कभी घृणा का भाव मन में नहीं लाती और न ही वह दूर से भी उपद्रवों या हिंसा की बात नहीं सोचती। आज भी ब्रिटेन में महारानी या सम्राट को जनता की तरफ से जो सम्मान प्राप्त है, वह विश्व के किसी अन्य देश में नहीं है। ब्रिटिश जनता की स्वतन्त्र सोच ही उन्हें संसदीय सर्वोच्चता के सिद्धान्त का सम्मान करने को प्रेरित करती है। जनता इस बात का कभी ध्यान नहीं करती कि शासक वर्ग क्या कर रहा है। ब्रिटिश जनता के दिल में राजा और संसद दोनों के प्रति सम्मान की भावना है।

(4) धार्मिक समाज (Religious Society) :- ब्रिटिश समाज इसाई धर्म में विश्वास रखता है। प्रारम्भ में वहां धर्म ने राजनीति को प्रभावित किया था। धर्म के आधार पर ही वहां टोरी और ह्विग दो दलों का जन्म हुआ। एक चर्च का समर्थक था तो दूसरा उनका विरोधी। बाद में ये दोनों दल ही अनुदार और उदार दलों में बदल गए। 1922 में धर्म के आधार पर ही आयरिश रिपब्लिक की स्थापना हुई और उसके बाद धर्म का प्रभाव कम होता गया। जैसे-जैसे जनता में भौतिकवादी दृष्टिकोण विकसित हो रहा है, वैसे-वैसे धर्म के प्रति जनता की आस्था भी कम हो रही है। आज ब्रिटेन में धर्म-निरपेक्ष शिक्षा पर जोर दिया जाता है। 1944 के शिक्षा अधिनियम के अनुसार किसी भी संस्था या व्यक्ति को राज्य भाषा व धर्म के आधार पर आर्थिक सहायता से वंचित नहीं कर सकता। यद्यपि आज ब्रिटेन में धर्म के आधार पर अनेक संगठित हित समूह हैं और ब्रिटिश राजनीति में उनकी सक्रिय भूमिका भी है, लेकिन फिर भी ब्रिटेन में वे धार्मिक उन्माद नहीं फैलाते हैं। वस्तुतः धर्म की राजनीति में भूमिका निष्क्रिय ही होती जा रही है।

(5) शिक्षा-पद्धति (Educational System) :- ब्रिटेन में शिक्षा-व्यवस्था ने भी द्वि-दलीय प्रणाली का ही विकास किया है। वहां दो तरह के स्कूल हैं - (i) पब्लिक स्कूल तथा (ii) कंप्रेहेंसिव स्कूल। प्रथम प्रकार के स्कूल पूंजीपतियों या कुलीन वर्ग के लिये हैं और दूसरी तरह के श्रमिक वर्ग के लिये हैं। ब्रिटेन में कॉलेज स्तर तक कम्प्रेहेंसिव स्कूलों से केवल 7% बच्चे ही पहुंचते हैं। आगे चलकर यही वर्ग जो कम्प्रेहेंसिव स्कूलों की पैदावार है, अपने राजनीतिक अधिकारों से वंचित रह जाता है। रिचर्ड का कहना है-"ब्रिटिश शिक्षा पद्धति ने अनजाने में कुछ ऐसे सांस्कृतिक मूल्यों को जन्म दिया है जिनसे असमानतायें बड़ी हैं।" आज ब्रिटेन में सरकारी व गैर-सरकारी प्रतिष्ठानों में कार्यरत व्यक्ति पब्लिक स्कूलों की पृष्ठभूमि से हैं। लेकिन फिर भी ब्रिटेन में वर्गीय मतभेद नहीं हैं। ब्रिटिश शिक्षा प्रणाली द्वारा प्रदत्त सामान्य राजनीतिक चेतना की भावना समाज के सभी वर्गों में एकता कायम रखती है।

(6) अस्पष्ट वर्ग-विभाजन (Vague Class-Distribution) :- ब्रिटेन में अनेक सामाजिक वर्ग हैं किन्तु उनमें कोई भी स्पष्ट विभाजन का लक्षण नहीं है। आज पहले की तुलना में सामाजिक वर्गों में अन्तर की मात्रा कम होती जा रही है। श्रमिक

वर्ग में आई राजनीतिक चेतना ने वर्षों पुराने उस मैल को धो दिया है जिसे भेदभावपूर्ण शिक्षा प्रणाली ने संजोकर रखा था। यद्यपि ब्रिटेन में सामन्ती वर्ग आज भी अपनी अलग पहचान रखता है, लेकिन ब्रिटिश समाज में पाये जाने वाले सजातीयता के गुण ने उसकी पहचान लुप्त कर दी है। श्रमिक वर्ग की सुधरी हुई आर्थिक दशा ने इस कार्य में और अधिक मदद की है।

(7) ब्रिटिश जनता का राजनीतिक दृष्टिकोण (Political Outlook of the English People) :- ब्रिटिश जनता व्यवहारवादी दृष्टिकोण अपनाती है। ब्रिटिश जनता पूंजीवाद, समाजवाद, साम्यवाद, फासीवाद जैसे शब्दों से परिचित नहीं ह। वे राजनीति के प्रति भी अधिक जागरूक नहीं हैं। वे अपने प्रतिनिधियों के प्रति भी यह ध्यान नहीं रखते कि वे उनके लिये क्या कर रहे हैं। ब्रिटेन में राजनीतिक दलों में भी सैद्धान्तिक मतभेद नहीं हैं। वहां अनुदार दल भी पूरी तरह अनुदार नहीं हैं। इसी कारण वहां तीव्र परिवर्तनों की बजाय सहज परिवर्तनों का ही समर्थन किया जाता है। ब्रिटिश जनता हिंसात्मक राजनीति के विरुद्ध है। वहां पर राजनीति संघर्ष का अखाड़ा न होकर एक 'दर्शकों का खेल' है। ब्रिटिश जनता अपने नेताओं को व्यक्तिगत रूप में सुनने की बजाय, उन्हें टी०वी० पर ही देखना व सुनना पसन्द करती है। ब्रिटिश जनता का दृष्टिकोण प्रवासियों के लिए भी अधिक कठोर नहीं है। वह अप्रवासियों द्वारा ब्रिटिश अर्थव्यवस्था को मजबूत बनाने में निभाई गई भूमिका से संतुष्ट है। इसी कारण वह अपने शासक वर्ग द्वारा अप्रवासियों के प्रति अपनाई गई उदारवादी नीतियों से सन्तुष्ट है।

(8) जनसम्पर्क के साधन (Means of Mass-Media) :- ब्रिटेन मे आज जनसंचार के साधन स्वस्थ जनमत का निर्माण करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहे हैं। ब्रिटेन में जनसंचार के साधनों पर सरकारी नियन्त्रण नहीं है। जनसंचार के साधनों को स्वतन्त्र व निष्पक्ष होकर कार्य करने की छूट प्राप्त है। ब्रिटेन में जनसंचार के साधन ही सरकार व जनता के वास्तविक मार्गदर्शक हैं। ये स्वस्थ जनमत का निर्माण करके ब्रिटेन में लोकतन्त्र की नींव को सुदृढ़ करते हैं। जनता में राजनीतिक चेतना लाने तथा राजनीतिक निर्णयों को प्रभावित करने में इनकी महत्वपूर्ण भूमिका है। ब्रिटिश संविधान भी प्रेस की स्वतन्त्रता स्थापित करता है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि ब्रिटिश समाज मतैक्य पर आधारित समाज है। उसे अपनी परम्पराओं, राजनेताओं व प्राचीन संस्थाओं से गहरा लगाव है। अनुदारवादी होते हुए भी उसे उत्तरोत्तर परिवर्तन से लगाव है। इसी कारण वह अनुपयोगी राजनीतिक संस्थाओं व परम्पराओं को बदल देने के पक्ष भी लेता है। 1688 की शानदार क्रान्ति ने राजा की निरंकुश शक्तियों पर प्रतिबन्ध लगाकर ब्रिटेन में सीमित राजतन्त्र की परम्परा को जन्म दिया था। ब्रिटिश जनता की आज लोकतन्त्रीय सिद्धान्तों में आस्था है। इसी कारण आज ब्रिटेन में राजतन्त्र तथा लोकतन्त्र दोनों एक साथ कार्य कर रहे हैं। ब्रिटिश जनता के विशेष स्वभाव व जातीय एकता तथा मतैक्य की भावना ने ब्रिटिश राजनीतिक प्रणाली को संविधनिक दृष्टिकोण से मजबूत आधार प्रदान किया है।

(II) ब्रिटिश संविधान व राजनीति के आर्थिक आधार

ब्रिटेन एक प्रमुख औद्योगिक देश है। यहां की जनता का जीवन स्तर अधिकतर देशों की जनता से उच्च स्तर का है। ब्रिटेन को उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद से जो अपार धन प्राप्त हुआ और वह विश्व का महान पूंजीवादी देश बन गया। उपनिवशवाद और आद्योगिक क्रान्ति का ब्रिटिश राजनीतिक प्रणाली पर भी प्रभाव पड़ा। ब्रिटिश सरकार ने मुक्त व्यापार और खुली प्रतियोगिता का समर्थन किया। इससे ब्रिटेन में श्रम-पूंजी सम्बन्धों में संघर्ष पैदा होने लगा तो वहां राज्य के हस्तक्षेप को आवश्यक माना जाने लगा। इसके बाद वहां उद्योगों के राष्ट्रीयकरण की प्रक्रिया आरम्भ हुई और उद्योगों पर लोक-स्वामित्व के सिद्धान्त को स्वीकार किया गया। आधुनिक युग कल्याणकारी राज्यों का युग है। आज सरकार का कार्य आर्थिक विषमताओं को कम करके जनकल्याण को बढ़ावा देना है। इसी कारण ब्रिटिश सरकार ने श्रमिकों व पूंजीपतियों में पारस्परिक मधुर सम्बन्ध स्थापित करने के साथ-साथ श्रमिकों के कल्याण की अनेक योजनायें लागू की हैं। आज ब्रिटेन यूरोपीय सांझा बाजार का सदस्य भी है ताकि विश्व में बढ़ती आर्थिक प्रतिस्पर्धा का लाभ उठाया जा सके। इससे स्पष्ट हो जाता है कि ब्रिटेन ने अपनी आर्थिक व्यवस्था का भी क्रमिक विकास किया है। आज आर्थिक क्षेत्र में राज्य के हस्तक्षेप की प्रवृत्ति मान्य हो गई है। इसी सन्दर्भ में ब्रिटिश संविधान व राजनीतिक व्यवस्था का ध्येय क्रान्तिकारी समाज की बजाय विकासात्मक समाजवाद या प्रजातन्त्रीय समाजवाद की स्थापना करना है। संविधान के आधार के रूप में ब्रिटिश अर्थव्यवस्था के प्रमुख सिद्धान्त निम्नलिखित हैं :-

(1) मुख्यतः औद्योगिक (**Mainly Industarilized**) :- ब्रिटिश ऐसा प्रथम देश है जहां सबसे पहले औद्योगिक क्रान्ति की शुरुआत हुई थी। इसकी भौगोलिक स्थिति तथा उपनिवेशवाद व साम्राज्यवाद ने इसे विश्व का प्रमुख औद्योगिक देश बना दिया है। ब्रिटेन लम्बे समय तक कच्चे व तैयार माल की प्रमुख मण्डी रहा है। इसकी आर्थिक समृद्धि में इसके उद्योगों का ही योगदान रहा है। आज ब्रिटेन 'सात विकसित देशों के समूह' या G-7 का सदस्य है। यह विदेशों में कार, सीमेन्ट, सूती वस्त्र, रसायन, जहाज, कम्प्यूटर आदि वस्तुएं भेजने में सक्षम है। इसकी अधिकतर राजनीतिक समस्यायें औद्योगिकरण की ही देन है। आज यह प्रमुख औद्योगिक देशों की अग्रिम पंक्ति में है। इसकी जनसंख्या का 2% ही कृषि में लगा हुआ है। आज ब्रिटिश जनता कृषि की बजाय उद्योगों को ही प्राथमिकता देती है। इसी कारण ब्रिटिश कृषि उत्पादों का प्रमुख आयातक देश है। ब्रिटिश अर्थव्यवस्था का रूझान प्रारम्भ से ही उद्योगों की तरफ है।

(2) पूंजीवादी अर्थव्यवस्था (**Capitalist System**) :- प्रारम्भ से ही ब्रिटिश अर्थ-व्यवस्था की प्रकृति पूंजीवादी रही है। इसने हमेशा मुक्त व्यापार तथा खुली प्रतियोगिता का समर्थन किया है। पूंजीवादी अर्थव्यवस्था राज्य की अहस्तक्षेप की नीति की ही वकालत करती है। इसमें आर्थिक समानता की बजाय राजनीतिक स्वतन्त्रता का समर्थन किया जाता है। यह अर्थ-व्यवस्था बाजारू होती है। इस अर्थव्यवस्था द्वारा लागू की जाने वाली योजनाओं का उद्देश्य आर्थिक विषमताओं को बनाए रखना है। यद्यपि ब्रिटेन में लम्बे समय तक आवश्यक सेवाओं व सुविधाओं का राष्ट्रीयकरण भी किया गया, लेकिन राज्य के कल्याणकारी स्वरूप ने भी अपना मार्ग स्वयं रोक लिया। इसी कारण 1979 में मार्गरेट थैचर ने आर्थिक उदारीकरण व निजीकरण को स्वीकार करना ही पड़ा।

(3) मजदूर संघों की भूमिका (**Role of the Trade Unions**) :- श्रमिक संघों की ब्रिटिश राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका रही है। श्रमिक दल के प्रादुर्भाव ने ब्रिटेन में श्रमिकों के सम्मान को बढ़ाया है। आज ब्रिटिश सरकार किसी भी सामाजिक-आर्थिक नीति का निर्माण करने से पहले श्रमिक संघों से परामर्श अवश्य लेती है। आज ब्रिटेन में श्रमिक संघ अत्यधिक संगठित व जागरूक हैं। विधि-निर्माण में भी श्रमिक संघों की प्रभावकारी भूमिका है। ये संघ सरकार की आर्थिक नीतियों पर निर्णायक प्रभाव डालने के साथ-साथ श्रमिकों के अधिकारों की भी रक्षा करते हैं। आज ब्रिटेन मे लगभग 600 ट्रेड यूनियनें हैं जो ब्रिटिश राजनीति को प्रभावित कर रही है।

(4) पूंजीवाद एवं समाजवाद का समन्वय (**Fusion of Capitalism and Socialism**) :- ब्रिटेन का समाज परम्परागत रूप से पूंजीवाद तथा उदारवादी लोकतन्त्र के सिद्धान्तों पर आधारित है। परन्तु समाज का एक बहुत बड़ा हिस्सा लोकतन्त्रीय समजावाद में भी आस्था रखता है। श्रमिक दल समाजवाद में विश्वास रखता है और एक निजी क्षेत्र पर उचित प्रतिबन्ध लगाने की वकालत करता है। यह लोकतन्त्रीय तरीके से समाजवाद लाना चाहता है। इसी कारण इसने उद्योगों के राष्ट्रीयकरण का हमेशा समर्थन किया है। परन्तु इसने कभी भी पूंजीवाद को नष्ट करने की बात नहीं कही अै। इसी तरह अनुदार दल (Conservative Party) ने हमेशा पूंजीपतियों का प्रतिनिधित्व किया है; लेकिन फिर भी उसने कल्याणकारी सेवाओं को नष्ट नहीं किया। इस तरह ब्रिटेन में पूंजीवाद तथा समाजवाद दोनों का समन्वय है। इसी के मध्येनजर ब्रिटिश संविधान में मिश्रित अर्थव्यवस्था का समर्थन किया गया है।

(5) राज्य का कल्याणकारी रूप (**Welfare Form of the State**) :- आज का युग कल्याणकारी राज्यों का युग है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए ब्रिटेन में भी इसी आदर्श को अपनाया गया है। ब्रिटिश समाज कल्याणकारी राज्य की उदारवादी परम्परा को अपनाए हुए है। श्रमिक दल और अनुदार दल दोनों ही जनकल्याण की नीतियों को बराबर महत्व देते हैं। ब्रिटेन में कल्याणकारी राज्य का विचार ऐसी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना पर जोर देता है जिसमें सभी को न्यूनतम स्तर प्राप्त हो और सभी को विकास के अवसर प्राप्त हों। इसी कारण आज भी ब्रिटेन में सरकार शिक्षा, स्वास्थ्य, वृद्धावस्था सुरक्षा व बीमा, अनाथालय व विधवा आश्रम, मकान आदि सुविधायें जनता तक पहुंचाने के लिए प्रयासरत है। ब्रिटेन में राजनीतिक दलों ने भी इस काम में सरकार की भरपूर मदद की है। ब्रिटिश संविधान भी राज्य के कल्याणकारी स्वरूप पर ही जोर देता है।

(6) मध्यम वर्ग का उभरता स्वरूप (**Emerging Pattern of the Middle Class**) :- आज ब्रिटिश उद्योगों में कार्यरत श्रमिकों का एक बड़ा भाग धीरे-धीरे मध्यम वर्ग की श्रेणी में पहुंच चुका है। अब श्रमिक कृषि व खनन कार्यों को छोड़कर परिवहन, वितरण, प्रशासन और व्यवसायिक सेवाओं की तरफ आकृष्ट हो रहे हैं। पिछले कुछ दशकों में औद्योगिक क्षेत्र के कर्मचारियों की संख्या तो कम हुई है, जबकि सेवा क्षेत्र में यह संख्या बढ़ी है। इससे श्रमिक वर्ग और पूंजीपति वर्ग

के बीच की खाई कम चौड़ी हुई है। मध्यम वर्ग की बढ़ती संख्या ने सामाजिक गतिशीलता को जन्म दिया है। इस सन्दर्भ में सरकार के सामने प्रमुख चुनौती यह आई है कि वह बदलते आर्थिक परिवेश में ही अपनी सामाजिक-आर्थिक नीतियां निधारित करे।

इस प्रकार उपरोक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि ब्रिटेन की सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था ने वहां की राजनीति के लिए ऐसी पृष्ठभूमि तैयार कर दी है जिससे लोगों के लिए राजनीतिक मुद्दे बहुत स्पष्ट हो गये हैं और उन्होंने आपसी सहमति के उपाय तलाश कर लिये हैं। इसी कारण ब्रिटिश राजनीति उपद्रवों से मुक्त है और वहां लोकतन्त्रीय आस्थाओं का विकास हुआ है। ब्रिटिश जनता में पाई जाने वाली आम सहमति और मतैक्य की भावना ने ब्रिटिश संविधान को मजबूत आधार प्रदान किया है। ब्रिटेन की सुदृढ़ आर्थिक स्थिति ने विश्व में उसका सम्मान बढ़ाया है और राजनीतिज्ञों को आर्थिक चिंताओं से मुक्त किया है। वस्तुतः ब्रिटिश अर्थव्यवस्था अपने पूंजीवादी और समाजवादी दोनों के समन्वित रूप से ब्रिटिश संविधान व शासन-व्यवस्था को स्थायी लाभ पहुंचाती है। अतः ब्रिटेन की मजबूत आर्थिक स्थिति व सामाजिक एकता ने उसकी राजनीति में स्थायित्व व विकास का गुण उकेरा है।

अमेरिकन संविधान के सामाजिक-आर्थिक आधार

(Socio-Economic Bases of the American Constitution)

संयुक्त राज्य अमेरिका का संविधान उदार लोकतन्त्र के सिद्धान्त की स्थापना करता है। अमेरिका में उदारवादी लोकतन्त्र के सिद्धान्त को कायम रखने में वहां की सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था का विशेष योगदान रहा है। प्रसिद्ध फ्रांसीसी लेखक ताकवील ने अपनी रचना 'Democracy in America' में लिखा है-"संयुक्त राज्य अमेरिका में लोकतन्त्रीय गणराज्य को कायम रखने में वहां के संविधानिक ढांचे के अलावा सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों की समानता, एक समृद्ध कृषि व्यवस्था, अमेरिकी जनता के रीति-रिवाजों और मान्यताओं आदि ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।" ताकवील का यह विश्लेषण डेढ़ सदी पुराना है। तब से लेकर आज तक अमेरिका की सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों में काफी बदलाव आ चुका है। अब अमेरिका औद्योगिक शक्ति का स्वामी बन चुका है। आज विश्व के अनेक देशों में अमेरिका अपनी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का जाल फैला चुका है। अमेरिकी जीवन में व्यापक सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों के कारण वहां की राजनीतिक प्रणाली में परिवर्तन आ चुके हैं। अमेरिका में सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों की प्रक्रिया ने अमेरिकन राजनीतिक व्यवस्था व संवैधानिक ढांचे को काफी प्रभावित किया है। इसी कारण वहां संविधान के आधार के रूप में सामाजिक-आर्थिक तत्वों की भूमिका काफी महत्वपूर्ण बन चुकी है।

(I) अमेरिका की राजनीति व संविधान के सामाजिक आधार

अमेरिकन संविधान और राजनीतिक-प्रणाली को प्रभावित करने वाले प्रमुख सामाजिक तत्व निम्नलिखित हैं :

(1) बहुसंस्कृति समाज (Multicultural Society) :- अमेरिका लम्बे समय तक ब्रिटेन का उपनिवेश रहा और इस कारण यहां पर एशिया, अफ्रीका तथा लेटिन अमेरिका से भी अनेक लोग आकर बस गये। इनके आगमन से अमेरिका में अनेक भाषाओं, जातियों, धर्मों व संस्कृतियों का रंग सा बिखरने लगा। धीरे-धीरे ये बाहरी राष्ट्रीयतायें सामाजिक और राजनीतिक तौर पर संगठित होने लगी। इससे वहां बहुलवाद या बहुराष्ट्रीयता के सिद्धान्त की स्थापना हुई। अमेरिका के मूल निवासियों और बाहरी संस्कृति के लोगों ने अमेरिका में एक वर्ण शंकर या मिली-जुली संस्कृति को जन्म दिया। लेकिन अमेरिका के मूल लोगों की मानसिकता बाहरी जातियों को आत्मसात् करने की नहीं रही है। वहां अल्पसंख्यक विदेशी लोगों को द्वितीय श्रेणी का नागरिक ही समझा जाता है। राष्ट्रपति के चुनावों में भी विदेशी मूल या विदेशागतों की समस्या प्रमुख समस्या के रूप में उभरती है। ये विदेशागत लोग अपने राजनीतिक अधिकारों की बार-बार मांग उठाते हैं, लेकिन यह समस्या आज भी एक प्रमुख राजनीतिक समस्या है। यद्यपि वर्तमान में भारतीय मूल के लोगों को अमेरिका में कुछ पदों पर राजनीतिक लाभ भी मिले हैं। इसलिए अल्पसंख्यक वर्ग के हितों में वृद्धि हो रही है। आज एशियाई व अफ्रीकी मूल के लोग अमेरिका की राजनीतिक प्रक्रिया को प्रभावित करने में सक्षम हैं। इसी आधार पर अमेरिका में बाहरी राष्ट्रीयताओं के लिए अब कुछ उदार रूख अपनाया जाने लगा है, परन्तु जातीय विद्वेष की भावना आज भी अमेरिकन जनता में है।

(2) जातीय भेदभाव (Racial Discriminations) :- अमेरिका में लम्बे समय से रंगभेद की नीति चलती आ रही है। 1861 के गृह-युद्ध ने अमेरिकी समाज से सिद्धान्त तौर पर तो इस कलंक को मिटा दिया, लेकिन व्यवहार में यह कलंक आज भी अस्तित्ववान है। इस भेदभावपूर्ण नीति ने आज की अमेरिका को दो भागों में बांट रखा है। वहां गोरे और काले में आज भी अन्तर किया जाता है। आज भी अमेरिकन जनता की सोच एशिया व अफ्रीका की जनता के प्रति दासों के रूप में ही है। व्यवहार में आज तक भी कोई अफ्रीकी या एशिया मूल का व्यक्ति वहां राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति नहीं बन सका है। अमेरिका में आज भी गोरे और काले लोगों की अलग-अलग बस्तियां हैं। बड़े-बड़े औद्योगिक संस्थानों और व्यापारिक कम्पनियों में काले लोगों की संख्या काफी कम है। समाज के हर क्षेत्र में काले लोगों से अमेरिका में भेदभाव किया जाता है। यद्यपि अमेरिकन सरकार ने 1964 में 'नागरिक अधिकार अधिनियम' पास करके काले लोगों के साथ भेदभाव की मनाही की है। कई बार न्यायपालिका ने भी रंगभेद की नीति पर अंकुश लगाने की बात कही है। इसके बावजूद भी इस नीति में अधिक परिवर्तन नहीं हुआ है। अमेरिका में विदेशी जातियों को उनका हक दिलाने के लिए एवं उनके अधिकारों की रक्षा करने के लिए कई संस्थाएं भी कार्यरत हैं, लेकिन अब तक जातीय भेदभाव के अन्त की सम्भावना नजर नहीं आ रही।

(3) धर्म-निरपेक्षता (Secularism) :- अमेरिका में विभिन्न धर्मों के लोग रहते हैं। इनमें प्रोटेस्टैंट धर्म के लोग सर्वाधिक हैं। सभी नागरिकों को किसी भी धर्म में विश्वास की छूट है। वहां हिन्दू धर्म का भी विकास हुआ है। धर्म के प्रति अमेरिकन जनता कट्टरपथी नहीं है। अमेरिकन जनता का रूझान भौतिकवाद की तरफ है। इसी कारण उसका दृष्टिकोण धर्म के प्रति भी भौतिकवादी है। वहां व्यक्ति की सफलता विज्ञान, कला एवं व्यापार के क्षेत्र में उपलब्धियां प्राप्त करने पर निर्भर है, आध्यात्मिक उन्नति पर नहीं। वहां धर्म को राजनीति से दूर रखा गया है। अमेरिकन संविधान में भी धर्म-निरपेक्ष दृष्टिकोण अपनाने पर ही जोर दिया गया है। परन्तु वहां पर व्यवहार में जनता किसी-न-किसी राजनीतिक दल से धर्म के आधार पर अवश्य जुड़ी हुई है।

(4) शिक्षित समाज (Educated Society) :- अमेरिका की अधिकांश जनता पढ़ी-लिखी है। अन्य यूरापीय देशों से यहां साक्षरता दर कम नहीं है। यहां की जनता अपने अधिकारों व कर्तव्यों के प्रति जागरूक हैं। यहां शिक्षा के बारे में कोई राष्ट्रीय नीति नहीं है, बल्कि सभी राज्यों की अपनी अलग-अलग शिक्षा नीतियां हैं। यहां निजी व सरकारी दोनों तरह के विद्यालय हैं। शिक्षित समाज होने के कारण अमेरिका के लोग व्यवहावादी हैं। उनका स्वभाव अन्धविश्वासी नहीं है। वे प्रत्येक घटना को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से आंकते हैं। वहां स्त्रियों को भी समान अधिकार प्राप्त हैं। स्त्रियों को सम्पत्ति अर्जित करने, व्यय करने तथा अपना जीवन जीने का अधिकार प्राप्त है। वहां स्त्रियों को वे सभी अधिकार प्राप्त हैं जो पुरुषों को प्राप्त हैं। परन्तु राजनीति के प्रति स्त्रियों का रूझान कम है। उनका रूझान तो उद्योगों व अन्य व्यवसायिक प्रतिष्ठानों की तरफ है। आज अमेरिका में स्त्रियों को समान अधिकार मिलना ही शिक्षित समाज की पहचान है।

(5) जन सम्पर्क के साधन (Means of Mass-Media) :- अमेरिका में जनसम्पर्क के साधन सरकारी नियन्त्रण से मुक्त हैं। इन साधनों का अमेरिका की राजनीति पर गहरा प्रभाव है। चुनावों के दौरान इनकी भूमिका काफी प्रभावकारी रहती है। चुनावों के बाद भी जनमत को शिक्षित करने तथा जनकत की आवाज पहचानने के लिए ये साधन महत्वपूर्ण कार्य करते हैं। सरकार की नीतियों को जनता को अवगत कराने व सरकार की गलत नीतियों की आलोचना करने में जनसम्पर्क के साधनों की ही महत्वपूर्ण भूमिका है। वाटरगेट कांड को जनसम्पर्क साधनों ने अतना उछाल दिया था कि राष्ट्रपति निकसन को त्यागपत्र ही देना पड़ा थ। ऐसा ही मोनिका लेविंसकी के मामले में हुआ। इस कांड को अखबारों, टी०वी० आदि में इतना उछाला कि आगामी राष्ट्रपति के चुनावों में बिल क्लिंटन को हार का सामना करना पड़ा। अतः जनसम्पर्क के साधन अमेरिका की राजनीति के प्रभावी अंग हैं।

(6) अमेरिकन जनता का राजनीति के प्रति दृष्टिकोण (Attitude of American People towards Politics) :- अमेरिकन जनता प्रजातन्त्रीय शासन प्रणाली में गहरा विश्वास करती है। वह अपने स्वतन्त्रता व समानता के लक्ष्य को प्राप्त करने के लए हिंसा का प्रयोग करने से भी नहीं डरती। उसका बहुमत के शासन में गहरी श्रद्धा है। वह प्रजातन्त्रीय आदर्शों को प्राप्त करने के लिए शान्तिपूर्ण और संवैधानिक उपायों को ही अधिक समर्थन करती है। वह ब्रिटिश जनता की तरह परम्पराओं का भी सम्मान करती है। इसी कारण 200 वर्षों के बाद भी अमेरिका के संवैधानिक ढांचे में कोई विशेष बदलाव नहीं आया है। अमेरिकन लोग खुले समाज व मुक्त व्यापार की धारणा का समर्थन करते हैं। वे साम्यवाद व आतंकवाद

के घोर विरोधी हैं। उनका लोकप्रिय सम्प्रभुता में विश्वास है। अमेरिकन राजनीतिक नेतृत्व ने भी इसी परम्परा का निर्वहन किया है। उनकी राष्ट्रीयता की भावना काफी सुदृढ़ है।

(7) वर्जनाहीन समाज (Permisive Society) :- आधुनिक युग में अमेरिकन समाज वर्जनाहीन समाज की दिशा में उन्मुख है। व्यक्तिगत स्तर पर हिंसा, लूटपाट, बलात्कार, मादक पदार्थों का सेवन अमेरिकन समाज की एक महत्वपूर्ण विशेषता बन चुकी है। अमेरिका में घोर व्यक्तिवाद तथा वैयक्तिक स्वतन्त्रता के प्रति असीम लगाव ने परिवारवाद को भी हानि पहुंचाई है। इससे युवा पीढ़ी में माता-पिता और परिवार के विरुद्ध बगावत की भावना ने जन्म लिया है। बदलते सामाजिक मूल्यों ने युवा पीढ़ी में असुरक्षा व विद्रोह की भावना को जन्म दिया है। वैयक्तिक स्वतन्त्रता के आदर्श ने सामाजिक नैतिकता के प्रश्न को काफी पीछे धकेल दिया है। इसी कारण अमेरिका के वर्जनाहीन समाज का रूप तेजी से उभर रहा है जो वहां के राजनेताओं व राज-नीतियों के लिये एक भयंकर चुनौती बनकर उभर रहा है।

(II) अमेरिकन राजनीति व संविधान के आर्थिक आधार

अमेरिका विश्व का एक प्रमुख पूंजीवादी राष्ट्र है। विश्व की आधी सम्पत्ति का स्वामी अमेरिका ही है। इसी कारण अमेरिका ने हमेशा अहस्तक्षेप की नीति व उदारवाद का ही समर्थन किया है। इस ध्येय को प्राप्त करने के लिये अमेरिका में उदार लोकतन्त्र *की स्थापना की गई है। अमेरिका में यह मत प्रचलित है कि पूंजीवादी आर्थिक व्यवस्था साधारणतः राजनीतिक स्तर पर उदार* लोकतन्त्र के साथ ही चल सकती है। अमेरिका की सुदृढ़ आर्थिक स्थिति ने अमेरिका की राजनीति को इतना अधिक प्रभावित *किया है कि अमेरिका की राजनीति धन की राजनीति कहलाती है। वहां पर चुनावों के समय औद्योगिक घरानों द्वारा सीनेटरों* व प्रतिनिधि सदन के सदस्यों तथा राष्ट्रपति पर इतना पैसा खर्च किया जाता है, जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। *धन और राजनीति की सांठ-गांठ अमेरिका की राजनीति का एक हिस्सा बन चुकी है। अमेरिकन राजनीति व संविधान को* प्रभावित करने वाले आर्थिक ढांचे के रूप में अमेरिका की अर्थव्यवस्था के प्रमुख तत्व निम्नलिखित है :-

(1) अहस्तक्षेप का सिद्धान्त (Theory of Laissezfaire) :- अमेरिका के संविधान निर्माताओं ने अहस्तक्षेप की नीति का ही समर्थन किया है। उनका मानना था कि व्यक्ति एक विवेकशील प्राणी है, इसलिए उसे आर्थिक क्षेत्र में भी स्वतन्त्रता मिलनी चाहिये। इसी कारण अमेरिकन संविधान में सभी व्यक्तियों को व्यवसाय, व्यापार या उद्योग लगाने की छूट दी गई है। अमेरिकन संविधान ने निजी सम्पत्ति के अधिकार को विशेष संरक्षण प्रदान किया है। वहां खुली प्रतियोगिता की *नीति को अपनाया गया है। अमेरिकन जनता को जीवन, स्वतन्त्रता व सम्पत्ति का अधिकार दिया जाता है। अहस्तक्षेप* के सिद्धान्त की संवैधानिक व्यवस्था ने अमेरिका को पूंजीवादी राष्ट्र बना दिया है। अतः अमेरिका में अधिकतर उद्योग *निजी स्वामित्व में हैं। राज्य को तो केवल विशेष मामलों में ही हस्तक्षेप करने का अधिकार प्राप्त है। 1930 की आर्थिक* महामन्दी को रोकने के लिये अमेरिकन सरकार ने खुद हस्तक्षेपवादी कदम उठाये तो उन्हे न्यायपालिका ने ध्वस्त कर *दिया। इस तरह अमेरिका में सरकार द्वारा बेकारी और महंगाई दूर करने के लिये उठाये कदम प्रभावी नहीं रह।*

(2) आर्थिक विषमताएं (Economic Inequalities) :- अमेरिका एक पूंजीवादी देश है। पूंजीवादी देश में उत्पादन के साधनों पर वर्ग-विशेष का ही अधिकार होता है। अमेरिका में भी उत्पादन व वितरण के साधनों पर पूंजीपतियों का ही वर्चस्व या एकाधिकार है। जिसका आर्थिक शक्ति पर नियन्त्रण होता है, वह राजनीतिक शक्ति का भी स्वामी बन जाता है। अमेरिका में 50% जनता 97% सम्पत्ति का स्वामी है और शेष आधी जनता 3% सम्पत्ति की स्वामी है। वार्षिक आय की दृष्टि से वहां अमीर और गरीब में काफी अन्तर है। आय का संतुलित बंटवारा अमेरिकन अर्थव्यवस्था की प्रमुख विशेषता है। इसका प्रमुख श्रेय खुली प्रतियोगिता को ही जाता है। सरकार द्वारा आय का असन्तुलन कम करने के प्रयास निरर्थक साबित हो रहे हैं। आज अमेरिका में महत्वपूर्ण राजनीतिक पदों, प्रशासनिक पदों और सार्वजनिक पदों पर पूंजीपतियों का ही प्रभाव है। पूंजी के केन्द्रीयकरण ने हमेशा ही पूंजीवाद को राजनीतिक संरक्षण प्रदान किया है। बडे-बडे औद्योगिक घरों की व्यवस्थापिका तक भी पहुंच है। व्यवस्थापिका द्वारा बनाये जाने वाला प्रत्येक कानून पूंजीवाद से अवश्य प्रभावित होता है। आर्थिक तथा राजनीतिक क्षेत्र में एकाधिकार की प्रवृत्ति ने अमेरिका अर्थव्यवस्था का विषमतावादी बना दिया है। इससे वहां समाजवाद का मार्ग अवरुद्ध हुआ है।

(3) मुक्त और निजी उद्योग (Free and Private Enterprise) :- अमेरिकन अर्थव्यवस्था एक खुली अर्थ-व्यवस्था है जो मुक्त व्यापार और निजी उद्योगों की समर्थक है। इस अर्थव्यवस्था का प्रमुख लक्ष्य पूंजीवाद की प्राप्ति करके अधिक से

अधिक लाभ कमाना है। इसी कारण अमेरिका आर्थिक उदारवाद का समर्थक है। आज विश्व के महान सैनिक ताकत के साथ-साथ उसका स्वप्न अमेरिका को विश्व की महान आर्थिक ताकत बनाने का भी है। उदारवादी अर्थव्यवस्था का प्रभाव उदारवादी लोकतन्त्र पर भी पड़ा है। अब अमेरिका में सरकार कमजोर वर्गों के लिए कल्याणकारी नीतियां बनाने लगी है।

(4) कल्याणकारी राज्य (Welfare State) :- अमेरिका में उदारवाद का बढ़ता प्रभाव वहां की राजनीति पर भी दिखाई देने लग गया है। सरकार ने आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों के लिए कई बार अहस्तक्षेप की नीति में भी सेंध लगानी पड़ी है। अमेरिका में निर्धारित सीमा तक राज्य ने कल्याणकारी कार्यक्रम चलाये हैं। वैसे तो अमेरिका में शुरु से ही अवसर की समानता पर जोर दिया जाता रहा है और प्रत्येक व्यक्ति से राष्ट्र-निर्माण में योगदान देने की आशा की जाती रही है। वहां इस बात पर भी जोर दिया जाता रहा है कि सरकार से सहायता प्राप्त करना अमेरिकन जनता के लिए शर्मनाक है। अमेरिकन सरकार व्यक्ति की उतनी ही मदद करती है, जितनी उसे आत्मनिर्भर बनने के लिए आवश्यकता है। 1996 में बिल क्लिंटन ने एक ऐसे अधिनियम पर हस्ताक्षर किये जो राज्य से मिलने वाली सहायता की सीमा निर्धारित करता है। अमेरिका में व्यक्ति को सरकारी सहायता उसे आत्मनिर्भर बनाने के लिए ही दी जाती है, न कि उसका जीवन स्तर ऊँचा उठाने के लिए। आज अमेरिका में दुर्बल, असहाय, वृद्धों, बेरोजगारों आदि के हित में अनेक कल्याणकारी योजनाएं चल रही हैं। कल्याणकारी राज्य के विचार का प्रभाव अब अमेरिका की राजनीति पर भी पड़ चुका है। इसलिए अमेरिका में कल्याणकारी राज्य की अवधारणा प्रबल होती जा रही है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि अमेरिका में अप्रवासियों की समस्या आज भी अमेरिकन समाज के लिए एक चुनौती बनी हुई है। अमेरिकन राजनीतिक संस्कृति विदेशी जातियों को आत्मसात् करने वाली नहीं है। यद्यपि अमेरिका में धर्म-निरपेक्षता का सिद्धान्त तो प्रचलित है, लेकिन वहां जातीय समस्या का हल शीघ्र सम्भव दिखाई नहीं देता। जनसम्पर्क के साधनों की प्रभावी भूमिका ने अमेरिकन राजनीति को अत्यधिक प्रभावित किया है। अमेरिकन जनता का स्वतन्त्रता के प्रति असीम लगाव व प्रैस की स्वतन्त्रता ने अमेरिकन राजनीति को नये आयाम प्रदान किये हैं। अमेरिका में मुक्त व्यापार व खुली आर्थिक प्रतिस्पर्धा ने वहां इतनी अधिक आर्थिक विषमताओं को जन्म दिया है कि वर्ग संघर्ष जैसी स्थिति भी उत्पन्न हो सकती है, परन्तु शिक्षित समाज के रूप में अमेरिका को जो लाभ प्राप्त हुए हैं, वे अमेरिकन समाज में स्वस्थ राजनीतिक परम्पराओं तक को भी जन्म दे सकते हैं। पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के रूप में अमेरिका की अर्थव्यवस्था ने वहां की राजनीति को धन की राजनीति बना दिया है। जिसका उग्र रूप चुनावों के समय दिखाई देता है। विधि-निर्माण तक ही प्रक्रिया भी पूंजीवाद से मुक्त नहीं है। अमेरिका में आज अनेक औद्योगिक घराने हैं जो राजनीतिक प्रक्रिया को प्रभावित करने में सक्षम हैं। अपने हितों के सम्वर्द्धन के लिये ये हिंसात्मक राजनीति तक का सहारा ले सकते हैं। अमेरिका के सामाजिक-आर्थिक ढांचे के विकास व परिवर्तनों द्वारा अमेरिकन राजनीति व संवैधानिक ढांचे तक पर भी प्रभाव पड़ता है। यदि अमेरिकन समाज के स्वरूप व अर्थव्यवस्था को अमेरिकन संविधान व राजनीति का निर्धारक मान लिया जाये तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी।

चीन के संविधान के सामाजिक-आर्थिक आधार

(Socio-Economic Bases of the Chinese Constitution)

चीन एक साम्यवादी देश है। वहां की राजनीतिक व्यवस्था को सामाजिक-आर्थिक ढांचे के अनुसार ढाल लिया गया है। चीन में साम्यवादी राजनीति व मार्किट समाजवाद में अद्भुत सम्बन्ध पाया जाता है। चीन ने सीमित समय में ही आश्चर्यजनक आर्थिक व सामाजिक विकास किया है। चीन के सामाजिक-आर्थिक विकास का उसके संवैधानिक ढांचे पर स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। चीनी समाज की मान्यताओं, सामाजिक ढांचे, उत्पादन प्रक्रिया आदि के सन्दर्भ में चीनी राजनीतिक प्रणाली को निम्न तरह से समझा जा सकता है :-

(I) चीनी संविधान व राजनीति का सामाजिक आधार

चीनी राजनीति को प्रभावित करने वाले प्रमुख सामाजिक तत्व निम्नलिखित हैं :-

(1) बहुराष्ट्रीयता (Multinationalities) :- चीन एक बहुराष्ट्रीय राज्य है। इसमें 56 राष्ट्र जातियां हैं। सभी राष्ट्रीयताओं को अपनी-अपनी भाषा, धर्म व संस्कृति का विकास करने की पूरी स्वतन्त्रता है। चीनी समाज विभिन्नताओं में एकता का

करीब 21 करोड़ मूल जाति तुल [illegible] जिसका कुल प्रतिशत 94 है। यहां कन्फयूशियस धर्म, लाओत्से धर्म, बौद्ध धर्म, इस्लाम धर्म तथा इसाई धर्मों का प्रचलन है। सबसे प्रमुख धर्म कन्फयूशियस धर्म है। यह धर्म सामाजिक सामंजस्य की स्थापना करता है। इसी तरह अनेक भाषायें भी हैं लेकिन चीनी संविधान सभी भाषाओं को समान महत्व देता है। वहां अल्पसंख्यक जातियों के हितों को बराबर संरक्षण दिया गया है। बहुलवादी समाज होने के बावजूद भी चीनी समाज की प्रवृति अन्य राष्ट्रीयताओं को आत्मसात् करने की रही है। चीनी जनकांग्रेस में सभी राष्ट्रीयताओं को प्रतिनिधित्व दिया गया है।

(2) शिक्षा व संस्कृति (Education and Culture) :- 1949 से पहले चीनी शिक्षा उपनिवेशवादी ढांचे पर आधारित थी। यद्यपि 1911 की क्रान्ति के बाद से ही चीनी समाज को चीनी राष्ट्र की आवश्यकताओं के अनुरूप शिक्षित करने के लिए अनेक शिक्षा संस्थान खोले गये थे, लेकिन उनकी प्रकृति साम्यवादी आदर्शों के अनुकूल नहीं थी। 1949 के बाद शिक्षण संस्थाओं पर राज्य का पूरा नियन्त्रण हो गया। वहां तकनीकी व व्यावहारिक शिक्षा पर जोर दिया गया है। वहां प्रौढ शिक्षा की भी व्यवस्था की गई है। माओ ने चीनी राष्ट्र की सत्ता संभालते ही शिक्षा का माओकरण किया और शिक्षा को चीनी समाज की आवश्यकतानुसार ढाल दिया। माओ ने सांस्कृतिक क्रांन्ति के बहाने माओवादी शिक्षा के विरोधियों का अन्त कर दिया। माओ का कहना था कि जो व्यक्ति खाना जानता है, उसे इस्पात पर पानी देना भी आना चाहिये। अर्थात् खाने का हक कमाने वाले को ही है। माओ ने सैद्धान्तिक शिक्षा की बजाय व्यावहारिक शिक्षा पर ही अधिक ध्यान दिया। माओ चाहता था कि शिक्षा पद्धति ऐसी होनी चाहिये जो नैतिक, बौद्धिक तथा शारीरिक विकास कर सके और समाजवादी चेतना और संस्कृति को समझ सके। माओ की मृत्यु के बाद माओवादी शिक्षा का महत्व कम हो गया है। लेकिन वर्तमान चीनी संविधान का लक्ष्य जनता का सांस्कृतिक तथा शैक्षणिक विकास करना है। वर्तमान संविधान पूंजीवादी संस्कृति को समाप्त कर साम्यवादी संस्कृति की स्थापना करता है।

(3) परिवार तथा स्त्रियों की स्थिति (The family and status of women) :- 1911 की क्रान्ति से पहले स्त्रियों की दशा काफी खराब थी, लेकिन उसके बाद निरन्तर नारी-उत्थान के लिये चीनी समाज प्रयासरत् है। आज स्त्रियों को वहां पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त हैं। साम्यवादी दल ने 1949 में सत्ता ग्रहण करने क बाद से ही परिवार का परम्परागत सामन्ती रूप बदल लिया और स्त्रियों को भी घरेलू काम-काज से मुक्ति प्रदान की। परिवार के नए आदर्शों के अनुरूप ढोलने के लिये चीनी सरकार ने 1950 में विवाह कानून बनाया जिसके तहत रखैल प्रथा, बाल विवाह आदि प्रथाओं का अन्त कर दिया गया। वहां परिवार नियोजन के कार्यक्रम को भी तेजी से लागू किया गया। 1979 में संवैधानिक कानून द्वारा केवल एक संतान पैदा करने पर ही जोर दिया गया। आज चीनी संविधान स्त्रियों को समान अधिकार प्रदान करता है और सभी क्षेत्रों में आगे बढ़ने के अवसर देता है।

(4) धर्म निरेक्षता (Secularism) :- चीन में अनेक धर्म हैं। परन्तु चीनी राष्ट्र का अपना कोई सरकारी धर्म नहीं है। वैसे तो चीन में प्रारम्भ से ही कन्फ्यूशियस धर्म का प्रभाव रहा है, लेकिन वहां ताओ, इसाई, बौद्ध, इस्लाम आदि सभी धर्मों को स्वतन्त्रता दी गई है। चीनी संविधान में धर्म-निरपेक्षता के सिद्धान्त का उल्लेख किया गया है। सत्य तो यह है चीन में धार्मिक कट्टरता नहीं है। वहां की राजनीति धर्म से अछूती है। साम्यवादी दल धर्म को एक अफीम मानता है। सांस्कृतिक क्रांति के समय धार्मिक संस्थाओं का काफी नुकसान अवश्य किया था, लेकिन आज साम्यवादी दल की नीति धर्म-विरोधी नहीं है।

(5) शत् पुष्प अभियान व सांस्कृतिक क्रान्ति (Hundred Flowers Campaign and Cultural Revolution) :- साम्यवादी क्रान्ति के बाद चीन में माओ ने सामाजिक विकास को नई दिशा देने के लिए 1956 में एक अभियान चलाया जिसे शत् पुष्प अभियान कहा जाता है। इस अभियान के तहत राजनीतिक जीवन पर साम्यवादी दल के कठोर नियन्त्रण में कुछ ढील दी गई और यह नारा दिया गया कि "सैंकड़ों फूलों को खिलने दो और सैंकड़ों विचारधाराओं को पनपने दो।" इस विचार के जन्म लेते ही चीन में शासन की नीतियों की खुलकर आलोचना होने लगी। माओ इसे सहन नहीं कर सका और उसने साम्यवाद विरोधियों को कुचल दिया। चीनी समाज से उन बुद्धिजीवियों का सफाया कर दिया जो माओ से अहसमत थे। इस विचार को व्यावहारिक रूप प्रदान करने के लिये माओ ने सांस्कृतिक क्रांति का बिगुल बजा दिया। माओ के लाल रक्षकों ने जो गावों के किसान वर्ग से थे, माओ के विरोधियों का पूरी तरह सफाया कर दिया। यह क्रान्ति चीन की क्रान्ति से जुड़ी हुई परिस्थितियों का स्वभाविक परिणाम थी। इस क्रान्ति ने पुराने विचारों, पुरानी संस्कृति, पुराने रीति-रिवाजों तथा पुरानी आदतों का अन्त कर दिया। वास्तव में सांस्कृतिक क्रान्ति का लक्ष्य माओवाद विरोधियों का

नष्ट करना ही था। इस क्रांति ने चीनी समाज व राजनीति पर स्पष्ट रूप में परिलक्षित होता है। चीनी संविधान साम्यवाद के विरुद्ध आज भी किसी असहमति को बर्दाश्त नहीं कर सकता।

(II) चीनी संविधान व राजनीति के आर्थिक आधार

किसी भी देश की अर्थव्यवस्था तथा संविधान में गहरा सम्बन्ध होता है। 1949 की क्रान्ति के बाद चीन में जितने भी संविधान बने हैं, उन सभी में चीनी अर्थव्यवस्था के मुख्य पहलुओं पर अवश्य विचार किया गया है। चीनी संविधान समाजवाद के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये चीने अर्थव्यवस्था को विशेष आधार पर गठित करने का ध्येय लेकर चलता है। चीनी संविधान के आधार के रूप में चीनी राजनीति को गति देने वाले प्रमुख आर्थिक तत्व निम्नलिखित हैं :-

(1) कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था (**Agricultural Economy**) :- चीन एक कृषि प्रधान देश है। कृषि ही वहां के औद्योगिक विकास का आधार है। चीन में 70% जनता कृषि कार्यों में लगी हुई है। यद्यपि चीन में कृषि योग्य भूमि काफी कम है, लेकिन फिर भी चीनी किसानों ने चीन आधुनिक तकनीकों का प्रयोग करके उत्पादन में काफी सुधार किए हैं। चीन में 1949 की क्रान्ति के बाद से ही भूमि सुधारों का सिलसिला शुरु हो गया था। सबसे पहले वहां भूमि जमींदारों से छीनकर किसानों को दी गई और सहकारी कृषि पद्धति का विकास किया गया। कृषि का सामूहिकीकरण करके चीन में सहकारी कृषि के सभी लाभ प्राप्त किए गए हैं। वास्तव में चीन की कृषि प्रणाली भी समाजवादी लक्ष्य के अनुरूप ही है। समाजवाद का लक्ष्य संविधान का महत्वपूर्ण आदर्श है जिसे कृषि व्यवस्था में सुधार करके प्राप्त करने का प्रयास किया गया है।

(2) औद्योगिक विकास (**Industrial Development**) :- प्रारम्भ में चीनी नेताओं का विचार था कि चीन भारी उद्योगों के बल पर ही आर्थिक स्वतन्त्रता और राष्ट्रीय सुरक्षा का लक्ष्य प्राप्त कर सकता है। इसलिए चीन में 1949 के बाद निजी-पूंजीपतियों के साथ कुछ नरमी बरती गई। अर्थव्यवस्था को सुचारू ढंग से चलाने के लिये उन्होंने प्रबन्धक, व्यापारी और तकनीकी वर्गों के साथ समझौते का रास्ता अपनाया। केवल रेल विभाग, संचार व्यवस्था, बैंकों और वित्तीय संस्थानों का तो राष्ट्रीयकरण किया गया और शेष को निजी स्वामित्व में छोड़ दिया। लेकिन आगे चलकर 1952-53 में सरकार ने उद्योगों पर तरह-तरह के नियन्त्रण लगाकर पूंजीपतियों की आर्थिक व राजनीतिक शक्ति को धराशाही कर दिया। सरकार की नई नीतियों से चीन में औद्योगिक विकास आगे बढ़ता गया और चीन में प्रति व्यक्ति आय व सकल राष्ट्रीय उत्पाद में भी वृद्धि हुई। आज चीन में अधिकांश उद्योगों का राष्ट्रीयकरण हो चुका है जो संविधान के समाजवादी लक्ष्य के अनुकूल ही है।

(3) कम्यून व्यवस्था व नई आर्थिक नीति (**The System of Comune and New Economic Policy**) :- चीन में प्रारम्भ में ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूत बनाने के लिये कम्यून व्यवस्था शुरु की गई। ग्रामीण कम्यूनों की तरह शहरों में भी कम्यून स्थापित किए गए। ग्रामीण कम्पून कृषि प्रधान और शहरी कम्यून उद्योग प्रधान थे। कम्यून स्थानीय स्वशासन के संगठन भी थी जिनका कार्य सम्पूर्ण ग्रामीण व शहरी जीवन का सामूहिकीकरण करना था। लेकिन यह व्यवस्था सफल नहीं रही और उस व्यवस्था को भंग करके चीन में कृषि का उत्पादन बढ़ाने की दृष्टि से नई आर्थिक नीति अमल में लाई गई। नई नीति के तहत कृषि किसानों में बांट दी गई। अब किसान अपनी लक्ष्य से अधिक पैदावार को बाजार में बेच सकता है। इससे चीन आत्मनिर्भरता की दिशा में अग्रसर हुआ है।

(4) ट्रेड यूनियन अथवा श्रमिक संघ (**Trade Unions**) :- चीन में ट्रेड यूनियनों को साम्यवादी दल द्वारा मान्यता दी गई है। ये यूनियन साम्यवादी दल और श्रमिकों के बीच कड़ी का कार्य करती है। ट्रेड यूनियनों को संविधान द्वारा मान्यता दी गई है और इनके माध्यम से उद्योगों में कार्यशील व्यक्ति अपनी मांगें सरकार तक पहुंचा सकते हैं। जनवादी चीन में ये श्रमिक को अच्छे काम के लिये प्रोत्साहित करती हैं और आर्थिक नैतिकता का विकास करती हैं। ये श्रमिकों को नियोजन में भाग लेने और जन कल्याणकारी कार्यक्रमों में भाग लेने के लिये भी प्रोत्साहित करने में सक्षम मानकर उन्हें संवैधानिक संरक्षण प्रदान करता है।

(5) आर्थिक नियोजन (**Economic Planning**) :- आर्थिक विकास के लिये चीनी संविधान में आर्थिक नियोजन की आवश्कता पर बल दिया गया है। चीन में वर्तमान औद्योगिक विकास का श्रेय उसकी पंचवर्षीय योजनाओं को ही जाता है। चीन में लम्बे समय से आर्थिक विकास की ऊँची दर इसी नियोजन का परिणाम है। चीन में आर्थिक नियोजन का कार्य भी साम्यवादी दल ही करता है। चीन में योजना केन्द्रीय मन्त्रालय द्वारा तैयार की जाती है जिस पर साम्यवादी दल के

सदस्यों का ही नियन्त्रण है। प्रारम्भ में चीन की आर्थिक योजनाओं के विकास में सोवियत संघ ने भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की, लेकिन अब चीन आर्थिक नियोजन द्वारा विकसित औद्योगिक राष्ट्रों की श्रेणी में आ चुका है। आज चीन के विदेशों से व्यापारिक सम्बन्ध भी हैं और विदेशी व्यापार से चीन को काफी लाभ हो रहा है। वर्तमान में चीन की योजना प्रणाली केन्द्रीयकरण तथा विकेन्द्रीकरण दोनों के बीच सन्तुलन कायम करती है। चीन ने कृषि तथा उद्योगों के क्षेत्र में जो अभूतपूर्व उन्नति की है, वह उसके आर्थिक नियोजन का ही प्रतिफल है। आर्थिक आयोजन के रूप में माओ ने जो 'लम्बी छलांग' का सिद्धान्त दिया था, वह तो अधिक सफल नहीं रहा, लेकिन माओ के बाद देंग जियाओपिंग के नेतृत्व में समाजवाद का लक्ष्य प्राप्त करने के लिये बाजार समाजवाद के अनुरूप नियोजन किया गया।

(6) बाजार समाजवाद (Market Socialism) :- आज चीन विश्व का प्रमुख औद्योगिक राष्ट्र है। वर्तमान चीन बाजार को न केवल आंतरिक वितरण व्यवस्था के रूप में मान्यता दी गई है, बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय बाजार को भी हितकर संस्था का दर्जा दिया गया है। आज चीन में व्यापार पर सरकार का एकाधिकार नहीं रहा। अन्य देशों की तरह चीन भी अन्तर्राष्ट्रीय बाजार प्रतिस्पर्धा में हिस्सेदार है। आज चीन में हजारों स्वतन्त्र विदेश व्यापार निगम कार्यरत हैं जिनकी तुलना अमेरिका के बहुराष्ट्रीय निगमों से की जा सकती है। इसी से चीन में मिश्रित उद्योग व्यवस्था ने जन्म लिया है।

उपरोक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि चीनी संविधान पर चीन की सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों पर प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। चीनी संविधान का समाजवादी लक्ष्य आज बाजार समाजवाद में परिवर्तित हो चुका है। चीन भी अन्य देशों की तरह उदारवाद के प्रभाव में है। माओ के बाद ही चीन में हर क्षेत्र में उदारवाद के लक्षण प्रकट होने लगे थे। लेकिन व्यवहार में कई बार साम्यवादी दल ने आर्थिक व सामाजिक विकास के मार्ग मे निरंकुशता का ही परिचय दिया है। धीरे-धीरे साम्यवादी दल की पकड़ सामाजिक व आर्थिक जीवन पर ढीली होती जा रही है। चीन भी पाश्चात्य संस्कृति की चपेट से बचने में नाकाम रहा है। चीन में बार-बार चार साम्यवादी दल की निरंकुशता के विरुद्ध आवाज उठाई जाती रही है, लेकिन उन्हें निर्दयतापूर्वक कुचल दिया जाता रहा है। लेकिन इसके बावजूद यह बात तो स्वीकार करनी ही पड़ेगी कि चीन में लोकतांत्रिक प्रवृत्तियों के विकास में संकेत मिल रहे हैं और चीन पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव में आने के कारण आधुनिकीकरण की दिशा में आगे बढ़ रहा है। उसकी विदेश व घरेलु नीति का स्वरूप बदल चुका है। आज चीन में स्त्रियों को समान अधिकार प्राप्त हैं। वहां निजी उद्यमों का भी विकास हो रहा है। सत्य तो यह है कि चीनी राजनीतिक ढांचे का सामाजिक और आर्थिक परिवर्तनों के साथ ही प्रजातन्त्रीकरण हो रहा है।

स्विस संविधान के सामाजिक-आर्थिक आधार

(Socio-Economic Bases of the Swiss Constitution)

स्विट्जरलैण्ड पर्वतमालाओं से घिरा हुआ एक छोटा सा देश है। यह यूरोपीय महाद्वीप के मध्य में स्थित है। इसकी कोई ऐसी प्राकृतिक सीमा नहीं है जो इसे पड़ोसी देशों से अलग करती हो। यह अशान्त विश्व में शान्त व तटस्थ राष्ट्र है। स्विस संविधान व राजनीतिक प्रणाली पर वहां की भौगोलिक स्थिति, सामाजिक ढांचे, आर्थिक क्रियाओं, कला, संस्कृति, धर्म आदि का प्रभाव पड़ा है। स्विट्जरलैण्ड की सामाजिक-आर्थिक परिस्थितयों ने इसे विलक्षण राजनीतिक परम्पराओं वाला देश बना दिया है। प्रत्यक्ष लोकतन्त्र का घर तथा बहुल कार्यपालिका के विचार का जनक स्विट्जरलैण्ड अनूठी विशेषताओं वाला देश है। स्विस संविधान और राजनीति को अलग पहचान देने वाले प्रमुख सामाजिक व आर्थिक तत्व निम्नलिखित हैं :-

(I) स्विस संविधान व राजनीति के सामाजिक आधार

स्विस बहुराष्ट्रीयताओं वाला देश है। इसमें अनेक भाषाएं, धर्म, जातियां व प्रजातियां निवास करती हैं। यहाँ की 64 जनसंख्या जर्मन भाषा बोलती है। शेष जनसंख्या फ्रेंच, इटालियन तथा रोमन भाषी लोगों की है। 72% जनसंख्या जर्मन जाति से है। शेष रोमन, इटालियन तथा फ्रेंच जाति के लोग हैं। इस भाषाई और जातीय विभिन्नता के बावजूद भी स्विस समाज विभिन्नता में एकता का प्रतीक है। जिस संविधान में भाषा, जाति व धर्म के आधार पर कोई भेदभाव नहीं किया गया है। संविधान में सभी भाषाओं को राजभाषा घोषित किया गया है। भाषागत व जातिगत समानता की तरह सभी व्यक्तियों को धर्म की भी स्वतन्त्रता प्रदान की है। स्विस संविधान धर्म निरपेक्ष दृष्टिकोण अपनाता है। स्विट्जरलैण्ड में 40% लोग तो रोमन कैथोलिक धर्म में विश्वास रखते हैं और शेष 60% लोग प्रोटेस्टेन्ट धर्म को मानते हैं। इसके बावजूद भी वहा कोई धार्मिक मतभेद नहीं हैं। सामाजिक

बहुलवादी परम्पराओं के बावजूद भी स्विस लोकतन्त्र प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र का जनक है। स्विस संविधान के आधार रूप में सामाजिक बहुलवाद के सिद्धान्त को मान्यता प्रदान की गई है।

(II) स्विस संविधान के राजनीति के आर्थिक आधार

स्विस राष्ट्र एक पर्वत प्रधान देश है। यहां कृषि योग्य भूमि भी कम ही है। यहां लोहे व कोयले जैसे खनिज पदार्थ भी नहीं हैं जिससे औद्योगिक विकास किया जा सके। यहां की अधिकांश भूमि जंगल व पहाड़ों से ढकी हुई है और समस्त भूमि का 1/3% क्षेत्र ही कृषि योग्य है। उगड़ खाबड़ धरातल होने के कारण यहां यातायात के साधनों का विकास भी कम हुआ है। परन्तु अपनी मेहनत के बल पर स्विस जनता ने प्राकृतिक प्रतिकूलता पर विजय प्राप्त कर ली है। काफी प्रयासों के बाद स्विट्जरलैण्ड शिल्प उद्योग व पर्यटन उद्योग में अग्रणी देश बन पाया है। यहां की आय का मुख्य साधन घड़ी उद्योग व पर्यटन उद्योग है। स्विट्जरलैण्ड का संविधान समाजवादी दर्शन पर आधारित होने के कारण आर्थिक क्षेत्र में राज्य के हस्तक्षेप की बात स्वीकार करता है। स्विस जनता का अधिकांश हिस्सा आर्थिक रूप से सक्षम होने के कारण राज्य की कल्याणकारी नीतियों का मोहताज नहीं है। अब स्विट्जरलैण्ड में राज्य की अहस्तक्षेपादी नीति का ही अधिक समर्थन किया जाता है। लेकिन फिर भी स्विट्जरलैण्ड का संविधान जनकल्याण और सामाजिक सुरक्षा के रूप में राज्य के हस्तक्षेप का समर्थन करता है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि स्विस संविधान की आत्मा सभी राष्ट्रीयताओं को आत्मसात् करने की है। राज्य द्वारा धर्म निरपेक्ष दृष्टिकोण का अपनाया जाना तथा सभी राष्ट्रीयताओं को पनपने के अवसर देना उदारवादी प्रजातन्त्र को मजबूत आधार प्रदान करता है। अब आर्थिक क्षेत्र में भी ऐसा ही उदारवादी दृष्टिकोण राज्य द्वारा अपनाया जाने लगा है।

--- o ---

अध्याय-14

महिलाएं एवं राजनीतिक प्रक्रिया

(Women and Political Process)

आज का युग प्रजातन्त्रीय सरकारों का युग है। सभी प्रजातन्त्रीय देशों में समानता व स्वतन्त्रता के आदर्श सर्वोच्च माने जाते हैं। यह समानता व स्वतंत्रता पुरुष समाज के लिए ही न होकर स्त्री जाति के लिए भी है। प्रजातन्त्र का मूल आदर्श यही है कि यह बिना लिंग भेदभाव के स्त्री-पुरुष को समान राजनीतिक व सामाजिक अधिकार प्रदान करता है। वर्तमान प्रजातन्त्र केक स्वरूप ने नारी-पुरुष की असमानता का काफी हद तक समाधान कर दिया है। आज का मुख्य मुद्दा स्त्री-पुरुष की समानता न होकर महिलाओं को भी पुरुषों के समान राजनीतिक प्रक्रिया के हर स्तर पर भागीदारी प्रदान करना है। इसके लिए विश्व के अनेक देशों में नारी में जागृत आन्दोलन चल रहे हैं। जिनका मूल ध्येय आधुनिक राजनीतिक प्रक्रिया के साथ-साथ सामाजिक क्षेत्र में भी स्त्रियों को समान स्तर पर लाना है। महिला जागृति संगठनों की मान्यता हे कि पुरुषों ने स्त्री जाति को युगों से शोषण किया है और समाज को पितृतन्त्र का रूप दिया है। एक उत्पीड़ित वर्ग होने के नाते स्त्रियो को अपने भावी उत्पीड़न को रोकने के लिए एक मंच पर आकर अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए संघर्ष करना चाहिये ताकि राजनीतिक सहभागिता का वह स्तर प्राप्त किया जा सके जिससे अब तक स्त्रियां वंचित रही हैं।

यद्यपि नारी जाति को समान अधिकार दिलाने के लिए नारीवादी आन्दोलन की शुरुआत तो 1970 के दशक से हुई है, लेकिन नारीवाद के बीज प्लटो व अरस्तु में भी मिलते हैं। प्लेटो व अरस्तु ने नारी-पुरुष की समानता तो स्वीकार की, लेकिन व्यपहारिक धरातल पर उसका कभी प्रयोग नहीं हुआ। प्राचीन भारतीय ग्रन्थ 'मनुस्मृति' में भी स्त्री-पुरुष की समानता स्वीकार करते हुए भी स्त्री जाति को समाज में समानता के अधिकार से वंचित ही रखा गया। वास्तव में नारीवाद के आरम्भिक संकेत मेरी वॉल्टस्टनक्राफ्ट की रचना 'Vindication of the Rights of Women' (1973) में भी मिलते हैं। इस ग्रन्थ में स्त्रियों की कानूनी, राजनीतिक व शैक्षिक समानता की बात पर जोर दिया गया है। उसके बाद जे०एस० मिल ने अपनी रचना "Subjection of Women' (1869) में स्त्री-पुरुष समानता व स्त्री मताधिकार की जोरदार वकालत की गई। उसके बाद मार्क्सवादी विचारकों ने स्त्री जाति की तुलना सर्वहारा वर्ग से की और स्त्रियों को पुरुष के समान मानने पर जोर दिया। इसके बाद 1970 के दशक में यूरोप व अमेरिका की जागरुक महिलाओं ने स्त्रियों के अधिकार आन्दोलनों की शुरुआत की ताकि स्त्रियों को राजनीतिक प्रक्रिया से जोड़ा जा सके।

1970 के दशक से समाज और राजनीति में स्त्रियों की स्थिति विशेष चर्चा का विषय बनी हुई है। इसे पहले यह माना जाता था कि कानूनी दृष्टि से स्त्री-पुरुष की समानता स्थापित हो जाने पर स्त्रियों के लिए शिकायत का कोई मुद्दा नहीं रह गया है। स्त्रियों को मताधिकार प्राप्त हो जाने क बाद भी मतदान-व्यवहार के बारे में जो अध्ययन किये गए उनसे स्पष्ट हुआ कि स्त्रियां पुरुषों की तुलना में जो अध्ययन किये गये उनसे स्पष्ट हुआ कि स्त्रियां पुरुषों की तुलना में मतदान में कम हिस्सा लेती हैं और उनमें राजनीति के प्रति उदासीनता ही पाई जाती है। राजनीतिक प्रक्रिया के विभिन्न स्तरों पर उनका हिस्सा मामूली सा है। विश्व भर में निर्वाचक-मण्डलों में तो स्त्रियों की संख्या 50 प्रतिशत है, परन्तु राजनीतिक प्रतिनिधित्व के स्तर पर उनका अनुपात काफी कम है। पश्चिमी यूरोप की विधानसभाओं में स्त्रियों की भागीदारी 10 प्रतिशत से भी कम है। ब्रिटेन की कामन सभा में यह केवल 5 प्रतिशत ही है। ऐसी ही स्थिति अमेरिका के प्रतिनिधि सदन में है। इसके विपरित स्कैंडीनेवियन देशों की विधानसभाओं में यह स्थिति संतोषजनक है। इसलिए नारीवाद के समर्थक कहते है। कि स्त्रियों को राजनीतिक प्रक्रिया से जोड़ने के लिए यह आवश्यक है कि हमें सबसे पहले यह देखना चाहिये कि सार्वजनिक जीवन में स्त्रियों की सहभागिता कितनी बढ़ी है और सत्ता (Authority) के विभिन्न स्तरों पर उनका प्रतिनिधित्व कहां तक पहुंच पाया है।

अमेरिकन राजनीतिक प्रक्रिया में महिलाओं की भागीदारी :- अमेरिकन संविधान उदारवादी प्रजातन्त्र की स्थापना करता है और अपने सभी नागरिकों को व्यस्क मताधिकार प्रदान करता है। अमेरिका में 1920 से पहले मताधिकार के मामले में स्त्री-पुरुष में असमानता थी। 1920 में व्यस्क मताधिकार मिलने के बाद वहां स्त्रियां अपने अधिकारों व स्वतन्त्रताओं का उपयोग करती हैं और वे पुरुषों से इस बारे में कहीं भी पीछे नहीं हैं। विवाहित अथवा अविवाहित स्त्रियों को सम्पत्ति अर्जित करने, व्यय करने अथवा धारण करने का पूछा अधिकार है। यद्यपि 1920 में अमेरिकन संविधान में 19 वें संविधान संशोधन ने स्त्रियों को मताधिकार तो दे दिया और स्त्रियों को पुरुषों के समान राजनीतिक क्षेत्र में अधिकार भी प्रदान कर दिये, लेकिन फिर भी ब्रिटेन की तुलना में अमेरिकी स्त्रियां राजनीति में कम भाग लेती हैं और राजनीति के बारे में कम ही बातचीत करती हैं। इसका प्रमुख कारण वहां की राजनीतिक संस्कृति है। वहां आम जनता भी चुनाव के समय तो सक्रिय रहती है, लेकिन चुनाव के बाद वह भी राजनीति के प्रति प्रायः उदासीन ही रहती है। आज तक एक महिला प्रत्याशी को छोड़कर कोई भी महिला राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति के पद हेतु खड़ी नहीं हुई है और न ही कोई महिला राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति चुनी गई है। परन्तु चुनाव प्रचार में स्त्रियां बहुत महत्वपूर्ण योगदान देती हैं। 1996 तथा 2000 के चुनावों में हिलेरी क्विलंटन के राष्ट्रपति के चुनावों में खूब प्रचार किया था।

अमेरिका में महिलायें राज्य विधामण्डलों व स्थानीय संस्थाओं के चुनावो में ही अधिक मताधिकार का प्रयोग करती हैं। राष्ट्रपति के चुनावों में से प्रायः उदासीन रहती हैं। अमेरिका के कं राज्यों में आज भी महिलाओं के साथ राजनीतिक क्षेत्र में भेदभाव किया जाता है। महिलाओं को आज भी विधाममण्डलों में वह प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं है जिसकी वे हकदार हैं। जब निर्वाचक मण्डलों में महिलाओं की संख्या 50 प्रतिशत है तो राजनीतिक प्रक्रिया में भी उनकी हिस्सेदारी उतनी ही होनी चाहिय। लेकिन आज तक ऐसा सम्भव नहीं हो सका है। 1983 में 100 में से केवल 2 महिलाएं ही सीनेट की सदस्य थी और 435 में से केवल 19 ही प्रतिनिधि सदन की सदस्य थी, जो संख्या 5 प्रतिशत से भी कम है। उसके बाद 1992 में 106 स्त्रियों ने प्रतिनिधि सभा में 11 स्त्रियों ने सीनेट तथा 2373 स्त्रियों ने राज्यों की विधानसभाओं में भाग लिया। इनमें से 57 प्रतिशत महिलायें विजयी रही। इन चुनावों में 54 स्त्रियां कांग्रेस (प्रतिनिधि सदन+सीनेट) में तथा 1516 महिलाओं ने राज्य विधानमण्डलों में कार्यभार ग्रहण किया। इस दौरान 3 स्त्रियां गवर्नर तथा 11 स्त्रियां उप-राज्यपाल भी चुनी गई। इससे स्पष्ट होता है कि अमेरिका में महिलाओं की राजनीति में सहभागिता बढ़ रही है। विधानमण्डलों के साथ-साथ महिलायें प्रशासनिक सेवाओं में भी कार्यरत हैं। न्यायपालिका में भी महिलाओं की सहभागिता है। 1981 में अमेरिका में पहली बार कोई महिला सर्वोच्च न्यायालय की न्यायधीश बनी। लेकिन आज भी अमेरिका मे महिलाओं की राजनीति प्रक्रिया उतनी सहभागिता नहीं है जितनी वांछनीय है। परन्तु संतोषजनक बात यह है कि वह संख्या धीरे-धीरे बढ़ रही है।

ब्रिटिश राजनीतिक प्रक्रिया में महिलाओं की भागीदारी :- ब्रिटिश शासन प्रणाली भी अमेरिका की तरह उदार प्रजातन्त्र की स्थापना करती है। वहां महिलाओं को वोट का अधिकार 1928 में दिया गया। ब्रिटेन में राजनीतिक प्रक्रिया में महिलाओं को प्रवेश कराने के लिये व्यस्क मताधिकार की व्यवस्था का सार्वभौमिकीकरण किया गया है। ब्रिटेन में महिला प्रधानमन्त्री मार्गेट थेचर तथा महारानी ऐलिजाबेथ ने राजनीतिक पदों को उस समय सुशोभित किया था जब अमेरिका में कोई भी महिला अपने राजनीतिक अधिकारों के प्रयोग से दूर थी। परन्तु राजनीतिक प्रक्रिया में महिलाओं की सहभागिता उस स्तर तक नहीं है जो भारत में है। महिलाएं प्रायः वहां भी अमेरिका की तरह राजनीति के प्रति उदासीन ही हैं। बहुत कम महिलायें ही राजनीति में भाग लेती हैं। ब्रिटेन की कामन सभा में केवल 10 प्रतिशत सदस्य ही महिलायें हैं। वहां महिलाएं अपने मत का प्रयोग तो जागरूकता के साथ करती हैं, लेकिन चुनाव के बाद वे राजनीति की बजाय अपने पेश के प्रति ही वफादार रहती हैं। स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं में भी महिलाएं अधिक भाग नहीं लेती हैं। इसी चिन्ता के दृष्टिगत वहां नारीवादी आन्दोलन महिलाओं को राजनीतिक प्रक्रिया के साथ जोड़ने का काम कर रहा है।

चीन की राजनीतिक प्रक्रिया में महिलाओं की सहभागिता :- चीनी संविधान भी ब्रिटेन तथा अमेरिका की तरह सार्वभौमिक व्यस्क मताधिकार की स्थापना करता है। 1911 की क्रान्ति से पहले चीन में स्त्रियों की दशा काफी खराब थी। इस क्रान्ति ने स्त्रियों की दशा में सुधार किया और वर्षों से चली आ रही स्त्रियों का शोषण करने वाली प्रथाओं का अन्त किया गया। 1954 के प्रथम चीनी संविधान में स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार प्रदान किये गये जिनमें वोट का अधिकार भी प्राप्त है। परन्तु चीनी राजनीतिक समाज की वास्तविकता यह है कि स्त्रियों को वोट का अधिकार तो प्राप्त है, चुनाव लड़ने या निर्वाचित होने की प्रक्रिया से उन्हें दूर ही रखा जाता है। चीन की राजनीतिक प्रक्रिया के प्रत्येक स्तर पर साम्यवादी दल का कठोर नियन्त्रण है और साम्यवादी दल में स्त्रियां सदस्य नहीं हैं। थोड़ी बहुत स्थानीय संस्थाओं में तो महिलाओं की भागीदारी है, परन्तु केन्द्रीय

स्तर पर आज तक कोई भी महिला प्रत्याशी राजनीतिक पद प्राप्त नहीं कर सकी है। वहां महिलाओं की रुचि सामाजिक समानता में है। यद्यपि संविधान द्वारा स्त्रियों को चुनाव लड़ने का अधिकार तो दे दिया गया है, लेकिन वहां स्त्रियों ने इस अधिकार का कम ही प्रयोग किया है। राजनीति के प्रति महिलाओं की उदासीनता का प्रमुख कारण चीन में महिला जागृति संगठनों का साम्यवादी दल के कठोर नियन्त्रण का होना है। चीन में राजनीतिक असहमति को बर्दाश्त नहीं किया जा सकता। चीनी संविधान शासक वर्ग की आलोचना करने का अधिकार किसी को नहीं देता। परन्तु वर्तमान समय में चीन उदारीकरण के दौर में है। आने वाले समय मे यह सम्भव है कि चीनी संविधान राजनीतिक उदारीकरण की प्रक्रिया को स्वीकार कर ले और वहां महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता में वृद्धि सम्भव हो सके।

स्विस राजनीतिक प्रक्रिया में महिलाओं की सहभागिता :- स्विस शासन प्रणाली प्रजातन्त्रीय सिद्धान्तों पर आधारित शासन प्रणाली है। 1971 से पहले स्विस संविधान स्त्री-पुरुष में राजनीतिक समानता के विरुद्ध था। लेकिन अन्य देशों में उठ रहे नारी जागृति आन्दोलनों के दृष्टिगत उसने भी 1971 में स्त्रियों को वोट का अधिकार दे दिया। स्विट्जरलैंड में आज सार्वभौमिक व्यस्क मताधिकार प्राप्त हैं। जनमत संग्रह में स्त्रियों को भी भाग लेने का पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त है। अन्य देशों की तुलना में स्विट्जरलैण्ड में स्त्रियों की राजनीतिक सहभागिता का स्तर अधिक है।

इन प्रकार कहा जा सकता है कि आधुनिक युग में स्त्रियों की राजनीतिक प्रक्रिया में सहभागिता बढ़ रही है। लगभग सभी देशों में चाहे वह लोकतन्त्रीय हो निरंकुश शासन प्रणाली वाला, स्त्रियों को मताधिकार प्रदान किया है। स्त्रियों को चुनाव लड़ने व निर्वाचित होने का भी पूरा अधिकार है। लेकिन फिर भी राजनीतिक समाज की परम्पराओं ब रूढ़िवादी ढांचे ने स्त्रियों को पुरुषों के समान राजनीतिक प्रक्रिया में भागीदारी से दूर रखा है। आज भी स्त्रियों की राजनीति के प्रति उदासीनता है और अपने राजनीतिक अधिकारों के प्रति वे अधिक जागरूक नहीं हैं। इसलिए उनकी राजनीतिक जागरूकता का स्तर बढाने के लिए हमें प्रयास करने चाहिये ताकि राजनीति के प्रति महिलाओं की उदासीनता नष्ट हो और राजनीतिक प्रक्रिया में उनकी सांझेदारी सुदृढ़ हो।

--- o ---

अध्याय-15

वस्तुनिष्ठ प्रश्न/बहुवैकल्पिक प्रश्न
(Multiple Choice Questions)

निम्न में से सही उत्तर का चयन कीजिये :

1. तुलनात्मक राजनीति का जनक कौन है ?
   (क) मैक्यावली (ख) हॉब्स
   (ग) अरस्तु (घ) बोदीन

2. अरस्तु ने कितने देशों के संविधानों का तुलनात्मक अध्ययन किया ?
   (क) 155 (ख) 157
   (ग) 158 (घ) 160

3. 'The Prince' पुस्तक के लेखक कौन हैं ?
   (क) अरस्तु (ख) हॉब्स
   (ग) रूसो (घ) मैक्यावली

4. 'The Spirit of Laws' पुस्तक के लेखक कौन हैं ?
   (क) रूसो (ख) मॉण्टेस्क्यू
   (ग) हॉब्स (घ) प्लेटो

5. 'Modern Democracies' पुस्तक किसने लिखी ?
   (क) प्लेटो (ख) सर हेनरी मेन
   (ग) जैम्स ब्राइस (घ) सीले

6. 'Ancient Laws' पुस्तक किसने लिखी ?
   (क) वुडरो विल्सन (ख) जैम्स ब्राइस
   (ग) सर हेनरी मेन (घ) प्लेटो

7. निम्नलिखित में से कौनसी परम्परागत उपागम की विशेषता नहीं है ?
   (क) अतुलनात्मक अध्ययन (ख) अवैज्ञानिक अध्ययन
   (ग) अनुभववादी अध्ययन (घ) औपचारिक-संस्थागत अध्ययन

8. निम्नलिखित में से कौनसा परम्परागत उपागम नहीं है ?
   (क) संस्थागत उपागम (ख) मार्क्सवादी उपागम
   (ग) कानूनी-औपचारिक उपागम (घ) ऐतिहासिक उपागम

9. 'The Process of Govt.' पुस्तक के लेखक कौन हैं ?
   (क) सर हेनरी मेन (ख) जेम्स ब्राइस
   (ग) रूसो (घ) बेन्टले

10. निम्नलिखित में से कौनसी आधुनिक उपागम की विशेषता नहीं है ?
   (क) अनुभवकर्ता अध्ययन (ख) अन्तर्विषयक अध्ययन
   (ग) सामाजिक सन्दर्भी अध्ययन (घ) स्थिर व गतिहीन अध्ययन

11. निम्नलिखित में से कौन सा आधुनिक उपागम नहीं है ?
   (क) राजनीतिक संस्कृति उपागम (ख) संस्थागत उपागम
   (ग) [illegible] (घ) व्यवस्था विश्लेषण उपागम

12. व्यवस्था [illegible] का प्रयोग राजनीति विज्ञान में किस राजनीतिक विद्वान ने सबसे पहले किया ?
   (क) अरस्तू (ख) [illegible]
   (ग) डेविड ईस्टन (घ) आल्मण्ड-पावेल

13. निम्नलिखित में से [illegible] राजनीतिक [illegible] किसकी देन है ?
   (क) [illegible] (ख) [illegible]
   (ग) सक्षम राजनीतिक [illegible] (घ) [illegible]

14. तुलनात्मक राजनीति में 'Input-Output' मॉडल का [illegible] कौन है ?
   (क) आल्मण्ड-पावेल (ख) [illegible]
   (ग) डेविड ईस्टन (घ) [illegible]

15. 'The Politics of the [illegible] Areas' पुस्तक किसने लिखी है ?
   (क) आल्मण्ड-कोलमैन (ख) [illegible]
   (ग) पावेल (घ) ईस्टन

16. निम्नलिखित में से कौनसा राजनीतिक व्यवस्था का आगत (Input) कार्य नहीं
   (क) हित समूहीकरण (ख) नियम निर्माण
   (ग) राजनीतिक समाजीकरण व भर्ती (घ) हित समूहीकरण

17. संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम को 'comparative politics' का नया [illegible] किसने कहा है ?
   (क) कार्डिनर (ख) बर्क
   (ग) मेथाइन (घ) आल्मण्ड

18. निम्नलिखित में से कौनसा उपागम 'इतिहास की व्याख्या' पर आधारित है ?
   (क) संरचनात्मक-कार्यात्मक उपागम
   (ख) व्यवस्था विश्लेषण उपागम
   (ग) संस्थागत उपागम
   (घ) मार्क्सवादी-लेनिनवादी उपागम

19. व्यवहारवाद का जन्म किस देश में हुआ ?
   (क) ब्रिटेन (ख) अमेरिका
   (ग) भारत (घ) सोवियत संघ

20. उत्तर-व्यवहारवाद का जनक कौन है ?
(क) डेविड ईस्टन (ख) चार्ल्स मेरियम
(ग) राबर्ट डाहल (घ) हेराल्ड लॉसवेल

21. "संविधान वह है जो सर्वोच्च सरकार के संगठन को निश्चित करता है"-यह कथन किसका है ?
(क) गिलक्राइस्ट (ख) सी०एफ० स्ट्रांग
(ग) डॉयसी (घ) आस्टिन

22. निम्नलिखित में से कौनसे देश में लिखित संविधान नही है ?
(क) चीन (ख) अमेरिका
(ग) स्विट्जरलैण्ड (घ) ब्रिटेन

23. किस देश का संविधान साधारण कानून और संवैधानिक कानून में अन्तर नहीं काता ?
(क) भारत (ख) ब्रिटेन
(ग) रूस (घ) अमेरिका

24. एक आदर्श संविधान में कौनसे गुण होने चाहिये ?
(क) संक्षिप्तता (ख) स्पष्टता व निश्चितता
(ग) न्यायपालिका को स्वतन्त्रता (घ) उपरोक्त सभी

25. किस देश के संविधान में संशोधन आसानी से हो जाता है ?
(क) अमेरिका (ख) भारत
(ग) चीन (घ) ब्रिटेन

26. 'जनमत संग्रह' की व्यवस्था द्वारा संविधान में संशोधन किस देश में होता है ?
(क) अमेरिका (ख) भारत
(ग) स्विट्जरलैण्ड (घ) चीन

27. सबसे कम संविधान संशोधन किस देश के संविधान में हुए हैं ?
(क) भारत (ख) अमेरिका
(ग) रूस (घ) ब्रिटेन

28. 'कानून का शासन' (Rule of Law) पुस्तक किसने लिखी ?
(क) डॉयसी (ख) जेम्स ब्राइस
(ग) जनिंग्स (घ) मर्टन

29. 'कानून के शासन' का जनक कौनसा देश है ?
(क) ब्रिटेन (ख) भारत
(ग) चीन (घ) अमेरिका

30. विश्व का सबसे छोटा संविधान किस देश का है ?
(क) भारत (ख) रूस
(ग) अमेरिका (घ) चीन

31. 'लूट-प्रथा' (Spoil-System) का उल्लेख किस देश के संविधान में हुआ है ?
(क) अमेरिका (ख) भारत
(ग) कनाडा (घ) आस्ट्रेलिया

32. "संविधानवाद का अर्थ है-निरंकुश शासन के विपरीत नियमानुकूल शासन" यह कथन किसका है ?
(क) सी०एफ० स्ट्रांग (ख) कार्टन हर्ज
(ग) के०सी० व्हीयर (घ) अब्राहम

33. 'Communist Manifesto' पुस्तक के लेखक कौन हैं ?
(क) जेम्स ब्राइस (ख) लेनिन
(ग) कार्ल मार्क्स (घ) चार्ल्स मेरियम

34. 'सीमित सरकार' की परम्परा का निर्वहन किस देश में हुआ है ?
(क) चीन (ख) अमेरिका
(ग) वियतनाम (घ) रूस

35. संविधानवाद की प्रमुख समस्या कौनसी है ?
(क) युद्ध (ख) संवैधानिक शासन का स्थगन
(ग) राजनीतिक समानता का सिद्धांत (घ) उपरोक्त सभी

36. विश्व का सबसे प्राचीन संविधान किस देश का है ?
(क) भारत (ख) ब्रिटेन
(ग) अमेरिका (घ) चीन

37. सबसे लचीला संविधान किस देश का है ?
(क) अमेरिका (ख) फ्रांस
(ग) भारत (घ) ब्रिटेन

38. विश्व का सबसे विस्तृत संविधान किस देश का है ?
(क) भारत (ख) चीन
(ग) ब्रिटेन (घ) अमेरिका

39. निम्नलिखित में से किस देश के संविधान का निर्माण 'मननात्मक रचना' द्वारा हुआ है ?
(क) अमेरिका (ख) चीन
(ग) फ्रांस (घ) स्पेन

40. निम्नलिखित में से किस देश का संविधान क्रांति की उपज है ?
(क) चीन (ख) भारत
(ग) ब्रिटेन (घ) अमेरिका

41. निम्नलिखित में से किस देश का संविधान परम्पराओं पर आधारित है ?
(क) चीन (ख) रूस
(ग) ब्रिटेन (घ) फ्रांस

42. 'आरम्भन प्रणाली' (Initiative System) का सम्बन्ध किस देश से है ?
(क) चीन (ख) फ्रांस
(ग) स्पेन (घ) स्विट्जरलैण्ड

43. संविधानवाद की उत्पत्ति किस देश में हुई ?
(क) भारत (ख) ब्रिटेन
(ग) यूनान (घ) रोम

44. "उत्तरदायी सरकार' की परम्परा किस देश में नहीं है ?
(क) भारत (ख) चीन
(ग) ब्रिटेन (घ) स्विट्जरलैण्ड

45. 'मैगना कार्टा' का सम्बन्ध किस देश से है ?
(क) चीन (ख) पोलैण्ड
(ग) रूस (घ) ब्रिटेन

46. '1688 की शानदार क्रान्ति' किस देश में हुई ?
(क) भारत (ख) पाकिस्तान
(ग) ब्रिटेन (घ) अमेरिका

47. ब्रिटेन में अधिकार पत्र (Bill of Rights) कब पास हुआ ?
(क) 1688 (ख) 1711
(ग) 1756 (घ) 1689

48. ब्रिटिश 'हाउस ऑफ लार्ड्स' का सम्बन्ध किससे है ?
(क) ब्रिटिश समाज (ख) नागरिकता अधिनियम
(ग) मैगना कार्टा (घ) महान परिषद

49. जुन्टा (Junta) क्या है ?
(क) सामाजिक वर्ग (ख) न्यायपालिका
(ग) मंत्रिमण्डल (घ) प्रतिनिधि सभा

50. 'फ्रांसीसी क्रांति' (French Revolution) कब हुई ?
(क) 1765 (ख) 1911
(ग) 1789 (घ) 1905

51. 'फ्रांसीसी क्रान्ति' का समकालीन व्यक्ति कौन है ?
(क) हिटलर (ख) मुसोलिनी
(ग) नेपोलियन (घ) जवाहरलाल नेहरु

52. एकसदनीय व्यवस्थापिका किस देश में है ?
(क) भारत (ख) अमेरिका
(ग) ब्रिटेन (घ) चीन

53. द्वि-सदनीय व्यस्थापिका किस देश में है ?

(क) चीन (ख) तुर्की

(ग) ब्रिटेन (घ) पाकिस्तान

54. संसद के दूसरा सदन का प्रमुख लाभ यह है कि :-

(क) यह प्रथम सदन की निरंकुशता रोकता है।

(ख) समय की बचत करता है

(ग) प्रथम सदन के कार्यों का पुनरावलोकन करता है

(घ) उपरोक्त सभी

55. 'कामन सदन' का सम्बन्ध किस देश से है ?

(क) भारत (ख) ब्रिटेन

(ग) चीन (घ) अमेरिका

56. कामन सदन का कार्यकाल कितना है ?

(क) 10 वर्ष (ख) 7 वर्ष

(ग) 4 वर्ष (घ) 5 वर्ष

57. कामन सदन द्वारा पारित विधेयक को हाऊस ऑफ लार्डस कितने समय तक रोक सकता है ?

(क) 1 वर्ष (ख) 6 महीने

(ग) 2 वर्ष (घ) 3 वर्ष

58. वित्त विधेयक पेश किया जा सकता है :-

(क) निम्न सदन में (ख) उच्च सदन में

(ग) दोनों में (घ) किसी में नहीं

59. लार्ड सदन वित्त विधेयक को कितने समय तक रोक सकता है ?

(क) 2 महीने (ख) 1 महीना

(ग) 40 दिन (घ) 2 वर्ष

60. ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल किसके प्रति उत्तरदायी है ?

(क) जनता (ख) हाऊस ऑफ लार्डस

(ग) कॉमन सदन (घ) किसी के नहीं

61. ब्रिटिश लार्डस सभा किसका प्रतिनिधित्व करती है ?

(क) धनी वर्ग (ख) कुलीन वर्ग

(ग) सामन्त वर्ग (घ) उपरोक्त सभी

62. लार्डस सभा के सभापति की नियुक्ति कौन करता है ?

(क) जनता (ख) कॉमन सदन

(ग) सम्राट (घ) मन्त्रीगण

63. कॉमन सदन की अध्यक्षता कौन करता है ?

(क) सम्राट (ख) लार्ड चांसलर

(ग) प्रधानमंत्री (घ) स्पीकर

64. अमेरिका में संसद के कितने सदन हैं ?

(क) 2 (ख) 1

(ग) 3 (घ) 4

65. 'प्रतिनिधि सदन' का सम्बन्ध किस देश की व्यवस्थापिका से है ?

(क) भारत (ख) ब्रिटेन

(ग) अमेरिका (घ) चीन

66. 'प्रतिनिधि सदन' का कार्यकाल कितना है ?

(क) 2 वर्ष (ख) 4 वर्ष

(ग) 5 वर्ष (घ) 3 वर्ष

67. अमेरिकन राष्ट्रपति के विरुद्ध महाभियोग कौन लगा सकता है ?

(क) साधारण जनता (ख) सीनेट

(ग) प्रतिनिधि सदन (घ) कोई नहीं

68. 'शक्ति पृथक्करण सिद्धान्त' की उत्पत्ति किस देश में हुई ?

(क) भारत (ख) ब्रिटेन

(ग) अमेरिका (घ) फ्रांस

69. 'शक्ति-पृथक्करण सिद्धान्त' किस देश में अपनाया गया है ?

(क) चीन (ख) स्विट्जरलैण्ड

(ग) अमेरिका (घ) ब्रिटेन

70. सीनेट के सदस्यों की संख्या कितनी है ?

(क) 100 (ख) 102

(ग) 104 (घ) 99

71. विश्व का सर्वाधिक शक्तिशाली द्वितीय सदन कौनसा है ?

(क) राज्यसभा (ख) हाऊस ऑफ लॉर्डस

(ग) सीनेट (घ) राज्य परिषद

72. 'निरोध व संतुलन का सिद्धान्त' किस देश में अपनाया गया है ?

(क) अमेरिका (ख) भारत

(ग) चीन (घ) ब्रिटेन

73. अन्तराष्ट्रीय समझौते व सन्धियां कौन अनुसमर्थित करता है ?

(क) सीनेट (ख) प्रतिनिधि सभा

(ग) राष्ट्रपति (घ) स्पीकर

74. अमेरिकन राष्ट्रपति को हटाया जा सकता है :-

(क) अधिवेशन बुलाकर (ख) महाभियोग द्वारा

(ग) स्पीकर द्वारा (घ) जनता द्वारा

75. निम्नलिखित में से स्थायी सदन कौन सा है ?

(क) लोकसभा (ख) कॉमन सभा

(ग) राष्ट्रीय जन कांग्रेस (घ) सीनेट

76. 'सघीय सभा' किस देश की व्यवस्थापिका है ?

(क) भारत (ख) चीन

(ग) स्विट्जरलैण्ड (घ) अमेरिका

77. राष्ट्रीय जन कांग्रेस किस देश की व्यवस्थापिका है ?

(क) चीन (ख) ब्रिटेन

(ग) फ्रांस (घ) भारत

78. वर्तमान चीनी संविधान किस वर्ष बनाया गया ?

(क) 1954 (ख) 1975

(ग) 1982 (घ) 1949

79. चीनी प्रधानमन्त्री को कौन बर्खास्त कर सकता है ?

(क) राष्ट्रीय जन कांग्रेस (ख) राष्ट्रपति

(ग) राज्य-परिषद (घ) जनता

80. अमेरिका में किस प्रकार की शासन प्रणाली अपनाई गई है ?

(क) अध्यक्षात्मक (ख) संसदीय

(ग) पैतृक (घ) बहुलकार्यपालिका

81. बहुल कार्यपाकलका किस देश में पाई जाती है ?

(क) भारत (ख) अमेरिका

(ग) ब्रिटेन (घ) स्विट्जरलैण्ड

82. ब्रिटेन में राजा और ताज में अन्तर किया जाने लगा :-

(क) 1215 में (ख) 1911 में

(ग) 1688 में (घ) 1905 में

83. रीजेंसी अधिनियम का सम्बन्ध किससे है ?

(क) सम्राट (ख) स्पीकर

(ग) कॉमन सदन (घ) हाऊस ऑफ लार्डस

84. किस देश की शासन-प्रणाली में अध्याक्षात्मक व संसदीय शासन प्रणाली दोनों के गुण हैं ?

(क) ब्रिटेन (ख) अमेरिका

(ग) स्विट्जरलैण्ड (घ) भारत

85. 'प्रिवी परिषद्' का सम्बन्ध है :-

(क) ब्रिटेन (ख) भारत

(ग) अमेरिका (घ) चीन

86. ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल को वैधानिक मान्यता कब प्राप्त हुई ?
(क) 1911 में (ख) 1949 में
(ग) 1937 में (घ) 1688 में

87. 'कबाल' का सम्बन्ध किससे है ?
(क) कॉमन सदन (ख) हाऊस ऑफ लार्डस
(ग) मन्त्रिमण्डल (घ) स्पीकर

88. ब्रिटेन में मन्त्रिमण्डल प्रणाली का वास्तविक विकास किस युग में हुआ ?
(क) हैनोवर वंश (ख) हसिया वंश
(ग) मान्चू वंश (घ) स्टुअर्ट वंश

99. प्रथम ब्रिटिश प्रधानमन्त्री कौन था ?
(क) स्टेनली वान्डविन (ख) वाल्पोल
(ग) मारग्रेट थेचर (घ) डफ कपूर

90. 'सामूहिक उत्तरदायित्व' का सिद्धान्त किस देश में नहीं है ?
(क) भारत (ख) ब्रिटेन
(ग) अमेरिका (घ) स्विट्जरलैण्ड

91. अमेरिकन मन्त्रिमण्डल किसके प्रति उत्तरदायी है ?
(क) जनता (ख) राष्ट्रपति
(ग) प्रतिनिधि सभा (घ) सीनेट

92. ब्रिटेन में वास्तविक कार्यपालिका कौन है ?
(क) सम्राट (ख) प्रधानमन्त्री
(ग) हाऊस ऑफ लार्डस (घ) स्पीकर

93. अमेरिकन राष्ट्रपति को महाभियोग के तहत हटाने के लिए कितने बहुमत की आवश्यकता है ?
(क) 2/3 बहुमत (ख) 1/3 बहुमत
(ग) 1/4 बहुमत (घ) 3/4 बहुमत

94. महाभियोग की प्रक्रिया के तहत किस राष्ट्रपति को हटाया गया ?
(क) निक्सन (ख) जैफरसन
(ग) रूजवेल्ट (घ) जार्ज बुश

95. वाटरगेट कांड का सम्बन्ध किस देश से है ?
(क) भारत (ख) ब्रिटेन
(ग) अमेरिका (घ) चीन

96. चीन में कार्यपालिका किसके प्रति उत्तरदायी है ?
(क) राष्ट्रीय जन कांग्रेस (ख) राष्ट्रपति
(ग) जनता (घ) प्रधानमन्त्री

97. चीन में राष्ट्रीय जन कांगेस (व्यवस्थापिका) किसके प्रति उत्तरदायी है ?
(क) जनता (ख) राष्ट्रपति
(ग) साम्यवादी दल (घ) प्रधानमत्री

98. निम्नलिखित में से किस देश की कार्यपालिका की प्रकृति बहुलवादी है :-
(क) भारत (ख) अमेरिका
(ग) स्विस (घ) चीन

99. न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति किस देश की न्यायपालिका के पास है ?
(क) ब्रिटेन (ख) चीन
(ग) अमेरिका (घ) स्विट्जरलैण्ड

100. जूरी प्रथा किस देश में प्रचलित है ?
(क) ब्रिटेन (ख) भारत
(ग) अमेरिका (घ) चीन

101. दो तरह के वकील किस देश की न्याय प्रणाली का अंग हैं ?
(क) स्विट्जरलैण्ड (ख) फ्रांस
(ग) भारत (घ) ब्रिटेन

102. प्रशासकीय न्याय व्यवस्था किस देश में नहीं है ?
(क) भारत (ख) फ्रांस
(ग) अमेरिका (घ) स्विट्जरलैण्ड

103. अमेरिकन सर्वोच्च न्यायालय के न्यायधीशों को कैसे हटाया जा सकता है ?
(क) राष्ट्रपति द्वारा (ख) महाभियोग द्वारा
(ग) जनता द्वारा (घ) स्पीकर द्वारा

104. किस देश में न्यायपालिका सरकार का अंग नहीं है ?
(क) भारत (ख) ब्रिटेन
(ग) अमेरिका (घ) चीन

105. 'जन-प्रोक्येरेटर' किस देश की न्यायपालिका की विशेषता है ?
(क) चीन (ख) भारत
(ग) अमेरिका (घ) ब्रिटेन

106. किस देश में न्यायपालिका पर व्यवस्थापिका का नियन्त्रण है ?
(क) फ्रांस (ख) ब्रिटेन
(ग) चीन (घ) भारत

107. ब्रिटेन में 1911 के संसद अधिनियम ने किसको शक्ति प्रदान की ?
(क) हाऊस ऑफ लार्डस (ख) कॉमन सदन
(ग) सम्राट (घ) जनता

108. 'कानून की उचित प्रक्रिया' किस देश में अपनाई जाती है ?

(क) भारत (ख) अमेरिका

(ग) चीन (घ) फ्रांस

109. बहुमूल्यधारी राजनीतिक संस्कृति किस देश में नहीं है ?

(क) भारत (ख) अमेरिका

(ग) ब्रिटेन (घ) चीन

110. प्रौढ राजनीतिक संस्कृति किस देश में पाई जाती है ?

(क) ब्रिटेन (ख) चीन

(ग) फ्रांस (घ) स्पेन

111. चीन में साम्यवादी दल की स्थापना कब हुई ?

(क) 1911 (ख) 1921

(ग) 1924 (घ) 1949

112. एक दलीय प्रणाली किस देश में पाई जाती है ?

(क) चीन (ख) स्विट्जरलैण्ड

(ग) अमेरिका (घ) भारत

113. बहुदलीय प्रणाली किस देश में है ?

(क) अमेरिका (ख) रूस

(ग) चीन (घ) स्विट्जरलैण्ड

114. द्वि-दलीय प्रणाली किस देश में है ?

(क) ब्रिटेन (ख) भारत

(ग) चीन (घ) स्विट्जरलैण्ड

115. श्रमिक दल किस देश में है ?

(क) ब्रिटेन (ख) अमेरिका

(ग) चीन (घ) रूस

116. किस देश में 'विरोधी दल' नहीं है ?

(क) स्विट्जरलैण्ड (ख) अमेरिका

(ग) ब्रिटेन (घ) भारत

117. एक दलीय प्रणाली किस देश में नहीं है ?

(क) चीन (ख) वियतनाम

(ग) रूस (घ) स्विट्जरलैण्ड

118. 'सर्वसत्ताधिकारवाद' (Totalitarianism) किस देश की शासन प्रणाली की विशेषता है ?

(क) भारत (ख) अमेरिका

(ग) चीन (घ) स्विट्जरलैण्ड

119. अस्थिर शासन प्रणाली की जनक है :-

(क) एकदलीय व्यवस्था (ख) बहुदलीय व्यवस्था

(ग) द्वि-दलीय (घ) उपरोक्त सभी

120. अमेरिका में किस तरह की दलीय व्यवस्था है ?

(क) द्वि-दलीय (ख) एक-दलीय

(ग) बहुदलीय (घ) दल-विहीन

121. किस देश की दल-प्रणाली दलगत भावना से पीड़ित नहीं है ?

(क) भारत (ख) ब्रिटेन

(ग) स्विट्जरलैण्ड (घ) पाकिस्तान

122. राजनीतिक दलों का प्रमुख कार्य है :-

(क) चुनाव लड़ना (ख) सरकार बनाना

(ग) जनमत को शिक्षित करना (घ) उपरोक्त सभी

123. 'टोरी' किस देश का पुराना राजनीतिक दल है ?

(क) अमेरिका (ख) चीन

(ग) स्विट्जरलैण्ड (घ) ब्रिटेन

124. 'गुलाबों का युद्ध' किस देश में हुआ ?

(क) ब्रिटेन (ख) भारत

(ग) फ्रांस (घ) अमेरिका

125. ब्रिटेन में दल प्रणाली की उत्पत्ति किस युग में हुई ?

(क) स्टुअर्ट काल (ख) ट्यूडर काल

(ग) एंग्लो-सैकसन काल (घ) लंकास्ट्रीयन

126. अनुदार दल किस देश में है ?

(क) भारत (ख) अमेरिका

(ग) ब्रिटेन (घ) स्विट्जरलैण्ड

127. प्रधानमन्त्री टोनी ब्लेयर का सम्बन्ध किस राजनीतिक दल से है ?

(क) रिपब्लिकन दल (ख) श्रमिक दल

(ग) अनुदार दल (घ) डेमोटिक दल

128. दलीय अनुशासन का अभाव किस देश में है ?

(क) भारत (ख) अमेरिका

(ग) ब्रिटेन (घ) चीन

129. राष्ट्रपति बिल क्लिंटन का सम्बन्ध किस राजनीतिक दल से रहा है ?

(क) डेमोक्रेटिक दल (ख) रिपब्लिकन दल

(ग) समाजवादी दल (घ) श्रमिक दल

130. किस देश में दल-प्रणाली की संविधानिक व्यवस्था नहीं है ?

(क) भारत (ख) ब्रिटेन

(ग) स्विट्जरलैण्ड (घ) चीन

131. सैल (Cell) किस देश के दलीय संगठन का अंग है ?

(क) अमेरिका (ख) भारत

(ग) ब्रिटेन (घ) चीन

132. 'मोनालिथिक दल' किस राजनीतिक दल को कहा जाता है ?

(क) साम्यवादी दल (ख) श्रमिक दल

(ग) समाजवादी दल (घ) रिपब्लिकन दल

133. दबाव व हित समूहों को 'दल के पीछे सक्रिय जन' किसने कहा है ?

(क) मायरन वीनर (ख) फ्रेडरिक

(ग) ओडिगार्ड (घ) मैकाइवर

134. हित समूहों का जन्म किस देश में हुआ ?

(क) भारत (ख) अमेरिका

(ग) चीन (घ) ब्रिटेन

135. ब्रिटेन में दबाव व हित समूहों की उत्पत्ति कब हुई ?

(क) औद्योगिक क्रांति के बाद (ख) आद्योगिक क्रान्ति से पहले

(ग) 1215 में (घ) 1911 में

136. किस देश में स्वतन्त्र दबाव समूह नहीं है ?

(क) भारत (ख) ब्रिटेन

(ग) चीन (घ) अमेरिका

137. स्विट्जरलैण्ड में महिलाओं को मताधिकार कब प्रदान किया गया ?

(क) 1925 में (ख) 1911 में

(ग) 1971 में (घ) 1949 में

138. 'लैंडसजीमाइड' व्यवस्था किस देश में प्रचलित है ?

(क) ब्रिटेन (ख) भारत

(ग) स्विट्जरलैण्ड (घ) अमेरिका

139. स्विस संघ में कितने कैन्टन हैं ?

(क) 20 (ख) 19

(ग) 23 (घ) 25

140. प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र किस देश की व्यवस्था किस देश में है ?

(क) भारत (ख) ब्रिटेन

(ग) अमेरिका (घ) स्विट्जरलैण्ड

141. 'दास कैपिटल' पुस्तक के लेखक कौन हैं ?

(क) लेनिन (ख) स्टालिन

(ग) माओ (घ) मार्क्स

142. 'वर्ग-संघर्ष' प्रत्यय का प्रयोग किस उपागम के अन्तर्गत किया जाता है ?

(क) व्यवस्था विश्लेषण उपागम (ख) मार्क्सवादी उपागम

(ग) ऐतिहासिक उपागम (घ) संस्थात्मक उपागम

143. 'संसदीय सम्प्रभुता' का सिद्धान्त किस देश की देन है ?

(क) भारत (ख) ब्रिटेन

(ग) अमेरिका (घ) रूस

144. आर्थिक समानता का अर्थ है :-

(क) समान अवसरों की प्राप्ति

(ख) समान कार्य के लिए समान वेतन

(ग) आर्थिक शोषण की समाप्ति

(घ) उपरोक्त सभी

145. राजनीतिक समानता का अर्थ है :-

(क) सभी को वोट देने का अधिकार

(ख) सभी को चुनाव लड़ने का अधिकार

(ग) आलोचना करने का अधिकार

(घ) उपरोक्त सभी

146. आजकल कौनसा लोकतन्त्र अधिक लोकप्रिय है ?

(क) समाजवादी लोकतन्त्र (ख) प्रत्यक्ष लोकतन्त्र

(ग) विशिष्ट वर्ग लोकतन्त्र (घ) प्रतिनिधि लोकतन्त्र

147. सर्वहारा के अधिनायकतन्त्र का समर्थन किसने किया ?

(क) मोस्का (ख) बर्नहाम

(ग) मार्क्स (घ) लास्की

148. 1966 की सांस्कृतिक क्रान्ति का सम्बन्ध किस देश से है ?

(क) भारत (ख) चीन

(ग) अमेरिका (घ) रूस

149. किस देश का संविधान शक्ति-पृथक्करण के विरूद्ध है ?

(क) भारत (ख) चीन

(ग) अमेरिका (घ) कोई नहीं

150. किस देश का संविधान सिद्धान्त और व्यवहार में महान अन्तर दिखाता है ?

(क) अमेरिका (ख) भारत

(ग) ब्रिटेन (घ) चीन

151. निम्नलिखित में से किस देश में संघात्मक शासन प्रणाली है ?

(क) भारत (ख) अमेरिका

(ग) ब्रिटेन (घ) उपरोक्त सभी

152. किस देश में एकात्मक शासन प्रणाली पाई जाती है ?

(क) चीन (ख) वियतनाम

(ग) क्यूबा (घ) उपरोक्त सभी

153. सांझा सरकार (Coalition Govt.) किस देश में पाई जाती है ?

(क) स्विट्जरलैण्ड (ख) ब्रिटेन

(ग) अमेरिका (घ) चीन

154. किस विद्वान ने ब्रिटिश संविधान को मातृ संविधान कहा है ?

(क) एमरी (ख) ब्राइस

(ग) मुनरो (घ) बेजहॉट

155. ब्रिटेन में सम्प्रभुता किसके पास है ?

(क) ताज (ख) सम्राट

(ग) संसद (घ) नौकरशाही

156. ब्रिटिश सम्राट का पद है :-

(क) आनुवांशिकता पर आधारित

(ख) योग्यता पर आधारित

(ग) वरिष्ठता पर आधारित

(घ) बहुमत पर आधारित

157. आधुनिक युग में लिखित संविधान की परम्परा किस देश की देन है ?

(क) अमेरिका (ख) ब्रिटेन

(ग) स्विट्जरलैण्ड (घ) चीन

158. अमेरिकन संविधान का निर्माण कब हुआ ?

(क) 1782 (ख) 1911

(ग) 1885 (घ) 1787

159. अमेरिकन संविधान में कितने संशोधन हुए हैं ?

(क) 20 (ख) 90

(ग) 25 (घ) 27

160. ब्रिटिश राजमुकुट (ताज) में कौन-कौन शामिल हैं ?

(क) राजा (ख) संसद

(ग) मन्त्रिमण्डल (घ) उपरोक्त सभी

161. ब्रिटेन में शासन की वास्तविक शक्ति किसमें निहित है ?

(क) राजा (ख) ताज

(ग) प्रधानमन्त्री (घ) लार्ड सभा

162. ब्रिटिश प्रधानमन्त्री की नियुक्ति कौन करता है?

(क) सम्राट (ख) लार्ड सभा

(ग) व्यवस्थापिका (घ) कामन सदन

163. ब्रिटेन में अपीलीय न्यायालय कौन सा है ?

(क) लार्ड सभा (ख) कामन सदन

(ग) न्यायपालिका (घ) सर्वोच्च न्यायालय

164. 'छाया मन्त्रिमण्डल' किस देश की देन है ?

(क) भारत (ख) चीन

(ग) अमेरिका (घ) ब्रिटेन

165. ब्रिटेन में स्थानीय स्वशासन की शुरुआत किस युग में हुई ?

(क) एंग्लो-सैकसन युग (ख) टयुडर युग

(ग) स्टुअर्ट युग (घ) नार्मन युग

166. ब्रिटेन में स्थानीय स्वशासन की सबसे छोटी इकाई कौन सी है ?

(क) काउण्टी (ख) काउण्टी कौंसिल

(ग) बरो (घ) पैरिश

167. अमेरिका में कार्यपालिका का अध्यक्ष कौन है ?

(क) राष्ट्रपति (ख) प्रतिनिधि सदन

(ग) विदेश मन्त्री (घ) वित्त मन्त्री

168. एकल कार्यपालिका किस देश में पाई जाती है ?

(क) भारत (ख) ब्रिटेन

(ग) अमेरिका (घ) स्विट्जरलैण्ड

169. अमेरिकन राष्ट्रपति का कार्यकाल कितना है ?

(क) 4 वर्ष (ख) 3 वर्ष

(ग) 5 वर्ष (घ) 6 वर्ष

170. अमेरिकन राष्ट्रपति का चुनाव किसके प्रति उत्तरदायी है ?

(क) सीनेट (ख) प्रतिनिधि सदन

(ग) न्यायपालिका (घ) संविधान

171. अमेरिकन राष्ट्रपति का चुनाव कौन करता है ?

(क) जनता (ख) सीनेट

(ग) कांग्रेस (घ) निर्वाचक मंडल

172. संयुक्त राज्य अमेरिका की व्यवस्थापिका को क्या कहा जाता है ?

(क) डॉयट (ख) कांग्रेस

(ग) संसद (घ) सीनेट

173. अमेरिकन सीनेट का अध्यक्ष कौन है ?

(क) राष्ट्रपति (ख) उप-राष्ट्रपति

(ग) लार्ड चांसलर (घ) वरिष्ठ सीनेटर

174. अमेरिकन प्रतिनिधि सभा में कितने सदस्य हैं ?

(क) 100 (ख) 440

(ग) 435 (घ) 650

175. किसी चुनाव में राष्ट्रपति के पद हेतु किसी भी उम्मीदवार को स्पष्ट बहुमत न मिलने की दशा में राष्ट्रपति का चुनाव कौन करता है ?

(क) सीनेट (ख) प्रतिनिधि सदन

(ग) जनता (घ) कांग्रेस

176. अमेरिकन सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना की स्थापना कब हुई ?

(क) 1789 (ख) 1890

(ग) 1688 (घ) 1905

177. "संविधान वह है जो न्यायधीश कहते हैं"-यह कथन किसका है ?

(क) मार्शल (ख) मुनरो

(ग) ह्युज (घ) जैम्स बैक

178. सरकार का चौथा स्तम्भ किसे कहा जाता है ?

(क) राजनीतिक दल (ख) प्रशासन

(ग) प्रधानमन्त्री (घ) सीनेट

179. प्रथम चीनी संविधान कब निर्मित हुआ ?

(क) 1949 (ख) 1975

(ग) 1954 (घ) 1982

180. चीन में प्रथम क्रान्ति कब हुई ?

(क) 1920 (ख) 1911

(ग) 1905 (घ) 1949

181. 1949 की चीनी क्रान्ति का सूत्रधार कौन है ?

(क) माओ-त्से-तुंग (ख) स्टालिन

(ग) लेनिन (घ) सुनयात सेन

182. संविधान के अनुसार चीन में समस्त शक्तियां किसके पास हैं ?

(क) जनता (ख) राष्ट्रपति

(ग) साम्यवादी दल (घ) न्यायपालिका

183. 'लोकतन्त्रीय केन्द्रीयकरण' का सिद्धान्त किस देश में अपनाया गया है ?

(क) भारत (ख) चीन

(ग) अमेरिका (घ) स्विट्जरलैण्ड

184. चीनी संविधान में संशोधन का अधिकार किसे प्राप्त है ?

(क) जनता (ख) राष्ट्रपति

(ग) राज्य-परिषद (घ) राष्ट्रीय जन कांग्रेस

185. चीनी संविधान में सबसे अधिक जोर है :-

(क) राजनीतिक समानता पर (ख) राष्ट्रवाद पर

(ग) कर्तव्यों पर (घ) सामाजिक कल्याण पर

186. राष्ट्रीय जन कांग्रेस का कार्यकाल कितना है ?

(क) 5 वर्ष (ख) 7 वर्ष

(ग) 3 वर्ष (घ) 4 वर्ष

187. राष्ट्रीय जन कांग्रेस की स्थायी समिति किसके प्रति उत्तरदायी है ?

(क) राष्ट्रपति के प्रति

(ख) साम्यवादी दल के प्रति

(ग) राष्ट्रीय जन कांग्रेस के प्रति

(घ) जनता के प्रति

188. चीनी राज्य-परिषद का कार्यकाल कितना है ?

(क) 2 वर्ष (ख) 6 वर्ष

(ग) 7 वर्ष (घ) 5 वर्ष

189. राज्य-परिषद की बैठकें कौन बुलाता है ?

(क) प्रधानमन्त्री (ख) राष्ट्रपति

(ग) उप-राष्ट्रपति (घ) राष्ट्रीय जन कांग्रेस

190. अमेरिकन संविधान में किसका उल्लेख नहीं है ?

(क) सीनेट (ख) राष्ट्रपति

(ग) राजनीतिक दल (घ) उप-राष्ट्रपति

191. निम्नलिखित में से पाश्चात्य संविधानवाद की विशेषता नहीं है :-

(क) व्यक्ति की स्वतन्त्रता

(ख) राजनीतिक समानता

(ग) लोककल्याण की साधना

(घ) राजनीतिक शक्ति का आर्थिक शक्ति के अधीन होना

192. संविधानवाद के लिए सबसे बड़ा खतरा है :-

(क) युद्ध (ख) सर्वसत्ताधिकारवाद

(ग) सैनिकवाद (घ) उपरोक्त सभी

193. किस देश में जनता को संविधान संशोधन में सहभागी बनाया जाता है ?

(क) भारत (ख) ब्रिटेन

(ग) अमेरिका (घ) स्विट्जरलैण्ड

194. निम्नलिखित में से किसके बिना संविधानवाद की स्थापना नहीं हो सकती ?

(क) लिखित संविधान (ख) राजनीतिक समानता

(ग) संवैधानिक सरकार (घ) आर्थिक समानता

195. संसदात्मक शासन प्रणाली का क्या नाम है ?

(क) मन्त्रिमण्डल प्रणाली (ख) एकात्मक प्रणाली

(ग) राष्ट्रपतीय प्रणाली (घ) अध्यक्षात्मक प्रणाली

196. संसदीय शासन प्रणाली की प्रमुख विशेषता है :-

(क) लिखित संविधान (ख) शक्ति-पृथक्करण

(ग) सामूहिक उत्तरदायित्व (घ) न्यायिक पुनरावलोकन

197. कौनसी शासन प्रणाली संकटकाल के लिए उपयुक्त है ?

(क) अध्यक्षात्मक (ख) संसदीय

(ग) संघात्मक (घ) लोकतन्त्रीय

198. अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली का प्रमुख लक्ष्य है :-

(क) द्वि-दलीय व्यवस्था (ख) सामूहिक उत्तरदायित्व

(ग) संसद की सर्वोच्चता (घ) शक्ति-पृथक्करण

199. किस शासन प्रणाली में शासनाध्यक्ष वास्तविक कार्यपालक होता है ?

(क) एकात्मक (ख) संसदीय

(ग) अध्यक्षात्मक (घ) संघात्मक

200. निम्नलिखित में से कौनसी संघात्मक शासन प्रणाली की विशेषता नहीं है ?

(क) लचीला संविधान (ख) कठोर संविधान

(ग) लिखित संविधान (घ) शक्ति-पृथक्करण

201. 'दोहरी नागरिकता' का प्रावधान किस देश के संविधान में है ?

(क) भारत (ख) अमेरिका

(ग) चीन (घ) आस्ट्रेलिया

202. मन्त्रिमण्डल प्रणाली का जनक कौन सा देश है ?

(क) भारत (ख) ब्रिटेन

(ग) स्विट्जरलैण्ड (घ) चीन

203. "प्रधानमन्त्री प्रथमों में प्रथम है"-यह कथन किस का है ?

(क) लार्ड मार्ले (ख) लास्की

(ग) डायसी (घ) जेनिंग्स

204. दल-विहीन प्रजातन्त्र के प्रमुख विचारक कौन हैं ?

(क) मार्शल (ख) जैम्स बैक

(ग) एम०एन०राय (घ) मुनरो

205. ब्रिटिश दल प्रणाली की प्रमुख विशेषता है :-

(क) कठोर दलीय अनुशासन (ख) दलहीन प्रजातन्त्र

(ग) लूट प्रणाली (घ) ढीला संगठन

206. 'Political Parties' नामक पुस्तक किसने लिखी ?

(क) मोरिश जोन (ख) ब्राइस

(ग) एलेन बाल (घ) मॉरिस दुवरजर

207. 'अज्ञात साम्राज्य' शब्द का प्रयोग किसके लिए किया जाता है ?

(क) राजनीतिक दल (ख) क्षेत्रीय दल

(ग) प्रेस (घ) दबाव समूह

208. दबाव समूहों द्वारा अपने हितों की प्राप्ति का प्रयास करने के लिए सबसे अधिक किस उपाय का सहारा लिया जाता है ?

(क) लॉबिइंग (ख) न्यायपालिका

(ग) तोड़-फोड़ (घ) हड़ताल

209. अल्पसंख्यक वर्ग के हितों की संरक्षक है :-

(क) व्यावसायिक प्रतिनिधित्व प्रणाली

(ख) आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली

(ग) एकल-संक्रमण मतदान प्रणाली

(घ) संचयी मत प्रणाली

210. अमेरिका में सर्वोच्च न्यायालय के न्यायधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति किसकी सहमति से करता है ?

(क) उपराष्ट्रपति (ख) मन्त्रिमण्डल

(ग) सीनेट (घ) स्पीकर

211. 'प्रदत्त व्यवस्थापन' (Delegated Legislation) की व्यवस्था किस देश में नहीं है ?

(क) भारत (ख) ब्रिटेन

(ग) अमेरिका (घ) चीन

212. विकसित संविधान का सर्वोत्तम उदाहरण कौन सा देश है ?

(क) भारत (ख) अमेरिका

(ग) ब्रिटेन (घ) फ्रांस

वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

(Answers of Multiple Choice Questions)

(1) ग, (2) ग, (3) घ, (4) ख, (5) ग, (6) ग, (7) ग, (8) ख, (9) घ, (10) घ, (11) ख, (12) ग, (13) ग, (14) ग, (15) क, (16) ख, (17) क, (18) घ, (19) ख, (20) क, (21) घ, (22) घ, (23) ख, (24) घ, (25) घ, (26) ग, (27) ख, (28) क, (29) क, (30) ग, (31) क, (32) ग, (33) ग, (34) ख, (35) घ, (36) ख, (37) घ, (38) क, (39) क, (40) क, (41) ग, (42) घ, (43) ग, (44) ख, (45) घ, (46) ग, (47) घ, (48) घ, (49) ग, (50) ग, (51) ग, (52) घ, (53) ग, (54) घ, (55) ख, (56) घ, (57) क, (58) क, (59) ख, (60) ग, (61) घ, (62) ग, (63) घ, (64) क, (65) ग, (66) ग, (67) ग, (68) घ, (69) ग, (70) ख, (71) ग, (72) क, (73) क, (74) ख, (75) घ, (76) ग, (77) क, (78) ग, (79) क, (80) क, (81) घ, (82) ग, (83) क, (84) ग, (85) क, (86) ग, (87) ग, (88) क, (89) ख, (90) ग, (91) ख, (92) ख, (93) क, (94) क, (95) ग, (96) क, (97) ग, (98) ग, (99) ग, (100) क, (101) घ, (102) घ, (103) ख, (104) घ, (105) क, (106) ग, (107) ख, (108) ख, (109) घ, (110) क, (111) ख, (112) क, (113) घ, (114) क, (115) क, (116) क, (117) घ, (118) ग, (119) ख, (120) क, (121) ग, (122) घ, (123) घ, (124) क, (125) क, (126) ग, (127) ख, (128) ख, (129) ख, (130) ग, (131) घ, (132) क, (133) ख, (134) ख, (135) क, (136) ग, (137) ग, (138) ग, (139) घ, (140) घ, (141) घ, (142) ख, (143) ख, (144) घ, (145) घ, (146) घ, (147) ग, (148) ख, (149) ख, (150) घ, (151) घ, (152) घ, (153) क, (154) ग, (155) क, (156) क, (157) क, (158) घ, (159) घ, (160) घ, (161) ख, (162) क, (163) क, (164) घ, (165) क, (166) घ, (167) क, (168) ग, (169) क, (170) घ, (171) घ, (172) ख, (173) ख, (174) ग, (175) ख, (176) क, (177) ग, (178) क, (179) ग, (180) ख, (181) क, (182) क, (183) ख, (184) घ, (185) ग, (186) क, (187) ग, (188) घ, (189) क, (190) ग, (191) घ, (192) घ, (193) घ, (194) ग, (195) क, (196) ग, (197) क, (198) घ, (199) ग, (200) क, (201) ख, (202) ख, (203) क, (204) ग, (205) क, (206) घ, (207) घ, (208) क, (209) ख, (210) ग, (211) घ, (212) ग,